॥ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन चौथी पीढ़ीके महापुरुष श्रीरूपानुग अप्राकृत-कविकुलश्रेष्ठ-
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् कृष्णदास-कविराज-गोस्वामी-रचित

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

मध्यलीला [द्वितीय भाग (अध्याय 15-25)]

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन आठवीं पीढ़ीके पुरुषप्रधान श्रीरूपानुगवर-
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् सच्चिदानन्द-भक्तिविनोद-ठाकुर-रचित

अमृतप्रवाह-भाष्य,

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन नौवीं पीढ़ीके श्रेष्ठ परिजन परमहंस-परिव्राजकाचार्य-श्रीरूपानुगश्रेष्ठ-
श्रीब्रह्ममाध्वगौड़ीय-सम्प्रदायके सर्वोत्तम संरक्षक-
ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित
श्रीस्वरूप-रूप-विरोधी समस्त-कुसिद्धान्तोंको निरस्त करनेवाला

अनुभाष्य

एवं

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी कृत
'अमृतानुकणा', विविध गौड़ीय वैष्णवाचार्योंके लेखों एवं नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रवचनोंसे सङ्कलित 'अमृतानुकणिका'
भाष्य, भूमिका, विविध सूची और विवरण आदि-सहित

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन दसवीं पीढ़ीके श्रेष्ठ परिजन
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-आचार्य-भास्कर
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुकम्पा-पात्र

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके-

आदेश-निर्देशानुसार उनके चरणाश्रितजनोंके द्वारा

अनुवादित और सम्पादित

प्रकाशक : इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

मूल बङ्गला पयार, संस्कृत श्लोक, अमृतप्रवाह भाष्य, अनुभाष्य,
अमृतानुकणा और अमृतानुकणिका सहित प्रकाशित

प्रथम संस्करण– श्रीगौर-पूर्णिमा , 9 मार्च, 2020
1000 प्रतियाँ

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

★ **श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ** — B–3, म्यूजिकल फाँऊन्टेन पार्कके निकट, जनकपुरी, **नई दिल्ली**
✆ **9810192540, 8285211049**

★ **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ** — जवाहर हाट, **मथुरा** (उ.प्र.)
✆ **0565–2502334**

★ **श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ** — दान गली, **वृन्दावन** (उ.प्र.)
✆ **9456828001**

★ **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ** — दसविसा, राधाकुण्ड रोड, **गोवर्धन** (उ.प्र.)
✆ **0565–2815668**

★ **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ** — कोलेरडाङ्गा लेन, **नवद्वीप** (प.ब.)
✆ **9153125442**

★ **श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ** — 162, सैक्टर–16A, **फरीदाबाद** (हरियाणा)
✆ **9911283869**

★ **जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ** — चक्रतीर्थ रोड़, **जगन्नाथपुरी** (ओडीशा)
✆ **9776238328**

★ **श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ** — Q–29, सैक्टर–12, **नोएडा**, (उ.प्र.)
✆ **9650824442**

★ **श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ** — D–5, सैक्टर–55, **नोएडा**, (उ.प्र.)
✆ **9910400878**

★ **खण्डेलवाल एण्ड सन्स** — अठखम्बा बाजार, **वृन्दावन** (उ.प्र.)
✆ **0565–2443101**

विषय–सूची

	उद्धृत ग्रन्थ	i-iii
	अध्याय विवरण	iv-v
15	सार्वभौमके घरमें भोजन–विलास	1-47
16	पुनःगौड़गमन–विलास	49-90
17	श्रीवृन्दावन–गमन	93-127
18	श्रीवृन्दावन–दर्शन–विलास	129-169
19	प्रयागमें श्रीरूपपर अनुग्रह	171-219
20	स्वरूपतत्त्वरूप–श्रीभगवत्स्वरूप–भेदविचार	221-289
21	सम्बन्धतत्त्व–विचारसे श्रीकृष्ण–ऐश्वर्य–माधुर्य–वर्णन	291-324
22	अभिधेयभक्तितत्त्व–विचार	327-375
23	प्रेमप्रयोजन–विचार	377-407
24	'आत्मारामश्च'–श्लोक–व्याख्यासे श्रीसनातनपर अनुग्रह	409-474
25	काशीवासियोंका वैष्णवकरण और पुनः नीलाचल–गमन	477-519
	श्लोक सूची	521-528
	पद्य सूची	529-545
	शब्दकोष	547-554

साङ्केतिक चिह्नोंकी सूची

अन्त्य	—	अन्त्यलीला	आदि	—	आदिलीला
उःनीः	—	उज्ज्वलनीलमणि	कठः	—	कठोपनिषद
छाः	—	छान्दोग्योपनिषद	तैः	—	तैत्तिरयोपनिषद
नाःपःराः	—	नारदपञ्चरात्र	ब्रःसंः	—	ब्रह्मसंहिता
बृःआः	—	बृहदारण्यकोपनिषद	मध्य	—	मध्यलीला
मःभाः	—	महाभारत	भःरःसिः	—	भक्तिरसामृतसिन्धु
भाः	—	भागवत	विःपुः	—	विष्णुपुराण
श्वेः	—	श्वेताश्वतरोपनिषद	हःभःविः	—	हरिभक्तिविलास

निवेदन

हमारे परमाराध्य गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी अपार कृपासे गौड़ीय वैष्णवाचार्योंकी विविध टीकाओं सहित हिन्दी भाषामें श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतकी दो भागोंमें आदिलीला एवं मध्यलीला प्रथम भाग प्रकाशित करनेके पश्चात् अब 'मध्यलीला द्वितीय भाग' का प्रकाशन कार्य सम्पन्न हुआ है। यह कार्य उनकी आज्ञा एवं उनके द्वारा प्रदत्त शक्तिसे ही सम्पादित हुआ है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा अनुमोदित गूढ़ तत्त्व-सिद्धान्तों और सर्वोच्च रस-तत्त्वका अनूठा, अद्भुत और चमत्कारी समन्वय इस ग्रन्थमें अति सरल बङ्गला भाषामें करके अपने अप्राकृत कवित्वका परिचय प्रदान किया है। "मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता", श्रील कविराज गोस्वामीकी लेखनी इस उक्तिका उज्ज्वल उदाहरण है, उन्होंने अति अल्प शब्दोंमें समस्त शास्त्रोंके सारको प्रमाण सहित इस ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थकी भाषा सरल होनेपर भी इसमें अत्यन्त गूढ़ रहस्य समन्वित हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने अपनी टीकाओं एवं अनेकानेक लेखोंके द्वारा उन गूढ़ रहस्योंको उद्घाटित किया है। इन टीकाओं और लेखों तथा श्रील गुरुदेवके प्रवचनोंको इस प्रकाशनमें समन्वय करके ग्रन्थके गूढ़ भावोंको सर्वसाधारणके लिये बोधगम्य बनानेका हमारा प्रयास है।

उनके मनोवाञ्छित कार्यको सम्पूर्ण करनेके लिये प्रकाशन मण्डलीके सेवक निरन्तर प्रयासशील हैं और श्रील गुरुदेवकी प्रेरणा एवं निरुपाधिक निरवधि कृपाशक्ति हमें इस महत् कार्यमें सदा उत्साहशील बनाये रखती है। यह अति हर्षका विषय है कि श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतका 'मध्यलीला द्वितीय भाग' भी अब प्रकाशित हो गया है और श्रीगुरुदेवकी प्रसन्नताके लिये उनकी निज वस्तुको उनके ही करकमलोंमें अर्पित करते हुए परमानन्दका अनुभव कर रहे हैं।

इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिये आत्मीय सहायता एवं प्रेरणाके लिये हम श्रीयुता उमादेवी दासीके आभारी हैं। इस ग्रन्थमें कुछ त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है। सुधी पाठकोंके द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे।

प्रकाशन मण्डली
इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स (IGVP)

प्रकाशन-मण्डली

अनुवाद, विन्यास एवं सम्पादन (Translation, Layout & Editing) :—

श्रीमान् गोकुलचन्द्र दास

शोधकार्य (Research) :—

श्रीमती जानकी दासी / श्रीमान् गोकुलचन्द्र दास

टङ्कण (Typing) :—

श्रीमती ऐश्वर्य दासी / श्रीमती प्रज्ञा दासी

संस्कृत-हिन्दी अनुवाद :—

श्रीमान् डॉ अच्युतलाल भट्ट (पी॰एच॰डी॰)

प्रूफ-संशोधन (Proof Reading) :—

श्रीमती राधा नूपुर दासी / सुश्री मञ्जुलता दासी

मुखपृष्ठ चित्र :—

श्रीमान् अनुज

प्रकाशक :—

श्रीपाद रामचन्द्र दास

इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला (द्वितीय भाग)

उद्धृत प्रमाण-ग्रन्थ तालिका

अमरकोश—24/305; **इतिहास-समुच्चय—19/**50; **20/**58; **उज्ज्वलनीलमणि—23/**82-86; **एकादशी-तत्त्व—17/**186; **25/**56; **कात्यान-संहिता—22/**88; **कृष्णकर्णामृत—21/**136; **23/**29, 32; **गरुड़पुराण—25/**137, 138, 139; **गोविन्दलीलामृत—17/**210, 212, 214, 216; **18/**12; 19/54; **गोस्वामीपादोक्त श्लोक—21/**45; **22/**89; **24/**179; **चैतन्यचन्द्रोदय नाटक—19/**119, 120, 121; **24/**344, 345, 346; **नारदपञ्चरात्र—19/**170; **23/**8; **पद्मपुराण—17/**133, 136; **18/**8; **19/**219; **20/**145; **21/**50, 51, 88; **22/**109; **23/**26; **25/**78; **पद्यावली—15/**110; **19/**96, 98, 106; **22/**131; **पानिनि—24/**26, 293, 295; **प्राचीनकृत श्लोक—24/**315; **बृहत्-गौतमीय-तन्त्र—23/**64; **ब्रह्मसंहिता—15/**170; **20/**154, 160, 258, 281, 304, 310, 316; 21/35, 41, 49; **भक्तिरसामृतसिन्धु—18/**38; **19/**134, 167, 170, 176, 186, 211; **20/**106, 378, 397, 398, 399; **22/**16, 102, 109, 126, 127, 128, 131, 142, 145, 149, 150, 153, 155, 158; **23/**5, 7, 14, 15, 18, 19, 23, 26, 30, 33, 36, 63, 64, 66-80, 89-92, 94; **24/**37, 116, 121, 124, 129, 165, 167, 176, 190, 269, 274; **भगवत्सन्दर्भ—18/**114; **24/**108, 139, 304; **25/**149; **भगवद्गीता—17/**18, **19/**199; **20/**116, 121, 163, 373, 374; 22/23, 57, 58, 91; **23/**100-107; **24/**90, 128, 134, 154, 155, 168, 187; **25/**38, 39, 148; **भागवत—15/**180, 237, 270; **16/**145, 186; **17/**36, 39, 138, 140, 142; **18/**34, 35, 125; **19/**72, 142, 143, 150, 171-174, 197, 201, 203-209, 212, 215; **20/**57, 59, 119, 137, 138, 147, 148, 151, 156, 158, 170, 173, 249, 262, 266, 267, 270, 274, 275, 299, 306, 312, 313, 318, 331, 335, 336, 340, 342, 343, 345, 353, 357; **21/**9, 11, 13, 15, 27, 33, 37, 83, 100, 112, 123, 124,; **22/**19, 20, 27, 28, 30, 32, 36, 40, 44, 46, 48, 50, 52, 53, 55, 61, 63, 69, 70, 71, 73, 78, 79, 81, 82, 83, 85, 86, 87, 93, 95, 100, 107, 108, 132-134, 136, 139, 141, 157; **23/**16, 21, 24, 37, 61, 108; **24/**5, 21, 45, 46, 48, 49, 51, 52, 55, 58, 71, 73, 78, 83, 84, 86, 94, 96, 99, 111, 113, 119, 127, 131, 133, 136, 137, 138, 151, 152, 161, 164, 171, 172-174, 178, 185, 192, 194, 195, 202-205, 209, 211, 213, 316, 317; **25/**31, 32, 36, 37, 74, 75, 81-83, 99, 103, 107, 111, 117, 121, 124, 126-128, 130, 132, 134, 135, 141, 142, 144, 145, 150-152; **भावार्थदीपिका—17/**80; **18/**114; **24/**69, 75; **25/**138; **महाभारत—15/**269; **17/**186; **25/**56; **मुनिवाक्य—22/**6; **रामायण (वाल्मिकी-कृत)—22/**34; **रूपगोस्वामीकृत श्लोक—19/**53; **23/**27, 74-80, 82-86; **लघुभागवतामृत—20/**242, 251, 371; **21/**50, 51, 88; **ललितमाधव—19/**165; **20/**181, 182; **विश्वप्रकाश—24/**12, 18, 64, 65, 146; **विष्णुधर्मोत्तर—17/**133; **विष्णुपुराण—20/**110, 112-115, 344; **24/**68, 304; **विष्णुस्वामिवाक्य—18/**114; **वैष्णवतन्त्र—18/**116; **22/**97, 98; **सर्वज्ञसूक्तवाक्य—18/**114; **सात्वत-तन्त्र—20/**251; **स्कन्दपुराण—22/**142; **24/**274; **स्मृतिवचन—15/**265; **हरिभक्तिविलास—18/**116; 19/50, 229; 22/34, 88, 97, 98; 23/8; 25/137; **हरिभक्तिसुधोदय—19/**75; **20/**61; **22/**42; **23/**23; **24/**215।

अमृतप्रवाह भाष्यमें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

ईशोपनिषद्—25/99; **उद्भटचन्द्रिका—20/**3; **चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक—16/**205-210; **चैतन्यचरितकाव्य—16/**205-210; **चैतन्यभागवत—16/**55-56, 81, 205, 210, 212; **चैतन्यमङ्गल—16/**205-210; **पद्यावली—19/**92; **प्रेमदासका भाष्य—16/**205-210; **भक्तिरसामृतसिन्धु—22/**111-125; **भागवत—15/**265, **19/**142, **24/**28; **भागवतामृत—20/**165; **सात्वत तन्त्र और शैवतन्त्र—20/**173; **हरिभक्तिसुधोदय—22/**21 ।

अनुभाष्यमें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

आग्नेय पुराण—15/9; **उपदेशामृत (रूपगोस्वामीकृत)—15/**106, 111, **16/**74, **19/**102, 157; **ऋग्वेद—23/**110, **24/**21; **कर्णामृत—22/**21; **काशीखण्ड—17/**82; **कृष्णगणोद्देशदीपिका—15/**241; **कृष्ण-सन्दर्भ—23/**111, 112; **गरुड़-पुराण—15/**274; **गोपालतापनी-उपनिषद्—8/**137; **गीता—24/**326; **चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (टिप्पनी)—16/**207; **चैतन्यभागवत—16/**207, 208; **5/**140; **चैतन्यमङ्गल (श्रीलोचनदास)—16/**207; **तत्त्व-सागर—24/**326; **दुर्गम-सङ्गमनी—17/**95; **नीलकण्ठ टीका—23/**110; **न्यासादेश विवरण—18/**47; **पद्मपुराण—15/**167-169; **18/**116; **20/**242; **24/**326; **पद्यावली—17/**145; **प्रेमदास—16/**207; **ब्रह्मसंहिता—20/**272-273; **ब्रह्मसूत्र-भाष्य—18/**47; **8/**266, 308-310; **भक्तिरत्नाकर—18/**26, 38, 47, 49-52, 57-64, 66-68, 70-72; **भक्तिरसामृतसिन्धु—15/**108; **16/**74, 238; **17/**95; **19/**177-178, 180, 183-185, 187-188; **22/**65-67; **23/**42-44, 46, 48, 52; **भक्तिसन्दर्भ—15/**107, 108, 261; **16/**74; **18/**115; **22/**98; **भागवत—15/**106, 107, 261-262, 264, 274-277; **16/**74, 280-281; **17/**14-15, 55-56, 95, 186; **18/**115; **19/**17, 151, 189; **20/**63, 127, 245, 248, 278, 332-333; **21/**11, 19; **22/**31-32, 37-39, 69, 98; **23/**111-112; **24/**166, 172, 326; **25/**131-132; **भावार्थ-दीपिका—24/**326; **मथुराखण्ड—18/**38; **मथुरा-माहात्म्य—18/**58-62; **मनुसंहिता—16/**150, **20/**59; **23/**111-112; **महाभारत—16/**150; **20/**59; **23/**111-112; **महाभारत-टीका (नीलकण्ठ)—23/**1110; **24/**326; **मुक्ताफलटीका—20/**59; **मुण्डकोपनिषद्—19/**17, 139; **रागवर्त्म-चन्द्रिका—20/**393-395; **लघुभागवतामृत—20/**165, 184; **21/**33, 59-89; **23/**111-112; **लघुभागवतामृत-टीका (बलदेव)—23/**111-112; **वराह-पुराण—18/**55; **विद्वन्मण्डल—18/**47; **विष्णुपुराण—23/**111-112; **वैष्णव-मञ्जुषा—18/**49; **शिक्षाष्टक—16/**74; **शृङ्गाररसमण्डल—18/**47; **श्वेताश्वतरोपनिषद्—22/**126; **श्रुति—22/**126; **24/**314; **सर्वसम्वादिनी—23/**111-112; **सांख्यकारिका—20/**278; **सिद्धान्त-शिरोमणि—20/**218; **21/**84; **सिद्धार्थ-संहिता—20/**224-236; **सुबोधिनी-टिप्पणी—18/**47; **सूर्यसिद्धान्त—21/**84; **स्कन्दपुराण—15/**261; **स्तवावली—18/**26, 38, 66; **स्मृति—22/**126; **24/**364; **हयशीर्ष-पञ्चरात्र—20/**238, 239; **हरिवंश—23/**110; **हरिभक्तिविलास—15/**108, 261; **20/**202; **24/**324, 330-332, 337 ।

अमृतानुकणामें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

कृष्ण-सन्दर्भ—23/112-113; **गीता—15/**48; **22/**90, 152-153, **23/**112-113; **छान्दोग्योपनिषद्—20/**127-128; **दशमूल—22/**80; **पद्मपुराण—21/**125; **बृहदन्नारदीयपुराण—22/**80; **ब्रह्मपुराण—23/**112-113; **ब्रह्माण्डपुराण—21/**33; **भक्तिरसामृतसिन्धु—22/**80, **22/**148-149, 152-153; **भागवत—21/**33, **22/**84, 152-153, **23/**112-113; **मन्त्रार्थ-दीपिका—21/**125; **रागवर्त्म-चन्द्रिका—22/**148-149; **वर्णागम-भास्वत्—21/**125; **विष्णुपुराण—23/**112-113; **श्रीचैतन्यशिक्षामृत—22/**103-104, 152-153; **श्रीलघुभागवतामृत—21/**33; **23/**112-113; **स्कन्दपुराण—23/**112-113।

अमृतानुकणिकामें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

कूर्मपुराण—15/136; **गीता—20/**118; **बृहद्भागवतामृत—18/**34; **भागवत—18/**34; **19/**157; **22/**107; **विष्णुपुराण—25/**191-193; **शिक्षाष्टक—19/**157; **श्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकम्—21/**112; **श्रीहरिभक्तिविलास—15/**236।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

मध्यलीला (द्वितीय भाग) अध्याय-विवरण

पन्द्रहवाँ अध्याय— 1-47

महाप्रभुकी गोप और हनुमानके वेशमें लीला, श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ एकान्तमें परामर्श, श्रीवासके द्वारा नवद्वीपमें माताको सांत्वना-वाक्य भेजना, राघव पण्डित, खण्डवासी मुकुन्द और रघुनन्दन, मुरारी गुप्त, वाचस्पति आदि भक्तोंके गुणोंकी व्याख्या करके प्रत्येकको सेवा निर्देश करके विदायी देना। कुलीनग्रामवासियोंके प्रश्नोंके उत्तरमें सभी साधकोंके नित्य कर्त्तव्योंका उपदेश देना, वासुदेवके अपूर्व जीवोंपर दया-सूचक वाक्यकी आलोचना, सार्वभौमके घरमें भिक्षा और भट्टके दामाद अमोघका उद्धार।

सोलहवाँ अध्याय— 49-90

अगले वर्ष गौड़देशसे वैष्णव-गृहणियोंका भक्तोंके साथ महाप्रभुके लिये नैवेद्य एकत्रित करके पुरीमें आगमन और चातुर्मासके अन्तमें गौड़देशमें लौट जाना। कुलीनग्रामवासियोंके प्रश्नके उत्तरमें वैष्णवोंके अधिकार-तारतम्यका निर्देश, विद्यानिधिका श्रीक्षेत्रमें 'ओड़नषष्ठी'-दर्शन, विजयदशमीके दिन महाप्रभुकी वृन्दावन-यात्रा, महाप्रभुके साथमें गदाधरकी जानेकी इच्छा और उनका महाप्रभुके प्रति अनुपम प्रेम, गदाधरको विदायी देकर जलपथसे पानिहाटी, कुमारहट्ट और विद्यानगरसे होते हुए कुलियामें आगमन और अनेक अपराधियोंके अपराधोंका मोचन, रामकेलिमें रूप-सनातनके साथ साक्षात्कार, सनातनके इङ्गितानुसार कनाई-नाटशालासे पुरीकी ओर वापस लौटना, उसके द्वारा नृसिंहानन्द ब्रह्मचारीके ध्यानके आवेशमें उच्चारित भविष्यवाणीकी सफलताका विधान, पथमें शान्तिपुरमें आकर रघुनाथको उपदेश देना और अन्तमें पुरीमें वापस लौटना।

सतरहवाँ अध्याय— 93-127

बलभद्र ब्राह्मणके साथ वृन्दावन-यात्रा, झारिखण्ड मार्गसे काशीमें आगमन, तपनमिश्रके घरमें अवस्थान, कृष्णनामापराधी मायावादियोंकी निन्दा, मथुरा जाकर माधवेन्द्रपुरीके शिष्य सनोड़िया ब्राह्मणको वैष्णव जानकर जातिबुद्धि न करके उसके घरमें भोजन, वृन्दावनमें स्थित द्वादश-वनोंमें भ्रमण और कृष्णप्रेमविकार।

अठारहवाँ अध्याय— 129-169

वृन्दावनमें सभी कृष्णलीला-स्थानोंका दर्शन, बलभद्रके कालिय ह्रदमें मछुआरे कृष्णवर्ण नाविकको 'कृष्ण'-भ्रमरूप विवर्त्त दूर करना, उस देशके वासियोंको जीव और कृष्णके स्वरूपका वर्णन, मथुरासे वापस लौटते हुये मार्गमें बिजली-खाँ और उसके सङ्गियोंका उद्धार करना, मुसलमानशास्त्रसे कृष्णभक्ति-संस्थापन, त्रिवेणीमें आगमन।

उन्नीसवाँ अध्याय— 171-219

श्रीरूपका अपने देशमें अपने घरमें आगमन, राजकार्यको त्याग करनेके कारण सनातनको कारावास, अनुजके साथमें श्रीरूपका गृहत्याग और प्रयागमें महाप्रभुके साथ मिलन, वल्लभाचार्यको महाप्रभुके द्वारा दोनों भाइयोंका परिचय देना, महाप्रभु और रघुपति उपाध्यायका वार्तालाप, दशाश्वमेध-घाटपर श्रीरूपको कृष्णभक्तिरसतत्त्वकी शिक्षा प्रदान करना और वृन्दावनमें

भेजना तथा बादमें पुरीमें आकर पुनः मिलनेका आदेश देकर महाप्रभुका काशीमें आगमन।

बीसवाँ अध्याय— 221–289

सनातनका कारागारसे छूटकर निकल जाना, काशीमें गमन और चन्द्रशेखरके घरमें महाप्रभुसे मिलन, श्रीसनातन शिक्षा—(1) **'सम्बन्ध ज्ञान'**—(क) जीवके और भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन।

इक्कीसवाँ अध्याय— 291–324

(ख) कृष्णैश्वर्य-माधुर्य-वर्णन।

बाइसवाँ अध्याय— 327–375

(2) वैध और रागानुग-भेदसे **'अभिधेय'**-साधन-भक्तिका वर्णन।

तेइसवाँ अध्याय— 377–407

(3) **'प्रयोजन'**-प्रेम-तत्त्व-वर्णन।

चौबीसवाँ अध्याय— 409–474

"आत्मारामश्च"-श्लोककी 61 प्रकारकी व्याख्या, श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका कीर्तन, वैष्णव-स्मृति हरिभक्तिविलासका मूल सूत्र-वर्णन।।

पचीसवाँ अध्याय— 477–519

प्रमुख-प्रकाशानन्द और काशीवासियोंके द्वारा महाप्रभुकी निन्दा, भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उनका उद्धार (आदिलीला सातवाँ अध्याय देखें), एकत्रित हुए समस्त कुतार्किकोंके कुतर्कोंका खण्डन, सभीके द्वारा महाप्रभुको साक्षात् नारायण मानना, प्रकाशानन्दके एक शिष्यके द्वारा महाप्रभुके प्रचारित मतकी अर्थात् श्रुतियोंकी अवरोहपन्थासे और सविशेष-ब्रह्मतात्पर्य एवं शक्तिपरिणामवादकी प्रशंसा तथा निर्विशेष-ब्रह्मपरता विवर्त्तवाद या आरोहवादपन्थाकी निन्दा, प्रकाशानन्दके द्वारा उस वाक्यका समर्थन, अन्य दार्शनिक मतवादोंका खण्डन, महाप्रभुका दर्शन, महाप्रभुके द्वारा पाषण्ड-संज्ञाका निर्देश, प्रकाशानन्दको उनकी प्रार्थनापर महाप्रभुके द्वारा चतुःश्लोकीकी व्याख्या, उसके बाद "आत्मारामश्च" श्लोककी 61 प्रकारकी व्याख्या, काशीवासियोंका उद्धार-साधन, सनातनको वृन्दावनमें भेजना, सुबुद्धिरायको निरन्तर कृष्णनाम-ग्रहण-व्यवस्था प्रदान, पुरीमें पुनः लौटकर आना और भक्तोंके साथ मिलन।

पन्द्रहवाँ अध्याय

कथासार—रथयात्राके पूर्ण होनेपर श्रीअद्वैतप्रभुने महाप्रभुकी पुष्प-तुलसी देकर पूजा की, महाप्रभुने भी पूजापात्रमें बचे हुए पुष्प-तुलसी देकर श्रीअद्वैताचार्यकी योऽसि सोऽसि'-मन्त्रसे पूजा की। उसके बाद श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुको निमन्त्रण करके भोजन करवाया। नन्दोत्सवके दिन महाप्रभुने अपने भक्तोंके सहित गोपवेश धारण करके आनन्दोत्सव मनाया। विजयादशमीके दिन लङ्का-विजयोत्सवमें महाप्रभुने अपने भक्तोंको वानर सेनाके वेशमें सजाकर स्वयं हनुमानके आवेशमें बहुत आनन्द प्रकाशित किया। उसके बाद अन्यान्य उत्सवोंको देखनेके बाद महाप्रभुने समागत भक्तोंको गौड़देश जानेकी आज्ञा दी। महाप्रभुने श्रीरामदास, श्रीगदाधरदास आदि कुछ वैष्णवोंके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुको भी गौड़देशमें भेजा। बादमें बहुतसे दैन्यपूर्ण वचनोंके साथ (श्रीवासके हाथसे) अपनी माताके लिये प्रसाद-वस्त्र आदि भिजवाये। महाप्रभुने श्रीराघवपण्डित, श्रीवासुदेव दत्त, कुलीन-ग्रामवासी भक्तों आदि सभी वैष्णवोंके अनेक गुणोंकी व्याख्या करके उन्हें विदायी दी। श्रीरामानन्द और श्रीसत्यराजके प्रश्नोंके उत्तरमें महाप्रभुने गृहस्थ-वैष्णवोंके लिये शुद्धनामपरायण वैष्णवोंकी सेवाका निर्देश दिया। तब महाप्रभुने खण्डवासी-वैष्णवोंके माहात्म्य (और सेवा-निर्देश), श्रीसार्वभौम और श्रीविद्या-वाचस्पतिको (दारु और जलब्रह्मकी सेवाका आदेश) और श्रीमुरारि-गुप्तकी श्रीरामके चरणकमलोंमें निष्ठाकी व्याख्या की। तत्पश्चात् श्रीवासुदेव दत्तकी सम्पूर्ण-वैष्णवोचित प्रार्थनाके अनुसार श्रीकृष्णके (अनायास) जगत्के उद्धारके सामर्थ्यका विचार किया। उसके बाद श्रीसार्वभौमके घरपर (महाप्रभुके द्वारा) भिक्षा ग्रहणके समय अमोघकी कुछ दुर्बुद्धि होनेपर अगले दिन प्रातःकालमें उसे हैजाका रोग हो गया। महाप्रभुने कृपा करके उसे रोगसे मुक्त कराके श्रीकृष्ण-नाममें रुचि प्रदान की।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

अपने निन्दक अमोघको आत्मसात्कारी श्रीगौरसुन्दर :—

सार्वभौमगृहे भुञ्जन् स्वनिन्दकममोघकम्।
अङ्गीकुर्वन् स्फुटां चक्रे गौरः स्वां भक्तवश्यताम्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौमके घरमें भोजन करते समय अपने निन्दक अमोघ-भट्टाचार्यको अङ्गीकार करके श्रीगौरचन्द्रने स्पष्टरूपसे अपनी भक्तवश्यताको प्रकाश किया था॥1॥

अनुभाष्य—

गौरः सार्वभौमगृहे (भट्टाचार्यभवने) भुञ्जन् (भिक्षां स्वीकुर्वन्) स्वनिन्दकं (निज-निन्दाकारिणम्) अमोघकं (तन्नामकं सार्वभौमदुहितृ-'षष्ठी'-पतिम्) अङ्गीकुर्वन् (निजदासगणमध्ये गणयन्) स्वां (निजां) भक्तवश्यतां (अनुगत-जनबाध्यतां) स्फुटां (व्यक्तीभूतां) चक्रे (कृतवान्)॥1॥

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। *'अमोघ'*—श्रीसार्वभौमकी पुत्री 'षष्ठी'का पति॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके श्रोताओंकी जय :—

जय श्रीचैतन्यचरितामृत-श्रोतागण।
चैतन्यचरितामृत—याँर प्राणधन॥3॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य-चरितरूपी अमृत ही जिनका प्राणधन है, उन श्रीचैतन्यचरितामृतके श्रोताओंकी जय हो॥3॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुकी पुरुषोत्तम-लीला :—

एइमत महाप्रभु भक्तगण-सङ्गे।
नीलाचले रहि' करे नृत्यगीत-रङ्गे॥4॥

अनुवाद—इस प्रकार नीलाचलमें रहकर महाप्रभु भक्तोंके साथ नृत्य-गान करके आनन्दका आदान-प्रदान करते थे॥4॥

प्रथम-वत्सरे जगन्नाथ-दरशन।
नृत्यगीत करे दण्ड, परणाम, स्तवन॥5॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार महाप्रभुके संन्यास ग्रहण करनेके बाद प्रथम वर्षकी कुछ लीलाओंका वर्णन करते हुए कह रहे हैं—) महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करते और उनके आगे नृत्य-गीत, दण्डवत्-प्रणाम और उनकी स्तुति करते॥5॥

मध्याह्न भोगके बाद श्रीहरिदासके साथ साक्षात्कार :—

'उपलभोग' लागिले करे बाहिरे विजय।
हरिदास मिलि' आइसे आपन-निलय॥6॥

अनुवाद—'उपलभोग' लगनेके समय महाप्रभु मन्दिरसे बाहर चले आते। तब वे श्रीहरिदास ठाकुरसे मिलकर अपने आवास-स्थानपर आ जाते॥6॥

अनुभाष्य—मध्याह्नकालमें भोगवर्धन-खण्डमें भोग अर्थात् उपल-भोग लगनेपर महाप्रभु श्रीमन्दिरसे बाहर चले आते। उससे पहले गरुड़-स्तम्भके पीछे खड़े होकर दण्डवत्-प्रणाम और स्तवादि करते थे। लौटते समय 'सिद्धबकुल'में श्रीहरिदास ठाकुरके साथ मिलकर अपने वासस्थान श्रीकाशीमिश्र-भवनमें आ जाते॥6॥

अपने वासस्थानमें बैठकर नामकीर्तन,
श्रीअद्वैतके द्वारा महाप्रभुकी पूजा :—

घरे बसि' करे प्रभु नाम-सङ्कीर्त्तन।
अद्वैत आसिया करे प्रभुर पूजन॥7॥

अनुवाद—महाप्रभु अपने वास-स्थानमें बैठकर नाम-जप करते। एक दिन श्रीअद्वैताचार्यने वहाँ आकर महाप्रभुकी पूजा की॥7॥

सुगन्धि-सलिले देन पाद्य, आचमन।
सर्वाङ्गे लेपये प्रभुर सुगन्धि चन्दन॥8॥
गले माला देन, माथाय दिल तुलसी-मञ्जरी।
योड़-हाते स्तुति करे पदे नमस्करि'॥9॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुके चरण और मुख धोने (पाद्य और आचमन)के लिये सुगन्धित जल प्रदान करके महाप्रभुके समस्त अङ्गोंपर सुगन्धित चन्दनका लेपन किया। उन्होंने महाप्रभुके गलेमें माला पहनायी और उनके मस्तकपर तुलसी-मञ्जरी प्रदान की। तब उन्होंने हाथोंको जोड़कर महाप्रभुके चरणोंमें प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति की॥8-9॥

अमृतानुकणिका—महाप्रभु यद्यपि स्वयं भगवान् हैं और उनके चरणोंमें तुलसी देनेसे कोई अपराध नहीं होता। परन्तु महाप्रभु उस समय भक्तरूपमें लीला कर रहे थे, इसलिये श्रीअद्वैताचार्यने उनके मस्तकपर तुलसी-मञ्जरी प्रदान की॥8-9॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीअद्वैतका प्रतिपूजन :—

पूजा-पात्रे पुष्प-तुलसी शेष ये आछिल।
सेइ सब लञा प्रभु आचार्ये पूजिल॥10॥
'योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते' एइ मन्त्र पड़े।
मुखवाद्य करि' प्रभु हासाय आचार्येरे॥11॥

अनुवाद—पूजा-पात्रमें जो भी पुष्प और तुलसी-पत्र बच गये, महाप्रभुने उनके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यकी पूजा की। पूजा करते समय उन्होंने यह मन्त्र पढ़ा,—'आप जो हो, सो हो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।' तथा अपने मुखसे वाद्ययन्त्रकी भाँति कुछ ध्वनि की जिसे सुनकर श्रीअद्वैताचार्य हँसने लगे॥10-11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आप जो हो, सो हो, मैं

आपको ही नमस्कार करता हूँ',—यह मन्त्र पढ़कर आचार्यकी पूजा की॥ 11॥

अनुभाष्य—कोई यह पाठ बोलते हैं—

"राधे कृष्ण रमे विष्णो सीते राम शिवे शिव।
योऽसि सोऽसि नमो नित्यं योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते।"

अर्थात् "आप चाहे राधा-कृष्ण या रमा-विष्णु या सीता-राम या शिवानी-शिव, जो हों, सो हों, मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नित्य नमस्कार करता हूँ॥"11॥

अमृतानुकणिका—उपरोक्त मन्त्र शिवमन्त्रका एक विशेष अंश है। श्रीअद्वैताचार्य सदाशिव हैं, इसलिये महाप्रभुने उनकी इस मन्त्रके द्वारा पूजा की॥ 10-11॥

एइमत अन्योन्ये करेन नमस्कार।
प्रभुरे निमन्त्रण करे आचार्य बार बार॥ 12॥

आचार्यके वासस्थानपर महाप्रभुकी भिक्षा—
श्रीचैतन्यभागवतमें वर्णित :—

आचार्येर निमन्त्रण—आश्चर्य-कथन।
विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन॥ 13॥

एक-एक भक्तके घरमें सगण महाप्रभुको निमन्त्रण :—

पुनरुक्ति हय ताहा, ना कैलुँ वर्णन।
आर भक्तगण करे प्रभुरे निमन्त्रण॥ 14॥

एक एक दिन एक एक भक्तगृहे महोत्सव।
प्रभु-सङ्गे ताँहा भोजन करे भक्त सब॥ 15॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु और श्रीअद्वैताचार्यने परस्पर एक-दूसरेको नमस्कार किया। उसके बाद श्रीअद्वैताचार्य बार-बार महाप्रभुको अपने वासस्थानपर भोजनके लिये निमन्त्रण करते। एक दिन श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा महाप्रभुको निमन्त्रण करनेकी घटना बहुत आश्चर्यजनक है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्यभागवतमें इसका विस्तारसे वर्णन किया है। पुनरुक्ति दोष हो जायेगा, इसलिये मैं (ग्रन्थकार) उसका वर्णन नहीं कर रहा हूँ। इसी प्रकार अन्यान्य भक्त भी महाप्रभुको निमन्त्रण देते थे। एक-एक दिन एक-एक भक्तके स्थानपर महोत्सव होता और महाप्रभुके साथ समस्त भक्त भी वहाँपर भोजन करते थे॥ 12-15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीचैतन्यभागवतमें अन्त्यखण्ड, नौवाँ अध्याय देखें॥ 13॥

गौड़ीयगणोंका महाप्रभुके साथ चारमास रहना :—

चारिमास रहिला सबे महाप्रभु-सङ्गे।
जगन्नाथेर नाना यात्रा देखे महारङ्गे॥ 16॥

अनुवाद—समस्त भक्त चार मास तक नीलाचलमें महाप्रभुके साथ रहे और उन्होंने बड़े आनन्दसे श्रीजगन्नाथदेवके सभी महोत्सवोंका दर्शन किया॥ 16॥

नन्दोत्सवके दिन गोपवेशमें भक्तोंके साथ
व्रजलीलाका अभिनय :—

कृष्णजन्मयात्रा-दिने नन्द-महोत्सव।
गोपवेश हैला प्रभु लञा भक्त सब॥ 17॥

दधिदुग्ध-भार प्रभु निज-स्कन्धे करि'।
महोत्सव-स्थाने आइला बलि 'हरि' 'हरि'॥ 18॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके अगले दिन नन्द-महोत्सवमें महाप्रभु और सभी भक्तोंने गोपवेश धारण किया। महाप्रभु दूध और दहीसे भरे पात्रोंको अपने कन्धोंपर उठाकर 'हरि' 'हरि' बोलते हुए महोत्सव-स्थलपर आये॥ 17-18॥

अनुभाष्य—*'कृष्णजन्मयात्रा-दिन'*—जन्माष्टमीसे अगले दिन अर्थात् नन्दोत्सवके दिन॥ 17॥

श्रीकानाइ-खुटियाका 'नन्द' और
श्रीजगन्नाथ-माहातिका 'यशोदा'-वेश :—

कानाइ-खुटिया आछेन 'नन्द' वेश धरि'।
जगन्नाथ-माहाति हञाछेन 'व्रजेश्वरी'॥ 19॥

अनुवाद—श्रीकानाइ खुटियाने श्रीनन्द महाराजका वेश धारण किया। और श्रीजगन्नाथ-माहातिने व्रजेश्वरी श्रीयशोदाका वेश धारण किया॥ 19॥

अनुभाष्य—*'खुटिया'*—उड़ीसावासी ब्राह्मणोंकी विशेष उपाधि; *'माहाति'*—उड़ीसावासी कायस्थोंकी विशेष उपाधि॥ 19॥

राजा, मिश्र, भट्टाचार्य और तुलसी-पड़िछाके साथ महाप्रभुका लीलाविनोद :—

आपने प्रतापरुद्र, आर मिश्र-काशी।
सार्वभौम, आर पड़िछा-पात्र तुलसी॥ 20॥

इँहा सबा लञा प्रभु करे नृत्य-रङ्ग।
दधि-दुग्ध हरिद्रा-जले भरे सबार अङ्ग॥ 21॥

अनुवाद—उस समय राजा प्रतापरुद्र भी श्रीकाशीमिश्र, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और तुलसी पड़िछा-पात्रके साथ वहाँ उपस्थित थे। इन सबको अपने साथ लेकर महाप्रभु आनन्दपूर्वक नृत्य कर रहे थे और दही-दूध और हल्दीवाले जलसे सभी सराबोर हो रहे थे॥ 20-21॥

अनुभाष्य—*'पात्र'*—उड़ीसावासी सम्मानित व्यक्तियोंकी उपाधि॥ 20॥

लाठी खेलकर अपने गोपस्वरूपको दिखलानेका अनुरोध :—

अद्वैत कहे,—"सत्य कहि, ना करिह कोप।
लगुड़ फिराइते पार, तबे जानि गोप॥"22॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"मैं सत्य कह रहा हूँ, आप क्रोध मत कीजियेगा। यदि आप लाठी घुमाकर दिखा पायेंगे, तभी मैं मानूँगा कि आप गोप हैं॥"22॥

अनुभाष्य—*'लगुड़'*—लाठी; लाठी-खेलमें गोप अथवा गौड़गण ही सबसे आगे होते हैं॥ 22॥

महाप्रभुके द्वारा लाठीको घुमाकर गोप-लीला-प्रदर्शन :—

तबे लगुड़ लञा प्रभु फिराइते लागिला।
बार बार आकाशे फेलि' लुफिया धरिला॥ 23॥

शिरेर उपरे, सम्मुखे, पृष्ठे, दुइ-पाशे।
पादसन्ध्ये फिराय लगुड़,—देखि' लोक हासे॥ 24॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यकी बात सुनकर महाप्रभु लाठीको घुमाने लगे। वे बार-बार लाठीको आकाशकी ओर फैंकते और उसके नीचे आनेपर उसे पकड़ लेते। महाप्रभु कभी अपने सिरके ऊपर, कभी अपने सामने, कभी अपने पीछे, कभी अपनी दाहिनी ओर तथा कभी अपनी बायीं ओर एवं कभी दोनों पैरोंके बीच हाथोंसे लाठीको घुमाते जा रहे थे। इसे देखकर सभी लोग हँस रहे थे॥ 23-24॥

अनुभाष्य—*'पादसन्ध्ये'*—दोनों पैरोंके बीचके स्थानमें॥ 24॥

उसे देखकर सभीको विस्मय :—

अलात-चक्रेर प्राय लगुड़ फिराय।
देखि' सर्वलोक-चित्ते चमत्कार पाय॥ 25॥

अनुवाद—महाप्रभु लाठीको अलात-चक्रकी भाँति घुमा रहे थे जिसे देखकर सभी लोगोंके हृदयमें बड़ा आश्चर्य हो रहा था॥ 25॥

अनुभाष्य—*'अलातचक्र'*—जलते हुए अङ्गारेको तेजीसे घुमानेपर जैसे वह एक आगके चक्रकी भाँति प्रतीत होता है, महाप्रभुने भी उसी प्रकार बड़ी तेजीसे लाठीको घुमाकर ऐसा प्रदर्शन किया कि देखनेवालोंको चक्रमें सब जगह लाठी दिख रही थी॥ 25॥

श्रीनिताइके द्वारा भी इस प्रकार लाठी घुमाकर अपने गोपस्वरूपका प्रदर्शन :—

एइमत नित्यानन्द फिराय लगुड़।
के बुझिबे ताँहा दुँहार गोपभाव गूढ़॥ 26॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने भी उसी प्रकार लाठीको घुमाकर दिखलाया। वहाँ उन दोनोंके गूढ़ गोपभावको कौन समझ सकता था?॥ 26॥

महाप्रभुके मस्तकपर तुलसी-पड़िछाके द्वारा लाये गये प्रसादी-वस्त्रको बाँधना :—

प्रतापरुद्रेर आज्ञाय पड़िछा-तुलसी।
जगन्नाथेर प्रसाद-वस्त्र एक लञा आसि'॥ 27॥

बहुमूल्य वस्त्र प्रभु मस्तके बान्धिल।
आचार्यादि प्रभुर गणेरे पराइल॥ 28॥

अनुवाद—महाराज प्रतापरुद्रकी आज्ञासे तुलसी पड़िछा श्रीजगन्नाथदेवका एक प्रसादी वस्त्र ले आये। श्रीतुलसी पड़िछाने उस बहुमूल्य वस्त्रके एक खण्डको महाप्रभुके मस्तकपर बाँध दिया। तब उन्होंने श्रीअद्वैताचार्य आदि महाप्रभुके भक्तोंके मस्तकपर भी उस प्रसादी वस्त्रके खण्डोंको बाँधा॥ 27–28॥

श्रीकानाइ और श्रीजगन्नाथका धनादि-वितरण :—

कानाञि-खुटिया, जगन्नाथ,—दुइ जन।
आवेशे बिलाइल, घरे छिल यत धन॥ 29॥

अनुवाद—श्रीकानाइ खुटिया और श्रीजगन्नाथ माहाति जिन्होंने श्रीनन्द और श्रीयशोदाके वेश धारण किये थे, उस आवेशमें उनके घरमें जितना भी धन था, नन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें उन्होंने वह समस्त धन बाँट दिया॥ 29॥

अनुभाष्य—भागवत 10/3/9 संख्या देखें॥ 29॥

महाप्रभुका सन्तोष और माता-पिताको प्रणाम :—

देखि' महाप्रभु बड़ सन्तोष पाइला।
मातापिता-ज्ञाने दुँहे नमस्कार कैला॥ 30॥

परम-आवेशे प्रभु आइला निज-घर।
एइमत लीला करे गौराङ्गसुन्दर॥ 31॥

अनुवाद—उनके इन भावोंको देखकर महाप्रभु बहुत सन्तुष्ट हुए और उन दोनोंको माता-पिता मानकर उन्हें प्रणाम किया। तब उस परम-आवेशमें महाप्रभु अपने वासस्थानपर आ गये। श्रीगौराङ्गसुन्दर इस प्रकार मधुर लीलाएँ करते हैं॥ 30–31॥

विजया-दशमी-तिथिमें भक्तोंको वानर-सेनाके रूपमें सजाकर स्वयं हनुमानकी लीलाका अभिनय :—

विजया-दशमी—लङ्का-विजयेर दिने।
वानर-सैन्य कैला प्रभु लञा भक्तगणे॥ 32॥

हनुमान्-आवेशे प्रभु वृक्षशाखा लञा।
लङ्का-गड़े चड़ि' फेले लङ्का भाङ्गिया॥ 33॥

अनुवाद—भगवान् श्रीरामचन्द्रकी लङ्का-विजयके लिये शुभ यात्रा प्रारम्भके दिन विजया-दशमीपर महाप्रभुने अपने भक्तोंको वानर-सेनाके वेशमें सजाया। हनुमानके आवेशमें स्वयं महाप्रभु वृक्षकी शाखाको लेकर लङ्का नगरीके बाहरकी खाईको पारकर लङ्कामें प्रवेश करके उसे तोड़ने-फोड़ने लगे॥ 32–33॥

अनुभाष्य—*'लङ्का-गड़'*—लङ्का नगरीके चारों ओरकी खाई॥ 33॥

रावण-वध-लीलामें उद्यत महाप्रभु :—

'काँहारे राव्णा' प्रभु कहे क्रोधावेशे।
'जगन्माता हरे पापी, मारिमु सवंशे॥ '34॥

अनुवाद—हनुमानके आवेशमें महाप्रभु क्रोधमें भरकर कहने लगे,—'कहाँ है रावण?' 'उस पापीने जगन्माता सीताका हरण किया है, इसलिये मैं उसे वंशसहित मार डालूँगा॥ '34॥

अनुभाष्य—*'जगन्माता'*—सीतादेवी॥ 34॥

लोगोंका विस्मय और जयध्वनि :—

गोसाञिर आवेश देखि' लोके चमत्कार।
सर्वलोक 'जय' 'जय' करे बारबार॥ 35॥

अनुवाद—महाप्रभुके आवेशको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। सभी लोग बार-बार 'जय-जयकार' करने लगे॥ 35॥

कार्तिक मासके वैष्णव-पर्व आदिका दर्शन :—

एइमत रासयात्रा, आर दीपावली।
उत्थान-द्वादशी-यात्रा देखिला सकलि॥ 36॥

अनुवाद—महाप्रभु और उनके भक्तोंने इसी प्रकार कार्तिक मासके सभी उत्सवों, जैसे—रासलीला, दीपावली, देवोत्थान-द्वादशी आदिमें भाग लिया॥ 36॥

अनुभाष्य—*'दीपावली'*—दीवाली कार्तिक मासकी अमावस्या; *'उत्थान-द्वादशी-यात्रा'*—कार्तिकी शुक्ला-द्वादशी; चातुर्मास-व्रत, समुद्रस्नान, नगर-परिक्रमा आदि यात्री-कृत्य॥ 36॥

श्रीनिताइके साथ एकान्त स्थानमें परामर्श :—

एकदिन महाप्रभु नित्यानन्दे लञा।
दुइ भाइ युक्ति कैल निभृते बसिया॥ 37॥

अनुवाद—एक दिन महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु, दोनों भाइयोंने एकान्तमें बैठकर कुछ परामर्श किया॥ 37॥

बादमें फलसे भक्तोंके द्वारा कारणका अनुमान :—

किवा युक्ति कैल दुँहे, केह नाहि जाने।
फले अनुमान पाछे कैल भक्तगणे॥ 38॥

अनुवाद—उन दोनोंने क्या परामर्श किया, इसे कोई नहीं जान सका, परन्तु बादमें भक्तोंने उसके फलसे उसका अनुमान लगाया॥ 38॥

समस्त गौड़ीय-भक्तोंको प्रतिवर्ष गुण्डिचामें मिलनेके लिये उपदेश देकर विदायी देना :—

तबे महाप्रभु सब भक्ते बोलाइल।
'गौड़देशे याह' सबे विदाय करिल॥ 39॥

सबारे कहिल,—"प्रति वत्सर आसिया।
गुण्डिचा देखिया याबे आमारे मिलिया॥"40॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सभी भक्तोंको बुलवाया और 'गौड़देश जाओ' कहकर सबको विदायी दी। महाप्रभुने सभी भक्तोंसे कहा,—"तुम सब प्रत्येक वर्ष आना और मेरे साथ गुण्डिचा अर्थात् रथ-यात्राके दर्शन करना॥"39-40॥

श्रीअद्वैतको प्रचारका आदेश :—

आचार्येरे आज्ञा दिल करिया सम्मान।
"आ-चण्डाल आदि कृष्णभक्ति दिओ दान॥"41॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यका सम्मान करते हुए उन्हें आज्ञा दी,—"आप ब्राह्मणसे लेकर चण्डाल आदि तक सभीको कृष्णभक्तिका दान करना॥"41॥

श्रीनिताइको प्रचारका आदेश :—

नित्यानन्दे आज्ञा दिल,—"याह गौड़देशे।
अनर्गल प्रेमभक्ति करिह प्रकाशे॥ 42॥

श्रीनिताइके प्रचारके सङ्गी—श्रीअभिराम और श्रीदास-गदाधर :—

रामदास, गदाधर आदि कत जने।
तोमार सहाय लागि' दिलुँ तोमार सने॥ 43॥

अदृश्य रहकर गौड़देशमें श्रीनिताइके नृत्य-दर्शनको अङ्गीकार करना :—

मध्ये मध्ये आमि तोमार निकटे याइब।
अलक्षिते रहि' तोमार नृत्य देखिब॥"44॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको आज्ञा दी,—"आप गौड़देशमें जाकर अधिकारी, अनाधिकारी, जाति, वर्ण, उच्च-नीचका विचार किये बिना सर्वत्र प्रेमभक्तिका दान करना। मैं रामदास, गदाधरादि कुछ भक्तोंको आपकी सहायताके लिये आपके साथ भेज रहा हूँ। बीच-बीचमें मैं भी आपके निकट जाऊँगा और अलक्षित रूपमें रहकर आपके नृत्यको देखूँगा॥"42-44॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'गदाधर'*—आँड़ियादह-वासी गदाधर-दास॥ 43॥

अनुभाष्य—*'नित्यानन्दे आज्ञा'*—प्राकृत-सहजिया लोग रोहिणीनन्दन श्रीबलरामसे अभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभुको अपने समान प्राकृत मनुष्य समझकर ऐसा कहते हैं,—'महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको वंशकी रक्षा (?) करनेके लिये श्रीनीलाचलसे श्रीगौड़देशमें भेजा।' श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंमें अपराधके कारण ही उनमें ऐसी पाखण्डी बुद्धि उदित हुई है। यद्यपि श्रीनित्यानन्द प्रभु समस्त ईश्वरविग्रह-विष्णु-तत्त्वके मूल

स्रोत हैं, तथापि प्राकृत सहजिया आदि लोग उन्हें अपने जैसे एक 'कुणपात्मवादी' (कफ-वात-पित्त—इन तीन धातुओंसे बने इस शरीरको आत्मा माननेवाले) और यमदण्डके भागी जड़ेन्द्रिय-भोगोंमें लिप्त जन्म-मरणके चक्रमें बँधे जीवमात्र मानते हैं। इस अपराधके कारण वे लोग नरक-पथके ही पथिक बनते हैं। ऐसे लोग कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाके लोभी, व्यापारी-स्वभाववाले और स्वार्थपरायण होते हैं। वे अज्ञानी लोगोंको ठगनेके अपने व्यवसायका, दुर्भावनाके कारण 'सर्वत्र निन्दित स्त्रीसङ्ग'की लालसाका और गृहव्रत अथवा गृहमेध-धर्मका अन्याय और अशास्त्रीय विचारसे समर्थन करनेका सुयोग ढूँढ़ते हैं। इसलिये वे अपने उपजाऊ मस्तिष्कमें ऐसे शास्त्रविरुद्ध मतको उत्पन्न करके श्रीनित्यानन्द प्रभुका उदाहरण देकर उनकी ईश्वर-चेष्टाओं अर्थात् लीलाओंकी नकल करते हैं। वास्तवमें, महावदान्य श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीकृष्णप्रेमदाता महाप्रभुके अभिन्न प्रकाश-विग्रह हैं। ब्रह्माजीने वंशवृद्धिके द्वारा सृष्टिकी रक्षाके लिये रजोगुणाश्रित प्रजापतियोंको आदेश दिया था। परन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभुको वैसे इन्द्रिय-तृप्तिरूपी कार्यके सहायकके रूपमें किसी आदेशकी बात किसी प्रामाणिक ग्रन्थमें नहीं लिखी है, और हो भी नहीं सकती, क्योंकि वह किसी प्रकारसे श्रवणके योग्य नहीं है। ऐसी बातोंका प्रचार करके प्राकृत-स्त्रीसङ्गी-सहजिया लोग स्वयं तो परमार्थसे वञ्चित होते ही हैं, और साथ ही सद्-असद्के विवेकसे हीन जगत्की भी वञ्चना करके जगत्में अमङ्गल ही उत्पन्न करते हैं॥ 42॥

श्रीवासाङ्गनमें नित्य नृत्य करनेको अङ्गीकार करना :—

श्रीवास-पण्डिते प्रभु करि' आलिङ्गन।
कण्ठे धरि' कहे ताँरे मधुर वचन॥ 45॥

"तोमार घरे कीर्त्तने आमि नित्य नाचिब।
तुमि देखा पाबे, आर केह ना देखिब॥ 46॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीवास पण्डितको आलिङ्गन करके उनके गलेमें अपनी भुजा डालकर उन्हें मधुर वचन कहे,—"तुम्हारे घरमें होनेवाले कीर्तनमें मैं नित्य नृत्य करूँगा, तुम मुझे नृत्य करते हुए देख पाओगे, अन्य कोई भी नहीं देख पायेगा॥"45-46॥

मातृवत्सल महाप्रभुका माताको सान्त्वना देनेके लिये श्रीवासके हाथमें वस्त्रके टुकड़ेको देना और माताके त्याग हेतु अपराधके लिये क्षमा-प्रार्थना :—

एइ वस्त्र माताके दिह', एइ सब प्रसाद।
दण्डवत् करि' आमार क्षमाइह अपराध॥ 47॥

अनुवाद—(वस्त्रके एक खण्ड और प्रसादको उनके हाथोंमें देते हुए महाप्रभुने आगे कहा—) यह सब माताको दे देना। मेरी ओरसे उन्हें दण्डवत् करके मेरे द्वारा किये गये अपराधके लिये उनसे क्षमा माँगना॥ 47॥

वात्सल्यरस-विरोधी संन्यास-वेष-ग्रहण-हेतु स्वयंको धिक्कार देना :—

ताँर सेवा छाड़ि' आमि करियाछि संन्यास।
धर्म नहे, करि आमि निज-धर्मनाश॥ 48॥

ताँर प्रेम-वश आमि, ताँर सेवा—धर्म।
ताहा छाड़ि' करियाछि वातुलेर कर्म॥ 49॥

वातुल बालकेर माता नाहि लय दोष।
एइ जानि' माता मोरे ना करय रोष॥ 50॥

कि काय संन्यासे मोर, प्रेम निज-धन।
ये-काले संन्यास कैलुँ, छन्न हैल मन॥ 51॥

अनुवाद—उनकी सेवाको छोड़कर मैंने संन्यास ग्रहण किया है, यह कोई धर्मका कार्य नहीं है। ऐसा करके मैंने अपने धर्मका नाश किया है। मैं उनके प्रेमके वशीभूत हूँ और उनकी सेवा करना ही मेरा धर्म है। उस धर्मको छोड़कर मैंने पागल व्यक्ति जैसा कार्य किया है। माता अपने पागल बालकका कोई दोष नहीं लेती। ऐसा जानकर ही माता मेरे प्रति क्रोध नहीं करती। माताका प्रेम जो मेरा वास्तविक धन है, उसका

त्याग करके मुझे संन्यास नहीं लेना चाहिये था। मैंने जिस समय संन्यास ग्रहण किया था, उस समय मेरा मन विक्षिप्त (पागल) हो गया था॥ **48-51**॥

अनुभाष्य—मैं संन्यास लेकर माताके सेवारूपी धर्मका पालन नहीं करके धर्मसे भ्रष्ट हुआ हूँ॥ **48**॥

अमृतानुकणा—श्रीमद्भगवद्गीतामें (18/66) भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं घोषणा की है-

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥"

इसलिये उसके अनुसार सब प्रकारके नश्वर धर्मोंका परित्याग करनेवाले श्रीकृष्णके एकान्त शरणागत किसी संन्यासीके लिये पुनः किसी नश्वर धर्मका पालन न करनेसे जनित पापकी आशङ्का नहीं रह सकती है। धर्मकी संस्थापनाके लिये अवतीर्ण स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने गीतामें अपने कहे गये उक्त वाक्यकी ही परम-सार्थकता सम्पादन करनेके लिये स्वयं ही सभी धर्मोंको त्यागकर और संन्यास ग्रहण करके श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण करनेका उज्ज्वलतम दृष्टान्त स्थापित किया था। इसलिये "ताँहार सेवा छाड़ि' आमि करियाछि संन्यास। धर्म नहे, करि आमि निज धर्म नाश॥" आदि वचनके द्वारा उनकी कोई जड़ासक्तिका आश्रय सूचित नहीं होता है, बल्कि शचीमाताके साथ उनका नित्य सम्बन्ध ही इसके द्वारा ज्ञापित हुआ है।

शचीमाता श्रीगौरसुन्दरकी नित्यसिद्ध पार्षद हैं। वे वात्सल्य-रसकी मूल आश्रय-विग्रह हैं। विषय-विग्रह और आश्रय-विग्रह दोनोंके मध्य परस्पर जो नित्य सेव्य-सेवकका सम्बन्ध है, वह कोई जड़ीय या नश्वर सम्बन्ध नहीं है—उसे ही श्रीगौरसुन्दरने श्रीवास पण्डितको बतलाया है। भक्तके प्रति भगवान्का जो 'निजधर्म' है, उसको उन्होंने स्वयं ही व्यक्त किया है—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" (गीता 4/11)।

शचीमाता वात्सल्य-रसमें श्रीगौरहरिकी नित्य उपासिका हैं, इसलिये उनसे उक्त रसमें सेवा ग्रहण करना ही श्रीगौरसुन्दरका 'निजधर्म' है। "ताँर प्रेम वश आमि, ताँर सेवा—धर्म।" वहाँपर संन्यास-ग्रहण वात्सल्य-रसका विरोधी होनेपर उनका उक्त 'निजधर्म' बाहरी रूपसे नाश हुआ। किन्तु परोक्षरूपसे उन्होंने अपनी अचिन्त्यशक्तिके बलसे शचीमाताके निकट जाकर उनकी प्रेमसेवा ग्रहण करके उस 'निजधर्म'का ही पालन किया। "नित्य याइ देखि मुञि ताँहार चरणे। स्फूर्त्तिज्ञाने तेँहो सत्य नाहि माने॥" (मध्यलीला 15/53)

श्रीगौरसुन्दर यहाँपर अपने विषयविग्रहोचित-भावको व्यक्त करते हुये कह रहे हैं,—"कि काय संन्यासे मोर, प्रेम निज धन।" श्रीकृष्ण सेवामें नियोजित होना ही त्रिदण्डी भिक्षुका एकमात्र व्रत है और श्रीकृष्णप्रेमधन ही उसके उस निवृत्तिमार्गका 'महाफल' है। किन्तु वह प्रेमधन श्रीगौरसुन्दरका एकान्त अपना—"प्रेम निजधन" है। अद्वयज्ञान-परतत्त्व श्रीगौरसुन्दर अपने नित्य प्रेममय परिकरों और धामके साथ स्वयं पूर्ण तत्त्व हैं। इसलिये उक्त प्रेमधनके लिये उनको संन्यास ग्रहण करनेकी कोई अपेक्षा नहीं है। "न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।" (गीता 3/22)

ऐसा होनेपर तब उनके संन्यास ग्रहण करनेका क्या कारण है? इसके उत्तरमें कहते हैं—"ये काले संन्यास कैलु, छन्न हैल मन।" श्रीकृष्ण सम्भोग-विग्रह हैं, श्रीराधा विप्रलम्भ-मूर्ति हैं और श्रीगौररूपी कृष्ण श्रीराधाभावोंके आस्वादनकारी हैं। उन श्रीराधाभावोंका आस्वादन करनेके लिये विप्रलम्भ-महाभावमें जो प्रबल श्रीकृष्ण-अन्वेषणकी चेष्टा और श्रीकृष्णसे इतर विषयोंसे जो तीव्र वैराग्य है, उससे प्रेरित होकर ही श्रीगौरकृष्णने मुख्यतः संन्यास ग्रहण किया। "प्रभु बले,—शुन सार्वभौम महाशय। 'संन्यासी' आमारे नाहि जानिह निश्चय॥ कृष्णेर विरहे मुञि विक्षिप्त हइया। बाहिरे हइलुँ शिखा-सूत्र मुड़ाइया॥" (चैः भाः अः 3/66-67)। अर्थात् यहाँपर उनका वह सुतीव्र विप्रलम्भजनित दिव्योन्माद ही उक्त 'छन्न हैल मन' वाक्यका मुख्य तात्पर्य है और दूसरे प्रकारसे उक्त वाक्यसे पाखण्डी मायावादी, कर्मनिष्ठ, निन्दक आदि जीवोंके उद्धार

करनेकी वासनाके द्वारा उनके आवृत्त-चित्तको ही समझना चाहिये॥ 48-51॥

मायापुरमें बीच-बीचमें शचीमाताके
दर्शनके लिये आगमन स्वीकार करना :—

नीलाचले आछि मुञि ताँहार आज्ञाते।
मध्ये मध्ये आसिमु, ताँर चरण देखिते॥ 52॥

अनुवाद—मैं नीलाचलमें उन्हींकी आज्ञासे ही वास कर रहा हूँ। मैं बीच-बीचमें उनके चरणोंके दर्शन करनेके लिये आऊँगा॥ 52॥

पहलेसे ही नित्य शचीमाताके साथ साक्षात्कार, किन्तु
महाप्रभुकी मायाके प्रभावसे शचीमाताका संशय :—

नित्य याइ' देखि मुञि ताँहार चरणे।
स्फूर्त्ति-ज्ञाने तेँहो ताहा सत्य नाहि माने॥ 53॥

अनुवाद—वास्तवमें तो मैं प्रतिदिन जाकर उनके चरणोंका दर्शन करता हूँ, किन्तु वे इसे स्फूर्ति समझनेके कारण उसे सत्य नहीं मानती॥ 53॥

शचीमाताके विश्वासको उत्पन्न करनेके लिये
एक दिनकी घटनाका वर्णन :—

एकदिन शाल्यन्न, व्यञ्जन पाँच-सात।
शाक, मोचा-घण्ट, भृष्ट-पटोल-निम्बपात॥ 54॥

लेम्बु-आदाखण्ड, दधि, दुग्ध, खण्डसार।
शालग्रामे समर्पिलेन बहु उपहार॥ 55॥

अनुवाद—एक दिन माताने शाल्यन्न (विशेष प्रकारके चावल), पाँच-सात प्रकारके व्यञ्जन, साग, केलेके फूलोंकी बनी सब्जी, नीमकी पत्तियोंके साथ बने परमल, नीबूँ और अदरकके टुकड़े, दही, दूध तथा खण्डसार आदि बहुतसे नैवेद्य शालग्रामको समर्पित किये॥ 54-55॥

अनुभाष्य—*'शाल्यन्न'*—शालि-धानके चावलका अन्न; *'भृष्ट-पटोल-निम्बपात'*—नीमके पत्तोंके साथ परमलको मिलाकर बनायी गयी सूखी भाजी॥ 54॥

प्रसाद लञा कोले करेन क्रन्दन।
'निमाइर प्रिय मोर—एसब व्यञ्जन॥ 56॥

निमाइ नाहिक एथा, के करे भोजन।'
मोर ध्याने अश्रुजले भरिल नयन॥ 57॥

शीघ्र याइ' मुञि सब करिनु भक्षण।
शून्यपात्र देखि' अश्रु करिया मार्जन॥ 58॥

अनुवाद—प्रसादको अपनी गोदमें लेकर माता रोते हुए सोचने लगीं,—'ये सब व्यञ्जन मेरे निमाइको बहुत प्रिय हैं, किन्तु निमाइ यहाँपर नहीं है, तो कौन इन्हें खायेगा?' इस प्रकार मेरा ध्यान करते हुए उनके नेत्र आँसुओंसे भर गये। मैंने शीघ्रतासे वहाँ जाकर वे सब व्यञ्जन खा लिये। माताने पात्रको खाली देखकर अपने आँसुओंको पौंछा॥ 56-58॥

'के अन्न-व्यञ्जन खाइल, शून्य केने पात?
बालगोपाल किवा खाइल सब भात?॥ 59॥

किवा मोर कथाय मने भ्रम हञा गेल!
किवा कोन जन्तु आसि' सकल खाइल?॥ 60॥

किवा आमि अन्न पात्रे भ्रमे ना बाड़िल।'
एत चिन्ति' पाक-पात्र याञा देखिल॥ 61॥

अनुवाद—'अरे! किसने चावल और ये सब व्यञ्जन खाये, पात्र खाली क्यों है? क्या बालगोपालने सब चावल खा लिये? या फिर मेरी बातोंसे मेरे ही मनमें भ्रम उत्पन्न हो गया है। या फिर किसी जन्तुने आकर यह सब खा लिया? या फिर मैंने इस पात्रमें भ्रमवशतः कुछ रखा ही नहीं था।' यह सोचकर माता रसोईमें भोजन बनानेवाले बर्तनोंको जाकर देखने लगीं॥ 59-61॥

अन्नव्यञ्जनपूर्ण देखि' सकल भाजने।
देखिया संशय हैल किछु चमत्कार मने॥ 62॥

अनुवाद—चावल और अन्यान्य सभी व्यञ्जनोंसे

भरे बर्तनोंको देखकर माताके मनमें कुछ संशय हुआ तथा साथ ही मनमें कुछ आश्चर्य भी हुआ॥ 62॥

अनुभाष्य— *'भाजन'*—आधार, पात्र॥ 62॥

ईशाने बोलाञा पुनः स्थान लेपाइल।
पुनरपि गोपालके अन्न समर्पिल॥ 63॥

अनुवाद—माताने ईशानको बुलाकर पुनः उस स्थानको साफ करवाया और उन्होंने पुनः गोपालको नैवेद्य समर्पित किया॥ 63॥

अनुभाष्य— *'ईशान'*—आदिलीला 10/110 संख्या देखें॥ 63॥

एइमत यबे करेन उत्तम रन्धन।
मोरे खाओयाइते करे उत्कण्ठाय रोदन॥ 64॥

अनुवाद—इस प्रकार माता जब भी उत्तम-उत्तम व्यञ्जन बनाती हैं, तभी मुझे खिलानेकी उत्कण्ठामें रोती हैं॥ 64॥

ताँर प्रेमे आनि' आमाय कराय भोजने।
अन्तरे सुख माने तेँहो, बाह्ये नाहि माने॥ 65॥

अनुवाद—उनका प्रेम मुझे वहाँ ले जाकर मुझे भोजन कराता है। माता अपने मनमें तो सुखी होती हैं, किन्तु बाहरसे मेरे आनेको नहीं मानतीं॥ 65॥

पिछली विजया-दशमीमें भी इसी प्रकार माताके द्वारा बनाये गये अन्नका भोजन :—

एइ विजया-दशमीते हैल एइ रीति।
ताँहाके पुछिया ताँर कराइह प्रीति॥"66॥

अनुवाद—पिछली विजया-दशमीके दिन भी ऐसा ही हुआ था। मातासे इस विषयमें पूछकर उन्हें इसका विश्वास दिलाना॥"66॥

भक्तोंके विच्छेदसे महाप्रभुकी विह्वलता :—

एतेक कहिते प्रभु विह्वल हइला।
लोक विदाय करिते प्रभु धैर्य धरिला॥ 67॥

अनुवाद—इतना कहते-कहते महाप्रभु विह्वल हो गये, किन्तु भक्तोंको विदायी देनेके लिये महाप्रभुने धैर्य धारण कर लिया॥ 67॥

प्रेमवशतः महाप्रभुके द्वारा श्रीराघव-पण्डितकी शुद्धकृष्णसेवा-प्रचेष्टाका वर्णन :—

राघव-पण्डिते कहेन वचन सरस।
"तोमार निष्ठा-प्रेमे आमि हइ' तोमार वश॥ 68॥

इँहार कृष्णसेवार कथा शुन, सर्वजन।
परम पवित्र सेवा अति सर्वोत्तम॥ 69॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीराघव-पण्डितसे ये मधुर वचन कहे,—"तुम्हारी निष्ठा और तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हारे वशमें हूँ। (तब महाप्रभु उपस्थित भक्तोंसे कहने लगे—) सभी लोग इनके द्वारा की जानेवाली श्रीकृष्ण-सेवाके विषयमें सुनो। इनके द्वारा की जानेवाली सेवा परम पवित्र और अति सर्वोत्तम है॥ 68-69॥

श्रीराघवके द्वारा महाप्रभुको अपूर्व नारियलका भोग प्रदान करनेका वैशिष्ट्य :—

आर द्रव्य रहु—शुन नारिकेलेर कथा।
पाँच गण्डा करि' नारिकेल बिकाय तथा॥ 70॥

अनुवाद—अन्य द्रव्योंकी बात तो छोड़ दो, नारियल भेंट करनेकी ही बात सुनो। इनके गाँव पाणिहाटीमें नारियल 'पाँच गण्डे' (एक पैसे)का मिलता है॥ 70॥

वाटिते कत शत वृक्षे लक्ष लक्ष फल।
तथापि शुनेन, यथा मिष्ट नारिकेल॥ 71॥

एक एक फलेर मूल्य दिया चारिचारि पण।
दशक्रोश हैते आनाय करिया यतन॥ 72॥

अनुवाद—यद्यपि इनके अपने घरमें नारियलके सैंकड़ों वृक्ष हैं जिनपर लाखों फल लगे रहते हैं, तथापि ये जाननेके लिये उत्कण्ठित रहते हैं कि मीठे नारियल कहाँ मिलेंगे? तब ये एक-एक फलका चार-चार पण (अर्थात् सोलह पैसे) मूल्य देकर दस कोसकी (तीस

किलोमीटरकी) दूरीसे भी उन फलोंको बहुत ही यत्नपूर्वक मँगवाते हैं॥ 71–72॥

प्रतिदिन पाँच-सात फल छोलाञा।
सुशीतल करिया राखे जले डुबाइञा॥ 73॥

भोगेर समय पुनः छुलि' संस्करि'।
कृष्णे समर्पण करे, मुख छिद्र करि'॥ 74॥

कृष्ण सेइ नारिकेल-जल पान करि'।
कभु शून्य फल राखेन, कभु जल भरि'॥ 75॥

जलशून्य फल देखि' पण्डित—हरषित।
फल भाङ्गि' शस्ये करे शतपात्र पूरित॥ 76॥

शस्य समर्पण करि' बाहिरे धेयान।
शस्य खाञा कृष्ण करे शून्य भाजन॥ 77॥

कभु शस्य खाञा कृष्ण पुनः पात्र भरे शाँसे।
श्रद्धा बाड़े पण्डितेर, प्रेमसिन्धु भासे॥ 78॥

अनुवाद—ये प्रतिदिन पाँच-सात नारियल छीलकर उन्हें सुशीतल करनेके लिये जलमें डुबो करके रखते हैं। भोग लगानेके समय ये पुनः नारियलको छीलकर और साफ करके उसके मुखमें छेद करके उसे श्रीकृष्णको समर्पित करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उस नारियलके जलका पान करके कभी तो फलको खाली कर देते हैं और कभी उसे पुनः जलसे भर देते हैं। खाली नारियल देख ये बहुत प्रसन्न होते हैं कि श्रीकृष्णने नारियलके जलको ग्रहण कर लिया है। तब ये नारियलको तोड़कर उसकी मलाईको अनेक पात्रोंमें भरकर उसे श्रीकृष्णको समर्पित करके बाहर बैठकर ध्यान करते हैं। इस बीच श्रीकृष्ण मलाईको खाकर उस पात्रको खाली कर देते हैं। कभी-कभी श्रीकृष्ण मलाई खाकर पुनः उस पात्रको मलाईसे भर देते हैं। यह सब देखकर इनकी श्रद्धा बढ़ जाती है और ये प्रेम-सिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं॥ 73–78॥

एक दिनकी घटनाका वर्णन :—

एक दिन फलदश संस्कार करिया।
भोग लागाइते सेवक आइल लञा॥ 79॥

अवसर नाहि हय, विलम्ब हइल।
फल-पात्र-हाते सेवक द्वारे त' रहिल॥ 80॥

द्वारेर उपर भिते तेँहो हात दिल।
सेइ हाते फल छुँइल, पण्डित देखिल॥ 81॥

अनुवाद—एक दिन इनका सेवक दस नारियलोंको छीलकर भोग लगानेके लिये लेकर आया। उस दिन भोग लगानेके लिये बहुत कम समय बचा था, क्योंकि किसी कारणसे इन्हें आनेमें विलम्ब हो गया था। और इनकी प्रतीक्षामें सेवक अपने हाथमें नारियलके पात्रको लेकर द्वारपर ही खड़ा रहा। तभी इन्होंने देखा कि सेवकने द्वारके ऊपरकी दीवारको अपने हाथोंसे छुआ और उसी हाथसे फिर नारियलको छू लिया॥ 79–81॥

अनुभाष्य—*'उपर-भिते'*—ऊपरकी दीवारपर; *'तेँहो'*—श्रीराघव पण्डितका सेवक॥ 81॥

पण्डित कहे,—'द्वारे लोक करे गतायाते।
तार पदधूलि उड़ि' लागे उपर-भिते॥ 82॥

सेइ भिते हात दिया फल परशिला।
कृष्ण-योग्य नहे, फल अपवित्र हैला॥'83॥

अनुवाद—इन राघव पण्डितने उस सेवकसे कहा,—'द्वारसे लोग आवागमन करते हैं। उनके पैरोंकी धूलि उड़कर ऊपरवाली दीवारपर भी लग जाती है। उसी दीवारपर हाथ लगाकर तुमने नारियलको स्पर्श किया है। इसी कारण ये फल श्रीकृष्णको समर्पित करनेके योग्य नहीं हैं, ये अपवित्र हो गये हैं॥'82–83॥

अनुभाष्य—श्रीराघव पण्डित साधारण 'शुचि-वायुरोग'-ग्रस्त अर्थात् सफाईके लिये पागल मायाबद्ध व्यक्ति नहीं थे। अथवा प्राकृत कनिष्ठ भक्तकी भाँति द्वैतबुद्धिवाले होकर 'भौमे इज्यधी' अर्थात् जड़में चिद्

वस्तुका आरोप करनेवाले मनोधर्मी नहीं थे। वे नित्यसिद्ध श्रीकृष्ण सेवक थे। उनमें जड़ीय कामकी गन्ध भी नहीं थी। वे अप्राकृत-सेवाके भावमें निमग्न रहकर सब समय अपनी आराध्य वस्तुकी सेवा करते थे। पक्षान्तरमें, अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये कर्ममिश्रा-बिद्धा भक्तिका आश्रय करनेवाले कनिष्ठ भक्तोंमें अप्राकृत-सेवा-बुद्धि नहीं होती। इसलिये केवल श्रीराघव पण्डितके बाह्य आचरणका अनुकरण करके लौकिक कृत्रिम पवित्रता-अपवित्रताका विचार करनेसे ही वे शुद्धकृष्णभक्त नहीं हो सकते। उनका ऐसा आचरण उनकी श्रीकृष्णप्रीतिवाञ्छाका परिचय नहीं देता। (अन्त्यलीला 4/174, 176 संख्या)में—

"भद्राभद्र-वस्तुज्ञान नाहि 'अप्राकृते'॥ 174ख॥
'द्वैते' भद्राभद्र-ज्ञान, सब—'मनोधर्म'।
'एइ भाल, एइ मन्द',—एइ सब 'भ्रम'॥"176॥

[अर्थात् "'अप्राकृत' वस्तुमें भद्र और अभद्र अर्थात् अच्छे और बुरेका कोई विचार होना उचित नहीं है। 'द्वैत' अर्थात् प्राकृत वस्तुमें भद्र और अभद्रका ज्ञान करना तो 'मनका धर्म' है। 'यह अच्छा है, यह बुरा है'—यह सब तो भ्रम है।"]

भागवत 11/28/4 श्लोक देखें॥ **81-83**॥

जगत्में श्रीराघवकी अपूर्व पवित्र श्रीकृष्णसेवा :—

एत बलि' फल फेले प्राचीर लङ्घिया।
ऐछे पवित्र प्रेम-सेवा जगत् जिनिया॥ 84॥

तबे आर नारिकेल संस्कार कराइल।
परम पवित्र करि' भोग लागाइल॥ 85॥

एइमत कला, आम्र, नारिकेल, काँठाल।
याहा याहा दूर-ग्रामे शुनियाछे भाल॥ 86॥

बहुमूल्य दिया आनि' करिया यतन।
पवित्र संस्कार करि' करे निवेदन॥ 87॥

एइमत व्यञ्जनेर शाक, मूल, फल।
एइमत चिड़ा, हुड़ुम, सन्देश सकल॥ 88॥

एइमत पिठा-पाना, क्षीर-ओदन।
परम पवित्र, आर करे सर्वोत्तम॥ 89॥

काशम्दि, आचार आदि अनेक प्रकार।
गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार, सर्वद्रव्य-सार॥ 90॥

एइमत प्रेमेर सेवा करे अनुपम।
याहा देखि' सर्वलोकेर जुड़ाय नयन॥"91॥

अनुवाद—यह कहकर इन्होंने उन नारियलोंको दीवारके दूसरी ओर फैंक दिया। इनकी ऐसी पवित्र प्रेम-सेवा जगत्को जीतनेवाली है। तब इन्होंने पुनः अन्य नारियलोंको सावधानी और पवित्रतासे छिलवाया और उनका भोग लगाया। इसी प्रकार केले, आम, सन्तरे, कटहल और अन्यान्य जिन-जिन पदार्थोंके विषयमें सुनते हैं कि कहीं दूर ग्राममें भी बहुत अच्छे मिल रहे हैं, तो ये यत्न करके बहुत अधिक मूल्य देकर भी उन्हें मँगवाते हैं और अच्छेसे पवित्र करके छीलकर उन्हें भगवान्को निवेदन करते हैं। इसी प्रकार शाक, मूल, फल आदि, चिड़वा, सख्त मूड़ि, अनेक प्रकारके सन्देश, पीठा-पाना और गाढ़ी खीर आदि व्यञ्जनोंको परम-पवित्रतासे अति उत्तम और स्वादिष्ट बनाते हैं। इसी प्रकार ही कासुन्दी (सरसोंसे बनी चटनी) और अनेक प्रकारके आचार आदि भी श्रीकृष्णको निवेदित करते हैं। ये सर्वश्रेष्ठ गुणवत्ताके इत्रादि सुगन्धित द्रव्य, वस्त्र और अलङ्कारादि भी निवेदन करते हैं। इस प्रकार राघव पण्डित प्रेमपूर्वक अनुपम सेवा करते हैं, जिसे देखकर सभी लोगोंको बहुत आनन्द होता है॥"**84-91**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'हुड़ुम'*—एक प्रकारका धान, इसकी खील उड़ीसामें विशेषरूपसे प्रचलित है (पूर्वी-बङ्गालमें 'मुड़ि'को 'हुड़ुम' कहते हैं)। *'काशम्दि'*—कासुन्दि (सरसोंके दानोंसे बनी तीखी चटनी)॥ **88-90**॥

अनुभाष्य—*'क्षीर-ओदन'*—दूधमें पकाये चावलकी खीर॥ **89**॥

महाप्रभुके द्वारा सभी भक्तोंका यथायोग्य अभिनन्दन :—

एत बलि' राघवेरे कैल आलिङ्गने।
एइमत सम्मानिल सर्व भक्तगणे॥ 92॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभुने श्रीराघव पण्डितका आलिङ्गन किया। इसी प्रकार उन्होंने सभी भक्तोंको सम्मानित किया॥ 92॥

श्रीशिवानन्दको खर्चीले श्रीवासुदेव-दत्तके धनका रक्षक बननेका आदेश :—

शिवानन्द सेने कहे करिया सम्मान।
"वासुदेव-दत्तेर तुमि करिह समाधान॥ 93॥

परम उदार इँहो, ये दिन ये आइसे।
सेइ दिने व्यय करे, नाहि राखे शेषे॥ 94॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीशिवानन्द सेनको सम्मान देते हुए कहा,—"आप वासुदेव-दत्तका ध्यान रखना। ये परम उदार हैं। जिस दिन इनके पास जितना भी धन आता है, ये उसे उसी दिन ही खर्च कर देते हैं, अपने पास कुछ भी बचाकर नहीं रखते॥ 93-94॥

अनुभाष्य—श्रीशिवानन्द सेन और श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर—दोनों ही उस समय कुमारहट्ट अथवा हालिसहर और काँचड़ापाड़ामें वास करते थे॥ 93॥

गृहस्थ वैष्णवोंके लिये लौकिक-कर्त्तव्यका उपदेश :—

'गृहस्थ' हयेन इँहो, चाहिये सञ्चय।
सञ्चय ना कैले कुटुम्ब-भरण नाहि हय॥ 95॥

इहार घरेर आय-व्यय, सब—तोमार स्थाने।
'सरखेल' हञा तुमि करिह समाधाने॥ 96॥

अनुवाद—वासुदेव दत्त 'गृहस्थ' हैं, इसलिये उन्हें कुछ-न-कुछ सञ्चय करनेकी आवश्यकता है। सञ्चय किये बिना कुटुम्बका भरण-पोषण नहीं होता। इनके घरके आय-व्यय आदिका सब कुछ आप इनके 'सरखेल'के रूपमें ध्यान रखना॥ 95-96॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सरखेल'*—तत्त्वावधायक (हिसाब-किताब रखनेवाले)॥ 96॥

प्रत्येक वर्ष मार्गमें कर-संग्रहकर्त्ताका समाधान करके सभी भक्तोंको पुरीमें लानेकी आज्ञा :—

प्रतिवर्षे आमार सब भक्तगण लञा।
गुण्डिचाय आसिबे सबाय पालन करिया॥"97॥

अनुवाद—आप प्रत्येक वर्ष मेरे सब भक्तोंको अपने साथ लेकर उनका पालन-पोषण करते हुए रथयात्राके समय नीलाचलमें आना॥"97॥

श्रीसत्यराज और श्रीरामानन्दको प्रतिवर्ष रेशमी डोरी लानेका आदेश :—

कुलीनग्रामीरे कहे सम्मान करिया।
"प्रत्यब्द आसिबे यात्राय पट्टडोरी लञा॥ 98॥

अनुवाद—महाप्रभुने कुलीनग्रामवासियोंको सम्मान देते हुए कहा,—"आप लोग प्रत्येक वर्ष रथयात्रामें मजबूत रेशमी-डोरियाँ (जिनसे बाँधकर श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्राको उठाकर लाया जाता है) लेकर आना॥ 98॥

श्रीमुखसे मालाधर-वसु-कृत 'श्रीकृष्णविजय' की महिमाका वर्णन :—

गुणराज-खाँन कैल श्रीकृष्णविजय।
ताँहा एकवाक्य ताँर आछे प्रेममय॥ 99॥

अनुवाद—इन गुणराज खाँनने श्रीकृष्णविजय नामक ग्रन्थकी रचना की है। उस ग्रन्थमें श्रीकृष्णके प्रति उनके हृदयके प्रेमको प्रकाशित करनेवाला एक वाक्य है॥ 99॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'श्रीकृष्णविजय'*—एक विशेष ग्रन्थ। बहुतसे लोगोंने विवेचना की है कि यह ग्रन्थ ही बङ्गला-भाषाका सर्वप्रथम पद्य-काव्य-ग्रन्थ है॥ 99॥

अनुभाष्य—"आदिकवि गुणराज खाँन महाशय तेरह सौ पिचानवें (1395) शकाब्दमें इस ग्रन्थकी रचना

करनेमें नियुक्त हुए और चौदह सौ दो (1402) शकाब्दमें ग्रन्थको समाप्त किया।"

"श्रीकृष्णविजय-ग्रन्थकी रचना अति सरल है, यहाँ तक कि, बङ्गालकी अर्द्धशिक्षित महिलाएँ और साधारण वर्णज्ञान जाननेवाले निम्नश्रेणीके व्यक्ति भी इस ग्रन्थको अनायास ही पढ़ और समझ सकते हैं। इस ग्रन्थकी भाषा अलंकृत नहीं है, इसके पद्य अनेक स्थानोंपर अधिक मधुर भी नहीं हैं। चौदह अक्षरोंवाले पयारमें अनेक स्थानोंपर सोलह-सत्तरह अक्षर अथवा बारह-तेरह अक्षर दिखलायी देते हैं। इसके अनेक शब्द ही उस कालमें व्यवहारमें आनेवाले शब्द हैं। उन सब शब्दोंके अर्थ केवल राढ़देशवासी लोग ही समझ सकते हैं। इस पुस्तकका अभाव रहनेपर किसी बङ्गाली पुस्तकालयको 'सम्पूर्ण' नहीं कहा जा सकता।"

"यह ग्रन्थ पारमार्थिक-लोगोंके लिये परम आदरणीय है। वैष्णवोंमें अग्रणी पूज्यपाद श्रीगुणराज-खाँन महाशयने सर्वशास्त्र-शिरोमणि श्रीमद्भागवत-ग्रन्थके दसवें और ग्यारहवें स्कन्धका साधारण व्यक्तियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य अनुवाद करके इस ग्रन्थकी रचना की है। इस कारण वैष्णव-जगत्में यह ग्रन्थ सर्वत्र पूजनीय है। जिस ग्रन्थको पढ़कर महाप्रभुने इतनी प्रशंसा की है, वह ग्रन्थ गौड़ीय-वैष्णव-समाजमें कितना आदर प्राप्त करेगा, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये यह काव्य बङ्गालवासियोंके लिये बहुत ही आदरणीय धन है; विशेषतः कोई-कोई कहते हैं,—यह ग्रन्थ ही बङ्गलाभाषाका सर्वप्रथम काव्य है।"

"श्रीश्रीमहाप्रभुके आविर्भावसे दो वर्ष पूर्व 1405 शकाब्दमें श्रीदेवानन्द वसुके हाथसे यह ग्रन्थ लिखा गया है।" (श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर-लिखित 'श्रीकृष्ण-विजय'-ग्रन्थकी 'प्रस्तावना'से उद्धृत)।

"बङ्गालके सम्राट आदिशूर कान्यकुब्जसे पाँच सु-ब्राह्मणोंके साथ जिन पाँच सु-कायस्थोंको लाये थे, उनमेंसे दशरथ वसु एक थे; उन्हींके ही वंशमें तेरहवीं पीढ़ीमें श्रीगुणराज-खाँन उत्पन्न हुए। इनका वास्तविक नाम—श्रीमालाधर वसु है, 'गुणराज खाँन' इन्हें गौड़ीय सम्राटके द्वारा प्रदान की गयी उपाधि है। दशरथ वसुकी वंश परम्परा इस प्रकार है:—

1) दशरथ वसु, 2) कुशल, 3) शुभशङ्कर, 4) हंस, 5) शक्तिराम (बागाण्डा), **मुक्तिराम** (माइनगर) और अलङ्कार (बङ्गज);

5) **मुक्तिराम**, 6) दामोदर, 7) अनन्तराम, 8) **गुणीनायक** और वीणानायक;

8) **गुणीनायक**, 9) माधव, 10) लक्ष्मीनाथ, चक्रपाणि, उदयचाँद, लौह, तौहु, **श्रीपति** और अच्युतानन्द;

10) **श्रीपति**, 11) **यज्ञेश्वर**, त्रिलोचन, वटेश्वर, प्रजापति, ईशान, सागर और कृपाराम;

11) **यज्ञेश्वर**, 12) **भगीरथ**, कामेश्वर, सदानन्द और वशिष्ठ;

12) **भगीरथ**, 13) मालाधर वसु—(उपाधि—गुणराज खाँन)।

गुणराज खाँनके चौदह पुत्र थे, उनमेंसे दूसरे लक्ष्मीनाथवसुकी उपाधि—श्रीसत्यराज खाँन है; उन्हींके पुत्र—श्रीरामानन्द वसु हैं, इसलिये श्रीरामानन्द वसु—पन्द्रहवीं पीढ़ीके हैं।

श्रीमालाधर वसु महाशय अतिप्रसिद्ध धनशाली व्यक्ति थे। उनके गढ़ और देवालय (मन्दिर) आदिका दर्शन करनेसे लगता है, उनकी राजश्री (अर्थात् राज्यकी धन-सम्पत्ति) अत्यन्त समृद्धिशाली थी। गुणराज खाँन महाशयके एक सामाजिक साहसका परिचय इस कार्यसे मिलता है। उन्होंने बलाल सेनसे कुल परम्पराके माध्यमसे चली आ रही प्रथाको सारहीन जानकर अपने पुत्र पुरन्दर खाँनके भी अनुरोधको अस्वीकार करके कान्यकुब्जसे आये श्रीपुरुषोत्तम दत्त-वंशीय तेरहवीं पीढ़ीके श्रीपति दत्त महाशयकी कन्याके साथ अपने ज्येष्ठ पुत्रके विवाहका कार्य सम्पन्न किया था।" (1292 बङ्ग-वर्षके (1886 ई.) शीतकालमें श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा श्रीकुलीनग्राम-पाटसे संगृहीत)॥ **99**॥

ग्रन्थके एक वाक्यसे महाप्रभुका उनके वंशके हाथों स्वयंको बेचना :—

'नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ।'
एइ वाक्ये बिकाइनु ताँर वंशेर हात॥ 100॥

अनुवाद—'नन्दनन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ हैं'—गुणराज खाँनके इस वाक्यके कारण मैं उनके वंशके हाथोंमें बिक गया हूँ॥ 100॥

अनुभाष्य—मूलपद्य यह है—"एकभावे वन्द हरि योड़ करि' हात। नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ॥"100॥

श्रीमुखसे कुलीन-ग्रामके माहात्म्यका वर्णन :—

तोमार कि कथा, तोमार ग्रामेर कुक्कुर।
सेह मोर प्रिय, अन्यजन रहु दूर॥"101॥

अनुवाद—आप लोगोंकी तो बात ही क्या, आपके ग्रामका कुत्ता भी मेरा प्रिय है। तब अन्य लोगोंके बारेमें क्या कहना है॥"101॥

दोनोंकी गृहस्थ-वैष्णवके कर्त्तव्य और साध्यकी जिज्ञासा :—

तबे रामानन्द, आर सत्यराज खाँन।
प्रभुर चरणे किछु कैल निवेदन॥ 102॥
"गृहस्थ विषयी आमि, कि मोर साधने।
श्रीमुखे करेन आज्ञा, निवेदि चरणे॥"103॥

अनुवाद—तब श्रीरामानन्द और श्रीसत्यराज खाँनने महाप्रभुके चरणोंमें कुछ निवेदन किया,—"हम गृहस्थ हैं और विषयोंमें लिप्त हैं, इसलिये हम नहीं जानते कि परमार्थके लिये हमें क्या साधन करना चाहिये। हम आपके श्रीचरणोंमें निवेदन करते हैं कि इस विषयमें आप हमें श्रीमुखसे निर्देश प्रदान कीजिये॥"102-103॥

महाप्रभुका उत्तर :—

प्रभु कहेन,—''कृष्णसेवा', 'वैष्णव-सेवन'।
निरन्तर कर कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन॥'104॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—'निरन्तर श्रीकृष्णनामका सङ्कीर्तन करो और जब भी सम्भव हो 'श्रीकृष्णसेवा', और 'वैष्णव-सेवा' करो॥'104॥

श्रीसत्यराजकी वैष्णवको पहचाननेके उपायकी जिज्ञासा :—

सत्यराज बले,—"वैष्णव चिनिब केमने?
के वैष्णव, कह ताँर सामान्य लक्षणे॥"105॥

अनुवाद—श्रीसत्यराज खाँनने कहा,—"हम वैष्णवको कैसे पहचानेंगे? कौन वैष्णव है, कृपया उसके सामान्य लक्षण बतलाइये॥"105॥

महाप्रभुके द्वारा 'कनिष्ठ-वैष्णव'के लक्षणका निर्देश :—

प्रभु कहे,—"याँर मुखे शुनि एकबार।
कृष्णनाम, सेइ पूज्य,—श्रेष्ठ सबाकार॥ 106॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"जिसके मुखसे एकबार भी श्रीकृष्णनाम सुनायी दे, वही पूज्य है और सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति है॥ 106॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरामानन्द वसु और उनके पिता श्रीसत्यराज खाँन,—ये बङ्गदेशके उज्ज्वल कायस्थ-वसुवंशमें उत्पन्न गृहस्थ-वैष्णव थे। इन्होंने महाप्रभुसे जिज्ञासा की,—'गृहस्थ वैष्णवोंके लिये साधनका कर्त्तव्य क्या है?' महाप्रभुने उत्तर दिया,—'कृष्णसेवा, वैष्णवसेवा एवं निरन्तर कृष्णनाम कीर्तन ही गृहस्थ वैष्णवोंका एकमात्र कार्य है।' इसपर श्रीसत्यराजने प्रश्न किया,—'श्रीकृष्णसेवा और श्रीकृष्णनाम-कीर्तनको तो सहजमें ही समझा जा सकता है, किन्तु वैष्णवको पहचान नहीं पानेसे वैष्णव-सेवनरूपी कार्य बहुत ही कठिन होता है। इसलिये हे प्रभो, वैष्णव कौन है और उसके सामान्य (साधारण) लक्षण क्या हैं?' महाप्रभुने उत्तर दिया,—'जिसके मुखसे एकबार कृष्णनाम सुना जाता है, वही सबसे श्रेष्ठ और पूज्य-वैष्णव है॥'102-106॥

अनुभाष्य—एकमात्र श्रीकृष्णनामसे सर्वसिद्धि होती है,—ऐसे श्रद्धावान् व्यक्तिको 'वैष्णव' कहकर जानना; क्योंकि ऐसी श्रद्धा ही वैष्णव होनेकी प्रारम्भिक योग्यता

प्रदान करती है। किन्तु ऐसा होनेपर भी श्रीकृष्णनाममें उसकी कोमल श्रद्धाके प्रकट होनेके कारण वह निरन्तर नाम ग्रहण नहीं करता। श्रीरूपगोस्वामिप्रभुने स्व-लिखित 'उपदेशामृत'में कहा है,—"कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत दीक्षास्ति चेत्"—जो श्रीनामको अप्राकृत चिन्तामणि, कृष्णचैतन्य-रसविग्रह, पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त और नाम-नामीको अभेद जानकर परम श्रद्धाके साथ अर्चन करते हैं, परन्तु अपनी बद्धावस्थाके कारण भक्तिसिद्धान्तविचार-रहित होकर भक्तिके उपादान (अङ्गों)को और शुद्धभक्तको सम्पूर्ण 'अप्राकृत'के रूपमें समझ नहीं पाते, वे भी शुद्धभक्त और श्रीगुरुकी सेवासे एवं उनके मुखसे शुद्धभक्तिसिद्धान्तके श्रवणके फलसे क्रमशः सब प्रकारके पापोंके नष्ट होनेपर अप्राकृत अनुभूति अथवा दिव्य-सम्बन्धज्ञान प्राप्त करते हैं। (भागवत 11/2/47)—

"अर्च्चायामेव हरये यः पूजां श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥"

[अर्थात् "जो लौकिक और पारिवारिक प्रथाके अनुसार परम्परागत श्रद्धाके साथ अर्चा-मूर्तिमें श्रीहरिकी पूजा करते हैं, परन्तु शास्त्र-अनुशीलनके द्वारा शुद्धभक्तितत्त्वको नहीं जाननेके कारण हरिभक्तोंकी पूजा नहीं करते, वे—'प्राकृत भक्त' हैं अर्थात् उन्होंने अभी भक्तिपर्व आरम्भ मात्र ही किया है। उन्हें 'भक्तप्राय' अथवा 'वैष्णवाभास' शब्दोंके द्वारा सम्बोधित किया जाता है।"] श्रीसनातन-शिक्षामें (मध्यलीला 22/64, 67, 68 संख्यामें)—

"श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।
उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, श्रद्धा-अनुसारि॥64॥
याहार कोमल श्रद्धा, से 'कनिष्ठ' जन।
क्रमे-क्रमे तेँह भक्त हइबे उत्तम॥67॥
रतिप्रेम-तारतम्ये भक्ति-तरतम।"68क।

[अर्थात् "श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं। श्रद्धाके अनुसार ही वे 'उत्तम', 'मध्यम' और 'कनिष्ठ' अधिकारके भक्त होते हैं। जिसकी श्रद्धा कोमल और आसानीसे बदलनेवाली है, वह कनिष्ठ-अधिकारी है। परन्तु भक्तिकी प्रक्रियाका पालन करनेपर क्रमशः वह भी 'उत्तम' भक्तके स्तरपर पहुँच जाता है। रति और प्रेमके तारतम्यसे भक्तोंमें भी तारतम्य होता है।"]

'सबाकार श्रेष्ठ'—अर्थात् देवीधाममें सर्वश्रेष्ठ। पुण्यकर्मियों और ज्ञानियोंकी अपेक्षा भी श्रीविष्णुनामसे युक्त मन्त्रका अर्चनकारी कनिष्ठ भक्त श्रेष्ठ है; क्योंकि कर्मी अथवा ज्ञानी—वे जितने भी श्रेष्ठ क्यों न हो—उनका वास्तव-वस्तु श्रीविष्णुकी नित्यसेवा करनेमें विश्वास नहीं होता। इसलिये मुखसे वेदोंको माननेपर भी वे वास्तवमें नास्तिक हैं। और श्रीविष्णुके अर्चक, अप्राकृत-भजनराज्यमें उनकी थोड़ीसी भी महिमा क्यों न हो, अन्ततः वे श्रीविष्णुके अर्चाके वास्तव-सत्यविग्रह होनेको श्रीगुरुके मुखसे सुनकर उसके प्रति श्रद्धावान् तो हैं॥106॥

एक श्रीकृष्णनामके फलकी महिमाका वर्णन :—

एक कृष्णनामे करे सर्वपाप क्षय।
नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय॥107॥

अनुवाद—एक श्रीकृष्णनामके उच्चारणसे व्यक्तिके सभी पापोंका नाश हो जाता है। श्रीकृष्णनामके कीर्तनसे ही नवधा-भक्तिके सभी अङ्गोंका पालन हो जाता है॥107॥

अनुभाष्य—*'नवविधा भक्ति'*—(भाः 7/5/23)—

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।"

[अर्थात् "श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ऐसी नौ लक्षणोंवाली भक्तिको जो विष्णुमें साक्षात् अर्पण करते हैं, वे ही शास्त्रोंके उत्तम पण्डित हैं।"]

नामापराधका त्यागकर एकमात्र श्रीकृष्णनामके आश्रयसे

ही सब प्रकारके पापोंके नष्ट होनेपर जीवकी पुण्य-पापमूलक प्राकृत भोगवासना सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाती है। श्रीनाम ग्रहण करनेवाला ही सबसे श्रेष्ठ और पूजनीय है। श्रीनाम-भजनसे ही नवधा भक्ति पूर्णताको प्राप्त करती है ("यद्यप्यन्या भक्तिः कलौ कर्त्तव्या, तदा कीर्त्तनाख्यभक्ति-संयोगेनैव" [अर्थात् "यद्यपि कलियुगमें भक्तिके अन्य अङ्गोंका पालन कर्त्तव्य है, तथापि कीर्तनके संयोगसे उनका पालन करना चाहिये।"]—भक्तिसन्दर्भ 173 संख्या)॥ **107**॥

श्रीनाम 'स्वयं ही प्रभु-श्रीकृष्ण' होनेके कारण
अन्य कार्योंसे निरपेक्ष :—

दीक्षा-पुरश्चर्या-विधि अपेक्षा ना करे।
जिह्वा-स्पर्शे आचण्डाले सबारे उद्धारे॥ 108॥

अनुवाद—श्रीकृष्णनाम दीक्षा और पुरश्चर्या-विधिकी अपेक्षा नहीं रखते, जिह्वासे स्पर्श होने मात्रसे ही चण्डाल तक सभीका उद्धार कर देते हैं॥ **108**॥

अनुभाष्य—*'दीक्षा'*—श्रीजीवप्रभुके भक्तिसन्दर्भमें 283 संख्यामें उद्धृत आगमवाक्य—

"दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्।
तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः॥"

अर्थात् "जिससे अप्राकृत दिव्यज्ञानका उदय और पापोंका सम्पूर्ण रूपसे नाश होता है, तत्त्वशास्त्रविद् पण्डितोंने उसे ही 'दीक्षा' कहकर वास्तविक रूपमें संज्ञा प्रदान की है।"

'दीक्षा-विधि'—(हः भः विः दूसरा विः और भक्तिसन्दर्भमें 283 संख्यामें उद्धृत आगम-वचन)—

"द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु।
तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्च्चनादिषु।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्तुतम्॥"

अर्थात् "उपवीत (जनेऊ) रहित ब्राह्मणका जिस प्रकार स्वकर्म अध्ययन आदिमें अधिकार नहीं होता, उपवीत-ग्रहण करनेके बाद ही अधिकार होता है, उसी प्रकार अदीक्षित व्यक्तिका भी मन्त्रदेवताकी पूजादिमें अधिकार नहीं होता। इसलिये आत्माको मङ्गलमय करनेके उद्देश्यसे अपना कल्याण चाहनेवाले 'दीक्षा' ग्रहण करेंगे।" कारण, (हः भः विः, दूसरे विः में उद्धृत विष्णु-यामल-वचन)—

"अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाविरहितो जनः॥"

[अर्थात् "हे वामोरु! दीक्षा-रहित व्यक्तिके द्वारा किये गये सभी अनुष्ठान ही निरर्थक होते हैं। दीक्षारहित व्यक्ति पशु-योनि प्राप्त करता है।"]

(हः भः विः और भक्तिसन्दर्भकी 283 संख्यामें उद्धृत यामल अथवा आगम-वचन)—

"अतो गुरुं प्रणम्यैवं सर्वस्वं विनिवेद्य च।
गृह्णीयाद्वैष्णवं मन्त्रं दीक्षा-पूर्वं विधानतः॥"

[अर्थात् "इसलिये श्रीगुरुदेवको प्रणाम करके सर्वस्व समर्पण करके दीक्षापूर्वक (दिव्यज्ञान प्राप्त करके) यथाविधि वैष्णवमन्त्र ग्रहण करने चाहिये।"] (भक्तिसन्दर्भ 298 संख्यामें उद्धृत तत्त्वसागर-वचन)—

"यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥"

[अर्थात् "जिस प्रकार कांसा रसायनिक विधिसे स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षाके विधानके द्वारा मानवको ब्राह्मणता प्राप्त होती है।"]

'पुरश्चर्या'—(हः भः विः, सतरहवें विः में उद्धृत अगस्त्य-संहिता-वचन)—

"पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च।
होमब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते॥
गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसादेन यथाविधि।
पञ्चाङ्गोपासना-सिद्ध्यै पुरश्चैतद्विधीयते॥"

अर्थात् "प्रातः, दोपहर और सन्ध्या,—इन तीनों कालोंमें नित्य पूजा, नित्य जप, नित्य तर्पण, नित्य होम और नित्य ब्राह्मण-भोजन,—इन पाँच अङ्गोंको 'पुरश्चरण'

कहते हैं। गुरुकी कृपासे प्राप्त मन्त्रोंकी सिद्धिके लिये सर्वप्रथम उपरोक्त पाँच अङ्गोंकी उपासनाका विधान है, इसलिये यह क्रिया पुरश्चरण-नामसे जानी जाती है।"

'पुरश्चर्या-विधि'—(ह:भ:वि: सतरहवें वि: में उद्धृत आगम-वचन)—

"बिना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि।
कृतेन येन लभते साधको वाञ्छितं फलम्॥
पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः।
अतः पुरष्क्रियां कुर्यात् मन्त्रवित् सिद्धिकाङ्क्षया॥
पुरष्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं वीर्यमुच्यते।
वीर्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।
पुरश्चरणहीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः॥"

[अर्थात् "जिसके बिना सैकड़ों वर्षोंमें भी मन्त्रसिद्धि नहीं होती और जिसका अनुष्ठान करनेसे साधक वाञ्छित फल प्राप्त करता है, वह पुरश्चरण-सम्पन्न मन्त्र ही फल प्रदान करनेवाला होता है—इसलिये सिद्धि प्राप्तिके लिये मन्त्रविद् व्यक्ति पुरश्चरण करेंगे। पुरष्क्रिया मन्त्रसमूहकी प्रधान शक्ति कहलाती है। बलहीन व्यक्ति जिस प्रकार सभी कार्योंमें असमर्थ होता है, पुरश्चरण रहित मन्त्र भी उसी प्रकार कहा गया है।"]

श्रीजीवप्रभु ("भक्तिसन्दर्भ"में 283 संख्या)—

"यद्यपि श्रीभागवतमते पञ्चरात्रादिवत् अर्चनमार्गस्य आवश्यकत्वं नास्ति, तद्विनापि शरणापत्त्यादीनामेकतरेणापि पुरुषार्थसिद्धेरभिहितत्वात्, तथापि श्रीनारदादि-वर्त्मानुसरद्भिः श्रीभगवता सह सम्बन्धविशेषं दीक्षाविधानेन श्रीगुरुचरण-सम्पादितं चिकीर्षद्भिः कृतायां दीक्षायामर्चनमवश्यं क्रियतैव।"

एवं ("भक्तिसन्दर्भ"में 284 संख्या)—

"(दीक्षाद्यपेक्षा) यद्यपि स्वरूपतो नास्ति, तथापि प्रायः स्वभावतो देहादिसम्बन्धेन कदर्यशीलानां विक्षिप्तचित्तानां जनानां तत्तत्सङ्कोचीकरणाय श्रीमद्भृषिप्रभृतिभिरत्रार्चनमार्गे क्वचित् क्वचित् काचित् काचिन्मर्यादा स्थापितास्ति।"

रामार्चनचन्द्रिकामें—

"विनैव दीक्षां विपेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि।
विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदा॥"

[अर्थात् "यद्यपि भागवतके मतानुसार पञ्चरात्रादिकी भाँति अर्चनमार्गकी आवश्यकता नहीं है और अर्चनके बिना भी आत्मनिवेदनादि किसी एक अङ्गके द्वारा भी पुरुषार्थकी सिद्धि होती है, ऐसा कहा जाता है, तथापि श्रीनारदादि महाजनोंके पथके अनुसार जो लोग श्रीगुरुके द्वारा सम्पादित दीक्षाके विधानके द्वारा भगवान्‌के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित करनेके इच्छुक हैं, वे दीक्षाके अनुष्ठानके बाद अवश्य ही अर्चन करेंगे। यद्यपि स्वरूपतः दीक्षाकी अपेक्षा नहीं है, तथापि देहादिके सम्बन्धके कारण कु-स्वभावसे युक्त विक्षिप्त चित्तवाले व्यक्तियोंकी वैसी प्रवृत्तिको सङ्कुचित करनेके लिये श्रीनारद ऋषि आदि महापुरुषोंने इस अर्चन मार्गमें किसी-किसी स्थानपर कोई-कोई मर्यादा स्थापित की है। श्रीरामार्चन-चन्द्रिकामें कहा गया है,—हे विप्रवर! यह मन्त्र—दीक्षा, पुरश्चरण और न्यासविधानके बिना ही जपमात्रसे सिद्धि प्रदान किया करता है।"]

'नामकी दीक्षा-विधिकी निरपेक्षता'—पाञ्चरात्रिक मन्त्र अप्राकृत ज्ञानको उदित कराके प्राकृत-अभिनिवेशको ध्वंस करता है। अप्राकृत होनेसे मन्त्र और देवतामें अभिन्न बुद्धि होती है। नाम और मन्त्रमें 'शब्द-सामान्य' (इन्द्रियोंकी तृप्ति करनेवाले मनोकल्पित अन्य साधारण शब्दोंके समान, ऐसी) बुद्धि करनेपर नरकमें वास होता है। अप्राकृत बुद्धिसे ही मन्त्रदेवताके अर्चनका विधान है। दीक्षाके समय शास्त्रोंके विधानानुसार ही मन्त्र-ग्रहणकी विधि है; किन्तु श्रीकृष्णनाम,—बद्ध और मुक्त, दोनोंके लिये ही आदरणीय हैं, अर्थात् बद्ध व्यक्ति श्रीकृष्णनाम-ग्रहण करनेपर प्राकृतज्ञानसे मुक्त होते हैं, दूसरी ओर, मुक्त होनेपर ही शुद्धकृष्णनाम ग्रहण कर सकते हैं। (आदिलीला 7/73 संख्या)—

"कृष्णमन्त्र हैते हय संसार-मोचन।
कृष्णनाम हैते पाबे कृष्णेर चरण॥"

[अर्थात् "श्रीकृष्णमन्त्रके (गुरुसे प्राप्त दीक्षामन्त्रके) जपसे इस भौतिक संसारसे मुक्ति मिल जाती है (अर्थात्

अपने स्वरूपका ज्ञान होता है) और श्रीकृष्णनामसे (मुख्य फल प्रेमके द्वारा) श्रीकृष्णके चरणोंकी सेवाकी प्राप्ति होती है।"]। श्रीकृष्णसे अभिन्न श्रीकृष्णनाम साक्षात् महामन्त्र होनेके कारण किसी पाञ्चरात्रिक विधानके अनुगत नहीं है।

'नामकी पुरश्चर्या-विधि-निरपेक्षता'—मन्त्रसिद्धिके लिये ही पुरश्चरणकी व्यवस्था है; श्रीनाम-महामन्त्रको वैसी पुरश्चरण विधिकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। एकबार नामके उच्चारणके फलसे ही जब पुरश्चर्याके द्वारा प्राप्त होनेवाले सभी फलोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये श्रीनामको पुरश्चरणकी अपेक्षा नहीं है।

'नामके जिह्वासे स्पर्श होनेसे ही उद्धार-साधन'—यहाँ जिह्वा-शब्दसे 'सेवोन्मुख' जिह्वाको ही समझना चाहिये, अन्यथा सांसारिक भोगोन्मुख जिह्वापर अपराधोंके विद्यमान रहनेके कारण उसपर श्रीकृष्णनाम कभी भी उदित नहीं होते—(भः रः सिः, पूः विः साधनभक्ति-लहरीमें)—

"अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥"

[अर्थात् "इसलिये श्रीकृष्णनामादि प्राकृत इन्द्रियोंकी ग्राह्य वस्तु नहीं हो सकती। सेवोन्मुख अवस्थामें श्रीकृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीलादि भक्तकी अप्राकृत जिह्वा, चक्षु आदि इन्द्रियोंमें स्वयं प्रकाशित होते हैं।"]

मध्यलीला 17/134 संख्या—

"अतएव कृष्णेर 'नाम', 'देह', 'विलास'।
प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय स्वप्रकाश॥"

[अर्थात् "इसलिये श्रीकृष्णके 'नाम', उनकी 'देह' और उनके 'विलास' प्राकृत (जड़ीय) इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, अपितु स्वयं प्रकाशित होनेवाले हैं।"] (भक्तिसन्दर्भ 256-276 और 283 संख्या देखें)।

अन्त्यलीला 3/59-69, 75, 80, 176-180, 182-187; 20/11, 13 संख्या और भाः 1/1/14, 6/2/29, 39 संख्या देखें॥ **108**॥

संसार-क्षय—गौण फल, श्रीकृष्णप्रेम ही श्रीनामका मुख्य फल :—

अनुषङ्ग-फले करे संसारेर क्षय।
चित्त आकर्षिया कराय कृष्णे प्रेमोदय॥ 109॥

अनुवाद—श्रीकृष्णनाम जपके आनुषङ्गिक फलसे भक्तका संसारका बन्धन कट जाता है। तब उसका चित्त श्रीकृष्णके प्रति आकर्षित होता है और हृदयमें सुप्त श्रीकृष्णप्रेम उदित हो जाता है॥ **109**॥

सेवोन्मुखका श्रीकृष्णनाम :—
पद्यावली (29)में उद्धृत श्रीलक्ष्मीधरकृत
'नामकौमुदी'-श्लोक—

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमनसामुच्चाटनं चांहसा-
माचण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मुक्तिश्रियः।
नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥ 110॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **110**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बहु-सुकृतिशाली साधुओंके चित्तके आकर्षण-स्वरूप, पापनाशक, चण्डालसे आरम्भ करके (गूँगेके अतिरिक्त) सभी लोगोंके लिये सुलभ, मुक्तिरूपी ऐश्वर्यको वशीभूत करनेवाले,—ऐसे श्रीकृष्णनाम-स्वरूप यह महामन्त्र जिह्वाके स्पर्शमात्रसे ही फल प्रदान करता है, दीक्षादि सत्कार्य अथवा पुरश्चरण, इन सबकी लेशमात्र भी अपेक्षा नहीं करता॥ **110**॥

अनुभाष्य—

श्रीकृष्णनामात्मकः अयं मन्त्रः कृतचेतसां (मुक्तकुलानां) सुमहतां (त्रिगुणातीतानां, 'सुमनसाम्' इति पाठे—मनस्विनाम्) आकृष्टिः (आकर्षकः, 'आकृष्टीकृतचेतसाम्' इति पाठे आकृष्टीकृतं चेतो येषां तेषाम्), अंहसां (प्राकृताभिनिवेशज-चेष्टानां पुण्यपापानाम्) उच्चाटनम् (उन्मूलनम्) आचण्डालं (चण्डाल-पर्यन्तम्) अमूकलोकसुलभः (अमूकलोकानां मूकव्यतिरिक्तानां जनानां वाक्शक्तिमताम् एव सुलभः सहजप्राप्यः इत्यर्थः), मुक्तिश्रियः (मोक्षाश्रयचिन्तामणि-स्वरूपस्य) वश्यः (वशीकारकः) च; (स चायं नाम-महामन्त्रः) दीक्षां (पापनाश-दिव्यज्ञान-

विधायकसाधनमयीं) सत्क्रियां (फलसिद्धार्थां दक्षिणां पुरश्चर्यां च पञ्चाङ्गोपासनात्मिकां क्रियां) मनाक् (ईषत्) अपि न ईक्षते (नापेक्षते, परं तु) रसनास्पृक् (सेवोन्मुख-जिह्वा-स्पर्श-मात्रेण एव) फलति (फलप्रदो भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णनामात्मक यह मन्त्र त्रिगुणातीत ('सुमनसाम्' इस पाठसे अर्थ होगा मनस्विनाम्) मुक्तकुलजनोंको आकृष्ट करनेवाला ('आकृष्टीकृतचेतसाम्' इस पाठके द्वारा अर्थ होगा जिनके चित्तको आकृष्ट किया है, उनकी) प्राकृत-अभिनिवेशके द्वारा पुण्य-पाप चेष्टाओंका उन्मूलन करनेवाला, चण्डाल तक गूँगेके अतिरिक्त सभी लोगोंके लिये सुलभ, मोक्षरूपी चिन्तामणिके ऐश्वर्यको वशीभूत करनेवाला यह नाम-महामन्त्र दीक्षा (पापनाशक दिव्यज्ञान), फलकी सिद्धिके लिये पुरश्चर्या और पञ्चाङ्गोपासनात्मिक क्रियाओंकी लेशमात्र भी अपेक्षा नहीं रखता है तथा सेवोन्मुख जिह्वाके स्पर्श-मात्रसे ही फल प्रदान करता है॥ 110॥

'कनिष्ठ-वैष्णव'का लक्षण :—

अतएव याँर मुखे एक कृष्णनाम।
सेइ त' वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान॥"111॥

अनुवाद—इसलिये जिसके मुखमें एक बार भी श्रीकृष्णनाम उदित हुआ है, वही वैष्णव है, उसका सम्मान करना॥"111॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इसलिये गृहस्थ लोगोंके लिये एक श्रीकृष्णनामपरायण वैष्णवकी सेवा करनेसे ही वैष्णवसेवा-कार्यकी सिद्धि होती है; 'मन्त्र-दीक्षित वैष्णव'को यहाँपर विचारमें नहीं लाया गया है। इसका कारण यह है कि, विष्णुमन्त्रमें दीक्षित बहुतसे व्यक्तियोंको तत्त्वज्ञान नहीं होनेके कारण वे मायावाद आदि दोषोंसे दूषित हो सकते हैं, किन्तु नामापराधशून्य श्रीकृष्णनाम-उच्चारणकारी वैष्णवमें उन सब दोषोंके रहनेकी सम्भावना नहीं है। मन्त्र-दीक्षित व्यक्ति—वैष्णवप्राय हैं, किन्तु जिन्होंने निरपराध होकर एक बार श्रीकृष्णनाम किया है, वे सबसे कनिष्ठ होनेपर भी 'शुद्ध वैष्णव' हैं,—गृहस्थ-वैष्णव उस प्रकारके वैष्णवकी ही सेवा करेंगे॥ 111॥

अनुभाष्य—श्रील रूपप्रभुने स्व-लिखित श्रीउपदेशामृतमें कहा है—"कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत दीक्षास्ति चेत्" अर्थात् सद्गुरुसे दीक्षा-प्राप्त व्यक्ति अप्राकृत श्रद्धायुक्त होकर मुखसे श्रीकृष्णनाम उच्चारण करता है, मध्यमाधिकारी उसका मन-ही-मनमें आदर करेंगे—यही विधि है॥ 111॥

तीन प्रधान खण्डवासी :—

खण्डेर मुकुन्ददास, श्रीरघुनन्दन।
श्रीनरहरि,—एइ मुख्य तिन जन॥ 112॥

अनुवाद—खण्डवासियोंमें श्रीमुकुन्द दास, श्रीरघुनन्दन और श्रीनरहरि—ये तीन लोग मुख्य हैं॥ 112॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीमुकुन्ददाससे श्रीरघुनन्दनके साथ उनके सम्बन्धकी जिज्ञासा :—

मुकुन्द दासेरे पुछे शचीर नन्दन।
"तुमि—पिता, पुत्र तोमार—श्रीरघुनन्दन?॥ 113॥

किवा रघुनन्दन—पिता, तुमि—तार तनय?
निश्चय करिया कह, याउक संशय॥"114॥

अनुवाद—श्रीशचीनन्दनने श्रीमुकुन्द दाससे पूछा,—"आप पिता हैं और रघुनन्दन आपके पुत्र हैं? अथवा रघुनन्दन आपके पिता हैं और आप उनके पुत्र हैं? आप निश्चय करके बतलाइये, जिससे मेरा संशय दूर हो सके॥"113-114॥

श्रीरघुनन्दनको कृष्णभक्त जानकर अमानी मानद श्रीमुकुन्दका पुत्रबुद्धिका त्याग और गुरु-बुद्धि रखना :—

मुकुन्द कहे,—"रघुनन्दन आमार 'पिता' हय।
आमि तार 'पुत्र',—एइ आमार निश्चय॥ 115॥

आमा सबार कृष्णभक्ति रघुनन्दन हैते।
अतएव पिता—रघुनन्दन, आमार निश्चिते॥"116॥

अनुवाद—श्रीमुकुन्दने कहा,—"रघुनन्दन मेरे 'पिता'

हैं और मैं उनका पुत्र हूँ—मेरा यही निश्चय है। हम सबकी श्रीकृष्णभक्ति रघुनन्दनसे ही हुई है, इसलिये मेरे विचारसे रघुनन्दन मेरे पिता हैं॥"115-116॥

श्रीमुकुन्दके सद्-उत्तरको सुनकर महाप्रभुको हर्ष, 'सद्गुरु' अथवा 'वास्तविक पिता'की संज्ञा :—

शुनि' हर्षे कहे प्रभु,—"कहिले निश्चय।
याँहा हैते कृष्णभक्ति सेइ गुरु हय॥"117॥

अनुवाद—श्रीमुकुन्ददासके सद्-उत्तरको सुनकर महाप्रभु प्रसन्न हुए और उनका समर्थन करते हुए कहा,—"आपने ठीक ही कहा है। जिनसे श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति होती है, वही गुरु होते हैं॥"117॥

भक्तके जयगानमें मत्त भगवान् :—

भक्तेर महिमा कहिते प्रभु पाय सुख।
भक्तेर महिमा कहिते हय पञ्चमुख॥118॥

अनुवाद—भक्तोंकी महिमाको कहते हुए महाप्रभुको बहुत प्रसन्नता हो रही थी। भक्तोंकी महिमा कहते समय मानो वे पाँच मुखवाले हो गये थे॥118॥

भक्तोंके समक्ष श्रीमुकुन्दके श्रीकृष्णप्रेमका वर्णन :—

भक्तगणे कहे,—"शुन मुकुन्देर प्रेम।
निर्मल, निगूढ़ प्रेम, येन शुद्ध हेम॥119॥

अनुवाद—महाप्रभु भक्तोंसे कहने लगे,—"मुकुन्दके श्रीकृष्णप्रेमके विषयमें सुनो। यह प्रेम अति गहरा और निर्मल है, शुद्ध स्वर्णसे उसकी उपमा दी जा सकती है॥119॥

बाहरसे लोक-व्यवहार, अन्तरमें श्रीकृष्ण-निष्ठा :—

बाह्ये राजवैद्य इँहो, करे राज-सेवा।
अन्तरे प्रेम इँहार जानिबेक केबा॥120॥

अनुवाद—बाहरी रूपसे तो मुकुन्द एक राजवैद्य हैं और राज-सेवा करते हैं, किन्तु इनके हृदयमें जो श्रीकृष्णप्रेम है, उसे भला कौन जान सकता है?॥120॥

अनुभाष्य—यद्यपि मुकुन्द साधारण लोगोंकी दृष्टिमें राजवैद्यकी नौकरी करते थे, किन्तु वास्तवमें वे सच्चे प्रेमिक भक्त (अर्थात् गृहस्थ वैष्णवके वेषमें महाभागवत परमहंस) थे; साधारण लोग उसे नहीं जान सकते थे॥120॥

एक दिनकी घटनाका वर्णन; श्रीमुकुन्द और बादशाहका वृत्तान्त :—

एकदिन म्लेच्छ-राजा उच्च-टुङ्गिते।
चिकित्सार बात् कहे इँहार अग्रेते॥121॥
हेनकाले एक मयूर-पुच्छेर आड़ानी।
राज-शिरोपरि धरे एक सेवक आनि'॥122॥

अनुवाद—एकदिन मुकुन्द म्लेच्छ-राजाके साथ ऊँचे मञ्चपर बैठकर उनकी चिकित्साके विषयमें बतला रहे थे, उसी समय राजाका एक सेवक मयूरके पंखोंसे बना एक छाता लेकर आया। राजाको धूपसे बचानेके लिये उस छातेको उनके सिरके ऊपर करके वह खड़ा हो गया॥121-122॥

अनुभाष्य—*'उच्च-टुङ्गिते'*—ऊँचे स्थानपर बने छोटेसे कमरेमें। *'आड़ानी'*—धूपसे बचानेवाला छाता, अथवा बहुत बड़ा पंखा॥121-122॥

शिखिपिच्छ देखि' मुकुन्द प्रेमाविष्ट हैला।
अति-उच्च टुङ्गि हैते भूमिते पड़िला॥123॥

अनुवाद—मयूरके पंखको देखकर मुकुन्द कृष्णप्रेममें आविष्ट हो गये और उस बहुत ऊँचे मञ्चसे भूमिपर गिर पड़े॥123॥

राजार ज्ञान,—राजवैद्येर हइल मरण।
आपने नामिया तबे कराइल चेतन॥124॥

अनुवाद—कहीं राजवैद्यकी मृत्यु तो नहीं हो गयी, इस भयसे राजाने स्वयं मञ्चसे उतरकर मुकुन्दको चेतन कराया॥124॥

राजा बले,—'व्यथा तुमि पाइले कोन् ठाञि?'
मुकुन्द कहे,—'अतिबड़ व्यथा पाइ नाइ॥'125॥

अनुवाद—राजाने पूछा,—'तुम्हें कहाँ पीड़ा हो रही है?' मुकुन्दने कहा,—'मुझे कोई बहुत अधिक पीड़ा नहीं हुई है॥'125॥

राजा कहे,—'मुकुन्द, तुमि पड़िला कि लागि'?
मुकुन्द कहे,—'राजा, मोर व्याधि आछे मृगी॥'126॥

अनुवाद—तब राजाने पूछा,—'मुकुन्द, तुम किस कारण गिर पड़े?' मुकुन्दने कहा,—'हे राजन्, मुझे मिरगीका रोग है॥'126॥

श्रीमुकुन्दके द्वारा छल और आत्मगोपन करनेपर भी राजाके द्वारा उन्हें 'महापुरुष'के रूपमें पहचानना :—

महाविदग्ध राजा, सेइ सब जाने।
मुकुन्देरे हैल ताँर 'महासिद्ध'-ज्ञाने॥"127॥

अनुवाद—राजा बहुत बुद्धिमान थे, वे सब जान गये थे, इसलिये उन्होंने मुकुन्दको 'महासिद्ध'-पुरुषके रूपमें पहचान लिया॥"127॥

अनुभाष्य—*'महाविदग्ध'*—विशेष नीति-चतुर; *'महासिद्ध'*—अलौकिक मुक्त पुरुष॥127॥

श्रीरघुनन्दनकी श्रीकृष्णसेवाका दृष्टान्त :—

"रघुनन्दन सेवा करे कृष्णेर मन्दिरे।
द्वारे पुष्करिणी, तार घाटेर उपरे॥128॥
कदम्बेर एक वृक्षे फुटे बारमासे।
नित्य दुइ फूल हय कृष्ण-अवतंसे॥"129॥

अनुवाद—"रघुनन्दन सदा श्रीकृष्णके मन्दिरमें सेवा करता है। मन्दिरके द्वारके बगलमें एक कुण्ड है, उसके घाटपर एक कदम्बके वृक्षपर बारहों महीने नित्य दो फूल श्रीकृष्णके शृङ्गारके लिये खिलते हैं॥"128-129॥

अनुभाष्य—*'अवतंसे'*—भूषण या कर्णभूषण या शिरोभूषण, उसके लिये॥129॥

महाप्रभुके द्वारा उन तीनोंकी सेवाका विभाग—

1) श्रीमुकुन्दकी सेवा :—

मुकुन्देरे कहे पुनः मधुर वचन।
"तोमार कार्य—धर्म-धन-उपार्जन॥130॥

2) श्रीरघुनन्दनकी सेवा :—

रघुनन्दनेर कार्य—कृष्णेर सेवन।
कृष्ण-सेवा बिना इँहार अन्य नाहि मन॥131॥

3) श्रीनरहरिकी सेवा :—

नरहरि रहु आमार भक्तगण-सने।
एइ तिन कार्य सदा करह तिन जने॥"132॥

अनुवाद—महाप्रभुने पुनः श्रीमुकुन्दसे मधुर वचन कहे,—"तुम्हारा कार्य लौकिक और पारमार्थिक धन उपार्जन करना है। रघुनन्दनका कार्य सदा श्रीकृष्णकी सेवा करना है। श्रीकृष्णकी सेवाके अतिरिक्त इसका मन अन्य किसी कार्यमें नहीं है। नरहरि मेरे भक्तोंके साथमें रहे। तुम तीनों सदैव श्रीकृष्णसेवाके इन तीनों कार्योंको करो॥"130-132॥

अनुभाष्य—श्रीमहाप्रभु श्रीमुकुन्दको अत्यन्त प्रिय अन्तरङ्ग भक्तके रूपमें मानते थे; इसलिये दोनों भाइयों और पुत्रके सेवा-कार्यका विभाग करते समय श्रीमुकुन्दके धर्म और धन-उपार्जन, श्रीरघुनन्दनके श्रीमूर्तिसेवन और श्रीनरहरिके भक्तोंके साथ रहने-रूपी सेवा-भेदका निरूपण किया॥130-132॥

श्रीसार्वभौम और श्रीवाचस्पति—इन दोनोंको श्रीकृष्णसेवाका निर्देश :—

सार्वभौम, विद्यावाचस्पति,—दुइ भाइ।
दुइजने कृपा करि' कहेन गोसाञि॥133॥

"'दारु'-'जल'-रूपे कृष्ण प्रकट सम्प्रति।
'दरशन'-'स्नाने' करे जीवेर मुकति॥134॥

'दारुब्रह्म'-रूपे—साक्षात् श्रीपुरुषोत्तम।
भागीरथी हन साक्षात् 'जलब्रह्म'-सम॥135॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम और श्रीविद्यावाचस्पति—ये दोनों भाई हैं। इन दोनों भाइयोंपर कृपा करके श्रीचैतन्य गोसाईंने कहा,—"इस कलियुगमें श्रीकृष्ण काष्ठ और जलके रूपमें प्रकट हैं तथा (काष्ठके रूपमें) दर्शन और (जलके रूपमें) स्नानसे जीवोंको मुक्त करते हैं। वे 'दारुब्रह्म'के रूपमें साक्षात् श्रीपुरुषोत्तम (श्रीजगन्नाथदेव) हैं और भागीरथी (गङ्गा) साक्षात् 'जलब्रह्म'के समान हैं॥ 133-135॥

श्रीसार्वभौमको श्रीजगन्नाथ और श्रीवाचस्पतिको गङ्गाकी सेवाकी आज्ञा :—

सार्वभौम! कर 'दारुब्रह्म'-आराधन।
वाचस्पति! कर जलब्रह्मेरे सेवन॥"136॥

अनुवाद—हे सार्वभौम! आप दारुब्रह्म (श्रीजगन्नाथ) की आराधना करें और हे वाचस्पति! आप जलब्रह्म (गङ्गा)की सेवा करें॥"136॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सार्वभौम, आप दारुब्रह्मरूपी श्रीजगन्नाथदेवकी आराधना करो; और हे विद्यावाचस्पति, आप श्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत विद्यानगरमें रहकर जल-ब्रह्मरूप गङ्गाकी सेवा करो॥ 136॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीमुरारिकी अपने सेव्यमें निष्ठाकी महिमाका वर्णन :—

मुरारि-गुप्तेरे प्रभु करि' आलिङ्गन।
ताँर भक्तिनिष्ठा कहेन,—"शुन भक्तगण॥ 137॥

पहले महाप्रभुके द्वारा श्रीमुरारिको श्रीकृष्णभजनका प्रलोभन :—

पूर्वे आमि इँहारे लोभाइल बार बार।
'परम मधुर, गुप्त! व्रजेन्द्रकुमार॥ 138॥

स्वयं भगवान् कृष्ण—सर्वांशी, सर्वाश्रय।
विशुद्ध-निर्मल-प्रेम, सर्वरसमय॥ 139॥

सकल-सद्गुण-वृन्द-रत्न-रत्नाकर।
विदग्ध, चतुर, धीर, रसिक-शेखर॥ 140॥

मधुर-चरित्र कृष्णेर मधुर-विलास।
चातुर्य, वैदग्ध्य करे याँर लीला-रस॥ 141॥

श्रीकृष्णोपासनाकी ही सर्वश्रेष्ठताका कथन :—

सेइ कृष्ण भज तुमि, हओ कृष्णाश्रय।
कृष्ण बिना अन्य-उपासना मने नाहि लय॥'142॥

अनुवाद—श्रीमुरारि गुप्तको आलिङ्गन करके महाप्रभु उनकी भक्तिकी निष्ठाका वर्णन करते हुए कहने लगे,—"हे भक्तों सुनो! पहले मैंने इनको बार-बार श्रीकृष्णका लोभ दिखलाया। मैंने कहा,—'हे मुरारि गुप्त! व्रजेन्द्रकुमार श्रीकृष्ण परम मधुर हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, वे सबके अंशी, सभीके आश्रय, विशुद्ध निर्मल प्रेमरूप और समस्त रसोंके भण्डार हैं। वे समस्त प्रकारके सद्गुणरूपी रत्नोंकी खान हैं, विदग्ध अर्थात् सभी कार्योंमें प्रवीण हैं, अत्यन्त बुद्धिमान, धीर और रसिकशेखर भी हैं। उनका चरित्र भी मधुर है और उनका विलास भी मधुर है। वे अपने चातुर्य और विदग्धतासे लीला-रसका आस्वादन करते हैं। इसलिये आप उन्हीं श्रीकृष्णका भजन करो। श्रीकृष्णके आश्रित हो जाओ। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसीकी उपासनाकी बातको मनमें भी मत लाओ॥'137-142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"हे गुप्त, श्रीव्रजेन्द्र-कुमार—परम मधुर" हैं आदि, बातें बोलकर (पहले) मैंने उनको कृष्णभजनमें अधिक लोभ दिया था॥ 138॥

महाप्रभुके प्रलोभनसे मुरारिका क्षणिक चित्त-परिवर्तन :—

एइमत बार बार शुनिया वचन।
आमार गौरवे किछु फिरि' गेला मन॥ 143॥

महाप्रभुके वचनोंमें दृढ़ विश्वास और दैन्य-ज्ञापन :—

आमारे कहेन,—"आमि तोमार किङ्कर।
तोमार आज्ञाकारी आमि, नाहि स्वतन्तर॥"144॥

अनुवाद—बार-बार इस प्रकारके वचन सुनकर मेरे प्रति गौरव बुद्धिके कारण इनका मन कुछ बदल गया

था। इन्होंने मुझसे कहा,—"मैं आपका दास हूँ। आपका आज्ञाकारी हूँ, मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ॥"143-144॥

श्रीरामकी उपासनाके त्यागकी चिन्तासे श्रीमुरारिकी अनिद्रा, रोना और मृत्युकी इच्छा :—

एत बलि' घरे गेल, चिन्ति' रात्रिकाले।
रघुनाथ-त्याग-चिन्ताय हइल विकले॥ 145॥

केमने छाड़िब रघुनाथेर चरण।
आजि रात्र्ये प्रभु मोर कराह मरण॥ 146॥

एइमत सर्व-रात्रि करेन क्रन्दन।
मने सोयास्ति नाहि, रात्रि करेन जागरण॥ 147॥

अनुवाद—यह कहकर ये अपने घर चले गये। सारी रात श्रीरघुनाथकी उपासनाके त्यागके विषयमें चिन्ता करते-करते व्याकुल हो गये। मैं किस प्रकार श्रीरघुनाथके चरणोंको छोड़ूँगा! हे प्रभो! आप आज रात ही मेरी मृत्यु करा दो! इस प्रकार ये सारी रात रोते रहे। इनका मन अशान्त था, इसलिये सारी रात सोये ही नहीं॥ 145-147॥

प्रातःकाल आकर श्रीराम-भजनके त्यागने और महाप्रभुकी आज्ञा-पालनमें असमर्थता बतलाकर दो सङ्कटोंमें पड़कर मृत्युकी इच्छा :—

प्रातःकाले आसि' मोर धरिल चरण।
कान्दिते कान्दिते किछु करे निवेदन॥ 148॥

'रघुनाथेर पाय मुञि बेचियाछोँ माथा।
काढ़िते ना पारि माथा, मने पाइ व्यथा॥ 149॥

श्रीरघुनाथ-चरण छाड़ान ना याय।
तव आज्ञा-भङ्ग हय, कि करि उपाय॥ 150॥

ताते मोरे एइ कृपा कर, दयामय।
तोमार आगे मृत्यु हउक, याउक संशय॥'151॥

अनुवाद—प्रातःकालमें आकर इन्होंने मेरे चरण पकड़ लिये। ये रोते-रोते कुछ निवेदन करने लगे,—'मैंने श्रीरघुनाथके चरणकमलोंमें अपने सिरको बेच दिया है। मैं अपने सिरको उनके चरणोंसे नहीं उठा सकता, क्योंकि वह मेरे लिये बहुत पीड़ादायक होगा। मेरे लिये श्रीरघुनाथके चरणकमलोंको छोड़ना सम्भव नहीं है। परन्तु यदि मैं ऐसा नहीं करूँ, तो आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन होता है। मैं क्या कर सकता हूँ? इसलिये हे दयामय! आप मुझपर यह कृपा कीजिये कि, आपके सामने ही मेरी मृत्यु हो जाय जिससे मेरी यह दुविधा दूर हो जायेगी॥'148-151॥

अनुभाष्य—

"श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वः रामः कमललोचनः॥"

[अर्थात् "भगवान् श्रीनाथ और श्रीजानकीनाथ अभिन्न हैं, तो भी कमलनयन श्रीराम ही मेरे सर्वस्व हैं।"]॥ 149॥

श्रीमुरारिके वचनोंसे महाप्रभुका हर्ष और प्रशंसा :—

एत शुनि' आमि बड़ मने सुख पाइलुँ।
इँहारे उठाञा तबे आलिङ्गन कैलुँ॥ 152॥

साधु, साधु, गुप्त! तोमार सुदृढ़ भजन।
आमार वचनेह तोमार ना टलिल मन॥ 153॥

अनुवाद—यह सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। तब मैंने इन्हें उठाकर इनका आलिङ्गन किया। अति सुन्दर, अति सुन्दर गुप्त! तुम्हारा भजन बहुत ही सुदृढ़ है जो मेरे वचन सुनकर भी तुम्हारा मन परिवर्तित नहीं हुआ॥ 152-153॥

सेवक और सेव्यका परस्परके प्रति आदर्श व्यवहार :—

एइमत सेवकेर प्रीति चाहि प्रभु-पाय।
प्रभु छाड़ाइलेह, पद छाड़ान ना याय॥ 154॥

अनुवाद—प्रभुके प्रति सेवककी ऐसी ही प्रीति होनी चाहिये। प्रभुके द्वारा छुड़ानेपर भी, सेवक उनके चरणकमलोंको नहीं छोड़ सकता॥ 154॥

अनुभाष्य— *'प्रभु'*—जीवके नित्यसेव्य, आराध्य अथवा उपास्यतत्त्व श्रीकृष्ण; मध्यलीला 4/186, 7/8, तेरहवें

अध्यायका (पूर्वार्द्ध) देखें; अन्त्यलीला 4/46-47 संख्या—

"सेइ भक्त—धन्य, ये ना छाड़े प्रभुर चरण।
सेइ प्रभु—धन्य, ये ना छाड़े निजजन॥
दुर्दैवे सेवक यदि याय अन्यस्थाने।
सेइ ठाकुर धन्य—ये तारे चुले धरि' आने॥"

[अर्थात् "वही भक्त धन्य है जो अपने प्रभुके चरणोंको कभी भी नहीं छोड़ता और वे प्रभु धन्य हैं जो अपने निजजनोंको कभी नहीं त्यागते। दुर्भाग्यवश यदि सेवक अन्य किसी स्थानपर चला जाता है, तो वे प्रभु धन्य हैं, जो अपने उस सेवकको उसके केशोंसे पकड़कर खींचकर ले आते हैं।"]॥ 154॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीमुरारिकी उपास्यके प्रति निष्ठाकी परीक्षा, श्रीमुरारिका परीक्षामें उत्तीर्ण होना :—

एइमत तोमार निष्ठा जानिवार तरे।
तोमारे आग्रह आमि कैलुँ बारे बारे॥ 155॥

अनुवाद—इस प्रकार आपकी निष्ठाकी परीक्षा लेनेके लिये ही मैंने आपसे बार-बार आग्रह किया था॥ 155॥

अनुभाष्य—*'जानिवार'*—परीक्षा करनेके लिये; *'आग्रह'*—कृष्णभजन करवानेके लिये आज्ञा देना॥ 155॥

दैन्यके अवतार श्रीमुरारि—साक्षात् हनुमत्-विग्रह :—

साक्षात् हनुमान् तुमि श्रीराम-किङ्कर।
तुमि केने छाड़िबे ताँर चरण-कमल॥ 156॥

सेइ मुरारि-गुप्त एइ—मोर प्राण सम।
इँहार दैन्य शुनि' मोर फाटये जीवन॥"157॥

अनुवाद—आप तो श्रीरामके दास साक्षात् हनुमान् हो। आप उनके चरण-कमलोंको क्यों छोड़ोगे? ये वही मुरारि गुप्त मेरे प्राणोंके समान हैं। इनका दैन्य सुनकर मेरा हृदय फटता है॥ "156-157॥

अनुभाष्य—इस प्रसङ्गमें अन्त्यलीला 4/30-45 संख्यामें श्रीजीवके पिता श्रीअनुपम अथवा श्रीवल्लभकी श्रीराम-निष्ठा विचारणीय है॥ 137-157॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीवासुदेव दत्तकी प्रशंसा :—

तबे वासुदेवे प्रभु करि' आलिङ्गन।
ताँर गुण कहे हञा सहस्र-वदन॥ 158॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीवासुदेव दत्तका आलिङ्गन किया और उनके गुणोंका ऐसे बखान करने लगे, मानो उनके सैकड़ों मुख हों॥ 158॥

महाप्रभुके चरणोंमें श्रीवासुदेवका कातर-हृदयसे निवेदन :—

निज-गुण शुनि' दत्त मने लज्जा पाञा।
निवेदन करे प्रभुर चरणे धरिया॥ 159॥

"जगत् तारिते प्रभु तोमार अवतार।
मोर निवेदन एक करह अङ्गीकार॥ 160॥

करिते समर्थ तुमि, हओ दयामय।
तुमि मन कर, तबे अनायासे हय॥ 161॥

अनुवाद—महाप्रभुके मुखसे अपने गुणोंको सुनकर श्रीवासुदेव दत्त मन-ही-मन बहुत लज्जित हुए और महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर निवेदन करने लगे,—"हे प्रभो! जगत्का उद्धार करनेके लिये ही आपका अवतार हुआ है, आप कृपया मेरा एक निवेदन स्वीकार कीजिये। हे दयामय! उसे पूर्ण करनेमें आप समर्थ हैं। यदि आप इच्छा करें, तो वह अनायास ही पूर्ण हो सकता है॥ 159-161॥

अलौकिक परदुःखदुःखी गौरदास श्रीवासुदेव-दत्त-ठाकुर :—

जीवेर दुःख देखि' मोर हृदय विदरे।
सर्वजीवेर पाप प्रभु देह' मोर शिरे॥ 162॥

जीवेर पाप लञा मुञि करि नरक भोग।
सकल जीवेर, प्रभु, घुचाह भवरोग॥"163॥

अनुवाद—संसारमें जीवोंके दुःख देखकर मेरा हृदय फटता है। हे प्रभो! सब जीवोंके पापोंको मेरे सिरपर मढ़ दीजिये। जीवोंके पापोंको लेकर मैं नरक भोग करूँ। और आप सभी जीवोंके भवरोगको दूर कर दीजिये॥ "162-163॥

अनुभाष्य—पश्चिमी-देशोंके ईसाईभक्तोंमें यह विश्वास है कि, उनके गुरु एकमात्र महामति यीशुमसीह ही जीवोंके सभी पापोंके भारको ग्रहण करनेके लिये तत्पर होकर ही जगत्में अवतीर्ण हुए थे। किन्तु श्रीगौरपार्षदोंमें श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने श्रीहरिदास ठाकुरकी भाँति यीशुमसीहकी अपेक्षा अनन्त कोटिगुणा अधिकतर उन्नत और उदार सार्वजनिक विश्ववैष्णव-प्रेमभावकी जगत्के जीवोंको शिक्षा दी है। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरमें जड़ीय स्वार्थका त्यागरूप 'निस्वार्थ', विष्णु-सेवारूप चिन्मय 'परार्थ' और 'स्वार्थ' अपूर्वरूपसे एकत्र सम्मिलित हैं। वे श्रीगौरसुन्दरको वास्तव-वस्तु, माया और मायाकी कपटतासे सर्वदा मुक्त स्वयं-भगवान् जानकर ऐसी प्रार्थना कर रहे हैं। उन्होंने समस्त जीवोंके कृष्ण-विमुखतारूप भवरोग (केवल पाप नहीं, सब प्रकारके पापोंकी अपेक्षा भी भीषणतम 'अपराध'-राशि)को अपने कन्धोंपर ग्रहण करके उनके भवरोगको दूर करनेके लिये काय-मनो-वाक्यसे सम्पूर्ण निष्कपटरूपसे प्रार्थना करके जिस दयाका आदर्श प्रदर्शित किया है, वह सम्पूर्ण जगत्में, केवल जगत्में ही क्यों, सम्पूर्ण चौदह भुवनोंमें सर्वश्रेष्ठ कर्मियों और ज्ञानियोंकी भी कल्पनासे अतीत है। मायाके वशीभूत, देहको ही मैं माननेवाले जीवोंकी अपने-परायेकी भेद-बुद्धिके कारण हिंसा-वृत्ति प्रधान होती है। वे (जन्म-मृत्यु, सुख-दुःखादि रूप) द्वैत-जगत्में कर्म और ज्ञानके आदर्शका ही बहुत आदर करते हैं, इसलिये उनमेंसे अधिकांश व्यक्ति ही कुकर्मी और कुज्ञानी हैं। उनमें स्वाभाविक ईर्ष्या और द्वन्द्वभाव होनेके कारण वे वैकुण्ठसेवक श्रीवासुदेव दत्तठाकुरकी नरक-भोगकी प्रार्थनाको सुनकर उल्लसित होकर उन्हें एक 'पुण्यवान् सत्कर्मी' अथवा 'ब्रह्मज्ञानी'के स्तरका मानकर प्रचुर सम्मान अथवा प्रतिष्ठा प्रदान कर सकते हैं। परन्तु दत्तठाकुर उसकी अपेक्षा भी अनन्त कोटि गुणा अधिक जीवोंके प्रति 'दया'-प्रवृत्तिसे युक्त हैं, यह बिल्कुल भी अतिरञ्जित प्रशंसा-वाक्य (अतिश्योक्ति) अथवा अर्थवाद नहीं है, बल्कि अति निरपेक्ष सत्य बात है। वास्तवमें उनके समान "परदुःखदुःखी" श्रीगौरदासगणोंके आगमनसे पृथ्वी धन्य हुई है, केवल प्रपञ्च ही नहीं, बल्कि समस्त जीवकुल भी धन्य हो गया है। ऐसे श्रीगौरभक्तोंके गुणगानमें ही जिह्वाकी सार्थकता है। और कवियों और ऐतिहासिक व्यक्तियोंकी लेखनी जब लौकिक भावोंको छोड़कर उनके समान अकिञ्चना भगवद्भक्तियुक्त महाभागवतोंके गुण-वर्णनके कार्यमें नियुक्त होगी, तभी उसकी सर्वश्रेष्ठ-सार्थकता होगी। महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्यके दास इतने "महतोऽपि महीयान्" (महान्से भी महान्) और "गरीयसोऽपि गरीयान्" (श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ) हैं॥ 162-163॥

प्रियतम सेवककी प्रार्थनासे महाप्रभुका चित्त द्रवित :—

एत शुनि' महाप्रभुर चित्त द्रविला।
अश्रु-कम्प-स्वरभङ्गे कहिते लागिला॥ 164॥

श्रीवासुदेव-दत्तठाकुर—साक्षात् प्रह्लाद :—

"तोमार विचित्र नहे, तुमि—साक्षात् प्रह्लाद।
तोमार उपरे कृष्णेर सम्पूर्ण प्रसाद॥ 165॥

श्रीकृष्ण और भक्तका परस्परमें व्यवहार :—

कृष्ण सेइ सत्य करे, येइ मागे भृत्य।
भृत्य-वाञ्छा-पूरण बिना नाहि अन्य कृत्य॥ 166॥

सभी ब्रह्माण्डवासियोंके उद्धारके
विषयमें सत्य आश्वासन-दान :—

ब्रह्माण्ड जीवेर तुमि वाञ्छिले निस्तार।
बिना पाप-भोगे हबे सबार उद्धार॥ 167॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वशक्तिमताका वर्णन :—

असमर्थ नहे, कृष्ण धरे सर्वबल।
तोमाके वा केने भुञ्जाइबे पाप-फल?॥ 168॥

तुमि याँर हित वाञ्छ', से हइल 'वैष्णव'।
वैष्णवेर पाप कृष्ण दूर करे सब॥ 169॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुका हृदय द्रवित हो गया। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे, उनका शरीर काँपने लगा और वे गद्गद स्वरसे कहने लगे,—"हे

वासुदेव! तुम्हारा ऐसा कहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि तुम साक्षात् प्रह्लाद हो। तुम्हारे ऊपर श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण कृपा है। उनका दास जो कुछ माँगता है, श्रीकृष्ण उसे सत्य कर देते हैं। अपने दासकी इच्छाको पूर्ण करनेके अतिरिक्त श्रीकृष्णका अन्य कोई कार्य नहीं है। तुमने ब्रह्माण्डके समस्त जीवोंके उद्धारकी कामना की है, इसलिये तुम्हारे द्वारा उन सबके पाप भोगे बिना ही उन सबका उद्धार होगा। श्रीकृष्ण असमर्थ नहीं हैं, बल्कि सम्पूर्ण शक्तिको धारण करनेवाले हैं। वे तुम्हें सबके पापोंके फल किसलिये भोग करायेंगे? तुम जिसके हितकी कामना करते हो, वह 'वैष्णव' बन जाता है और श्रीकृष्ण वैष्णवोंके समस्त पापोंको दूर कर देते हैं॥ 164-169॥

अनुभाष्य—महाप्रभु श्रीवासुदेवको कह रहे हैं,—"श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं। वे समस्त जीवोंको उनकी जड़भोगवासनाओंसे मुक्त कर सकते हैं। तुमने जब समदर्शी होकर, उच्च-नीच सभी जीवोंकी ओरसे उनके मङ्गलकी प्रार्थना की है, तब तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार तुम्हारे पापभोगके बिना ही सभीका उद्धार होगा। उसके बदलेमें तुम्हें उनके लिये पापोंके फल भोग नहीं करने पड़ेंगे। तुम जिनके मङ्गलकी कामना करोगे, वे ही 'वैष्णव' बन जायेंगे। और श्रीकृष्ण वैष्णवोंके प्राचीन पापोंके फलभोगसे भी उनकी रक्षा करेंगे। अर्थात् वे पाप-पुण्यकी सेवाको छोड़कर शुद्ध श्रीकृष्णसेवक बन जायेंगे।" पद्मपुराणमें—

"अप्रारब्ध-फलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम्।
क्रमेणैव प्रलीयेत विष्णुभक्ति-रतात्मनाम्॥"

[अर्थात् "जिन लोगोंकी आत्मा और उनका शरीर, मन, प्राणादि सभी श्रीकृष्णकी भक्तिमें लगे हुए हैं, उनके अप्रारब्ध पाप, कूट पाप, बीजरूप पाप और फलोन्मुख पाप (जिनका फल भुगतना आरम्भ हो गया है), ये सब भक्तिसे क्रमशः विनष्ट हो जाते हैं।"]

भाः 6/2/17 श्लोक देखें॥ 167-169॥

सर्वफलप्रदाता श्रीगोविन्दकी वन्दना :—
ब्रह्मसंहिता (5/54)में—

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
बन्धानुरूप-फलभाजनमातनोति।
कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 170॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 170॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो इन्द्रगोप नामक (क्षुद्र) कीटसे आरम्भ करके देवेन्द्र तक सभी जीवोंको उनके कर्मबन्धनके अनुरूप फलभोगका विधान करते हैं, किन्तु जो भक्तिमान् पुरुषके समस्त कर्मोंको ही सम्पूर्ण रूपसे नष्ट कर देते हैं, अहो! मैं उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ॥ 170॥

अनुभाष्य—

यः (गोविन्दः) तु इन्द्रगोपं (रक्तवर्णक्षुद्रकीटविशेषम्) अथवा इन्द्रं (देवाधिपतिं) स्वकर्मबन्धानुरूपफलभाजनं (स्वस्य कर्मबन्धानुरूपस्य फलस्य भाजनम्) आतनोति (सम्यक् विदधाति) किन्तु भक्तिभाजां (हरिसेवापराणां) च कर्माणि (प्रारब्धानि अप्रारब्धानि च भोगयोग्यानि कर्मफलानि) निर्दहति (विनाशयति), तम् आदिपुरुषं (मूलदेवं) गोविन्दम् (अहं) भजामि।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 170॥

भक्तकी इच्छासे श्रीकृष्णके द्वारा अनायास
ही ब्रह्माण्डका मोचन करना :—

तोमार इच्छा-मात्रे हबे ब्रह्माण्ड-मोचन।
सर्व मुक्त करिते कृष्णेर नाहि परिश्रम॥ 171॥

अनुवाद—तुम्हारे इच्छा करने मात्रसे ही ब्रह्माण्डका उद्धार हो जायेगा, क्योंकि ब्रह्माण्डके समस्त प्राणियोंको मुक्त करनेमें श्रीकृष्णको कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा॥ 171॥

विरजा अथवा कारण-समुद्रमें तैरते
हुए अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड :—

एकइ डुम्बुर-वृक्षे लागे कोटि-फले।
कोटि ये ब्रह्माण्ड भासे विरजार जले॥ 172॥

अनुवाद—जिस प्रकार एक गूलरके वृक्षपर करोड़ों फल लगते हैं, उसी प्रकार विरजा नदीके जलमें करोड़ों ब्रह्माण्ड तैरते रहते हैं॥ 172॥

अनुभाष्य—अप्राकृत ब्रह्मधामके बाहरी भागमें विरजा नदी है। उसके उस पार आलोकमय ब्रह्मधामके द्वारा मण्डित सविशेष-वैकुण्ठ-धाम है। विरजा नदीके दूसरी ओर यह देवीधाम अथवा प्राकृत जगत् है। देवीधाममें त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम) वर्तमान (अर्थात् सक्रिय) हैं और विरजा नदीमें तीनों गुण साम्यावस्थामें (अर्थात् निष्क्रिय अवस्थामें) विराजमान हैं॥ 172॥

ब्रह्माण्डके उद्धारके साथ गूलरके
फलके गिरनेकी उपमा :—

तार एक फल पड़ि' यदि नष्ट हय।
तथापि वृक्ष नाहि जाने निज अपचय॥ 173॥

श्रीकृष्णके लिये केवल एक ब्रह्माण्डका उद्धार—अत्यन्त
तुच्छ और ग्रहण करने अयोग्य कार्य :—

तैछे एक ब्रह्माण्ड यदि मुक्त हय।
तबु अल्प-हानि कृष्णेर मने नाहि लय॥ 174॥

परव्योमके बाहरी स्थानपर स्थित
कारण-सागरका वर्णन :—

अनन्त ऐश्वर्य कृष्णेर वैकुण्ठादि-धाम।
तार गड़खाइ—कारणाब्धि यार नाम॥ 175॥
ताते भासे माया, लञा अनन्त ब्रह्माण्ड।
गड़खाइते भासे येन राइ-पूर्ण भाण्ड॥ 176॥
तार एक राइ-नाशे, हानि नाहि मानि।
ऐछे एक अण्ड-नाशे कृष्णेर नाहि हानि॥ 177॥

अनुवाद—उन करोड़ों फलोंमेंसे यदि एक फल गिरकर नष्ट हो जाता है, तो भी वह वृक्ष अपनी कोई हानि नहीं समझता। उसी प्रकार यदि एक ब्रह्माण्ड उसमें सभी जीवोंके मुक्त होनेपर खाली हो जाता है, तो श्रीकृष्ण उस कमीकी ओर ध्यान भी नहीं देते। असंख्य वैकुण्ठादि धाम श्रीकृष्णका अनन्त ऐश्वर्य है। उस वैकुण्ठलोकके चारों ओरकी खाई ही कारणसमुद्र कहलाती है। उस कारणसमुद्रमें माया अपने अनन्त ब्रह्माण्डोंको लेकर तैरते हुए सरसोंके दानोंसे भरे हुए पात्र जैसे प्रतीत होती है। जिस प्रकार करोड़ों राईके दानोंसे भरे पात्रमेंसे एक दानेके नष्ट होनेपर उसे कोई महत्व नहीं दिया जाता, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर श्रीकृष्णको कोई कमी अनुभव नहीं होती॥ 173-177॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/53 संख्या, 5/52-55, मध्यलीला 20/268-279, 21/52 संख्या देखें। वैकुण्ठधाममें मायाकी किसी भी प्रकारकी कुण्ठा नहीं है। वैकुण्ठ सभी ओरसे कारणसमुद्रसे घिरा हुआ है। प्राकृत देवीधामकी विचित्रताका कारण-जल ही कारणसमुद्र है।

'गड़खाइ'—घेरनेवाला जल। विरजा-नदी अथवा कारणसमुद्र खाईके समान है। अनन्त असंख्य ब्रह्माण्ड-समूह असंख्य 'छोटे-छोटे सरसोंके दानेके' समान और माया 'पात्र'के समान है॥ 175-176॥

मायाके साथ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके ध्वंस
होनेसे भी श्रीकृष्णको कोई कमी नहीं :—

सब ब्रह्माण्ड सह यदि 'माया'र हय क्षय।
तथापि ना माने कृष्ण किछु अपचय॥ 178॥
कामधेनु-कोटि-पतिर छागी यैछे मरे।
षड़ैश्वर्यपति कृष्णेर माया किवा करे?॥ 179॥

अनुवाद—एक ब्रह्माण्डका तो कहना ही क्या, सभी ब्रह्माण्डोंके साथ यदि मायाका भी नाश हो जाता है, तब भी श्रीकृष्ण कोई कमी अनुभव नहीं करते। करोड़ों कामधेनुओंके स्वामीको एक बकरीके मर जानेसे जिस प्रकार कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार षड़ैश्वर्यपति श्रीकृष्णको मायाके नष्ट होनेसे क्या कमी हो सकती है?॥ 178-179॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इन पद्योंका शब्दार्थ सरल है, किन्तु भावार्थ कठिन है। भावार्थ यह है—जीव श्रीकृष्णसे बहिर्मुख होकर मायाबन्धनमें पड़ जाते हैं और माया

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करके उन जीवोंको श्रीकृष्ण-विमुखताके फलस्वरूप कर्मफल भोग कराती है। श्रीकृष्ण-बहिर्मुख लोगोंको कर्मफल अवश्य ही भोग करना पड़ता है। श्रीकृष्ण-सम्मुख (श्रीकृष्णोन्मुख) व्यक्तियोंका वह कर्मबन्धन श्रीकृष्णकी इच्छासे सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जाता है। इसमें यदि वितर्क किया जाय कि, 'भक्त होनेसे ही यदि कर्म बन्धन नष्ट हो जाय और किसी भक्तकी इच्छा होनेपर ही यदि बिना दण्डके ही सभी जीवोंका उद्धार हो जाय, तब भक्तकी इच्छासे ही ब्रह्माण्ड रहे, या नहीं रहे, ऐसा होनेपर फिर श्रीकृष्णका जगत् किस प्रकारसे अच्छी प्रकारसे नियमित हो सकता है?' इसलिये महाप्रभुने कहा,—'श्रीकृष्णका चिद्-जगत् अनन्त और अपरिमेय (जिसे मापा नहीं जा सकता) है; स्वरूप-शक्तिके सभी गण वहाँ कामधेनु-स्वरूपमें स्वामीरूप श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। वह (स्वरूप शक्तिका वैभव) चिद्-जगत् त्रिपाद (श्रीकृष्णकी तीन चौथाई विभूति) है। उस चिद्-जगत्की छायारूप मायाके अधिकारमें यह जड़जगत् एकपाद (एक चौथाई) है। माया स्वरूपशक्तिकी छायामात्र है। इसलिये करोड़ों कामधेनुओंके स्वामी श्रीकृष्णके लिये यह माया एक बकरी-मात्र है [यहाँ कामधेनु और बकरीका उपमा रूपमें प्रयोग हुआ है]। शुद्धभक्तोंकी इच्छानुसार अथवा शुद्धभक्तोंके अनुरोधसे यदि एक मायिक ब्रह्माण्डका उद्धार हो जाय, तो उससे श्रीकृष्णको कोई क्षति प्रतीत नहीं होती। उसकी बात तो दूर रहे, यदि समस्त मायिक ब्रह्माण्डोंके साथ बकरीरूपी मायाका अस्तित्व भी लोप हो जाय, तो भी करोड़ों कामधेनु-स्वामीरूप षड़ैश्वर्योंके ईश्वर श्रीकृष्णकी लेशमात्र भी हानि नहीं होती अर्थात् छायाके नष्ट होनेपर स्वरूप-वस्तुकी क्या हानि हो सकती है?॥ 171–179॥

श्रीमद्भागवतमें (10/87/14) :—

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥"180॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 180॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिसके (द्वारा) सत्त्व-रज-तमोगुण दोषके रूपमें गृहीत हुआ है, हे अजित, उस चराचर अजा (अविद्या अथवा माया)को आप विनष्ट करके (अपनी विजय दिखलाओ, विजय दिखलाओ); क्योंकि, आत्मशक्तिके द्वारा मायातीत आपमें (स्वरूपतः) समस्त ऐश्वर्य अवरुद्ध (आबद्ध) है, आप ही जगत्की समस्त शक्तियोंके ज्ञापक (ज्ञान करानेवाले अन्तर्यामी) हैं। आप आत्म-शक्तिसे ही विपुल चिद्-जगत्में लीला करते हैं और किसी कारणसे आप अपनी छायाशक्ति मायाके प्रति ईक्षण (दृष्टिपात) करके उसके द्वारा (सृष्टि आदि) लीला करते हैं,—वेद आपकी इन दो प्रकारकी लीलाओंका ही वर्णन (करके उसका प्रतिपादन) करते हैं॥"180॥

अनुभाष्य—जनलोकमें ब्रह्मसत्र-यज्ञमें सेवा करनेके अभिलाषी ऋषियोंसे चतुःसनमेंसे एक ब्रह्मर्षि सनन्दन श्रुतियोंके द्वारा की गयी भगवद्-स्तुतिका वर्णन कर रहे हैं—

हे अजित (मायाद्यनभिभूत,) जय जय (निजोत्कर्षमवश्यमाविष्कुरु, कथं वा न करोषीति आदरे वीप्सा) दोषगृभीतगुणां (दोषाय आनन्दाद्यावरणाय गृभीता गृहीताः गुणाः यया तां) अगजगदोकसां (अगानि स्थावराणि जगन्ति जङ्गमानि ओकांसि शरीराणि येषां तेषां जीवानाम्) अजां (मायाम् अविद्यां) जहि (नाशय—यथा पुनरेषा सृष्ट्यादौ प्रवृत्तान् जीवान् न दुनोतीति भावः), यत् (यस्मात्) त्वम् आत्मना (स्वरूपभूतेन परमानन्देनैव तदभिन्नयैव शक्त्या) समवरुद्धसमस्तभगः (सम्प्राप्तसमग्रैश्वर्यः) असि [वशीकृतमायत्वात्, त्वमेव] अखिलशक्त्यवबोधक (अखिलाः प्राकृताप्राकृताः याः शक्त्यः तासां सर्वासाम् अवबोधक, भोक्तः, अधीश्वर, इति यावत्) क्वचित् (कदाचित् सृष्ट्यादिसमये) अजया (मायया सह) आत्मना (अङ्गाभासेन, स्वयं तु निर्लिप्तः) चरतः (ईक्षण-क्रीड़तः) ते (तव त्वां—कर्मणि षष्ठी) निगमः (वेदः)

अनुचरेत् (प्रतिपादयेत्—"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते", "यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै", "यः आत्मनि तिष्ठन्", "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतिभ्यः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। (श्रुतिके ये मन्त्र इसी बातका प्रतिपादन करते हैं—*"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"* अर्थात् जिनसे समस्त प्राणी-समुदाय उत्पन्न हुआ है, *"यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"* अर्थात् प्रारम्भमें श्रीकृष्णने ब्रह्माको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया और उन्होंने बादमें वैदिक ज्ञानका प्रचार किया, *"यः आत्मनि तिष्ठन्"* अर्थात् जो आत्मामें स्थित है, *"सतां ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"* अर्थात् ब्रह्म सत्य और अनन्त ज्ञानस्वरूप है॥ 180॥

महाप्रभुके द्वारा सभी भक्तोंको विदायी देना :—

एइ मत सर्वभक्तेर कहि' सब गुण।
सबारे विदाय दिल करि' आलिङ्गन॥ 181॥

अनुवाद—इस प्रकार सभी भक्तोंके समस्त गुणोंका वर्णन करनेके बाद महाप्रभुने उन सभी भक्तोंको आलिङ्गन करके उन्हें विदायी दी॥ 181॥

परस्परके भावि-विरहकी आशङ्कासे
भक्त और भगवान्‌का विषाद :—

प्रभुर विच्छेदे भक्त करेन रोदन।
भक्तेर विच्छेदे प्रभुर विषण्ण हैल मन॥ 182॥

अनुवाद—महाप्रभुसे विच्छेद होनेपर भक्त रोने लगे और भक्तके विच्छेदसे महाप्रभुका मन भी उदास हो गया॥ 182॥

श्रीगदाधरको टोटा-गोपीनाथकी सेवा देना :—

गदाधर-पण्डित रहिला प्रभुर पाशे।
यमेश्वरे प्रभु याँरे कराइला आवासे॥ 183॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डित महाप्रभुके पास ही रह गये। महाप्रभुने उन्हें यमेश्वरमें आवास-स्थान प्रदान किया॥ 183॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पाठान्तरमें *'जलेश्वरे'* अर्थात् 'जलेश्वरमें' है। यह पाठ शुद्ध और सार्थक नहीं लगता क्योंकि, जलेश्वर-ग्राममें श्रीगदाधर पण्डितकी किसी लीलाका उल्लेख नहीं है। समुद्र-बालुके पथसे यमेश्वर-टोटामें श्रीटोटा-गोपीनाथका मन्दिर है, वहीं श्रीगदाधर पण्डित (गोस्वामी) श्रीगोपीनाथकी सेवा और महाप्रभुकी सेवामें आविष्ट होकर रहते थे॥ 183॥

अनुभाष्य—*'यमेश्वर'*—पुरुषोत्तममें श्रीमन्दिरके दक्षिण-पश्चिम कोणमें बालुकाके ऊपर यमेश्वर-टोटा अथवा बागान है। महाप्रभुने श्रीगदाधर पण्डितको वहीं वासस्थान दिया॥ 183॥

छः भक्तोंके साथ महाप्रभुका पुरीमें अवस्थान :—

पुरी-गोसाञि, जगदानन्द, स्वरूप-दामोदर।
दामोदर-पण्डित, आर गोविन्द, काशीश्वर॥ 184॥

एइसब-सङ्गे प्रभु बैसे नीलाचले।
जगन्नाथ-दरशन नित्य प्रातःकाले॥ 185॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्द पुरी गोस्वामी, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीगोविन्द प्रभु और श्रीकाशीश्वरके साथ महाप्रभुने नीलाचलमें वास किया। वे प्रतिदिन प्रातःकालमें भगवान् श्रीजगन्नाथका दर्शन करते थे॥ 184-185॥

श्रीसार्वभौमका महाप्रभुको एक मास भिक्षा
ग्रहण करनेका निमन्त्रण :—

प्रभु-पाश आसि' सार्वभौम एक दिन।
योड़हात करि' किछु कैल निवेदन॥ 186॥

"एबे सब वैष्णव गौड़देशे चलि' गेल।
एबे प्रभुर निमन्त्रणे अवसर हैल॥ 187॥

'एक सम्पूर्ण मासके निमन्त्रण'को सुनकर महाप्रभुकी
आपत्ति; और संन्यासधर्मके विरुद्ध कहकर
भिक्षाका समय कम करना :—

एबे मोर घरे भिक्षा करह 'मास' भरि'।"
प्रभु कहे,—"धर्म नहे, करिते ना पारि॥"188॥

अनुवाद—एक दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुके पास आकर हाथ जोड़कर कुछ निवेदन किया,—"अब तो सब वैष्णव बङ्गाल लौट गये हैं, इसलिये अब आप मेरा निमन्त्रण अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे। अब आप एक मास तक प्रतिदिन मेरे घरपर भिक्षा ग्रहण कीजिये।" महाप्रभुने कहा,—"मैं ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि यह धर्म-सङ्गत नहीं है॥"186-188॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा भिक्षाके समयको बढ़ाना और महाप्रभुके द्वारा उसे कम करनेकी चेष्टासे एक दिन मात्र भिक्षामें ही महाप्रभुकी सम्मति :—

सार्वभौम कहे,—"भिक्षा करह 'विंश' दिन।"
प्रभु कहे,—"ए नहे यतिधर्म-चिह्न॥"189॥

सार्वभौम कहे पुनः,—दिन 'पञ्चदश'।
प्रभु कहे,—"तोमार भिक्षा 'एक' दिवस॥"190॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौमने कहा,—"कृपया फिर बीस दिन तक भिक्षा स्वीकार कीजिये।" महाप्रभुने कहा,—"ऐसा करना संन्यासीका धर्म नहीं है।" श्रीसार्वभौमने पुनः कहा कि पन्द्रह दिन तो भिक्षा स्वीकार कर लीजिये। महाप्रभुने कहा,—"तुम्हारे घर एक दिन भिक्षा ग्रहण करूँगा॥"189-190॥

बहुत दैन्य-विनयसे श्रीभट्टाचार्यकी भिक्षाकालको दस दिन करनेकी चेष्टा :—

तबे सार्वभौम प्रभुर चरणे धरिया।
'दशदिन भिक्षा कर' कहे विनति करिया॥191॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौमने महाप्रभुके चरण पकड़कर विनती करते हुए कहा कि अन्ततः दस दिन तो भिक्षा ग्रहण कीजिये॥191॥

अन्तमें पाँच दिनकी भिक्षा स्वीकार :—

प्रभु क्रमे क्रमे पाँच-दिन घटाइल।
पाँच-दिन ताँर भिक्षा-निमन्त्रण निल॥192॥

अनुवाद—महाप्रभुने एक-एक करके पाँच दिन कम किये और श्रीसार्वभौमके घर पाँच दिन भिक्षाका निमन्त्रण स्वीकार किया॥192॥

अनुभाष्य—भक्तवत्सल होनेपर भी महाप्रभुके द्वारा [संन्यास] आश्रम-धर्मका पालन॥188-192॥

दस संन्यासियोंके निमन्त्रणकी व्यवस्था :—

तबे सार्वभौम करे आर निवेदन।
"तोमार सङ्गे संन्यासी आछे दशजन॥193॥

श्रीपरमानन्द-पुरीको पाँच दिन भिक्षा-दान :—

पुरी-गोसाञि भिक्षा पाँचदिन मोर घरे।
पूर्वे आमि कहियाछोँ तोमार गोचरे॥194॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौमने एक और निवेदन करते हुए कहा,—"आपके साथ दस संन्यासी हैं। उनमेंसे श्रीपरमानन्द पुरी गोस्वामी मेरे घरपर पाँच दिन भिक्षा ग्रहण करेंगे, इस विषयमें मैंने आपको पहले भी अवगत कराया था॥193-194॥

अनुभाष्य—'दस संन्यासी'—1) श्रीपरमानन्द पुरी, 2) श्रीदामोदर-स्वरूप, 3) श्रीब्रह्मानन्द पुरी, 4) श्रीब्रह्मानन्द-भारती, 5) श्रीविष्णुपुरी, 6) श्रीकेशव-पुरी, 7) श्रीकृष्णानन्दपुरी, 8) श्रीनृसिंह-तीर्थ, 9) श्रीसुखानन्द-पुरी, 10) श्रीसत्यानन्द-भारती॥193॥

श्रीस्वरूपको कभी तो महाप्रभुके साथ, कभी अकेले चार दिन भिक्षा-दान देना स्वीकार :—

दामोदर-स्वरूप,—एइ बान्धव आमार।
कभु तोमार सङ्गे याबे, कभु एकेश्वर॥195॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर मेरे बान्धव हैं। ये कभी तो आपके साथ और कभी अकेले ही मेरे घरपर भिक्षाके लिये आयेंगे॥195॥

बाकी आठ संन्यासियोंको सोलह दिन भिक्षा-दान :—

आर अष्ट संन्यासीर भिक्षा दुइ दुइ दिवसे।
एक एक दिन, एक एक जने पूर्ण हइल मासे॥196॥

अनुवाद—अन्य आठ संन्यासी दो-दो दिन मेरे घरपर भिक्षा ग्रहण करेंगे। इस प्रकार एक-एक व्यक्तिको एक-एक दिन भिक्षा करानेसे पूरा मास हो जायेगा॥ 196॥

अनुभाष्य—*'आर अष्ट संन्यासी' अर्थात्* 'और आठ संन्यासी'—श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीदामोदर स्वरूपके अतिरिक्त बाकी आठ लोग। *'पूर्ण हैल मासे'* अर्थात् 'मास पूर्ण हो गया'—श्रीमहाप्रभुके 5 दिन, श्रीपरमानन्दपुरीके 5 दिन, श्रीदामोदर स्वरूपके 4 दिन, 8 अन्य संन्यासियोंके 16 दिन—कुल 30 दिन होनेसे एक मास पूर्ण हो गया॥ 196॥

दस संन्यासियोंको एक साथ भिक्षा करानेसे यथायोग्य मर्यादाकी रक्षामें असम्भावना-हेतु अपराधकी आशङ्का :—

बहुत संन्यासी यदि आइसे एक ठाञि।
सम्मान करिते नारि, अपराध पाइ॥ 197॥

अनुवाद—बहुत संन्यासी यदि एक ही साथ आयेंगे, तो मैं उनका उचित सम्मान नहीं कर पाऊँगा, अपितु उनके प्रति अपराध हो जायेगा॥ 197॥

कभी तो अकेले, और कभी श्रीस्वरूपके साथ निमन्त्रण :—

तुमिह निज-छाये आसिबे मोर घरे।
कभु सङ्गे आनिबे स्वरूप-दामोदरे॥"198॥

अनुवाद—आप भी केवल अपनी छायाके साथ अर्थात् अकेले ही मेरे घरपर आना और कभी श्रीस्वरूप दामोदरको अपने साथ लाना॥"198॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'निज-छाये'*—अपनी छाया लेकर अर्थात् अकेले॥ 198॥

महाप्रभुके अनुमोदनसे उस दिन उनको निमन्त्रण :—

प्रभुर इङ्गित पाञा आनन्दित मन।
सेइ दिन महाप्रभुर कैल निमन्त्रण॥ 199॥

अनुवाद—सारी व्यवस्थाके लिये महाप्रभुकी सम्मतिसे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका मन आनन्दित हो गया और उसी दिन उन्होंने महाप्रभुको निमन्त्रण दिया॥ 199॥

श्रीभट्टाचार्यकी पत्नी, षाठीकी माता—महाप्रभुकी भक्त :—

'षाठीर माता' नाम, भट्टाचार्येर गृहिणी।
प्रभुर महाभक्त तेँहो, स्नेहेते जननी॥ 200॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यकी पत्नी 'षाठीकी माता'-नामसे प्रसिद्ध थीं। वे महाप्रभुकी परम भक्त और स्नेहमें उनकी माताके समान ही थीं॥ 200॥

षाठीकी माताका रसोई बनाना :—

घरे आसि' भट्टाचार्य ताँरे आज्ञा दिल।
आनन्दे षाठीर माता पाक चड़ाइल॥ 201॥

अनुवाद—घरमें आकर श्रीभट्टाचार्यने उन्हें रसोई बनानेकी आज्ञा दी। षाठीकी माताने आनन्दसे रसोई बनाना आरम्भ कर दिया॥ 201॥

साग-फल आदि अनेक नैवेद्यका संग्रह :—

भट्टाचार्येर गृहे सब द्रव्य आछे भरि'।
येबा शाकफलादिक, आनिल आहरि'॥ 202॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यके घरमें खानेका सामान सदा पूर्ण मात्रामें रहता था। उसके अतिरिक्त जो कुछ साग, फल चाहिये था, उसे वे स्वयं संग्रह करके ले आये॥ 202॥

अनुभाष्य—*'भरि'*—पूर्ण; *'आहरि'*—जुगाड़ करके॥ 202॥

स्वयं श्रीभट्टाचार्यके द्वारा पत्नीकी रसोई बनानेमें सहायता :—

आपनि भट्टाचार्य करे पाकेर सब कर्म।
षाठीर माता—विचक्षणा, जाने पाकेर कर्म॥ 203॥

अनुवाद—स्वयं श्रीभट्टाचार्य रसोई बनानेमें अपनी पत्नीकी सहायता करने लगे। षाठीकी माता रसोई बनानेमें बहुत अनुभवी थीं और उन्हें बहुत अच्छा खाना बनाना आता था॥ 203॥

रसोई और भोगगृहका वर्णन :—

पाकशालार दक्षिणे—दुइ भोगालय।
एक घरे शालग्रामेर भोग–सेवा हय॥ 204॥

आर घर महाप्रभुर भिक्षार लागिया।
निभृते करियाछे भट्ट नूतन करिया॥ 205॥

बाह्ये एक द्वार तार, प्रभु प्रवेशिते।
पाकशालार एक द्वार अन्न प्रवेशिते॥ 206॥

अनुवाद—रसोई घरके दाहिनी ओर भोग लगानेके लिये दो कमरे थे। उनमेंसे एक कमरेमें शालग्राम भगवान्‌की भोग–सेवा होती थी। श्रीभट्टाचार्यने महाप्रभुकी भिक्षाके लिये एकान्तमें दूसरा नया कमरा बनवाया था। उस कमरेको ऐसे बनाया गया था कि बाहरकी ओर उसका एक ही द्वार था जो महाप्रभुके प्रवेश करनेके लिये था। उस कमरेका दूसरा द्वार रसोई घरसे जुड़ा हुआ था, जहाँसे परिवेशनके लिये भोजन लाया जाता था॥ 204–206॥

विचित्र नैवेद्यका वर्णन :—

बत्तिशा–आठिया कलार आङ्गटिया पाते।
तिन–मान तण्डुलेर उभारिल भाते॥ 207॥

पीत–सुगन्धि–घृते अन्न सिक्त कैल।
चारिदिके पाते घृत बहिया चलिल॥ 208॥

केयापत्र–कलाखोला–डोंगा सारि सारि।
चारिदिक धरियाछे नाना व्यञ्जन भरि'॥ 209॥

दशप्रकार शाक, निम्ब–तिक्त–सुख्त–झोल।
मरिचेर झाल, छानाबड़ा, बड़ा, घोल॥ 210॥

दुग्धतुम्बी, दुग्धकुष्माण्ड, बेसर, लाफ्‌रा।
मोचाघण्ट, मोचाभाजा, विविध शाक्‌रा॥ 211॥

वृद्धकुष्माण्डबड़ीर व्यञ्जन अपार।
फुलबड़ी–फल–मूल विविध प्रकार॥ 212॥

नव–निम्बपत्र–सह भृष्ट–वार्त्ताकी।
फुलबड़ी, पटोल–भाजा, कुष्माण्ड–मान–चाकी॥ 213॥

भृष्ट–माष–मुद्‌ग–सूप अमृत निन्दय।
मधुराम्ल, बड़ाम्लादि अम्ल पाँच छय॥ 214॥

मुद्‌गबड़ा, माषबड़ा, कलाबड़ा, मिष्ट।
क्षीरपुलि, नारिकेल, आर यत पिष्ट॥ 215॥

काँजिबड़ा, दुग्धचिड़ा, दुग्ध–लक्‌लकी।
आर यत पिठा कैल, कहिते ना शकि॥ 216॥

घृत–सिक्त परमान्न, मृत्कुण्डिका भरि'।
चाँपाकला–घनदुग्ध आम्र ताहा धरि॥ 217॥

रसाला–मथित दधि, सन्देश अपार।
गौड़े उत्कले यत भक्ष्येर प्रकार॥ 218॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने बत्तिशा–आठिया केलेके पत्तेपर तीन मान (बारह किलो) चावलको परोसा। फिर चावलको पीले सुगन्धित घीसे इतना सिक्त किया कि घी पत्तेसे चारों ओरसे बहने लगा। उन्होंने नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे भरे केवड़ेके पत्ते और केलेके तनेसे बने दोनोंको उस पत्तेके चारों ओर साथ–साथ रखा। उन व्यञ्जनोंमें दस प्रकारके साग, नीमके कड़वे पत्तोंसे बना सूप जिसे शुक्त कहते हैं, काली मिर्चका सूप, पनीरका बड़ा और अन्यान्य वस्तुओंके बने बड़े, मट्ठा, दूधमें पकी हुई लौकी, दूधमें पका हुआ कद्दू, पिसी सरसों डालकर बनायी गयी सब्जियाँ, मिश्रित सब्जियाँ, केलेके फूलकी सब्जी, तले हुए केलेके फूल, मीठा डालकर अनेक प्रकारकी बनायी गयी सब्जियाँ, पके हुए कद्दू और उड़दकी दालकी बड़ीसे बने अनेक व्यञ्जन, फुलबड़ी, फल तथा अनेक प्रकारके कन्द, कोमल नीमकी पत्तियोंके साथ बैंगनका भाजा, फूलबड़ी, परमलकी भाजी, कच्चे पेठेकी सब्जी, पेठा और अरबीके टुकड़े करके तलकर बनायी सब्जी, अमृतको भी परास्त करनेवाला तली हुई

उड़द और मूँगकी दालका सूप था। अन्य दोनोंमें खट्टी-मीठी चटनी, दालकी बड़ी देकर पाँच-छः प्रकारकी खट्टी चटनी आदि, मूँगकी दालका मीठा बड़ा, उड़दकी दालका मीठा बड़ा, पके केलेका मीठा बड़ा, मीठे-घने दूधसे बनी मिठाइयाँ, नारियलका पीठा और जितने भी प्रकारके मीठे व्यञ्जन हो सकते हैं, उन सबको परोसा। काँजी-बड़ा, दूधमें भिगोकर बनाया गया चिड़वा, लौकीकी खीर और अन्यान्य जितने प्रकारके मीठे व्यञ्जन बनाये, उनका वर्णन करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ। घी डालकर बनायी गयी खीरको मिट्टीके पात्रमें भरकर उसमें चाँपाकला (एक प्रकारका केला), घना दूध और आमको मिला दिया। अति स्वादिष्ट लस्सी और भाँति-भाँतिके सन्देश (खोयेकी मिठाई) भी बनाये थे। बङ्गाल और उड़ीसामें खाये जानेवाले अनेक खाद्य पदार्थोंको बनाया॥ 207-218॥

अनुभाष्य— *'उभारिल'*—उड़ेल दिया। *'दुग्धतुम्बी'*—दूधमें पकी हुई लौकी। *'बेसर'*—पिसी सरसों डालकर बनायी गयी सब्जी, उड़ीसामें उसे 'बेसर' कहते हैं। *'शाक्रा'*—चीनी डालकर बनायी गयी सब्जी। *'भृष्ट-वार्त्ताकी'*—बैंगन-भाजा; *'कुष्माण्ड-मान-चाकी'*—छोटे-छोटे टुकड़े करके पेठे और अरबीकी सब्जी। *'मधुराम्ल'*—चटनी अथवा खट्टा-मीठा। *'बड़ाम्ल'*—दालकी बड़ीके साथ बनायी गयी खट्टी चटनी। *'भृष्ट-माष-मुद्ग-सूप'*—भुनी उड़दकी दाल और भुनी मूँगकी दाल। *'माष-बड़ा'*—उड़दकी दालका बड़ा। *'दुग्ध-लक्लकी'*—लौकीकी खीर॥ 207-216॥

आसन और नैवेद्य-सज्जा :—

श्रद्धा करि' भट्टाचार्य सब कराइल।
शुभ्र-पीठोपरि सूक्ष्म वसन पातिल॥ 219॥

दुइ-पाशे, सुगन्धि शीतल जल-झारी।
अन्न-व्यञ्जनोपरि दिल तुलसी-मञ्जरी॥ 220॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रद्धापूर्वक श्रीभट्टाचार्यने सब प्रकारके व्यञ्जनोंको बनाया। तब उन्होंने सफेद लकड़ीके आसनपर एक महीन वस्त्र बिछाया। उन्होंने आसनके दोनों ओर सुगन्धित शीतल जलसे भरी सुराहियाँ रखीं। उन्होंने चावल और अन्य व्यञ्जनोंपर तुलसी मञ्जरियोंको रखा॥ 219-220॥

अनुभाष्य— *'शुभ्रपीठ'*—सफेद चौकीके ऊपर एक सूक्ष्म-वस्त्रके द्वारा आसन दिया गया॥ 219॥

अमृतगुटिका, पिठा-पानादि आइल।
जगन्नाथ-प्रसाद सब पृथक् धरिल॥ 221॥

अनुवाद—उन्होंने श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे अमृत-गुटिका और पीठा-पाना आदि जो मँगवाया था, उस जगन्नाथजीके प्रसादको अलगसे रखा॥ 221॥

अनुभाष्य—ग्रन्थकार श्रीमद् कविराज गोस्वामीने भोगके अति सुन्दर वर्णनके द्वारा अपने अति उत्कृष्ट पाककला (रसोई बनानेकी कला) और प्रस्तुत करनेकी निपुणताको यहाँ प्रकाशित किया है। मध्यलीला 3/44-45 संख्या देखें।

श्रीजगन्नाथ-प्रसादके साथ अपने घरपर बनाये गये अप्रसादी या अनर्पित-नैवेद्यको उन्होंने मिलाकर एक नहीं किया। वे इसके प्रति सावधान थे कि दोनों मिल नहीं जाँय, इसलिये उन्हें पृथक्-पृथक् रखा॥ 207-221॥

मध्याह्न-स्नानके बाद अकेले महाप्रभुका आगमन :—

हेनकाले महाप्रभु मध्याह्न करिया।
एकले आइल ताँर हृदय जानिया॥ 222॥

चरण धुलाकर श्रीभट्टाचार्यका महाप्रभुको घरके भीतर लाना :—

भट्टाचार्य कैल तबे पाद-प्रक्षालन।
घरेर भितरे गेला करिते भोजन॥ 223॥

अनुवाद—जब सब कुछ तैयारी हो गयी, तब महाप्रभु दोपहरका स्नानादि कृत्य करनेके बाद श्रीभट्टाचार्यकी हृदयकी अभिलाषा जानकर अकेले ही उनके घरपर आये। श्रीभट्टाचार्यने महाप्रभुके चरणकमल

धोये। तब महाप्रभु भोजन करनेके लिये कमरेके अन्दर गये॥ 222–223॥

नैवेद्यको देखकर महाप्रभुका विस्मय
और भोगकी प्रशंसा :—

अन्नादि देखिया प्रभु विस्मित हञा।
भट्टाचार्ये कहे किछु भङ्गी करिया॥ 224॥

"अलौकिक एइ सब अन्न-व्यञ्जन।
दुइ प्रहर भितरे केमने हैल रन्धन?॥ 225॥

शत चुलाय शत जन पाक यदि करे।
तबु शीघ्र एत द्रव्य रान्धिते ना पारे॥ 226॥

अनुवाद—महाप्रभु इतने सारे अन्न-व्यञ्जनादिको देखकर बहुत विस्मित हुए और उनकी ओर सङ्केत करते हुए उन्होंने श्रीभट्टाचार्यसे कहा,—"ये सब अन्न-व्यञ्जन तो बहुत अलौकिक हैं। दो प्रहर (छः घण्टे)के समयमें इतने प्रकारके व्यञ्जन कैसे तैयार हो गये? सौ चूल्होंपर सौ व्यक्ति भी यदि रसोई बनायें, तब भी इतनी जल्दी इतने सारे व्यञ्जन नहीं बना सकते॥ 224–226॥

तुलसी-मञ्जरीके दर्शनसे श्रीकृष्णके भोगका अनुमान :—

कृष्णेर भोग लागाञाछ,—अनुमान करि।
उपरे देखिये याते तुलसी-मञ्जरी॥ 227॥

भाग्यवान् तुमि, तोमार सफल उद्‌योग।
राधाकृष्णे लागाञाछ एतादृश भोग॥ 228॥

अन्नेर सौरभ्य, वर्ण—अति मनोरम।
राधाकृष्ण साक्षात् इँहा करयाछेन भोजन॥ 229॥

अनुवाद—सभी व्यञ्जनोंपर तुलसी मञ्जरीको देखकर मैं अनुमान लगा रहा हूँ कि आपने श्रीकृष्णको इनका भोग लगाया है। आप बहुत भाग्यवान् है, आपके द्वारा किया गया परिश्रम सफल है, क्योंकि आपने श्रीराधाकृष्णको ऐसा अद्भुत भोग लगाया है। अन्नकी सुगन्धि, वर्ण आदि अत्यन्त मनोरम हैं, इसलिये अवश्य ही श्रीराधाकृष्णने साक्षात् रूपसे इसको ग्रहण किया है॥ 227–229॥

अनुभाष्य—*'सौरभ्य'*—सुगन्ध; *'वर्ण'*—सफेद वर्ण॥ 229॥

भोगकी प्रशंसाके बाद महाप्रभुके
द्वारा अपने भाग्यकी प्रशंसा :—

तोमार बहुत भाग्य कत प्रशंसिब।
आमि—भाग्यवान्, इहार अवशेष पाब॥ 230॥

अनुवाद—आपका भाग्य बहुत महान् है, उसकी कितनी प्रशंसा करूँगा? मैं भी बहुत भाग्यवान् हूँ जो कि इस भोगका अवशेष प्राप्त करूँगा॥ 230॥

श्रीकृष्णके आसनको उठाकर अलग
पात्रमें प्रसादकी प्रार्थना :—

कृष्णेर आसन-पीठ राखह उठाञा।
मोरे प्रसाद देह' भिन्न पात्र करिया॥"231॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके आसन-चौकीको उठाकर ले जाओ। तब मुझे अलग पात्रमें प्रसाद दो॥"231॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभुकी कृपाके प्रभावका वर्णन :—

भट्टाचार्य बले,—"प्रभु, ना करह विस्मय।
येइ खाबे, ताँर शक्तये भोग सिद्ध हय॥ 232॥

उद्‌योग ना छिल मोर गृहिणीर रन्धने।
याँर शक्त्ये सिद्ध अन्न, सेइ ताहा जाने॥ 233॥

महाप्रभुको भोगका आसन अङ्गीकार करनेके लिये
अनुरोध, महाप्रभुके द्वारा श्रीकृष्णके आसनके प्रति
मर्यादा-बुद्धिके कारण उसे स्वीकार करनेमें असम्मति :—

एइ त' आसने बसि' करह भोजन।"
प्रभु कहे,—"पूज्य एइ कृष्णेर आसन॥"234॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"हे प्रभु, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जो भी इस भोजनको ग्रहण करेगा, उसकी शक्ति और कृपासे ही यह सम्भव हुआ है। मैंने और मेरी पत्नीने रसोई बनानेमें कोई विशेष

प्रयास नहीं किया। जिनकी कृपासे भोग बना है, वे सब कुछ जानते हैं। आप इस आसनपर ही बैठकर भोजन कीजिये।" परन्तु महाप्रभुने कहा,—"श्रीकृष्णका यह आसन तो पूजनीय है॥"232-234॥

श्रीकृष्णके द्वारा ग्रहण किया गया अन्न
और आसन—दोनों ही प्रसाद :—

भट्ट कहे,—"अन्न, पीठ,—समान प्रसाद।
अन्न खाबे, पीठे बसिते काँहा अपराध?॥"235॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"अन्नके समान आसन भी श्रीकृष्णका प्रसाद है। यदि अन्न खानेमें कोई अपराध नहीं है, तो फिर आसनपर बैठनेमें अपराध कैसे है?॥"235॥

अनुभाष्य—अन्न और पीठ अथवा चौकी—दोनों ही श्रीकृष्णके द्वारा भोग किये गये निर्मल प्रसाद हैं। भोगके अन्नको 'भगवान्‌का उच्छिष्ट' जानकर भोजन करके सम्मान और भगवान्‌के आसनके कार्यमें लगी हुई जानकर चौकीको भी उनका अवशेष 'प्रसाद' समझकर ग्रहण करनेसे किस प्रकारसे अपराध होगा?॥235॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीभट्टाचार्यके सुसिद्धान्तकी
प्रशंसा और (आसन) अङ्गीकार :—

प्रभु कहे,—"भाल कैले, शास्त्र-आज्ञा हय।
कृष्णेर सकल शेष भृत्य आस्वादय॥236॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आपका विचार अति सुन्दर है। शास्त्रकी भी आज्ञा है कि श्रीकृष्णके द्वारा छोड़ी गयी सभी वस्तुओंका ही दास आस्वादन करता है॥236॥

अमृतानुकणिका—श्रीकृष्णप्रसादी समस्त वस्तुएँ भक्तके लिये आस्वादनीय हैं, परन्तु मर्यादा और पूजनीयत्वकी रक्षा करते हुए। ये वस्तुएँ बाह्येन्द्रियोंके द्वारा पूर्ण रूपसे आस्वादनीय नहीं हैं, अन्तरेन्द्रियोंके द्वारा ही इनका पूर्ण आस्वादन सम्भव है।

श्रीहरिभक्तिविलास (1/80)में श्रीगुरुसेवाविधिके प्रसङ्गमें कूर्मपुराणमें श्रीव्यासगीतासे उद्धृत श्लोकमें कहा गया है—

"नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपासनहावपि।
आक्रामेदासनं छायामासन्दीं वा कदाचन॥"

अर्थात् "शिष्यको श्रीगुरुदेवके निर्माल्य, काष्ठ-पादुका, चर्म-पादुका, आसन, छाया और चौकीका कभी भी लङ्घन नहीं करना चाहिये।" श्रीगुरुदेवकी पादुका शिष्यके लिये पूजनीय वस्तु है, शिष्य कभी उसे अपनी पादुकाके रूपमें स्वीकार नहीं करता है॥236॥

भगवान्‌के द्वारा भुक्त प्रसादको स्वीकार
करनेसे ही दुष्पार मायाकी जय :—
श्रीमद्भागवत (11/6/46)में—

त्वयोपयुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि॥237॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥237॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आपको माला, गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार आदि जो कुछ अर्पित हुआ है, उससे विभूषित होकर आपके दासस्वरूप हम आपके समस्त उच्छिष्टका भोजन करते-करते ही आपकी मायाको जय करनेमें निश्चय ही समर्थ होंगे॥237॥

अनुभाष्य—भगवान् और उद्धवके वार्तालाप अथवा उद्धवगीताके आरम्भ होनेसे पूर्व भगवान्‌की इच्छासे द्वारकामें महा उत्पात आरम्भ होनेपर श्रीकृष्णके द्वारा प्रपञ्चमें प्रकट-लीलाका सङ्गोपन और अप्रकट-लीलामें प्रवेश करनेकी इच्छाको जानकर प्रियतम सेवक उद्धव गाढ़ प्रीतिपूर्वक श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं—

त्वयोपयुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः (भवदुपभुक्त-माल्य-सुरभिवस्त्रभूषणैः चर्चिताः अलंकृताः) उच्छिष्टभोजिनः (उच्छिष्टं प्रसादान्नं भोक्तुं शीलं येषां ते) दासाः वयं (किङ्कराः) हि (निश्चयार्थे) तव मायां (दुरत्ययां प्रकृतिं) जयेम (जेतुं शक्नुयाम)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥237॥

महाप्रभुकी प्रचुर अन्न ग्रहण करनेमें आपत्ति;
श्रीभट्टाचार्यकी उनसे शिकायत :—

तथापि एतेक अन्न खाओन ना याय।"
भट्ट कहे,—"जानि, खाओ यतेक युयाय॥ 238॥

नीलाचले भोजन तुमि कर बायान्न बार।
एक एक भोगेर अन्न शत शत भार॥ 239॥

अनुवाद—महाप्रभुने आगे कहा कि तो भी इतना अन्न नहीं खाया जा सकता।" श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"किन्तु मैं जानता हूँ कि आप कितना खा सकते हैं। नीलाचलमें (श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें) आप दिनमें बावन बार भोजन करते हैं और हर बार आप सैंकड़ों पात्रोंमें भरे भोगको खाते हैं॥ 238-239॥

महाप्रभुका द्वारका, मथुरा और
व्रजलीलामें भोजन-प्रकार :—

द्वारकाते षोल-सहस्र महिषीर घरे।
अष्टादश माता, आर यादवेर घरे॥ 240॥

व्रजे ज्येठा, खुड़ा, मामा, पिसादि गोपगण।
सखावृन्द सबार घरे द्विसन्ध्या-भोजन॥ 241॥

अनुवाद—द्वारकामें सोलह हजार महिषियोंके घरोंमें, अठारह माताओं और यादवोंके घरोंमें एवं व्रजमें ताऊ, चाचा, मामा, फूफा आदि गोपों और सभी सखाओंके घरोंमें दोनों सन्ध्याओंमें आप भोजन करते हो॥ 240-241॥

अनुभाष्य—*'अष्टादश माता'*—देवकी, रोहिणी आदि।

'व्रजे ज्येठा'—अर्थात् ताऊ। (श्रीरूपप्रभु कृत श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिकामें)—

"उपनन्दोऽभिनन्दश्च पितृव्यौ पूर्वजौ पितुः"

अर्थात् 'उपनन्द' और 'अभिनन्द'—ये दोनों श्रीकृष्णके ताऊजी हैं।

'खुड़ा'—अर्थात् चाचा। (श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिकामें)—

"पितृव्यौ तु कनीयांसौ स्यातां सन्नन्द-नन्दनौ"

अर्थात् 'सन्नन्द' और 'नन्दन' अथवा 'सुनन्द' और 'पाण्डव'—ये कृष्णके चाचा हैं।

'मामा'—(श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिकामें)—

"यशोधर-यशोदेव-सुदेवाद्यास्तु मातुलाः"

अर्थात् 'यशोधर', 'यशोदेव' और 'सुदेव' आदि श्रीकृष्णके मामा हैं।

'फूफा'—(श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिकामें)—

"महानीलः सुनीलश्च रमणावेतयोः क्रमात्"

अर्थात् 'महानील' और 'सुनील'—श्रीकृष्णके ये दो फूफा हैं, वे 'सानन्दा' और 'नन्दिनी'-नामक दो बुआओंके पति हैं।

'सखावृन्द'—(श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिकाके परिशिष्टमें)—

"विशाल-वृषभौजस्वि-देवप्रस्थ-वरुथपाः।
मन्दारः कुसुमापीड़मणिबन्धकरास्तथाः॥
मन्दरश्चन्दनः कुन्दः कलिन्द-कुलिकादयः।
'कनिष्ठकल्पाः' सेवायां सखायो विपुलाग्रहाः॥"
"श्रीदामा दामा सुदामा वसुदाम तथैव च।
किङ्किणी-भद्रसेनांशु स्तोककृष्णाः विलासिनः।
पुण्डरीक-विटङ्काक्ष-कलविङ्क-प्रियङ्कराः।
एते 'प्रियसखाः' शान्ताः कृष्णप्राणसमा मताः॥"
"सुबलार्ज्जुन-गन्धर्व-वसन्तोज्ज्वल-कोकिलाः।
स-नन्दन-विदग्धाद्याः प्रियनर्मसखा मताः॥"

[अर्थात् "विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरुथप, मन्दार, कुसुमापीड़, मणिबन्धकर, मन्दर, चन्दन, कुन्द, कलिन्द, कुलिक आदि अनेक श्रीकृष्णके 'सखा' हैं। ये श्रीकृष्णसे आयुमें छोटे हैं और सदा श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर रहते हैं। श्रीदाम, दाम, सुदाम, वसुदाम, किङ्किणी, भद्रसेन, अंशु, स्तोककृष्ण, विलासी, पुण्डरीक, विटङ्काक्ष, कलविङ्क, प्रियङ्कर—ये श्रीकृष्णके 'प्रियसखा' हैं और उनके समान आयुके हैं। सुबल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दन और विदग्ध श्रीकृष्णके 'प्रियनर्मसखा' हैं।"]॥ 240-241॥

उस परिमाणकी तुलनामें श्रीभट्टाचार्यके द्वारा
अर्पित अन्न तो अति अल्प :—

गोवर्धन-यज्ञे अन्न खाइला राशि राशि।
तार लेखाय एइ अन्न नहे एक ग्रासी॥ 242॥

अनुवाद—गोवर्धनके अन्नकूटमें भी आपने जितना भोजन किया था, उसकी तुलनामें यह अन्न तो एक ग्रास भी नहीं है॥ 242॥

अनुभाष्य—*'तार लेखाय'*—उसकी तुलनामें अथवा अनुपातमें॥ 242॥

श्रीभट्टाचार्यका दैन्य :—

तुमि त' ईश्वर, मुञि—क्षुद्र जीव छार।
एक-ग्रास माधुकरी करह अङ्गीकार॥"243॥

अनुवाद—आप तो ईश्वर हैं और मैं एक अति क्षुद्र जीव हूँ। कृपया मेरे घरमें इस एक ग्रासको स्वीकार कीजिये॥"243॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'माधुकरी'*—मधुमक्खीकी वृत्तिके द्वारा प्राप्त ग्रास॥ 243॥

श्रीभट्टाचार्यके वचन सुनकर महाप्रभुका प्रसाद-सेवन :—

एत शुनि' हासि' प्रभु बसिला भोजने।
जगन्नाथेर प्रसाद भट्ट देन हर्ष-मने॥ 244॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु मुस्कुराये और भोजन करनेके लिये बैठे। श्रीभट्टाचार्यने बड़े आनन्दसे पहले उन्हें श्रीजगन्नाथका प्रसाद लाकर दिया॥ 244॥

श्रीभट्टाचार्यका दामाद—षाठीका पति
महाप्रभुका निन्दक 'अमोघ' :—

हेनकाले 'अमोघ',—भट्टाचार्येर जामाता।
कुलीन, निन्दक तेँहो षाठी-कन्यार भर्त्ता॥ 245॥

अनुवाद—इसी समय श्रीभट्टाचार्यका दामाद अमोघ जो उनकी पुत्री षाठीका पति था, वहाँ आ गया। यद्यपि उसका जन्म उच्च ब्राह्मणकुलमें हुआ था, तथापि वह दूसरोंके दोष देखता और निन्दा करता था॥ 245॥

श्रीभट्टाचार्यको हाथमें लाठी लिये
देखकर अमोघको भय :—

भोजन देखिते चाहे, आसिते ना पारे।
लाठी-हाते भट्टाचार्य आछेन दुयारे॥ 246॥

अनुवाद—वह देखना चाहता था कि महाप्रभु क्या खा रहे हैं, किन्तु वह भीतर आ नहीं सका, क्योंकि श्रीभट्टाचार्य अपने हाथमें लाठी लेकर द्वारपर बैठे हुए थे॥ 246॥

श्रीभट्टाचार्यका ध्यान बँटनेपर महाप्रभुके
पात्रमें बहुत अन्नको देखकर महाप्रभुकी निन्दा :—

तेँहो यदि प्रसाद दिते हैला आन-मन।
अमोघ आसि' अन्न देखि' करये निन्दन॥ 247॥

"एइ अन्ने तृप्त हय दश बार जन।
एकेला संन्यासी करे एतेक भक्षण!"॥ 248॥

अनुवाद—जैसे ही श्रीभट्टाचार्य महाप्रभुको भोजन परोसने लगे और थोड़ा असावधान हो गये, उसी समय अमोघ भीतर आ गया। इतनी सारी भोजन-सामग्रीको देखकर वह निन्दा करने लगा,—"इतने भोजनसे तो दस-बारह लोगोंका पेट भर सकता है और यहाँ केवल एक ही संन्यासी इतना सब खा रहा है॥"247-248॥

श्रीभट्टाचार्यके मुड़कर देखते ही
अमोघका वहाँसे भाग जाना :—

शुनि' भट्टाचार्य तबे उलटि' चाहिल।
ताँर अवधान देखि' अमोघ पलाइल॥ 249॥

अनुवाद—अमोघकी बात सुनकर श्रीभट्टाचार्यने दृष्टि घुमाकर उसे देखा। श्रीभट्टाचार्यको सावधान देखकर अमोघ तुरन्त वहाँसे भाग गया॥ 249॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अवधान'*—सावधान॥ 249॥

श्रीभट्टाचार्यका हाथमें लाठी लेकर उसके पीछे दौड़ना :—

भट्टाचार्य लाठि लञा मारिते धाइल।
पलाइल अमोघ, तार लाग ना पाइल॥ 250॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्य लाठी लेकर उसे मारनेके लिये दौड़े, किन्तु अमोघ इतनी तेजीसे भागा कि श्रीभट्टाचार्य उसे पकड़ नहीं पाये॥ 250॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभु-निन्दक अमोघकी तीव्र निन्दा और शाप :—

तबे गालि, शाप दिते भट्टाचार्य आइला।
निन्दा शुनि' महाप्रभु हासिते लागिला॥ 251॥

अनुवाद—तब श्रीभट्टाचार्य उसे गाली निकालते हुए और शाप देते हुए लौट आये। उनके मुखसे अमोघकी निन्दाको सुनकर महाप्रभु हँसने लगे॥ 251॥

महाप्रभुकी निन्दा सुनकर श्रीभट्टाचार्यकी पत्नीको दुःख :—

शुनि' षाठीर माता शिरे-बुके घात मारे।
'षाठी राण्डी हउक'—इहा बले बारे बारे॥ 252॥

अनुवाद—इस घटनाको सुनकर षाठीकी माता (श्रीभट्टाचार्यकी पत्नी) अपने सिर और छातीको पीटने लगी और बार-बार कहने लगीं,—'षाठी विधवा हो जाय॥'252॥

महाप्रभुके द्वारा दोनोंको सान्त्वना देनेके बाद प्रसाद-सेवन :—

दुँहार दुःख देखि' प्रभु दुँहा प्रबोधिया।
दुँहार इच्छाते भोजन कैल तुष्ट हञा॥ 253॥

अनुवाद—दोनोंको दुःखी देखकर महाप्रभुने उन दोनोंको सान्त्वना प्रदान की। उन दोनोंकी इच्छासे महाप्रभुने भोजन ग्रहण किया और वे सन्तुष्ट हुए॥ 253॥

महाप्रभुका आचमन :—

आचमन कराञा भट्ट दिल मुखवास।
तुलसी-मञ्जरी, लवङ्ग, एलाचि रसवास॥ 254॥
सर्वाङ्गे लेपिल प्रभुर सुगन्धि चन्दन।
दण्डवत् हञा बले सदैन्य वचन॥ 255॥

अनुवाद—महाप्रभुको आचमन करानेके बाद श्रीभट्टाचार्यने उन्हें तुलसी-मञ्जरी, लौंग, सुगन्धित रसीली इलायची आदि प्रस्तुत की। तब उन्होंने महाप्रभुके सभी अङ्गोंमें चन्दनका लेप किया और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके दीनतापूर्वक कहने लगे॥ 254-255॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'एलाचि रसवास'*—रस और सुगन्धयुक्त इलायची॥ 254॥

अमोघके द्वारा की गयी निन्दाके लिये क्षमा-प्रार्थना :—

निन्दा कराइते तोमा आनिनु निज-घरे।
एइ अपराध, प्रभु, क्षमा कर मोरे॥ 256॥

अनुवाद—मैंने आपकी निन्दा करवानेके लिये आपको अपने घरपर बुलाया था। मुझसे यह बहुत बड़ा अपराध हुआ है। हे प्रभो! कृपा करके आप मेरे इस अपराधको क्षमा कीजिये॥ 256॥

अदोषदर्शी महाप्रभु :—

प्रभु कहे,—"निन्दा नहे, 'सहज' कहिल।
इहाते तोमार तार कि अपराध हैल?"॥ 257॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अमोघने निन्दा नहीं की, बल्कि 'सत्य' बात ही कही। इसमें तुम्हारा या उसका क्या अपराध हुआ?॥"257॥

महाप्रभुके पीछे-पीछे श्रीभट्टाचार्यका चलना :—

एत बलि' महाप्रभु चलिला भवने।
भट्टाचार्य ताँर घरे गेला ताँर सने॥ 258॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभु अपने वास-स्थानकी ओर चल दिये। श्रीभट्टाचार्य भी उनके साथ उनके घर तक गये॥ 258॥

श्रीभट्टाचार्यका बहुत दैन्य और शरणागति :—

प्रभु-पदे बहु आत्मनिवेदन कैल।
ताँरे शान्त करि' प्रभु घरे पाठाइल॥ 259॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने महाप्रभुके चरणोंमें पड़कर अनेक प्रकारसे अपने हृदयकी ग्लानिको व्यक्त किया। तब महाप्रभुने उन्हें शान्त करके उनके घर वापिस भेजा॥ 259॥

घरमें पत्नीके साथ श्रीभट्टाचार्यकी गम्भीर खेद-उक्ति :—

घरे आसि' भट्टाचार्य षाठीर माता-सने।
आपना निन्दिया किछु बलेन वचने॥ 260॥

श्रीचैतन्य-निन्दकका वध ही उसके द्वारा
किये गये अपराधका प्रायश्चित :—

"चैतन्य-गोसाञिर निन्दा शुनि याहा हैते।
तारे वध कैले, हय पाप-प्रायश्चित्ते॥ 261॥

अनुवाद—घरमें लौटकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अपनी पत्नी, षाठीकी माताके साथ बैठकर अपनी निन्दा करने लगे। तब उन्होंने कहा,—"श्रीचैतन्य गोसाईंकी निन्दा जिसके मुखसे सुनी है, उसका वध करनेसे ही उसके पापोंका प्रायश्चित हो सकता है॥ **260-261**॥

अनुभाष्य—*'वैष्णव-निन्दाका फल'*—(हः भः विः, 10वें विः में उद्धृत स्कन्दपुराणके मार्कण्डेय-भगीरथ-संवादमें)—

"यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम।
करोति तस्य नश्यन्ति अर्थधर्मयशःसुताः॥
निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनाम्।
पतन्ति पितृभिः सार्द्धं महारौरवसंज्ञिते॥
हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति।
क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने 'पतनानि षट्'॥"

(हः भः विः, 10वें विः में उद्धृत द्वारकामाहात्म्यमें प्रह्लाद-बलि-संवादमें)—

"करपत्रैश्च फाल्यन्ते सुतीव्रैर्यमशासनैः।
निन्दां कुर्वन्ति ये पापाः वैष्णवानां महात्मनाम्॥"

[अर्थात् "हे नृपवर! जो वैष्णवका उपहास करते हैं, उनके अर्थ, धर्म, यश और सन्तान आदि विनष्ट हो जाते हैं। जो सब मूढ़ व्यक्ति महात्मा वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं, वे पितृ-पुरुषों सहित महारौरव-नामक नरकमें पतित होते हैं। वैष्णवपर प्रहार, उनकी निन्दा, उनसे विद्वेष, प्रणामादिके द्वारा उनका अभिनन्दन नहीं करना, वैष्णवके प्रति क्रोध प्रकाशित करना और वैष्णवके दर्शनसे आनन्दित नहीं होना—ये छः पतनके कारण हैं। जो समस्त पापी महात्मा वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं, वे यमके शासनके कारण अत्यन्त तीखे आरेके जैसे अस्त्रके द्वारा खण्डित किये जाते हैं।"]

'विष्णुनिन्दा-फल'—(भक्तिसन्दर्भमें 314 संख्यामें उद्धृत भाः 7/1/16, 22 श्लोककी टीका देखें)।

"ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम्।
शतजन्मार्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम्॥
ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके।
भक्षिताः कीटसङ्घेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
श्रीविष्णोरवमाननाद् गुरुतरं श्रीवैष्णवोल्लङ्घनम्।
तदीयदूषकजनान् न पश्येत् पुरुषाधमान्।
तैः सार्द्धं वञ्चकजनैः सहवासं न कारयेत्॥"

श्रीजीवप्रभु कृत 'भक्तिसन्दर्भमें'—नामपराधान्तर्गत 'साधुनिन्दा'-फल-वर्णन-प्रसङ्गमें 265 संख्यामें उद्धृत (भाः 10/74/40)—

'निन्दां भगवतः शृण्वन् तत्परस्य जनस्य वा।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः॥'

ततोऽपगमश्चासमर्थस्य एव; समर्थेन तु निन्दकजिह्वा छेत्तव्या; तत्राप्यसमर्थेन स्वप्राणपरित्यागोऽपि कर्त्तव्यः।

यथोक्तं देव्या—(भाः 4/4/17)—

"कर्णौ पिधाय निरियात् यदकल्प ईशे
धर्मावितर्यशृणिभिर्नृभिरस्यमाने।
छिन्द्यात् प्रसह्य रुषतीमसतां प्रभुश्चे-
जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत् स धर्मः॥" इति।

[अर्थात् "जो श्रीहृषीकेश एवं उनके पवित्र भक्तोंकी निन्दा करते हैं, उनके सौ जन्मोंमें अर्जित पुण्य निश्चित रूपसे विनष्ट हो जाते हैं। जब तक चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते हैं, तब तक भयानक महाघोर कुम्भीपाक नरकमें वे कीटोंके द्वारा खाये जाते हैं। भगवान् श्रीविष्णुकी अवज्ञाकी अपेक्षा श्रीवैष्णवका उल्लङ्घन अधिक भारी अपराध है। इसलिये विष्णुभक्तोंकी निन्दा करनेवाले अधम पुरुषोंका दर्शन नहीं करना चाहिये और ऐसे झूठे आक्षेप करनेवालोंके साथ एक स्थानपर भी नहीं रहना चाहिये।" श्रीभक्तिसन्दर्भमें साधुनिन्दाके फलके वर्णनके प्रसङ्गमें—"श्रीभगवान्‌की अथवा भगवद्भक्तकी निन्दा सुनकर जो उस स्थानको छोड़कर नहीं चले जाते, वे भी सुकृतिसे च्युत होकर अधोगतिको प्राप्त करते हैं।"—यहाँ जो उस स्थानसे चले जानेका विधान

है, वह केवल असमर्थ व्यक्तिके लिये है। किन्तु सामर्थ्य होनेपर उक्त निन्दककी जिह्वा काट देनी चाहिये। ऐसा करनेमें असमर्थ होनेपर अपने प्राणोंका परित्याग करना ही कर्त्तव्य बन जाता है। जैसे, श्रीपार्वतीने कहा,—"कोई दुस्साहसी व्यक्ति धर्मरक्षक महापुरुषकी निन्दा करे और यदि उक्त निन्दकके विनाश करनेमें अथवा अपने प्राणोंके त्यागमें कोई समर्थ नहीं हो, तो उसके लिये दोनों कानोंको बन्द करके उस स्थानसे चले जाना ही कर्त्तव्य है। समर्थ होनेपर उस दुर्जनकी कटुभाषिणी जिह्वाको बलपूर्वक काटकर (निन्दा श्रवणरूपी पापका प्रायश्चित करनेके लिये) स्वयं प्राण त्याग करना चाहिये—यही धर्मके रूपमें कहा गया है।"] ॥ 261 ॥

ऐसे करनेमें असमर्थ व्यक्तिके लिये प्राण-त्याग; किन्तु स्वयं और दामाद, दोनों ही 'शौक्र-ब्राह्मण' होनेके कारण हत्याके अयोग्य :—

किम्वा निज-प्राण यदि करि विमोचन।
दुइ योग्य नहे, दुइ—शरीर ब्राह्मण ॥ 262 ॥

हरि-गुरु-वैष्णवके निन्दकका सङ्ग सम्पूर्ण रूपसे परित्याग करने योग्य, उनके मुखका दर्शन भी अनुचित :—

पुनः सेइ निन्दकेर मुख ना देखिब।
परित्याग कैलुँ, तार नाम ना लइब ॥ 263 ॥

अनुवाद—अथवा अपने प्राणोंका त्याग कर दूँ। किन्तु ये दोनों कार्य ही उचित नहीं हैं, क्योंकि हम दोनों ही शरीरसे ब्राह्मण हैं। मैं फिर कभी भी उस निन्दकका मुख नहीं देखूँगा। मैं उसका सदाके लिये परित्याग करता हूँ, आजके बाद मैं उसका नाम तक भी नहीं लूँगा ॥ 262-263 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अमोघ—ब्राह्मण है, उसका वध नहीं किया जा सकता; [श्रीभट्टाचार्य] स्वयं भी ब्राह्मण हैं, आत्महत्या भी अनुचित हैं, दोनों कार्य ही करनेके योग्य नहीं हैं। इसलिये उस निन्दकका मुख नहीं देखना ही कर्त्तव्य है ॥ 262-263 ॥

अनुभाष्य—भाः 1/7/53 श्लोक—"ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः"—इसकी श्रीधरटीकामें उद्धृत स्मृतिके वचनमें ब्रह्म-बन्धुके वध-समर्थनकी व्यवस्था—"आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम्। जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत्।" पुनः (भाः 1/7/57 श्लोक)—"वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापनं तथा। एष हि ब्रह्मबन्धुनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥" [अर्थात् (भाः 1/7/53)—"ब्राह्मणके अधम होनेपर भी उसे मारना उचित नहीं है, आततायी वधके योग्य है।" इसकी श्रीधरपाद-कृत टीकामें,—"वध करनेकी इच्छासे आनेवाले वेदान्तमें निपुण आततायीको मारनेसे उसके द्वारा ब्रह्महत्या नहीं होती।" (भाः 1/7/57)—"सिरका मुण्डन, धन-छीन लेना और उसे उसके स्थानसे निकाल देना—इस प्रकार ही अधम ब्राह्मणोंका वध हुआ करता है; उनके लिये सिर काटना आदि अन्य दैहिक वधका विधान नहीं है।"] ॥ 262 ॥

हरि-गुरु-वैष्णव-द्वेषी पति—पत्नीके द्वारा निश्चित रूपसे त्याग करने योग्य :—

षाठीरे कह—तारे छाड़ुक, से हइल 'पतित'।
'पतित' हइले भर्त्ता, त्यजिते उचित ॥ "264 ॥

अनुवाद—तब श्रीभट्टाचार्यने अपनी पत्नीसे कहा—तुम षाठीसे कहो कि वह उसे छोड़ दे, क्योंकि वह पतित हो गया है। पतिके पतित हो जानेपर उसे त्याग करना ही उचित है ॥ "264 ॥

अनुभाष्य—(भाः 5/5/18)—"न पतिश्च स स्यात् न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्" अर्थात् जो स्वयं श्रीकृष्णभजन नहीं करते, और न ही श्रीकृष्णविमुखता अथवा श्रीकृष्ण-विस्मृतिरूपी निकट उपस्थित मृत्युके हाथसे पत्नीकी रक्षा कर सकते हैं, वे पतित हैं, इसलिये वे पति नहीं हैं। बाहरी दृष्टिकोणसे,—श्रीकृष्णके प्रति समर्पित आत्मा पत्नीरूपी कोई भक्त यदि निष्कपटरूपसे शुद्ध श्रीकृष्णभजनके उद्देश्यसे द्विजपत्नियोंकी भाँति श्रीकृष्णके अभक्त अथवा विरोधी 'पति'-अभिमानी

व्यक्तिके सङ्गको त्याग करके घरमें ही रहे, तो भी उसके द्वारा किसी भी विधिका उल्लङ्घन नहीं होता। स्वयं भगवान्‌ने ही इस विषयमें द्विजपत्नियोंसे कहा (भाः 10/23/31-32)—"मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पति, पिता, भाई, पुत्र आदि कोई भी बन्धु-बान्धव तुमसे असूया (गुणमें भी दोष-दर्शन) नहीं कर पायेंगे; मेरी आज्ञासे देवता भी तुम्हारे आचरणका सदैव अनुमोदन करेंगे। वास्तवमें, इस जगत्‌में केवल मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मेरे प्रति अनुरागकी उत्पत्तिका कारण नहीं होता। मुझमें शुद्ध भावसे निरन्तर मनका संयोग करनेसे शीघ्र ही मेरी प्राप्ति होती है॥"**264**॥

स्मृति वचन :—

"पतिश्च पतितं त्यजेत्॥"265॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **265**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पतित पतिका परित्याग करना चाहिये।

(भाः 7/11/28)—

"सन्तुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रिय-सत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्॥"

[अर्थात् "जो कुछ मिल जाय, पत्नी उसमें सन्तुष्ट रहे, किसी वस्तुके लिये न ललचाये, सभी कार्योंमें चतुर और धर्मज्ञ हो, सत्य और प्रिय बोले। अपने कर्त्तव्यमें सावधान रहे। पवित्रता और स्नेहयुक्त होकर यदि पति पतित न हो तो उसका सहवास करे।"]॥ **265**॥

अनुभाष्य—भाः 7/11/28 श्लोककी श्रीधरटीकामें उद्धृत याज्ञवल्क्य-वाक्य—

"आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातक-दूषितः।"

अर्थात् "महापातकसे दूषित पतिकी अन्य सेवाएँ करते हुए भी जब तक उसकी शुद्धि न हो जाय, तब तक पत्नीको उसके साथ सहवास करनेकी प्रतीक्षा करनी चाहिये॥"**265**॥

अमोघको हैजेका रोग :—

सेइ रात्रे अमोघ काँहा पलाञा रहिल।
प्रातःकाले तार विसूचिका-व्याधि हैल॥ 266॥

अनुवाद—उस रात अमोघ कहीं भाग गया। और प्रातःकालमें ही उसे हैजेका रोग हो गया॥ **266**॥

श्रीचैतन्यके विद्वेषीकी मृत्युकी सम्भावनाको सुनकर श्रीभट्टाचार्यका हर्ष :—

अमोघ मरेन—शुनि' कहे भट्टाचार्य।
"सहाय हइल दैव, कैल मोर कार्य॥ 267॥

ईश्वर-अपराधका फल तत्क्षणात् दिखा :—

ईश्वरे त' अपराध फले ततक्षणे।
एत बलि' पड़े दुइ शास्त्रेर वचने॥ 268॥

अनुवाद—अमोघ हैजेसे मर रहा है, ऐसा सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"विधाता मेरे अनुकूल हो गये हैं। मैं जो करना चाहता था, वह कार्य वे स्वयं कर रहे हैं। ईश्वरके प्रति किये गये अपराधका फल तुरन्त मिलता है। यह कहकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने शास्त्रोंके दो श्लोक बोले॥ **267-268**॥

महाभारतके वनपर्व (241/15)में :—

महता हि प्रयत्नेन हस्त्यश्वरथपत्तिभिः।
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम्॥ 269॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **269**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिकोंका प्रचुर रूपसे संग्रह करके बड़े प्रयाससे हमें जो करना पड़ता, गन्धर्वोंने वह कर दिया है॥ **269**॥

अनुभाष्य—दुर्योधन कर्णके द्वारा सञ्चालित अपनी सेनाके साथ वनमें जा रहा था और गन्धर्वोंके साथ उसका युद्ध हुआ। परन्तु गन्धर्वराज चित्रसेनकी सेना अधिक बलशाली थी, इसलिये उसने सभी कौरवोंको बन्दी बना लिया। उस समय पाण्डव उसी वनमें अज्ञातवासमें रह रहे थे। दुर्योधनके मन्त्रियोंने वनवासी

युधिष्ठिरसे सहायताकी प्रार्थना की। उस समय भीमसेनने दुर्योधन आदिके पहले किये गये अत्याचारोंका स्मरण करके प्रतिशोध लेनेके इच्छासे कहा—

महता (अतिशयेन) प्रयत्नेन (प्रयासेन) हस्त्यश्वरथपत्तिभिः (गजराजिरथैः पत्तिभिः पदातिभिः; 'सन्नह्य गजराजिभिः' इति पाठान्तरश्च) यत् (दुर्योधनादि-कौरव-पराजयकार्यम्) अनुष्ठेयं (सम्पादनीयम् अद्य) गन्धर्वैः (चित्रसेनचालितैः कर्त्तृभूतैः) तत् अनुष्ठितं (सम्पदितं—कौरवादयः शत्रवः पराजिताः इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—बहुत प्रयाससे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सैनिकोंको हम एकत्रित करके युद्धमें दुर्योधनादि कौरवोंको परास्त कर पाते, वह कार्य (कौरवोंकी पराजय) चित्रसेनके सञ्चालनमें गन्धर्वोंकी सेनाने कर दिया है॥ 269॥

विष्णु-वैष्णव-विद्वेषका फल :—
श्रीमद्भागवत (10/4/46)में—

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥"270॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 270॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मनुष्यके द्वारा महान् व्यक्तिका अनादर करनेसे उसकी आयु, श्री (सम्पत्ति), यश, धर्म, लोक-परलोक और आशीर्वाद—ये सब श्रेष्ठ वस्तुएँ नाश हो जाती हैं॥ "270॥

पन्द्रहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—भोजराज कंस बहन देवकीकी कन्यारूपी योगमायाको नहीं मार पाया और उसके मुखसे अपने पूर्वशत्रु विष्णुके आविर्भावकी बातको सुना। तब कंसने असुर स्वभाववाले विष्णु-वैष्णव-विद्वेषी मन्त्रियोंके साथ परामर्श करनेके बाद विष्णुभक्त-साधुओं-ऋषियोंको मारनेके लिये दानवोंको आज्ञा दी। श्रीशुकदेवने परीक्षितको विष्णु-वैष्णव-विद्वेषके फलका वर्णन करते हुए कहा—

महदतिक्रमः (महतां विष्णुवैष्णवानाम् अतिक्रमः कायिक-मानसिक-वाचनिकानादरः, अतः वैष्णवापराधः) पुंसः (नरस्य) आयुः, श्रियं, यशः, धर्मं, लोकान् (धर्मसाध्यस्वर्गादीन्) आशिषः (निजवाञ्छितानि एव) च सर्वाणि श्रेयांसि (साध्यसाधनानि कल्याणानि) हन्ति (विनाशयति)।

श्लोक-भावानुवाद—विष्णु-वैष्णवोंका कायिक-मानसिक-वाचिक अनादर करनेपर उस वैष्णवापराधके फलस्वरूप मनुष्यकी आयु, सम्पत्ति, यश, धर्म, धर्मके पालनसे इच्छित स्वर्ग आदि लोकोंकी प्राप्ति और साध्य-साधन-कल्याणका विनाश हो जाता है।

अन्त्यलीला 3/146 और 163 संख्या देखें॥ 270॥

श्रीगोपीनाथसे महाप्रभुके द्वारा
श्रीभट्टाचार्यके बारेमें पूछना :—

गोपीनाथाचार्य गेला प्रभु-दरशने।
प्रभु ताँरे पुछिल भट्टाचार्य-विवरणे॥ 271॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्य जब महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये गये, तब महाप्रभुने उनसे श्रीभट्टाचार्यके विषयमें पूछा॥ 271॥

श्रीगोपीनाथके मुखसे पत्नी-सहित श्रीभट्टाचार्यका
महाप्रभु-निन्दा श्रवण करनेके कारण उपवास और
अमोघकी मरणासन्न दशाका श्रवण :—

आचार्य कहे,—"उपवास कैल दुइजन।
विसूचिका-व्याधिते अमोघ छाड़िछे जीवन॥"272॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"दोनों पति और पत्नी उपवास कर रहे हैं। हैजेके कारण अमोघ मरनेवाला है॥ "272॥

महाप्रभुका शीघ्रतासे जाना और
अमोघको सदुपदेश प्रदान करना :—

शुनि' कृपामय प्रभु आइला धाञा।
अमोघेरे कहे तार बुके हस्त दिया॥ 273॥

महाप्रभुके द्वारा 'ब्राह्मण'की संज्ञाका निर्देश :—

"सहजे निर्मल एइ ब्राह्मण-हृदय।
कृष्णेर बसिते एइ योग्यस्थान हय॥ 274॥

'मात्सर्य'-चण्डाल केने इँहा बसाइला।
परम पवित्र स्थान अपवित्र कैला॥ 275॥

अनुवाद—यह सुनते ही कृपामय महाप्रभु दौड़कर अमोघके पास पहुँचे और उसकी छातीपर हाथ रखकर उससे कहने लगे,—"ब्राह्मणका हृदय तो स्वाभाविक रूपसे निर्मल होता है, इसलिये श्रीकृष्णके वासके लिये वह योग्य स्थान होता है। तुमने इसमें 'मात्सर्य'-रूपी चण्डालको क्यों बैठाया है? तुमने परम पवित्र स्थानको अपवित्र कर दिया है॥ 273-275॥

'जाड्य' रूपी अपराधसे विमुक्त होनेपर
ही शुद्ध नामका उदय :—

सार्वभौम-सङ्गे तोमार 'कलुष' हैल क्षय।
'कल्मष' घुचिले जीव 'कृष्णनाम' लय॥ 276॥

अमोघको श्रीकृष्णनाम-ग्रहण करनेकी आज्ञा :—

उठह, अमोघ, तुमि लओ कृष्णनाम।
अचिरे तोमारे कृपा करिबे भगवान्॥"277॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौमके सङ्गसे तुम्हारे हृदयकी कल्मष अब दूर हो गयी है। कल्मषके दूर होनेपर जीवका हृदय शुद्ध हो जाता है और वह श्रीकृष्णका नाम ले पाता है। इसलिये अमोघ, उठो और श्रीकृष्णनामका कीर्तन करो। ऐसा करनेसे शीघ्र ही भगवान् तुमपर कृपा करेंगे॥ "276-277॥

अनुभाष्य—'ब्रह्म', 'परमात्मा' और 'भगवान्' अथवा 'विष्णु'—अद्वयज्ञानतत्त्वके ये तीन आविर्भाव हैं। ब्रह्मज्ञका (ब्रह्मको जाननेवालेका) नाम 'ब्राह्मण' है और ब्रह्मज्ञ भगवद्-उपासकका नाम ही 'वैष्णव' है। 'भगवान्' पूर्ण-आविर्भाव तत्त्व हैं और 'ब्रह्म' असम्पूर्ण-आविर्भाव तत्त्व है। जो केवल ब्राह्मण हैं, उनके मुखमें 'नामाभास' [शुद्धनाम नहीं] उदित होते हैं। किन्तु जो ब्राह्मण अद्वयज्ञान-तत्त्व विष्णुके साथ अपने सम्बन्धज्ञानको जानकर भक्तिपूर्वक विष्णुसेवामें नियुक्त होते हैं, उनकी उस सेवाको 'अभिधेय' कहते हैं। ऐसा भजन करनेसे वे 'भागवत' अथवा 'वैष्णव' हो सकते हैं। तभी अविद्यासे उत्पन्न 'कल्मष' अथवा 'अपराध' दूर होनेपर उसके मुखमें शुद्धनाम उदित होते हैं।

निर्विशेषवादी विवर्त्तवादका अवलम्बन करके ब्रह्मकी जिन पाँच प्रकारकी सगुण उपासनाकी कल्पना करते हैं, वह कभी भी अद्वय-ज्ञानतत्त्वकी उपासना नहीं होती। विवर्त्तवादी स्वयंमें 'ब्राह्मण' होनेका अभिमान करके ऐसा मानते हैं कि सकाम अनुभूतिमें ही 'ब्राह्मणता' आबद्ध है, परन्तु जीवके स्वरूपमें 'ब्रह्मज्ञ'-धर्म ही नित्य वर्तमान है। विष्णुकी कृपासे मायावादको छोड़ देनेपर ब्राह्मण ही 'शुद्ध ब्राह्मण' अथवा 'वैष्णव' बनता है। इसलिये वैष्णवोंमें ब्राह्मणत्व नित्य ग्रथित है अर्थात् वैष्णव स्वतः ही ब्राह्मण हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। गरुड़पुराणमें—

"ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते।
सत्रयाजि-सहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः।
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते॥"

[अर्थात् "हजारों ब्राह्मणोंसे एक सावित्र्य ब्राह्मण श्रेष्ठ है, सहस्र सावित्र्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक वेदान्तविद् ब्राह्मण श्रेष्ठ है, कोटि-कोटि वेदान्तविद् ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक विष्णुभक्त श्रेष्ठ है।"]

इसलिये ब्राह्मण होनेकी योग्यताके बिना भक्तिपथमें कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता।

वास्तविक ब्राह्मणके हृदयमें अद्वयज्ञान विद्यमान रहनेके कारण उसकी नित्य-आराध्य विष्णु और वैष्णवोंमें भेद बुद्धि नहीं होती। इसलिये उसमें अपनी स्वार्थसिद्धि अथवा अपनी जड़ीय इन्द्रियोंके तर्पणकी वाञ्छासे उत्पन्न मात्सर्य, ईर्ष्या अथवा द्वन्द्वभाव रह ही नहीं सकता। जहाँ मात्सर्य आदि भाव विद्यमान होते हैं, वहाँपर अच्युतात्माके अभावमें निश्चय ही (भाः 11/5/3)—"न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्-भ्रष्टाः पत्यन्त्यधः।" अर्थात् अपने स्थानसे भ्रंश अथवा अधःपतन घटता है॥ 274-277॥

अमोघकी उसी समय इह-रोग और भवरोगसे
मुक्ति और श्रीकृष्णप्रेम-प्राप्ति :—

शुनि' 'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' अमोघ उठिला।
प्रेमोन्मादे मत्त हञा नाचिते लागिला॥ 278॥

अनुवाद—महाप्रभुकी बात सुनकर और उनके स्पर्शसे अमोघ 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए उठ बैठा। वह प्रेमोन्मादमें मत्त होकर नृत्य करने लगा॥ 278॥

अमोघके द्वारा महाप्रभुके चरणोंमें क्षमा-प्रार्थना :—

कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, स्वरभङ्ग।
प्रभु हासे देखि' तार प्रेमेर तरङ्ग॥ 279॥

प्रभुर चरणे धरि' करये विनय।
"अपराध क्षम मोरे, प्रभु, दयामय॥ 280॥

अपने द्वारा किये गये अपराधके स्मरणसे अपने गालोंपर थप्पड़ मारना :—

एइ छार मुखे तोमार करिनु निन्दने।"
एत बलि' आपन गाले चड़ाय आपने॥ 281॥

अनुवाद—नृत्य करते हुए अमोघमें कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद और स्वरभङ्ग आदि सात्त्विक भावोंको देखकर महाप्रभु हँसने लगे। अमोघ महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर दीनतापूर्वक कहने लगा,—"हे दयामय प्रभो! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। इस घृणित मुखसे मैंने आपकी निन्दा की है।" यह कहकर अमोघ अपने हाथोंसे अपने गालोंपर थप्पड़ मारने लगा॥ 279-281॥

फूले हुए गालोंको देखकर श्रीगोपीनाथका उसे रोकना :—

चड़ाइते चड़ाइते गाल फुलाइल।
हाते धरि' गोपीनाथाचार्य निषेधिल॥ 282॥

अनुवाद—थप्पड़ मारते-मारते अमोघने अपने गालोंको फुला दिया। श्रीगोपीनाथाचार्यने उसका हाथ पकड़कर उसे ऐसा करनेके लिये मना किया॥ 282॥

महाप्रभुके द्वारा उसे सान्त्वना और श्रीभट्टाचार्यके सम्बन्धके कारण स्नेह-आशीर्वाद :—

प्रभु आश्वासन करे स्पर्शि' तार गात्र।
"सार्वभौम-सम्बन्धे तुमि मोर स्नेहपात्र॥ 283॥

शुद्धभक्त श्रीभट्टाचार्यके परिवारसे महाप्रभुकी प्रीति :—

सार्वभौम-गृहे दास-दासी, ये कु ुर।
सेह मोर प्रिय, अन्य जन रहु दूर॥ 284॥

अमोघको श्रीकृष्णनाम लेनेका आदेश :—

अपराध नाहि तव, लओ कृष्णनाम।"
एत बलि' प्रभु आइला सार्वभौम-स्थान॥ 285॥

अनुवाद—महाप्रभुने उसकी देहको स्पर्श करके उसे आश्वासन दिया,—"सार्वभौमके सम्बन्धसे तुम मेरे स्नेहके पात्र हो। जब सार्वभौमके घरके दास-दासी और यहाँ तक कि जो कुत्ता है, वह भी मुझे प्रिय है, तब उनके सम्बधियोंके विषयमें तो कहना ही क्या है। अब तुम्हारा कोई अपराध नहीं रह गया, अब तुम श्रीकृष्णके नामका कीर्तन करो।" यह कहकर महाप्रभु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घरपर आ गये॥ 283-285॥

श्रीभट्टाचार्यके निकट आकर महाप्रभुका बैठना :—

प्रभु देखि' सार्वभौम धरिला चरणे।
प्रभु ताँरे आलिङ्गिया बसिला आसने॥ 286॥

अनुवाद—महाप्रभुको देखकर श्रीसार्वभौमने उनके चरण पकड़ लिये। तब महाप्रभुने उनका आलिङ्गन किया और आसनपर बैठ गये॥ 286॥

बालक तुल्य अमोघके अपराधके कारण क्रोध अथवा उपवास अनावश्यक :—

प्रभु कहे,—"अमोघ शिशु, किवा तार दोष।
केने उपवास कर, केने कर रोष॥ 287॥

भोजन करनेके लिये श्रीभट्टाचार्यसे अनुरोध :—

उठ, स्नान कर, देख जगन्नाथ-मुख।
शीघ्र आसि' भोजन कर, तबे मोर सुख॥ 288॥

श्रीभट्टाचार्यके प्रसाद-सम्मान तक प्रतीक्षाकी प्रतिज्ञा :—

तावत् रहिब आमि एथाय बसिया।
यावत् ना पाइबा तुमि प्रसाद आसिया॥"289॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अमोघ तो बालक है, इसमें उसका क्या दोष है? आप उपवास क्यों कर रहे हैं? और आप क्रोध क्यों कर रहे हैं? अब उठो, स्नान करो और जाकर भगवान् श्रीजगन्नाथके मुखका दर्शन करो। जल्दीसे लौटकर भोजन करो, तभी मैं

प्रसन्न होऊँगा। जब तक आप लौटकर प्रसाद पा नहीं लेते, तब तक मैं यहींपर ही बैठा रहूँगा॥"287-289॥

श्रीभट्टाचार्यका अमोघके लिये क्रोध-प्रदर्शन :—

प्रभु-पद धरि' भट्ट कहिते लागिला।
"मरित' अमोघ, तारे केने जीयाइला॥"290॥

अनुवाद—महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर श्रीभट्टाचार्य कहने लगे,—"अमोघ मर जाता तो अच्छा होता, आपने उसे जीवित क्यों किया?॥"290॥

बालक-समझकर अमोघको क्षमा-करनेका उपदेश :—

प्रभु कहे,—"अमोघ शिशु, तोमार बालक।
बालक-दोष ना लय पिता, ताहाते पालक॥291॥

अमोघके अपराध दूर होनेपर वैष्णवता-हेतु
श्रीभट्टाचार्यको प्रसन्न होनेके लिये अनुरोध :—

एबे 'वैष्णव' हैल, तार गेल 'अपराध'।
ताहार उपरे एबे करह प्रसाद॥"292॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अमोघ बालक है, और आपका पुत्र भी है। पिता पुत्रके दोषको नहीं लेते, क्योंकि वे तो पुत्रका पालन करनेवाले होते हैं। अब अमोघ 'वैष्णव' बन गया है और उसका 'अपराध' दूर हो गया है। अब आप निश्चिन्त होकर उसपर कृपा कर सकते हैं॥"291-292॥

श्रीभट्टाचार्यका क्रोध त्याग :—

भट्ट कहे,—"चल, प्रभु, ईश्वर-दरशने।
स्नान करि' हेथा मुञि आसिलाङ एखने॥"293॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"प्रभो, आप जाकर श्रीजगन्नाथका दर्शन कीजिये। मैं भी अभी स्नान करके वहाँ दर्शन करके वापिस आता हूँ॥"293॥

श्रीभट्टाचार्यकी प्रसाद सेवाके दर्शनके लिये
श्रीगोपीनाथको प्रतीक्षा करनेके लिये आदेश :—

प्रभु कहे,—"गोपीनाथ, इहाञि रहिबा।
ईंहो प्रसाद पाइले, वार्त्ता आमाके कहिबा॥"294॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"गोपीनाथजी, आप यहाँ रहिये और श्रीसार्वभौमके प्रसाद पानेपर मुझे आकर बता देना॥"294॥

अनुभाष्य—*ईंहो'*—सार्वभौम भट्टाचार्य॥294॥

श्रीभट्टाचार्यका प्रसाद-सेवन :—

एत बलि' प्रभु गेला ईश्वर-दरशने।
भट्ट स्नान-स्मरण करि' करिला भोजने॥295॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु श्रीजगन्नाथके दर्शन करनेके लिये चले गये। श्रीभट्टाचार्यने स्नान और श्रीजगन्नाथका स्मरण किया तथा उसके बाद भोजन ग्रहण किया॥295॥

महाप्रभुके ऐकान्तिक भक्त महाशान्त-प्रकृति अमोघ :—

सेइ अमोघ हैल प्रभुर भक्त 'एकान्त'।
प्रेमे नाचे, कृष्णनाम लय महाशान्त॥296॥

अनुवाद—वे अमोघ अब महाप्रभुके 'ऐकान्तिक' भक्त हो गये, अब वे सब समय प्रेममें नृत्य करते और शान्तिपूर्वक श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते॥296॥

अनुभाष्य—शाखा-निर्णयामृतमें—

"अमोघपण्डितं वन्दे श्रीगौरेणात्मसात्कृतम्।
प्रेमगद्गदसान्द्राङ्गं पुलकाकुलविग्रहम्॥"

[अर्थात् "मैं अमोघ पण्डितकी वन्दना करता हूँ जिन्हें महाप्रभुने आत्मसात् किया था। महाप्रभुके द्वारा स्वीकार किये जानेपर वे सदा ही प्रेममें डूबे रहते और उसके कारण उनका कण्ठ गद्गद होना, शरीर पुलकित होना आदि सात्त्विक विकार प्रकाशित होते थे।"]॥296॥

महाप्रभुकी इस प्रकारकी लीला :—

ऐछे चित्र लीला करे शचीर नन्दन।
येइ देखे, शुने, ताँर विस्मय हय मन॥297॥

अनुवाद—श्रीशचीनन्दन ऐसी विचित्र लीलाएँ करते हैं। जो भी उनकी लीलाओंको देखता अथवा सुनता है, वह आश्चर्यचकित हो जाता है॥297॥

श्रीभट्टाचार्यके घरमें महाप्रभुका भोजन
और श्रीभट्टाचार्यकी महाप्रभुके प्रति प्रीति :—

ऐछे भट्ट-गृहे करे भोजन-विलास।
तार मध्ये नाना चित्र-चरित्र-प्रकाश॥ 298॥

सार्वभौम-घरे एइ भोजन-चरित।
सार्वभौम-प्रेम याँहा हइला विदित॥ 299॥

श्रीभट्टाचार्यकी पत्नीकी महाप्रभुके प्रति प्रीति,
भक्तके सम्बन्धसे अपराध-क्षमा :—

षाठीर मातार प्रेम, आर प्रभुर प्रसाद।
भक्त-सम्बन्धे याहा क्षमिल अपराध॥ 300॥

अनुवाद—महाप्रभुने इस प्रकार श्रीभट्टाचार्यके घरपर भोजनका आनन्द लिया। उस एक लीलामें उनकी अनेक अद्भुत लीलाएँ प्रकाशित हुईं। श्रीभट्टाचार्यके घरमें यह जो भोजन-लीला है, इसमें श्रीसार्वभौमका श्रीकृष्णप्रेम जगत्में प्रकाशित हुआ। और भी इसके द्वारा षाठीकी माताका प्रेम और अमोघको क्षमादान देनेसे महाप्रभुकी कृपा प्रकाशित हुई है। भक्तके सम्बन्धसे अमोघके अपराधके लिये क्षमा करनेसे उनकी भक्तवत्सलता प्रकाशित हुई है॥ 298-300॥

अनुभाष्य—अमोघ महाप्रभुकी निन्दा करनेपर अपराधी हुआ था। अपराधके फलसे उसे प्राण हरनेवाला हैजाका रोग हुआ था। रोगग्रस्त होनेके बाद अमोघको अपराध दूर करनेका सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। श्रीसार्वभौम और उनकी पत्नी महाप्रभुकी अत्यन्त कृपाके पात्र थे। उनके सम्बन्धसे महाप्रभुने इस अपराधी अमोघको दण्ड देनेके बदले उसके अपराधको क्षमा किया और उसके प्राणोंकी रक्षा करके श्रीकृष्णभक्ति प्रदान की। महाप्रभुके प्रति श्रीसार्वभौमकी पत्नीका प्रगाढ़ भक्तिपूर्ण सम्बन्ध था। बाहरी दृष्टिसे श्रीसार्वभौम अपने दामाद अमोघके पालन करनेवाले थे; इसलिये अमोघके अपराधको क्षमा न करनेपर उसके पालक श्रीसार्वभौमको ही गौण रूपसे दण्ड देना हो जाता। इसी कारणसे उसे क्षमा करके महाप्रभुने अपने ऐश्वर्य, गाम्भीर्य और औदार्यको प्रकाशित किया॥ 300॥

पन्द्रहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रीभट्टाचार्यके घरमें भोजन लीलाके
श्रवणसे श्रीचैतन्यकी प्राप्ति :—

श्रद्धा करि' एइ लीला शुने येइ जन।
अचिरात् पाय से चैतन्य-चरण॥ 301॥

अनुवाद—जो कोई भी श्रद्धापूर्वक इस लीलाका श्रवण करता है, उसे तत्क्षणात् ही श्रीचैतन्य-चरणोंकी प्राप्ति हो जाती है॥ 301॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 302॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे सार्वभौमगृहे भोजनविलासो नाम पञ्चदश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 302॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें सार्वभौमगृहमें
भोजन-विलास नामक पन्द्रहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

सोलहवाँ अध्याय

कथासार—महाप्रभुके द्वारा वृन्दावन जानेकी इच्छा करनेपर श्रीरामानन्द और श्रीसार्वभौम अनेक प्रकारकी बाधाएँ उत्पन्न करने लगे। क्रमशः गौड़ीय-भक्त तीसरे वर्ष नीलाचल आये। इस बार वैष्णवोंकी पत्नियाँ श्रीमन्महाप्रभुको अपने वासस्थानपर निमन्त्रण करनेके लिये उनकी प्रिय बहुत सी खाद्य-वस्तुओंको बङ्गालसे लायी थीं। उन सबके श्रीक्षेत्रमें पहुँचनेपर महाप्रभुने मालायें भेजकर उनका सम्मान किया। उस वर्ष भी गुण्डिचा मन्दिरमें सफाईका कार्य पहलेकी भाँति हुआ। चातुर्मास्यके सम्पूर्ण होनेपर भक्तगण बङ्गाल जाने लगे। महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रत्येक वर्ष नीलाचलमें आनेसे मना किया। कुलीनग्रामवासियोंके प्रश्नानुसार उन्होंने पुनः वैष्णवके लक्षणके विषयमें बतलाया। इस वर्ष श्रीविद्यानिधिने नीलाचलमें रहकर 'ओड़नषष्ठी'का दर्शन किया। भक्तोंके विदा होनेपर महाप्रभुने वृन्दावन जानेकी दृढ़ता प्रकाशित की और विजया-दशमीके दिन प्रस्थान किया। राजा प्रतापरुद्रने महाप्रभुके जानेवाले मार्गमें अनेक प्रकारकी व्यवस्था की थी। चित्रोत्पला नदी पार होनेपर श्रीरामानन्द, मङ्गराज (मरदराज?) और हरिचन्दन महाप्रभुको साथ लेकर चले। महाप्रभुने श्रीगदाधर पण्डितको नीलाचल लौट जानेका अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने वह सुना नहीं। कटकसे महाप्रभुने श्रीपण्डित गोस्वामीको शपथ देकर श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें भेजा और भद्रकसे श्रीरामानन्दको विदायी दी। (उसके बाद) उड़ीसाकी सीमापर पहुँचकर महाप्रभु नौकाके द्वारा यवन अधिकारीकी सहायतासे पाणिहाटि तक गये। उसके बाद महाप्रभु श्रीराघव पण्डितके घरसे कुमारहट्ट होकर कुलिया-ग्राममें आये। महाप्रभुने वहाँ अनेक लोगोंके अपराधोंको दूर किया। वहाँसे रामकेलिमें जाकर श्रीरूप और श्रीसनातनको अङ्गीकार किया। रामकेलिसे लौटकर श्रीरघुनाथदासको शिक्षा देकर वापिस घरमें भेजा। पुनः नीलाचलमें आकर महाप्रभु अकेले वृन्दावन जानेका परामर्श करने लगे।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

गौड़देशमें जाकर लोगोंके उद्धारमें रत श्रीगौरसुन्दर :—

गौड़ोद्यानं गौरमेघः सिञ्चन् स्वालोकनामृतैः।
भवाग्निदग्धजनता-वीरुधः समजीवयत्॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गौड़देशरूपी उद्यानमें गौररूप मेघने अपनी दर्शनामृतरूपी वर्षाके द्वारा भवाग्निमें दग्ध जनतारूपी लताको जीवित किया था॥ 1॥

अनुभाष्य—

गौरमेघः (श्रीगौरजलधरः) स्वालोकनामृतैः (निजदर्शनसुधाभिः) गौड़ोद्यानं (गौड़देशरूपम् उद्यानं) सिञ्चन् (वर्षन्) भवाग्निदग्धजनता-वीरुधः (संसारदाव-वह्निना दग्धाः याः जनताः लोकपुञ्जाः ता एव वीरुधः लताः ताः) समजीवयत् (जीवयामास)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्रकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥ 2॥

महाप्रभुकी वृन्दावन जानेकी इच्छा; राजाका विषाद :—

प्रभुर हइल इच्छा याइते वृन्दावन।
शुनिया प्रतापरुद्र हइला विमन॥ 3॥

अनुवाद—महाप्रभुकी वृन्दावन जानेकी इच्छा हुई है, इसे सुनकर राजा प्रतापरुद्रका मन उदास हो गया॥ 3॥

श्रीभट्टाचार्य और श्रीरायको बुलाकर महाप्रभुको नहीं जाने देनेके लिये प्रार्थना :—

सार्वभौम, रामानन्द, आनि' दुइ जन।
दुँहाके कहेन राजा विनय-वचन॥ 4॥

"नीलाद्रि छाड़ि' प्रभुर मन अन्यत्र याइते।
तोमरा करह यत्न ताँहारे राखिते॥ 5॥

ताँहा बिना एइ राज्य मोर नाहि भाय।
गोसाञि राखिते करह नाना उपाय॥"6॥

अनुवाद—राजाने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और श्रीरामानन्द राय, इन दोनोंको अपने पास बुलवाकर दीनतापूर्वक कहा,—"महाप्रभुका मन नीलाचलको छोड़कर कहीं और जानेका है। आप दोनों कृपया उन्हें यहींपर ही रखनेका प्रयास कीजिये। महाप्रभुके बिना यह राज्य मुझे नहीं सुहाता, इसलिये श्रीचैतन्य गोसाईंको यहींपर रखनेका सब प्रकारके उपाय कीजिये॥"4-6॥

महाप्रभुका वृन्दावन जानेके लिये श्रीराय और श्रीभट्टाचार्यके साथ परामर्श :—

रामानन्द, सार्वभौम, दुइजना-स्थाने।
तबे युक्ति करे प्रभु,—'याब वृन्दावने'॥ 7॥

अनुवाद—इसके बाद स्वयं महाप्रभुने श्रीरामानन्द और श्रीसार्वभौमके साथ परामर्श करते हुए कहा,—'मैं वृन्दावन जाऊँगा॥'7॥

वियोगके भयसे दोनोंका महाप्रभुको वृन्दावनकी बात भुलाकर वहाँ जानेसे मना करना :—

दुँहे कहे,—"रथयात्रा कर दरशन।
कार्त्तिक आइले, तबे करिह गमन॥"8॥

कार्त्तिक आइले कहे,—"एबे महा-शीत।
दोलयात्रा देखि' याओ—एइ भाल रीत।"9॥

आजि-कालि करि' उठाय विविध उपाय।
याइते सम्मति ना देय विच्छेदेर भय॥ 10॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और श्रीरामानन्द राय, दोनोंने कहा,—"आप अभी यहीं रहकर रथ-यात्राका दर्शन कीजिये। कार्तिक मासके आनेपर ही वृन्दावन जाना।" जब कार्तिक मास आया, तब उन्होंने कहा,—"अभी तो बहुत अधिक सर्दी है, आप दोलयात्राके दर्शन करके जाना। यही अच्छा होगा।" आज-कल करके वे बहुत प्रकारके उपाय निकालते और वियोगके भयसे महाप्रभुको जानेकी सम्मति नहीं देते॥ 8-10॥

भगवान् स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तके वशीभूत :—

यद्यपि स्वतन्त्र प्रभु, नहे निवारण।
भक्त-इच्छा बिना प्रभु ना करे गमन॥ 11॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभु स्वतन्त्र हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता, तो भी भक्तकी इच्छाके बिना वे कभी नहीं जाते॥ 11॥

तीसरे वर्ष गौड़ीय भक्तोंकी महाप्रभुके दर्शन करनेकी इच्छा :—

तृतीय वत्सरे सब गौड़ेर भक्तगण।
नीलाचले चलिते सबार हैल मन॥ 12॥

अनुवाद—तीसरे वर्ष भी गौड़देशके सभी भक्तोंका नीलाचल जानेका मन हुआ॥ 12॥

सभीका श्रीअद्वैताचार्यके पास जाना और श्रीअद्वैतकी पुरी-यात्रा :—

सबे मेलि' गेला अद्वैत-आचार्येर पाशे।
प्रभु देखिते आचार्य चलिला उल्लासे॥ 13॥

अनुवाद—सभी भक्त मिलकर श्रीअद्वैताचार्यके पास गये और श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुके दर्शनके लिये उल्लसित होकर चल पड़े॥ 13॥

महाप्रभुके मना करनेपर भी महाप्रभु-प्रेमिक श्रीनिताइकी महाप्रभुके दर्शनके लिये पुरी-यात्रा :—

यद्यपि प्रभुर आज्ञा गौड़ेते रहिते।
नित्यानन्द-प्रभुके प्रेमभक्ति प्रकाशिते॥ 14॥

तथापि चलिला महाप्रभुरे देखिते।
नित्यानन्देर प्रेम-चेष्टा के पारे बुझिते॥ 15॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रेमभक्तिका प्रचार करनेके लिये बङ्गालमें रहनेकी ही आज्ञा दी थी, तथापि वे महाप्रभुके दर्शनोंके लिये चल पड़े। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी प्रेममयी चेष्टाओंको कौन समझ सकता है?॥ 14-15॥

गौड़ीय-भक्तोंकी यात्रा :—

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, श्रीवास, रामाइ।
वासुदेव, मुरारि, गोविन्दादि तिन भाइ॥ 16॥

पाणिहाटीके श्रीराघव, कुलीनग्रामके श्रीसत्यराजादिका गमन :—

राघव-पण्डित निज-झालि साजाञा।
कुलीन-ग्रामवासी चले पट्टडोरी लञा॥ 17॥

खण्डसे श्रीनरहरि आदिकी यात्रा :—

खण्डवासी नरहरि, श्रीरघुनन्दन।
सर्वभक्त चले, तार के करे गणन॥ 18॥

अनुवाद—श्रीआचार्यरत्न, श्रीविद्यानिधि, श्रीवास, श्रीरामाइ, श्रीवासुदेव, श्रीमुरारि, श्रीगोविन्दादि (श्रीगोविन्द, श्रीमाधव और श्रीवासुदेव)—ये तीनों भाई, श्रीराघव पण्डित महाप्रभुके लिये खानेकी बहुतसी वस्तुओंको झोलियोंमें भरकर और कुलीन-ग्रामवासी रेशमी रस्सियोंको लेकर चल दिये। खण्डवासी श्रीनरहरि और श्रीरघुनन्दन तथा अन्य सभी भक्त महाप्रभुके दर्शनके लिये चलने लगे। कौन उन सबकी गणना कर सकता है?॥ 16-18॥

पथको जाननेवाले श्रीशिवानन्द-सेन सभीके संरक्षक और परिचालकके रूपमें :—

शिवानन्द-सेन करे घाटि समाधान।
सबारे पालन करि' सुखे लञा यान॥ 19॥
सबार सर्वकार्य करेन, देन वासा-स्थान।
शिवानन्द जाने उड़िया-पथेर सन्धान॥ 20॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्द सेनने मार्गके और नदी पार करनेके सब शुल्कका भुगतान किया। सभीकी सुख-सुविधाका ध्यान रखते हुए आनन्दसे उनको ले जा रहे थे। वे सभीके समस्त कार्योंको कर देते और उन्हें रहनेका स्थान प्रदान करते। वे उड़ीसाके मार्गके विषयमें सब कुछ जानते थे॥ 19-20॥

अनुभाष्य—*'घाटी-समाधान'*—धनकी कमीकी पूर्ति अथवा निर्दिष्ट पथ और नदीघाटको पार करनेके लिये यात्रियोंके द्वारा दिये जानेवाले शुल्कको चुकाना॥ 19॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये वैष्णव-गृहणियोंका गमन :—
(1) श्रीअद्वैतपत्नीकी यात्रा :—

से वत्सर प्रभु देखिते सब ठाकुराणी।
चलिला आचार्य-सङ्गे अच्युत-जननी॥ 21॥

अनुवाद—उस वर्ष महाप्रभुके दर्शनके लिये सभी भक्तोंकी पत्नियाँ भी उनके साथ आयीं। श्रीअद्वैताचार्यके साथ उनकी पत्नी सीतादेवी, अच्युतकी माता, भी चल पड़ीं॥ 21॥

(2) श्रीवासकी पत्नी और
(3) श्रीशिवानन्दकी पत्नीकी यात्रा :—

श्रीवास-पण्डित-सङ्गे चलिला मालिनी।
शिवानन्द-सङ्गे चले ताँहार गृहिणी॥ 22॥

अनुवाद—श्रीवास पण्डितके साथ उनकी पत्नी श्रीमालिनी और श्रीशिवानन्द सेनके साथ उनकी पत्नी भी चलने लगीं॥ 22॥

शिवानन्दके पुत्र श्रीचैतन्यदासकी यात्रा :—

शिवानन्देर बालक, नाम—चैतन्यदास।
तेँहो चलियाछे प्रभुरे देखिते उल्लास॥ 23॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्द सेनके पुत्र, जिनका नाम चैतन्यदास था, वे भी बड़े उल्लाससे महाप्रभुके दर्शनके लिये चल पड़े॥ 23॥

(4) श्रीचन्द्रशेखरकी पत्नीकी यात्रा :—

आचार्यरत्न-सङ्गे चले ताँहार गृहिणी।
ताँहार प्रेमेर कथा कहिते ना जानि॥ 24॥

अनुवाद—श्रीआचार्यरत्न (श्रीचन्द्रशेखर)के साथ उनकी पत्नी भी चल रही थीं। महाप्रभुके प्रति श्रीचन्द्रशेखरके प्रेमकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 24॥

महाप्रभुकी सेवाके उद्देश्यसे साथमें उनको प्रिय लगनेवाली वस्तुओंको लेना :—

सब ठाकुराणी महाप्रभुके भिक्षा दिते।
प्रभुर नाना प्रिय द्रव्य निल घर हैते॥ 25॥

अनुवाद—सभी भक्तोंकी पत्नियोंने महाप्रभुको खानेमें प्रिय लगनेवाली बहुतसी वस्तुओंको अपने घरसे ले लिया॥ 25॥

श्रीशिवानन्दके द्वारा सभी कार्योंका सम्पादन :—

शिवासेन-सेन करे सब समाधान।
घाटियाल प्रबोधि' देन सबारे वासा-स्थान॥ 26॥

भक्ष्य दिया करेन सबार सर्वत्र पालने।
परम आनन्दे यान प्रभुर दरशने॥ 27॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्द सेन मार्गका शुल्क लेनेवालोंको मधुर वचन बोलकर प्रसन्न करते और सभी भक्तोंके रहनेके स्थानकी व्यवस्था करते। पूरी यात्रामें सबको भोजन करवाते और उनका ध्यान रखते हुए वे परमानन्दसे महाप्रभुके दर्शनोंके लिये जा रहे थे॥ 26-27॥

अनुभाष्य—*'घाटियाल'*—मार्गदर्शक; ये यात्रियोंसे अन्यायपूर्वक अवैध रूपसे अधिक धन संग्रह करते थे; शिवानन्द उनसे वैध शुल्कसे अधिक धन न लेनेका अनुरोध करते॥ 26॥

रेमुणामें सभीका श्रीगोपीनाथ-दर्शन, श्रीमाधवपुरीके अनुसरणमें श्रीअद्वैतका नृत्य-कीर्तन :—

रेमुणाय आसिया कैल गोपीनाथ-दरशन।
आचार्य करिल ताँहा कीर्त्तन, नर्त्तन॥ 28॥

अनुवाद—रेमुणामें आकर सभीने श्रीक्षीरचोरा-गोपीनाथका दर्शन किया। श्रीअद्वैताचार्यने वहाँ कीर्तन और नृत्य किया॥ 28॥

पूर्व परिचयके कारण सेवकोंके द्वारा श्रीनित्यानन्दका अभिनन्दन :—

नित्यानन्देर परिचय सब लोक-सने।
बहुत सम्मान आसि' कैल सेवकगणे॥ 29॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुका वहाँके सभी लोगोंके साथ पहलेका परिचय था, श्रीगोपीनाथके सेवकोंने आकर उनका बहुत सम्मान किया॥ 29॥

सभीका वहाँ रात्रि व्यतीत करना और खीर प्रसादका सम्मान करना :—

सेइ रात्रि सब महान्त ताहाञि रहिला।
बार क्षीर आनि' आगे सेवक धरिला॥ 30॥

क्षीर बाँटि' सबारे दिल प्रभु-नित्यानन्द।
क्षीर-प्रसाद पाञा सबार बाड़िल आनन्द॥ 31॥

अनुवाद—उस रात्रि सभी महान् भक्त वहीं मन्दिरमें ही रहे। श्रीगोपीनाथके सेवकोंने बारह खीरके कुल्हड़ लाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके आगे रख दिये। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस खीरको सभीमें बाँट दिया। खीर प्रसाद पाकर सभीका आनन्द बढ़ गया॥ 30-31॥

श्रीनित्यानन्दके द्वारा श्रीमाधवेन्द्रपुरी, श्रीगोपालका और श्रीगोपीनाथके आगमनके वृत्तान्तका वर्णन :—

माधवपुरीर कथा, गोपाल-स्थापन।
ताँहारे गोपाल यैछे मागिल चन्दन॥ 32॥

पिछली यात्रामें महाप्रभुके श्रीमुखसे सुनी कथाका वर्णन; भक्तोंको हर्ष :—

ताँर लागि' गोपीनाथ क्षीर चुरि कैल।
महाप्रभुर मुखे आगे ए कथा शुनिल॥ 33॥

सेइ कथा सबार मध्ये कहे नित्यानन्द।
शुनिया वैष्णव-मने बाड़िल आनन्द॥ 34॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी कथा, उनके द्वारा गोवर्धनमें श्रीगोपालकी स्थापना, श्रीगोपालके द्वारा उनसे चन्दन माँगना और उनके लिये श्रीगोपीनाथके द्वारा खीरकी चोरी करना—ये सब कथाएँ जो श्रीनित्यानन्द प्रभुने पहले महाप्रभुके मुखसे सुनी थीं, उन्होंने सभी भक्तोंको उन कथाओंका श्रवण कराया। इन कथाओंको सुनकर वैष्णवोंके मनमें आनन्द बहुत बढ़ गया॥ 32-34॥

अनुभाष्य—*'महाप्रभु मुखे'*—महाप्रभुने पहले श्रीपाद ईश्वरीपुरीके मुखसे श्रवण किया था (मध्यलीला 4/18 संख्या); [संन्यास लेनेके बाद] शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घरपर कुछ दिन रहनेके पश्चात् महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदर पण्डित और श्रीमुकुन्दके साथ नीलाचल जानेके मार्गमें रेमुणा आकर उन्हें—श्रीमाधवेन्द्रपुरी, वृन्दावनके श्रीगिरिधारी-गोपाल और रेमुणाके श्रीक्षीरचोरा-गोपीनाथके उपाख्यानका वर्णन किया था। (मध्यलीला 4/19-190 संख्या देखें)॥ 32-34॥

सभीका कटकमें आगमन, साक्षिगोपाल-दर्शन और श्रीनिताइके द्वारा साक्षिगोपालकी कहानीका वर्णन :—

एइमत चलि' चलि' कटक आइला।
साक्षिगोपाल देखि' सबे से दिन रहिला॥ 35॥

साक्षिगोपालेर कथा कहे नित्यानन्द।
शुनिया वैष्णव-मने बाड़िल आनन्द॥ 36॥

अनुवाद—इस प्रकार चलते-चलते सभी भक्त कटक आ पहुँचे और वहाँ श्रीसाक्षी-गोपालके दर्शन करके वे उस दिन वहीं रहे। श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीसाक्षिगोपालकी कथा सुनायी, जिसे सुनकर वैष्णवोंके मनका आनन्द और बढ़ गया॥ 35-36॥

अनुभाष्य—*'साक्षिगोपालकी कथा'*—मध्यलीला 5/8-138 संख्या देखें॥ 36॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये व्यग्र सभीका द्रुत-गतिसे पुरीमें आगमन :—

प्रभुके मिलिते सबार उत्कण्ठा अन्तर।
शीघ्र करि' आइला सबे श्रीनीलाचल॥ 37॥

अनुवाद—सभी भक्तोंके हृदयमें महाप्रभुसे मिलनेकी उत्कण्ठा थी, इसलिये वे शीघ्रतासे श्रीनीलाचल पहुँच गये॥ 37॥

गौड़ीय-भक्तोंके आठारनालामें आगमनके संवादको सुनकर भक्तोंकी अगवानीके लिये महाप्रभुके द्वारा श्रीगोविन्दके हाथसे मालायें भेजना :—

आठारनालाके आइला गोसाञि शुनिया।
दुइ माला पाठाइला गोविन्द-हस्त दिया॥ 38॥

अनुवाद—जब श्रीचैतन्य गोसाईंने सुना कि भक्त आठारनाला आ पहुँचे हैं, तब उन्होंने श्रीगोविन्दके हाथसे दो मालायें भिजवायीं॥ 38॥

अनुभाष्य—*'आठारनाला'*—श्रीपुरुषोत्तम-नगरकी एक सीमापर विशेष पुल॥ 38॥

श्रीनिताइ और श्रीअद्वैतका माला ग्रहण करना :—

दुइ माला गोविन्द दुइजने पराइल।
अद्वैत, अवधूत-गोसाञि बड़ सुख पाइल॥ 39॥

अनुवाद—श्रीगोविन्दने वे दो मालाएँ श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभुके गलेमें पहनायीं और वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए॥ 39॥

सभीका वहींसे चलते हुए नृत्य-कीर्तन-आरम्भ :—

ताहाञि आरम्भ कैल कृष्ण-सङ्कीर्त्तन।
नाचिते नाचिते चलि' आइला दुइजन॥ 40॥

अनुवाद—वहींसे ही सभीने श्रीकृष्ण-सङ्कीर्त्तन करना आरम्भ कर दिया। श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभु, दोनों नाचते-नाचते हुए चलने लगे॥ 40॥

श्रीस्वरूपादिके द्वारा महाप्रभुका फिरसे मालायें भेजना :—

पुनः माला दिया स्वरूपादि निजगणे।
आगु बाड़ि' पाठाइल शचीर नन्दने॥ 41॥

अनुवाद—श्रीशचीनन्दनने भक्तोंके स्वागतके लिये पुनः श्रीस्वरूपादि निजगणोंको मालायें देकर आगे भेजा॥ 41॥

नरेन्द्र सरोवरपर मिलकर सभीको माला देना :—

नरेन्द्र आसिया, ताँहा सबारे मिलिला।
महाप्रभुर दत्त माला सबारे पराइला॥ 42॥

अनुवाद—वे नरेन्द्र सरोवरपर गौड़देशसे आनेवाले सभी भक्तोंसे मिले और उन्होंने उन सबको महाप्रभुके द्वारा भेजी मालायें पहनायीं॥ 42॥

स्वयं सिंहद्वारपर आकर सभी
भक्तोंके साथ महाप्रभुका मिलन :—

सिंहद्वार-निकटे आइला शुनि' गौरराय।
आपने आसिया प्रभु मिलिला सबाय॥ 43॥

अनुवाद—'भक्तजन सिंहद्वारके निकट आ गये हैं'—ऐसा सुनकर श्रीगौरराय स्वयं आकर सभी भक्तोंसे मिले॥ 43॥

जगन्नाथ-दर्शनके बाद सभी भक्तोंके
साथ वासस्थानपर आगमन :—

सबा लञा कैल जगन्नाथ-दरशन।
सबा लञा आइला पुनः आपन-भवन॥ 44॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सभीको अपने साथ लेकर श्रीजगन्नाथके दर्शन किये। उसके बाद सभी भक्तोंको साथमें लेकर वे अपने वासस्थानपर आये॥ 44॥

सभीको श्रीवाणीनाथ और श्रीकाशीमिश्रके
द्वारा लाया गया प्रसाद खिलाना :—

वाणीनाथ, काशीमिश्र प्रसाद आनिल।
स्वहस्ते सबारे प्रभु प्रसाद खाओयाइल॥ 45॥

अनुवाद—श्रीवाणीनाथ और श्रीकाशीमिश्र भगवान् श्रीजगन्नाथका प्रसाद लेकर आये और महाप्रभुने स्वयं अपने हाथोंसे सभीको प्रसाद परोसा॥ 45॥

सभीको पूर्ववर्षकी भाँति, निर्दिष्ट वास-स्थानादि देना :—

पूर्व-वत्सरे याँर येइ वासा-स्थान।
ताँहा सबा पाठाञा कराइल विश्राम॥ 46॥

अनुवाद—पिछले वर्ष जिस भक्तका जो वासस्थान था, इस वर्ष भी महाप्रभुने उसे वही स्थान दिया। तब महाप्रभुने सबको वहाँ विश्राम करनेके लिये भेज दिया॥ 46॥

भक्तोंका महाप्रभुके साथ पुरीमें चार मास रहना :—

एइमत भक्तगण रहिला चारिमास।
प्रभुर सहित करे कीर्त्तन-विलास॥ 47॥

अनुवाद—इस प्रकार सभी भक्तोंने चार मास तक वहीं रहकर महाप्रभुके साथ कीर्तनका आनन्द लिया॥ 47॥

रथयात्राके समय सभीके द्वारा गुण्डिचा-मार्जन :—

पूर्ववत् रथयात्रा-काल यबे आइल।
सबा लञा गुण्डिचा-मन्दिर प्रक्षालिल॥ 48॥

अनुवाद—पहलेकी भाँति जब रथयात्राका समय आया, तब महाप्रभुने सभी भक्तोंको अपने साथ लेकर गुण्डिचा-मन्दिरकी धुलाई की॥ 48॥

महाप्रभुके आदेशानुसार श्रीसत्यराजादिका
श्रीजगन्नाथके लिये रेशमी रस्सियाँ देना :—

कुलीनग्रामी पट्टडोरी जगन्नाथे दिल।
पूर्ववत् रथ-अग्रे नर्त्तन करिल॥ 49॥

अनुवाद—कुलीनग्रामवासी भक्तोंने अपने साथ लायी हुई रेशमी रस्सियाँ श्रीजगन्नाथके लिये दीं। पहलेकी भाँति सभीने रथके आगे नृत्य किया॥ 49॥

रथके आगे नृत्यके बाद सभीका उपवनमें विश्राम :—

बहु नृत्य करि' पुनः चलिल उद्याने।
वापी-तीरे ताँहा याइ' करिल विश्रामे॥ 50॥

अनुवाद—बहुत नृत्य करनेके बाद सभी उद्यानमें चले गये। वहाँ सरोवरके तटपर पहुँचकर सबने विश्राम किया॥ 50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वापी'*—कुआँ (?), जलाशय॥ 50॥

अनुभाष्य—*'उद्याने'*—जगन्नाथवल्लभ उद्यानमें; *'वापी-तीरे'*—नरेन्द्र सरोवरके तटपर॥ 50॥

राढ़-देशके ब्राह्मण श्रीकृष्णदासके द्वारा
महाप्रभुका अभिषेक और महाप्रभुको सुख :—

राढ़ी एक विप्र, तेँहो—नित्यानन्द-दास।
महा-भाग्यवान् तेँहो, नाम—कृष्णदास॥ 51॥

घट भरि' प्रभुर तेँहो अभिषेक कैल।
ताँर अभिषेके प्रभु महातृप्त हैल॥ 52॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके आश्रित राढ़देशके एक महाभाग्यशाली ब्राह्मण जिनका नाम कृष्णदास था, उन्होंने एक घड़ेको भरकर वहीं महाप्रभुका अभिषेक किया। उनके अभिषेकसे महाप्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट हुए॥ 51-52॥

सभीके द्वारा बलगण्डिमें लगे भोगके प्रसादका सम्मान :—

बलगण्डि-भोगेर बहु प्रसाद आइल।
सबा सङ्गे महाप्रभु प्रसाद खाइल॥ 53॥

अनुवाद—बलगण्डिमें श्रीजगन्नाथको लगे भोगका बहुत सा प्रसाद आया और महाप्रभुने सभी भक्तोंके साथ उस प्रसादको ग्रहण किया॥ 53॥

सभीके द्वारा हेरा-पञ्चमी-यात्राका दर्शन :—

पूर्ववत् रथयात्रा कैल दरशन।
हेरापञ्चमी-यात्रा देखे लञा भक्तगण॥ 54॥

अनुवाद—पूर्व वर्षकी भाँति ही महाप्रभुने भक्तोंके साथ रथयात्राका दर्शन किया और हेरापञ्चमी-यात्राका भी दर्शन किया॥ 54॥

आँधी-वर्षामें महाप्रभुका अकेले श्रीअद्वैतके
घरमें भिक्षा-ग्रहण करना :—

आचार्य गोसाञि प्रभुर कैल निमन्त्रण।
तार मध्ये कैल यैछे झड़-वरिषण॥ 55॥

चैतन्यभागवतमें उसका वर्णन :—

विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन॥ ॥
श्रीवास प्रभुरे तबे कैल निमन्त्रण॥ 56॥

श्रीमालिनीदेवीके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

प्रभुर प्रिय-व्यञ्जन सब रान्धेन मालिनी।
'भक्त्ये दासी'-अभिमान, 'स्नेहेते जननी'॥ 57॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुको प्रसाद पानेके लिये अपने वासस्थानपर निमन्त्रण किया और तब आँधी-वर्षा आयी। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य-भागवतमें इन घटनाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तब एक दिन श्रीवास पण्डितने भी महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। श्रीवास पण्डितकी पत्नी श्रीमालिनी देवी भक्तिके कारण स्वयंमें महाप्रभुकी दासी होनेका अभिमान रखती थीं, परन्तु वात्सल्य-भावसे वे महाप्रभुमें माताकी भाँति स्नेह रखती थीं। उन्होंने महाप्रभुको प्रिय लगनेवाले सब व्यञ्जनोंको बनाया॥ 55-57॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चैः भाः अन्त्यखण्ड, नौवाँ अध्याय—

एकदिन श्रीअद्वैतने महाप्रभुको निमन्त्रित करनेका मन बनाया,—'यदि अन्य कोई संन्यासी महाप्रभुके साथ न आये, तो महाप्रभुको अच्छी तरहसे खिलाऊँगा।' अन्यान्य सभी संन्यासी मध्याह्न-क्रियाके लिये बाहर निकले थे, परन्तु उस समय आँधी-वर्षाके आ जानेसे वे श्रीअद्वैतके स्थानपर पहुँच नहीं पाये। श्रीअद्वैतकी इच्छानुसार महाप्रभुने अकेले ही आकर श्रीअद्वैतके अन्न-व्यञ्जनोंका भोजन किया॥ 55-56॥

श्रीचन्द्रशेखरके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

आचार्यरत्न-आदि यत मुख्य भक्तगण।
मध्ये मध्ये प्रभुरे करेन निमन्त्रण॥ 58॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखर (आचार्यरत्न) आदि सभी मुख्य-मुख्य भक्त बीच-बीचमें महाप्रभुको निमन्त्रण देते॥ 58॥

चातुर्मास्यके अन्तमें श्रीनिताइके साथ एकान्तमें विचार :—

चातुर्मास्य-अन्ते पुनः नित्यानन्दे लञा।
किवा युक्ति करे नित्य निभृते बसिया॥ 59॥

अनुवाद—चातुर्मास्यके अन्तमें महाप्रभु पुनः श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ प्रतिदिन एकान्तमें कुछ परामर्श करते। वे क्या परामर्श करते थे, इसे कोई नहीं जान सका॥ 59॥

श्रीअद्वैताचार्यका रहस्यपूर्ण पहेलीका पाठ :—

आचार्य-गोसाञि प्रभुके कहे ठारे-ठोरे।
आचार्य तर्ज्जा पड़े, केह बुझिते ना पारे॥ 60॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुको सङ्केतसे कुछ-कुछ कहा और कुछ पद्य पढ़े, जिन्हें कोई नहीं समझ पाया था॥ 60॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'तर्ज्जा'*—पयार आदि छन्दमय बातें, जिन्हें दूसरे लोग आसानीसे नहीं समझ सकते॥ 60॥

महाप्रभुके द्वारा पहेलीमें कहे गये विचारको स्वीकार करनेसे श्रीअद्वैतको आनन्द :—

ताँर मुख देखि' हासे शचीर नन्दन।
अङ्गीकार जानि' आचार्य करेन नर्त्तन॥ 61॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यके मुखको देखकर महाप्रभु हँसने लगे। इसीसे वे समझ गये कि महाप्रभुने मेरी बातको स्वीकार कर लिया है और वे नृत्य करने लगे॥ 61॥

श्रीगौर और श्रीअद्वैतका परस्परमें संलापादि—दूसरोंकी समझसे परे; महाप्रभुके द्वारा श्रीअद्वैतको विदायी देना :—

किवा प्रार्थना, किवा आज्ञा—केह ना बुझिल।
आलिङ्गन करि' प्रभु ताँरे विदाय दिल॥ 62॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने क्या प्रार्थना की थी और महाप्रभुने उन्हें क्या आज्ञा दी थी—इसे कोई भी नहीं समझ पाया। महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यको आलिङ्गन करके विदायी दी॥ 62॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीअद्वैताचार्यने पयारोंके द्वारा क्या प्रार्थना की और श्रीशचीनन्दनके हँसनेका भी क्या अर्थ हुआ,—उसे और कोई भी नहीं समझ पाया॥ 62॥

श्रीनिताइको प्रतिवर्ष पुरीमें नहीं आकर गौड़देशमें नाम-प्रेम-प्रचार करनेका आदेश :—

नित्यानन्दे कहे प्रभु,—"शुनह श्रीपाद।
एइ आमि मागि, तुमि करह प्रसाद॥ 63॥

प्रतिवर्ष नीलाचले तुमि ना आसिबा।
गौड़े रहि' मोर इच्छा सफल करिबा॥ 64॥

श्रीनिताइके द्वारा महाप्रभुका अत्यन्त कठिन कार्य करवाना :—

ताँहा सिद्धि करे—हेन अन्ये ना देखिये।
आमार 'दुष्कर' कर्म, तोमा हैते हये॥"65॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुसे कहा,—"सुनिये, श्रीपाद! मैं आपसे कुछ माँगता हूँ, आप कृपा कीजिये। आप प्रत्येक वर्ष नीलाचल मत आना और गौड़देश (बङ्गाल)में रहकर मेरी इच्छाको पूर्ण करना। वहाँ मेरी अभिलाषाको जो पूर्ण कर सके, ऐसा मैं किसी अन्यको नहीं देखता हूँ। मेरा यह अत्यन्त कठिन कार्य केवल आपके द्वारा ही हो सकता है॥"63-65॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गौड़देशमें महाप्रभुकी अनुपस्थितिमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके अतिरिक्त कोई भी चण्डाल तकको नाम-प्रेमदानरूपी महाप्रभुके उद्देश्यकी सिद्धि नहीं कर सकता॥ 64-65॥

महाप्रभुके भक्त प्रभु-नित्यानन्द :—

नित्यानन्द कहे,—"आमि 'देह', तुमि 'प्राण'।
'देह' 'प्राण' भिन्न नहे,—एइ त' प्रमाण॥ 66॥

अचिन्त्यशक्त्ये कर तुमि ताहार घटन।
ये कराह, सेइ करि, नाहिक नियम॥"67॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"मैं देह हूँ और आप प्राण हैं। देह और प्राणमें कोई भेद नहीं है—यही तो प्रमाण है। आप जो चाहते हैं, वह आपकी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा घटता है। आप मुझसे जो कराते हैं, मैं बिना किसी प्रतिबन्धके वही करता हूँ॥"66-67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—मैं 'देह' और आप 'प्राण' हो; ये दोनों वस्तुएँ कभी भी अलग नहीं हैं; तथापि आप—नीलाचलमें और मैं—गौड़में, इस प्रकार जो अलग रहते हैं, वह केवल आपकी अचिन्त्य शक्तिसे ही घटता है॥ 66-67॥

श्रीनिताइ और अन्यान्य सभी भक्तोंको विदायी देना :—

ताँरे विदाय दिल प्रभु करि' आलिङ्गन।
एइमत विदाय दिल सब भक्तगण॥ 68॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको आलिङ्गन करके उन्हें विदायी दी। इस प्रकार उन्होंने सभी भक्तोंको भी विदायी दी॥ 68॥

श्रीसत्यराजादिकी पूर्व वर्षकी भाँति महाप्रभुसे अपने कर्त्तव्यके विषयमें जिज्ञासा :—

कुलीनग्रामी पूर्ववत् कैल निवेदन।
"प्रभु, आज्ञा कर,—कर्त्तव्य आमार साधन॥"69॥

अनुवाद—कुलीनग्रामवासियोंने पूर्व वर्षकी भाँति निवेदन करते हुए पूछा,—"हे प्रभो! हमें आज्ञा दीजिये कि क्या साधन हमारा कर्त्तव्य है?॥"69॥

महाप्रभुका उत्तर :—

प्रभु कहे,—"वैष्णव-सेवा, नाम-सङ्कीर्त्तन।
दुइ कर, शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण-चरण॥"70॥

अनुवाद—महाप्रभुने उत्तर दिया,—"वैष्णव-सेवा और नाम-सङ्कीर्तन—इन दो कार्योंको करो, तुम्हें शीघ्र ही श्रीकृष्णके चरणोंकी प्राप्ति होगी॥"70॥

श्रीसत्यराजादिकी महाप्रभुसे 'वैष्णव'-लक्षणकी जिज्ञासा :—

तेँहो कहे,—"के वैष्णव, कि ताँर लक्षण?"
तबे हासि' कहे प्रभु जानि' ताँर मन॥ 71॥

महाप्रभुके द्वारा 'मध्यम-वैष्णव'के लक्षणका निर्देश :—

"कृष्णनाम निरन्तर याँहार वदने।
सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज ताँहार चरणे॥"72॥

अनुवाद—श्रीसत्यराजादिने प्रश्न किया,—"वैष्णव कौन हैं और उनके लक्षण क्या हैं?" तब महाप्रभु उनके मनकी भावनाको जानकर हँसते हुए बोले,—"श्रीकृष्णनाम निरन्तर जिनके मुखमें विराजमान रहता है, वे वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, उनके चरणोंकी सेवा करो॥"71-72॥

अनुभाष्य—जिस वैष्णवके मुखसे 'निरन्तर' श्रीकृष्णनाम उच्चारित होता है, उसे 'कोमल श्रद्धावाले एकबार श्रीकृष्णनामका उच्चारण करनेवाले कनिष्ठ वैष्णव'की अपेक्षा श्रेष्ठ अर्थात् 'मध्यम भागवत' जानना ; उसके चरणोंकी सेवा करना। श्रीरूप गोस्वामीने उपदेशामृतमें लिखा है—"प्रणातिभिश्च भजन्तमीशम्" अर्थात् मध्यमाधिकारी भागवतको परस्पर 'प्रणाम'रूपी व्यवहार करनेके लिये उपदेश दिया है। निरन्तर,—'अन्तर' अर्थात् बाधा जिसमें नहीं है। [श्रीकृष्णसेवाके अतिरिक्त] अन्याभिलाषाएँ, कर्म, ज्ञान और चेतन-वृत्तिके कार्यमें शिथिलता अर्थात् आलस्य—ये सभी अन्तर या बाधा हैं। जैसे श्रीरूप प्रभुने (भः रः सिः, पूर्व विः, प्रथम लहरीमें कहा है—

"अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥"

[अर्थात् "श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत्त, एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो श्रीकृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमा भक्ति कहते हैं।"]

अथवा, 'अन्तर'-शब्दका एक अर्थ 'देह' भी है। इन्द्रियतृप्तिमें लिप्त होना श्रीकृष्ण-भजनमें बाधा है। 'अन्तर'-शब्दका अन्य अर्थ 'द्रविण' अर्थात् 'धन' है। श्रीकृष्णसेवामें धनका सदुपयोग नहीं करके उसके संग्रहकी चेष्टा भी भजनमें बाधा है। 'अन्तर'-शब्दका एक अर्थ 'जनता' भी है। असत्सङ्ग अथवा दुःसङ्ग भी भजनमें बाधा है। 'अन्तर'-शब्दका अन्य अर्थ

'लोभ' भी है। जिह्वाकी लालसाकी तृप्ति अथवा बहुत अधिक धन-संग्रह या अनेक मतोंको ग्रहण करनेकी लालसा भी भजनमें बाधा है। अन्तमें 'अन्तर'-शब्दका अर्थ पाखण्ड है। निम्नलिखित विचार अथवा कार्य पाखण्ड है—

1) विष्णु-विग्रह जो साक्षात् भगवान् हैं, उनको शिला, काष्ठ, स्वर्ण, पीतल आदि धातुका मानना,

2) गुरुको एक साधारण मनुष्य समझना,

3) वैष्णवकी जातिका विचार अथवा उसे प्राकृत समझना,

4) विष्णु-वैष्णवके चरणामृतको सामान्य जल समझना,

5) विष्णुके नाम-मन्त्रको अथवा सद्गुरुके द्वारा दिये गये नामको 'सामान्य जागतिक शब्द' समझना,

6) सर्वेश्वरेश्वर विष्णुको अथवा विष्णु-परतत्त्व स्वयंरूप श्रीकृष्णको उनकी निजशक्तिके अंश त्रिगुणोंके अधीन देवताओंके साथ समान मानना,

7) अचित्के आश्रयमें अथवा अचित्से आत्मा अथवा चेतनकी उपलब्धिकी चेष्टा,

8) अप्राकृत वास्तव वस्तुको प्राकृत, खण्ड, इन्द्रियोंके द्वारा माँपी जा सकनेवाली वस्तुके समान समझना

9) द्वैतबुद्धिसे श्रीहरि, गुरु और वैष्णवोंमें परस्पर भेद मानना।

ये सभी अपराधोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। भक्तिसन्दर्भमें श्रीजीवप्रभुकी उक्ति (265 संख्यामें)—

"नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतम्" इत्यादौ देहद्रविणादि-निमित्तक-'पाषण्ड'-शब्देन च दश अपराधा लक्ष्यन्ते, पाषण्डमयत्वात् तेषाम्।"

[अर्थात् "जो व्यक्ति श्रीनामको सुनकर भी देह-धनादिमें लिप्त रहता है, वह पाखण्डी है। पाखण्ड-शब्दसे दसों अपराध लक्षित होते हैं, क्योंकि ये सब अपराध पाखण्डमय हैं।"]

(भाः 11/2/46)—

"ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥"

[अर्थात् "जो ईश्वरसे प्रेम, वैष्णवसे मैत्री, मूढ़ व्यक्तिपर कृपा और द्वेषीकी उपेक्षा करते हैं, वे मध्यम भक्त हैं।"]

'सनातन शिक्षामें' मध्यलीला 22वाँ अध्याय—

"श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।
'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'—श्रद्धा-अनुसारी॥ 64॥
शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान्।
'मध्यम-अधिकारी' सेइ महाभाग्यवान्॥ 66॥
रति-प्रेम-तारतम्ये भक्त—तर-तम।"68क।

[अर्थात् "श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं और श्रद्धाके अनुसार ही वे उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ भक्त होते हैं। जो शास्त्रोंकी युक्तियोंको भली-भाँति नहीं जानता, किन्तु श्रीकृष्णमें दृढ़ श्रद्धावान् है, वह महाभाग्यवान् व्यक्ति मध्यम-अधिकारी है। रति और प्रेमके तारतम्यसे भक्तोंमें भी तारतम्य होता है।"]

मध्यम-भागवत निरन्तर कीर्तन-यज्ञके द्वारा भगवान्की आराधना करता है। इसके द्वारा उसकी श्रीनाममें प्रीति वर्धित होती है और क्रमशः वह 'प्रेम'के स्तरपर पहुँच जाता है। वह अप्राकृत श्रीनाममें निरन्तर प्रीतियुक्त होकर अनुशीलन करते-करते स्वयंको 'अप्राकृत कृष्णदास'के रूपमें जान पाता है। और श्रीनाममें अपेक्षाकृत स्वल्प रुचिवाले भक्तको वह कभी-कभी नामके अप्राकृत स्वरूपके विषयमें समझाकर उसपर कृपा करता है। शुद्धभक्तोंमें और भगवान्में पूर्णतया प्रीतिरहित विद्वेषी व्यक्तियोंको ऐसा जानकर कि ये 'श्रीकृष्णके अप्राकृत-स्वरूपकी अनुभूतिसे रहित हैं और इनकी चेतन-वृत्ति मायासे आवृत है, इसलिये ये केवल-प्राकृत हैं', वह उनके सङ्गका त्याग करता है। मध्यम अधिकारी शुद्धभक्तिके उपादान अथवा उपकरण आदिको भी 'अप्राकृत' समझता है॥ 72॥

अगले वर्ष पुनः उनके द्वारा 'वैष्णव'-लक्षणकी जिज्ञासा करनेपर महाप्रभुका उत्तर :—

वर्षान्तरे पुनः ताँरा ऐछे प्रश्न कैल।
वैष्णवेर तारतम्य प्रभु शिखाइल॥ 73॥

अनुवाद—एक वर्षके बाद पुनः कुलीनग्रामवासियोंने ऐसा ही प्रश्न किया। उसके उत्तरमें महाप्रभुने उन्हें पुनः वैष्णवोंका तारतम्य सिखलाया॥ 73॥

महाप्रभुके द्वारा 'उत्तमाधिकारी या महाभागवत'के लक्षणका निर्देश :—

याँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम।
ताँहारे जानिह तुमि 'वैष्णव-प्रधान'॥ 74॥

अनुवाद—जिनके दर्शनमात्रसे मुखसे श्रीकृष्णनाम निकलने लगे, उन्हें तुम वैष्णवोंमें प्रधान समझना॥ 74॥

अनुभाष्य—जिन वैष्णवको देखकर देखनेवालेके मुखमें श्रीकृष्णनाम स्वाभाविक रूपमें ही आ जाता है, उन्हें स्वरूपसिद्ध 'महाभागवत' जानना। वे सम्पूर्ण रूपसे विकसित और उद्दीप्त अथवा अनावृत चेतनवृत्तिसे युक्त रहते हैं। अथवा वे श्रीकृष्णकी केवल शुद्धप्रेम-सेवामें निमग्न रहनेके कारण सर्वदा जाग्रत अवस्थामें अर्थात् अपने स्वरूपमें अवस्थान करते हैं। वे भगवद् ज्ञान और विज्ञानसे युक्त होनेके कारण सर्वत्र श्रीकृष्णके दर्शन करते हैं और सभी जीवोंको श्रीकृष्णसे सम्बन्धित देखते हैं। उनके श्रीमुखसे निरन्तर शुद्ध श्रीकृष्णनामका भलीभाँति कीर्तन होता रहता है। वे स्वयं दिव्यनेत्रोंसे युक्त होनेके कारण श्रीकृष्ण-विस्मृति अथवा श्रीकृष्ण-विमुखता रूपी मोह-निद्रामें सोये हुए अन्य जीवोंके बन्द अज्ञानमय चक्षुओंको खोल देते हैं अर्थात् वे उन्हें जड़तासे मुक्त करवाकर दिव्यनेत्र प्रदान करके चेतनवृत्तिसे युक्त कर देते हैं। वे ऐसे चेतनवृत्तियुक्त जीवोंको सदैव श्रीकृष्ण और कार्ष्ण (श्रीकृष्णभक्तों)की सेवामें नियुक्त करनेमें समर्थ हैं। "ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने" [अर्थात् ऐसे एक-एक वैष्णव एक-एक ब्रह्माण्डका उद्धार करनेमें समर्थ हैं]। मध्यलीला 6/279 संख्या—

"लोहाके यावत् स्पर्शि' हेम नाहि करे।
तावत् स्पर्शमणि केह चिनिते ना पारे॥"

[अर्थात् "जब तक अपने स्पर्शसे वह लोहेको सोना नहीं बनाती, तब तक स्पर्शमणिको कोई पहचान नहीं पाता।"] आदि वाक्य उत्तम भागवतके सम्बन्धमें ही कहे गये हैं।

श्रीरूप गोस्वामीने 'उपदेशामृत'में कहा है—

"शुश्रूषया भजनविज्ञमनन्यमन्य-
निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसङ्गलब्ध्या।"

[अर्थात् "जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत आदि वैष्णव स्मृतियोंके अनुसार भजनके तत्त्वको भलीप्रकार जानकर अनन्य रूपसे श्रीकृष्णका भजन करता है, श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी अभिनिवेश नहीं रहनेके कारण दूसरोंकी निन्दा आदिसे शून्य निर्मल-हृदयवाला है, ऐसे भजनविज्ञ अर्थात् मानससेवाके द्वारा अष्टकालीयलीला-स्मरण भजन परिपाटीमें अभिज्ञ महाभागवतको स्वजातीय अन्तःकरणवाले सुस्निग्धजनोंमें सर्वोत्तम सङ्ग जानकर प्रणिपात, परिप्रश्न और प्रीतिपूर्वक सेवाके द्वारा उनका आदर करना चाहिये।"]

महाप्रभुके श्रीमुखसे कहे गये "तृणादपि सुनीच" श्लोकका सम्पूर्ण रूपसे आचरण करनेवाले और मध्यलीला 9/36-37 संख्याके अनुसार वे 'आश्रयजातीय कृष्ण' अथवा 'महाभागवत' हैं—वे ही शुद्ध हरिकीर्तन करनेवाले हैं। वे अन्य जीवोंके जड़ीय उच्च-नीच शरीरोंको नहीं देखते अथवा उनका हृदय अन्य व्यक्तियोंकी निन्दा आदिसे रहित है। इसलिये ऐसे व्यक्तिसे ही 'मध्यम-भागवत' सदैव श्रवणके इच्छुक होकर उनकी सब प्रकारसे सेवा करके उनको सन्तुष्ट करनेपर अन्तमें उनकी कृपाके प्रभावसे वह मध्यम अधिकारी ही 'उत्तम-अधिकारी' बननेका सौभाग्य प्राप्त करता है। भाः 11/2/45—

"सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥"

[अर्थात् "जो सभी प्राणियोंमें अपनी और भगवान्‌की सत्ता तथा अपने और भगवान्‌में सभी प्राणियोंकी सत्ताको अनुभव करते हैं, वे उत्तम भागवत कहलाते हैं।"] 'सनातन-शिक्षामें' मध्य 22वें अध्यायमें—

"श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।
'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'—श्रद्धा-अनुसारी॥64॥
शास्त्रयुक्तये सुनिपुण, दृढ़श्रद्धा याँर।
'उत्तम-अधिकारी' सेइ तारय संसार॥"65॥

[अर्थात् "श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं और श्रद्धाके अनुसार ही वे उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ भक्त होते हैं। जो भक्त शास्त्र और शास्त्रोंकी युक्तियोंमें अत्यन्त निपुण होनेके कारण दृढ़ श्रद्धावान् होते हैं, वे 'उत्तम-अधिकारी' हैं और वे संसारके सभी प्राणियोंका उद्धार कर सकते हैं।"]

'भगवान्', 'भक्ति' और 'भक्त'—इन तीन वस्तुओंमें महाभागवतकी अप्राकृत असङ्कुचित प्रेममयी दृष्टि होती है। इसके अतिरिक्त वे और कुछ नहीं देखते हैं। "सबे कृष्ण भजे,—एइ मात्र जाने" अर्थात् "वे केवलमात्र इतना ही जानते हैं कि सभी श्रीकृष्णका भजन कर रहे हैं।" इसलिये वे श्रीकृष्णके द्वारा सम्पूर्ण रूपसे अङ्गीकार की गयी वस्तु हैं॥ **74**॥

महाप्रभुके द्वारा तीन प्रकारके अधिकारके वैष्णवोंके लक्षणका निर्देश :—

क्रम करि' कहे प्रभु 'वैष्णव'-लक्षण।
'वैष्णव', 'वैष्णवतर', आर 'वैष्णवतम'॥ 75॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने क्रमशः 'वैष्णव', 'वैष्णवतर' और 'वैष्णवतम'के लक्षण बतलाये॥ **75**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कुलीनग्रामवासी भक्तोंके पिछले वर्ष किये गये प्रश्नके उत्तरमें अर्थात् 'याँर मुखे एकबार शुनि कृष्णनाम' आदि सुनकर भी कुलीनग्रामवासियोंने जब इस बार पुनः वही प्रश्न किया, तब महाप्रभुने कहा,—जिसके मुखसे निरन्तर कृष्णनाम सुनो, उसे 'वैष्णवश्रेष्ठ' जानकर उसके चरणोंका निरन्तर भजन करो। अगले वर्ष जब कुलीनग्रामवासियोंने पुनः वही प्रश्न किया, तब महाप्रभुने उस बार उत्तर दिया,—जिनके दर्शन करने मात्रसे ही दर्शकके मुखमें श्रीकृष्णनाम सहज ही आ जाय, उनको तुम 'वैष्णव-प्रधान' जानना। इस प्रकार तीन वर्षोंमें तीन प्रकारके उत्तरोंका विचार करके देखनेपर महाप्रभुके वचनोंमें 'वैष्णव', 'वैष्णवतर', और 'वैष्णवतम'—इन तीन प्रकारके वैष्णवोंके लक्षण मिलते हैं। इन तीन प्रकारके वैष्णवोंकी सेवा ही गृहस्थ-वैष्णवोंका कर्त्तव्य है। महाप्रभुकी बातका तात्पर्य यह है कि,—जिन्होंने केवल वैष्णवी-दीक्षामात्र ग्रहण की है, किन्तु एकबार भी अपराधरहित होकर श्रीकृष्ण-नाम नहीं किया, उस वैष्णवकी सेवा करनेका कोई प्रयोजन नहीं है; केवल 'सुहृद', 'अतिथि' जानकर ही उसका सम्मान करना आवश्यक है॥ **69-75**॥

श्रीपुण्डरीकके अतिरिक्त अन्य सभीका गौड़देश लौटना :—

एइमत सब वैष्णव गौड़े चलिला।
विद्यानिधि से-वत्सर नीलाद्रि रहिला॥ 76॥

अनुवाद—इस प्रकार सभी वैष्णव गौड़देशमें लौट गये। परन्तु उस वर्ष श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि नीलाद्रि (जगन्नाथपुरी)में ही रह गये॥ **76**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'विद्यानिधि'*—श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि॥ **76**॥

श्रीस्वरूपके साथ श्रीपुण्डरीकका सख्यभाव :—

स्वरूप-सहित ताँर हय सख्य-प्रीति।
दुइ-जनाय कृष्ण-कथाय एकत्रइ स्थिति॥ 77॥

अनुवाद—श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिकी श्रीस्वरूप दामोदरके साथ सखा जैसी प्रीति थी। श्रीकृष्णकथाकी चर्चामें दोनों एक ही स्तरपर स्थित थे॥ **77**॥

श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिका श्रीगदाधरको पुनः मन्त्र देना और 'ओड़न-पष्ठी'का दर्शन :—

गदाधर-पण्डिते तेँहो पुनः मन्त्र दिल।
ओड़न-पष्ठीर दिने यात्रा ये देखिल॥ 78॥

श्रीपुण्डरीक और श्रीजगन्नाथके माँड़से युक्त वस्त्रोंके कारण घटित घटनाका वर्णन :—

जगन्नाथ परे तथा 'माड़ुया' वसन।
देखिया सघृण हैल विद्यानिधिर मन॥ 79॥

सेइ रात्र्ये जगन्नाथ-बलाइ आसिया।
दुइ-भाइ चड़ा'न ताँरे हासिया हासिया॥ 80॥

अनुवाद—श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिने श्रीगदाधर पण्डितको पुनः मन्त्र प्रदान किया और उन्होंने ओड़न-पष्ठीके दिन महोत्सवका दर्शन किया। उस ओड़न षष्ठीके दिन श्रीजगन्नाथदेवने माँड़ लगे वस्त्र पहने थे, जिसे देखकर श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिके मनमें थोड़ीसी घृणाकी भावना आ गयी। उसी रात श्रीजगन्नाथ तथा श्रीबलदेव—दोनों भाई आकर हँसते-हँसते उन्हें थप्पड़ मारने लगे॥ 78-80॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'ओड़नषष्ठी'*—सर्दीके आनेपर पहली छठी तिथिको 'ओड़नषष्ठी' कहते हैं। उस दिन श्रीजगन्नाथदेवके अङ्गमें सर्दियोंके वस्त्र अर्पित किये जाते हैं। वे सर्दीके वस्त्र—'माड़ुया'-वस्त्र अर्थात् जुलाहेके द्वारा बनाये हुए माँड़से युक्त बिना धुले वस्त्र होते हैं। देवताको माँड़ लगे हुए वस्त्र देनेपर श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिने उस विषयमें थोड़ी सी 'खूँटिनाटि' अर्थात् दोष दिखलाकर उड़ीया-भक्तोंके प्रति थोड़ीसी घृणा प्रकाशित करनेके कारण उसका उपयुक्त फल प्राप्त किया था॥ 78॥

अनुभाष्य—चैतन्यभागवत अन्त्यखण्ड ग्यारहवाँ अध्याय देखें॥ 78॥

चैतन्यभागवतमें विस्तारसे वर्णित :—

गाल फुलिल, आचार्य अन्तरे उल्लास।
विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन-दास॥ 81॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिके गाल थप्पड़ खानेसे सूज गये थे, तथापि उनके हृदयमें बहुत आनन्द था। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने इस लीलाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है॥ 81॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चैतन्यभागवतके अन्त्यखण्डमें दसवाँ और ग्यारहवाँ अध्याय देखें॥ 81॥

अनुभाष्य—*'बलाइ'*—श्रीबलराम; *'आचार्य'*—आचार्यनिधि॥ 80-81॥

प्रत्येक वर्ष गौड़ीय भक्तोंका आगमन और दर्शनादि :—

एइमत प्रत्यब्द आइसे गौड़ेर भक्तगण।
प्रभु-सङ्गे रहि' करे यात्रा-दरशन॥ 82॥

अनुवाद—इस प्रकार प्रत्येक वर्ष गौड़देशके भक्त आते थे और महाप्रभुके साथ रहकर विभिन्न उत्सवोंका दर्शन करते थे॥ 82॥

उनमेंसे ग्रन्थकारकी विशेष-विशेष घटनाओंके वर्णनकी प्रतिज्ञा :—

तार मध्ये ये ये वर्षे आछये विशेष।
विस्तारिया ताहा शेष करिब निःशेष॥ 83॥

अनुवाद—उनमेंसे जिन-जिन वर्षोंमें कुछ विशेष उल्लेखनीय बातें है, उनका सबका मैं विस्तृत रूपमें आगे वर्णन करूँगा॥ 83॥

भक्तोंके साथ चार-वर्ष नीलाचल-लीला, दो-वर्ष दक्षिणमें आवागमन :—

एइमत महाप्रभुर चारि वत्सर गेल।
दक्षिण याञा आसिते दुइ वत्सर लागिल॥ 84॥

वृन्दावन जानेके लिये महाप्रभुकी दो वर्षसे इच्छा, किन्तु श्रीरायकी चेष्टासे नहीं जा पाना :—

आर दुइ वत्सर चाहे वृन्दावन याइते।
रामानन्द-हठे प्रभु ना परे चलिते॥ 85॥

अनुवाद—इस प्रकार करते हुए महाप्रभुके चार वर्ष व्यतीत हो गये। दक्षिण भारतकी यात्रामें उनके पहले

दो वर्ष व्यतीत हो गये थे। उसके बाद दो वर्ष तक महाप्रभु वृन्दावन जाना चाहते थे, किन्तु वे श्रीरामानन्द रायके हठके कारण नहीं जा पाये॥ 84-85॥

अनुभाष्य—*'हठ'*—बलका प्रयोग; बलपूर्वक॥ 85॥

पाँचवें वर्ष गौड़ीय-भक्तोंका रथयात्राके दर्शनके बाद गौड़देशमें लौटना :—

पञ्चम वत्सरे गौड़ेर भक्तगण आइला।
रथ देखि' ना रहिला, गौड़ेरे चलिला॥ 86॥

अनुवाद—पाँचवे वर्ष गौड़देशके भक्तगण आये, किन्तु रथ-यात्राके दर्शनके बाद वे जगन्नाथ पुरीमें नहीं रहे। वे सब गौड़देशमें लौट गये॥ 86॥

श्रीभट्टाचार्य और श्रीरायसे महाप्रभुकी गौड़देशसे होकर वृन्दावन जानेके लिये सम्मतिकी प्रार्थना :—

तबे प्रभु सार्वभौम-रामानन्द-स्थाने।
आलिङ्गन करि' कहे मधुर-वचने॥ 87॥

"बहुत उत्कण्ठा मोर याइते वृन्दावन।
तोमार हठे दुइ वत्सर ना कैलुँ गमन॥ 88॥

अवश्य चलिब, दुँहे करह सम्मति।
तोमा-दुँहा बिना मोर नाहि अन्य गति॥ 89॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्दको आलिङ्गन करके मधुर वचन कहे,—"मेरी वृन्दावन जानेकी बहुत उत्कण्ठा है, किन्तु आप दोनोंकी हठके कारण मैं दो वर्ष तक नहीं गया। किन्तु अब मैं अवश्य ही जाऊँगा, इसलिये आप दोनों इसमें अपनी सम्मति प्रदान करो। आप दोनोंके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई गति नहीं है॥ 87-89॥

गौड़देशमें महाप्रभुकी दो पूज्य वस्तुएँ :—
(1) शचीदेवी और (2) गङ्गादेवी—

गौड़-देशे हय मोर 'दुइ समाश्रय'।
'जननी' 'जाह्नवी',—एइ दुइ दयामय॥ 90॥

गौड़देश दिया याब ताँ-सबा देखिया।
तुमि दुँहे आज्ञा देह' परसन्न हञा॥"91॥

अनुवाद—गौड़देशमें मेरे दो आश्रय हैं—माता और जाह्नवी (गङ्गा)—ये दोनों दयामयी हैं। मैं गौड़देशसे होते हुए जाऊँगा, जिससे उन दोनोंके दर्शन करते हुए वृन्दावन चला जाऊँगा। अब आप दोनों मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान कीजिये॥"90-91॥

श्रीभट्टाचार्य और श्रीरायकी सम्मति, किन्तु वर्षाके कारण विजया-दशमी तक रुकनेका अनुरोध :—

शुनिया प्रभुर वाणी मने विचारय।
प्रभु-सने अति हठ कभु भाल नय॥ 92॥

दुँहे कहे,—"एबे वर्षा, चलिते नारिबा।
विजया-दशमी आइले, अवश्य चलिबा॥"93॥

अनुवाद—महाप्रभुके वचन सुनकर दोनों मन-ही-मनमें विचार करने लगे कि महाप्रभुके साथ अधिक हठ करना कभी भी उचित नहीं है। उन दोनोंने कहा,—"अभी वर्षाका समय है, आपको यात्रामें बहुत कष्ट होगा। विजया-दशमी आनेपर आप अवश्य ही जाना॥"92-93॥

महाप्रभुके द्वारा वर्षाका समय व्यतीत करना और विजया-दशमीके दिन वृन्दावनकी यात्रा :—

आनन्दे महाप्रभु वर्षा कैल समाधान।
विजया-दशमी-दिने करिल पयान॥ 94॥

अनुवाद—महाप्रभु उनकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वर्षाकाल समाप्त होने तक प्रतीक्षा की और विजया-दशमीके दिन वे वृन्दावनकी ओर चल दिये॥ 94॥

अनुभाष्य—*'पयान'*—प्रयाण; यात्रा॥ 94॥

साथमें श्रीजगन्नाथके प्रसादादिको लेना :—

जगन्नाथेर प्रसाद प्रभु यत पाञाछिल।
कड़ार चन्दन, डोर, सब सङ्गे लैल॥ 95॥

अनुवाद—महाप्रभुको श्रीजगन्नाथका प्रसादी तांबेके वर्णका चन्दन, रस्सी आदि जो कुछ मिला, उन्होंने वह सब अपने साथ ले लिया॥ 95॥

अनुभाष्य—*'कड़ार'*—तांबेके वर्णका, प्रलेप (?); *'डोर'*—रस्सी॥ 95॥

प्रभातमें यात्रा, पुरीवासी भक्तोंका महाप्रभुका अनुसरण :—

जगन्नाथे आज्ञा मागि' प्रभाते चलिला।
उड़िया-भक्तगण सङ्गे पाछे चलि' आइला॥ 96॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीजगन्नाथकी आज्ञा लेकर प्रभातमें ही चल पड़े। उड़ीसाके भक्त भी उनके साथ उनके पीछे चलने लगे॥ 96॥

पुरीवासी भक्तोंको लौटानेके बाद सङ्गी-भक्तोंके साथ भवानीपुर आना :—

उड़िया-भक्तगणे प्रभु यत्ने निवारिला।
निजगण-सङ्गे प्रभु 'भवानीपुर' आइला॥ 97॥

अनुवाद—महाप्रभुने बड़ी प्रीतिसे आग्रह करके उड़िया भक्तोंको आगे साथ चलनेसे रोका। तब वे अपने भक्तोंके साथ 'भवानीपुर' आ पहुँचे॥ 97॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भवानीपुर'*—जान्कादेइपुर अर्थात् जानकीदेवीपुरके आगे 'भवानीपुर'॥ 97॥

श्रीरायका पीछेसे आगमन, श्रीवाणीनाथका प्रसाद भिजवाना :—

रामानन्द आइला पाछे दोलाय चड़िया।
वाणीनाथ बहु प्रसाद दिल पाठाञा॥ 98॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द बादमें पालकीपर चढ़कर वहाँ आये और श्रीवाणीनाथने बहुतसा प्रसाद भिजवा दिया॥ 98॥

वहींपर रात्रि बिताना, प्रातःकाल भुवनेश्वरमें आगमन :—

प्रसाद भोजन करि' तथाय रहिला।
प्रातःकाले चलि' प्रभु 'भुवनेश्वर' आइला॥ 99॥

अनुवाद—सभी प्रसाद पाकर रात्रिमें भवानीपुरमें ही रहे। प्रातःकाल चलकर महाप्रभु भुवनेश्वर आ गये॥ 99॥

वहाँसे कटकमें आकर श्रीसाक्षिगोपालका दर्शन :—

'कटके' आसिया कैल 'गोपाल' दरशन।
स्वप्नेश्वर-विप्र कैल प्रभुर निमन्त्रण॥ 100॥

अनुवाद—कटकमें पहुँचकर महाप्रभुने श्रीसाक्षी-गोपालका दर्शन किया। वहाँपर स्वप्नेश्वर नामक एक ब्राह्मणने महाप्रभुको निमन्त्रण दिया॥ 100॥

महाप्रभुके भक्तोंको श्रीरायका निमन्त्रण, उपवनमें महाप्रभुका स्थान :—

रामानन्द-राय सब-गणे निमन्त्रिल।
बाहिर उद्याने आसि' प्रभु वासा कैल॥ 101॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुके सभी भक्तोंको प्रसाद ग्रहण करनेके लिये निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने मन्दिरके बाहर स्थित उद्यानमें विश्राम करनेका मन बनाया॥ 101॥

वृक्षके नीचे महाप्रभुका विश्राम करते समय श्रीप्रतापरुद्रको श्रीरायके द्वारा संवाद भेजना :—

भिक्षा करि' बकुलतले करिला विश्राम।
प्रतापरुद्र-ठाञि राय करिल पयान॥ 102॥

अनुवाद—प्रसाद पानेके बाद महाप्रभु बकुलवृक्षके नीचे विश्राम करने लगे, तभी श्रीरामानन्द महाराज प्रतापरुद्रसे मिलनेके लिये गये॥ 102॥

राजाका तुरन्त आगमन और महाप्रभुको प्रणाम एवं स्तुति :—

शुनि' आनन्दित राजा अतिशीघ्र आइला।
प्रभु देखि' दण्डवत् भूमेते पड़िला॥ 103॥

पुनः उठे, पुनः पड़े प्रणय-विह्वल।
स्तुति करे, पुलकाङ्गे पड़े अश्रुजल॥ 104॥

अनुवाद—महाप्रभुके कटकमें आगमनके विषयमें

सुनकर महाराज प्रतापरुद्रको बहुत आनन्द हुआ और बहुत शीघ्रतासे वे महाप्रभुके पास पहुँच गये। महाप्रभुको देखकर महाराज प्रतापरुद्रने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। प्रेममें विह्वल होकर राजा प्रतापरुद्र बार-बार उठते और फिर भूमिपर गिर जाते। और जब वे स्तुति करने लगे, तब उनके समस्त अङ्ग पुलकित हो रहे थे तथा उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे॥ 103-104॥

राजाकी शुद्धभक्तिको देखकर
महाप्रभुके द्वारा उनका आलिङ्गन :—

ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन।
उठि' महाप्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन॥ 105॥

पुनः स्तुति करि' राजा करये प्रणाम।
प्रभु-कृपा-अश्रुते ताँर देह हैल स्नान॥ 106॥

अनुवाद—उनकी भक्तिको देखकर महाप्रभु बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उठकर राजाका आलिङ्गन किया। राजा पुनः पुनः स्तुति करके महाप्रभुको प्रणाम करने लगे। इस प्रकार महाप्रभुकी कृपा प्राप्तकर राजाके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे और उन अश्रुओंसे महाप्रभुकी देह भीग गयी॥ 105-106॥

अनुभाष्य— *'स्नान'*—भीग जाना॥ 106॥

श्रीरायके द्वारा राजाको धैर्य प्रदान करना,
महाप्रभुकी राजापर अप्राकृत कृपा :—

सुस्थ करि, रामानन्द राजारे बसाइला।
कायमनोवाक्ये प्रभु ताँरे कृपा कैला॥ 107॥

अनुवाद—श्रीरामानन्दने राजाको धैर्य धारण करवाकर बैठा दिया। महाप्रभुने काय, मन और वचनसे राजापर कृपा की॥ 107॥

तभीसे महाप्रभुका नाम—"प्रतापरुद्र-संत्राता" :—

ऐछे ताँहारे कृपा कैल गौरराय।
"प्रतापरुद्र-संत्राता" नाम हैल याय॥ 108॥

अनुवाद—श्रीगौररायने राजापर ऐसी कृपा की, जिससे उनका नाम ही "प्रतापरुद्र-संत्राता" अर्थात् 'राजा प्रतापरुद्रके उद्धारक' हो गया॥ 108॥

अनुभाष्य— *'याय'*—जिससे, जिसके लिये॥ 108॥

राजाके परिकरोंके द्वारा महाप्रभुकी वन्दना, महाप्रभुके
द्वारा राजाको विदायी देना :—

राज-पात्रगण कैल प्रभुर वन्दन।
राजारे विदाय दिला शचीर नन्दन॥ 109॥

अनुवाद—राजाके कर्मचारियोंने भी महाप्रभुकी वन्दना की। तब श्रीशचीनन्दनने राजा और उनके कर्मचारियोंको विदायी दी॥ 109॥

अपने राज्यमें राजाके द्वारा घोषणा-पत्रका प्रचार :—

बाहिरे आसि' राजा आज्ञा-पत्र लेखाइल।
निज-राज्ये यत 'विषयी', ताहारे पाठाइल॥ 110॥

'ग्रामे-ग्रामे' नूतन आवास करिबा।
पाँच-सात गृह सब सामग्रये भरिबा॥ 111॥

आपनि प्रभुके लञा ताँहा उत्तरिबा।
रात्रि-दिवा वेत्रहस्ते सेवाय रहिबा॥"112॥

अनुवाद—उद्यानसे बाहर आकर राजाने आज्ञा-पत्र लिखवाये और अपने राज्यके सभी कर-संग्रह करनेवाले कर्मचारियोंके पास वे आज्ञा-पत्र भिजवाये। उस आदेश-पत्रमें उन कर्मचारियोंके लिये निर्देश थे कि वे प्रत्येक गाँवमें नये घर बनवायें और पाँच-सात घरोंमें खानेकी सब प्रकारकी सामग्रियाँ भरकर रखें। वे स्वयं महाप्रभुको उन नये घरोंमें ले जाँय तथा उनकी सुरक्षाके लिये रात-दिन हाथमें लाठी धारणकर उनकी सेवामें रहें॥ 110-112॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'विषयी'*—जो राजकर्मचारी गाँवसे कर संग्रह करता है॥ 110॥

दो महापात्रोंको आदेश :—

दुइ महापात्र,—'हरिचन्दन', 'मङ्गराज'(?)।
ताँरे आज्ञा दिल राजा—"करिह सर्व काज॥ 113॥

एक नव्य-नौका आनि' राखह नदीतीरे।
याँहा स्नान करि' प्रभु यान नदी-पारे॥ 114॥

राजाका प्रगाढ़ श्रीगौरप्रेम :—

ताँहा स्तम्भ रोपण कर 'महातीर्थ' करि'।
नित्य स्नान करिब ताँहा, ताँहा येन मरि॥ 115॥

श्रीरामानन्दको महाप्रभुके निकट जानेका अनुरोध :—

चतुर्द्वारि करह उत्तम नव्य वास।
रामानन्द, याह तुमि महाप्रभु-पाश॥"116॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने श्रीहरिचन्दन तथा श्रीमङ्गराज नामक अपने दो वरिष्ट कर्मचारियोंको आज्ञा दी,—"मेरे इन (आदेश-पत्रके) आदेशोंका पालन करनेके लिये जो भी उचित हो, वह करना। नदीके तटपर एक नयी नौका तैयार रखना और महाप्रभु जहाँ स्नान करें अथवा नदीके दूसरी पार जाँय, उस स्थानको महातीर्थ जानकर वहाँ उसकी स्मृतिमें एक 'स्तम्भ' स्थापित कर देना। मैं नित्य वहीं स्नान करूँगा और मेरी इच्छा है कि मैं उसी स्थानपर ही प्राण त्याग करूँ। चतुर्द्वार नामक ग्राममें उत्तम नये घरोंका निर्माण करो। हे रामानन्द! अब आप महाप्रभुके पास चले जाइये॥ 113-116॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चतुर्द्वार'*—कटकसे महानदी पार करके चतुर्द्वार-ग्राममें जाया जा सकता है; उसीको ही साधारणतः 'चौदार' कहते हैं॥ 116॥

अनुभाष्य—*'मङ्गराज'*—'मरदराज' (?)। *'नव्यवास'*—रहने योग्य नया घर॥ 113-116॥

सन्ध्यामें स्त्रियोंके द्वारा महाप्रभुके गमनका दर्शन :—

सन्ध्याते चलिबे प्रभु,—नृपति शुनिल।
हस्ती-उपर ताम्बुगृहे स्त्रीगणे चड़ाइल॥ 117॥

अनुवाद—जब राजा प्रतापरुद्रने सुना कि सन्ध्याके समय महाप्रभु चले जायेंगे, तब तुरन्त उन्होंने कुछ हाथियोंकी पीठके ऊपर तम्बू बँधवा दिये। फिर वे अपने महलकी स्त्रियोंको उन तम्बुओंमें बिठाकर उन्हें महाप्रभुके दर्शनोंके लिये ले गये॥ 117॥

सन्ध्याके समय महाप्रभुकी कटकसे यात्रा :—

प्रभुर चलिवार पथे रहे सारि हञा।
सन्ध्याते चलिला प्रभु निजगण लञा॥ 118॥

अनुवाद—महाप्रभुके जानेके मार्गपर वे पंक्ति बनाकर खड़ी हो गयीं। सन्ध्याके समय महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ वहाँसे चल पड़े॥ 118॥

महानदीमें स्नान, रानियोंके द्वारा प्रणाम :—

'चित्रोत्पला-नदी' आसि' घाटे कैल स्नान।
महिषीसकल देखे करये प्रणाम॥ 119॥

अनुवाद—'चित्रोत्पला-नदी' पहुँचकर महाप्रभुने घाटपर स्नान किया। सभी रानियों और महलकी स्त्रियोंने महाप्रभुके दर्शन किये और उन्हें प्रणाम किया॥ 119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चित्रोत्पला-नदी'*—कटकसे चलते हुए जिस स्थानपर महानदीकी एक शाखा-नदी आती है, उसे 'चित्रोत्पला-नदी' कहते हैं। उत्कलके पण्डितगण किसी तन्त्रमेंसे यह बात बतलाते हैं कि,—'कलौ चित्रोत्पला गङ्गा' अर्थात् कलियुगमें चित्रोत्पला ही गङ्गा है॥ 119॥

महाप्रभुके दर्शनसे सभीमें भावावेश :—

प्रभुर दरशने सबे हैल प्रेममय।
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे, नेत्रे अश्रु वरिषय॥ 120॥

अनुवाद—महाप्रभुके दर्शनसे सभी रानियाँ और महलकी स्त्रियाँ प्रेममें विह्वल हो गयीं। वे सभी 'कृष्ण', 'कृष्ण' नामका कीर्तन करने लगीं और उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी वर्षा होने लगी॥ 120॥

अद्भुत करुणा-विग्रह :—

एमन कृपालु नाहि शुनि त्रिभुवने।
कृष्णप्रेमा हय याँर दूर दरशने॥ 121॥

अनुवाद—महाप्रभु जैसा कृपालु त्रिभुवनमें कोई भी नहीं सुना जाता है। जिनके दूरसे दर्शन करने मात्रसे ही श्रीकृष्णप्रेम उदित हो जाता है॥ 121॥

नदीको पारकर चतुर्द्वारमें आकर प्रतिदिन पड़िछाओंके द्वारा भेजे गये जगन्नाथके प्रसादका सेवन :—

नौकाते चड़िया प्रभु हैल नदी पार।
ज्योत्स्नावती रात्र्ये चलि' आइला चतुर्द्वार॥ 122॥

रात्र्ये तथा रहि' प्राते स्नानकृत्य कैल।
हेनकाले जगन्नाथेर महाप्रसाद आइल॥ 123॥

राजार आज्ञाय पड़िछा पाठाय दिने-दिने।
बहुत प्रसाद पाठाय दिया बहु-जने॥ 124॥

स्वगण सहिते प्रभु प्रसाद अङ्गीकरि'।
उठिया चलिला प्रभु बलि' 'हरि' 'हरि'॥ 125॥

अनुवाद—तब नौकापर चढ़कर महाप्रभुने नदी पार की। चाँदनी रात्रिमें वे चलते हुए चतुर्द्वार नामक गाँवमें आ पहुँचे। रात्रिमें चतुर्द्वारमें रहकर महाप्रभुने प्रातःकाल स्नानकृत्य किया, उसी समय श्रीजगन्नाथका महाप्रसाद आ गया। राजाकी आज्ञासे पड़िछा प्रतिदिन श्रीजगन्नाथजीका इतना अधिक प्रसाद भेजता था कि उस प्रसादको बहुतसे लोग उठाकर लाते थे। अपने भक्तोंके साथ महाप्रभुने प्रसादको ग्रहण किया और 'हरि' 'हरि' बोलते हुए वे उठकर चल दिये॥ 122-125॥

साथमें तीन राजकर्मचारियोंमें श्रीराय प्रमुख :—

रामानन्द, मङ्गराज (?), श्रीहरिचन्दन।
सङ्गे सेवा करि' चले एइ तिन जन॥ 126॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द राय, श्रीमङ्गराज तथा श्रीहरिचन्दन—ये तीनों महाप्रभुकी सेवा करते हुए सदा उनके साथ चल रहे थे॥ 126॥

महाप्रभुकी वृन्दावन-यात्राके प्रधान सङ्गी :—

प्रभुसङ्गे पुरी-गोसाञि, स्वरूप-दामोदर।
जगदानन्द, मुकुन्द, गोविन्द, काशीश्वर॥ 127॥

हरिदास ठाकुर आर पण्डित-वक्रेश्वर।
गोपीनाथाचार्य, आर पण्डित-दामोदर॥ 128॥

रामाइ, नन्दाइ आर बहु भक्तगण।
प्रधान कहिलुँ, सबार के करे गणन॥ 129॥

अनुवाद—महाप्रभुके साथ श्रीपरमानन्द पुरी गोसाईं, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीमुकुन्द, श्रीगोविन्द, श्रीकाशीश्वर, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीगोपीनाथाचार्य, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीरामाइ, श्रीनन्दाइ तथा अन्य और भी अनेक भक्त थे। मैंने प्रधान भक्तोंके नामोंका उल्लेख किया है। सभी भक्तोंकी कौन गणना कर सकता है?॥ 127-129॥

आधे क्षणके लिये भी महाप्रभुके विच्छेदमें कातर श्रीगदाधरका अतुलनीय श्रीगौरप्रेम :—

गदाधर-पण्डित तबे सङ्गेते चलिला।
'क्षेत्र-संन्यास ना छाड़िह'—प्रभु निषेधिला॥ 130॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डित भी तब महाप्रभुके साथ चलने लगे, परन्तु 'क्षेत्र-सन्यासको मत छोड़ना'—ऐसा कहकर महाप्रभुने उन्हें साथ चलनेके लिये मना किया॥ 130॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'क्षेत्र-संन्यास'*—जो अपने पूर्व गृहका त्याग करके किसी विशेष (विष्णु) तीर्थमें अर्थात् पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें या नवद्वीप-धाममें या मथुरादि-मण्डलमें अकेले अथवा सपरिवार परमार्थ-बुद्धिके सहित वास करते हैं, उनके आश्रमको 'क्षेत्र-संन्यास' कहते हैं। यही आश्रम ही कलिकालका उपयुक्त 'वानप्रस्थ-धर्म' है। सार्वभौम-भट्टाचार्यका भी ऐसा ही 'क्षेत्र-सन्यास' कहा गया है॥ 130॥

महाप्रभुके सङ्गके लोभसे धामवासरूपी क्षेत्रसंन्यासके त्यागमें भी पण्डित अविचलित :—

पण्डित कहे,—"याँहा तुमि, सेइ नीलाचल।
क्षेत्र-संन्यास मोर याउक रसातल॥"131॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डितने कहा,—"आप जहाँपर हैं, वही नीलाचल है। मेरा ऐसा क्षेत्र-संन्यास रसातलमें चला जाय॥"131॥

महाप्रभु-सङ्गके लोभसे सेवा-परित्याग और सेवाकी प्रतिज्ञाके उल्लङ्घनमें भी पण्डित अविचलित :—

प्रभु कहे,—"इँहा कर गोपीनाथ-सेवन।"
पण्डित कहे,—"कोटि-सेवा त्वत्पाद-दर्शन॥"132॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यहीं नीलाचलमें रहकर श्रीगोपीनाथकी सेवा करो।" श्रीगदाधर पण्डितने कहा,—"आपके चरणोंके दर्शनमात्रसे ही श्रीगोपीनाथकी करोड़ गुणा अधिक सेवा हो जाती है॥"132॥

अपने भावी-कलङ्ककी आशङ्काको दिखलाकर महाप्रभुका पुरीसे ही पण्डितको उनके पीछे अनुसरण करने हेतु निषेध :—

प्रभु कहे,—"सेवा छाड़िबे, आमाय लागे दोष।
इँहा रहि' सेवा कर,—आमार सन्तोष॥"133॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यदि तुम सेवा छोड़ोगे, तो दोष मुझे लगेगा। इसलिये यहींपर रहकर सेवा करो, इसीमें मुझे सन्तुष्टि होगी॥"133॥

श्रीगदाधरका अभिमान :—

पण्डित कहे,—"सब दोष आमार उपर।
तोमा-सङ्गे ना याइब, याइब एकेश्वर॥134॥
'आइ'के देखिते याइब, ना याइब तोमा लागि'।
'प्रतिज्ञा'-'सेवा'-त्याग-दोष, तार आमि भागी॥"135॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डितने कहा,—"सारा दोष मुझपर लगेगा। मैं आपके साथ नहीं जाऊँगा, किन्तु मैं अकेला ही जाऊँगा। मैं 'आइ' (शचीमाताके) दर्शनोंके लिये जाऊँगा, आपसे मिलनेके लिये नहीं जाऊँगा। इसलिये 'क्षेत्र-सन्यासकी प्रतिज्ञा' तथा 'श्रीगोपीनाथकी सेवा'को त्यागनेके दोषका मैं ही उत्तरदायी होऊँगा॥"134-135॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीने श्रीगोपीनाथकी सेवा प्राप्त करके उस सेवामें ही जीवन व्यतीत करनेकी प्रतिज्ञा की थी। महाप्रभुके साथ गौड़देशमें जानेपर उस 'प्रतिज्ञा-भङ्ग-दोष' और 'सेवा-त्याग-दोष'—ये दो दोष होते हैं। अनुराग-मार्गमें इन सब दोषोंको महात्मागण स्वीकार करते हैं॥135॥

अनुभाष्य—*'एकेश्वर'*—आज भी चट्टग्राम-क्षेत्रमें 'अकेले'के अर्थमें 'एकेश्वर' शब्दका अपभ्रंश 'अश्वर' प्रचलित है।

जीवनमें सर्वार्थ सिद्धि प्रदान करनेवाले श्रीगोपीनाथके विग्रहकी सेवारूपी प्रतिज्ञाको विफल करके श्रीगदाधर पण्डित श्रीगौराङ्गका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये भगवद्-सेवाको भी बिना प्रयासके ही आसानीसे छोड़ देनेके लिये तैयार हुए। श्रीगदाधरकी श्रीगौराङ्गप्रीतिको उनके ही समान मर्मी, अन्तरङ्ग बान्धवके अतिरिक्त और कोई नहीं समझ सकता॥134॥

पुरीसे कटक आकर महाप्रभुके द्वारा पण्डितको निकट बुलाना :—

एत बलि' पण्डित-गोसाञि पृथक् चलिला।
कटक आसि' प्रभु ताँरे सङ्गे आनाइला॥136॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीगदाधर-पण्डित गोसाईं महाप्रभुसे अलग चलने लगे। कटकमें पहुँचकर महाप्रभुने उन्हें अपने पास आनेके लिये बुलवा भेजा॥136॥

श्रीगदाधरकी केवला-श्रीगौरप्रीति ऐश्वर्यसे मुग्ध व्यक्तियोंकी समझसे परे :—

पण्डितेर गौराङ्गप्रेम बुझन ना याय।
'प्रतिज्ञा', 'श्रीकृष्णसेवा' छाड़िल तृणप्राय॥137॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डितके श्रीगौराङ्गप्रेमको समझा नहीं जा सकता, उन्होंने अपनी क्षेत्र-सन्यासकी 'प्रतिज्ञा' और 'श्रीगोपीनाथसेवा'को तृणकी भाँति त्याग कर दिया था॥137॥

महाप्रभुके भीतर सन्तोष होनेपर भी बाहरसे कृत्रिम-कोप-उक्ति :—

ताँहार चरित्रे प्रभु अन्तरे सन्तोष।
ताँहार हाते धरि' कहे करि' प्रणय-रोष॥138॥

यहाँ तक पण्डितके उद्देश्यकी सिद्धि, इसके बाद पण्डितको पुरीमें जाकर श्रीगोपीनाथकी सेवा करनेके लिये शपथ दिलाना :—

"'प्रतिज्ञा' 'सेवा' छाड़िबे,—ए तोमार 'उद्देश'।
से सिद्ध हइल—छाड़ि' आइला दूर देश॥ 139॥

भक्तका श्रीकृष्णको सुख-दान और श्रीकृष्णका भक्तको सुख-दान :—

आमार सङ्गे रहिते चाह,—वाञ्छ निज-सुख।
तोमार दुइ धर्म याय,—आमार हय 'दुःख'॥ 140॥

मोर सुख चाह यदि, नीलाचले चल।
आमार शपथ, यदि आर किछु बल॥"141॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डितके आचरणसे यद्यपि महाप्रभु हृदयमें बहुत सन्तुष्ट थे, किन्तु बाहरसे उनके हाथोंको पकड़कर उन्होंने प्रणय-रोष प्रकाशित करते हुए कहा,—"तुम्हारा उद्देश्य क्षेत्र-संन्यासकी 'प्रतिज्ञा' और श्रीगोपीनाथकी 'सेवा'का त्याग था, अब तुम्हारा वह उद्देश्य तो पूर्ण हो गया है, क्योंकि तुम नीलाचलसे इतना दूर आ गये हो। तुम मेरे साथ रहना चाहते हो—यह तो तुम्हारे अपने सुखकी कामना है। इसके द्वारा तुम दोनों धर्मोंको नष्ट कर रहे हो, जिसे देखकर मुझे 'दुःख' हो रहा है। यदि तुम मेरी प्रसन्नता चाहते हो तो नीलाचल लौट जाओ। तुम्हें मेरी शपथ है, यदि इसके बाद भी तुमने कुछ बोला॥"138-141॥

महाप्रभुका नौकापर चढ़ना, पण्डितकी मूर्च्छा :—

एत बलि' महाप्रभु नौकाते चड़िला।
मूर्च्छित हञा तथा पण्डित पड़िला॥ 142॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु नौकामें चढ़ गये और श्रीगदाधर पण्डित मूर्च्छित होकर वहींपर गिर पड़े॥ 142॥

श्रीगदाधर-पण्डितको ले जानेके लिये महाप्रभुका श्रीसार्वभौमको आदेश :—

पण्डिते लञा याइते सार्वभौमे आज्ञा दिला।
भट्टाचार्य कहे,—"उठ, ऐछे प्रभुर लीला॥ 143॥

श्रीगदाधर-पण्डितको श्रीभट्टाचार्यके द्वारा सान्त्वना देना :—

तुमि जान, कृष्ण निज-प्रतिज्ञा छाड़िला।
भक्त कृपा-वशे भीष्मेर प्रतिज्ञा राखिला॥ 144॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसार्वभौमको श्रीगदाधर पण्डितको जगन्नाथपुरी ले जानेकी आज्ञा दी। श्रीसार्वभौमने श्रीगदाधर पण्डितसे कहा,—"उठो! महाप्रभुकी ऐसी ही अद्भुत लीलाएँ हैं। तुम तो जानते हो कि श्रीकृष्णने अपनी प्रतिज्ञाको भङ्ग करके भक्त भीष्मके प्रति कृपाके कारण उनकी प्रतिज्ञाकी रक्षा की थी॥ 143-144॥

भक्तकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये भगवान्‌के द्वारा अपनी प्रतिज्ञाको भङ्ग करना :—

श्रीमद्भागवत (1/9/37)में—

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृत-
मधिकर्त्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्-
गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥ 145॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'कुरुक्षेत्र युद्धमें मैं अस्त्रधारण नहीं करूँगा'—श्रीकृष्णचन्द्र अपनी इस प्रतिज्ञाको त्याग करके मेरी प्रतिज्ञाको ही अधिक सत्य करनेके अभिप्रायसे रथसे नीचे उतरे और जब चक्रको धारण कर मेरा वध करनेके लिये आ रहे थे, तब उनका उत्तरीय भी गिर पड़ा॥ 145॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके साथ आये युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंको भागवतधर्म और अन्यान्य साधारण धर्मोंका वर्णन करनेके बाद स्वेच्छा मृत्युवाले महाभागवत भीष्मदेव उत्तरायण-कालको उपस्थित हुआ देखकर, अपनी मृत्युको निकट जानकर सामने उपस्थित श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं—

स्वनिगमम् (अस्त्रधारणं बिनैव पाण्डवान् रक्षयिष्यामीति निजप्रतिज्ञाम्) अपहाय (परित्यज्य) मत्प्रतिज्ञां (श्रीकृष्णं शस्त्रं ग्राहयिष्यामीति सङ्कल्पम्) ऋतं (सत्यम्) अधि (अधिकं) कर्त्तुं रथस्थः [श्रीकृष्णः] अवप्लुतः (सहसा अवतीर्णः सन् एव)

धृतरथचरणः (धृतं रथचरणं चक्रं येन सः) चलद्गुः (संरम्भेण चलन्ती कम्पमाना गौः धरा यस्मात् सः) गतोत्तरीयः (गतं पथि पतितम् उत्तरीयं तेनैव संरम्भेण यस्य सः) इभं (गजं) हन्तुं (विनाशयितुं) हरिः (सिंहः) इव अभ्ययात् (अग्रतः अधावत्), [सः मे पतिर्भूयात् इति परेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—'अस्त्र धारण किये बिना मैं पाण्डवोंकी रक्षा करूँगा'—अपनी इस प्रतिज्ञाको त्यागकर मेरा सङ्कल्पको—'मैं श्रीकृष्णसे शस्त्र धारण करवाकर रहूँगा' अधिक सत्य करनेके लिये श्रीकृष्ण रथसे सहसा कूद पड़े और रथके पहियेको चक्रकी भाँति धारण करके प्रबल वेगसे मेरी ओर झपटे, जिस प्रकार हाथीका वध करनेके लिये सिंह प्रबल वेगसे दौड़ पड़ता है। वेगसे दौड़नेके कारण उनके कन्धेसे उत्तरीय वस्त्र गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी [वे मेरी गति हों, अगले श्लोकके इस वाक्यके साथ इस श्लोकका अन्वय करें]॥ 145॥

महाप्रभुके द्वारा पण्डितकी प्रतिज्ञाकी रक्षा :—

एइमत प्रभु तोमार विच्छेद सहिया।
तोमार प्रतिज्ञा रक्षा कैल यत्न करिया॥"146॥

अनुवाद—इसी प्रकार स्वयं तुम्हारे वियोगको सहन करते हुए महाप्रभुने बड़े यत्नसे तुम्हारी प्रतिज्ञाकी रक्षा की है॥"146॥

श्रीपण्डितको लेकर श्रीभट्टाचार्यका पुरीमें आगमन :—

एइमत कहि' ताँरे प्रबोध करिला।
दुइजने शोकाकुल नीलाचल आइला॥ 147॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने इस प्रकार कहकर श्रीगदाधर पण्डितको ढाढ़स बँधाया और दोनों ही बड़े शोकमें डूबकर नीलाचल लौट आये॥ 147॥

श्रीकृष्णके उद्देश्यसे भक्तके द्वारा अनायास ही स्वधर्म-त्याग, श्रीकृष्णका इसी कारण ऋण :—

प्रभु लागि' धर्म-कर्म छाड़े भक्तगण।
भक्त-धर्म-हानि प्रभुर ना याय सहन॥ 148॥

अनुवाद—भक्त भगवान्‌के लिये सब प्रकारके धर्म-कर्मको छोड़नेके लिये तत्पर रहते हैं, परन्तु भगवान्‌से भक्तोंके धर्मकी हानि सहन नहीं होती॥ 148॥

भगवान्‌के विरहमें भक्तकी कातरता स्वाभाविक ही है, किन्तु भक्तके विरहमें भगवान्‌की कातरता ही 'प्रेम-विवर्त्त' है; उसके श्रवणसे जीवको श्रीचैतन्यकी प्राप्ति :—

'प्रेमेर विवर्त्त' इहा शुने येइ जन।
अचिरे मिलये ताँरे चैतन्य-चरण॥ 149॥

अनुवाद—इस 'प्रेमके विवर्त्त'को जो व्यक्ति श्रवण करता है, उसे अति शीघ्र श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंका आश्रय प्राप्त होता है॥ 149॥

महाप्रभुका याजपुरमें दोनों महापात्रोंको विदा करना :—

दुइ राजपात्र येइ प्रभुसङ्गे याय।
'याजपुर' आसि' प्रभु तारे दिलेन विदाय॥ 150॥

अनुवाद—जो दो राजपात्र महाप्रभुके साथ जा रहे थे, याजपुर पहुँचनेपर महाप्रभुने उन दोनोंको विदायी दी॥ 150॥

अनुभाष्य—*'याजपुर'*—कटक जिलेका एक उपखण्ड है। यह वैतरणी नदीके दक्षिण तटपर अवस्थित है। बायें तटपर ऋषियोंके द्वारा यज्ञ-कार्य करनेसे इस स्थानका नाम 'याजपुर' हुआ है। किसीके मतानुसार 'ययाति नगर'से 'याजपुर' नाम हुआ है। महाभारतके वनपर्वमें 114 अः—

"एते कलिङ्गाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी।
यत्राऽयजत धर्मोऽपि देवान् शरणमेत्य वै॥4॥
अत्र वै ऋषयोऽन्ये च पुरा क्रतुभिरीजिरे॥"6ख॥

[अर्थात् लोमश ऋषिने कहा,—"हे कुन्तीपुत्र! यह कलिङ्ग देश है, जिसमें वैतरणी नदी बहती है। जहाँ धर्मने भी देवताओंकी शरणमें जाकर यज्ञ किया था। प्रचीनकालमें ऋषियों तथा अन्य लोगोंने भी यहाँ बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान किया था।"]

यहाँ असंख्य देवमूर्तियाँ हैं; उनमेंसे श्रीवराहदेवकी

मूर्ति ही विशेष पूज्य है। शक्तिके उपासकगण 'वाराही' 'वैष्णवी' और 'इन्द्राणी' आदि देवियोंकी पूजा करते हैं। यहाँ शिवकी भी अनेक मूर्तियाँ और दशाश्वमेध-घाट भी है। इस स्थानको 'नाभिगया', 'विरजा-क्षेत्र' आदि भी कहा गया है॥ 150॥

सङ्गी श्रीरायके साथ महाप्रभुका सर्वदा श्रीकृष्ण कथा-आलाप :—

प्रभु विदाय दिल, राय याय ताँर सने।
कृष्णकथा रामानन्द-सने रात्रि-दिने॥ 151॥

अनुवाद—महाप्रभुके द्वारा उन दोनों राजपात्रोंको विदायी देनेपर श्रीरामानन्दराय महाप्रभुके साथ चलने लगे। महाप्रभु श्रीरामानन्दके साथ रात-दिन कृष्णकथामें ही डूबे रहते॥ 151॥

राजाके आदेशसे प्रत्येक ग्राममें राज-कर्मचारियोंके द्वारा महाप्रभुकी अगवानी :—

प्रतिग्रामे राज-आज्ञाय राजभृत्यगण।
नव्य-गृहे नाना-द्रव्ये करये सेवन॥ 152॥

अनुवाद—प्रत्येक ग्राममें राजा प्रतापरुद्रकी आज्ञासे राजकर्मचारियोंने नये घर बनाये और उनमें अनेक प्रकारकी खानेकी वस्तुएँ एकत्रित करके रखीं। इन सबके द्वारा वे महाप्रभुकी सेवा करते॥ 152॥

रेमुणामें (?) श्रीरायको विदायी देना :—

एइमत चलि' प्रभु 'रेमुणा' आइला।
तथा हैते रामानन्द-राये विदाय दिला॥ 153॥

अनुवाद—इस प्रकार चलते-चलते महाप्रभु 'रेमुणा' आ पहुँचे और वहाँसे उन्होंने श्रीरायरामानन्दको भी विदायी प्रदान की॥ 153॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस प्रकार महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायके साथ आते-आते बालेश्वरके निकट रेमुणामें पहुँचनेसे पहले ही भद्रकसे श्रीरामानन्द-रायको विदायी दी;—ऐसा वर्णन अनेक स्थानोंपर है॥ 153॥

अनुभाष्य—*'तथा हैते'*—वहाँसे; पाठान्तरमें, 'भद्रक हइते'—भद्रकसे। *'तथा हैते'* के द्वारा 'रेमुणासे' समझने पर, मध्यलीला 1/149 संख्यामें लिखित "रामानन्द राय आइला भद्रक पर्यन्त" अर्थात् 'श्रीरामानन्द राय भद्रक तक आये' पाठके साथ मेल नहीं होता। किसीके मतानुसार,—'रेमुणा' उस समय भद्रक-प्रदेशके अन्तर्गत था; किन्तु इस विषयमें प्रमाणका अभाव है। किसीके मतानुसार,—पूर्वोक्त 'भद्रक'के स्थानपर 'रेमुणा' पाठ ही सङ्गत है; किन्तु भद्रकसे श्रीरायका लौटकर जाना ही अधिकतर सङ्गत लगता है। 'भद्रक'—बालेश्वरसे चार योजन (40 मील) दक्षिणमें अवस्थित है और 'रेमुणा'—प्राय आधा योजन (5 मील) पश्चिममें अवस्थित है॥ 153॥

श्रीरायकी मूर्च्छा, महाप्रभुका क्रन्दन :—

भूमेते पड़िला राय नाहिक चेतन।
राये कोले करि' प्रभु करये क्रन्दन॥ 154॥

अनुवाद—तभी श्रीरामानन्दराय भूमिपर गिर पड़े और अचेतन हो गये। महाप्रभु उनको अपनी गोदीमें लेकर क्रन्दन करने लगे॥ 154॥

श्रीरायका महाप्रभुसे विच्छेद अवर्णनीय :—

रायेर विदाय-भाव ना याय सहन।
कहिते ना पारि एइ ताहार वर्णन॥ 155॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायका महाप्रभुसे विरहका वर्णन करना बहुत कठिन है, यह असहनीय है, इसलिये मैं उसका और वर्णन नहीं कर सकता॥ 155॥

उड़ीसाकी सीमापर आगमन; राज-कर्मचारियोंके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

तबे 'ओड्र
तथा राज-अधिकारी प्रभुरे मिलिला॥ 156॥
दिन दुइ-चारि तेँहो करिल सेवन।
आगे चलिवारे सेइ कहे विवरण॥ 157॥

महाप्रभुको राजकर्मचारीके द्वारा हिन्दु और मुस्लिम राज्योंकी सीमाका निर्देश और पथका विवरण देना :—

"मद्यप यवन-राजार आगे अधिकार।
ताँर भये पथे केह नारे चलिवार॥ 158॥

पिछल्दा पर्यन्त सब ताँर अधिकार।
ताँर भये नदी केह हैते नारे पार॥ 159॥

मुस्लिम शासकके साथ सन्धिके बाद महाप्रभुके जानेके विषयमें सहायता अङ्गीकार :—

दिन कत रह—सन्धि करि' ताँर सने।
तबे सुखे नौकाते कराइब गमने॥"160॥

अनुवाद—तब चलते हुए महाप्रभु उड़ीसा राज्यकी सीमापर आ पहुँचे। वहाँपर एक राज-अधिकारी आकर महाप्रभुसे मिला। दो-चार दिनों तक उसने महाप्रभुकी सेवा की और आगे चलनेके मार्गका विवरण दिया,—"आगे मद्यपान करके मत्त रहनेवाले यवन राजाका अधिकार है। उसके भयसे उस मार्गपर कोई नहीं जाता है। पिछल्दा नामक स्थान तक उसका अधिकार है। उसके भयसे कोई नदीको भी पार नहीं करता। कुछ दिन तक आप यहींपर रुक जाइये, मैं उस यवन राजाके साथ मित्रता करके सुखपूर्वक आपको नौकामें चढ़ाकर भेज दूँगा॥"156-160॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पिछल्दा'*—तमलुकेर निकटवर्ती रूप-नारायण नदीके तटपर पिछल्दा-नामक ग्राम है॥ 158॥

अनुभाष्य—*'ओढ्र* —सुवर्णरेखा नदी ही बङ्गाल और उड़ीसाकी सीमा है। सुवर्णरेखा नदी श्रीपाट गोपीवल्लभपुरके पाससे होकर उड़ीसामें प्रवाहित होती है॥ 156॥

मुस्लिम शासकके एक गुप्तचरके द्वारा अपने स्वामीको महाप्रभु और उनके साथियोंकी क्रिया और महिमाका वर्णन :—

सेइ काले से यवनेर एक अनुचर।
'उड़िया-कटके' आइल करि' वेशान्तर॥ 161॥

अनुवाद—उस समय उस यवन राजाका एक अनुचर गुप्तरूपसे उड़ीसा-छावनीमें वेश-परिवर्तन करके आया॥ 161॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'उड़िया-कटक'*—उड़ीसा-देशीय राजाकी राज्य-सीमापर जो 'सैन्यकटक' अर्थात् छावनी थी, उसीको 'उड़िया-कटक' कहा गया है॥ 161॥

अनुभाष्य—*'करि' वेशान्तर'*—स्वयं 'यवन' होकर यवनोंके वेशके बदले हिन्दुके वेशको धारण करके॥ 161॥

प्रभुर सेइ अदभुत चरित्र देखिया।
हिन्दु-चर कहे, सेइ यवन-पाश गिया॥ 162॥

"एक संन्यासी आइल जगन्नाथ हैते।
अनेक सिद्ध-पुरुष हय ताँहार सहिते॥ 163॥

अनुवाद—हिन्दु वेशमें उस यवन गुप्तचरने महाप्रभुके अद्भुत चरित्रको देखा। फिर उसने यवन राजाके पास जाकर कहा,—"एक संन्यासी जगन्नाथपुरीसे आये हैं और उनके साथ बहुतसे सिद्ध पुरुष भी हैं॥ 162-163॥

अनुभाष्य—*'चर'*—विपक्षका हो अथवा अपनी प्रजासे ही हो, गुप्त रूपसे अन्दरकी सब बातोंको जानकर अपने परिचयको छिपाकर अन्य परिचय देकर जो व्यक्ति अपने स्वामी अथवा भेजनेवालेको यथावत् संवाद देता है॥ 162॥

निरन्तर करे सबे कृष्ण-सङ्कीर्त्तन।
सबे हासे, नाचे, गाय, करये क्रन्दन॥ 164॥

लक्ष लक्ष लोक आइसे ताहा देखिबारे।
ताँरे देखि' पुनरपि याइते नारे घरे॥ 165॥

सेइ सब लोक हय बाउलेर प्राय।
'कृष्ण' कहि' नाचे, कान्दे, गड़ागड़ि याय॥ 166॥

कहिबार कथा नहे,—देखिले से जानि।
ताँहार प्रभावे ताँरे 'ईश्वर' करि' मानि॥"167॥

अनुवाद—वे सभी निरन्तर कृष्णनामका सङ्कीर्तन

करते हैं। सभी हँसते हैं, नाचते हैं, गाते हैं और रोते हैं। लाखों-लाखों लोग उन्हें देखनेके लिये आते हैं और एक बार उन संन्यासीको देखनेपर पुनः अपने घरको लौट नहीं पाते। वे सब भी पागल जैसे हो जाते हैं तथा 'कृष्ण' कहकर नाचते हैं, रोते हैं और भूमिपर लोट-पोट खाते हैं। यह सब कहनेकी बात नहीं है, देखनेपर ही इसका अनुभव किया जा सकता है। उन संन्यासीके प्रभावके कारण मैं उन्हें 'ईश्वर' ही मानता हूँ॥"164-167॥

उस गुप्तचरका प्रेमावेश :—

एत कहि' सेइ चर 'हरि' 'कृष्ण' गाय।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय बाउलेर प्राय॥ 168॥

अनुवाद—इतना कहकर वह गुप्तचर 'हरि' 'कृष्ण' कहकर गान करने लगा और वह भी पागलकी भाँति हँसने, रोने, नाचने तथा गाने लगा॥ 168॥

गुप्तचरके मुखसे महाप्रभुकी बात सुनकर मुस्लिम शासकका महाप्रभुके पास दूत-भेजना :—

एत शुनि' यवनेर मन फिरि' गेल।
आपन-'विश्वास' उड़िया-स्थाने पाठाइल॥ 169॥

अनुवाद—गुप्तचरके मुखसे ये सब बातें सुनकर यवन राजाका मन बदल गया। उसने अपने एक अति विश्वसनीय व्यक्तिको उड़िया-छावनीमें उड़ीसाके राज अधिकारीके पास भेजा॥ 169॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'विश्वास'*—गौड़देशीय यवन राजाका 'विश्वासखाना' नामक एक 'कार्यालय' था; उसमें अत्यन्त विश्वसनीय कायस्थोंको ही कार्यपर रखा जाता था। राजाको जब जहाँ प्रधान कार्य पड़ता, वहीं ये कायस्थ 'विश्वास' गण ही भेजे जाते थे॥ 169॥

दूतके द्वारा महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना और प्रेमावेश :—

'विश्वास' आसिया प्रभु-चरण वन्दिल।
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' प्रेमे विह्वल हइल॥ 170॥

अनुवाद—यवन राजाका वह अति विश्वासपात्र व्यक्ति महाप्रभुके पास आया। जब उसने आकर महाप्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण किया, तो वह भी प्रेममें विह्वल हो गया॥ 170॥

राज-कर्मचारीके निकट उसका कातरभावसे निवेदन और सन्धिकी प्रार्थना :—

धैर्य हञा उड़ियाके कहे नमस्करि'।
"तोमा-स्थाने पाठाइला म्लेच्छ अधिकारी॥ 171॥

तुमि यदि आज्ञा देह' एथाके आसिया।
यवन अधिकारी याय प्रभुके मिलिया॥ 172॥

बहुत उत्कण्ठा ताँर, करयाछे विनय।
तोमा-सने एइ सन्धि, नाहि युद्ध-भय॥"173॥

अनुवाद—कुछ देरके बाद धैर्य धारण करके उसने उड़ीसाके राज-कर्मचारीको नमस्कार किया और कहा,—"यवन राजाने मुझे आपके पास भेजा है। यदि आप आज्ञा दें, तो यवन राजा महाप्रभुसे मिलकर चले जाँय। उनको महाप्रभुसे मिलनेकी बहुत उत्कण्ठा है, उन्होंने विनती करनेके लिये ही मुझे यहाँ भेजा है। उनका प्रस्ताव सन्धिके लिये है, युद्धका कोई भय नहीं कीजिये॥"171-173॥

महाप्रभुके द्वारा मुस्लिम-शासकके चित्त-परिवर्तनसे राजकर्मचारीको विस्मय :—

शुनि' महापात्र कहे हञा विस्मय।
"मद्यप यवनेर चित्त ऐछे के करय!॥ 174॥

आपने महाप्रभु ताँर मन फिराइल।
दर्शन-स्मरणे याँर जगत् तारिल॥"175॥

अनुवाद—उसके प्रस्तावको सुनकर राजकर्मचारीने अत्यन्त विस्मित होकर कहा,—"मद्यपानमें मत्त रहनेवाले यवनका चित्त ऐसा किसने बना दिया! स्वयं महाप्रभुने ही उसके मनको परिवर्तित कर दिया है। जिनके दर्शन

अथवा स्मरणसे ही सम्पूर्ण जगत्का उद्धार हो जाता है॥"174-175॥

मुस्लिम शासकको महाप्रभुके दर्शनकी सम्मति देना :—

एत बलि' विश्वासेरे कहिल वचन।
"भाग्य ताँर—आसि' करुक प्रभु दरशन॥176॥
प्रतीत करिये—यदि निरस्त्र हञा।
आसे तेँहो पाँच-सात भृत्य सङ्गे लञा॥"177॥

अनुवाद—ऐसा अपने मनमें विचार करके राजकर्मचारीने यवनके विश्वासपात्रसे कहा,—"यह उनका सौभाग्य होगा, वे आकर महाप्रभुके दर्शन कर सकते हैं। किन्तु एक बात आप समझ लीजिये कि वे बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके आयें। वे साथमें पाँच-सात सेवकोंको अवश्य लेकर आ सकते हैं॥"176-177॥

दूतके द्वारा यह आनन्द संवाद देना, मुस्लिम लोगोंका छद्म हिन्दु वेशमें महाप्रभुके दर्शनके लिये आना :—

'विश्वास' याञा ताँहारे सकल कहिल।
हिन्दुवेश धरि' सेइ यवन आइल॥178॥
दूर हैते प्रभु देखि' भूमेते पड़िया।
दण्डवत् करे अश्रु-पुलकित हञा॥179॥

अनुवाद—उस विश्वसनीय व्यक्तिने जाकर यवन राजाको सब कुछ बतलाया। वह यवन राजा हिन्दुओंका वेश धारण करके आया। महाप्रभुको दूरसे ही देखकर उसने भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया। उसके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे तथा उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा॥178-179॥

महाप्रभुके निकट आकर मुस्लिमका श्रीकृष्णनाम-ग्रहण :—

महापात्र आनिल ताँरे करिया सम्मान।
योड़हाते प्रभु-आगे लय कृष्णनाम॥180॥

अनुवाद—महापात्र उसे सम्मानपूर्वक महाप्रभुके निकट ले आये। वह यवन हाथ जोड़कर महाप्रभुके सामने खड़े होकर श्रीकृष्णनामका कीर्तन करने लगा॥180॥

अपने मुस्लिम जन्मको धिक्कार और निर्वेदपूर्ण उक्ति :—

"अधम यवनकुले केने जन्माइले।
विधि मोरे हिन्दुकुले केने ना जन्माइले॥181॥

महाप्रभुके चरणोंकी प्राप्तिके बिना मृत्युकी इच्छा :—

'हिन्दु' हैले पाइताम तोमार चरण-सन्निधान।
व्यर्थ मोर एइ देह, याउक पराण॥"182॥

अनुवाद—उस यवनने महाप्रभुसे कहा,—"मेरा जन्म अधम यवनकुलमें क्यों हुआ? विधाताने मुझे हिन्दुकुलमें क्यों नहीं जन्म दिया? हिन्दुकुलमें जन्म लेनेपर मुझे आपके चरणकमलोंका सान्निध्य प्राप्त होता। मेरी यह देह व्यर्थ ही है, इसलिये मेरे प्राणोंका अभी निकल जाना ही अच्छा है॥"181-182॥

उसकी खेदपूर्ण उक्तिको सुनकर राजकर्मचारीके द्वारा भी महाप्रभुकी स्तुति :—

एत शुनि' महापात्र आविष्ट हञा।
प्रभुके करेन स्तुति चरणे धरिया॥183॥

भगवन्नाम-श्रवणके फलस्वरूप अन्त्यजको भी पवित्रता-लाभ :—

"चण्डाल—पवित्र, याँर श्रीनाम-श्रवणे।
हेन-तोमार एइ जीव पाइल दरशने॥184॥

भगवद्दर्शनके फलस्वरूप मुस्लिमका उद्धार अधिक विस्मयका कारण नहीं :—

इँहार ये एइ गति, इथे कि विस्मय?
तोमार दर्शन-प्रभाव एइमत हय॥"185॥

अनुवाद—यवन राजाकी बातको सुनकर महापात्र भी आविष्ट होकर महाप्रभुके चरणकमलोंको पकड़कर उनकी स्तुति करने लगा,—"चण्डाल भी आपके श्रीनामका श्रवण करके पवित्र हो जाता है। और इस जीवको तो आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं। इसलिये इस यवनकी जो यह गति हुई है, इसमें कैसा विस्मय है? आपके दर्शनका प्रभाव ही ऐसा है॥"183-185॥

भगवन्नामके श्रवण, कीर्तन अथवा स्मरणसे ही अन्त्यजकी शुद्धि, साक्षात् दर्शनकी तो बात ही नहीं :—
श्रीमद्भागवत (3/33/6)में—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्-
यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥ 186॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 186॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भगवन्, जिनके नाम श्रवण, अनुकीर्तन, प्रणाम और स्मरण करने मात्रसे चण्डाल और यवन कुलमें जन्मा व्यक्ति भी तत्क्षणात् सवन-यज्ञ (सोमयज्ञ) करनेके योग्य हो जाता है, ऐसे वे प्रभु आप हैं, आपके दर्शनसे क्या नहीं हो सकता?॥ 186॥

अनुभाष्य—श्रीकपिलदेवके मुखसे शुद्धभक्तियोगके श्रवणसे माता देवहूतिके मोहके आवरणके दूर होनेपर वे शुद्ध सांख्यज्ञानके प्रवर्तक भगवान् श्रीकपिलदेवका स्तव कर रही हैं—

हे भगवन्, क्वचित् यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनात् (यस्य भगवतः तव नाम्नः आदौ श्रवणम्, अनु तदनन्तरं कीर्तनञ्च तस्मात्), यत्प्रह्वणात् (यस्य तव शिरसा नमस्कारात्), यत्स्मरणात् (यस्य तव भगवतः स्मरणेन) च श्वादः (सर्वाधमश्वपच-कुलोद्भूतः) अपि सद्यः (तत्क्षणात्) सवनाय (सोमयागाय) कल्पते (योग्यो भवति), ते (तव) दर्शनात् पुनः कुतः नु (किं वक्तव्यं, कृतार्थास्मीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 186॥

मुस्लिम राजाको कृपापूर्वक श्रीकृष्णनाम ग्रहण करनेका आदेश :—

तबे महाप्रभु ताँरे कृपा-दृष्टि करि'।
आश्वासिया कहे,—"तुमि कह 'कृष्ण' 'हरि'॥"187॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उस यवन-राजाके प्रति कृपा दृष्टि करके उसे आश्वासन देते हुए कहा,—"तुम 'कृष्ण' 'हरि' नामका कीर्तन करो॥"187॥

अनुभाष्य—*'ताँरे'*—उस म्लेच्छ शासकको॥ 187॥

म्लेच्छ शासककी पापोंसे मुक्ति और महाप्रभुकी सेवाकी याचना :—

सेइ कहे,—"मोरे यदि कैला अङ्गीकार।
एक आज्ञा देह,—सेवा करि ये तोमार॥ 188॥
गो-ब्राह्मण-वैष्णवे हिंसा कर्याछि अपार।
सेइ पाप हइते मोर हउक निस्तार॥"189॥

अनुवाद—उस यवन राजाने महाप्रभुसे कहा,—"जब आपने मुझे अपना लिया है, तो आप मुझे कुछ आज्ञा दीजिये जिससे मैं आपकी सेवा कर सकूँ। मैंने जो गायोंका वध और ब्राह्मणों तथा वैष्णवोंसे द्वेष किया है, उस पापसे मेरा उद्धार हो॥"188-189॥

लौकिक-लीलाके अभिनयकारी महाप्रभुके लिये श्रीमुकुन्दके द्वारा यात्राके पथमें सहायताकी प्रार्थना :—

तबे मुकुन्द दत्त कहे,—"शुन, महाशय।
गङ्गातीर याइते महाप्रभुर मन हय॥ 190॥
ताँहा याइते कर तुमि सहाय-प्रकार।
एइ बड़ आज्ञा, एइ बड़ उपकार॥"191॥

अनुवाद—तब श्रीमुकुन्द दत्तने उस यवन राजासे कहा,—"हे महाशय, सुनो! महाप्रभु गङ्गाके तटपर जाना चाहते हैं। वहाँ जानेके लिये आप जिस प्रकारसे भी सहायता कर सकते हो, वैसा करो। यही आपके लिये बड़ी आज्ञा है तथा यही आपका सबसे बड़ा उपकार होगा॥"190-191॥

म्लेच्छ-शासकका इसे स्वीकार करना और दैन्यपूर्वक सभीको प्रणाम करनेके बाद विदायी-ग्रहण :—

तबे सेइ महाप्रभुर चरण वन्दिया।
सबार चरण वन्दि' चले हृष्ट हञा॥ 192॥

अनुवाद—तब उस यवन-शासकने महाप्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना की। फिर उसने सभी भक्तोंके चरणोंकी वन्दना की और प्रसन्नचित्तसे चल पड़ा॥ 192॥

अनुभाष्य—*'सेइ'*—म्लेच्छ शासक॥ 192॥

राजकर्मचारीके साथ उसका मिलन और बन्धुत्व :—

महापात्र ताँर सने कैल कोलाकुलि।
अनेक सामग्री दिया करिल मितालि॥ 193॥

अनुवाद—महापात्रने उस यवन राजाको जानेसे पहले गले लगाया तथा बहुत सी सामग्री देकर उससे मित्रता बनायी॥ 193॥

अनुभाष्य—*'मितालि'*—उपहारके रूपमें वस्तुएँ प्रदान करके मित्रता बनाना॥ 193॥

म्लेच्छके द्वारा प्रातःकालमें महाप्रभुकी यात्रामें सहायता करना, महाप्रभुका सम्मानपूर्वक आह्वान :—

प्रातःकाले सेइ बहु नौका साजाञा।
प्रभुके आनिते दिल विश्वास पाठाञा॥ 194॥

अनुवाद—अगले दिन प्रातःकाल उस यवन-शासकने बहुत-सी नौकाओंको सजाकर महाप्रभुको नदीके उस पार लानेके लिये अपने सचिव (विश्वासपात्र) को भेज दिया॥ 194॥

राजकर्मचारीके साथ महाप्रभुका जाना और म्लेच्छके द्वारा महाप्रभुकी वन्दना :—

महापात्र चलि' आइला महाप्रभुर सने।
म्लेच्छ आसि' कैल प्रभुर चरण-वन्दने॥ 195॥

अनुवाद—महापात्र भी महाप्रभुके साथ नौकामें आया। जब वे नदी पार करके दूसरे तटपर पहुँचे, तब यवन-शासकने आकर महाप्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना की॥ 195॥

सभी सुविधाओंसे युक्त एक नयी नौका देना :—

एक नवीन नौका, तार मध्ये घर।
स्वगणे चड़ाइला प्रभु ताहार उपर॥ 196॥

अनुवाद—उन नौकाओंमें एक नयी नौका थी, जिसके बीचमें एक कमरा था। उस नौकापर महाप्रभु और उनके भक्तोंको चढ़ाया॥ 196॥

महाप्रभुके द्वारा राजकर्मचारीको नदीके तटपर विदायी देना और उसका क्रन्दन :—

महापात्रे महाप्रभु करिला विदाय।
कान्दिते कान्दिते सेइ तीरे रहि' याय॥ 197॥

अनुवाद—महाप्रभुने जब महापात्रको विदा किया, तब वह रोते-रोते उसी तटपर खड़े-खड़े महाप्रभुकी नौकाको जाते हुए देखता रहा॥ 197॥

महाप्रभु-भक्त वह यवन-शासक महाप्रभुकी रक्षाके लिये 'मन्त्रेश्वर' नदीको पार करके 'पिछल्दा' तक गया :—

जलदस्युभये सेइ यवन चलिल।
दश नौका भरि' सेइ सैन्य सङ्गे निल॥ 198॥

'मन्त्रेश्वर'-दुष्टनदे पार कराइल।
'पिछल्दा' पर्यन्त सेइ यवन आइल॥ 199॥

अनुवाद—जलमार्गके डाकुओंके भयसे वह यवन-शासक भी महाप्रभुके साथ दस नौकाओंमें अपने सैनिकोंको साथ लेकर चला। महाप्रभुकी नौकाको 'मन्त्रेश्वर' नामक भयानक नदको (अर्थात् बहुत बड़ी नदीको) पार कराकर वह पिछल्दा तक महाप्रभुके साथ आया॥ 198-199॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'मन्त्रेश्वर'*—डायमण्ड हारबारके अति निकट एक बहुत बड़े नदका नाम ही 'मन्त्रेश्वर' है; उस नदसे नौका रूपनारायण-नदके तटपर स्थित 'पिछल्दा' ग्राममें पहुँची। पिछल्दा ग्रामकी एक सीमा मन्त्रेश्वरके साथ संलग्न है॥ 199॥

अनुभाष्य—*'दुष्टनद'*—जल-डाकुओंसे भरा दुर्गम जलपथ; नदके अत्यधिक विशाल तथा वेगके अति तीव्र होनेके कारण वह दुर्गम है॥ 199॥

पिछल्दामें उसे विदा करना, उसकी अद्भुत आर्त्ति :—

ताँरे विदाय दिल प्रभु सेइ ग्राम हैते।
से-काले ताँर प्रेम-चेष्टा ना पारि वर्णिते॥ 200॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस यवन-शासकको उस ग्रामसे

विदायी दी। उस समय उसकी जैसी प्रेममें दशा थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 200॥

श्रीचैतन्यलीलाको श्रवण करनेवालेका ही जन्म सार्थक :—

अलौकिक लीला करे श्रीकृष्णचैतन्य।
येइ इहा शुने ताँर जन्म, देह—धन्य॥ 201॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अलौकिक लीलाएँ करते हैं। जो इन लीलाओंका श्रवण करता है, उसीका ही जन्म और देह धारण करना धन्य है॥ 201॥

महाप्रभुका उसी नौकासे पाणिहाटीमें
राघव-भवनमें आगमन, माझीपर कृपा :—

सेइ नौका चड़ि' प्रभु आइला 'पाणिहाटि'।
नाविकेरे पराइल प्रभु निज-कृपा-साटी॥ 202॥

अनुवाद—उसी नौकापर चढ़कर महाप्रभु 'पाणिहाटि' तक आये। नाविकको महाप्रभुने अपना वस्त्र कृपाके रूपमें प्रदान किया॥ 202॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पाणिहाटी'*—गङ्गाके तटपर श्रीपाट खड़दहसे थोड़ी ही दूरीपर 'पाणिहाटी' ग्राम है॥ 202॥

महाप्रभुके आगमनसे लोगोंकी भीड़ :—

'प्रभु आइला' बलि' लोके हैल कोलाहल।
मनुष्य भरिल सब, किवा जल, स्थल॥ 203॥

अनुवाद—'महाप्रभु आये हैं'—ऐसा सुनकर लोगोंमें कोलाहल मच गया। क्या जल, क्या स्थल—सभी स्थान लोगोंसे भर गये॥ 203॥

भीड़के कारण बहुत कठिनाईसे श्रीराघवके द्वारा
महाप्रभुको अपने घरमें लाना :—

राघव-पण्डित आसि' प्रभु लञा गेला।
पथे याइते लोकभिड़े कष्टे-सृष्ट्ये आइला॥ 204॥

अनुवाद—श्रीराघव-पण्डित आकर महाप्रभुको अपने घर ले गये। मार्गमें जाते समय लोगोंकी भीड़के कारण उन्हें महाप्रभुको लानेमें बहुत कठिनाई हुई॥ 204॥

राघव-भवनमें एक दिन रहकर कुमारहट्टमें
श्रीवासके घरमें आगमन :—

एकदिन प्रभु तथा करिया निवास।
प्राते कुमारहट्टे आइला,—याँहा श्रीनिवास॥ 205॥

अनुवाद—महाप्रभु केवल एक दिन श्रीराघव-पण्डितके घरमें रहे। अगले दिन प्रातःकाल वे कुमारहट्ट आ गये, जहाँ श्रीवास पण्डित रहते थे॥ 205॥

उसके बाद उसके निकट ही पहले श्रीशिवानन्दके
घरमें, बादमें श्रीवासुदेवके घरमें आगमन :—

ताँहा हैते आगे गेला शिवानन्द-घर।
वासुदेव-गृहे पाछे आइला ईश्वर॥ 206॥

अनुवाद—श्रीवास पण्डितके घरसे महाप्रभु श्रीशिवानन्द सेनके घरपर गये तथा बादमें वे श्रीवासुदेव-दत्तके घरपर आये॥ 206॥

उसके बाद विद्यानगरमें श्रीविद्यावाचस्पतिके घर आना,
बहुत भीड़ देखकर गुप्त रूपसे कुलियामें आगमन :—

'वाचस्पति-गृहे' प्रभु येमते रहिला।
लोक-भिड़ भये यैछे 'कुलिया' आइला॥ 207॥

अनुवाद—उसके बाद वे विद्या-वाचस्पतिके घरपर कुछ समय रहे, परन्तु वहाँ लोगोंकी भीड़ लग गयी। उससे बचनेके लिये वे कुलियामें आये॥ 207॥

अनुभाष्य—वाचस्पतिके घरमें महाप्रभु पाँच दिन तक रहे,—मध्यलीला 1/151 संख्या देखें।

'वाचस्पति-गृह'—कोलद्वीपके निकट जह्नुद्वीपके अन्तर्गत 'विद्यानगर'में है; उस स्थानपर देवानन्द पण्डितका वास था—चैःभाः मध्यखण्ड, इक्कीसवाँ अध्याय और अन्त्यलीला तीसरा अध्याय देखें।

'कुलिया'—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकके नवम अङ्कमें (रायके द्वारा प्रेरित एवं नवद्वीपसे कटक लौटे व्यक्तियोंकी राजाके प्रति उक्ति)—

"ततः कुमारहट्टे श्रीवासपण्डित-वाट्यामभ्याययौ। ×× ततोऽद्वैतवाटीमभ्येत्य हरिदासेनाभिवन्दितस्तथैव तरणीवर्त्मना नवद्वीपस्य

पारे कुलिया-नाम ग्रामे माधवदासवाट्यामुत्तीर्णवान्। ×× एवं सप्तदिनानि तत्र स्थित्वा पुनस्तटवर्त्मना एवं चलितवान्।"

[अर्थात् "उसके बाद महाप्रभुका कुमारहट्टमें श्रीवास-पण्डितके घरमें आगमन हुआ। उसके बाद उस स्थानसे श्रीअद्वैतप्रभुके घरमें आगमन होनेपर नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुरने महाप्रभुकी पूजा की। वहाँसे नौकाके द्वारा नवद्वीपके दूसरे पार कुलिया-नामक ग्राममें श्रीमाधवदासके घरमें पहुँचे। इस प्रकार सात दिन उस स्थानमें रहकर पुनः गङ्गातटके पथपर चलने लगे।"]

श्रीचैतन्यचरितमहाकाव्यमें—

"अन्येद्युः स श्रीनवद्वीपभूमेः पारे गङ्गं पश्चिमे क्वापि देशे।
श्रीमान् सर्वप्राणिनां तत्तदङ्गैर्नेत्रानन्दं सम्यगागत्य तेने॥"

[अर्थात् "महाप्रभु अन्य दिवस श्रीनवद्वीपभूमिके पश्चिममें गङ्गाके पारमें किसी स्थानमें (कुलिया-ग्राममें) आये और अपने सभी अङ्गोंके द्वारा समस्त प्राणियोंके नयनोंके आनन्दका विस्तार करने लगे।"] चैः भाः अन्त्यखण्ड, तीसरा अध्याय—

"सर्वपारिषद-सङ्गे श्रीगौरसुन्दर।
आचम्बिते आसि' उत्तरिला ताँर (विद्यावाचस्पतिर) घर॥ 274॥
नवद्वीपादि सर्वादिके हैल ध्वनि।
वाचस्पति-घरे आइला न्यासिचूड़ामणि॥ 286॥
अनन्त अर्बुद लोक बलि' 'हरि' 'हरि'।
चलिलेन देखिबारे गौराङ्ग श्रीहरि॥ 291॥
पथ नाहि पाय केहो लोकेर गहले।
वनडाल भाङ्गि' लोक दशदिके चले॥ 292॥
लोकेर गहले यत अरण्य आछिल।
क्षणेके सकल दिव्य पथमय हैल॥ 295॥
क्षणेके आइल सब लोक खेयाघाटे।
खेयारी करिते पार पड़िल सङ्कटे॥ 305॥
सत्वरे आसिला वाचस्पति महाशय।
करिलेन अनेक नौकार समुच्चय॥ 311॥
नौकार अपेक्षा आर केहो नाहि करे।
नानामते पार हय ये येमते पारे॥ 312॥
हेनमते गङ्गा पार हइ' सर्वजन।
सभेइ धरेन वाचस्पतिर चरण॥ 314॥
×× लुकाञा गेला प्रभु कुलिया-नगर॥ 343ख॥
कुलियाय आइलेन वैकुण्ठ ईश्वर।345क।
×× सर्वलोक 'हरि' बलि' वाचस्पति सङ्गे।
सेइ क्षणे सभे चलिलेन महारङ्गे॥ 378॥
कुलिया-नगरे आइलेन न्यासि-मणि।
सेइक्षणे सर्वदिके हैल महाध्वनि॥ 379॥
सबे गङ्गामध्ये नदीयाय-कुलियाय।
शुनि' मात्र सर्वलोके महानन्दे धाय॥ 380॥
वाचस्पतिर ग्रामे (विद्यानगरे) छिल यतेक गहल।
तार कोटि कोटिगुणे पूरिल सकल॥ 381॥
लक्ष लक्ष नौका वा आइल कोथा हैते।
ना जानि कतेक पार हय कतमते॥ 383॥
लक्ष लक्ष लोक भासे जाह्नवीर जले।
सभे पार हयेन परम कुतूहले॥ 388॥
गङ्गाय हञा पार आपना आपनि।
कोलोकोलि करि' सभे करे हरिध्वनि॥ 389॥
क्षणेके कुलिया-ग्राम—नगर-प्रान्तर।
परिपूर्ण हैल स्थल, नाहि अवसर॥ 392॥
क्षणेके आइला महाशय वाचस्पति।
तेँहो नाहि पायेन प्रभुर कोथा स्थिति॥ 394॥
×× कुलियाय प्रकाशे यतेक पापी छिल।
उत्तम, मध्यम, नीच,—सबे पार हैल॥ 438॥
कुलिया-ग्रामेते आसि' श्रीकृष्णचैतन्य।
हेन नाहि, यारे प्रभु ना करिला धन्य॥"541॥

[अर्थात् श्रीगौरसुन्दर अपने सभी परिकरोंके साथ अचानक उनके (श्रीविद्यावाचस्पतिके) घरमें आ पधारे। नवद्वीप आदि सभी दिशाओंमें शोर मच गया कि श्रीवाचस्पतिके घरमें संन्यासी-चूड़ामणि आये हैं। गौराङ्ग श्रीहरिके दर्शन करनेके लिये अनन्त करोड़ों लोग 'हरि हरि' कहते हुए चल पड़े। लोगोंकी इतनी भीड़ हो गयी कि किसीको चलनेका स्थान भी नहीं मिल रहा था। महाप्रभुके दर्शनोंके लिये वे सब वन और डालोंको तोड़कर मार्ग बनाते हुए चल रहे थे। जितने भी वन थे, वे सब लोगोंकी भीड़के कारण एक क्षणमें दिव्य मार्गयुक्त हो गये। एक क्षणमें सभी लोग नौका-घाटपर आ पहुँचे। इतने लोगोंको पार करानेमें माझी सङ्कटमें फँस गये। श्रीवाचस्पति महाशयने शीघ्र आकर अनेक नौकाओंको एकत्रित किया। कई लोगोंने नौकाकी

प्रतीक्षा भी नहीं की और अपने-अपने सामर्थ्य और उपायसे गङ्गा पार कर गये। इस प्रकार गङ्गा पार होकर सभी लोग श्रीवाचस्पतिके चरणोंको पकड़ रहे थे। ××× सबसे छिपकर महाप्रभु कुलिया-नगरको चल दिये और वैकुण्ठके ईश्वर कुलियामें आ गये। ××× वहाँके सभी लोग श्रीवाचस्पतिके सङ्ग 'हरि' बोलते हुए आनन्दसे उनके साथ चल पड़े। 'संन्यासी-शिरोमणि कुलिया नगरमें आये हैं'—उसी क्षण चारों ओर यह महाध्वनि गूँज उठी। यह सुनते ही सब लोग महा-आनन्दसे उधर दौड़ पड़े। नदीया (नवद्वीप) और कुलियाके बीचमें केवल गङ्गाका व्यवधान है। श्रीवाचस्पतिके गाँवमें जितने लोग एकत्रित हुए थे, उससे भी करोड़ों गुणा अधिक लोगोंका समागम यहाँ हो गया। लाखों लोग न जाने कहाँसे आ गये? न जाने कितने लोग किस-प्रकारसे पार होने लगे। लाखों लोग जाह्नवीके जलमें बह रहे थे और सभी परम आनन्दसे पार हो रहे थे। गङ्गा पार होकर एक-दूसरेके साथ गले मिलकर सभी हरिध्वनि कर रहे थे। एक क्षणमें ग्राम, नगर और प्रान्त—सब परिपूर्ण हो गये, कोई स्थान खाली नहीं रहा। एक क्षणमें श्रीवाचस्पति महाशय भी आ पहुँचे, परन्तु उन्हें भी पता नहीं चल सका कि महाप्रभु कहाँ विराजमान हैं। ××× महाप्रभुके प्रकाशित होनेके समय कुलियामें उत्तम, मध्यम और नीच—जितने भी पापी थे, सभीका उद्धार हो गया। ××× कुलिया-ग्राममें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं रहा जिसे महाप्रभुने वहाँ रहते हुए धन्य न किया हो।"]

नित्यानन्द प्रभुका नवद्वीपमें वास करते समय परिकरोंके साथ सङ्कीर्तन—(चैः भाः अन्त्यखण्ड, पाँचवाँ अः)—

"खानायोड़ा, बड़गाछि, आर दो-गाछिया।
गङ्गार ओपार कभु यायेन 'कुलिया'॥"709॥

[अर्थात् "श्रीनित्यानन्द प्रभु कभी-कभी गङ्गाके उस पार स्थित कुलिया, खानयोड़ा, बड़गाछि, दोगाछिया आदि गाँवोंमें भी जाते रहते थे।"] चैतन्य-मङ्गलमें—

'गङ्गास्नान करि' प्रभु राढ़-देश दिया।
क्रमे क्रमे उत्तरिला नगर 'कुलिया'॥
मायेर वचने पुनः गेला नवद्वीप।
बारकोणा-घाट, निज-बाड़ीर समीप॥"

[अर्थात् "गङ्गास्नान करके महाप्रभु राढ़-देशकी ओर चले और कुलिया ग्राममें रुके। शचीमाताको प्रसन्न करनेके लिये महाप्रभुने नवद्वीपमें प्रवेश किया और वहाँ अपने पूर्व घरके निकट बारकोणा-घाटपर कुछ समयके लिये रहे।"] प्रेमदास—

"नदीयार माझखाने, सकल लोकेते जाने,
'कुलिया-पाहाड़पुर' नामे स्थान।"

[अर्थात् "सब लोग जानते हैं कि नदीयाके बीचमें कुलिया-पाहाड़पुर' नामक एक स्थान है।"] श्रीनरहरि चक्रवर्ती अथवा घनश्याम दासकृत भक्तिरत्नाकर (द्वादश तरङ्ग)में—

"कुलिया पाहाड़पुर देख श्रीनिवास।
पूर्वे 'कोलद्वीप'-पर्वताख्य—ए प्रचार॥"

[अर्थात् "हे श्रीनिवास! कुलिया-पाहाड़पुरको देखो, पहले इसे 'कोलद्वीप-पर्वत'के नामसे सब लोग जानते थे।"] उन्हींके द्वारा रचित "नवद्वीप-परिक्रमा"में—

"कुलिया-पाहाड़पुर ग्राम।
पूर्वे कोलद्वीप-पर्वताख्यानन्द नाम॥"

[अर्थात् "कुलिया-पाहाड़पुर ग्रामका पहले 'कोलद्वीप-पर्वत' नाम था।"] अभी भी 'बाहिर-द्वीप'के नामसे परिचित स्थान, वर्तमान शहर-नवद्वीप, कोलेरगञ्ज, कोल-आमाद, कोलेर दह, गदखालि आदि स्थान ही 'कुलिया' था, इसलिये 'कुलियाका पाट' नामक आधुनिक कल्पित जो ग्राम है, वह कभी भी 'प्राचीन' कुलिया नहीं है॥ 207॥

कुलियामें महाप्रभुका श्रीमाधवदासके घरमें वास और असंख्य लोगोंके द्वारा महाप्रभुका दर्शन :—

माधवदास-गृहे तथा शचीर नन्दन।
लक्ष-कोटि लोक तथा पाइल दरशन॥ 208॥

अनुवाद—शचीनन्दन महाप्रभु कुलियामें जब श्रीमाधवदासके घरपर रहे, तब लाखों-करोड़ों लोगोंने उनका दर्शन प्राप्त किया॥ 208॥

अनुभाष्य—*'माधवदास'*—श्रीकर चट्टोपाध्यायके वंशमें श्रीयुधिष्ठिर चट्टोपाध्यायने जन्मग्रहण किया था। वे और उनके सगे-सम्बन्धी बिल्व-ग्राम और पाटुलिसे नवद्वीपके अन्तर्गत 'कुलिया-पाहाड़पुर' अथवा 'पाड़पुर'में आकर वास कर रहे थे। श्रीयुधिष्ठिरके बड़े पुत्र—श्रीमाधवदास, मंझले—श्रीहरिदास और छोटे—श्रीकृष्णसम्पत्ति चट्टोपाध्याय थे; उनके साधारण नाम क्रमशः—'छकड़ि', 'तिनकड़ि' और 'दुकड़ि' था। श्रीमाधवदासके पौत्र श्रीवंशीवदन और उनके पौत्र श्रीरामचन्द्र आदिके वंशधर बाघ्नापाड़ा और बैंची आदि स्थानोंपर आज भी वास कर रहे हैं॥ 208॥

अनेक अपराधियोंके उद्धारके कारण कुलिया ही 'अपराध-भञ्जनका पाट' :—

सात दिन रहि' तथा लोक निस्तारिला।
सब अपराधिगणे प्रकारे तारिला॥ 209॥

अनुवाद—महाप्रभुने सात दिन तक वहाँपर रहकर लोगोंका उद्धार किया। और सब प्रकारके अपराधियोंका भी उद्धार किया॥ 209॥

अनुभाष्य—मध्यलीला, 1/153-154 संख्या देखें॥ 209॥

श्रीअद्वैतके घरमें जाना और शचीमाताके साथ मिलन :—

'शान्तिपुराचार्य'-गृहे ऐछे आइला।
शची-माता मिलि' ताँर दुःख खण्डाइला॥ 210॥

अनुवाद—कुलिया-ग्रामसे महाप्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घरपर आये। वहाँ महाप्रभुसे मिलनेपर शचीमाताका दुःख दूर हो गया॥ 210॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कुमारहट्टका वर्तमान नाम—'हालिशहर' है। महाप्रभुके संन्यास ग्रहण करनेके कुछ ही दिनोंमें श्रीवास पण्डितने नवद्वीपके अपने वासस्थानको त्याग करके कुमारहट्टमें गृहका निर्माण किया था। कुमारहट्टसे महाप्रभु काञ्चनपल्लीमें अर्थात् काँचड़ापाड़ामें श्रीशिवानन्द सेनके घरपर गये तथा उसके बाद श्रीशिवानन्दके घरके निकटवर्ती स्थानपर श्रीवासुदेव दत्तके घरपर गये थे। वहाँसे श्रीनवद्वीपके पश्चिम-पारमें 'श्रीविद्यानगर'में महाप्रभुने गमन किया। (लोगोंकी भीड़के कारण) विद्यानगरसे आकर कुलिया-ग्राममें श्रीमाधवदासके घरपर रहे। वहाँ सात दिन रहकर देवानन्द आदिके अपराधोंको दूर किया। श्रीकविराज गोस्वामीके द्वारा इस स्थानपर शान्तिपुर-आचार्यके घरपर इस प्रकार आगमनकी बातका उल्लेख करनेसे बहुत लोगोंके मनमें यह सन्देह होता है कि काँचड़ापाड़ाके निकट ही कोई 'कुलिया' होगा। इस मिथ्या आशङ्कासे कोई 'नवीन कुलियापाट' उत्पन्न हुआ है, ऐसा अनुमान होता है। वास्तवमें महाप्रभु श्रीवासुदेवके घरसे ही शान्तिपुर-आचार्यके घरपर गये थे। वहाँसे वे नवद्वीपके दूसरी (पश्चिम) ओर विद्यानगरमें श्रीविद्यावाचस्पतिके घरमें और कुलिया-ग्राममें गये थे, इस प्रकारकी उक्ति 'श्रीचैतन्यभागवतमें', श्रीचैतन्यमङ्गलमें', 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें', 'प्रेमदासके भाषामें' और 'श्रीचैतन्यचरितकाव्यमें' स्पष्ट रूपसे वर्णित है; श्रीकविराज-गोस्वामीने इस यात्राका रीतिपूर्वक वर्णन नहीं किया है, इसलिये ये सब उत्पात और सन्देहमूलक घटनाएँ हुई हैं॥ 205-210॥

रामकेलिमें आगमन और 'कानाइ नाटशाला'से पुनः शान्तिपुरमें लौटना :—

तबे 'रामकेलि'-ग्रामे प्रभु यैछे गेला।
'नाटशाला' हैते प्रभु पुनः फिरि' आइला॥ 211॥

शान्तिपुरे पुनः कैल दश-दिन वास।
विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन-दास॥ 212॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभु रामकेलि-ग्राममें गये। वहाँसे वे कानाइ नाटशाला गये और वहींसे महाप्रभु शान्तिपुर लौट आये। शान्तिपुरमें आकर उन्होंने दस दिन तक वास किया। इन सबका श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है॥ 211-212॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीचैतन्यभागवतमें अन्त्यखण्डमें तीसरा अध्याय देखें॥ 212॥

अनुभाष्य—श्रीरूप-सनातनके दर्शन (मिलन) हेतु ही महाप्रभुका रामकेलिमें आगमन, मिलन और वार्तालाप—मध्यलीला, 1/166-226 संख्या और 'कानाइ नाटशाला'-गमन—मध्यलीला, 1/227-231 संख्या देखें। शान्तिपुरमें दस दिन—मध्यलीला, 1/232-233 संख्या देखें॥ 211-212॥

पहले अध्यायमें सूत्ररूपमें अनेक घटनाओंका पहले ही वर्णन, ग्रन्थके कलेवरकी वृद्धिके भयसे पुनः वर्णन करनेकी अनिच्छा :—

अतएव इँहा तार ना कैलुँ विस्तार।
पुनरुक्ति हय, ग्रन्थ बाड़ये अपार॥ 213॥

तार मध्ये मिलिला यैछे रूप-सनातन।
नृसिंहानन्द कैल यैछे पथेर साजन॥ 214॥

सूत्रमध्ये सेइ लीला आमि त' वर्णिलुँ।
अतएव पुनः ताहा इँहा ना लिखिलुँ॥ 215॥

अनुवाद—इस स्थानपर मैं इनका विस्तारसे वर्णन नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने पहले ही ऐसा किया है। इसके द्वारा पुनरुक्ति होगी और ग्रन्थ भी बहुत बड़ा हो जायेगा। मैंने पहले ही (मध्यलीला पहले अध्यायमें) इनका संक्षेपसे वर्णन किया है कि महाप्रभु कैसे श्रीरूप-श्रीसनातनसे मिले और श्रीनृसिंहानन्दने कैसे मार्गको सजाया? इसलिये पुनः उसे यहाँपर नहीं लिख रहा हूँ॥ 213-215॥

अनुभाष्य—*'नृसिंहानन्द'*—आदिलीला 10/35 संख्या और मध्यलीला 1/155-162 संख्या देखें॥ 214-215॥

शान्तिपुरमें श्रीरघुनाथका महाप्रभुके साथ साक्षात्कार :—

पुनरपि प्रभु यदि 'शान्तिपुर' आइला।
रघुनाथ-दास आसि' प्रभुरे मिलिला॥ 216॥

अनुवाद—महाप्रभु जब पुनः शान्तिपुर लौटकर आये, तब श्रीरघुनाथदासने आकर महाप्रभुसे भेंट की॥ 216॥

श्रीरघुनाथका पितृ-परिचय :—

'हिरण्य', 'गोवर्धन',—दुइ सहोदर।
सप्तग्रामे बारलक्ष मुद्रार ईश्वर॥ 217॥

महैश्वर्ययुक्त दुँहे—वदान्य, ब्राह्मण्य।
सदाचारी, सत्कुलीन, धार्मिकाग्रगण्य॥ 218॥

नदीया-वासी ब्राह्मणेर उपजीव्य-प्राय।
अर्थ, भूमि, ग्राम दिया करेन सहाय॥ 219॥

अनुवाद—'हिरण्य' और 'गोवर्धन'—ये दो सगे भाई थे। ये सप्तग्राममें रहते थे और इनकी वार्षिक आय बारह लाख मुद्राएँ थी। दोनों ही महा-ऐश्वर्यशाली, दानी तथा ब्राह्मणोंका सम्मान करनेवाले थे। वे सदाचारी, सत्कुलीन तथा धार्मिकोंमें अग्रगण्य थे। लगभग सभी नदीयावासी ब्राह्मणोंकी जीविका इन दोनों भाइयोंपर निर्भर करती थी। दोनों भाई धन, भूमि तथा गाँव देकर नदीयाके ब्राह्मणोंकी सहायता करते थे॥ 217-219॥

अनुभाष्य—*'हिरण्य और गोवर्धन'*—हुगली जिलेमें सप्तग्रामके निकट श्रीकृष्णपुर-ग्राम-निवासी कायस्थकुलमें जन्में दो सगे भाई थे। इनकी वंशगत उपाधि विशेष रूपसे पता नहीं चलती, फिर भी ये सत्कुलीन थे। बड़े भाईका नाम 'हिरण्य' मजूमदार एवं छोटे भाईका नाम 'गोवर्धन' मजूमदार था। श्रीरघुनाथ दास गोवर्धनके ही पुत्र थे। इनके पुरोहित बलराम आचार्य—श्रीहरिदास ठाकुरके कृपापात्र थे (अन्त्यलीला, 3/165-166 संख्या) और इनके गुरु-पुरोहित यदुनन्दन आचार्य—श्रीवासुदेव दत्तके अनुगृहीत थे (अन्त्यलीला, 6/161 संख्या); इनके सम्बन्धमें अधिक जानकारीके लिये—अन्त्यलीला, 3/165, 171-174, 188-189, 198, 201 और 206 संख्या एवं अन्त्यलीला, 6/17-34, 37-40 संख्या देखें; महाप्रभुके श्रीमुखसे इनके आचरणका वर्णन अन्त्यलीला, 6/195-198 संख्यामें देखें।

'सप्तग्राम'—हुगली-जिलेके अन्तर्गत 'त्रिशबिघा' रेल-स्टेशनके निकट सरस्वती नदीके तटपर अवस्थित प्राचीन बन्दरगाह और नगर है। 1592 ईसवीमें पठानोंने इस स्थानको लूटा तथा सरस्वती नदीकी धारा बन्द होनेपर 1632 ईसवीमें यह बहुत प्राचीन बन्दरगाह लगभग ध्वंस हो गयी। कहा जाता है, सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दीमें यहाँ पुर्तगालके नाविक व्यापारके लिये समुद्री जहाजसे आगमन करते थे। उस समय दक्षिण-बङ्गालमें सप्तग्राम एक समृद्धि-सम्पन्न विशेष नगरके रूपमें प्रसिद्ध था। इस नगरमें विपुल सम्पत्तिके मालिकके रूपमें हिरण्य और गोवर्धन, दो भाई वास करते थे। उस समय उनकी वार्षिक आय बारह लाख मुद्राएँ थी। आदिलीला 11/41 संख्यामें 'उद्धारण दत्त'के प्रसङ्गमें अनुभाष्यका प्रथम अंश देखें।

श्रीमहाप्रभुके कालमें नवद्वीप समृद्ध नगर होनेपर भी वह हिरण्य और गोवर्धनके आश्रित विद्यानुशीलनमें रत ब्राह्मणोंका ही वासस्थान मात्र था। वे शुद्ध ब्राह्मण हिरण्य और गोवर्धनके आश्रित रहकर उन्हींके द्वारा दिये गये धन, भूमि और ग्राम आदिके द्वारा अध्यापन करना और जीवनयात्राका निर्वाह करते थे। हिरण्य और गोवर्धनकी ब्राह्मणोंके प्रति असाधारण मर्यादा थी और उनको मुक्तहस्तसे दान देनेके विषयमें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नहीं थी॥ 217-219॥

महाप्रभुके साथ परिचयका आदि कारण :—

नीलाम्बर चक्रवर्त्ती—आराध्य दुँहार।
चक्रवर्त्ती करे दुँहाय 'भ्रातृ'-व्यवहार॥ 220॥

मिश्र-पुरन्दरेर पूर्वे करयाछेन सेवने।
अतएव प्रभु भाल जाने दुइजने॥ 221॥

अनुवाद—ये दोनों भाई श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीको आराध्य मानते थे, परन्तु श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती इन दोनोंके साथ भाई जैसा व्यवहार करते थे। इन दोनों भाइयोंने पहले श्रीजगन्नाथ मिश्रकी भी बहुत सेवा की थी, इसलिये महाप्रभु इन दोनों भाइयोंको भली-भाँति जानते थे॥ 220-221॥

श्रीरघुनाथका परिचय :—

सेइ गोवर्धनेर पुत्र—रघुनाथ दास।
बाल्यकाल हैते तेँहो विषये उदास॥ 222॥

अनुवाद—उन श्रीगोवर्धनके पुत्र श्रीरघुनाथ दास थे। श्रीरघुनाथ दास बचपनसे ही सांसारिक विषयोंके प्रति उदासीन रहते थे॥ 222॥

शान्तिपुरमें श्रीरघुनाथके द्वारा
महाप्रभुके श्रीचरणोंके दर्शन :—

संन्यास करि' प्रभु यबे शान्तिपुर आइला।
तबे आसि' रघुनाथ प्रभुरे मिलिला॥ 223॥

अनुवाद—जब महाप्रभु संन्यास लेकर शान्तिपुर आये थे, तब श्रीरघुनाथने आकर महाप्रभुसे भेंट की थी॥ 223॥

महाप्रभुके श्रीचरणोंमें श्रीरघुनाथके द्वारा शरण-ग्रहण :—

प्रभुर चरणे पड़े प्रेमाविष्ट हञा।
प्रभु पादस्पर्शन कैल करुणा करिया॥ 224॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथ प्रेमाविष्ट होकर महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और महाप्रभुने करुणा करके उन्हें चरणसे स्पर्श किया॥ 224॥

पिताके सम्बन्धसे स्नेहशील श्रीअद्वैतकी कृपासे
श्रीरघुनाथको महाप्रभुके श्रीचरणोंका सङ्ग :—

ताँर पिता सदा करे आचार्य-सेवन।
अतएव आचार्य ताँरे हैला परसन्न॥ 225॥

आचार्य-प्रसादे पाइल प्रभुर उच्छिष्ट-पात।
प्रभुर चरण देखे दिन पाँच-सात॥ 226॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथके पिता सदा श्रीअद्वैताचार्यकी सेवा करते थे, इसलिये श्रीअद्वैताचार्य उनके परिवारके प्रति बहुत प्रसन्न थे। श्रीअद्वैताचार्यकी कृपासे श्रीरघुनाथको महाप्रभुके उच्छिष्ट प्रसादकी प्राप्ति हुई। श्रीरघुनाथने पाँच-सात दिन तक वहीं रहकर महाप्रभुके चरणकमलोंकी सेवा की॥ 225-226॥

महाप्रभुसे बिछुड़नेपर उनकी विरहमें उन्मत्त श्रीरघुनाथ :—

प्रभु ताँरे विदाय दिया गेला नीलाचल।
तेँहो घरे आसि' हैला प्रेमेते पागल॥ 227॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथको विदायी देकर महाप्रभु नीलाचल चले गये। श्रीरघुनाथ घर लौटकर प्रेममें पागल हो गये॥ 227॥

पहले बार-बार भाग जानेकी चेष्टाएँ
और पिताके द्वारा बन्धन :—

बार बार पलाय तेँहो नीलाद्रि याइते।
पिता ताँरे बान्धि' राखे, आनि' पथ हैते॥ 228॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथ बार-बार श्रीजगन्नाथपुरी जानेके लिये घरसे भागनेका प्रयास करते, किन्तु उनके पिता उन्हें मार्गसे बँधवाकर वापिस ले आते॥ 228॥

ग्यारह प्रहरियोंकी व्यवस्था, इसलिये महाप्रभुके
दर्शनके अभावका दुःख :—

पञ्च पाइक ताँरे राखे रात्रि-दिने।
चारि सेवक, दुइ ब्राह्मण रहे ताँर सने॥ 229॥

एकादश जन ताँरे राखे निरन्तर।
नीलाचल याइते ना पाय, दुःखित अन्तर॥ 230॥

अनुवाद—पाँच पहरेदार दिन-रात श्रीरघुनाथकी निगरानी करते। उनके पिताजीने उनकी सेवाके लिये चार सेवक और रसोईके लिये दो ब्राह्मण रखे। कुल मिलाकर ग्यारह लोग श्रीरघुनाथको निरन्तर नियन्त्रणमें रखते। इसी कारण श्रीरघुनाथ नीलाचल नहीं जा सकते थे तथा उसके लिये उनके मनमें बहुत दुःख था॥ 229-230॥

अब महाप्रभुके शान्तिपुरमें आते ही पितासे
उनके दर्शनके लिये जानेकी याचना :—

एबे यदि महाप्रभु शान्तिपुर आइला।
शुनिया पितारे रघुनाथ निवेदिला॥ 231॥

"आज्ञा देह', याञा देखि प्रभुर चरण।
अन्यथा ना रहे मोर शरीरे जीवन॥"232॥

अनुवाद—अब महाप्रभुके शान्तिपुर आनेके विषयमें सुनकर श्रीरघुनाथने अपने पितासे निवेदन किया,—"आप मुझे महाप्रभुके चरणोंके दर्शन करनेकी आज्ञा दीजिये, अन्यथा मेरे शरीरमें प्राण नहीं रहेंगे॥"231-232॥

पिताके द्वारा पुत्रको महाप्रभुके निकट भेजना :—

शुनि' ताँर पिता बहु लोक-द्रव्य दिया।
पाठाइल बलि' 'शीघ्र आसिबे फिरिया'॥ 233॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथका निवेदन सुनकर उनके पिताजीने बहुतसे सेवकों और सामानके साथ उन्हें 'जल्दी लौटकर आ जाना' कहकर महाप्रभुके दर्शनके लिये भेज दिया॥ 233॥

शान्तिपुरमें आकर प्रहरियोंके बन्धनसे
मुक्त होनेके विषयमें चिन्तन :—

सातदिन शान्तिपुरे प्रभु-सङ्गे रहे।
रात्रि-दिवसे एइ मनःकथा कहे॥ 234॥

'रक्षकेर हाते मुञि केमने छुटिब!
केमने प्रभुर सङ्गे नीलाचले याब?'॥ 235॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथ सात दिन तक शान्तिपुरमें महाप्रभुके साथ रहे। दिन-रात वे मनमें इस बातका चिन्तन करते,—'पहरेदारोंके हाथोंसे मैं किस प्रकार छूटूँगा? किस प्रकार मैं महाप्रभुके साथ नीलाचल जाऊँगा?'॥ 234-235॥

बद्धजीवकी लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीरघुनाथको
महाप्रभुके द्वारा शिक्षा देना :—

सर्वज्ञ गौराङ्ग-प्रभु जानि' ताँर मन।
शिक्षा-रूपे कहे ताँरे आश्वास-वचन॥ 236॥

युक्तवैराग्य ग्रहण और फल्गु-वैराग्य त्यागका उपदेश :—

"स्थिर हञा घरे याओ, ना हओ वातुल।
क्रमे क्रमे पाय लोक भवसिन्धुकूल॥ 237॥

मर्कट-वैराग्य ना कर लोक देखाञा।
यथायोग्य विषय भुञ' अनासक्त हञा॥ 238॥

अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये लोकव्यवहार।
अचिरात् कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥ 239॥

अनुवाद—सर्वज्ञ श्रीगौराङ्ग महाप्रभु तो उनके मनकी बातको जानते थे, इसलिये शिक्षाके रूपमें उन्हें कुछ आश्वासनपूर्ण वचन कहे,—"तुम धैर्य धारण करके अपने घर जाओ, पागल मत बनो। धीरे-धीरे तुम भवसागरको पार कर जाओगे। लोगोंको (बन्दर जैसा) झूठा वैराग्य मत दिखलाओ। अभी अनासक्त होकर यथायोग्य विषयोंको ग्रहण करो। हृदयमें दृढ़ निष्ठा रखो और बाहरमें लोक-व्यवहार करो। अति शीघ्र ही श्रीकृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे॥ 236–239॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'मर्कट वैराग्य'*—हृदयमें विषय-चिन्ता और गुप्त रूपसे स्त्रियोंके साथ सहवास, किन्तु बाहरमें कौपीन, बहिर्वासादि वैराग्यके चिह्नोंको धारण करना,—ये सब 'मर्कट-वैरागी'के लक्षण है॥ 238॥

अनुभाष्य—*'मर्कट-वैराग्य'*—बन्दर जैसे बिना घर-बार और बिना वस्त्रके अपनेको वैरागी पुरुषके जैसा बाहरसे दिखाता है, किन्तु इन्द्रिय-भोगोंसे निवृत्त नहीं होता, उसी प्रकार 'लोगोंको दिखानेके लिये' किये गये, वैराग्यको ही 'मर्कट-वैराग्य' कहते हैं। जो वैराग्य शुद्धभक्तिसे उसके साथ उत्पन्न नहीं होता, अपितु श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुके प्रति कामना अथवा वासनामें बाधा पड़नेसे उत्पन्न होता है, वह 'श्मशान-वैराग्य' अथवा 'मर्कट-वैराग्य' है। यह वैराग्य शुद्धभक्तिके अनुकूल रूपमें सम्पूर्ण जीवनस्थायी न रहकर 'क्षणिक' अथवा 'फल्गु' होता है। जो विषय श्रीकृष्णसेवाके लिये बिल्कुल ही त्याग नहीं किये जा सकते, उन विषयोंके भोगको पूर्णरूपसे अनासक्त होकर केवल स्वीकार करनेसे मनुष्य कर्मफलके अधीन नहीं होता। भःरःसिः—पूर्व विः, दूसरी लहरीमें उद्धृत नारदीय-वचन—

"यावता स्यात् स्व-निर्वाह स्वीकुर्यात् तावदर्थवित्।
आधिक्ये न्यूनतायाश्च च्यवते परमार्थतः॥"

[अर्थात् "जितने धनसे अपनी भक्तिका निर्वाह हो जाय, सांसारिक विषयोंके प्रति विवेकवान् व्यक्ति उतना ही धन स्वीकार करेंगे। उससे अधिक या कम स्वीकार करनेपर व्यक्ति अपने परमार्थके लक्ष्यको प्राप्त करनेमें सफल नहीं होगा।"] "इस श्लोकके "स्व-निर्वाहः"—शब्द (का अर्थ) श्रीजीवप्रभुने अपनी 'दुर्गमसङ्गमनी'-टीकामें "स्व-स्व-भक्तिनिर्वाहः" अर्थात् 'अपनी-अपनी-भक्तिका निर्वाह' कहा है। पुनः (भःरःसिः 1/2/256 संख्या)में 'फल्गु-वैराग्य'—

"प्रापञ्चिकतया बुद्धया हरिसम्बन्धि-वस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं 'फल्गु' कथयते॥"

अर्थात् "मुमुक्षुगण शास्त्र, श्रीमूर्ति, नाम, महाप्रसाद, गुरु आदि हरि सम्बन्धी वस्तुओंको भी प्राकृत समझकर उनका परित्याग कर देते हैं, इसीको फल्गु वैराग्य कहते हैं।"

"श्रीहरिसेवाय याहा अनुकूल।
'विषय' बलिया त्यागे हय भूल॥"

["श्रीहरिकी सेवामें जो अनुकूल है, उसे 'विषय' कहकर त्याग करनेसे दोष होता है।"]

'युक्तवैराग्य'—(भःरःसिः 1/2/255 संख्या)में

"अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥"

अर्थात् "कृष्णेतर विषयोंमें आसक्तिरहित होकर और कृष्णके साथ सम्बन्ध स्थापितकर, उनके सेवानुकूल विषयमात्र ग्रहण करनेको ही युक्त वैराग्य कहते हैं।"

"आसक्ति-रहित, सम्बन्ध-सहित, विषय समूह, सकलि माधव।"

["आसक्तिसे रहित होकर भगवान्के सम्बन्ध सहित सभी विषयसमूह माधवके लिये ही हैं।"]

मनुष्यके विश्वास अनुसार साधारणतः जिस प्रकारका व्यवहार अच्छा होता है, वैसा उस प्रकारके लोकसमाजको दिखलाकर हृदयमें सांसारिक वस्तुओंकी आविष्टताको परित्याग करके मेरे प्रति एकनिष्ठ होकर भगवद्भक्ति

करो; इस प्रकार निष्कपट हृदयसे श्रीकृष्णसेवा होनेपर श्रीकृष्ण ही तुम्हारा संसार बन्धनसे उद्धार करेंगे। "अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये लोक व्यवहार" यह बात पूर्वोक्त "यथायोग्य विषय भुञ्ज' अनासक्त हञा" बातकी ही व्याख्या मात्र है। *'निष्ठा'*—श्रीकृष्णनिष्ठा अर्थात् श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य वस्तुकी कामना अथवा तृष्णाका परित्याग करके अहैतुक-कृष्णानुशीलनमें निश्चय युक्त होकर अवस्थान। *'लोक-व्यवहार'*,—भः रः सिः पूर्व विः द्वितीय लहरीमें उद्धृत, पञ्चरात्रवचन—

"लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने।
हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥"

[अर्थात् "हे मुने! भगवद्भक्तिकी इच्छा करनेवालेको चाहिये कि वह लौकिकी अथवा वैदिकी जो भी क्रिया या चेष्टा करे, वह श्रीहरिकी सेवाके अनुकूल हो अर्थात् उन्हें प्रसन्न करनेवाली हो।"]॥ 238-239॥

महाप्रभुके वृन्दावनसे आकर नीलाचलमें वासके समय साक्षात्कार करनेकी आज्ञा :—

वृन्दावन देखि' यबे आसिब नीलाचले।
तबे तुमि आमा-पाश आसिह कोन छले॥ 240॥

अनुवाद—मैं जब वृन्दावनके दर्शन करके नीलाचल लौटूँगा, तब तुम भी मेरे पास किसी छलसे आ जाना॥ 240॥

अहैतुकी श्रीकृष्णकृपाके प्रभावसे ही श्रीकृष्णप्राप्तिकी योग्यता :—

से-छल सेकाले कृष्ण स्फुराबे तोमारे।
कृष्णकृपा याँरे, ताँरे के राखिते पारे॥"241॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण वह छल उस समय तुम्हें स्फुरित करा देंगे। जिसपर श्रीकृष्णकी कृपा होती है, उसे कौन रोक सकता है?॥"241॥

महाप्रभुसे विदायी लेकर घरमें युक्तवैराग्यका आचरण :—

एत कहि' महाप्रभु ताँरे विदाय दिल।
घरे आसि' महाप्रभुर शिक्षा आचरिल॥ 242॥

बाह्य वैराग्य, वातुलता सकल छाड़िया।
यथायोग्य कार्य करे अनासक्त हञा॥ 243॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने उन्हें विदायी दी। श्रीरघुनाथने घरपर आकर जैसा महाप्रभुने कहा था, वैसा ही आचरण किया। उन्होंने बाहरी वैराग्य तथा पागलपन आदि सब कुछ छोड़ दिया। वे अनासक्त होकर गृहके सब कर्त्तव्य निभाने लगे॥ 242-243॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरघुनाथदास शान्तिपुरसे सप्तग्राममें आकर महाप्रभुकी शिक्षाका आचरण करने लगे। हृदयमें ही वैराग्यका अवलम्बन करके उन्होंने बाहरसे किसी वैराग्य-चेष्टा अथवा पागलपनको नहीं रखा, अनासक्त होकर यथायोग्य घरके कार्य करने लगे॥ 242-243॥

अनुभाष्य—लोगोंकी दृष्टिमें तो उन्होंने विषय-त्यागरूपी उन्मत्तताको छोड़ दिया, किन्तु वे अनासक्त होकर श्रीकृष्णसेवाके अनुकूल भावसे यथा-उपयोगी कार्य आदि सम्पन्न करने लगे॥ 243॥

श्रीरघुनाथके आचरणसे पिता-माताको सुख, प्रहरियोंके घेरेमें शिथिलता :—

देखि' ताँर पिता-माता बड़ सुख पाइल।
ताँहार आवरण किछु शिथिल हइल॥ 244॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथको गृहके कार्योंमें रुचि लेते देखकर उनके पिता-माता बहुत प्रसन्न हुए। इसलिये उन्होंने उनकी पहरेदारी कुछ ढीली कर दी॥ 244॥

अनुभाष्य—श्रीरघुनाथके बाहरी वैराग्यके चिह्नोंको शिथिल देखकर पिता-माताके संसारमें लिप्त हृदयमें विशेष आनन्द दिखलायी दिया। श्रीरघुनाथके आवरणके रूपमें पाँच पहरेदार, चार दास और दो ब्राह्मण,—कुल मिलाकर ग्यारह लोगोंको लगाकर रखनेकी और आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं हुई। श्रीरघुनाथको सांसारिक दायित्वको क्रमशः ग्रहण करते देख पहरेदारोंकी संख्या कम कर दी गयी।

अन्त्यलीला, 6/13-15 संख्या देखें॥ 236-244॥

श्रीनिताइ श्रीअद्वैतादि सभी भक्तोंसे महाप्रभुके द्वारा पुरी होकर वृन्दावन-जानेके अनुमोदनकी याचना :—

इँहा प्रभु एक एक करि' सब भक्तगण।
अद्वैत-नित्यानन्दादि यत भक्तजन॥ 245॥

सबा आलिङ्गन करि' कहेन गोसाञि।
"सबे आज्ञा देह'—आमि नीलाचले याइ॥ 246॥

उस वर्ष पुरीमें जानेके लिये सभीको निषेध-आज्ञा :—

सबार सहित इँहा आमार हइल मिलन।
ए वर्ष 'नीलाद्रि' केह ना करिह गमन॥ 247॥

इहाँ हैते अवश्य आमि 'वृन्दावन' याब।
सबे आज्ञा देह', तबे निर्विघ्ने आसिब॥"248॥

अनुवाद—इधर शान्तिपुरमें महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द आदि अपने सभी भक्तोंको एक-एक करके उन सबका आलिङ्गन करनेके बाद कहा,—"आप सब अब मुझे आज्ञा दीजिये तो मैं नीलाचल जाऊँ। आप सबके साथ मेरा यहाँपर मिलन हो ही गया है, इसलिये इस वर्ष किसीको भी जगन्नाथ पुरीमें आनेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीजगन्नाथपुरीसे मैं अवश्य ही वृन्दावन जाऊँगा। यदि आप सब मुझे आज्ञा देंगे, तो मैं निर्विघ्न वहाँसे लौटकर आऊँगा॥ 245-248॥

शचीमातासे दीनतापूर्वक अनुमति ग्रहण :—

मातार चरणे धरि' बहु विनय कैल।
वृन्दावन याइते ताँर आज्ञा लइल॥ 249॥

माताको शान्तिपुरसे नवद्वीप भेजना, पुरी-यात्रा :—

तबे नवद्वीपे ताँरे दिल पाठाञा।
नीलाद्रि चलिला, सङ्गे भक्तगण लञा॥ 250॥

पुरीमें आगमन :—

सेइ सब लोक पथे करेन सेवन।
सुखे नीलाचले आइला शचीर नन्दन॥ 251॥

अनुवाद—महाप्रभुने शचीमाताके चरणोंको पकड़कर उनकी आज्ञाके लिये प्रार्थना की। माताने तब उनको वृन्दावन जानेके लिये आज्ञा प्रदान की। तब महाप्रभुने शचीमाताको नवद्वीप भेज दिया और स्वयं अपने भक्तोंको साथ लेकर वे जगन्नाथ पुरीकी ओर चल दिये। मार्गमें उन सब लोगोंने महाप्रभुकी सेवा की। इस प्रकार श्रीशचीनन्दन सुखपूर्वक नीलाचल आ पहुँचे॥ 249-251॥

श्रीजगन्नाथ-दर्शन, सर्वत्र आगमनके संवादका प्रचार :—

प्रभु आसि' जगन्नाथ दरशन कैल।
'महाप्रभु आइला'—ग्रामे कोलाहल हैल॥ 252॥

अनुवाद—महाप्रभुने आकर श्रीजगन्नाथके दर्शन किये। 'महाप्रभु लौट आये हैं'—यह बात पूरे जगन्नाथपुरीमें फैल गयी॥ 252॥

भक्तोंके द्वारा महाप्रभुका साक्षात्कार :—

आनन्दित भक्तगण आसिया मिलिला।
प्रेम-आलिङ्गन प्रभु सबारे करिला॥ 253॥

काशीमिश्र, रामानन्द, प्रद्युम्न, सार्वभौम।
वाणीनाथ, शिखि-आदि यत भक्तगण॥ 254॥

सभीको पहले वृन्दावन-यात्रामें विघ्नका वर्णन :—

गदाधर-पण्डित आसि' प्रभुरे मिलिला।
सबार अग्रेते प्रभु कहिते लागिला॥ 255॥

"वृन्दावन याब आमि गौड़देश दिया।
निज-मातार, गङ्गार चरण देखिया॥ 256॥

एत मते करि' कैलुँ गौड़ेरे गमन।
सहस्रेक सङ्गे हैल निज-भक्तगण॥ 257॥

लक्ष लक्ष लोक आइसे कौतुक देखिते।
लोकेर संघट्टे पथ ना पारि चलिते॥ 258॥

यथा रहि, तथा घर-प्राचीर हय चूर्ण।
यथा नेत्र पड़े तथा लोक देखि पूर्ण॥ 259॥

अनुवाद—सभी भक्त आकर बड़े आनन्दसे महाप्रभुसे मिले। महाप्रभुने सभीको प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया।

श्रीकाशीमिश्र, श्रीरामानन्द राय, श्रीप्रद्युम्न, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीवाणीनाथ, श्रीशिखि माहिति आदि जितने भक्त थे, वे सब आकर महाप्रभुसे मिले। श्रीगदाधर पण्डित भी तब आकर महाप्रभुसे मिले। महाप्रभु सभीके सामने कहने लगे,—"मैंने बङ्गालसे होकर वृन्दावन जानेका निर्णय इसलिये किया था कि वहाँ अपनी माता और गङ्गादेवीके चरणोंके दर्शन करते हुए जाऊँगा। इस विचारसे मैं बङ्गाल गया था। परन्तु वहाँ हजारों भक्त मेरे साथ चलने लगे। लाखों-लाखों लोग कौतुहलपूर्वक मुझे देखनेके लिये आते। लोगोंकी भीड़के कारण मैं रास्तेमें चल नहीं पाता था। मैं जहाँ भी रहता, वहाँ इतनी अधिक भीड़ होती कि वहाँपर घर-दीवार आदि भी टूट जाते। मैं जहाँ भी देखता, मुझे लोगोंकी भीड़ ही दिखलायी देती॥ 253-259॥

रामकेलि ग्राममें श्रीरूप-सनातनके साथ
मिलन और उनके परिचयका वर्णन :—

कष्टे-सृष्ट्ये करि' गेलाङ रामकेलि-ग्राम।
आमार ठाञि आइला 'रूप' 'सनातन' नाम॥ 260॥

दुइ भाइ—भक्तराज, कृष्णकृपा-पात्र।
व्यवहारे—राजमन्त्री हय राजपात्र॥ 261॥

विद्या-भक्ति-बुद्धि-बले परम प्रवीण।
तबु आपनाके माने तृण हैते हीन॥ 262॥

ताँर दैन्य देखि' शुनि' पाषाण विदरे।
आमि तुष्ट हञा तबे कहिलुँ दोँहारे॥ 263॥

श्रीरूप-सनातनके प्रति महाप्रभुका उपदेश :—

'उत्तम हञा हीन करि' मानह आपनारे।
अचिरे करिबे कृष्ण तोमार उद्धारे॥'264॥

अनुवाद—बड़े कष्टसे मैं रामकेलि ग्राममें गया। वहाँ मेरे पास रूप और सनातन—दो भाई आये। दोनों भाई बहुत उन्नत भक्त और श्रीकृष्णके कृपापात्र हैं। व्यवहारिक दृष्टिसे दोनों राजमन्त्री होनेके कारण राजाके सेवक हैं। दोनों ही विद्या-भक्ति-बुद्धिबलमें बहुत अनुभवी हैं, तथापि वे दोनों स्वयंको तृणसे भी अधिक हीन मानते हैं। उन दोनोंकी दीनताको देखकर, सुनकर तो पत्थर भी पिघल जाँय। मैंने उनके व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर उन दोनोंसे कहा,—'तुम दोनों उत्तम होनेपर भी अपनेको हीन मानते हो, इसलिये श्रीकृष्ण अतिशीघ्र ही तुम दोनोंका उद्धार करेंगे॥'260-264॥

अनुभाष्य—तुम लोग इस संसारमें 'परम उत्तम' होकर भी स्वयंको 'सबसे अधिक अधम' मान रहे हो। इसलिये श्रीकृष्ण तुम्हें इस 'संसार-बन्धन' (?)से मुक्त करके अपने नित्यदास्यमें नियुक्त करेंगे। यद्यपि तुम साक्षात् नित्यसिद्ध व्रजपरिकर हो, तथापि ऐसी लीला कर रहे हो कि लोगोंको उनकी बाहरी दृष्टिसे अथवा जड़ेन्द्रियोंके द्वारा बद्धजीव ही दिखायी देते हो॥ 264॥

विदायीके समय श्रीसनातनके द्वारा
महाप्रभुको सतर्क करना :—

एत कहि' आमि यबे विदाय ताँरे दिल।
गमनकाले सनातन 'प्रहेली' कहिल॥ 265॥

बहुतसे विभिन्न उद्देश्यवाले लोगोंके
साथ वृन्दावन-दर्शन अनुचित :—

'याँर सङ्गे हय एइ लोक लक्ष-कोटि।
वृन्दावन याइवार एइ नहे परिपाटी॥'266॥

अनुवाद—इतना कहकर मैंने जब उन्हें विदायी दी, तब जाते समय सनातनने एक गूढ़ बात कही,—'जिनके साथ लाखों-करोड़ों लोग हो, (उन्हें यह समझना चाहिये कि) वृन्दावन जानेकी यह परिपाटी नहीं है॥'265-266॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'प्रहेली'*—प्रहेलिका, पहेली॥ 265॥

ऐसा होनेपर भी महाप्रभुकी लोगोंकी भीड़के
साथ यात्रा, बादमें श्रीसनातनके वचनपर
विचार करके लोगोंके सङ्गका त्याग :—

तबु आमि शुनिलुँ मात्र, ना कैलुँ अवधान।
प्राते चलि' आइलाङ 'कानाइर नाटशाला'-ग्राम॥ 267॥

रात्रिकाले मने आमि विचार करिल।
सनातन मोरे किवा 'प्रहेली' कहिल॥ 268॥

भालमत' कहिल,—मोर एत लोक सङ्गे।
लोक देखि' कहिबे मोरे—'एइ एक ढङ्गे'॥ 269॥

अनुवाद—उस समय मैंने उस बातको केवल सुन लिया, किन्तु उसपर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया। और प्रातःकाल मैं 'कानाइ नाटशाला'-ग्राममें चला आया। वहाँ रातके समय मैंने मनमें विचार किया कि सनातनने मुझसे क्या 'पहेली' कही थी। तब मैंने समझा कि सनातनने ठीक ही तो कहा है। मेरे साथ तो इतने लोगोंकी भीड़ है, दूसरे लोग इतनी भीड़को देखकर मुझे कहेंगे,—'यह एक ढोंगी है॥'267–269॥

निगूढ़ भजनस्थल वृन्दावनमें अति अन्तरङ्ग मर्मी भक्तके अतिरिक्त बहिरङ्ग लोगोंका अनधिकार :—

'दुर्लभ' 'दुर्गम' सेइ 'निर्जन' वृन्दावन।
एकाकी याइब, किवा सङ्गे एकजन॥ 270॥

पूर्व महाजन श्रीमाधवपुरीका अकेले ही वृन्दावन जाना :—

माधवेन्द्रपुरी तथा गेला एकेश्वरे।
दुग्धदान-छले कृष्ण-साक्षात् हइल ताँरे॥ 271॥

अनुवाद—'दुर्लभ', 'दुर्गम' उस 'निर्जन' वृन्दावनमें मैं अकेला ही जाऊँगा या फिर केवल किसी एक व्यक्तिके साथ। श्रीमाधवेन्द्रपुरी वहाँ अकेले ही गये थे, दूध देनेके छलसे श्रीकृष्णने उन्हें अपने दर्शन दिये थे॥ 270–271॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 4/20–33, 172 और 179 संख्या देखें॥ 271॥

महाप्रभुके द्वारा बहुत लोगोंकी भीड़का अनादर :—

वादियार वाजि पाति' चलिलाङ तथारे।
बहु-सङ्गे वृन्दावन गमन ना करे॥ 272॥

एका याइब, किवा सङ्गे भृत्य एकजन।
तबे से शोभय वृन्दावनेर गमन॥ 273॥

वृन्दावन याब काँहा 'एकाकी' हञा!
सैन्य सङ्गे चलियाछि ढाक बाजाञा!॥ 274॥

अनुवाद—तब मैं समझा कि मैं तो बाजीगरकी भाँति ढोल पीटते हुए वृन्दावनके लिये जा रहा हूँ। बहुतसे लोगोंके साथ वहाँ नहीं जाना चाहिये। मैं अकेला ही जाऊँगा या फिर किसी एक सेवकको अपने साथ लूँगा। तभी वृन्दावन-यात्रा शोभनीय होगी। कहाँ तो मुझे अकेले ही वृन्दावन जाना चाहिये! और कहाँ मैं ढोल बजाते हुए सेनाके साथमें चल पड़ा हूँ॥ 272–274॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वादिया'* अर्थात् बाजीगर खेल दिखानेके लिये जब किसी स्थानपर बैठते हैं, तब जिस प्रकार लोगोंकी भीड़ होती है, उसी प्रकार लोगोंकी भीड़को लेकर मैं वृन्दावन जा रहा हूँ, यह अच्छा नहीं है॥ 272॥

वृन्दावन जाना छोड़कर महाप्रभुका पुनः गङ्गाके तटपर आगमन :—

धिक्, धिक् आपनाके बलि' हइलाङ अस्थिर।
निवृत्त हञा पुनः आइलाङ गङ्गातीर॥ 275॥

कम भक्तोंके साथ पुरीमें आगमन :—

भक्तगणे राखिया आइनु स्थाने-स्थाने।
आमा-सङ्गे आइला सबे पाँच-छय जने॥ 276॥

सभीसे निर्विघ्न वृन्दावन-जानेका परामर्श माँगना :—

निर्विघ्ने एबे कैछे याइब वृन्दावने।
सबे मेलि' युक्ति देह' हञा परसन्ने॥ 277॥

छोड़कर जानेसे दुःखी श्रीगदाधरको प्रेमके द्वारा सन्तुष्ट करना :—

गदाधरे छाड़ि' गेनु, इँहो दुःख पाइल।
सेइहेतु वृन्दावन याइते नारिल॥"278॥

अनुवाद—मैं स्वयंको धिक्कार देते हुए क्षुब्ध हो गया। इस प्रकार वृन्दावन जानेकी अभिलाषाको छोड़कर मैं पुनः गङ्गातटपर आ गया। मैं भक्तोंको उनके-उनके

स्थानपर छोड़कर आया हूँ, मेरे साथ लगभग पाँच-छः भक्त ही आये हैं। अब तो आप सब मुझसे प्रसन्न होंगे, इसलिये अब मैं निर्विघ्न कैसे वृन्दावन जाऊँ, आप सभी मिलकर मुझे परामर्श दीजिये। मैं गदाधर पण्डितको यहाँ छोड़कर गया था, इससे इन्हें बहुत दुःख हुआ। इसी कारण मैं वृन्दावन नहीं जा पाया॥"275-278॥

महाप्रभुके प्रति दाक्षिण-भावसे युक्त
श्रीगदाधरकी सदैन्य-प्रेमोक्ति :—

तबे गदाधर-पण्डित प्रेमाविष्ट हञा।
प्रभु-पद धरि' कहे विनय करिया॥279॥

जिस स्थानपर महाप्रभु, वह स्थान ही वृन्दावन, वृन्दावनके अतिरिक्त श्रीकृष्णकी मधुरलीला नहीं :—

"तुमि याँहा-याँहा रह, ताँहा 'वृन्दावन'।
ताँहा यमुना, गङ्गा, सर्वतीर्थगण॥280॥

लोकशिक्षाके लिये ही महाप्रभुका वृन्दावनमें गमन :—

तबु वृन्दावन याह' लोक शिखाइते।
सेइ त' करिबे, तोमार येइ लय चित्ते॥281॥

वर्षाके चार मास पुरीमें रहनेका अनुरोध :—

एइ आगे आइला, प्रभु, वर्षार चारिमास।
एइ चारि मास कर नीलाचले वास॥282॥

बादमें स्वतन्त्र महाप्रभु अपनी इच्छासे जाँय,
इसमें भक्तोंको कोई आपत्ति नहीं :—

पाछे सेइ आचरिबा, येइ तोमार मन।
आपन-इच्छाय चल, रह,—के करे वारण॥"283॥

अनुवाद—तब श्रीगदाधर पण्डितने प्रेममें आविष्ट होकर महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर नम्रतापूर्वक कहा,—"आप जहाँ-जहाँ रहते हैं, वहीं वृन्दावन है। वहींपर ही यमुना, गङ्गा और सभी तीर्थ रहते हैं। तो भी आप लोकशिक्षाके लिये वृन्दावन जाते हैं। अन्यथा आप तो वही करेंगे, जो आपके मनमें होगा। अभी वर्षाके चार मास (चातुर्मास्य) आनेवाले हैं, इसलिये हमारी प्रार्थना है कि आप ये चार मास नीलाचलमें ही वास कीजिये। बादमें जैसा आपका मन करे, वैसा ही कीजियेगा। आप अपनी इच्छासे चाहे जाँय अथवा रहें, आपको कोई रोक नहीं सकता॥"279-283॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने इससे पहले ही रथके आगे नृत्य करते समय अपने भक्तोंके सामने अपने भावोंको प्रकाशित किया था। श्रीमहाप्रभुका हृदय ही श्रीराधाकान्तकी लीलाभूमि वृन्दावन है; तथापि लोक-शिक्षाके लिये उन्होंने जगत्में प्रकाशित भौम-वृन्दावनकी ओर गमन किया। प्राकृत-दृष्टिसे युक्त विषय भोगोंमें मत्त साधारण लोगोंकी धारणा यह है कि भौम-वृन्दावन अप्राकृत नहीं है। यह भोगरत इन्द्रियोंके भोगोंके लिये अन्य जड़ीय स्थानोंकी भाँति ही एक विशेष स्थान है। जिस प्रकार अन्यान्य जड़ वस्तुओंके सङ्गके प्रभावसे जड़ीय भाव उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार वृन्दावनको इन्द्रिय-भोग्य मानकर अथवा जड़-बुद्धिसे उसके दर्शन करनेपर, किसी पारमार्थिक नित्य मङ्गल अर्थात् अद्वयज्ञान-श्रीकृष्णकी सेवा नहीं होती। यह बात श्रीमहाप्रभुके वाक्य "मोर मन-वृन्दावन" और श्रीभागवतके 'आहुश्च ते' पद्यके द्वारा प्रमाणित हुई है। (भाः 10/84/8)—

"यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥"

[अर्थात् "जो मनुष्य त्रिधातुओं (कफ-वात-पित्त)से बने जड़ शरीरमें आत्मबुद्धि, स्त्री-पुत्रादिमें ममत्वबुद्धि, जन्मभूमिमें पूजनीयबुद्धि तथा जलादिमें तीर्थबुद्धि रखता है—किन्तु इन समस्त बुद्धिके मध्य किसी प्रकारकी बुद्धि भगवद्भक्तोंमें नहीं हो, तो वह गाय आदि (घास चरनेवाले) पशुओंमें भी गधा ही है।"]

वास्तवमें मायाबद्ध जीवोंको शिक्षा देनेके लिये ही महाप्रभुने भगवान्के अप्राकृत लीलास्थल वृन्दावन-गमन तथा दर्शन आदिकी लीलाका आचरण किया था। बद्धजीव यदि यह भूलकर वृन्दावनको भी प्रपञ्चका एक 'विषयभोगक्षेत्र' माने, तब वह महाप्रभुकी शिक्षाके विरुद्ध होगा। शुद्ध-भागवतगणोंके भाव अथवा धारणा

यह है कि भौम-वृन्दावन चिन्मय वृन्दावनसे अभिन्न है। प्राकृत-सहजिया स्वयंको 'व्रजवासी' अथवा 'धामवासी' कहकर अभिमान अथवा प्रचार करके भी वास्तवमें चिन्मय वृन्दावनवासके स्थानपर अपने इन्द्रिय-तर्पणक्षेत्र घोर संसारमें ही वास करके जञ्जालकी वृद्धि करते हैं। श्रीदामोदर स्वरूप नित्य व्रजवासी होनेपर भी उनके चरित्रमें भौम-वृन्दावनमें जानेका प्रसङ्ग नहीं सुना जाता; श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीवास पण्डित, श्रीशिवानन्द सेन, श्रीरामानन्द राय, श्रीशिखि माहाति, श्रीमाधवी देवी, श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी आदिकी भी वैसी यात्रा किसी ग्रन्थमें वर्णित नहीं है। परन्तु शुद्धभक्तिहीन बहुतसे प्राकृत-सहजिया, कर्मी, ज्ञानी या अन्याभिलाषी व्यक्तियोंके भी भौम-वृन्दावनमें वास, दर्शन अथवा गमनादिका प्रसङ्ग साधारण लोगोंके मुखसे सुना जाता है। भक्तिहीन लोगोंको श्रीधाममें वास स्वर्ग, मुक्ति अथवा पाप-पुण्य-वैराग्यसे प्राप्त होनेवाले फल ही प्रदान करता है। "प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति-विलोचनेन"—श्लोकका अभिप्रेत दिव्य-निर्मल-नेत्रयुक्त शुद्धभक्तोंका ही अप्राकृत श्रीधाम वृन्दावनमें वास—यथार्थ और सत्य है। महाप्रभुके परवर्ती कालमें खेतरि-ग्राममें ठाकुर नरोत्तम, याजिग्राममें श्रीनिवासाचार्य और उनके बादके समयमें गौड़देशमें श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज, कालनामें श्रीभगवान-दास, नवद्वीपधाममें श्रीमद् गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज, कलिकातामें श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर आदि श्रीनाममें एकनिष्ठ भक्तोंने अवश्य ही श्रीवृन्दावनके अतिरिक्त अन्य किसी धाममें कभी भी वास नहीं किया॥ 280-281॥

सोलहवें अध्यायके अनुभाष्यका अनुवाद समाप्त।

सभी भक्तोंकी यही प्रार्थना :—

शुनि' सब भक्त कहे प्रभुर चरणे।
"सबाकार इच्छा पण्डित कैल निवेदने॥"284॥

अनुवाद—यह बात सुनकर महाप्रभुके चरणोंमें बैठे हुए सभी भक्तोंने कहा,—"श्रीगदाधर पण्डितने हम सबकी इच्छाको ही व्यक्त किया है॥"284॥

सभीकी इच्छानुसार महाप्रभुका चार मास पुरीमें रहना :—

सबार इच्छाय प्रभु चारि मास रहिला।
शुनिया प्रतापरुद्र आनन्दित हैला॥ 285॥

अनुवाद—सभी भक्तोंकी इच्छा जानकर महाप्रभु चार मास नीलाचलमें रहनेके लिये सहमत हो गये। यह सुनकर राजा प्रतापरुद्र बहुत आनन्दित हुए॥ 285॥

टोटामें अपने घरमें पण्डितका महाप्रभुको भिक्षा-दान :—

सेइ दिन गदाधर कैल निमन्त्रण।
ताँहा भिक्षा कैल प्रभु लञा भक्तगण॥ 286॥

अनुवाद—उस दिन श्रीगदाधर पण्डितने महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने अपने भक्तोंको साथ लेकर वहींपर भिक्षा ग्रहण की॥ 286॥

श्रीगदाधरका प्रेम और महाप्रभुकी उनके प्रति वश्यता—मर्त्य जीवोंके लिये अचिन्त्य :—

भिक्षाते पण्डितेर स्नेह, प्रभुर आस्वादन।
मनुष्येर शक्त्ये दुइ ना याय वर्णन॥ 287॥

एइमत गौरलीला अनन्त, अपार।
संक्षेपे कहिये, कथन ना याय विस्तार॥ 288॥

अनुवाद—साधारण मनुष्यमें ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि वह श्रीगदाधर पण्डितके भोजन करानेमें उनके स्नेहका और महाप्रभुके द्वारा उसके आस्वादनका वर्णन कर सके। इस प्रकार श्रीगौरलीला अनन्त और अपार है। मैं किसी प्रकारसे उसका संक्षेपमें ही वर्णन कर रहा हूँ। विस्तृत रूपसे कोई भी उसका वर्णन नहीं कर सकता॥ 287-288॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगदाधर पण्डितके निकट महाप्रभुके भिक्षा ग्रहण करनेके समय श्रीगदाधर पण्डितका जो स्नेह है और महाप्रभु जो उस स्नेहयुक्त प्रसाद-अन्नका आस्वादन करते हैं,—ये दोनों विषय ही

मनुष्यकी शक्तिसे वर्णन नहीं किये जा सकते॥ 287॥

सोलहवें अध्यायके अमृतप्रवाह भाष्यका अनुवाद समाप्त।

साक्षात् अनन्त भी श्रीगौरलीलाके अन्तको पानेमें समर्थ नहीं :—

सहस्र-वदने कहे आपने 'अनन्त'।
तबु एक लीलार तेँहो नाहि पाय अन्त॥ 289॥

अनुवाद—स्वयं श्रीअनन्तदेव अपने सहस्र मुखोंसे महाप्रभुकी लीलाका गान करते हैं, किन्तु तब भी वे एक लीलाका भी अन्त नहीं पाते॥ 289॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 290॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे पुनर्गौड़गमन-विलासो नाम षोड़श-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 290॥

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड पुनः गौड़गमन-विलास-नामक सोलहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

सतरहवाँ अध्याय

कथासार—उस वर्ष श्रीक्षेत्रमें रथयात्रा देखकर महाप्रभुने वृन्दावन जानेका निश्चय किया। श्रीरामानन्द और श्रीस्वरूपने बलभद्र भट्टाचार्य और उनके साथी (सेवक) एक ब्राह्मणको साथमें भेजा। महाप्रभु प्रातःकाल होनेसे पहले ही रात्रिमें कटककी ओर चले। कटक पहुँचनेसे पहले ही कटकको दक्षिणमें रखकर अर्थात् कटकके उत्तरसे ही वे निर्जन वनपथसे चल दिये। वनपथमें बाघ-हाथी आदिको प्रेममें श्रीकृष्णनामका गान कराया। जहाँपर भी ग्राम मिलता, वहाँ भिक्षा करके चावल-सब्जियाँ एकत्रित कर लेते। जहाँ कोई गाँव नहीं होता, वहाँ पहलेसे ही एकत्रित चावलमेंसे बचे हुए चावलको पकाते और वनसे कुछ साग आदि संग्रह करके उसे चावलके साथ खानेके लिये पका लेते। बलभद्र भट्टाचार्यके मधुर व्यवहारसे महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार झारिखण्डके वनपथपर चलते हुए महाप्रभु वाराणसी धाम पहुँचे। मणिकर्णिका घाटपर स्नान करते समय महाप्रभुकी श्रीतपनमिश्रके साथ भेंट हुई। महाप्रभुको अपने घर ले जाकर उन्होंने बड़े आदरपूर्वक उन्हें रहनेके लिये एक सुविधाजनक स्थान दिया। महाप्रभुके पूर्व परिचित भक्त वैद्य-श्रीचन्द्रशेखर वाराणसीमें महाप्रभुकी सेवा करने लगे। एक महाराष्ट्र
व्यवहारको देखकर जब संन्यासियोंमें प्रधान प्रकाशानन्द सरस्वतीको उनके विषयमें बतलाया, तब उसने महाप्रभुकी बहुत निन्दा की। वह ब्राह्मण उस बातसे दुःखी होकर महाप्रभुके पास आया और उसने महाप्रभुको वह बात बतलायी। और उसने महाप्रभुसे एक बात पूछी कि प्रकाशानन्द आदि संन्यासियोंके मुखमें 'श्रीकृष्णनाम'के नहीं आनेका क्या कारण है? महाप्रभुने उसके उत्तरमें मायावादको 'अपराध' कहकर निर्णय दिया और मायावादियोंका सङ्ग करनेसे मना करके उसपर कृपा की। (इसके बाद महाप्रभु) काशीसे प्रयागके रास्ते मथुरा पहुँचे। वहाँ श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य सनोड़िया-ब्राह्मणके घरमें उसपर कृपा करके भिक्षा की। बादमें श्रीवृन्दावनके द्वादश-वनोंमें महाप्रेममें डूबे महाप्रभु शारी और शुक (मैना तथा तोता)की वार्ताको श्रवण करते हुए भ्रमण करने लगे।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

वृन्दावनके पथपर जाते समय पशु-पक्षियोंको श्रीकृष्ण-प्रेम प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णचैतन्य :—

गच्छन् वृन्दावनं गौरो व्याघ्रेभैणखगान् वने।
प्रेमोन्मत्तान् सहोन्नृत्यान् विदधे कृष्णजल्पिनः॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगौरचन्द्रने वृन्दावन जाते हुए (मार्गमें स्थित) वनमें बाघ, हाथी, हिरण और पक्षियोंको श्रीकृष्ण-नामके उच्चारणसे प्रेमोन्मत्त करते हुए नृत्य करवाया था॥1॥

अनुभाष्य—

गौरः वृन्दावनं गच्छन् (गन्तुः बहिर्गतः सन्) वने (झारि-खण्डारण्यपथे) व्याघ्रेभैणखगान् (व्याघ्रगजमृग-पक्ष्यादीन्) प्रेमोन्मत्तान् (कृष्णप्रेमाविष्टान्) सह-उन्नृत्यान् (गौरेण सह उद्दण्डनृत्यपरान्) कृष्णजल्पिनः (कृष्णकृष्णेत्युच्चारिणः) विदधे (कारितवान्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्रकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

शरत्कालमें जानेके इच्छुक महाप्रभुका
श्रीस्वरूप-रायके साथ परामर्श :—

शरत्काल हैल, प्रभुर चलिते हैल मति।
रामानन्द-स्वरूप-सङ्गे निभृते युकति॥3॥

"मोर सहाय करि यदि, तुमि दुइ जन।
तबे आमि याञा देखि श्रीवृन्दावन॥4॥

दूसरे किसीको साथ नहीं ले जानेकी इच्छा :—

रात्र्ये उठि' वनपथे पलाञा याब।
एकाकी याइब, काहाँ सङ्गे ना लइब॥5॥

केह यदि सङ्ग लइते पाछे उठि' धाय।
सबारे राखिबा, येन केह नाहि याय॥6॥

भगवान्की भक्तोंसे उनकी कृपाकी याचना :—

प्रसन्न हञा आज्ञा दिबा, ना मानिबा 'दुःख'।
तोमा-सबार 'सुखे', पथे हबे मोर 'सुख'॥"7॥

अनुवाद—शरत् ऋतुके आनेपर महाप्रभुने वृन्दावन जानेका निर्णय किया। उन्होंने श्रीरामानन्द राय तथा श्रीस्वरूप दामोदरके साथ एकान्तमें बैठकर परामर्श किया,—"तुम दोनों यदि मेरी सहायता करो, तभी मैं जाकर श्रीवृन्दावनका दर्शन कर सकता हूँ। मैं प्रातःकाल होनेसे पहले ही रात्रिमें उठकर वनके मार्गसे यहाँसे शीघ्रतासे चला जाऊँगा। मैं अकेला ही जाऊँगा, किसीको भी अपने साथ नहीं लूँगा। यदि कोई मेरे साथ चलनेके लिये मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगें, तब तुम दोनों उन्हें रोक लेना, जिससे कोई मेरे पीछे नहीं आ पाये। तुम मुझे प्रसन्न होकर आज्ञा देना, मनमें दुःख नहीं करना। तुम सबके सुखी होनेसे मेरी यात्रा सुखमय होगी॥"3-7॥

श्रीस्वरूप और श्रीरायका महाप्रभुसे निवेदन :—

दुइजन कहे,—"तुमि ईश्वर 'स्वतन्त्र'।
येइ इच्छा, सेइ करिबा, नह 'परतन्त्र'॥8॥

भक्तोंके सुखमें ही भगवान्की प्रसन्नता :—

किन्तु आमा-दुँहार शुन एक निवेदने।
'तोमार सुखे आमार सुख'—कहिला आपने॥9॥

भगवान्की प्रसन्नतामें ही भक्तका सुख :—

आमा-दुँहार मने तबे बड़ 'सुख' हय।
एक निवेदन यदि धर, दयामय॥10॥

एक वैष्णव-ब्राह्मणको साथमें ले जानेकी प्रार्थना :—

'उत्तम ब्राह्मण' एक सङ्गे अवश्य चाहि।
भिक्षा करि' भिक्षा दिबे, याबे पात्र वहि'॥11॥

वनपथे याइते नाहि 'भोज्यान्न'-ब्राह्मण।
आज्ञा कर,—सङ्गे चलुक विप्र एकजन॥"12॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दने कहा,—"आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं। आपकी जैसी इच्छा होगी, आप वैसा ही करेंगे, आप किसीके अधीन नहीं हैं। किन्तु हम दोनोंका एक निवेदन सुनिये। आपने स्वयं ही अभी कहा है कि 'तुम्हारी प्रसन्नतामें ही मेरी प्रसन्नता है', इसलिये हे दयामय! हम दोनोंके मनमें तभी बहुत सुख होगा, जब आप हमारा एक निवेदन मानेंगे। आपके साथ एक उत्तम वैष्णव ब्राह्मणको अवश्य ही जाना चाहिये जो भिक्षा माँगकर आपको भोजन कराये और आपका पात्रादि उठाकर चले। वनके मार्गमें जाते समय आपको ऐसा ब्राह्मण नहीं मिलेगा, जिसके अन्नका भोजन करनेमें दोष नहीं हो। आप आज्ञा दीजिये कि आपके साथ एक ब्राह्मण भी जाय॥"8-12॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भोज्यान्न ब्राह्मण'*—जिसका अन्न भोज्य है अर्थात् जिसके अन्नका भोजन करनेमें कोई दोष नहीं है, ऐसा ब्राह्मण॥12॥

महाप्रभुकी अपने किसी परिकरको साथमें लेनेकी
अनिच्छा, मनके अनुसार सङ्गीके लक्षण-निर्देश :—

प्रभु कहे,—"निज-सङ्गी काँहो ना लइब।
एकजने निले, आनेर मने दुःख हइब॥13॥

नूतन सङ्गी हइबेक,—स्निग्ध याँर मन।
ऐछे यबे पाइ, तबे लइ 'एक' जन॥"14॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं अपने सङ्गी भक्तोंमेंसे किसीको भी अपने साथ लेकर नहीं जाऊँगा, क्योंकि

एकको साथमें ले जानेसे दूसरोंके मनमें दुःख होगा। मेरे साथ जानेके लिये कोई नया व्यक्ति चाहिये जिसका मन प्रीतियुक्त हो। यदि ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाय, तो मैं उस एक व्यक्तिको अपने साथ ले जा सकता हूँ॥"13-14॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पहलेके जैसे मेरे साथ काला-कृष्णदास आदिके जानेका कोई प्रयोजन नहीं है; परन्तु स्निग्ध (प्रेमवान्) हृदयवाले किसी नये सङ्गीको अपने साथ ले जा सकता हूँ॥14॥

श्रीस्वरूपका बलभद्र भट्ट और उसके एक साथी और दास-ब्राह्मणका चयन और सङ्ग ले जानेकी प्रार्थना :—

स्वरूप कहे,—"एइ बलभद्र-भट्टाचार्य।
तोमाते सुस्निग्ध बड़, पण्डित, साधु, आर्य॥15॥

महाप्रभुके सङ्गसे कर्मबुद्धिप्रबल सरल ब्राह्मणको आत्मसंशोधनका सुयोग-प्रदान :—

प्रथमेइ तोमा-सङ्गे आइला गौड़ हैते।
इँहार इच्छा आछे 'सर्वतीर्थ' करिते॥16॥

बलभद्र और उसके सङ्गी ब्राह्मणके कार्योंका निर्देश :—

इँहार सङ्गे आछे विप्र एक 'भृत्य'।
इँहो पथे करिबेन सेवा-भिक्षा-कृत्य॥17॥

इँहारे सङ्गे लह यदि, सबार हय 'सुख'।
वन-पथे याइते तोमार कोन नाइ 'दुःख'॥18॥

सेइ विप्र वहि' निबे वस्त्राम्बुभाजन।
भट्टाचार्य भिक्षा दिबे करि' भिक्षाटन॥"19॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"ये बलभद्र भट्टाचार्य हैं। ये पण्डित, साधु और भक्त हैं। आपके प्रति इनकी बहुत प्रीति है। पहले ही ये आपके साथ बङ्गालसे आये हैं और सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेकी इनकी इच्छा भी है। इनके साथ एक और ब्राह्मणको भी ले जाइये, वह मार्गमें सेवा और भिक्षा आदि कार्य करेगा। यदि आप इन दोनोंको अपने साथ ले जाँय तो सभीको प्रसन्नता होगी और आपको भी वनके मार्गसे जाते हुए किसी प्रकारका कोई कष्ट नहीं होगा। वह ब्राह्मण वस्त्र और जलपात्रको उठाकर चलेगा और ये भट्टाचार्य भिक्षा माँगकर आपको भोजन करायेंगे॥"15-19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वस्त्राम्बुजभाजन'*—वस्त्र और जलपात्र॥19॥

अनुभाष्य—*'स्निग्ध'*—(भाः 1/1/8)—"ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत" [जो शिष्य स्निग्ध-स्वभावका होता है, वह गुरुकी प्रीतिका पात्र होता है और ऐसे स्निग्ध शिष्यके निकट ही गुरुजन अति निगूढ़ रहस्यको भी प्रकट कर देते हैं], इस श्लोकमें 'स्निग्धस्य'-शब्दकी टीकामें श्रीधरस्वामिपादने 'प्रेमवतः' (प्रेमिक) लिखा है॥14-15॥

महाप्रभुकी स्वीकृति :—

ताँहार वचन प्रभु अङ्गीकार कैल।
बलभद्र-भट्टाचार्ये सङ्गे करि' निल॥20॥

रात्रिमें श्रीजगन्नाथसे आज्ञा ग्रहण, रात्रिके अन्तमें गुप्त रूपसे वृन्दावन-यात्रा :—

पूर्वरात्र्ये जगन्नाथ देखि' 'आज्ञा' लञा।
शेष-रात्र्ये उठि' प्रभु चलिला लुकाञा॥21॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरकी प्रार्थनाको स्वीकार करके बलभद्र भट्टाचार्यको अपने साथ ले लिया। एक रात्रि पूर्व महाप्रभुने श्रीजगन्नाथके दर्शन करनेके बाद उनसे वृन्दावन जानेकी आज्ञा ले ली और रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उठकर महाप्रभु छिपकर वहाँसे चल दिये॥20-21॥

प्रातःकालमें विरह-व्याकुल भक्तोंका महाप्रभुको ढूँढ़ना :—

प्रातःकाले भक्तगण प्रभु ना देखिया।
अन्वेषण करि' फिरे व्याकुल हञा॥22॥

अनुवाद—प्रातःकालमें जब भक्तोंने महाप्रभुको वहाँ नहीं देखा, तब वे व्याकुल होकर उन्हें इधर-उधर ढूँढ़ने लगे॥22॥

श्रीस्वरूपके द्वारा भक्तोंको मना करना
और भक्तोंका रुकना :—

स्वरूप-गोसाञि सबाय कैल निवारण।
निवृत्त हञा रहे सबे, जानि' प्रभुर मन॥ 23॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीने उन्हें ऐसा करनेके लिये मना किया। सभी भक्त महाप्रभुकी इच्छा जानकर शान्त हो गये॥ 23॥

महाप्रभुके वनके मार्गसे जानेका वर्णन; महाप्रभुकी कृपासे पशु-पक्षियोंका भी उद्धार और श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति :—

प्रसिद्ध पथ छाड़ि' प्रभु उपपथे चलिला।
'कटक' डाहिने करि' वने प्रवेशिला॥ 24॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रसिद्ध राजमार्गको छोड़कर उपपथपर चल पड़े। उन्होंने कटकको अपनी दाहिनी ओर रखकर वनमें प्रवेश किया॥ 24॥

निर्जन-वने चले प्रभु कृष्णनाम लञा।
हस्ती-व्याघ्र पथ छाड़े प्रभुरे देखिया॥ 25॥

पाले-पाले व्याघ्र, हस्ती, गण्डार, शूकरगण।
तार मध्ये आवेशे प्रभु करिला गमन॥ 26॥

अनुवाद—जब महाप्रभु निर्जन वनमें श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते हुए जा रहे थे, तब हाथियों और बाघोंने उन्हें देखकर रास्ता दे दिया। बाघ, हाथी, गैंडे और जंगली सुअरोंके झुण्डके झुण्ड वहाँ आ गये तथा महाप्रभु आवेशमें उनके बीचमेंसे निकलकर जा रहे थे॥ 25-26॥

अनुभाष्य—महाभागवतमें अद्वयज्ञानकी उपलब्धिके कारण द्वितीयाभिनिवेश (अपनी देहमें अभिनिवेश) और उससे उत्पन्न भय अथवा हिंसाका अभाव होता है। वे अपने सेव्य श्रीकृष्णके भजनमें नित्य लगे रहते हैं, इसलिये उन्हें सर्वत्र श्रीकृष्णके और कार्ष्ण अर्थात् सभी श्रीकृष्णके प्रिय हैं, ऐसे दर्शन होते हैं। इसके फलस्वरूप सभी उनको अपनी प्रीतिका पात्र अथवा आत्मीय मानते हैं, इसलिये उनमें परस्परमें प्रीतिका अभाव अथवा हिंसाका अवकाश (स्थान) नहीं है। झारिखण्डके मार्गमें महाप्रभुकी भी सदा महाभागवतोचित 'व्रजमें श्रीकृष्णको ढूँढ़नेकी चेष्टा' लक्षित हुई थी॥ 26॥

देखि' भट्टाचार्येर मने हय महाभय।
प्रभुर प्रतापे तारा एक पाश हय॥ 27॥

एकदिन पथे व्याघ्र करियाछे शयन।
आवेशे तार गाये प्रभुर लागिल चरण॥ 28॥

प्रभु कहे,—कह 'कृष्ण', व्याघ्र उठिल।
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' व्याघ्र नाचिते लागिल॥ 29॥

अनुवाद—महाप्रभुको बाघादि पशुओंके बीचसे जाते देखकर बलभद्र भट्टाचार्य बहुत डर गये, किन्तु महाप्रभुके प्रतापसे वे सब पशु एक ओर हो जाते थे। एकदिन मार्गमें एक बाघ सोया हुआ था, आवेशमें चलते हुए महाप्रभुका चरण उसके शरीरमें लग गया। महाप्रभुने बाघसे कहा,—'कृष्ण' बोलो। तभी वह बाघ उठकर 'कृष्ण', 'कृष्ण' कहकर नाचने लगा॥ 27-29॥

आर दिने महाप्रभु करे नदीस्नान।
मत्तहस्तीयूथ आइल करिते जलपान॥ 30॥

प्रभु जले कृत्य करे, आगे हस्ती आइला।
'कृष्ण कह' बलि' प्रभु जल फेलि' मारिला॥ 31॥

अनुवाद—किसी अन्य दिन महाप्रभु नदीमें स्नान कर रहे थे। उस समय मतवाले हाथियोंका दल वहाँ पानी पानेके लिये आया। महाप्रभु जलमें मन्त्र-जपादि कृत्य कर रहे थे, तभी हाथी उनके आगे आ गये। 'कृष्ण कहो' कहकर महाप्रभुने उनपर पानीका छींटा मारा॥ 30-31॥

अनुभाष्य—*'कृत्य'*—स्नान एवं मन्त्रजप-स्मरणादि॥ 31॥

सेइ जलबिन्दु-कणा लागे यार गाय।
सेइ 'कृष्ण' 'कृष्ण' करे, प्रेमे नाचे, गाय॥ 32॥

केह भूमे पड़े, केह करये चित्कार।
देखि' भट्टाचार्येर मने हय चमत्कार॥ 33॥

अनुवाद—उस पानीकी एक बूँदका कण भी जिसके शरीरसे स्पर्श किया, वही 'कृष्ण', 'कृष्ण' कहने लगा और प्रेममें नाचने तथा गाने लगा। कोई भूमिपर गिर पड़ा, कोई आवेशमें चीत्कार करने लगा। यह सब देखकर भट्टाचार्य आश्चर्यचकित हो गये॥ 32–33॥

पथे याइते करे प्रभु उच्च सङ्कीर्त्तन।
मधुर कण्ठध्वनि शुनि' आइसे मृगीगण॥ 34॥

डाहिने-वामे ध्वनि शुनि' याय प्रभु-सङ्गे।
प्रभु तार अङ्ग मुछे, श्लोक पड़े रङ्गे॥ 35॥

अनुवाद—कभी मार्गमें चलते हुए महाप्रभु उच्च-स्वरसे कीर्तन कर रहे थे, उनके कण्ठकी मधुर ध्वनिको सुनकर हिरणियाँ उनके निकट आने लगीं। कीर्तनकी ध्वनिको सुनते-सुनते हिरणियाँ महाप्रभुके दाहिनी और बायीं और उनके साथ-साथ चलने लगीं। महाप्रभुने उनके अङ्गोंको सहलाते हुए कुतूहलसे एक श्लोक पढ़ा॥ 34–35॥

श्रीमद्भागवत (10/21/11)में :—

धन्याः स्म मूढ़मतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥ 36॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 36॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये मूढ़ मतिवाली सभी हिरणियाँ ही धन्य हैं, क्योंकि उन्होंने विचित्र-वेशवाले नन्दनन्दनको प्राप्त करके और उनके वेणुकी ध्वनिको सुनकर कृष्णसारोंके (अपने पति हिरणोंके) साथ प्रणयरूपी अवलोकनके (प्रेम भरी चितवनके) द्वारा उनकी पूजा की थी॥ 36॥

अनुभाष्य—शरत्काल आनेपर श्रीकृष्णने वन-वनमें वेणुको बजाते हुए भ्रमण करना आरम्भ किया, उनकी वेणुध्वनिको श्रवण करके श्रीकृष्णसङ्ग-कामसे व्याकुल होकर गोपियोंका गीत—

हे सखि, मूढ़मतयः (मूढ़ा विवेकहीना मतिः यासां तथाभूताः) अपि (त्रिर्यग्जातयोऽपि) एताः हरिण्यः (मृग्यः) धन्याः (कृतार्थाः सन्ति) स्म,—याः (हरिण्यः) वेणुरणितं (वेणुनादम्) आकर्ण्य (श्रुत्वा) सहकृष्णसाराः (कृष्णसारैर्मृगैः स्वपतिभिः सहिताः एव) उपात्तविचित्रवेशम् (उपात्ताः स्वीकृताः विचित्राः वेशाः वनमाला-बर्हापीड़ा-गुञ्जावतंसादिरूपाः येन् तं) नन्दनन्दनं [प्रति] प्रणयावलोकैः (प्रणयसहितैः अवलोकनैः) विरचितां (भूषितां) पूजां दधुः (कृतवत्यः)।

श्लोक-भावानुवाद—हे सखि! पशु होते हुए भी विवेकहीन मतिवाली ये हिरणियाँ धन्य हैं। इन्होंने वेणुनादसे आकृष्ट होकर अपने पतियोंके सहित विचित्र वेशधारी [वनमाला, मोरपंख, गुञ्जा-कुण्डलादिधारी] श्रीनन्दनन्दनकी प्रणय अवलोकनके द्वारा पूजा की॥ 36॥

हेनकाले व्याघ्र तथा आइल पाँच-सात।
व्याघ्र-मृगी मिलि' चले महाप्रभुर साथ॥ 37॥

देखि' महाप्रभुर 'वृन्दावन'-स्मृति हैल।
वृन्दावन-गुण-वर्णन श्लोक पड़िल॥ 38॥

अनुवाद—इतनेमें ही पाँच-सात बाघ भी वहाँ आ गये। बाघ और हिरणियाँ एक साथ मिलकर महाप्रभुके साथ चलने लगे। बाघ और हिरणियोंको एकसाथ चलते देखकर महाप्रभुको वृन्दावनकी स्मृति हो आयी। तब उन्होंने श्रीवृन्दावनके गुणोंका वर्णन करते हुए एक श्लोक पढ़ा॥ 37–38॥

वृन्दावनमें अद्वयज्ञानका विरोधी भाव नहीं :—
(श्रीमद्भागवत 10/13/60)में—

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृ-मृगादयः।
मित्राणीवाजितावास-द्रुत-रुट्-तर्षणादिकम्॥ 39॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 39॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस स्थानपर मनुष्य-बाघादि स्वभाववशतः परस्पर विरुद्ध चेष्टावाले होनेपर भी मित्रभावसे एक स्थानपर वास करते हैं और श्रीकृष्णके आराम (नित्यविहार) स्थान होनेके कारण क्रोध-तृष्णादि जिस धामको परित्याग करके पलायन कर गये थे, (ब्रह्मा उस अप्राकृत वृन्दावनधामको देख सके)॥ 39॥

अनुभाष्य—व्रजके बछड़ों और गोपबालकोंका हरण करनेके त्रुटीकालके बाद ब्रह्मा पुनः व्रजमें ही परम-ऐश्वर्यसे युक्त बछड़ों तथा गोपबालकोंको श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ामें रत देखकर श्रीकृष्णकी मायासे अत्यन्त मुग्ध हो गये। बादमें श्रीकृष्णके द्वारा कृपापूर्वक अपने मायारूपी पर्देको उठा लेनेपर ब्रह्माने सोकर उठे व्यक्तिकी भाँति चारों ओर दृष्टिपात करते ही महा-ऐश्वर्यमय श्रीवृन्दावनके दर्शन किये—

यत्र नैसर्गदुर्वैराः (स्वाभाविकाऽप्रतिकार्य-वैरवन्तोऽपि) नृ-मृगादयः (नराः सिंहादयः) मित्राणि इव सह आसन् (मिथः स्थितवन्तः), [तथाभूतम्] अजितावास-द्रुत-रुट्तर्षणादिकम् (अजितस्य श्रीकृष्णस्य आवासः सदावस्थानं तेन निजमहिम्ना द्रुतं पलायितं रुट्तर्षणादिकं क्रोधलोभतृष्णादयः यस्मात् तथाभूतं—वृन्दावनमपश्यदिति पूर्वेणान्वयः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 39॥

'कृष्ण' 'कृष्ण' कह, करि' प्रभु यबे बलिल।
'कृष्ण' कहि' व्याघ्र-मृग नाचिते लागिल॥ 40॥

नाचे, कान्दे व्याघ्रगण मृगीगण-सङ्गे।
बलभद्र भट्टाचार्य देखे अपूर्व-रङ्गे॥ 41॥

व्याघ्र-मृग अन्योन्ये करे आलिङ्गन।
मुखे मुख दिया करे अन्योन्ये चुम्बन॥ 42॥

अनुवाद—जब महाप्रभुने उन बाघों और हिरणियोंको 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलनेके लिये कहा, तब वे 'कृष्ण' नामका उच्चारण करके नृत्य करने लगे। बाघ हिरणियोंके साथ नृत्य और क्रन्दन करने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य इस अपूर्व दृश्यको आनन्दपूर्वक देखने लगे। बाघ और हिरणियाँ एक-दूसरेका आलिङ्गन करने लगे तथा मुखसे मुखको मिलाकर एक-दूसरेका चुम्बन करने लगे॥ 40-42॥

कौतुक देखिया प्रभु हासिते लागिला।
ता-सबाके ताँहा छाड़ि' आगे चलि' गेला॥ 43॥

अनुवाद—इस कौतुकको देखकर महाप्रभु हँसने लगे। फिर उन सबको वहीं छोड़कर महाप्रभु आगे बढ़ गये॥ 43॥

मयूरादि पक्षिगण प्रभुरे देखिया।
सङ्गे चले, 'कृष्ण' बलि' नाचे मत्त हञा॥ 44॥

'हरिबोल' बलि' प्रभु करे उच्चध्वनि।
वृक्षलता—प्रफुल्लित, सेइ ध्वनि शुनि'॥ 45॥

झारिखण्डमें समस्त स्थावर-जङ्गमका उद्धार
अथवा श्रीकृष्णभक्ति देना :—

'झारिखण्डे' स्थावर-जङ्गम आछे यत।
कृष्णनाम दिया कैल प्रेमेते उन्मत्त॥ 46॥

अनुवाद—मोर आदि पक्षी महाप्रभुको देखकर 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते-बोलते मत्त होकर नृत्य करते हुए उनके साथ चलने लगे। जब महाप्रभु 'हरिबोल' बोलकर उच्चध्वनि करते, तब उस ध्वनिको सुनकर वृक्ष-लताएँ प्रफुल्लित हो उठते। 'झारिखण्ड'में जितने भी चर-अचर प्राणी थे, महाप्रभुने उन सबको श्रीकृष्णनाम देकर प्रेममें उन्मत्त बना दिया॥ 44-46॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'झारिखण्ड'*—झारिखण्ड नामसे प्रसिद्ध वृन्दावन-जानेके पथमें एक विशेष वन-प्रदेश है। (वर्तमान आटगढ़, ढेङ्कानल, आङ्गुल, लाहारा, कियोञ्झड़, वामड़ा, बोनाइ, गाङ्गपुर, छोटनागपुर, यशपुर, सरगुजा आदि पर्वत-जङ्गलमय-राज्य)॥ 46॥

येइ ग्रामे दिया यान, याँहा करेन स्थिति।
से-सब ग्रामेर लोकेर हय 'प्रेमभक्ति'॥ 47॥

महाप्रभुके मुखसे कीर्तित श्रीनाम श्रवण करनेवालेको श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति, उसके मुखसे कीर्तित श्रीकृष्णनामकी श्रवण-कीर्तन-धारासे लोगोंका उद्धार :—

केह यदि ताँर मुखे शुने कृष्णनाम।
ताँर मुखे आन शुने, ताँर मुखे आन॥ 48॥

महाप्रभुके गमन पथपर श्रवण-कीर्तनकी परम्परासे सभीको वैष्णवताकी प्राप्ति :—

सबे 'कृष्ण' 'हरि' बलि' नाचे, कान्दे, हासे।
परम्पराय 'वैष्णव' हइल सर्वदेशे॥ 49॥

अनुवाद—महाप्रभु जिस भी ग्रामसे होकर गुजरते अथवा जिस भी ग्राममें रहते, उन सब ग्रामोंके लोगोंमें 'प्रेमभक्ति' उदित हो जाती। कोई यदि महाप्रभुके मुखसे श्रीकृष्णनाम श्रवण करता, उस व्यक्तिके मुखसे अन्य कोई सुनता और उस अन्य व्यक्तिके मुखसे अन्य एक व्यक्ति सुनता, इस प्रकार परम्परासे सभी देशोंमें प्रायः सभी वैष्णव बन गये। सभी 'कृष्ण', 'हरि' बोलते हुए नृत्य करते, क्रन्दन करते तथा हँसते॥ 47-49॥

अनुभाष्य—*'आन'*—अन्य व्यक्ति॥ 48॥

बहिरङ्ग लोगोंके सामने प्रेम-चेष्टाको छिपानेपर भी महाप्रभुके दर्शन और नाम-कीर्तनके श्रवणसे ही लोगोंको भक्तिकी प्राप्ति :—

यद्यपि प्रभु लोक-सङ्घट्टेर त्रासे।
प्रेम 'गुप्त' करेन, बाहिरे ना प्रकाशे॥ 50॥

तथापि ताँर दर्शन-श्रवण-प्रभावे।
सकल देशेर लोक हैल 'वैष्णवे'॥ 51॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभु लोगोंकी भीड़के भयसे अपने प्रेमको छिपा लेते, बाहरमें प्रकाशित नहीं करते, तथापि उनके दर्शन और श्रवणके प्रभावसे सभी देशोंके लोग वैष्णव बन गये॥ 50-51॥

सर्वत्र ही भारतवर्षके लोगोंका उद्धार-साधन :—

गौड़, बङ्ग, उत्कल, दक्षिण-देशे गिया।
लोकेर निस्तार कैल आपने भ्रमिया॥ 52॥

अनुवाद—महाप्रभुने गौड़देश (पश्चिम बङ्गाल), बङ्ग (बाङ्गलादेश), उत्कल (उड़ीसा) और दक्षिण भारतमें स्वयं जाकर भ्रमण करके लोगोंका उद्धार किया॥ 52॥

झारिखण्डमें अत्यन्त श्रीकृष्णबहिर्मुख लोगोंका भी उद्धार करना :—

मथुरा याइवार छले आसेन झारिखण्ड।
भिन्नप्राय लोक ताँहा परम-पाषण्ड॥ 53॥

नाम-प्रेम दिया कैल सबार निस्तार।
चैतन्येर गूढ़लीला बुझिते शक्ति कार॥ 54॥

अनुवाद—महाप्रभु मथुरा जानेके छलसे झारिखण्डमें आये। वहाँके लोग प्राय असभ्य और परम-पाखण्डी थे। महाप्रभुने नाम-प्रेम प्रदान करके उन सबका भी उद्धार किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी गूढ़लीलाको समझनेकी शक्ति किसमें है?॥ 53-54॥

अनुभाष्य—*'भिन्नप्राय'*—सुसभ्य समाजसे अलग अर्थात् 'प्रायः असभ्य'॥ 53॥

महाप्रभुमें महाभागवतोचित व्रजलीलाका उद्दीपन :—

वन देखि' भ्रम हय—एइ 'वृन्दावन'।
शैल देखि' मने हय—एइ 'गोवर्धन'॥ 55॥

याँहा नदी देखे, ताँहा मानये—'कालिन्दी'।
महाप्रेमावेशे नाचे प्रभु पड़े कान्दि'॥ 56॥

अनुवाद—झारिखण्डके वनको देखकर महाप्रभुको वह वृन्दावन प्रतीत होता। तथा मार्गमें पर्वत देखकर महाप्रभुको लगता कि यह गोवर्धन है। इसी प्रकार जब भी किसी नदीको देखते, तो उसे कालिन्दी (यमुना) मानने लगते। इस प्रकार वृन्दावनकी स्फूर्तिसे महाप्रेमके आवेशमें नाचते-नाचते महाप्रभु क्रन्दन करते हुए भूमिपर गिर पड़ते॥ 55-56॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/11, 273 और 276 संख्या एवं भाः 10/30/9 और 10/35/9 श्लोक आदि विशेष रूपसे आलोच्य हैं॥ 55-56॥

भट्टके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

पथे याइते भट्टाचार्य शाक-मूल-फल।
याँहा येइ पायेन, ताँहा लयेन सकल॥ 57॥

अनुवाद—मार्गमें चलते-चलते बलभद्र भट्टाचार्यको जहाँपर जो भी शाक-मूल-फल आदि मिलता, वे सब कुछ ले लेते॥ 57॥

मार्गमें वैष्णव-ब्राह्मणोंके द्वारा ही महाप्रभु-सेवा :—

ये-ग्रामे रहेन प्रभु, तथाय ब्राह्मण।
पाँच-सात जन आसि' करे निमन्त्रण॥ 58॥

केह अन्न आनि' देय भट्टाचार्य-स्थाने।
केह दुग्ध, दधि, केह घृत, खण्ड आने॥ 59॥

दीक्षित-ब्राह्मणोंके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

याँहा विप्र नाहि, ताँहा 'शूद्रमहाजन'।
आसि' सबे भट्टाचार्ये करे निमन्त्रण॥ 60॥

अनुवाद—महाप्रभु जिस ग्राममें पहुँचते, वहाँके पाँच-सात ब्राह्मण आकर उन्हें निमन्त्रण देते। कोई बलभद्र भट्टाचार्यको अन्न लाकर दे देता तथा अन्य कोई उन्हें दूध, दही, घी तथा चीनी आदि लाकर देता। जिस गाँवमें ब्राह्मण नहीं होते, वहाँ ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य कुलमें जन्में भक्त आकर बलभद्र भट्टाचार्यको निमन्त्रण देते॥ 58-60॥

अनुभाष्य—जिस स्थानपर जन्मजात ब्राह्मण नहीं होते, वहाँ 'शूद्रमहाजन' अर्थात् जन्मजात शूद्र होनेपर भी जो दैक्ष-ब्राह्मण (दीक्षित होनेके कारण ब्राह्मणत्व प्राप्त) महाजन थे, उन्हींके घरपर भट्टाचार्यका निमन्त्रण हुआ था। शाङ्कर-संन्यासी जन्मजात ब्राह्मणके घरके अतिरिक्त अन्यत्र भिक्षा-ग्रहण नहीं करते। परन्तु महाप्रभुने जिस स्थानपर वैष्णव-ब्राह्मणका अभाव था, वहाँ ब्राह्मण परिवारमें जन्म अथवा उपनयन संस्कारके द्वारा द्वितीय जन्मको नहीं मानकर महाप्रभुने 'वैष्णवत्व' अथवा शुद्धभक्तिको लक्ष्य करके ही दीक्षित ब्राह्मणादिके द्वारा प्रदत्त द्रव्यों (वस्तुओं)को ग्रहण किया था॥ 60॥

वनके मार्गमें आहार आदिकी व्यवस्था :—

भट्टाचार्य पाक करे वन्य-व्यञ्जन।
वन्य-व्यञ्जने प्रभुर आनन्दित मन॥ 61॥

दुइ-चारिदिनेर अन्न राखेन संहति।
याँहा शून्य वन, लोकेर नाहिक वसति॥ 62॥

ताँहा सेइ अन्न भट्टाचार्य करे पाक।
फल-मूले व्यञ्जन करे, वन्य नाना शाक॥ 63॥

परम सन्तोष प्रभुर वन्य-भोजने।
महासुख पान, ये दिन रहेन निर्जने॥ 64॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्य वनसे एकत्रित किये व्यञ्जनोंकी रसोई बनाते और उन वनके व्यञ्जनोंको महाप्रभु बड़े आनन्दपूर्वक ग्रहण करते। बलभद्र भट्टाचार्य दो-चार दिनके लिये चावलको संग्रह करके अपने साथमें रखते थे। वनमें जहाँपर लोग वास नहीं करते थे, वहाँपर बलभद्र भट्टाचार्य उस चावलको पकाते और उसके साथ खानेके लिये वनमेंसे प्राप्त फल-मूल तथा अनेक प्रकारके साग बनाते। महाप्रभु वनके भोजनसे अत्यन्त सन्तुष्ट होते। और जब भी उन्हें निर्जन स्थानमें रहनेका अवसर प्राप्त होता, तो वे बहुत प्रसन्न होते॥ 61-64॥

भट्टके द्वारा महाप्रभुकी सेवा और उनका साथी महाप्रभुका वाहक :—

भट्टाचार्य सेवा करे, स्नेहे यैछे 'दास'।
ताँर विप्र बहे जलपात्र-बहिर्वास॥ 65॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्य महाप्रभुसे इतना स्नेह करते कि वे दासकी भाँति उनकी सेवामें लगे रहते। और उनका सङ्गी ब्राह्मण महाप्रभुके जलपात्र तथा बहिर्वास वस्त्रको उठाकर चलता॥ 65॥

झरनेमें महाप्रभुका तीनों सन्ध्याओंमें स्नान और लकड़ी जलाकर शीतको दूर करना :—

निर्झरिते उष्णोदके स्नान तिनबार।
दुइसन्ध्या अग्नितापे काष्ठेर अपार॥ 66॥

अनुवाद—महाप्रभु झरनेके गर्म पानीमें तीन बार स्नान करते। प्रातः और सायंकाल—इन दो सन्ध्याओंमें बहुत सी लकड़ी जलाकर अग्निका ताप लेते॥ 66॥

भट्टको महाप्रभुके द्वारा पहली वृन्दावनकी यात्राका वर्णन :—

निरन्तर प्रेमावेशे निर्जने गमन।
सुख अनुभवि' प्रभु कहेन वचन॥ 67॥

"शुन, भट्टाचार्य,—आमि गेलाङ बहु-देश।
वनपथे दुःखेर काँहा नाहि पाइ लेश॥ 68॥

कृष्ण—कृपालु, आमाय बहुत कृपा कैला।
वनपथे आनि' आमाय बड़ सुख दिला॥ 69॥

पूर्वे वृन्दावन याइते करिलाङ विचार।
माता, गङ्गा, भक्तगणे देखिब एकबार॥ 70॥

भक्तगण-सङ्गे अवश्य करिब मिलन।
भक्तगणे सङ्गे लञा याब 'वृन्दावन'॥ 71॥

एत भावि' गौड़देशे करिलुँ गमन।
माता, गङ्गा, भक्ते देखि' सुखी हैल मन॥ 72॥

भक्तगणे लञा तबे चलिलाङ रङ्गे।
लक्षकोटि लोक ताँहा हैल आमा-सङ्गे॥ 73॥

सनातन-मुखे कृष्ण आमा शिखाइला।
ताहा विघ्न करि' वनपथे लञा आइला॥ 74॥

श्रीकृष्णकृपाकी महिमासूचक उक्ति :—

कृपार समुद्र, दीन-हीने दयामय।
कृष्णकृपा बिना कोन 'सुख' नाहि हय॥"75॥

अनुवाद—निरन्तर प्रेममें आविष्ट निर्जन वनमें जाते समय बहुत सुखका अनुभव करके महाप्रभुने बलभद्र भट्टाचार्यसे कहा,—"हे भट्टाचार्य, सुनो! मैं वनके मार्गसे अनेक स्थानोंपर गया, किन्तु मैंने कहींपर दुःखका लेशमात्र भी नहीं पाया। श्रीकृष्ण बहुत कृपालु हैं, उन्होंने मुझपर बहुत कृपा की है। वे कृपा करके मुझे वनके मार्गमें लाये हैं और मुझे बहुत सुख प्रदान किया है। मैंने पहले भी वृन्दावन जानेका विचार किया था। मैंने सोचा था कि माता शची, गङ्गा तथा भक्तोंके एकबार दर्शन करूँगा। भक्तोंके साथ अवश्य ही भेंट करूँगा और भक्तोंको साथ लेकर 'वृन्दावन' जाऊँगा। ऐसा सोचकर मैं गौड़देश गया था, शचीमाता, भगवती गङ्गा तथा भक्तोंको देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ था। मैं आनन्दपूर्वक भक्तोंको साथ लेकर वृन्दावनके लिये चल पड़ा था। लाखों-करोड़ों लोग मेरे साथ चलने लगे। सनातनके मुखसे श्रीकृष्णने मुझे शिक्षा प्रदान की और उस यात्रामें विघ्न उत्पन्न करके अब वनके मार्गसे वृन्दावनकी ओर ले जा रहे हैं। कृपाके सागर, दीन-हीनके प्रति दयामय श्रीकृष्णकी कृपाके बिना किसी प्रकारके 'सुख'की प्राप्ति नहीं हो सकती॥"67-75॥

भट्टकी सेवासे महाप्रभुके द्वारा कृतज्ञता-ज्ञापन :—

भट्टाचार्ये आलिङ्गिया ताँहारे कहिल।
"तोमार प्रसादे आमि एत सुख पाइल॥"76॥

अनुवाद—महाप्रभुने बलभद्र भट्टाचार्यका आलिङ्गन करके कहा,—"तुम्हारी कृपासे मुझे इतने सुखकी प्राप्ति हुई है॥"76॥

भट्टकी दैन्य-उक्ति और स्तव :—

तेँहो कहेन,—"तुमि 'कृष्ण', तुमि 'दयामय'।
अधम जीव मुञि, मोरे हइला सदय॥ 77॥

मुञि छार, मोरे तुमि सङ्गे लञा आइला।
कृपा करि' मोर हाते 'प्रभु' भिक्षा कैला॥ 78॥

अधम-काकेरे कैला गरुड़-समान।
'स्वतन्त्र ईश्वर' तुमि—स्वयं भगवान्॥"79॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्यने कहा,—"आप साक्षात् 'श्रीकृष्ण' हैं, इसलिये आप 'दयामय' हैं। मैं तो एक अधम जीव हूँ, किन्तु आपने मेरे प्रति दया की है। मैं बहुत पतित व्यक्ति हूँ, तथापि आप मुझे अपने साथ ले आये हैं। हे प्रभो! बहुत कृपा करके आपने मेरे हाथसे बने भोजनको स्वीकार किया है। अधम कौवेको

आपने गरुड़के समान बना दिया है। आप 'स्वतन्त्र ईश्वर' तथा स्वयं भगवान् हैं॥"77-79॥

श्रीमद्भागवत (1/1/1)की भावार्थ-दीपिकामें :—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द-माधवम्॥80॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥80॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनकी कृपा गूँगेको भी वाचाल और लँगड़ेको भी पर्वत पार करा सकती है, उन 'परमानन्द-स्वरूप' माधवकी मैं वन्दना करता हूँ॥80॥

अनुभाष्य—

यत् (यस्य) कृपा (अनुकम्पा) मूकं (वाक्शक्तिहीनमपि) वाचालं (वाक्पटुं कृष्णकीर्त्तनरतं) करोति, पङ्गुं (चलच्छक्तिहीनमपि) गिरिं (पर्वतं) लङ्घयते (कृष्णभजनाय असाध्यमपि साधयतीत्यर्थः), परमानन्द-माधवं (श्रीविष्णुस्वामिनोऽन्वयं श्रीपरमानन्दस्वामिनं स्वेष्टदेवं श्रीभगवन्तम्) अहं वन्दे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥80॥

भट्टका सेवाके द्वारा महाप्रभुको प्रसन्न करना :—

एइमत बलभद्र करेन स्तवन।
प्रेमसेवा करि' तुष्ट कैल प्रभुर मन॥81॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीबलभद्र भट्टाचार्यने महाप्रभुका स्तव किया और प्रेमसेवा करके उनके मनको सन्तुष्ट कर दिया॥81॥

काशीमें आकर महाप्रभुका मणिकर्णिका-घाटपर स्नान :—

एइमत नाना-सुखे प्रभु आइला 'काशी'।
मध्याह्न-स्नान कैल मणिकर्णिकाय आसि'॥82॥

अनुवाद—इस प्रकार अति सुखपूर्वक महाप्रभु 'काशी'में आ पहुँचे। उन्होंने मणिकर्णिका घाटपर गङ्गामें दोपहरका स्नान किया॥82॥

अनुभाष्य—*'काशी'*—इसका अन्य नाम 'वाराणसी' अथवा 'अविमुक्त' है। यह अति प्राचीन पुरी है—

"असिश्च वरुणा यत्र क्षेत्ररक्षाकृतौ कृते।
वाराणसीति विख्याता तदारभ्य महामुने।
असेश्च वरुणायाश्च सङ्गमं प्राप्य काशिका॥"

[अर्थात् "हे महामुने, सत्ययुगमें वरुणा और असि नामक दो नदियोंने जिस समय इस क्षेत्रकी रक्षाकी थी, काशिका उस समयसे आरम्भ करके वरुणा और असिके सङ्गमको प्राप्त करके 'वाराणसी', इस नामसे विख्यात हुई है।"]

'मणिकर्णिका'—विष्णुके कर्णसे, किसी अन्य मतानुसार, शिवके कर्णसे मणिके इस घाटपर गिरनेके कारण इसका नाम—'मणिकर्णिका' है। किसी औरके मतानुसार,—भवरोगके वैद्य विश्वनाथ काशीवासी मुमुर्षु (मरणोन्मुख) लोगोंके कानमें तारक-ब्रह्म 'राम'-नाम देकर उसका त्राण (उद्धार) करते हैं, इसलिये इस तीर्थका नाम 'मणिकर्णिका' है।

"नास्ति गङ्गासमं तीर्थं वाराणस्यां विशेषतः।
तत्रापि मणिकर्णाख्यं तीर्थं विश्वेश्वरप्रियम्॥"

[अर्थात् "यद्यपि गङ्गाके समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है, उसमें भी वाराणसीका विशेष स्थान है, तथापि मणिकर्णिका नामक तीर्थ विश्वनाथका अतिप्रिय है।"]

काशीखण्डमें—

"संसारिचिन्तामणिरत्र यस्मात् तं तारकं सज्जनकर्णिकायाम्।
शिवोऽभिधत्ते सहसान्तःकाले तद्गीयतेऽसौ मणिकर्णिकेति॥
मुक्तिलक्ष्मीमहापीठमणिस्तच्चरणाब्जयोः।
कर्णिकेयं तत प्राहुर्या जना मणिकर्णिकाम्॥"

[अर्थात् "क्योंकि इस स्थानपर संसारी लोगोंके चिन्तामणि-स्वरूप श्रीशिव मृत्युके समय सहसा सज्जनोंके कानोंमें उस तारकब्रह्म-नामका कीर्तन करते हैं, इसलिये इस स्थानने 'मणिकर्णिका' यह नाम धारण किया है। और भी मुक्तिरूपा लक्ष्मी इस महापीठकी मणिस्वरूपा हैं। उनके चरणकमलकी यह कर्णिका होनेके कारण मनुष्य इसे मणिकर्णिका कहते हैं।"]॥82॥

उसी समय तपन मिश्रका भी स्नान और
महाप्रभुके दर्शनसे पहले उनको विस्मय :—

सेइकाले तपनमिश्र करे गङ्गास्नान।
प्रभु देखि' हैल ताँर विस्मय किछु ज्ञान॥ 83॥

'पूर्वे शुनियाछि प्रभु करयाछेन संन्यास'।
निश्चय करिया, हैल हृदये उल्लास॥ 84॥

बादमें प्रसन्नताके आँसू :—

प्रभुर चरण धरि' करेन रोदन।
प्रभु तारे उठाञा कैल आलिङ्गन॥ 85॥

अनुवाद—उसी समय श्रीतपन मिश्र गङ्गास्नान कर रहे थे और महाप्रभुको वहाँ देखकर वे विस्मित हो गये। वे विचार करने लगे—'मैंने पहले सुना है कि महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया है।' यह बात स्मरण करके उनके हृदयमें बहुत उल्लास हुआ। तब श्रीतपन मिश्र महाप्रभुके चरण पकड़कर रोने लगे। महाप्रभुने उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया॥ 83-85॥

महाप्रभुको लेकर मिश्रका विश्वेश्वर
और बिन्दुमाधवके दर्शन :—

प्रभु लञा गेला विश्वेश्वर-दरशने।
तबे आसि' देखे बिन्दुमाधव-चरणे॥ 86॥

अनुवाद—श्रीतपन मिश्र महाप्रभुको विश्वेश्वर शिवके दर्शन करानेके लिये ले गये। उसके बाद महाप्रभुने श्रीबिन्दुमाधवके चरणकमलोंके दर्शन किये॥ 86॥

अनुभाष्य—*'बिन्दु-माधव'*—प्राचीन विष्णुमन्दिर है; आजकल 'पञ्चगङ्गा'के ऊपर अवस्थित 'वेणीमाधव'के नामसे प्रसिद्ध मन्दिर है। 'पञ्चनदी' अर्थात् धूतपापा, किरणा, सरस्वती, गङ्गा और यमुना—इन पाँच नदियोंमेंसे केवलमात्र गङ्गा ही प्रवाहित होती दिखायी देती हैं। कहा जाता है कि श्रीमहाप्रभुने जिस प्राचीन बिन्दु-माधव-मन्दिरके दर्शन किये उसको 'हिन्दू-विद्वेषी' मुगल-सम्राट औरङ्गजेबने विध्वंस करके वहाँ एक बहुत बड़ी मस्जिद स्थापित की थी। वर्तमान मन्दिरके पासमें ही एक बहुत बड़ी प्राचीन मस्जिद है।

श्रीमन्दिरमें चतुर्भुज श्रीनारायण और लक्ष्मीदेवीके विग्रह तथा उनके सामने श्रीगरुड़के एवं बगलमें श्रीराम-सीता और लक्ष्मणादि तथा श्रीहनुमानके श्रीविग्रह विराजमान हैं। [टीका लिखनेके समय] महाराष्ट्र अन्तर्गत सातारा-जिलेमें आउन्धेर वैष्णव-सम्प्रदायके अनुगत महाराष्ट्र
पन्थ महाराज ही श्रीविग्रहसेवाके और मन्दिरके समस्त व्ययको चला रहे थे। ऐसा कहा जाता है कि लगभग दो सौ वर्षोंसे इस राजवंशके हाथोंमें श्रीवेणीमाधवकी सेवाका भार सौंपा हुआ था; इस वंशके प्रथम सेवाइत 'प्रतिनिधि'का नाम—महाराज जगजीवन राओ साहब था॥ 86॥

महाप्रभुको अपने घरमें लाना और
महाप्रभुको पाकर मिश्रका आनन्द :—

घरे लञा आइला प्रभुके आनन्दित हञा।
सेवा करि' नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा॥ 87॥

अनुवाद—श्रीतपन मिश्र बड़े आनन्दसे महाप्रभुको अपने घरपर ले आये और उनकी सेवा की। वे इतने प्रसन्न थे कि वे वस्त्रको लहराकर नृत्य करने लगे॥ 87॥

अनुभाष्य—*'(श्रीतपनमिश्रके) घरमें'*—काशीमें रहते समय श्रीमन्महाप्रभु बहुत ही निकटमें 'पञ्चनदी-घाट'पर स्नान आदि करके सबसे पहले श्रीबिन्दुमाधवजीके दर्शन करते, उसके बाद श्रीतपन-मिश्रके घरमें भिक्षा ग्रहण करते। ऐसा सुना जाता है कि एक लोक-कहावतके अनुसार इस मन्दिरसे कुछ दूरीपर जिस वटवृक्षके नीचे श्रीमन्महाप्रभु विश्राम करते थे, उन्हींके नामके अनुसार वह बादमें "चैतन्यवट" एवं क्रमशः "यतनवट"के नामसे आज भी प्रसिद्ध है। वर्तमान समयमें वहाँ एक गलीके अन्दर श्रीवल्लभाचार्यकी ही एक समाधिका

स्थान देखा जाता है; किन्तु श्रीगौरसुन्दरका कोई स्मृतिचिह्न दिखायी नहीं देता। श्रीवल्लभाचार्यके अनुगत भक्त भी उन्हें 'महाप्रभु'के नामसे पुकारते हैं। यह सम्भव है कि श्रीमन्महाप्रभु 'यतनवट'में विश्राम करते थे, किन्तु श्रीचन्द्रशेखरका भवन, श्रीतपनमिश्रका घर, मायावादि- मण्डलीके अधिपति प्रकाशानन्द-सरस्वतीके स्थानादि चिह्न तक अब लुप्त हो गये हैं। तथापि कुछ दूरीपर कोलकत्ता-निवासी परलोकगत शशीभूषण नियोगी महाशयके भवनमें श्रीगौरनित्यानन्दके श्रीअर्च्चाविग्रह प्रतिष्ठित हैं। उनकी सास माता और ससुर श्रीनारायणचन्द्र घोष महाशयकी देखरेखमें वर्तमान समयमें सेवा चल रही है॥ 87॥

सपरिवार महाप्रभुका चरणामृत-पान
और भट्टको सम्मान :—

प्रभुर चरणोदक सवंशे कैल पान।
भट्टाचार्येर पूजा कैल करिया सम्मान॥ 88॥

अनुवाद—श्रीतपन मिश्रने महाप्रभुके चरणोंको धोया और अपने परिवारसहित उस चरणामृतका पान किया। उन्होंने बलभद्र भट्टाचार्यकी भी सम्मानपूर्वक पूजा की॥ 88॥

भट्टके द्वारा महाप्रभुको भिक्षा दान :—

प्रभुरे निमन्त्रण करि' घरे भिक्षा दिल।
बलभद्र-भट्टाचार्ये पाक कराइल॥ 89॥

अनुवाद—श्रीतपन मिश्रने महाप्रभुको अपने घरमें निमन्त्रित करके भोजन कराया। उन्होंने श्रीबलभद्र भट्टाचार्यके द्वारा भोजन बनवाया॥ 89॥

आहारके बाद महाप्रभुका शयन, श्रीरघुनाथके द्वारा
महाप्रभुका चरण-सम्वाहन :—

भिक्षा करि' महाप्रभु करिला शयन।
मिश्रपुत्र रघु करे पादसम्वाहन॥ 90॥

अनुवाद—प्रसाद पानेके बाद महाप्रभु विश्राम करने लगे। तब श्रीतपन मिश्रके पुत्र श्रीरघुनाथ आकर महाप्रभुके चरणोंको दबाने लगे॥ 90॥

अमृतप्रवाह भाष्य—तपन मिश्रके पुत्र रघुनाथ—जो बादमें 'भट्ट गोस्वामी'के नामसे विख्यात हुए थे—वे महाप्रभुके चरणोंको दबाने लगे॥ 90॥

परिवारसहित महाप्रभुके उच्छिष्टको ग्रहण करना;
श्रीचन्द्रशेखरका आगमन :—

प्रभुर 'शेषान्न' मिश्र सवंशे खाइल।
'प्रभु आइला' शुनि' चन्द्रशेखर आइल॥ 91॥

अनुवाद—महाप्रभुके अवशिष्ट प्रसादको श्रीतपनमिश्रके सारे परिवारने खाया। 'महाप्रभु आये हैं'—ऐसा सुनकर श्रीचन्द्रशेखर भी उनके दर्शनके लिये आये॥ 91॥

श्रीचन्द्रशेखरका परिचय :—

मिश्रेर सखा तेँहो प्रभुर पूर्व दास।
वैद्यजाति, लिखनवृत्ति, वाराणसी-वास॥ 92॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखर श्रीतपन मिश्रके मित्र और महाप्रभुके पुराने दास थे। वे जातिसे वैद्य थे और लेखन-कार्य उनका व्यवसाय था। उस समय वे वाराणसीमें ही रहते थे॥ 92॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'लिखनवृत्ति'*—पुस्तककी नकल लिखकर उससे धन कमाना॥ 92॥

श्रीचन्द्रशेखरके द्वारा महाप्रभुका दर्शन और उन्हें प्रणाम,
महाप्रभुके द्वारा उनका आलिङ्गन :—

आसि' प्रभु-पदे पड़ि' करेन रोदन।
प्रभु ताँरे कृपाय उठि' कैल आलिङ्गन॥ 93॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखर आकर महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और रोने लगे। महाप्रभुने कृपा करके उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया॥ 93॥

श्रीचन्द्रशेखरका महाप्रभुसे अपने दुःखका निवेदन :—

चन्द्रशेखर कहे,—"प्रभु, बड़ कृपा कैला।
आपने आसिया भृत्ये दरशन दिला॥ 94॥

हरिभजन-कथा-विहीन काशी—शुष्क-मायावादियोंकी आवास-स्थली :—

आपन-'प्रारब्धे' वसि' वाराणसी-स्थाने।
'माया', 'ब्रह्म' शब्द बिना नाहि शुनि काणे॥ 95॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखरने कहा,—"हे प्रभो! आपने बहुत कृपा की है जो आपने स्वयं आकर अपने दासको दर्शन दिया है। मैं अपने प्रारब्धके कारण ही वाराणसीमें वास करता हूँ। यहाँ 'माया' तथा 'ब्रह्म' शब्दके अतिरिक्त अन्य कोई शब्द कानोंमें नहीं पड़ता॥ 94-95॥

अनुभाष्य—*'प्रारब्धे'*—काशी 'शैव' अथवा पञ्चोपासकोंका सर्वप्रधान तीर्थ होनेपर भी वहाँ हरिभजनकी कोई बात नहीं होनेके कारण वह श्रीगौरभक्तोंके रहनेके अत्यन्त अयोग्य है। इसलिये श्रीचन्द्रशेखरने कहा कि वे अपनी प्राचीन दुष्कृतिके फलस्वरूप ही बड़े दुःखके साथ वहाँ वास कर रहे हैं। यहाँपर निन्दाके अर्थमें ही 'प्रारब्ध' शब्दका प्रयोग हुआ है।

(भःरःसिः पूर्व-विभाग प्रथम लहरी)—

"दुर्ज्जात्यारम्भकं पापं यत् स्यात् प्रारब्धमेव तत्"।

[अर्थात् "अपने पूर्वकृत पापोंके अनुसार ही जीवको निम्नजातिमें जन्म मिलता है।"]

शुद्ध भगवद्भक्त यद्यपि स्वयंको प्रारब्ध अथवा 'प्राचीन कर्मोंके फल-भोक्ता' कहते हैं, तथापि यमके दण्डके भागी अन्य मर्त्त्यजीवोंकी भाँति वे कभी भी शुभ-अशुभ कर्मोंके फलके भोगी नहीं होते। नित्यसिद्ध अथवा साधनसिद्धकी तो बात ही नहीं, साधकावस्थामें भी जीवोंकी साधनभक्ति—'क्लेशघ्नी' ('पाप', 'पापबीज', और अविद्या—इन तीन प्रकारके क्लेशोंका नाश करनेवाली) होती है। जैसे पद्मपुराणमें कहा है—

"अप्रारब्ध-फलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम्।
क्रमेणैव प्रलीयेत विष्णुभक्तिरतात्मनाम्॥"

[अर्थात् "जिन लोगोंकी आत्मा और उनका शरीर, मन, प्राणादि सभी श्रीकृष्णकी भक्तिमें लगे हुए हैं, उनके अप्रारब्ध पाप, कूट पाप, बीजरूप पाप और फलोन्मुख पाप (जिनका फल भुगतना आरम्भ हो गया है), ये सब भक्तिसे क्रमशः विनष्ट हो जाते हैं।"]

इसके पूर्ववर्ती दो श्लोकोंकी "दुर्गम-सङ्गमनी" टीका भी इस प्रसङ्गमें आलोच्य है॥ 95॥

मिश्रको सम्मान देना :—

षड्दर्शन-व्याख्या बिना कथा नाहि एथा।
मिश्र कृपा करि' मोरे शुनान कृष्णकथा॥ 96॥

अनुवाद—षड्दर्शनकी व्याख्याके अतिरिक्त यहाँपर अन्य कोई कथा नहीं होती। श्रीतपन मिश्र कृपा करके मुझे श्रीकृष्ण-कथाका श्रवण कराते हैं॥ 96॥

अनुभाष्य—*'षड्दर्शन'*— 1) कणादऋषि-कृत 'वैशेषिक'-दर्शन, 2) गौतमऋषि-कृत 'न्याय'-दर्शन, 3) पतञ्जलिऋषि कृत 'योग'-दर्शन, 4) कपिलऋषि-कृत 'सांख्य'-दर्शन, 5) जैमिनीऋषि-कृत 'पूर्व' (कर्म)-मीमांसा, 6) महर्षि वेदव्यास-कृत 'उत्तर (ब्रह्म)-मीमांसा' या 'वेदान्त'॥ 96॥

महाप्रभुके प्रति कातर-उक्ति :—

निरन्तर दुँहे चिन्ति तोमार चरण।
'सर्वज्ञ ईश्वर' तुमि दिला दरशन॥ 97॥

शुनि'—'महाप्रभु' याबेन श्रीवृन्दावने।
दिन कत रहि' तार' भृत्य दुइजने॥"98॥

अनुवाद—श्रीतपन मिश्र और मैं निरन्तर आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते हैं। यद्यपि आप 'सर्वज्ञ ईश्वर' हैं, आपने हमें अपना दर्शन प्रदान किया है। हे महाप्रभु! मैंने सुना है कि आप श्रीवृन्दावन जायेंगे। कुछ दिन यहाँपर रहकर अपने इन दो दासोंका भी उद्धार कीजिये॥ "97-98॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'तार'*—उद्धार करो। *'भृत्य दुइजने'*—श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपनमिश्र, इन दो लोगोंका॥ 98॥

अनुभाष्य—महाप्रभुके अत्यन्त निकट रहनेपर भी महाप्रभुके प्रति अत्यन्त सम्भ्रम-उक्ति॥ 98॥

मिश्रका महाप्रभुसे निवेदन :—

मिश्र कहे,—"प्रभु, यावत् काशीते रहिबा।
मोर निमन्त्रण बिना अन्य ना मानिबा॥"99॥

अनुवाद—श्रीतपन मिश्रने कहा,—"हे प्रभो! जब तक आप काशीमें रहेंगे, कृपया तब तक मेरे अतिरिक्त आप किसीके निमन्त्रणको स्वीकार मत कीजियेगा॥"99॥

भक्तके वशमें भगवान् :—

एइमत महाप्रभु दुइ भृत्येर वशे।
इच्छा नाहि, तबु तथा रहिला दिन-दशे॥ 100॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभुकी ऐसी कोई इच्छा नहीं थी, तथापि दोनों दासोंके वशीभूत होनेके कारण वे दस दिनों तक वहाँ रहे॥ 100॥

अनुभाष्य—*'दिन-दशे'*—काशीमें श्रीतपन मिश्रके घरमें महाप्रभुकी इस यात्रामें (मध्यलीला 1/239 संख्यामें) चार दिनों तक रहनेकी बातका उल्लेख है॥ 100॥

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र
प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हय चमत्कारे॥ 101॥

अनुवाद—वाराणसीमें एक महाराष्ट्र दर्शनके लिये आता था। महाप्रभुके रूप और उनके श्रीकृष्णप्रेमको देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाता था॥ 101॥

महाप्रभुको भिक्षा देनेमें मायावादी अवैष्णव-विप्रकी अयोग्यता :—

विप्र सब निमन्त्रय, प्रभु नाहि माने।
प्रभु कहे,—"आजि मोर हञाछे निमन्त्रणे॥"102॥

अनुवाद—बहुतसे ब्राह्मण महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण देते, किन्तु महाप्रभु किसीके भी निमन्त्रणको स्वीकार नहीं करते। महाप्रभु कहते,—"आज पहलेसे ही मुझे कहींसे निमन्त्रण हो चुका है॥"102॥

आचार्यकी लीला करनेवाले महाप्रभुके द्वारा मायावादियोंके सङ्गका त्याग :—

एइमत प्रतिदिन करेन वञ्चन।
संन्यासीर सङ्ग-भये ना मानेन निमन्त्रण॥ 103॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु प्रतिदिन मायावादी संन्यासियोंके सङ्गके भयसे उन ब्राह्मणोंके निमन्त्रणको स्वीकार नहीं करते॥ 103॥

प्रकाशानन्दकी बहुतसे शिष्योंके साथ मायावादकी व्याख्या :—

प्रकाशानन्द श्रीपाद सभाते बसिया।
'वेदान्त' पड़ान बहु शिष्यगण लञा॥ 104॥

अनुवाद—एक प्रमुख मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वती बहुतसे शिष्योंकी सभा करके उनको 'वेदान्त' पढ़ाते थे॥ 104॥

अनुभाष्य—*'प्रकाशानन्द'*—श्रीमहाप्रभुके समकालीन काशीवासी एकदण्डी शाङ्करसम्प्रदायके एक विशेष संन्यासी थे। चैः भाः मध्यखण्ड तीसरे अध्यायमें—

"'हस्त', 'पद', 'मुख' मोर नाहिक 'लोचन'।
वेद मोरे एइमत करे विड़म्बन॥
काशीते पड़ाय बेटा 'प्रकाशानन्द'।
सेइ बेटा करे मोर अङ्ग खण्ड खण्ड॥
बाखानये वेद, मोर विग्रह ना माने।
सर्वाङ्गे हइल कुष्ठ, तबु नाहि जाने॥
सर्वयज्ञमय मोर ये अङ्ग—पवित्र।
'अज', 'भव' आदि गाय याँहार चरित्र॥
'पुण्य' पवित्रता पाय ये-अङ्ग-परशे।
ताहा 'मिथ्या' बले बेटा केमन साहसे॥"

[अर्थात् "महाप्रभु कह रहे हैं—बेटा प्रकाशानन्द काशीमें मेरे विषयमें ऐसा पढ़ाता है कि मेरे हाथ, पैर, मुख, नेत्रादि कुछ नहीं हैं। इस प्रकार मेरे नित्य रूपको अस्वीकारकर मुझे निराकार कहकर वह लोगोंके साथ

छल करता है। वह बेटा वेदोंकी व्याख्या करता है, परन्तु मेरे नित्य विग्रहको नहीं मानता। इस प्रकार वह मानो मेरे अङ्ग खण्ड-खण्ड करके मुझे निराकार कहता है। इस अपराधके कारण उसके सभी अङ्गोंमें कोढ़का रोग हो गया है, तब भी इस सत्यको नहीं समझता। मेरे अङ्ग परम पवित्र और यज्ञमय हैं। ब्रह्मा, शङ्करादि उनकी महिमाका गान करते हैं। जिनके स्पर्श-मात्रसे सभी पुण्यवान् और पवित्र हो जाते हैं, उन श्रीअङ्गोंको मिथ्या कहनेका बेटा किस प्रकार साहस करता है?"]

चैः भाः मध्यखण्ड बीसवें अध्यायमें—

"संन्यासी 'प्रकाशानन्द' बसये काशीते।
मोरे खण्ड खण्ड बेटा करे भालमते॥
पड़ाय 'वेदान्त', मोर 'विग्रह' ना माने।
कुष्ठ कराइलुँ अङ्गे, तबु नाहि जाने॥
'सत्य' मोर लीला-कर्म, सत्य मोर 'स्थान'।
इहा 'मिथ्या' बले, मोरे करे खान्-खान्॥"

[अर्थात् "संन्यासी 'प्रकाशानन्द' काशीमें रहकर अच्छे प्रकारसे मेरे खण्ड-खण्ड करता है। वह वेदान्त पढ़ाता है, किन्तु मेरे नित्य विग्रहको नहीं मानता। मैंने उसके अङ्गोंमें कोढ़का रोग कराया, तब भी यह बात वही नहीं समझता। मेरी लीलाएँ और मेरा धाम, सब सत्य हैं, किन्तु इन्हें वह मिथ्या कहकर मेरे खण्ड-खण्ड करता है।"]

श्रील गोपालभट्ट गोस्वामीके श्रीगुरुदेव और पूर्वाश्रमके चाचा श्रीरङ्गक्षेत्रवासी त्रिदण्डिपाद श्रीरामानुजीयस्वामी श्रीश्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती एवं ये (प्रकाशानन्द) कभी भी 'एक' व्यक्ति नहीं है॥ 104॥

प्रकाशानन्दको एक ब्राह्मणके
द्वारा महाप्रभुके चरित्रका वर्णन :—

एक विप्र देखि' आइला प्रभुर व्यवहार।
प्रकाशानन्द-आगे कहे चरित्र ताँहार॥ 105॥

"एक संन्यासी आइला जगन्नाथ हैते।
ताँहार महिमा-प्रताप ना पारि वर्णिते॥ 106॥

ईश्वरके लक्षण-समूह महाप्रभुमें विराजमान :—

सकल देखिये ताँते अद्भुत-कथन।
प्रकाण्ड-शरीर, शुद्धकाञ्चन-वरण॥ 107॥

आजानुलम्बित भुज, कमल-नयन।
यत किछु ईश्वरेर सर्व सल्लक्षण॥ 108॥

अनुवाद—एक ब्राह्मण महाप्रभुके अद्भुत व्यवहारको देखकर आया और प्रकाशानन्दके सामने महाप्रभुकी महिमा कहने लगा,—"एक संन्यासी जगन्नाथ पुरीसे आये हैं, मैं उनकी महिमा और प्रतापका वर्णन नहीं कर सकता। उनकी सभी बातें अद्भुत हैं। उनका दिव्य शरीर प्रकाण्ड है, शुद्ध स्वर्णके जैसा उनका वर्ण है, उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी हैं और उनके नयन कमलके समान हैं। उनमें ईश्वरके समस्त सद्-लक्षण हैं॥ 105-108॥

भागवतमें कथित ईश्वर अथवा महाभागवतके समस्त
लक्षण महाप्रभुमें विद्यमान :—

ताहा देखि' ज्ञान हय—'एइ नारायण'।
येइ ताँरे देखे, करे कृष्णसङ्कीर्त्तन॥ 109॥

'महाभागवत'-लक्षण शुनि भागवते।
से-सब लक्षण प्रकट देखिये ताँहाते॥ 110॥

'निरन्तर कृष्णनाम' जिह्वा ताँर गाय।
दुइ-नेत्रे अश्रु बहे गङ्गाधारा-प्राय॥ 111॥

क्षणे नाचे, हासे, गाय, करये क्रन्दन।
क्षणे हुहुङ्कार करे,—सिंहेर गर्जन॥ 112॥

अलौकिक-नामरूपगुणलीलायुक्त श्रीकृष्णचैतन्य :—

जगत्मङ्गल ताँर 'कृष्णचैतन्य' नाम।
नाम, रूप, गुण ताँर, सब—अनुपम॥ 113॥

श्रद्धावान्को ईश्वरके दर्शन होनेपर उनकी कृपासे ही
उनकी चेष्टाओंका अनुभव, केवल तर्कपन्थासे श्रवण
निष्फलमात्र :—

देखिले से जानि ताँर 'ईश्वरेर रीति'।
अलौकिक कथा शुनि' के करे प्रतीति?"॥ 114॥

अनुवाद—उन्हें देखकर ऐसा लगता है—मानो 'ये श्रीनारायण' ही हैं। जो कोई भी उनके दर्शन करता है, वह श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन करने लगता है। 'भागवत'में मैंने महाभागवतके जिन लक्षणोंके विषयमें सुना है, उन सब लक्षणोंको मैं उनमें प्रकाशित देखता हूँ। उन संन्यासीकी जिह्वा 'निरन्तर श्रीकृष्णनाम'का गान करती है और उनके दोनों नेत्रोंसे गङ्गाकी धाराकी भाँति अश्रु प्रवाहित होते हैं। वे संन्यासी कभी तो नृत्य करते हैं, हँसते हैं, गान करते हैं, क्रन्दन करते हैं और कभी सिंहकी गर्जनकी भाँति हुङ्कार भरते हैं। उनका जगत्का मङ्गल करनेवाला 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम है। उनका नाम, रूप, गुण आदि सब कुछ अनुपम है। उनकी अलौकिक कथा केवल सुननेसे ही किसको विश्वास होगा? देखनेपर ही कोई उनके ईश्वर होनेमें विश्वास करेगा॥"109-114॥

महाप्रभुके चरित्रको सुनकर तर्कपन्थी प्रकाशानन्दके द्वारा महाप्रभुके प्रति व्यङ्ग अथवा अवज्ञा :—

शुनिया प्रकाशानन्द बहुत हासिला।
विप्रे उपहास करि' कहिते लागिला॥ 115॥

अपने मायावाद रूपी हलाहलको उगलना :—

"शुनियाछि गौड़देशेर संन्यासी—'भावुक'।
केशव-भारती-शिष्य, लोकप्रतारक॥ 116॥

'चैतन्य'-नाम ताँर, भावुकगण लञा।
देशे-देशे, ग्रामे-ग्रामे बुले नाचाञा॥ 117॥

येइ ताँरे देखे, सेइ ईश्वर करि' कहे।
ऐछे मोहन-विद्या—ये देखे, से मोहे॥ 118॥

सार्वभौम भट्टाचार्य—पण्डित प्रबल।
शुनि' चैतन्येर सङ्गे हइल पागल॥ 119॥

'संन्यासी'—नाम-मात्र, महा-इन्द्रजाली!
'काशीपुरे' ना बिकावे ताँर भावकालि॥ 120॥

'वेदान्त' श्रवण कर, ना याइह ताँर पाश।
उच्छृङ्खल-लोक-सङ्गे दुइलोक-नाश॥"121॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणकी बातोंको सुनकर प्रकाशानन्द बहुत हँसे। उस ब्राह्मणका उपहास करते हुए वे कहने लगे,—"मैंने उसके विषयमें सुना है। वह गौड़देशका संन्यासी है और 'भावुक' है। सुना है कि वह केशव भारतीका शिष्य है। परन्तु वह एक बड़ा ढोंगी है। उसका नाम 'चैतन्य' है। वह भावुक व्यक्तियोंको अपने साथ लेकर देश-देश, गाँव-गाँवमें सबको नचाते हुआ घूमता रहता है। जो भी उसे देखता है, वही उसे ईश्वर कहता है। उसमें ऐसी मोहन-विद्या है कि जो भी उसे देखता है, वह मोहित हो जाता है। मैंने सुना है कि इतने बड़े विद्वान पण्डित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य भी चैतन्यके सङ्गसे पागल हो गये हैं। वह नाममात्रका संन्यासी है, वास्तवमें तो वह महा-इन्द्रजाली (जादूगर) है। इस 'काशीपुरी'में उसकी भावुकता नहीं बिकेगी। तुम वेदान्तका श्रवण करो और उसके पास मत जाना। उच्छृङ्खल लोगोंका सङ्ग करनेसे यह लोक और परलोक—दोनों नष्ट हो जाते हैं॥"115-121॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भावकालि'*—भावुकका स्वभाव। जिन सब व्यक्तियोंने शास्त्रविधिकी बेड़ियोंको तोड़ दिया है, उनके साथ रहनेसे इस लोक और परलोक, दोनों लोकोंका ही नाश होता है॥120-121॥

अनुभाष्य—*'भावुक'*—श्रीमन्महाप्रभुके परम चमत्कारमय अप्राकृत चिन्मय भावों और मनोधर्मके द्वारा कृत्रिम (दिखावटी) और थोड़े समय टिकनेवाले उच्छ्वास और उच्छृङ्खलतामय भावोंको 'एक' समझकर मायावादी प्रकाशानन्द यह कह रहे हैं। मायावादी शुद्धभक्तोंके अप्राकृत श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीलाओंके कीर्तन, नृत्य और गानको भी जागतिक इन्द्रियोंकी सन्तुष्टि करनेवाले नाचने-गाने-बजाने जैसा ही समझते हैं। वे इस कीर्तन-नृत्यादिको कामादि छः शत्रुओंकी दासताकी भाँति इन्द्रियोंकी चेष्टामात्र समझनेके कारण 'अपराधी' अथवा 'पाखण्डी' कहलाने योग्य हैं। वे नित्य स्वधर्म, श्रीकृष्णानुशीलनके श्रीकृष्ण-सम्बन्धी उपकरणके परित्यागके कारण "फल्गु-वैरागी" हैं॥116-121॥

महाप्रभुकी निन्दा सुननेपर ब्राह्मणके द्वारा 'श्रीकृष्ण' स्मरण करते हुए स्थानका परित्याग :—

एत शुनि' सेइ विप्र महादुःख पाइला।
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' तथा हैते उठि' गेला॥ 122॥

अनुवाद—प्रकाशानन्दके मुखसे महाप्रभुकी निन्दा सुनकर उस ब्राह्मणको बहुत दुःख हुआ। वह 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए तुरन्त वहाँसे उठकर चला गया॥ 122॥

महाप्रभुके दर्शनके फलसे शुद्धचित्त ब्राह्मणका महाप्रभुसे समस्त घटनाका वर्णन :—

प्रभुर दरशने शुद्ध हञाछे ताँर मन।
प्रभु-आगे दुःखी हञा कहे विवरण॥ 123॥

अनुवाद—महाप्रभुके दर्शनसे उस ब्राह्मणका मन शुद्ध हो गया था। उस ब्राह्मणने दुःखी होकर आकर महाप्रभुको सारा वृत्तान्त बतलाया॥ 123॥

महाप्रभुका मन्द-मन्द मुस्कराना :—

शुनि' महाप्रभु तबे ईषत् हासिला।
पुनरपि सेइ विप्र प्रभुरे पुछिला॥ 124॥

मायावादियोंकी प्रकृति-सम्बन्धित गौण-नाम उच्चारण करनेकी ही योग्यता, अप्राकृत वैकुण्ठ-नाम-उच्चारणमें अयोग्यता :—

"तार आगे यबे आमि तोमार नाम लइल।
सेह तोमार नाम जाने,—आपने कहिल॥ 125॥
तोमार 'दोष' करिते करे नामेर उच्चार।
'चैतन्य' 'चैतन्य' करि' कहे तिनबार॥ 126॥

चिद्-विलासमें अविश्वासके कारण मायावादियोंके मुखसे अवज्ञापूर्वक ही श्रीनामके उच्चारित होनेसे नामापराधके कारण वह श्रवण योग्य नहीं :—

तिनबारे 'कृष्णनाम' ना आइल तार मुखे।
'अवज्ञा'ते नाम लय, शुनि' पाइ दुःखे॥ 127॥

महाप्रभुसे इसके कारणकी जिज्ञासा :—

इहार कारण मोरे कह कृपा करि'।
तोमा देखि' मुख मोर बले 'कृष्ण' 'हरि'॥"128॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु मन्द-मन्द मुस्कुराये। उस ब्राह्मणने पुनः महाप्रभुसे पूछा,—"जब मैंने उसके सामने आपका नाम लिया, तब उसने स्वयं ही कहा कि वह आपका नाम जानता है। आपके दोषोंको बतलानेके लिये उसने आपका नाम लेते हुए केवल 'चैतन्य' तीन बार कहा। तीनों बार कृष्णनाम उसके मुखमें नहीं आया। उसने अवज्ञासे आपका नाम लिया, जिसे सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। आप कृपा करके मुझे इसका कारण बतलाइये। आपको देखते ही मेरे मुखसे तो 'कृष्ण' 'हरि' नाम निकलता है॥"124-128॥

अनुभाष्य—*'तार'*—प्रकाशानन्दका। *'दोष'*—निन्दा। 'ब्रह्म', 'चैतन्य', 'आत्मा', 'परमात्मा', 'जगदीश', 'ईश्वर', 'विराट', 'विभु', 'भूमा', 'विश्वरूप', 'व्यापक' आदि श्रीकृष्णके गौण नाम हैं। इन सब नामोंको ग्रहण करनेवाले श्रीकृष्णके औदार्य और माधुर्यके प्रति आकर्षित नहीं होते। इन नामोंमें श्रीकृष्णका कुछ ऐश्वर्य अवश्य ही प्रकाशित होता है, परन्तु इन नामोंमें मुख्य श्रीकृष्ण नामसे अभिन्न उनके चैतन्यरसविग्रहत्वकी स्फूर्ति नहीं है। इसलिये मायावादी लोग या प्रकृतिके उपासकगण तत्त्व-वस्तुकी चरम अवस्थाको निर्विशेष अथवा चिद्विलाससे रहित होनेकी धारणा करते हैं। तत्त्व-वस्तु श्रीकृष्ण अपने चिन्मय नाम-रूप-गुण-लीला और परिकरोंसे अभिन्न हैं, इस बातमें वे अविश्वास और संशयका पोषण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके मुख्य नाम ही एकमात्र 'साध्य' और 'साधन' हैं, ऐसा मानकर उनमें श्रद्धा नहीं करनेसे वे महापराधी हैं। अपने नित्य चरम-कल्याणकी कामना करनेवालेको उनके मुखसे किसी भी परमार्थकी बातको श्रवण नहीं करना चाहिये॥ 125-127॥

मायावादी—सेवा-विवादी अथवा अपराधी, इसलिये उनके मुखमें श्रीकृष्णनाम नहीं आता :—

प्रभु कहे,—"मायावादी कृष्णे अपराधी।
'ब्रह्म' 'आत्मा' 'चैतन्य' कहे निरवधि॥ 129॥

श्रीकृष्णनाम, श्रीकृष्णविग्रह और श्रीकृष्णस्वरूपका अद्वय-ज्ञान-सम्पन्न होना एवं जीवनाम, जीवमूर्ति और जीवके स्वरूपके अन्तरका वर्णन :—

अतएव तार मुखे ना आइसे कृष्णनाम।
'कृष्णनाम', 'कृष्ण स्वरूप'—दुइत' 'समान'॥ 130॥

'नाम', 'विग्रह', 'स्वरूप'—तिन एकरूप।
तिने 'भेद' नाहि,—तिन 'चिदानन्द-रूप'॥ 131॥

देह-देहीर, नाम-नामीर कृष्णे नाहि 'भेद'।
जीवेर धर्म—नाम-देह-स्वरूपे 'विभेद'॥ 132॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मायावादी लोग श्रीकृष्णके चरणोंमें अपराधी हैं, इसलिये वे केवल 'ब्रह्म', 'आत्मा', 'चैतन्य' आदि ही कहते हैं। इसी कारण श्रीकृष्णनाम उनके मुखमें नहीं आता। श्रीकृष्णनाम और श्रीकृष्ण-स्वरूप—दोनों एक समान हैं। श्रीकृष्णका नाम, श्रीकृष्णका विग्रह और श्रीकृष्णका स्वरूप तीनों एक ही हैं। तीनोंमें कोई भेद नहीं है, तीनों 'चिदानन्द-रूप' हैं। श्रीकृष्णके शरीर और उनमें अथवा उनके नाम और उनमें कोई भेद नहीं है। नाम, शरीर और स्वरूपमें परस्पर भेद तो बद्धजीवका होता है॥ 129-132॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—मायावादी जीवतत्त्वको 'अप्राकृत' न मानकर, मायासे ढके ब्रह्मखण्डको 'जीव' कहकर स्थिर करते हैं और ब्रह्मको 'निर्विशेष' जानकर (सच्चिदानन्द) भगवद्-विग्रहको भी 'मायामय-विग्रह' कहते हैं। इसीसे ही मायावादी श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीलाको 'अनित्य' जानकर महापराधी हुए हैं। वे श्रीकृष्णके 'मुख्यनाम'का परित्याग करके 'ब्रह्म', 'आत्मा', 'चैतन्य' आदि 'गौण-नामों'का उच्चारण करते हैं। यद्यपि कभी 'गोविन्द', 'माधव', 'कृष्ण'—ये सब 'मुख्यनाम' उनके मुखसे निकलें, तथापि उनके ज्ञानदोषसे (श्रीकृष्णनाममें अविश्वास होनेके कारण उन मुख्य नामोंको अन्यान्य प्राकृत अथवा जागतिक एक शब्द माननेके कारण उनके मुखसे) चिद्-विग्रह श्रीकृष्णका 'नाम' कभी भी (बाहर) नहीं निकलता। वास्तवमें श्रीकृष्णका नाम और श्रीकृष्णका स्वरूप—दोनों ही चिद्-वस्तु हैं, अर्थात् नाम, विग्रह और स्वरूप—तीनों ही चिदानन्दमय हैं। बद्धजीवोंकी देह—जीवरूपी 'देही'से 'पृथक्' है। इसी प्रकार उनके पिताके द्वारा दिया गया 'नाम' और उनकी 'आत्मा' अथवा 'स्वरूप'से 'पृथक् और जड़ाश्रित' है। किन्तु श्रीकृष्णमें वैसा नहीं है, अर्थात् श्रीकृष्णकी जो 'देह' है, वही 'देही' है, जो नाम है, वही नामी है। श्रीकृष्णमें माया अथवा मायासे उत्पन्न जड़सम्बन्ध नहीं होनेके कारण उनके 'देह-देही' अथवा 'नाम-नामी'के बीचमें भेद असम्भव है। बद्धजीवके पक्षमें ही देह-देही अथवा नाम-नामी (इनके बीचमें पार्थक्य वर्तमान) है अर्थात् जीवमें ही 'नाम', 'देह' और 'स्वरूप'का परस्पर पृथक् धर्म विद्यमान है॥ 129-132॥

अनुभाष्य—*'मायावादी'*—आदिलीला, 7/29 और 7/39 संख्या देखें॥ 129॥

श्रीकृष्णनामका स्वरूप :—
पद्मपुराण और विष्णुधर्मोत्तरका वचन—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥ 133॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 133॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णनाम—चित्स्वरूप एक विशेष चिन्तामणि है, वह श्रीकृष्ण-चैतन्य-रसका विग्रह स्वरूप है। वह पूर्ण है अर्थात् मायिक वस्तुकी भाँति बँधा हुआ और खण्ड नहीं है। वह—शुद्ध अर्थात् मायासे मिश्रित नहीं है। वह—नित्यमुक्त अर्थात् सर्वदा चिन्मय है, कभी भी जड़सम्बन्धमें आबद्ध नहीं है; क्योंकि नाम और नामीके स्वरूपमें कोई भेद नहीं है॥ 133॥

अनुभाष्य—

नाम-नामिनोः (नाम च नामी कृष्णः च तयोः नाम्ना सह नामिनः कृष्णस्य) अभिन्नत्वात् (भेदाभावात्) [कृष्ण] नाम—चिन्तामणिः (सकल-सेवाभीष्टप्रदाता), कृष्णः (साक्षात् स्वयंरूपः कृष्ण एव), चैतन्यरसविग्रहः (चिन्मयरसमूर्त्तिः, न तु

अचिज्जड़वैरस्याश्रयः, तस्य मायातीतत्वात्, मायामिश्रण-योग्यताभावात्), पूर्णः (मायया खण्डनानर्हतनुः), शुद्धः (माययाविमिश्रः, व्युदस्तमायः), नित्यमुक्तः (सदा जड़ातीतः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। चिन्तामणि अर्थात् सबको अभीष्ट सेवा प्रदान करनेवाले॥ 133॥

श्रीकृष्णनाम, श्रीकृष्णदेह और श्रीकृष्णविलास—
अप्राकृत, चिन्मय और स्वतःप्रकाश :—

अतएव कृष्णेर 'नाम', 'देह', 'विलास'।
प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय स्वप्रकाश॥ 134॥

श्रीकृष्णका नाम, रूप, गुण, लीला—एक ही वस्तु :—

'कृष्णनाम', 'कृष्णगुण', 'कृष्णलीला'वृन्द।
कृष्णेर स्वरूप-सम—सब चिदानन्द॥ 135॥

अनुवाद—इसलिये स्वयं प्रकाशित होनेके कारण श्रीकृष्णका नाम, उनकी देह और उनकी लीला प्राकृत (जड़ीय) इन्द्रियोंके द्वारा नहीं समझे जा सकते। श्रीकृष्णका नाम, श्रीकृष्णके गुण तथा श्रीकृष्णकी लीलाएँ—श्रीकृष्णके स्वरूपके समान ही सभी चिदानन्दमय हैं॥ 134-135॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी देह, श्रीकृष्णका नाम, श्रीकृष्णका रूप, श्रीकृष्णके गुण, श्रीकृष्णकी लीलाएँ और परिकर-वैशिष्ट्यादि सच्चिदानन्दमय होनेके कारण सत्त्वादि तीन गुणोंके अभिमानी जीवके जड़ीय रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शादिके द्वारा ग्रहण अथवा अनुभव नहीं किये जा सकते। ये जीवकी फलभोगमें प्रवृत्त इन्द्रियोंकी भोग्य वस्तु नहीं हैं। ये समस्त ही स्वप्रकाशवस्तु, नित्य चिन्मय और आनन्दमय हैं। गुणोंके अन्तर्गत जड़ वस्तुके नाम, रूप, गुण और क्रियाके बीचमें परस्पर जड़ीय पार्थक्य होता है, एकत्व नहीं होता; किन्तु अधोक्षज श्रीकृष्णमें ऐसा 'भेद' नहीं है॥ 134॥

अप्राकृत श्रीकृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीला—शुद्धभक्तिके द्वारा
ही ग्राह्य, तर्कपन्थासे इन्द्रियोंके ज्ञानसे अगोचर :—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥ 136॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 136॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अतएव श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला कभी भी प्राकृत नेत्रों-कानों आदिके द्वारा ग्राह्य नहीं हैं। जब जीव सेवोन्मुख होता है, अर्थात् चित्-स्वरूपसे श्रीकृष्णोन्मुख होता है, तभी अप्राकृत जिह्वादि इन्द्रियोंपर श्रीकृष्णनामादि स्वयं ही स्फुरित होते हैं॥ 136॥

अनुभाष्य—

अतः (कृष्ण-नामादिना सह कृष्णस्य प्राकृत-भेदाभावात्), श्रीकृष्णनामादि (श्रीकृष्णनामरूपगुणलीला-परिकर-वैशिष्ट्यम्) इन्द्रियैः (प्राकृतभोगपरैर्नेत्रकर्णनासाजिह्वात्वगादिभिः) ग्राह्यं (रूपशब्दगन्धरसस्पर्शादिविषयीकृतं) न भवेत् (कर्हिचित् न स्यात्)। (ननु अस्यैवाधोक्षजत्वात् सर्वथेदं जड़-भोगपरेन्द्रियाणामलभ्यश्च, तर्हि कथमेतत् कीदृशानां जीवानामाश्रयितव्यमिति चेत्, तत्राह—) सेवोन्मुखे (अप्राकृतबुद्धया शुद्धकृष्णभजन-प्रवृत्ते) जिह्वादौ (शुद्धसत्त्वमये इन्द्रिये) हि (खलु) अदः (कृष्णनामादि) स्वयमेव स्फुरति (प्रकटयति)।

श्लोक-भावानुवाद—इसलिये श्रीकृष्ण-नामादिसे श्रीकृष्णके अभिन्न होनेके कारण श्रीकृष्णनाम-रूप-गुण-लीलापरिकर-वैशिष्ट्य प्राकृतभोगपर नेत्र-कर्ण-नासिका-जिह्वा-त्वचादि इन्द्रियोंके ग्राह्य रूप-शब्द-गन्ध-रस-स्पर्शादि विषयोंके समान कभी भी ग्रहण नहीं किये जा सकते। (निश्चय ही श्रीकृष्ण-नामादि अधोक्षज होनेके कारण सर्वथा ही जड़-भोगपर इन्द्रियोंसे अलभ्य हैं, तब कब और किस प्रकार जीवोंको नामका आश्रय प्राप्त होता है, इसे कह रहे हैं—) अप्राकृत बुद्धिसे शुद्धकृष्णभजनमें प्रवृत्त जिह्वादि शुद्धसत्त्वमय इन्द्रियोंपर ही श्रीकृष्णनामादि स्वयं ही प्रकटित होते हैं॥ 136॥

परम-चमत्कारमय श्रीकृष्ण-माधुर्य—
ब्रह्मज्ञानीको भी आकर्षित करनेवाला :—

ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द लीलारस।
ब्रह्मज्ञानी आकर्षिया करे आत्मवश॥ 137॥

अनुवाद—पूर्ण आनन्दमय लीलारस ब्रह्मज्ञानीको

ब्रह्मानन्दसे भी आकर्षित करके अपने वशमें करता है॥ 137॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मैं ही ब्रह्म हूँ'—ऐसी बुद्धि जिन लोगोंकी उदित होती है, उनमें माया चिन्ता दूर होकर चित्स्वरूप-ब्रह्ममें अवस्थितिरूप थोड़ा सा सुखका उदय तो होता है; किन्तु जो लोग श्रीकृष्णनाम, श्रीकृष्णरूप, श्रीकृष्णगुण और श्रीकृष्णलीला-रूपी चिन्मय रस-विलास हृदयमें उदित करा पाते हैं, वे 'ब्रह्मानन्द'से अनन्त गुणा श्रेष्ठ पूर्णानन्द लीलारस भोग करते हैं। इसलिये पूर्णानन्द लीलारस-स्वरूप श्रीकृष्णलीला सहसा ब्रह्मज्ञानीको भी आकर्षित करके अपने वशमें कर लेती है॥ 137॥

श्रीकृष्णलीलाके माधुर्यसे आकर्षित ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मरात :—
श्रीमद्भागवतमें (12/12/69)—

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि॥ 138॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 138॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो पहले ब्रह्मसुखमें एकान्तचित्त थे और बादमें जिन्होंने उस सुखको परित्याग करके श्रीकृष्णकी माधुर्यमयी लीलासे आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण-सम्बन्धी तत्त्वदीप-स्वरूप श्रीभागवत पुराणका विस्तार किया था; उन समस्त प्रकारके पापोंका नाश करनेवाले गुरुदेव व्यासपुत्र श्रीशुकको मैं नमस्कार करता हूँ॥ 138॥

अनुभाष्य—वास्तविक रूपमें सुननेके अभिलाषी शौनकादि ऋषियोंके समक्ष श्रीभागवतके वर्णनको समाप्त करके महाभागवत श्रीसूत गोस्वामी अपने गुरुदेव ब्रह्मरात श्रील शुक-गोस्वामीको प्रणाम कर रहे हैं,—

स्वसुखनिभृतचेताः (स्वस्य आत्मनः सुखेन निभृतं पूर्णं चेतो यस्य सः, आत्माराम इत्यर्थः) तदव्युदस्तान्यभावः (तत् तेनैव आत्मारामत्वेन व्युदस्तः सम्यग्-दूरीकृतः अन्यभावो ब्रह्मेतरे अन्यस्मिन् वस्तुनि भावः रतिः यस्य तथाभूतः) अपि अजितरुचिरलीलाकृष्टसारः (अजितस्य कृष्णस्य रुचिराभिः मनोज्ञाभिः लीलाभिः आकृष्टः सारः स्वसुखगतं स्थैर्यं यस्य सः) यः तत्त्वदीपं (परमार्थभूत-वस्तु-प्रकाशकं) तदीयं (भगवल्लीलामयं) पुराणं (दशविधलक्षणमय-सन्दर्भात्मकं श्रीमद्भागवतं) कृपया (लोकस्याजानतः हिताय, सुकृतिवतां मङ्गलाकाङ्क्षया वा) व्यतनुत (प्रकटितवान्), तम् अखिलवृजिनघ्नं (सर्वपापनुदं) व्याससूनुं (द्वैपायनात्मजं वैयासकीं शुकदेवं) नतः अस्मि (प्रणमामि)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 138॥

परम चमत्कारपूर्ण श्रीकृष्णगुण—आत्मारामगणोंको
भी आकर्षित करनेवाले :—

ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द कृष्णगुण।
अतएव आकर्षय आत्मारामेर मन॥ 139॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके गुण पूर्ण-आनन्दमय हैं, इसलिये वे आत्मारामगणोंके मनको ब्रह्मानन्दसे भी आकर्षित कर लेते हैं॥ 139॥

मुक्तपुरुषगण भी श्रीकृष्णके चरणोंके प्रति आकृष्ट :—
श्रीमद्भागवत (1/7/10)में—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणोः हरिः॥ 140॥

अनुवाद—आत्मामें ही जिनकी रति है, ऐसे वासना-ग्रन्थियोंसे शून्य सभी मुनि भी बृहत्कर्मा श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि जगत्के चित्तहारी श्रीहरिका ऐसा ही एक गुण है॥ 140॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/186 संख्या देखें॥ 140॥

श्रीकृष्णचरण-तुलसी ब्रह्मज्ञोंके भी मनोहारिणी :—

एइ सब रहु—कृष्णचरण-सम्बन्धे।
आत्मारामेर मन हरे तुलसीर गन्धे॥ 141॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी लीलाओंकी बात तो छोड़ो, श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित होनेपर तुलसीकी गन्धमात्र ही आत्मारामोंके मनका हरण कर लेती है॥ 141॥

श्रीनारायण-चरणकी तुलसी ब्रह्मज्ञ चतुःसनके भी देह और मनकी शुद्ध-सात्त्विक-विकारकारिणी :—
श्रीमद्भागवत (3/15/43)में—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द
किञ्जल्कमिश्र-तुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥ 142॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उन कमल-नेत्र-भगवान्‌के पदकमलकी पराग-मिश्रित तुलसीकी मधुरगन्धयुक्त वायुने सनकादि चार कुमारोंकी नासिकाके छिद्रके माध्यमसे अन्दर जाकर निर्विशेष-ब्रह्मपरायण उनके चित्त और देहमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया था॥ 142॥

अनुभाष्य—मैत्रेय-विदुरके संवादमें दितिके गर्भके प्रभावसे भयभीत देवताओंको ब्रह्मा दितिके गर्भमें स्थित दोनों असुरोंका पूर्व-वृत्तान्त सुना रहे हैं,—पहले एकबार ब्रह्मर्षि चतुःसन अथवा कुमारगण श्रीनारायणके दर्शनकी अभिलाषासे वैकुण्ठमें प्रवेश करके जब सातवें कक्षमें पहुँचे, तब 'जय' और 'विजय' नामक दो द्वारपालोंने उन्हें रोक दिया। भेदबुद्धिसे उत्पन्न द्वेषप्रवृत्तिके कारण क्रोधित द्वारपालोंको उन्होंने असुर योनिमें जन्म ग्रहण करनेका शाप दिया। सर्वज्ञ भगवान् पद्मनाभ यह जानकर उसी समय स्वयं ही लक्ष्मीजीके सहित वहाँ आ गये। ऋषियोंने अपनी ब्रह्मसमाधिके फल आराध्यदेव साक्षात् भगवान् श्रीनारायणको अपने समक्ष देखकर प्रणाम किया, उनके जैसे आत्माराम ब्रह्मज्ञानियोंके भाव-विकारका वर्णन,—

अरविन्दनयनस्य (पद्मलोचनस्य) तस्य (भगवतः) पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः (पदारविन्दयोः चरणकमलयोः किञ्जल्कैः केशरैः मिश्रा या तुलसी, तस्याः मकरन्देन संयुक्तः समीरणः) स्वविवरेण (निजनासारन्ध्रेण) अन्तर्गतः (अन्तःप्रविष्टः सन्) अक्षरजुषां (निर्विशेष-ब्रह्मपराणाम् अपि) तेषां (सनकादीनां कुमाराणां) चित्ततन्वोः (मनःशरीरयोः) संक्षोभं (चित्ते हर्षं देहे रोमाञ्चादिकं) चकार (अजीजननत्)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 142॥

मायावादी लोग नित्य श्रीकृष्णसेवाके विरोधी होनेके कारण शुद्ध-नाम कीर्तनमें अनधिकारी :—

अतएव 'कृष्णनाम' ना आइसे तार मुखे।
मायावादिगण याते महा बहिर्मुखे॥ 143॥

प्रेमकी बाढ़में काशीको डुबानेके लिये ही महाप्रभुका आगमन :—

भावकालि बेचिते आमि आइलाङ काशीपुरे।
ग्राहक नाहि, ना बिकाय, लञा याब घरे॥ 144॥

लोभरूपी मूल्यसे ही महाप्रभुकी प्रेम-वितरणकी प्रतिज्ञा :—

भारी बोझा लञा आइलाङ, केमने लञा याब?
अल्प-स्वल्प मूल्य पाइले, एथाइ बेचिब॥"145॥

अनुवाद—मायावादी लोग श्रीकृष्णसे अत्यन्त बहिर्मुख होते हैं, इसलिये श्रीकृष्ण-अपराधी होनेके कारण 'श्रीकृष्णनाम' प्रकाशानन्दके मुखमें नहीं आया। मैं भक्तिपूर्ण भावोंको बेचनेके लिये काशी नगरीमें आया था, किन्तु यहाँपर उनका कोई ग्राहक नहीं है। मैंने सोचा था कि यदि यहाँ बिक्री नहीं होगी, तब मैं उन्हें अपने घर लौटा ले जाऊँगा। परन्तु यहाँ बेचनेके लिये मैं इतना भारी बोझा उठाकर लाया हूँ, तब कैसे उसे लौटाकर ले जाऊँगा? इसलिये मूल्यका स्वल्प अंश भी मिलनेपर मैं उन्हें यहीं बेच दूँगा॥"143-145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चिन्मय नामरसका पात्र—अतिशय भारी बोझा है। मैं पूर्ण श्रद्धा-मूल्यमें उसे जीवोंको बिक्री करता हूँ। व्यापारीके लिये इतना भारी बोझा लौटाकर ले जाना भी बहुत कठिन है, इसलिये अल्प-स्वल्प मूल्य अर्थात् श्रद्धा आभासरूपी मूल्य मिलनेपर भी इसी स्थानपर बेचकर जाऊँगा॥ 145॥

अनुभाष्य—*'अल्प-स्वल्प-मूल्य'*—श्रीकृष्ण सेवामें लौल्य, लोभ अथवा रुचि; वह आत्मसमर्पणके बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। मध्यलीला 8/70 संख्यामें उद्धृत पद्यावलीका श्लोक 'कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः' इस स्थानपर विचारणीय है॥ 145॥

ब्राह्मणपर कृपा करनेके बाद महाप्रभुकी मथुरा यात्रा :—

एत बलि' सेइ विप्रे आत्मसात् करि'।
प्राते उठि' मथुरा चलिला गौरहरि॥ 146॥

तीन लोगोंके द्वारा महाप्रभुका अनुगमन और महाप्रभुके आग्रहसे लौटकर जाना :—

सेइ तिन सङ्गे चले, प्रभु निषेधिल।
दूर हैते तिनजने घरे पाठाइल॥ 147॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने उस ब्राह्मणको अपने भक्तके रूपमें ग्रहण कर लिया। अगले दिन प्रातःकालमें उठकर श्रीगौरहरि मथुराकी ओर चल दिये। श्रीतपन मिश्र, श्रीचन्द्रशेखर तथा महाराष्ट्र तीनों उनके साथ चलने लगे, किन्तु महाप्रभुने उन्हें सङ्ग चलनेसे मना किया और दूरसे महाप्रभुने उन्हें घर लौट जानेके लिये कहा॥ 146-147॥

तीनोंका एक साथ मिलकर महाप्रभुके गुणोंका गान :—

प्रभुर विरहे तिने एकत्र मिलिया।
प्रभुगुण गान करे प्रेमे मत्त हञा॥ 148॥

अनुवाद—महाप्रभुके मथुरा चले जानेके बाद उनके विरहमें वे तीनों परस्पर मिलकर महाप्रभुके गुणोंका गान करते थे। इस प्रकार वे प्रेममें मत्त हो जाया करते थे॥ 148॥

प्रयागमें आकर स्नानके बाद वेणीमाधवके दर्शनसे महाप्रभुका नृत्य-कीर्तन :—

'प्रयागे' आसिया प्रभु कैल नदी-स्नान।
'माधव' देखिया प्रेमे कैल नृत्यगान॥ 149॥

अनुवाद—काशीसे महाप्रभु प्रयागमें आये और वहाँ त्रिवेणीके सङ्गममें स्नान किया। तब उन्होंने 'वेणी-माधव' विग्रहके दर्शन करके प्रेममें नृत्य और गान किया॥ 149॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'माधव'*—वेणीमाधव॥ 149॥

अनुभाष्य— *'प्रयाग'*—

"प्रकृष्टः यागः यागफलं यस्मात्"

[अर्थात् "प्रकृष्टरूपसे यज्ञका फल है जिसका"] तीर्थराज, गङ्गा और यमुनाका सङ्गम अथवा 'त्रिवेणी'—वर्तमान इलाहाबाद दुर्गसे कुछ दूरीपर प्राचीन 'प्रतिष्ठानपुर' अथवा वर्तमान 'झूसी'॥ 149॥

यमुनाके दर्शनसे व्रजलीलाके उद्दीपनके कारण उसमें कूदना, भट्टके द्वारा उन्हें निकालना :—

यमुना देखिया प्रेमे पड़े झाँप दिया।
आस्ते-व्यस्ते भट्टाचार्य उठाय धरिया॥ 150॥

अनुवाद—यमुनाको देखकर महाप्रभुने प्रेमावेशमें उसमें छलाँग लगा दी। बलभद्र भट्टाचार्यने तुरन्त उन्हें पकड़कर बाहर निकाला॥ 150॥

प्रयागमें तीन दिन लोगोंका उद्धार :—

एइमत तिनदिन प्रयागे रहिला।
कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोक निस्तारिला॥ 151॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु तीन दिन तक प्रयागमें रहे। उन्होंने श्रीकृष्ण-नाम-प्रेम देकर लोगोंका उद्धार किया॥ 151॥

मथुराके मार्गमें जाते समय लोगोंका उद्धार :—

'मथुरा' चलिते पथे यथा रहि' याय।
कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोकेरे नाचाय॥ 152॥

अनुवाद—मथुरा जानेके मार्गमें महाप्रभु जहाँ भी विश्रामके लिये रुकते, वे वहींपर ही श्रीकृष्ण-नाम-प्रेम देकर लोगोंको नचाते थे॥ 152॥

दक्षिण देशकी भाँति पश्चिम देशका भी उद्धार :—

पूर्वे येन 'दक्षिण' याइते लोक निस्तारिला।
'पश्चिम'-देशे तैछे सब 'वैष्णव' करिला॥ 153॥

अनुवाद—दक्षिण भारतकी ओर जाते समय महाप्रभुने जिस प्रकार लोगोंका उद्धार किया था, उसी प्रकार उन्होंने पश्चिम भारतमें भी सभीको वैष्णव बना दिया॥ 153॥

यमुनाके दर्शनमात्रसे ही उसमें कूद जाना :—

पथे याँहा याँहा हय यमुना-दर्शन।
ताँहा झाँप दिया पड़े प्रेमे अचेतन॥ 154॥

अनुवाद—मार्गमें जहाँ-जहाँ भी महाप्रभुको यमुनाका दर्शन होता, वे वही छलाँग लगाकर उसमें कूद पड़ते तथा प्रेममें अचेतन हो जाते॥ 154॥

मथुराके दर्शनसे प्रेमावेश :—

मथुरा-निकटे आइला—मथुरा देखिया।
दण्डवत् हञा पड़े प्रेमाविष्ट हञा॥ 155॥

अनुवाद—मथुराके निकट आनेपर मथुराको देखकर महाप्रभु भूमिपर पड़ गये और प्रेमाविष्ट होकर दण्डवत् प्रणाम किया॥ 155॥

विश्राम-घाटमें स्नान और योगपीठमें श्रीकेशव-दर्शन :—

मथुरा आसिया कैला 'विश्राम-तीर्थे' स्नान।
'जन्मस्थाने' 'केशव' देखि' करिला प्रणाम॥ 156॥

अनुवाद—मथुरामें आकर महाप्रभुने विश्राम-घाटपर स्नान किया। तब महाप्रभु श्रीकृष्ण-जन्मभूमिपर आये और वहाँ भगवान् श्रीकेशवको देखकर उन्हें प्रणाम किया॥ 156॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'विश्राम-तीर्थ'*—प्रसिद्ध विश्रामघाट। *'जन्मस्थाने केशव'*—श्रीकृष्णके जन्म स्थानपर श्रीकेशवजीकी मूर्ति॥ 156॥

महाप्रभुके प्रेमावेशको देखकर लोगोंका विस्मय :—

प्रेमावेशे नाचे, गाय, सघने हुङ्कार।
प्रभुर प्रेमावेश देखि' लोके चमत्कार॥ 157॥

एक ब्राह्मणका महाप्रभुके आनुगत्यमें प्रेमावेशमें नृत्यगान :—

एकविप्र पड़े प्रभुर चरण धरिया।
प्रभु-सङ्गे नृत्य करे प्रेमाविष्ट हञा॥ 158॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रेममें आविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे, गा रहे थे और जोरसे हुङ्कार कर रहे थे, उनके प्रेमावेशको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। एक ब्राह्मण महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा और वह भी प्रेममें आविष्ट होकर उनके साथ नृत्य करने लगा॥ 157-158॥

दोनोंका नृत्य-कीर्तन :—

दुँहे प्रेमे नृत्य करि' करे कोलाकुलि।
'हरि' 'कृष्ण' कहे दुँहे बलि बाहु तुलि'॥ 159॥

अनुवाद—दोनों प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे थे और उन्होंने एक-दूसरेको गले लगाया। अपनी भुजाओंको उठाकर दोनों 'हरि' 'कृष्ण' आदि नामोंका कीर्तन कर रहे थे॥ 159॥

लोगोंका कोलाहल, पुजारीके द्वारा महाप्रभुके गलेमें माला देना :—

लोक 'हरि' 'हरि' बले, कोलाहल हैल।
'केशव'-सेवक प्रभुके माला पराइल॥ 160॥

अनुवाद—वहाँ उपस्थित सभी लोग जोर-जोरसे 'हरि' 'हरि' बोलकर कीर्तन करने लगे, वहाँ कोलाहल मच गया। भगवान् श्रीकेशवके सेवकने महाप्रभुको माला लाकर पहनायी॥ 160॥

महाप्रभुके प्रेमकी 'अलौकिक'के रूपमें लोगोंको प्रतीति :—

लोके कहे, प्रभु देखि' हञा विस्मय।
ऐछे हेन प्रेम 'लौकिक' कभु नय॥ 161॥

अलौकिक होनेके कारणका निर्देश :—

याँहार दर्शने लोके प्रेमे मत्त हञा।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय, कृष्णनाम लञा॥ 162॥

निश्चय सिद्धान्त :—

सर्वथा निश्चित—इँहो—कृष्ण-अवतार।
मथुरा आइला लोकेर करिते निस्तार॥ 163॥

अनुवाद—महाप्रभुको प्रेमावेशमें नृत्य-गान करते देखकर लोग विस्मित हो गये और कहने लगे कि ऐसा प्रेम कभी भी 'लौकिक' नहीं है। जिनके दर्शनमात्रसे ही लोग प्रेममें मत्त होकर श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते

हुए हँस रहे हैं, रो रहे हैं, नाच रहे हैं, गा रहे हैं, तो यह निश्चित ही है कि ये श्रीकृष्णके अवतार हैं। ये लोगोंका उद्धार करनेके लिये ही मथुरा आये हैं॥ 161-163॥

उस ब्राह्मणके प्रेमके दर्शन करके उसके परिचयकी जिज्ञासा :—

तबे महाप्रभु सेइ ब्राह्मणे लञा।
ताँहारे पुछिला किछु निभृते बसिया॥ 164॥

"आर्य, सरल तुमि—वृद्धब्राह्मण।
काँहा हैते पाइले तुमि एइ प्रेमधन?"॥ 165॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उन ब्राह्मणको अपने साथ ले जाकर एकान्तमें बैठकर उनसे पूछा,—"आप एक वृद्ध ब्राह्मण हैं, आप समर्पित और भक्तिमें उन्नत हैं। आपको यह प्रेमधन कहाँसे प्राप्त हुआ?॥"164-165॥

अपने गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्रका परिचय देना :—

विप्र कहे,—"श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी।
भ्रमिते भ्रमिते आइला मथुरा-नगरी॥ 166॥

कृपा करि' तेँहो मोर निलये आइला।
मोरे शिष्य करि' मोर हाते 'भिक्षा' कैला॥ 167॥

गोपाल प्रकट करि' सेवा कैल 'महाशय'।
अद्यापिह ताँहार सेवा 'गोवर्धने' हय॥"168॥

गुरुबुद्धिसे महाप्रभुके द्वारा ब्राह्मणकी वन्दना, ब्राह्मणका भय और सम्भ्रमपूर्वक महाप्रभुको प्रणाम :—

शुनि' प्रभु कैल ताँर चरण-वन्दन।
भय पाञा प्रभु-पाय पड़िला ब्राह्मण॥ 169॥

अनुवाद—ब्राह्मणने कहा,—"श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी भ्रमण करते-करते मथुरा नगरीमें आये थे। कृपा करके वे मेरे घरपर आये और उन्होंने मुझे अपने शिष्यके रूपमें स्वीकार किया। उन्होंने मेरे हाथोंसे भिक्षा (भोजन) भी ग्रहण की थी। उन्होंने श्रीगोपालको प्रकट कराके उनकी सेवा की थी। आज तक भी गोवर्धनमें उन श्रीगोपालकी सेवा होती है।" श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे उन ब्राह्मणके सम्बन्धकी बात सुनकर महाप्रभुने उनके चरणोंकी वन्दना की। भयभीत होकर वे ब्राह्मण भी महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े॥ 166-169॥

मर्यादा-रक्षक महाप्रभुका गुरुके निकट दीनता प्रदर्शन :—

प्रभु कहे,—"तुमि 'गुरु', आमि 'शिष्य'-प्राय।
'गुरु' हञा 'शिष्ये' नमस्कार ना युयाय॥"170॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आप मेरे 'गुरु'तुल्य हैं और मैं आपके 'शिष्य'के समान हूँ। 'गुरु' होकर 'शिष्य'को प्रणाम करना उचित नहीं है॥"170॥

ब्राह्मणका भय और दैन्य-ज्ञापन :—

शुनिया विस्मित विप्र कहे भय पाञा।
"ऐछे बात् कह केने संन्यासी हञा॥ 171॥

महाप्रभुको श्रीमाधवेन्द्रपुरीके साथ सम्बन्धयुक्त समझकर ब्राह्मणका अनुमान :—

किन्तु तोमार प्रेम देखि' मने अनुमानि।
माधवेन्द्र-पुरीर 'सम्बन्ध' धर—जानि॥ 172॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके सम्बन्धके बिना अन्यत्र श्रीकृष्णप्रेम अप्राप्य :—

कृष्णप्रेमा ताँहा, याँहा ताँहार 'सम्बन्ध'।
ताँहा बिना एइ प्रेमार काँहा नाहि गन्ध॥"173॥

अनुवाद—यह सुनकर ब्राह्मण विस्मित और साथ ही भयभीत भी हो गये। उन्होंने कहा,—"आप संन्यासी होकर ऐसी बात क्यों कह रहे हैं? किन्तु आपके उन्नत श्रीकृष्णप्रेमको देखकर मैंने अनुमान लगाया कि अवश्य ही श्रीमाधवेन्द्रपुरीके साथ आप सम्बन्ध रखते हैं। उनसे किसी-न-किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध होनेपर ही इस प्रकारके उन्नत श्रीकृष्णप्रेमका अनुभव किया जा सकता है। उनसे सम्बन्धके बिना ऐसे प्रेमकी गन्ध भी कहीं नहीं हो सकती॥"171-173॥

भट्टके द्वारा महाप्रभुके गुरुका परिचय देना :—

तबे भट्टाचार्य तारे 'सम्बन्ध' कहिल।
शुनि' आनन्दित विप्र नाचिते लागिल॥ 174॥

अनुवाद—तब श्रीबलभद्र भट्टाचार्यने उन्हें श्रीमाधवेन्द्र पुरीके साथ महाप्रभुके सम्बन्धके विषयमें बतलाया। यह सुनकर वे ब्राह्मण बड़े आनन्दित हुए और नृत्य करने लगे॥ 174॥

अनुभाष्य—पहले पाण्डरपुरमें श्रीरङ्गपुरीने भी महाप्रभुसे इसी प्रकार कहा था—मध्यलीला 9/289 और 291 संख्या देखें॥ 165-174॥

महाप्रभुको अपने घरमें लाना और सेवा करना :—

तबे विप्र प्रभुरे लञा आइला निज-घरे।
आपन-इच्छाय प्रभुर नाना सेवा करे॥ 175॥

ब्राह्मणका दीनतापूर्वक भट्टके द्वारा अन्नका पाक कराना, शुद्धभक्तिके अनुकूल दैववर्णाश्रमधर्म-पालक महाप्रभुका यथार्थ शास्त्र-तात्पर्यको बताते हुए लोकशिक्षा देना :—

भिक्षा लागि' भट्टाचार्ये कराइला रन्धन।
तबे महाप्रभु हासि' बलिला वचन॥ 176॥

श्रीपुरीकी कृपा-प्राप्त ब्राह्मणके घरमें महाप्रभुकी भिक्षाकी अभिलाषा :—

"पुरी-गोसाञि तोमार घरे करयाछेन भिक्षा।
मोरे तुमि भिक्षा देह,—एइ मोर 'शिक्षा'॥"177॥

अनुवाद—तब वे ब्राह्मण महाप्रभुको अपने घरपर ले आये और वे स्वयं ही महाप्रभुकी अनेक प्रकारकी सेवा करने लगे। उन ब्राह्मणने बलभद्र भट्टाचार्यसे महाप्रभुके लिये रसोई बनानेके लिये कहा। तब महाप्रभुने हँसते हुए कहा,—"श्रीमाधवेन्द्रपुरीने आपके घरमें भोजन ग्रहण किया है, इसलिये मुझे भी आप अपने हाथोंसे भोजन बनाकर खिलाओ। यही मेरी 'शिक्षा' है॥"175-177॥

आचार्यका आचरण ही लोगोंका आदर्श :—
श्रीमद्भगवद्गीता (3/21)में—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥ 178॥

अनुवाद—श्रेष्ठ पुरुष जिस प्रकारका आचरण करते हैं, उसीका ही अन्य लोग अनुकरण करते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति जिसको 'प्रमाण' कहता है, सभी लोग उसीमें अनुरत होते हैं॥ 178॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/25 संख्या देखें॥ 178॥

जन्मके आधारपर उस ब्राह्मणका भोजन ग्रहण योग्य नहीं :—

यद्यपि 'सनोड़िया' हय सेइत' ब्राह्मण।
सनोड़िया-घरे संन्यासी ना करे भोजन॥ 179॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा 'वैष्णव' अथवा शुद्ध-ब्राह्मण जानकर उन्हें शिष्यके रूपमें स्वीकार करना :—

तथापि पुरी देखि' ताँर 'वैष्णव'-आचार।
'शिष्य' करि' ताँर भिक्षा कैल अङ्गीकार॥ 180॥

अनुवाद—यद्यपि वे 'सनोड़िया' ब्राह्मण थे और सनोड़ियाके घरमें संन्यासी भोजन नहीं करते, तथापि श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उनके वैष्णव जैसे आचरणको देखकर उन्हें अपने शिष्यके रूपमें ग्रहण किया था। और उनके द्वारा दी गयी भिक्षाको भी स्वीकार किया था॥ 179-180॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पश्चिम भारतमें वैश्य लोग 'अग्रवाल', 'कालोयार', 'सानोयाड़' आदि कुछ भागोंमें विभक्त हैं। उनमेंसे अग्रवाल ही अतिशुद्ध हैं; कालोयार, सानोयाड़ आदि श्रेणी—अपने-अपने कार्योंके दोषके कारण पतित हैं। इन कालोयारों और सानोयाड़ों आदिका जो याजन करते हैं अर्थात् जिनके यजमान ये लोग हैं, उन्हें 'सनोड़िया ब्राह्मण' आदि कहते हैं। 'सानोयाड़'-शब्दका अर्थ 'सोनेका व्यापारी' है, उनके याजक-ब्राह्मण ही 'सनोड़िया-(वर्ण) ब्राह्मण' हैं। याजन दोषसे पतित होनेके कारण उन ब्राह्मणोंके घरमें संन्यासी भोजन नहीं करते॥ 179॥

महाप्रभुकी उनके घरमें भिक्षाकी अभिलाषाको सुनकर ब्राह्मणकी दैन्यपूर्ण उक्ति :—

महाप्रभु ताँरे यदि 'भिक्षा' मागिल।
दैन्य करि' सेइ विप्र कहिते लागिल॥ 181॥

"तोमारे 'भिक्षा' दिब—बड़ भाग्य से आमार।
तुमि—ईश्वर, नाहि तोमार विधि-व्यवहार॥ 182॥

विप्रका श्रीगौरप्रेम एवं अदैव-वर्णाश्रमियोंका तिरस्कार :—

'मूर्ख'-लोक करिबेक तोमार निन्दन।
सहिते ना पारिमु सेइ 'दुष्टे'र वचन॥"183॥

अनुवाद—इसलिये महाप्रभुने स्वयं उन ब्राह्मणसे भिक्षा माँगी, परन्तु वे ब्राह्मण स्वाभाविक दीनतासे कहने लगे,—"यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि मैं आपको भिक्षा प्रदान करूँगा। और आप तो ईश्वर हैं, इसलिये आपके लिये विधि-व्यवहारका कोई बन्धन नहीं है। किन्तु मूर्ख लोग आपकी निन्दा करेंगे। तब मैं उन दुष्टोंके वचनोंको सहन नहीं कर पाऊँगा॥"181-183॥

अनुभाष्य—इस प्रसङ्गमें मध्यलीला, 10/136-140 संख्या देखें।

जन्मके अनुसार उन शुद्धभक्त ब्राह्मणका जल भी स्पर्श योग्य नहीं होनेपर भी भक्तिके अनुकूल दैव-वर्णाश्रममें और सत्यकी प्रतिष्ठामें उनकी निष्ठा थी। इसलिये उन्होंने निर्भय होकर महाप्रभु और शुद्धभक्तिके प्रतिकूल, वैष्णवोंमें जाति-बुद्धि करनेवाले अदैव-वर्णाश्रमी एवं महाप्रसादमें कुतर्क करनेवालोंको 'मूर्ख' और 'दुष्ट' आदि शब्दोंसे सम्बोधन करनेमें दुविधा अनुभव नहीं की। यद्यपि वैष्णव स्वभावसे दीन होते हैं, तथापि वे उच्चकुलमें उत्पन्न होनेका अभिमान करनेवाले विष्णु-विरोधी स्मार्त्त ब्राह्मणोंके पैरोंको चाटनेकी चेष्टा नहीं करते॥ 182-183॥

मनोधर्मी व्यक्तियोंके विभिन्न पथोंका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"श्रुति, स्मृति, यत ऋषिगण।
सबे 'एक'-मत नहे, भिन्न भिन्न धर्म॥ 184॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रुति, स्मृति और जो ऋषि हैं, उन सबका सदा एक मत नहीं होता। इसलिये धर्मके विषयमें भिन्न-भिन्न मत हैं॥ 184॥

अनुभाष्य—*'एकमत'*—अद्वय-ज्ञानके आधारपर प्रतिष्ठित सत्यधर्म ही 'नित्य', 'सनातन' और 'एक' है। उस धर्ममें 'उपेय' अथवा 'साध्य' जिस प्रकार एक होता है, 'उपाय' अथवा 'साधन' अथवा 'मार्ग' भी उसी प्रकार 'एक' अथवा उससे अभिन्न होता है। *'भिन्न-भिन्न धर्म'*,—आत्मदर्शनको छोड़कर बाहरी दर्शनके आधारपर प्रत्येक जीवके परस्पर देह और मनका विशेष-विशेष धर्म है॥ 184॥

लोगोंके हितके उद्देश्यसे ही सज्जनका आचरण, इसलिये श्रीमाधवेन्द्रके द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही एकमात्र निश्चयार्थक अथवा वास्तविक-सत्यप्रद :—

धर्म-स्थापन-हेतु साधुर व्यवहार।
पुरी-गोसाञि ये आचरण, सेइ धर्म सार॥"185॥

अनुवाद—साधुका व्यवहार धर्मके वास्तविक तात्पर्यको स्थापित करता है। श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामीका आचरण ही समस्त धर्मोंका सार है॥"185॥

अनुभाष्य—*'साधु अथवा महाजन'*—महान व्यक्तिको 'महाजन' कहते हैं। पारमार्थिक और जागतिक विचारमें 'महान'के सम्बन्धमें विभिन्न धारणाएँ होती हैं। बद्धजीव जो इन्द्रिय-तृप्तिमें और उसके साधन एकत्रित करनेमें व्यस्त है, वह अपने मनोधर्मके अनुसार उस व्यक्तिको उतना महान मानता है, जितना वह उसके इन्द्रिय-भोगको बढ़ानेका अवसर या उपाय प्रदान करता है। जैसे, एक व्यापारी उसे 'ऋण देनेवाले'को 'महाजन' मान सकता है। अथवा भोगोंकी लालसावाले कर्मियोंके लिये 'जैमिनी आदि ऋषि' अथवा विभिन्न मतपोषक धर्म-शास्त्रकार लोग महाजन हो सकते हैं। इन्द्रियों और मनको वशमें करनेके अभिलाषी व्यक्तियोंके लिये 'पतञ्जल्यादि ऋषि' महाजन हैं। शुष्क-ज्ञानियोंके लिये निरीश्वर कपिल, वशिष्ठ, दुर्वासा या दत्तात्रेय आदि केवल-अद्वैतवादिगण महाजन हैं। रजो और तमोगुणाश्रित आसुरिक व्यक्ति अमानुषिक-बलशाली विष्णु-विरोधी-कार्योंमें अतुलनीय दृढ़ हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण और उसके पुत्र मेघनाद, जरासन्धादि राजा, एकलव्य और कर्ण आदि

गुरुभक्तोंको महाजन मान सकते हैं। स्त्री-सङ्गप्रिय पुरुषाभिमानी व्यक्तियोंके लिये दक्षादि स्त्री-पूजक प्रजापतिगण ही महाजन हैं। सांसारिक लोगोंके लिये दैहिक और मानसिक रोग, शोक, दुःख, भय अथवा फल्गु अभावको दूर करनेके प्रयासी चिकित्सक, समाजसेवी व्यक्ति 'महाजन'के रूपमें कहे जा सकते हैं। मायासे मोहित जीवोंके लिये विष्णुसम्बन्ध-विहीन 'दार्शनिक', 'वैज्ञानिक', 'ऐतिहासिक', 'साहित्यिक', 'कवि', 'कुशल वक्ता', 'समाजपति' अथवा 'देशनेता'—'महाजन' कहलाकर निर्णीत हो सकते हैं। स्वयं ही ठगे जानेवाले लोग ऐसे व्यक्तियोंको महाजन मान लेते हैं जो आत्माकी नित्यवृत्ति भगवद्भक्तिको भी वंश-परम्पराके अधीन कहते हैं। ऐसे 'तथाकथित-महाजन' स्वयंको किसी महाजनका वंशज होनेकी दुहाई देकर भगवद्भक्ति अथवा गुरु होनेके दावेदार बनकर लोगोंको ठगते हैं। ऐसे धनके लोभी लोग गिद्धके समान हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जैसे वास्तविक साधुके विरोधी और उनके अप्राकृत हरिभजनकी चेष्टाका कृत्रिम बाहरी अनुकरण करनेवाले 'ढोंगी-विप्र', कपट और छल विद्याको जाननेवाले; पूतना, तृणावर्त्त, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, कालिय, प्रलम्ब आदि असुरगण; अथवा विष्णु-विरोधी पौण्ड्र

दैत्यगुरु शुक्राचार्य, नास्तिक चार्वाक, वेण, सुगत, अर्हत् आदिको भी लोग महाजन मान लेते हैं। कई लोग श्रीगौरकृष्णके परम-सत्य अथवा उनके परमेश्वर होनेमें विश्वास नहीं करते। परन्तु स्वयंको अवतार कहलानेकी इच्छासे ऐसे ठग लोग उनका अनुकरण करके विष्णुविरोधी मनोधर्मी मनोहर वचन प्रयोग करके मूर्ख दुर्भागे लोगोंके द्वारा महाजनके रूपमें कल्पित हो सकते हैं। फलस्वरूप भगवद्भक्तिहीन व्यक्तिके लिये इस प्रकार 'अन्याभिलाषी', 'कर्मी', 'शुष्कज्ञानी', 'अभक्त-योगी' अथवा कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाके लोभी व्यक्ति 'महाजन'के रूपमें निर्दिष्ट हो सकते हैं, यह सत्य है। किन्तु निरस्त-कुहक (छलरहित) परम-सत्य अथवा वास्तव-वस्तुको प्रतिपादन करनेवाली निर्मत्सर श्रीमद्भागवत कहती है, (6/3/25)—

"प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहितमतिर्बत माययालाम्।
त्रय्यां जड़ीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः॥"

अर्थात् "जगत्में जो सब कर्मी 'महाजन'के नामसे विख्यात हैं, वे सब धर्मके विषयमें बतलानेवाले लोग भगवद्भक्तिके माहात्म्यको नहीं जानते। उनकी बुद्धि भगवान्की त्रिगुणमयी मायाके द्वारा विमोहित हो जाती है। इसलिये वे भगवद्भक्तिको ग्रहण न करके लौकिक फलोंको देनेवाले बड़े-बड़े याग-यज्ञोंरूपी कर्मकाण्डमें संलग्न रहते हैं। इन सब महाजनोंकी मति ऋक-साम-यजुर्वेदके मधुर प्रतीत होनेवाले अर्थवाद-वाक्योंमें दृढ़तासे लगी रहती है। यद्यपि साधारण लोग उन्हें 'महाजन'के रूपमें मान लेते हैं, तथापि उनकी बुद्धि पुरुषोत्तम श्रीभगवान्की नित्यसेवासे युक्त नहीं हैं।"

जगत्के लोग 'कर्मवीर'के रूपमें परिचित हो सकते हैं, 'धर्मवीर' कहलाकर सम्मान प्राप्त कर सकते हैं, 'ज्ञानवीर' कहलाकर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं, 'वैराग्य और त्यागके आदर्श' कहलाकर पूजित हो सकते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत (3/23/56) कहती है—

"नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपादसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥"

अर्थात् "इस जगत्में जो कर्मवीर 'धर्म'के लिये कर्म न करें, जो त्यागवीर 'श्रीविष्णुकी प्रीतिके लिये भोग त्याग' न करें, वे व्यक्ति जीवित होते हुए भी मृत हैं।" वास्तवमें श्रीहरिकी सन्तुष्टिका नाम ही 'सेवा' है। इसलिये जिस कर्ममें, जिस धर्ममें, जिस त्यागमें श्रीकृष्णकी कोई प्रीति अथवा सम्बन्ध नहीं है, वह देशकी सेवा, देशवासियोंकी सेवा, समाजकी सेवा, वंश-परम्परापर ही आधारित अदैव-वर्णाश्रमकी सेवा, रोगीकी सेवा, दरिद्रकी सेवा, निर्धनकी सेवा या धनवानकी सेवा, स्त्री-जातिकी सेवा, अनेक देवताओंकी सेवा आदि 'श्रेष्ठ-गुण-सम्पत्' अथवा 'प्रातः स्मरणीय कार्य'के नामसे जगत्में प्रचलित होनेपर भी वह वास्तवमें अपनी

'इन्द्रियतृप्ति' अथवा 'भोग' है। यह जगत्का दुर्भाग्य ही है कि लोगोंको इन्द्रिय-भोगोंमें प्रवृत्त करनेवाले वक्ता, प्रचारक अथवा शास्त्रकार ही 'महाजन'के रूपमें विख्यात हैं।

जो जीव प्राकृतबुद्धिसे युक्त हैं, बाह्यजगत्के ही दर्शन करनेवाले हैं, इन्द्रियोंके दास और भवरोगसे ग्रस्त हैं, वे अपनी विकृत बुद्धिके द्वारा वास्तविक महाजनको समझ अथवा पहचान नहीं पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि सदा ही भ्रम-प्रमादादि चार दोषोंसे दूषित है।

अनादि कालसे रक्त-माँस अथवा शुक्रादि सात धातुओंसे बने शरीरमें 'आत्म'-बुद्धि और रुचि रखनेवाले व्यक्ति भेड़चालकी भाँति इन्द्रियोंसे ही प्राप्त ज्ञानके स्रोतमें बह रहे हैं। इस प्रकार प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदायके कई लोग श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जैसे महाजनोंके वचनोंका भी अनादर करके, महाजनोंके चरणोंमें अपराध सञ्चय करके, महाजनको सङ्कीर्ण विचारादि वाले कहकर अपने लिये विपत्तिका स्वयं ही वरण कर रहे हैं। अन्य कई लोग अपनी इन्द्रियभोगोंके अनुरूप धारणाके अनुसार कल्पित महाजनोंकी सृष्टि करके व्यभिचार, लाम्पट्य, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठाशा, कुटीनाटी (कपटता), ईर्ष्या आदि असंख्य अपराधजनक कार्योंमें लिप्त हो रहे हैं।

जीव जब तक वास्तविक 'महाजन'का निर्णय नहीं कर पाता, तब तक उसकी कोई भी चेष्टा सुफल देनेवाली नहीं हो सकती। महाजनके स्वरूपके निर्णयके विषयमें मध्यलीला 25/54-55, 57 संख्यामें कहा है—

"परम कारण ईश्वरे केह नाहि माने।
स्व-स्व-मत स्थापे परमतेर खण्डने॥
ताते छय दर्शन हैते 'तत्त्व' नाहि जानि।
'महाजन' येइ कहे, सेइ 'सत्य' मानि।
श्रीकृष्णचैतन्य-वाणी—अमृतेर धार।
तिँहो ये कहये वस्तु, सेइ 'तत्त्व'—सार॥"

अर्थात् सांख्य-पातञ्जल आदि दर्शनमें कोई भी वास्तवमें विष्णुको 'ईश्वर'के रूपमें नहीं मानते। वे सभी 'प्रच्छन्न' अथवा 'अप्रच्छन्न' नास्तिक हैं, अर्थात् कोई भी 'आस्तिक' नहीं हैं। उन्होंने केवल अपने-अपने-मतवादकी बहादुरी प्रदर्शित करनेके लिये तर्कके द्वारा दूसरोंके मतका खण्डन और अपने-अपने मतवादको स्थापित करनेकी चेष्टामात्र की है; इसलिये ये सब शास्त्रोंका उपदेश प्रदान करनेवाले जगत्में 'महाजन' कहलाकर परिचित होनेपर भी वास्तवमें वे 'महाजन' नहीं हैं—वे ही अत्यन्त 'सङ्कीर्ण' और 'अनुदार' (उदार नहीं) हैं।

यह बात सुनकर इन सभी तथाकथित महाजनोंके भक्त अपने प्राकृत इन्द्रियोंके ज्ञानके अनुसार श्रीमन्महाप्रभु और शुद्ध भक्तोंके चरणोंमें अपराध करके कहेंगे,—"यह 'हठ' मात्र है।" उनकी धारणा है कि श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु अथवा श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद पूर्वोक्त व्यक्तियों जैसे ही एक महाजन मात्र हैं। वे तो प्राकृत-सहजधर्मकी विचारधारासे चिद् और जड़का सामञ्जस्य करनेवाले हैं, इसलिये वे इस प्रकारका सिद्धान्त कहेंगे, इस विषयमें सन्देह और आश्चर्य कैसा? किन्तु जिनका अप्राकृत स्वरूपधर्म जागरित हुआ है, वे उस स्वरूपधर्मके आलोकसे प्रकाशित प्रत्येक जीवके ही स्वरूपका दर्शन करनेमें समर्थ हैं। महाभागवत अथवा परमहंसका ही अधोक्षज-दर्शन अथवा सु-दर्शन होता है, इसलिये वे निष्किञ्चन ही एकमात्र वास्तविक 'महाजन' हैं। श्रील माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी भी निष्किञ्चन महाजन हैं; उनके आचरणमें किसी भी प्रकारकी मत्सरता अथवा लोगोंको छलनेकी वृत्ति नहीं है; उन्होंने आचरण करके जो प्रचार किया है, उनके द्वारा प्रदर्शित उसी दैव-वर्णाश्रम-धर्मको आदर्श मानकर अनुगमन करनेसे ही अपना कल्याण चाहनेवाले जीवोंका निश्चय ही मङ्गल होगा, महाप्रभुने उसी दैव-वर्णाश्रम-धर्मके आदर्शका प्रदर्शन करके शिक्षा दी है।

श्रीमद्भागवतमें (6/3/19-21)—'बारह' महाजनोंके नाम उल्लिखित हैं। कलियुगमें भगवद्भक्ति-प्रचारक शुद्धवैष्णव-सम्प्रदायके चार आचार्य ही 'महाजन' हैं। हमारे सम्प्रदायमें गौड़ीयेश्वर श्रीदामोदरस्वरूप ही मूल

'महाजन' हैं। उनके अभिन्न कलेवर परमतत्त्व-श्रीगौरसुन्दरके प्रियतम श्रीरूप-सनातन अथवा श्रीरूपानुग साधुजन, सभी 'महाजन' हैं। श्रीविष्णुस्वामीके अनुगत शुद्धाद्वैतवादी श्रीधरस्वामी भी 'महाजन' हैं। चण्डीदास, विद्यापति, जयदेव—ये सभी महाजन हैं। किन्तु जो इन सभी महाजनोंकी सेवा करनेके बदलेमें इन्हें अपने-अपने तुच्छ स्वार्थसिद्धिके उपकरणके रूपमें मानते हैं अथवा 'गुरुके ऊपर गुरुगिरि' करनेके लिये दौड़ते हैं, वे सभी दुर्भागे व्यक्ति इन सभी महाजनोंसे बहुत दूरमें अवस्थित हैं। इन्द्रिय सुखभोगका लोभ या माया-दास्य ही उनके निकट 'कल्पित महाजन'की मूर्ति लेकर उपस्थित होता है और उन्हें छलकर उनकी इन्द्रियोंको वास्तविक सत्यके पथसे दूर करके पागल बना देता है। इसलिये शुद्ध भगवद्भक्तोंकी चेष्टाएँ कभी भी उनकी प्राकृत बुद्धिकी धारणाका विषय नहीं होतीं॥ 185॥

शुद्धभक्तोंका पथ ही अनुसरणीय :—
महाभारतके वनपर्व (313/117)में—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥ 186॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 186॥

अमृतप्रवाह भाष्य—तर्क सहजरूपमें ही प्रतिष्ठा-शून्य होता है, सभी श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, जिसका मत भिन्न न हो, वह 'ऋषि' ही नहीं हो सकता; इसलिये धर्मतत्त्व गूढ़रूपसे ढका हुआ है अर्थात् शास्त्रादि पढ़कर धर्मतत्त्वको जानना कठिन है। इसलिये जिन्हें साधुओंने 'महाजन' कहकर निर्णय किया है, वे जिस मार्गको 'शास्त्र-मार्ग' कहते हैं, उसी मार्गपर ही अन्य सभी व्यक्तियोंका चलना उचित है॥ 186॥

अनुभाष्य—

('वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः' इति पाठान्तरश्च दृश्यते)। तर्कः अप्रतिष्ठः (अस्थिरः नाचलः), श्रुतयः अपि विभिन्नाः (अधिकारभेदेन विरोधप्रदर्शनपराः); असौ ऋषिः न [वाच्यः] यस्य मतं (सिद्धान्तः) भिन्नं न [आसीत्]; [एवम्विधे तर्क प्रधान-युगे] धर्मस्य (सनातन-जैवधर्मस्य) तत्त्वं गुहायां (साधारण-लोक-लोचनागोचर-शुद्धसज्जनसम्प्रदायैक-हृद्गह्वरे) निहितं (पिहितं लुक्कायितम्; अतः) येन (सत्पथेन) महाजनः (पूर्वतमः अधोक्षजाच्युत-सेवकः सज्जनः) गतः (प्राप्तः) स (एव) पन्थाः (शुद्धमार्गः)।

श्लोक-भावानुवाद—('वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः' यह पाठान्तर दिखायी देता है)।

तर्क सहजरूपमें ही प्रतिष्ठा-शून्य होता है, सभी श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं अर्थात् अधिकारभेदसे उनमें विरोध प्रदर्शित होता है; जिसका सिद्धान्त भिन्न न हो, वह 'ऋषि' ही नहीं हो सकता; [इस तर्क-प्रधान युगमें] सनातन जैवधर्मका तत्त्व गूढ़रूपसे अर्थात् साधारण लोगोंके नेत्रोंसे अगोचर, किन्तु शुद्ध सज्जन सम्प्रदायके हृदयकी गुह्यामें छिपा हुआ है। इसलिये जिस सत्पथको पूर्व महाजनों अर्थात् अधोक्षज-अच्युतके सेवक सज्जनोंने प्राप्त किया है, वही शुद्ध मार्ग है॥ 186॥

ब्राह्मणके घरमें महाप्रभुकी भिक्षा :—

तबे सेइ विप्र प्रभुके भिक्षा कराइल।
मधुपुरीर लोक-सब प्रभुके देखिते आइल॥ 187॥

अनुवाद—यह सुनकर उन ब्राह्मणने महाप्रभुको भोजन करवाया। तब मथुरापुरीके सब लोग महाप्रभुके दर्शनके लिये आने लगे॥ 187॥

असंख्य लोगोंके द्वारा महाप्रभुका दर्शन :—

लक्ष-संख्या लोक आइसे, नाहिक गणन।
बाहिर हञा प्रभु दिल दरशन॥ 188॥

महाप्रभुके कीर्तनमें सभीका नृत्य :—

बाहु तुलि' बले प्रभु 'हरिबोल'-ध्वनि।
प्रेमे मत्त नाचे लोक करि' हरिध्वनि॥ 189॥

अनुवाद—लाखोंकी संख्यामें लोग आने लगे, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। इसलिये महाप्रभुने स्वयं

बाहर आकर वहाँ एकत्रित सब लोगोंको दर्शन दिया और अपनी भुजाएँ उठाकर महाप्रभुने उच्च स्वरमें 'हरिबोल' कहा। एकत्रित सभी लोग 'हरि' बोलकर कीर्तन करने लगे और प्रेममें मत्त होकर नृत्य करने लगे॥ 188-189॥

यमुनाके चौबीस घाटोंपर स्नान करनेके बाद महाप्रभुके द्वारा ब्राह्मणके द्वारा प्रदर्शित देखने योग्य स्थानोंका दर्शन :—

यमुनार 'चब्बिश-घाटे' प्रभु कैल स्नान।
सेइ विप्र प्रभुके देखाय तीर्थस्थान॥ 190॥

स्वयम्भु, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर।
महाविद्या, गोकर्णादि देखिला विस्तर॥ 191॥

अनुवाद—महाप्रभुने यमुनाके चौबीस घाटोंपर स्नान किया। उन ब्राह्मणने महाप्रभुको स्वयम्भु, विश्रामघाट, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या तथा गोकर्ण आदि सभी तीर्थस्थानोंका दर्शन कराया॥ 190-191॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यमुनाके चौबीस घाट—(1) अविमुक्त, (2) अधिरूढ़, (3) गुह्यतीर्थ, (4) प्रयागतीर्थ, (5) कनखलतीर्थ, (6) तिन्दुक, (7) सूर्यतीर्थ, (8) वटस्वामी, (9) ध्रुवघाट, (10) ऋषितीर्थ, (11) मोक्षतीर्थ, (12) बोधतीर्थ, (13) गोकर्ण, (14) कृष्णगङ्गा, (15) वैकुण्ठ, (16) असिकुण्ड, (17) चतुःसामुद्रिक-कूप, (18) अक्रूरतीर्थ, (19) याज्ञिक-विप्रस्थान, (20) कुब्जाकूप, (21) रङ्गस्थल, (22) मञ्चस्थल, (23) मल्लयुद्ध-स्थान और (24) दशाश्वमेध॥ 190-191॥

उस ब्राह्मणके साथ द्वादश वनोंका दर्शन :—

'वन' देखिबारे यदि प्रभुर मन हैल।
सेइत ब्राह्मणे प्रभु सङ्गेते लइल॥ 192॥

मधुवन, ताल, कुमुद, बहुला-वन गेला।
ताँहा ताँहा स्नान करि' प्रेमाविष्ट हैला॥ 193॥

अनुवाद—जब महाप्रभुको वन देखनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने उन ब्राह्मणको अपने साथ ले लिया। महाप्रभु मधुवन, तालवन, कुमुदवन और बहुलावन गये तथा प्रेममें आविष्ट होकर वहाँ-वहाँपर स्नान किया॥ 192-193॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वन'*—बारह वन; श्रीयमुनाके पूर्वभागमें—भद्रवन, बेलवन, लौहवन, भाण्डीर-वन और महावन—ये पाँच वन हैं। यमुनाके पश्चिमभागमें—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदीरवन और वृन्दावन—ये सात वन हैं॥ 192॥

गो-पालन दर्शन और व्रजलीलाकी स्मृतिसे प्रेमावेश :—

पथे गाभीघटा चरे प्रभुरे देखिया।
प्रभुके बेड़य आसि' हुङ्कार करिया॥ 194॥

गाभी देखि' स्तब्ध प्रभु प्रेमेर तरङ्गे।
वात्सल्ये गाभी प्रभुर चाटे सब-अङ्गे॥ 195॥

सुस्थ हञा प्रभु करे अङ्ग-कण्डूयन।
प्रभु-सङ्गे चले, नाहि छाड़े धेनुगण॥ 196॥

कष्टे-सृष्ट्ये धेनु सब राखिल गोयाल।
प्रभुकण्ठध्वनि शुनि' आइसे मृगीपाल॥ 197॥

अनुवाद—मार्गमें गौओंका झुण्ड चर रहा था। जैसे ही उन्होंने महाप्रभुको देखा, उसी समय उन्होंने महाप्रभुको चारों ओरसे घेर लिया और वे जोरसे रँभाने लगीं। गौओंको देखकर महाप्रभुके हृदयमें प्रेमकी लहर आयी और वे स्तब्ध हो गये और गौवें वात्सल्य-भावसे महाप्रभुके शरीरको चाटने लगीं। तब महाप्रभु अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आये और वे गौओंके अङ्गोंको सहलाने लगे। गौवें उन्हें छोड़ना नहीं चाह रही थीं, वे महाप्रभुके साथ ही चलने लगीं। ग्वालोंने किसी प्रकार बड़ी कठिनाईसे अपनी गौओंको रोका। उसके बाद जब महाप्रभु कुछ कीर्तन करने लगे, तब उनकी मधुर ध्वनिको सुनकर हिरणोंका झुण्ड उनके निकट आ गया॥ 194-197॥

महाप्रभुके दर्शनसे मृग-दम्पतियोंको सुख :—

मृग-मृगी मुख देखि' प्रभु-अङ्ग चाटे।
भय नाहि करे, सङ्गे याय बाटे-बाटे॥ 198॥

अनुवाद—हिरण और हिरणियाँ महाप्रभुके मुखको देखकर उनके शरीरको चाटने लगे। बिना किसी भयके वे मार्गमें महाप्रभुके साथ-साथ ही चल रहे थे॥ 198॥

महाप्रभुके दर्शनसे पक्षियोंका कलरव करना और हर्ष :—

शुक, पिक, भृङ्ग प्रभुरे देखि' 'पञ्चम' गाय।
शिखिगण नृत्य करि' प्रभु-आगे याय॥ 199॥

अनुवाद—तोते, कोयलादि पक्षी और भँवरे महाप्रभुको देखकर 'पञ्चम' स्वरमें गान करने लगे तथा मयूर नृत्य करते हुए महाप्रभुके आगे चलने लगे॥ 199॥

वृक्ष और लताओंके द्वारा भी पुलकाश्रु-वर्षण :—

प्रभु देखि' वृन्दावनेर वृक्ष-लतागणे।
अङ्कुर-पुलक, मधु-अश्रु वरिषणे॥ 200॥

फूल-फल भरि' डाल पड़े प्रभु-पाय।
बन्धु देखि' बन्धु येन 'भेट' लञा याय॥ 201॥

अनुवाद—महाप्रभुको देखकर वृन्दावनके वृक्ष और लताएँ आनन्दसे अङ्कुरित तथा पुलकित हो उठे। वे मधुके रूपमें प्रेमाश्रु बहाने लगे। वृक्ष और लताएँ फूलों और फलोंके भारसे महाप्रभुके चरणोंमें झुककर उनको (फूलों-फलोंको) उपहारके रूपमें देते हुए उनका अभिवादन करने लगे मानो महाप्रभु उनके मित्र हों॥ 200-201॥

महाप्रभुके दर्शनसे स्थावर, जङ्गम, सभीमें ही हर्ष और महाप्रभुके साथ क्रीड़ा :—

प्रभु देखि' वृन्दावनेर स्थावर-जङ्गम।
आनन्दित—बन्धु येन देखे बन्धुगण॥ 202॥

ता-सबार प्रीति देखि' प्रभु भावावेशे।
सबा-सने क्रीड़ा करे, हञा तार वशे॥ 203॥

प्रति वृक्ष-लता प्रभु करेन आलिङ्गन।
पुष्पादि ध्याने करेन कृष्णे समर्पण॥ 204॥

अनुवाद—महाप्रभुको देखकर वृन्दावनके चल और अचल प्राणी ऐसे आनन्दित हो रहे थे जैसे बन्धुको देखकर बन्धु प्रसन्न होते हैं। उन सबकी प्रीतिको देखकर महाप्रभु भावावेशमें आ गये। उन सबके साथ वे मित्रवत् क्रीड़ा करने लगे। इस प्रकार वे स्वतः ही उनके वशीभूत हो गये थे। महाप्रभु प्रत्येक वृक्ष और लताको आलिङ्गन करने लगे और उनके पुष्प-फलादिको ध्यानके माध्यमसे श्रीकृष्णको समर्पित करने लगे॥ 202-204॥

श्रीकृष्णप्रेममें प्रमत्त महाप्रभु :—

अश्रु-कम्प-पुलक-प्रेमे शरीर अस्थिरे।
'कृष्ण' बल, 'कृष्ण' बल बले उच्चैःस्वरे॥ 205॥

अनुवाद—महाप्रभुका शरीर प्रेममें अस्थिर हो रहा था, उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा उनके शरीरमें कम्प और पुलक हो रहा था। वे बहुत ऊँचे स्वरमें 'कृष्ण बोलो', 'कृष्ण बोलो' कह रहे थे॥ 205॥

महाप्रभुके श्रीकृष्णकीर्तनसे सभीके द्वारा श्रीकृष्ण-ध्वनि :—

स्थावर-जङ्गम मिलि' करे कृष्णध्वनि।
प्रभुर गम्भीर-स्वरे येन प्रतिध्वनि॥ 206॥

अनुवाद—चल और अचल प्राणी, सभी मिलकर कृष्ण-कृष्ण कह रहे थे, मानो वे सब महाप्रभुके गम्भीर स्वरकी प्रतिध्वनि कर रहे थे॥ 206॥

हिरणके साथ महाप्रभुका प्रेम-क्रन्दन :—

मृगेर गला धरि' प्रभु करेन रोदने।
मृगेर पुलक अङ्गे, अश्रु नयने॥ 207॥

अनुवाद—महाप्रभु तब हिरणोंके गलोंको पकड़कर रोने लगे। हिरणोंके अङ्ग पुलकित हो गये और उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे॥ 207॥

श्रीकृष्ण और राधाके स्वपक्षीय शुक तथा
सारीके गानका श्रवण :—

वृक्षडाले शुक-शारी दिल दरशन।
ताहा देखि' प्रभुर किछु शुनिते हैल मन॥ 208॥

शुक-शारिका प्रभुर हाते उड़ि' पड़े।
प्रभुके शुनाञा कृष्णेर गुण-श्लोक पड़े॥ 209॥

अनुवाद—जब वृक्षकी डालके ऊपर शुक और सारी (तोता और मैना) आकर बैठे, उन्हें देखकर महाप्रभुकी उनसे कुछ सुननेकी इच्छा हुई। शुक और सारी उड़कर महाप्रभुके हाथपर आकर बैठ गये तथा शुक श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करते हुए महाप्रभुको श्लोक सुनाने लगा॥ 208-209॥

शुकके द्वारा श्रीकृष्णके गुणोंका गान :—
गोविन्दलीलामृत (13/29)—

सौन्दर्यं ललनालिधैर्यदलनं लीला रमास्तम्भिनी
वीर्यं कन्दुकिताद्रिवर्यममलाः पारे-परार्द्धं गुणाः।
शीलं सर्वजनानुरञ्जनमहो यस्यायमस्मत्प्रभुर्विश्वं
विश्वजनीनकीर्त्तिरवतात् कृष्णो जगन्मोहनः॥ 210॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 210॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीशुकने कहा,—जिनका सौन्दर्य रमणियोंके धैर्यका हरण करता है, जिनकी लीला लक्ष्मीदेवीको स्तम्भित करती है, जिनका बल गोवर्धन पर्वतको गेंदकी भाँति खेलनेकी सामग्री बना देता है, जिनके सब अमल गुण परार्द्धातीत (अनन्त) हैं, जिनका शील-धर्म सभीको आनन्दित करता है, जगतवासियोंके हितकारीरूपमें जिनकी कीर्ति है, वे जगन्मोहन श्रीकृष्ण विश्वका पालन करें॥ 210॥

अनुभाष्य—

यस्य (कृष्णस्य) सौन्दर्यं (मनोहररूपं) ललनालि-धैर्य-दलनं (ललनालीनां व्रजाङ्गनासमूहानां धैर्यं दलयितुं शीलं यस्य तत्), यस्य लीला (चिद्विलासमयी क्रीड़ा) रमा-स्तम्भिनी (रमां स्तम्भयितुं क्षोभयितुं शीलं यस्याः सा), यस्य वीर्यं (पराक्रमः), कन्दुकिताद्रिवर्यं (कन्दुकितः कन्दुकीकृतः अद्रिवर्यः गिरिराजः गोवर्धनः येन तत्), यस्य पारे-परार्द्धं (परार्द्धस्य पारं गताः अपरिमेयाः इत्यर्थः) अमलाः (दोषरहिताः) गुणाः, अहो यस्य शीलं (चरितं) सर्वजनानुरञ्जनं (सर्वेषां जनानां भक्तानाम् अनुरञ्जनम् आनन्द-विधायकं) सः अयम् अस्मत्प्रभुः (मादृशदासानाम् एकगतिः) विश्वजनीनकीर्त्तिः (सर्वजनानां हिताय कीर्त्तिः यशः यस्य सः) जगन्मोहनः (भुवन-सुन्दरः) कृष्णः विश्वम् अवतात् (रक्षतु)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 210॥

शुक-मुखे शुनि' तबे कृष्णेर वर्णन।
शारिका पड़ये तबे राधिका-वर्णन॥ 211॥

अनुवाद—शुकके मुखसे श्रीकृष्णका गुणगान सुनकर सारिका (मैना) श्रीमती राधिकाके गुणोंका वर्णन करने लगी॥ 211॥

सारीके द्वारा श्रीराधिकाका गुण-गान :—
गोविन्दलीलामृत (13/30)—

श्रीराधिकायाः प्रियता स्वरूपता
सुशीलता नर्त्तनगानचातुरी।
गुणालिसम्पत् कविता च राजते
जगन्मनोमोहन-चित्तमोहिनी॥ 212॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 212॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सारीने कहा,—श्रीमती राधिकाकी प्रियता, स्वरूपता [अर्थात् महाभावस्वरूपिणी], सुशीलता, नृत्य-गान-चातुरी, कवित्व आदि गुणराशि भुवनमोहन श्रीकृष्णकी चित्त-विमोहनी बनकर शोभा पा रही है॥ 212॥

अनुभाष्य—

श्रीराधिकायाः प्रियता (प्रेम), स्वरूपता (असाधारणसौन्दर्यं, स्वम् आत्मानं रूप्यते निरूप्यते येन तत्, महाभावस्वरूपं वा), सुशीलता (शोभनं शीलं सुचरितं) नर्त्तन-गानचातुरी (नर्त्तनं गानञ्च तयोः चातुरी नैपुण्यं वैदग्ध्यं वा) गुणालि-सम्पत् (गुणानां आली श्रेणी, सैव सम्पत्तिः), कविता (कवित्वं)—सर्वा च जगन्मनोमोहन-चित्तमोहिनी (जगन्मनोमोहनस्य भुवनमोहनस्य कृष्णस्य मनोमोहिनी आनन्दिनी एव) राजते (विराजते)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 212॥

पुनः शुक कहे,—कृष्ण 'मदनमोहन'।
तबे आर श्लोक शुक करिल पठन॥ 213॥

अनुवाद—पुनः शुकने कहा,—श्रीकृष्ण तो 'मदनमोहन' हैं। तब शुकने एक और श्लोक पढ़ा॥ 213॥

शुकका गान,—श्रीकृष्ण ही 'मदनमोहन' :—
गोविन्दलीलामृत (13/31)—

वंशीधारी जगन्नारी-चित्तहारी स शारिके।
विहारी गोपनारीभिर्जीयान्मदनमोहनः॥ 214॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 214॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शुकने कहा,—हे सारिके, वे वंशीधारी जगत्की नारियोंके चित्तका हरण करनेवाले, गोपनारियोंके साथ विहार करनेवाले मदनमोहन जययुक्त हों॥ 214॥

अनुभाष्य—

हे शारिके, वंशीधारी (मुरलीधरः) जगन्नारीचित्तहारी (जगतां चतुर्दशभुवनानां नारीणां चित्तचौरः) गोपनारीभिः (व्रजाङ्गनाभिः सार्द्धं) विहारी (केलिरतः), सः (प्रसिद्धः) मदनमोहनः जीयात् (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 214॥

पुनः शारी कहे शुके करि' परिहास।
ताहा शुनि' प्रभुर हैल विस्मय-प्रेमोल्लास॥ 215॥

अनुवाद—पुनः सारिका शुकसे परिहास करते हुए कुछ कहने लगी, जिसे सुनकर महाप्रभुको आश्चर्यजनक प्रेमोल्लास हुआ॥ 215॥

सारीका गान,—श्रीकृष्णके मदनमोहन
होनेका मुख्य कारण श्रीराधा :—
गोविन्दलीलामृत (13/32)में—

राधा-सङ्गे यदा भाति तदा 'मदनमोहनः'।
अन्यथा विश्वमोहोऽपि स्वयं 'मदनमोहितः'॥ 216॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 216॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सारिकाने परिहास करते हुए उत्तर दिया,—श्रीकृष्ण जब श्रीराधाके साथ शोभा पाते हैं, तभी वे 'मदनमोहन' हैं। श्रीराधाके साथमें नहीं रहनेपर विश्वमोहन होनेपर भी वे स्वयं ही मदनके द्वारा मोहित होते हैं॥ 216॥

अनुभाष्य—

हे शुक, यदा कृष्णः राधासङ्गे भाति (विराजते) तदा [एव] स कृष्णः—'मदनमोहनः'; अन्यथा (राधासङ्गरहितः सन् स कृष्णः) स्वयम् [एव] विश्वमोहः (विश्वमोहनः) अपि स्वयं मदनमोहितः (मदनेन कन्दर्पेण मोहितः—"इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्गबाण-व्रणखिन्नमानसः इति न्यायात्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [मदनके द्वारा मोहितका उदाहरण, 'श्रीगीतगोविन्द', तृतीय सर्गमें]—(अनङ्गबाणसे जर्जरित श्रीकृष्ण 'हाय'! मैंने श्रीराधाका क्यों परित्याग किया—मेरा उनके साथ कैसे मिलन होगा—इस प्रकार अनुतापयुक्त होकर श्रीराधाका इधर उधर अन्वेषण करने लगे।)॥ 216॥

मयूरके दर्शनसे महाप्रभुको श्रीकृष्णके
रूपकी स्मृति और मूर्च्छा :—

शुक-शारी उड़ि' पुनः गेल वृक्षडाले।
मयूरेर नृत्य प्रभु देखे कुतूहले॥ 217॥

मयूरेर कण्ठ देखि' प्रभुर कृष्णकान्ति-स्मृति हैल।
प्रेमावेशे महाप्रभु भूमिते पड़िल॥ 218॥

अनुवाद—शुक और सारिका उड़कर पुनः वृक्षकी डालपर जाकर बैठ गये और महाप्रभु कौतुहलपूर्वक मयूरके नृत्यको देखने लगे। मयूरके नीले कण्ठको देखकर महाप्रभुको श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिकी स्मृति हो आयी और वे प्रेमके आवेशमें भूमिपर गिर पड़े॥ 217-218॥

भट्टाचार्यके साथ ब्राह्मणकी महाप्रभुकी शुश्रूषा :—

प्रभुरे मूर्च्छित देखि' सेइ त' ब्राह्मण।
भट्टाचार्य-सङ्गे करे प्रभुर सन्तर्पण॥ 219॥

आस्ते-व्यस्ते महाप्रभुर लञा बहिर्वास।
जलसेक करे अङ्गे, वस्त्रेर वातास॥ 220॥

अनुवाद—महाप्रभुको मूर्च्छित देखकर वे ब्राह्मण बलभद्र भट्टाचार्यके साथ महाप्रभुकी सेवा करनेमें लग गये। उन्होंने शीघ्रतासे महाप्रभुके शरीरपर जल छिड़का और उनके बहिर्वास वस्त्रको लेकर उससे हवा करने लगे॥ 219-220॥

अनुभाष्य—*'सन्तर्पण'*—यत्नपूर्वक सेवा॥ 219॥

सतरहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

महाप्रभुके कानमें श्रीकृष्णनामका उच्चारण,
महाप्रभुमें चेतनता और उनका लोट-पोट खाना :—

प्रभु-कर्णे कृष्णनाम कहे उच्च करि'।
चेतन पाञा प्रभु या'न गड़ागड़ि॥ 221॥

अनुवाद—वे महाप्रभुके कानमें उच्च स्वरसे श्रीकृष्णनाम सुनाने लगे। श्रीकृष्णनाम सुनकर महाप्रभुकी चेतनता तो लौट आयी, किन्तु अभी भी प्रेमावेशमें वे भूमिपर लोट-पोट खाने लगे॥ 221॥

भट्टके प्रयत्नसे महाप्रभुका आवेश शान्त होना :—

कण्टक-दुर्गम वने अङ्ग क्षत हैल।
भट्टाचार्य कोले करि' प्रभुरे सुस्थ कैल॥ 222॥

अनुवाद—काँटोंसे भरे दुर्गम वनमें भूमिपर लोटनेसे महाप्रभुके अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। बलभद्र भट्टाचार्यने महाप्रभुको गोदमें लेकर उनके आवेशको कुछ शान्त किया॥ 222॥

प्रेमावेशमें महाप्रभुके द्वारा हरिध्वनि :—

कृष्णावेशे प्रभुर प्रेमे गरगर मन।
'बोल्' 'बोल्' करि' उठि' करेन नर्त्तन॥ 223॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके आवेशमें महाप्रभुका मन प्रेममें विचलित हो रहा था। वे उसी समय उठ खड़े हुए और [क्योंकि वे श्रीकृष्णनाम सुनना चाहते थे, इसलिये] 'बोलो', 'बोलो' कहकर नृत्य करने लगे॥ 223॥

श्रीकृष्णनामकीर्तन, महाप्रभुकी यात्रा :—

भट्टाचार्य, सेइ विप्र 'कृष्णनाम' गाय।
नाचिते नाचिते पथे प्रभु चलि' याय॥ 224॥

अनुवाद—महाप्रभुकी आज्ञानुसार बलभद्र भट्टाचार्य और वे ब्राह्मण—दोनों श्रीकृष्णनामका कीर्तन करने लगे। तब महाप्रभु नाचते-नाचते मार्गमें चल पड़े॥ 224॥

ब्राह्मणको विस्मय और महाप्रभुके लिये चिन्ता :—

प्रभुर प्रेमावेश देखि' ब्राह्मण—विस्मित।
प्रभुर रक्षा लागि' विप्र हइला चिन्तित॥ 225॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रेमावेशको देखकर ब्राह्मण विस्मित हो गये। तब वे महाप्रभुकी रक्षाके लिये चिन्ता करने लगे॥ 225॥

पुरीकी अपेक्षा वृन्दावन-यात्राके पथमें अधिक प्रेमावेश :—

नीलाचले छिला यैछे प्रेमावेश मन।
वृन्दावन याइते पथे हैल शतगुण॥ 226॥

अनुवाद—महाप्रभुका मन नीलाचलमें जैसे प्रेमके आवेशमें रहता था, वृन्दावन जानेके पथमें वह सौ-गुणा अधिक प्रेमके आवेशमें डूब गया था॥ 226॥

यात्रा-पथकी अपेक्षा मथुराके दर्शनसे, और उसकी अपेक्षा
वृन्दावनके भ्रमणमें अधिक प्रेम :—

सहस्रगुण प्रेम बाड़े मथुरा-दरशने।
लक्षगुण प्रेम बाड़े, भ्रमेण यबे वने॥ 227॥

साक्षात् वृन्दावनमें आकर प्रतिक्षण
गाढ़-श्रीकृष्णप्रेममें निमग्न :—

अन्य-देशे प्रेम उछले 'वृन्दावन'-नामे।
साक्षात् भ्रमये एबे सेइ वृन्दावने॥ 228॥

अभ्यासवश दैनिक कृत्यादिका सम्पन्न होना :—

प्रेमे गरगर मन रात्रि-दिवसे।
स्नान-भिक्षादि-निर्वाह करेन अभ्यासे॥ 229॥

अनुवाद—मथुराके दर्शनसे उनका प्रेम हजार गुणा बढ़ गया था। परन्तु जब महाप्रभु वृन्दावनके वनोंमें

भ्रमण कर रहे थे, तब वह प्रेम लाख गुणा बढ़ गया था। जब महाप्रभु अन्य स्थानोंपर होते थे, तब वृन्दावनके नामसे ही उनमें प्रेमावेश आ जाता था। अब जब वे साक्षात् उस वृन्दावनमें भ्रमण कर रहे थे, तब महाप्रभुका मन दिन-रात प्रेममें निमग्न रहता था। स्नान-भोजनादिका निर्वाह तो वे अभ्यासवशतः कर रहे थे॥ 227–229॥

महाप्रभुका यह प्रेम अवर्णनीय :—

एइमत प्रेम, यावत् भ्रमिल 'बार' वन।
एकत्र लिखिलुँ, सर्वत्र ना याय वर्णन॥ 230॥

अनुवाद—इसलिये महाप्रभुके बारह वनोंका भ्रमण करते हुए जैसा प्रेमावेश प्रकाशित हो रहा था, उसे मैंने एक ही स्थानपर सब लिख दिया है। विस्तारसे उसका सम्पूर्ण विवरण प्रदान करना सम्भव नहीं है॥ 230॥

भगवान् शेषकी भी महाप्रभुके वृन्दावनमें भ्रमण करते समय प्रेमके वर्णनमें असमर्थता :—

वृन्दावने हैल प्रभुर यतेक प्रेमेर विकार।
कोटि-ग्रन्थे 'अनन्त' लिखेन ताहार विस्तार॥ 231॥

इस अध्यायमें उसका दिग्दर्शन मात्र ही वर्णित :—

तबु लिखिबारे नारे तार एक कण।
उद्देश करिते करि दिग्दरशन॥ 232॥

अनुवाद—वृन्दावनमें महाप्रभुमें जितना प्रेमका विकार हुआ, करोड़ों ग्रन्थोंमें लिखकर श्रीअनन्तदेव उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं, किन्तु तब भी वे उसके एक कणको भी नहीं लिख पाते। इसलिये मैं तो केवल उसको इङ्गित करनेके लिये दिग्दर्शन मात्र ही करवा रहा हूँ॥ 231–232॥

श्रीकृष्णप्रीतिकी गाढ़ताके परिमाणके अनुसार ही श्रीकृष्णचैतन्यकी लीलाकी बाढ़का स्पर्श :—

जगत् भासिल चैतन्यलीलार पाथारे।
याँर यत शक्ति तत पाथारे साँतारे॥ 233॥

अनुवाद—समस्त जगत् श्रीचैतन्यलीलाकी बाढ़में डूब गया। जिसमें जितनी शक्ति है, उतना ही वह उस बाढ़के जलमें तैरता है॥ 233॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पाथार'*—जलकी वृद्धिरूपी बाढ़॥ 233॥

सतरहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 234॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे श्रीवृन्दावनगमनं नाम सप्तदश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 234॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें श्रीवृन्दावनगमन नामक सतरहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

अठारहवाँ अध्याय

कथासार—आरिट-ग्राममें राधाकुण्ड और श्याम-कुण्डका आविष्कार करके महाप्रभुने गोवर्धनमें 'हरिदेव'के दर्शन किये। महाप्रभु गोवर्धनके ऊपर चढ़कर श्रीगोपालका दर्शन नहीं करेंगे, इसलिये म्लेच्छोंके भयके 'छल'से श्रीगोपाल अन्नकूटग्राम (अन्यौर)से बाहर निकलकर गाठोली ग्राममें आ गये। महाप्रभुने गाठोली ग्राममें जाकर उनके दर्शन किये। भक्तवर श्रीरूप गोस्वामीको कृपापूर्वक दर्शन देनेके लिये श्रीगोपाल उसके बहुत दिनोंके बाद मथुरामें विट्ठलेश्वरके मन्दिरमें आकर 'एक मास' तक रहे थे—इस प्रसङ्गको श्रीकविराज गोस्वामीने इसी प्रसङ्गमें लिखा है। महाप्रभुने नन्दीश्वर, पावन-सरोवर, शेषशायी, खेलातीर्थ, भाण्डीर-वन, भद्रवन, लौहवन, महावन आदिके दर्शन किये और गोकुलके दर्शन करके मथुरामें लौट आये। अक्रूरघाटमें रहकर प्रतिदिन वृन्दावनमें जाकर कालीय-ह्रद, द्वादशदित्य-घाट, केशीघाट, रासस्थली, चीरघाट, इमलीतला आदिके दर्शन करने लगे। कालीय ह्रदमें रात्रिमें मछली पकड़नेवाले मछुवारेको 'श्रीकृष्ण' समझकर बहुतसे लोग आकर उनको ढूँढ़ने लगे थे। किन्तु महाप्रभुके दर्शन करके उनकी बुद्धिका भ्रम दूर होनेपर सभीको उनमें श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हुई। परन्तु महाप्रभुने स्वयंको संन्यासी अर्थात् एक चित्कण जीवके रूपमें कहा। महाप्रभु अक्रूरघाटमें बहुत समय तक डूबे रहे, इसलिये बलभद्र भट्टाचार्यने उनको व्रजमण्डलसे प्रयाग ले जानेका निश्चय किया। 'सोरो-क्षेत्रमें गङ्गास्नान करके प्रयाग जायेंगे' उन्होंने ऐसा सोचकर यात्रा की। मार्गमें एक ग्राममें कुछ पठान घुड़सवारोंको साथ लेकर आते हुए बिजली खाँने महाप्रभुको प्रेमावेशमें मूर्च्छित देखा। 'उनके साथी उन्हें धतूरा खिलाकर मारकर उनका धन ले रहे हैं',—ऐसा कहकर उसने महाप्रभुके साथियोंको बाँध दिया। प्रेमावेशके भङ्ग होनेपर महाप्रभुका बिजली-खाँके दलके एक म्लेच्छ आचार्यके साथ वार्तालाप और शास्त्र विचार होनेपर महाप्रभुने 'कुरान-शास्त्र'से ही 'श्रीकृष्णभक्ति'को स्थापित किया। बिजली-खाँ और उसके अनुगत घुड़सवार महाप्रभुके चरणोंका आश्रय करके 'श्रीकृष्णभक्त' बन गये। उस स्थानपर आज भी 'पठान-वैष्णवोंका ग्राम' नामक एक ग्राम देदीप्यमान है। सोरोमें गङ्गास्नान करके महाप्रभु त्रिवेणीमें पहुँच गये।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

वृन्दावनमें भ्रमण करनेवाले श्रीगौरसुन्दर :—

वृन्दावने स्थिरचरान्नन्दयन् स्वावलोकनैः।
आत्मानञ्च तदालोकाद्गौराङ्गः परितोऽभ्रमत्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वृन्दावनमें अपने दर्शनके द्वारा स्थावर-जङ्गमको आनन्द प्रदान करके और उनके दर्शन करके स्वयं आनन्दित होकर श्रीगौराङ्गचन्द्र चारों ओर भ्रमण करने लगे॥1॥

अनुभाष्य—

गौराङ्गः वृन्दावने स्वावलोकनैः (स्वस्य अवलोकनैः चक्षुर्भिः) स्थिरचरान् (स्थावरान् जङ्गमांश्च) तदालोकात् (स्थावरादीनाम् अवलोकं प्राप्य) आत्मानञ्च नन्दयन् परितः (इतस्ततः) अभ्रमत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्रकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, समस्त गौरभक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

आरिट्-ग्राममें आकर बाह्यदशाकी प्राप्ति :—

एइमत महाप्रभु नाचिते नाचिते।
'आरिट्'-ग्रामे आसि' 'बाह्य' हैल आचम्बिते॥3॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करते-करते आरिट्-ग्राममें पहुँचे। वहाँपर आकर उन्हें अचानक बाह्यज्ञान हुआ॥3॥

अनुभाष्य—*'आरिट्'*—'अरिष्ट'-ग्राम, वर्तमान समयमें 'अरिङ्ग'के नामसे जाना जाता है॥3॥

वहाँ राधाकुण्डके विषयमें जिज्ञासा,
सभी उस विषयमें अनजान :—

अरिष्टे राधाकुण्ड-वार्त्ता पुछे लोक-स्थाने।
केह नाहि कहे, सङ्गेर ब्राह्मण ना जाने॥4॥

श्रीराधा-भाव-कान्तिसे युक्त श्रीगौरके द्वारा लुप्त
श्रीराधाकुण्डका प्रकाश :—

तीर्थ 'लुप्त' जानि', प्रभु सर्वज्ञ भगवान्।
दुइ धान्यक्षेत्रे अल्पजले कैला स्नान॥5॥

देखि' सब ग्राम्य-लोकेर विस्मय हैल मन।
प्रेमे प्रभु करे राधाकुण्डेर स्तवन॥6॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥4-6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आरिट्ग्राम'*,—जहाँ अरिष्टासुरका वध हुआ था, वहाँ आकर महाप्रभुने 'राधाकुण्ड कहाँ है?'—यह बात सबसे पूछी; किन्तु कोई भी नहीं बता पाया और उनके सङ्गी ब्राह्मण भी इस विषयमें नहीं जानते थे। महाप्रभु यह जान गये कि वह तीर्थ 'लुप्त' हो गया है। तब सर्वज्ञ भगवान्ने निकटमें स्थित दो धानके खेतोंमें जो थोड़ा-थोड़ा जल था, उनमें स्नान किया। इसलिये ये धानके खेत ही राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड हैं, ऐसा सूचित हुआ। [प्रेममें डूबकर महाप्रभु तब राधाकुण्डकी स्तुति करने लगे।]॥4-6॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीराधासे अभिन्न
श्रीराधाकुण्डकी महिमाका स्तव :—

"सब गोपी हैते राधा कृष्णेर प्रेयसी।
तैछे राधाकुण्ड—प्रिय, 'प्रियार सरसी'॥7॥

अनुवाद—"सब गोपियोंमेंसे श्रीमती राधिका श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्णको राधाकुण्ड अत्यधिक प्रिय है, क्योंकि वह श्रीमती राधिकाका अति प्रिय कुण्ड है॥7॥

पद्मपुराण-वाक्य :—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥8॥

अनुवाद—श्रीराधिका जिस प्रकार श्रीकृष्णकी प्रिया हैं, राधाकुण्ड भी वैसे ही उनका प्रिय स्थान है। सभी गोपियोंमें श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रिया हैं॥8॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/215 संख्या देखें॥8॥

येइ कुण्डे नित्य कृष्ण राधिकार सङ्गे।
जले जलकेलि करे, तीरे रास-रङ्गे॥9॥

सेइ कुण्डे येइ एकबार करे स्नान।
ताँरे राधा-सम 'प्रेम' कृष्ण करे दान॥10॥

कुण्डेर 'माधुरी'—येन राधार 'मधुरिमा'।
कुण्डेर 'महिमा'—येन राधार 'महिमा'॥"11॥

अनुवाद—जिस कुण्डमें श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाके साथ नित्य जलमें जलक्रीड़ा करते हैं और उसके तटपर आनन्दपूर्वक रास लीला करते हैं, उसी कुण्डमें जो एकबार भी स्नान करता है, श्रीकृष्ण उन्हें श्रीमती राधिकाके समान प्रेम प्रदान करते हैं। राधाकुण्डकी 'माधुरी' श्रीमती राधिकाकी 'मधुरिमा'के समान है और कुण्डकी 'महिमा' भी श्रीमती राधिकाकी 'महिमा'के समान है॥9-11॥

श्रीराधाकुण्डकी महिमा और माधुर्य अवर्णनीय :—
श्रीगोविन्दलीलामृत (7/102)में—

श्रीराधेव हरेस्तदीय-सरसी प्रेष्ठाद्भुतैः स्वैर्गुणै-
र्यस्यां श्रीयुत्-माधवेन्दुरनिशं प्रीत्या तया क्रीड़ति।
प्रेमास्मिन् बत राधिकेव लभते यस्यां सकृत् स्नानकृत्
तस्या वै महिमा तथा मधुरिमा केनास्तु वर्ण्यः क्षितौ॥ 12॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 12॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वह राधाकुण्ड-सरोवर श्रीराधाकी भाँति अपने अद्भुत गुणोंसे श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय है। उस कुण्डमें श्रीकृष्णचन्द्र सदा श्रीराधाके साथ क्रीड़ा करते हैं। उस कुण्डमें एकबार स्नान करनेपर (श्रीकृष्णमें) श्रीराधिका जैसा प्रेम प्राप्त होता है; इसलिये इस जगत्में श्रीराधाकुण्डकी महिमा और मधुरिमाका कौन वर्णन कर सकता है?॥ 12॥

अनुभाष्य—

श्रीराधा इव तदीय-सरसी (राधाकुण्डं) स्वैः अद्भुतैः (अपूर्वैः) गुणैः हरेः (कृष्णस्य) प्रेष्ठा (परमप्रीतिप्रदा);—यस्यां (सरस्यां) श्रीयुतमाधवेन्दुः (श्रीकृष्णचन्द्रः) तया (राधया सह) प्रीत्या अनिशम् (अविरतं) क्रीड़ति, बत (अहो इति विस्मयार्थे) यस्यां (सरस्यां) सकृत् (बारमेकं) स्नानकृत् (अवगाहनकारी) अस्मिन् (कृष्णे) राधिका इव प्रेमा लभते तस्याः (राधा-सरस्याः) महिमा तथा मधुरिमा च क्षितौ (धरायां) केन (जनेन) वर्ण्यः (वर्णनीयः—न कोऽपि निर्णेतुं समर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 12॥

प्रेमावेशमें महाप्रभुके द्वारा स्तुति :—

एइमत स्तुति करे प्रेमाविष्ट हञा।
तीरे नृत्य करे कुण्डलीला स्मरिया॥ 13॥

कुण्डकी मिट्टीसे महाप्रभुके द्वारा तिलक लगाना,
कुछ साथमें लेना :—

कुण्डेर मृत्तिका लञा तिलक करिल।
भट्टाचार्य-द्वारा मृत्तिका सङ्गे करि' लैल॥ 14॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर राधाकुण्डकी स्तुति कर रहे थे और कुण्डपर होनेवाली श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण करके उसके तटपर नृत्य कर रहे थे। महाप्रभुने कुण्डकी मिट्टीको लेकर अपने शरीरमें तिलक लगाये और बलभद्र भट्टाचार्यकी सहायतासे उन्होंने कुण्डकी कुछ मिट्टीको लिया तथा उसे अपने साथ ले गये॥ 13-14॥

कुसुम-सरोवरमें श्रीकृष्णसे अभिन्न
गोवर्धनके दर्शनसे प्रेम :—

तबे चलि' आइला प्रभु 'सुमनः-सरोवर'।
ताँहा 'गोवर्धन' देखि' हइला विह्वल॥ 15॥

गोवर्धन देखि' प्रभु हइला दण्डवत्।
'एक शिला' आलिङ्गिया हइला उन्मत्त॥ 16॥

अनुवाद—तब राधाकुण्डसे चलकर महाप्रभु 'कुसुम-सरोवर'पर आ गये। वहाँ गोवर्धनके दर्शन करके प्रेममें विह्वल हो गये। गोवर्धनको देखकर महाप्रभुने दण्डवत् प्रणाम किया। गोवर्धनकी 'एक शिला'को आलिङ्गन करके महाप्रभु उन्मत्त हो गये॥ 15-16॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सुमनः-सरोवर'*—कुसुम-सरोवर॥ 15॥

गोवर्धन-ग्राममें श्रीहरिदेव-दर्शन :—

प्रेमे मत्त चलि' आइला गोवर्धन-ग्राम।
'हरिदेव' देखि' ताँहा हइला प्रणाम॥ 17॥

'मथुरा'-पद्मेर पश्चिमदले याँर वास।
'हरिदेव' नारायण—आदि परकाश॥ 18॥

हरिदेव-आगे नाचे प्रेमे मत्त हञा।
सब लोक देखिते आइल आश्चर्य शुनिया॥ 19॥

अनुवाद—प्रेममें मत्त महाप्रभु कुसुम सरोवरसे चलकर गोवर्धन ग्राममें आ गये। वहाँ महाप्रभुने श्रीहरिदेवके दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। मथुरारूपी कमलके पश्चिम दलपर श्रीहरिदेवका वास है तथा वे

श्रीनारायणके आदि प्रकाश हैं। महाप्रभु प्रेममें मत्त होकर श्रीहरिदेवके आगे नृत्य करने लगे। महाप्रभुके अद्भुत रूप और प्रेमके विषयमें सुनकर सब लोग उन्हें देखनेके लिये आये॥ 17-19॥

महाप्रभुके दर्शनसे सभीको विस्मय; श्रीहरिदेवके सेवकोंके द्वारा महाप्रभुकी पूजा :—

प्रभु-प्रेम-सौन्दर्य देखि' लोके चमत्कार।
हरिदेवेर भृत्य प्रभुर करिल सत्कार॥ 20॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रेम तथा सौन्दर्यको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। श्रीहरिदेवके सेवकोंने महाप्रभुका बहुत आदर-सत्कार किया॥ 20॥

ब्रह्मकुण्डमें बलभद्रके द्वारा रसोई बनाना, महाप्रभुका स्नान और भोजन करना :—

भट्टाचार्य 'ब्रह्मकुण्डे' पाकयात्रा कैल।
ब्रह्मकुण्डे स्नान करि' प्रभु भिक्षा कैल॥ 21॥

अनुवाद—श्रीबलभद्र भट्टाचार्यने ब्रह्मकुण्डपर रसोई बनायी। महाप्रभुने ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेके बाद भोजन ग्रहण किया॥ 21॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पाक'*—चावल, सब्जी आदि बनाना॥ 21॥

श्रीहरिदेव मन्दिरमें रात्रि व्यतीत करना और गोवर्धन-स्थित श्रीगोपालके दर्शनकी चिन्ता :—

से-रात्रि रहिला हरिदेवेर मन्दिरे।
रात्र्ये महाप्रभु करे मनेते विचारे॥ 22॥

'गोवर्धन-उपरे आमि कभु ना चड़िब।
गोपाल-रायेर दरशन केमने पाइब!'॥ 23॥

अनुवाद—उस रात महाप्रभु श्रीहरिदेवके मन्दिरमें ही रहे और रात्रिमें विचार करने लगे कि 'मैं गोवर्धनके ऊपर तो कभी भी नहीं चढ़ूँगा, तब फिर मुझे गोपाल-रायके दर्शन किस प्रकार प्राप्त होंगे!'॥ 22-23॥

म्लेच्छके भयके छलसे श्रीगोपाल-ठाकुरके द्वारा महाप्रभुको दर्शन देना :—

एत मने करि' प्रभु मौन करि' रहिला।
जानिया गोपाल म्लेच्छभय-भङ्गी उठाइला॥ 24॥

अनुवाद—मनमें ऐसा विचार करके महाप्रभु मौन धारण करके रहे। महाप्रभुके मनकी बातको जानकर श्रीगोपालने म्लेच्छोंके भयकी चाल चली॥ 24॥

ग्रन्थकार-कृत श्लोक :—

अनारुरुक्षवे शैलं स्वस्मै भक्ताभिमानिने।
अवरुह्य गिरेः कृष्णो गौराय स्वमदर्शयत्॥ 25॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 25॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'गोवर्धन पर्वतपर नहीं चढ़ूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञासे युक्त और 'मैं कृष्णभक्त हूँ'—इस अभिमानसे युक्त श्रीगौरचन्द्रको श्रीगोपालने स्वयं गोवर्धनसे उतरकर दर्शन दिये॥ 25॥

अनुभाष्य—

गिरेः (गोवर्धनशैलस्य) [उच्चप्रदेशात्] अवरुह्य (अवतीर्य) शैलं (गोवर्धनगिरिम्) अनारुरुक्षवे (आरोढुमनिच्छवे) भक्ताभिमानिने (भजनीयवस्तुभेदेऽपि आत्मानं सेवकतया मन्यमानाय) स्वस्मै (आत्मने) गौराय (स्वरूपविग्रहाय कृष्णस्वरूपाय) स्वम् (आत्मानम्) अदर्शयत् (प्रदर्शयामास)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 25॥

म्लेच्छोंके दुराचारकी बातको लोगोंमें फैलाकर श्रीगोपालके द्वारा नीचे गाँठोलि-ग्राममें उतरना :—

'अन्नकूट'-नामे ग्रामे गोपालेर स्थिति।
राजपुत-लोकेर सेइ ग्रामे वसति॥ 26॥

अनुवाद—श्रीगोपाल उस समय गोवर्धनमें 'अन्नकूट' नामक ग्राममें विराजमान थे तथा उस ग्राममें राजपूत लोगोंका वास था॥ 26॥

अनुभाष्य—भक्तिरत्नाकरकी पाँचवीं तरङ्गमें,—

"गोपगोपी भुञ्जायेन कौतुक अपार।

एइ हेतु 'आनियोर' नाम से इहार॥
अन्नकूट-स्थान एइ देख, श्रीनिवास।
ए-स्थान-दर्शने हय पूर्ण अभिलाष॥"

[अर्थात् "इस स्थानपर गोप और गोपियोंने श्रीकृष्णके साथ अनेक कौतुक भरी लीलाएँ कीं थी, इसलिये इसका नाम 'आनियोर' है। हे श्रीनिवास! इस अन्नकूटके स्थानको देखो। इस स्थानके दर्शन करनेवालेकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं।"]

स्तवावलीके व्रजविलास-स्तवमें—

"व्रजेन्द्रवर्यार्पित-भोगमुच्चैर्धृत्वा बृहत्कायमघारिरुत्कः।
वरेण्यां राधां छलयन् विभुङ्क्ते यत्रान्नकूटं तदहं प्रपद्ये॥"

[अर्थात् "अघारि श्रीकृष्णने सर्वोत्तमा श्रीराधाको छलनेके लिये ऊँचा और विशाल शरीर धारण करके उत्सुकतावश व्रजेन्द्र श्रीनन्द महाराजके द्वारा अर्पित अन्नकूट-भोगका जिस स्थानपर भोजन किया था, मैं उस स्थानकी शरण ग्रहण करता हूँ।"]

"कुण्डेर निकट देख निविड़-कानन।
एथाइ 'गोपाल' छिला हञा सङ्गोपन॥"

[अर्थात् "कुण्डके निकट इस सघन वनको देखो, यहीं श्रीगोपालको छिपाकर रखा था।"]॥ 26॥

एकजन आसि' रात्र्ये ग्रामीके बलिल।
"तोमार ग्राम मारिते तुरुक-धारी साजिल॥ 27॥
आजि रात्र्ये पलाह, ना रहिह एकजन।
ठाकुर लञा भाग', आसिबे कालि यवन॥"28॥

अनुवाद—एक व्यक्तिने रात्रिके समय वहाँ आकर ग्रामवासियोंको कहा,—"पठान लोग तुम्हारे ग्रामके ऊपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहे हैं। इसलिये आज रातको ही तुम सब यहाँसे भाग जाओ, एक भी व्यक्ति यहाँ नहीं रहे। तुम लोग गोपाल ठाकुरको लेकर भाग जाओ, यवन लोग कल यहाँ आ जायेंगे॥"27-28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'तुरुक'*—एक विशेष मुसलमान (तुर्की अथवा पठान) सेना॥ 27॥

अनुभाष्य—*'ग्रामीके'*—ग्रामवासियोंको; *'तुरुकधारी'*—तुर्की-वेशधारी घुड़सवार सेना॥ 27॥

शुनिया ग्रामेर लोक चिन्तित हइल।
प्रथमे गोपाल लञा गाँठोलि-ग्रामे थुइल॥ 29॥

अनुवाद—यह सुनकर ग्रामके लोग चिन्तित हो गये। उन्होंने सबसे पहले श्रीगोपालको ले जाकर गाँठोलि ग्राममें छिपा दिया॥ 29॥

विप्रगृहे गोपालेर निभृते सेवन।
ग्राम उजाड़ हैल, पलाइल सर्वजन॥ 30॥

अनुवाद—एक ब्राह्मणके घरपर एकान्तमें श्रीगोपालकी सेवा होने लगी। ग्रामवासी सभी भाग गये, इसलिये अन्नकूट-ग्राम उजड़ गया॥ 30॥

ऐछे म्लेच्छभये गोपाल भागे बारे बारे।
मन्दिर छाड़ि' कुञ्जे रहे, किवा ग्रामान्तरे॥ 31॥

अनुवाद—इस प्रकार म्लेच्छोंके भयसे श्रीगोपालको बार-बार स्थानान्तर किया जा रहा था। वे मन्दिरको छोड़कर कभी कुञ्जमें रहते, तो कभी एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें स्थान बदलते रहते॥ 31॥

मानसी-गङ्गामें स्नान करनेके बाद गोवर्धनकी परिक्रमा :—

प्रातःकाले प्रभु 'मानसगङ्गा'य करि' स्नान।
गोवर्धन-परिक्रमाय करिला प्रयाण॥ 32॥

अनुवाद—प्रातःकालमें महाप्रभु मानसी-गङ्गामें स्नान करके गोवर्धनकी परिक्रमा करनेके लिये चल पड़े॥ 32॥

गोवर्धनके दर्शनसे प्रेमावेश :—

गोवर्धन देखि' प्रभु प्रेमाविष्ट हञा।
नाचिते नाचिते चलिला श्लोक पड़िया॥ 33॥

अनुवाद—गोवर्धनको देखकर महाप्रभु श्रीकृष्णप्रेममें आविष्ट हो गये। नाचते-नाचते चलते हुए उन्होंने एक श्लोकका उच्चारण किया॥ 33॥

श्रीगोवर्धन-स्तुति :—
श्रीमद्भागवत (10/21/18)में—

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सह-गोगणयोस्तयोर्यत्
पानीय-सुयवस-कन्दर-कन्दमूलैः॥ 34॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 34॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये गोवर्धन पर्वत—वैष्णवप्रधान हैं, क्योंकि ये श्रीबलराम-कृष्णके चरणोंके स्पर्शके आनन्दसे प्रफुल्लित होकर गौओं और गोपोंके साथ श्रीराम-कृष्णको पीनेका जल और खानेकी वस्तुएँ—घास-कन्द-मूलादि प्रदान करके उनकी पूजा कर रहे हैं॥ 34॥

अनुभाष्य—व्रजमें शरत्काल उपस्थित होनेपर श्रीकृष्णके द्वारा वन-वनमें गोचारण करते-करते वंशी बजानेपर गोपियाँ श्रीकृष्ण-सङ्गके लिये कामातुर होकर श्रीकृष्णकी मनोहर गुणावलीका गान करते हुए इधर-उधर भ्रमण करते-करते सामने व्रजेन्द्रनन्दनसे अभिन्न गिरिराज गोवर्धनको देखकर गा रही हैं—

हे अबलाः (सख्यः), हन्त (इति हर्षे) अयम् अद्रिः (गोवर्धनः) [ध्रुवं] हरिदासवर्यः (हरिदासानां श्रेष्ठः),—यत् (यस्मात्) रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः (रामकृष्णयोः चरणस्पर्शेन प्रमोदः, तृणाद्युद्गमनिभेन रोमहर्षदर्शनात्, यस्य तादृशः सन्); यत् (यस्मात् च) पानीय-सुयवसकन्दरकन्दमूलैः (पानीयैः सुयवसैः सुकोमलैः शोभनतृणैः कन्दरैः कन्दमूलैश्च) [यथोचितम् अयं] सहगोगणयोः (गोभिः गणेन सखिसमूहेन च सह वर्त्तमानयोः) तयोः (रामकृष्णयोः) मानं (समादरं) तनोति (विदधाति—अतोऽयमतिधन्यः इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—हे सखि! अहो ये गोवर्धन निश्चय ही हरिदासोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ये श्रीबलराम-कृष्णके चरणोंके स्पर्शके आनन्दसे प्रफुल्लित होकर गौओं और गोपोंके साथ श्रीराम-कृष्णको पीनेका जल और खानेकी वस्तुएँ—घास-कन्द-मूलादि प्रदान करके उनकी पूजा कर रहे हैं॥ 34॥

अमृतानुकणिका—जो लोग सांसारिक विषयोंमें आसक्त नहीं होकर भगवत्-सेवामें जीवन व्यतीत करते हैं, वे हरिदास हैं। श्रीमद्भागवतमें महाराज युधिष्ठिर, श्रीउद्धव और श्रीगिरिराज गोवर्धन—इन तीन महत् पुरुषोंको हरिदास कहा गया है।

बृहद्भागवतामृत (1/5/7)में नारदजीकी युधिष्ठिर महाराजके प्रति उक्ति—

"यूयं नृलोके वत भूरिभागा,
येषां प्रियोऽसौ जगदीश्वरेशः।
देवो गुरुर्बन्धुषु मातुलेयो,
दूतः सुहृत् सारथिरुक्तितन्त्रः॥"

अर्थात् "इस नरलोकमें आपलोग ही सौभाग्यशाली हैं। क्योंकि ब्रह्मा, रुद्र आदि ईश्वरोंके भी जो ईश्वर हैं, वे श्रीदेवकीनन्दन आप लोगोंके प्रिय हैं। श्रीदेवकीनन्दन आप लोगोंके केवल प्रिय ही नहीं हैं, अपितु इष्टदेव, गुरु और बान्धव, मातृसम्बन्धसे सम्बन्धित कुटुम्बी, दूत, सुहृद् और कभी सारथी भी हैं।" अतः श्रीमद्भागवतमें उन्हें जो हरिदासकी पदवी मिली है, वह सर्वथा उपयुक्त है।

उद्धवजी श्रीकृष्णके कैसे प्रिय हैं, इसे श्रीमद्भागवतमें कहा गया है। (भाः 10/46/1)—

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः॥

अर्थात् "परीक्षित! उद्धवजी वृष्णिवंशियोंमें प्रधान व्यक्ति थे। वे साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य और परम बुद्धिमान् थे। उनकी महिमाके सम्बन्धमें और कौनसी बात कही जा सकती है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा और मन्त्री थे।" (भाः 11/14/15)में श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखसे कहते हैं—

"न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥"

अर्थात् "उद्धव! तुम मेरे अत्यन्त प्रियपात्र हो। तुम मुझे जितने प्रिय हो, मेरा पुत्र आत्मयोनि ब्रह्मा, शङ्कर, सगे भाई बलरामजी, अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी, और तो

क्या मेरी आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं है।" अतः श्रीमद्भागवतमें उद्धवजीको जो हरिदासकी पदवी मिली है, वह सर्वथा उचित ही है। प्रेमपर भक्त युधिष्ठिर महाराजका प्रेम श्रीकृष्णकी भगवत्ताका ज्ञान रहनेके कारण कुछ शिथिल रहता है। इसलिये प्रेमातुर भक्त उद्धवजी इनसे श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्णने इन्हें गोपियोंसे प्रेमकी शिक्षा लेनेके लिये व्रजमें भेजा। वहाँ श्रीराधाके मादनाख्या महाभावके दर्शन करके उद्धवजी चमत्कृत हो गये और गोपियोंकी चरणधूलि प्राप्तिकी अभिलाषासे व्रजमें तृण, गुल्म, औषधि आदिके रूपमें जन्म ग्रहण करनेकी लालसा प्रकट की। इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये उन्होंने व्रजस्थित गिरिराज गोवर्धनका ही आश्रय लेना उचित समझा। अतः गोवर्धनके अङ्कमें स्थित कुसुम सरोवरके निकट तृणादिका जन्म ग्रहण किया। भविष्य-पुराणके अनुसार रसिकवर गोवर्धन श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्ति श्रीराधिकाजीके हृदयसे प्रकट हुए हैं। गोवर्धन तन, मन, धन, प्राणादि सर्वस्व न्योछावर करके श्रीकृष्ण और उनके सहगामियोंकी सब प्रकारसे मनोऽभीष्ट सेवा करते हैं, इसलिये गोपियाँ उन्हें हरिदासवर्य कह रही हैं। जिस दासकी सेवासे श्रीहरि आनन्दित होते हैं और जो दास श्रीहरिकी सेवाकर परमानन्दित होते हैं, वे दास ही श्रीहरिके दासोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। जो दास श्रीहरिकी सेवामें कुछ परिश्रम या क्लेश अनुभव करते हैं अथवा जिस दासकी सेवाको भगवान् अनिच्छापूर्वक ग्रहण करते हैं, उस दासको श्रेष्ठ नहीं कहा जाता।

अधिकांश बद्धजीव मायादास हैं। मायादास अर्थात् यह शरीर और धन, जन, पुत्र-परिवार—जितनी आसक्तिकी वस्तुएँ हैं, उनके प्रति चित्तका लगना ही माया-दासत्व है। संसारमें बद्ध होनेतक कुछ-न-कुछ रूपमें यह अवश्य ही रहेगा। यदि जीव साधु अथवा गुरु और कृष्णकी कृपा पाता है—"गुरु कृष्ण प्रसादे पाये भक्तिलताबीज"—तब उसका कुछ उत्थान होता है और गुरुकी कृपासे गुरुदास हो जाता है।

हरिदास बननेके लिये पहला चरण है—गुरुदास होना। गुरुदास तो एक ही है, किन्तु भक्तिकी भावनाके या विषयोंके तारतम्यसे उसके विविध नाम दिये गये हैं। प्रथम है शिष्यब्रुव, उसके बाद तामसिक गुरुदास, राजसिक गुरुदास, सात्त्विक गुरुदास, निर्गुण गुरुदास। निर्गुणमें भी कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम दासका भेद है। इन सबमें-से निर्गुण दास सबसे उत्तम है। इससे भी ऊपर स्तर होनेपर वह कृष्णदास होगा। उपरोक्त प्रकारके गुरुदासोंके विभिन्न लक्षणों और गुणोंका उदाहरण सहित संक्षेपमें वर्णन इस प्रकार है—

(1) *'शिष्यब्रुव'*—शिष्यब्रुव उसको कहते हैं जिसका गुरुसे यथार्थ कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु किसीको मारनेके लिये, किसीसे स्पर्धा करनेके लिये, किसीसे ईर्ष्या करनेके लिये, तामसिक भावनाओंको लेकर वह कपटतापूर्वक गुरु-पदाश्रय करता है। वह गुरुकी सेवा न कर अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये गुरुका सङ्ग करता है। इसका एक उदाहरण एकलव्य है। द्रोणाचार्य पाण्डवों और कौरवोंको शिक्षा देते थे। इस प्रकार उनके एक सौ पाँच शिष्य थे और वे समान रूपमें इनको सिखलाते थे, किन्तु फिर भी अर्जुनके प्रति उनकी प्रीति अधिक थी। एकलव्य जो बहेलिया सरदारका पुत्र था, उससे अर्जुनकी प्रतिष्ठा सहन नहीं हुई। वह नास्तिक और विद्वेषी स्वभावका था। शास्त्रोंमें कहा गया है कि गुरुको उत्तम कुलके सदाचारी व्यक्तिको शिष्यरूपमें ग्रहण करना चाहिये। निम्न कुलका व्यक्ति जिसका चरित्र और आचरण ठीक नहीं है, अथवा जिसके कुलका पता नहीं है या माता-पिताका पता नहीं है—ऐसे लोगोंको दीक्षा नहीं देनी चाहिये।

एकलव्य द्रोणाचार्यके पास आया और कहा,—'गुरुदेव, मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप कृपा मुझे भी शिक्षा प्रदान करें।' द्रोणाचार्यने पूछा,—'कहाँ रहते हो? किसके पुत्र हो? किसलिये यह धनुष-विद्या लेना चाहते हो?' एकलव्यने कोई उत्तर नहीं दिया। द्रोणाचार्यके अनेक बार पूछनेपर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। एकलव्यकी दुर्योधनसे मित्रता थी। उसका हृदय भीतरसे

बड़ा कलुषित था और वह अर्जुनको नीचा दिखलाना चाहता था। गुरु तो सर्वज्ञ हैं। द्रोणाचार्य जान गये कि यह शिक्षा लेकर ईर्ष्यावश जगत्‌को ध्वंस करेगा, इसलिये उन्होंने एकलव्यसे कहा,—'मेरे आश्रममें तुम्हारे लिये स्थान नहीं है, मैं तो केवल राजकुमारोंको शिक्षा देता हूँ जिनका शील, आचार-विचार ठीक है। मैं दूसरोंको ग्रहण नहीं करता।' एकलव्य बड़ा दुखी होकर वहाँसे चला गया। वनमें जाकरके उसने द्रोणाचार्यकी मूर्ति बनायी और मूर्तिसे धनुर्विद्या सीखने लग गया।

बहुत दिनोंके बाद द्रोणाचार्य अपने शिष्योंकी परीक्षा लेनेके लिये उनको लेकर वनमें गये। जब वे वनमें पहुँचे तो इनको देखकर एक कुत्ता जोरसे भौंकने लगा। जैसे ही द्रोणाचार्य शिष्योंके साथ थोड़ा आगे गये तो कुत्तेका भौंकना एकदम बन्द हो गया। द्रोणाचार्यने मुड़कर देखा कि कुत्तेका भौंकना बन्द कैसे हो गया? उन्होंने देखा कि कुत्तेका मुख बाणोंसे भरा पड़ा है किन्तु कहीं भी वह क्षत-विक्षत नहीं है। वे बड़े आश्चर्यचकित हो गये कि ऐसी कुशलतासे किसने बाण चलाये? कुत्तेके मुखकी दिशासे उन्होंने बाणोंके आनेकी दिशाको निर्धारित कर लिया। वे उस दिशामें थोड़ी दूर गये तो उन्होंने देखा कि एक काले रङ्गका बड़ा बलिष्ठ युवक हाथोंमें धनुष-बाण लेकर खड़ा है। द्रोणाचार्यको देखते ही उसने उनको प्रणाम किया। द्रोणाचार्य ने पूछा,—'तुम कौन हो?' उसने कहा,—'मैं एकलव्य हूँ।' उससे पूछा,—'यह बाण क्या तुमने चलाये?' उसने उत्तर दिया,—'हाँ, मैंने चलाये।' फिर उससे पूछा,—'तुमने किससे यह धनुर्विद्या सीखी? तुम्हारे गुरु कौन हैं?' उसने द्रोणाचार्यको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा,—'आप ही मेरे गुरु हैं।' वे बोले,—'मैंने तो तुम्हें कभी शिक्षा नहीं दी।' तो उसने अपने द्वारा बनायी द्रोणाचार्यकी मूर्तिको दिखलाया और कहा,—'मैंने इनसे शिक्षा ली है।' द्रोणाचार्यने कहा,—'इस प्रकार तुम मेरे शिष्य हो गये, परन्तु तुमने गुरु-दक्षिणा तो दी नहीं, इसलिये दक्षिणा दो।' एकलव्यने कहा,—'आप जो माँगेंगे, मैं वह दे दूँगा। यह समस्त शरीर आपके लिये अर्पित है।' द्रोणाचार्यने कहा,—'अपना दाहिना अँगूठा काट करके मुझे दे दो।' उसने एक क्षणकी देरी नहीं की और अपना अगूँठा काटकर दे दिया। वह रक्तसे लहूलुहान हो गया। द्रोणाचार्यने उसके कार्यको देखकर उसकी प्रशंसा नहीं की, अपितु उनके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया। वे उसे शिक्षा नहीं देना चाहते थे, परन्तु उसने सब कुछ सीख लिया। वे सोचने लगे कि यह अच्छा नहीं हुआ, जगत्‌का मङ्गल नहीं होगा। बादमें महाभारतके अन्तिम समयमें एकलव्यने श्रीकृष्णसे युद्ध किया और उनको और पाण्डवोंको मारना चाहा, तो श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रसे उसका वध कर दिया।

गुरुकी आज्ञाका पालन करना ही तो शिष्यका कर्त्तव्य है। द्रोणाचार्यने जगत्‌के मङ्गलका विचार करते हुए उसे शिक्षा देनेसे मना कर दिया था, परन्तु उसने गुरुकी बातका उल्लङ्घन करके छलसे शिक्षा ली। इसलिये श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद कहते हैं,—'जो जड़ कर्मी हैं, वे तो एकलव्यको आदर्श गुरु सेवकके रूपमें मानेंगे। क्योंकि वे जड़ कर्मी हैं, उनकी बुद्धि ध्वंस हो गयी है, उनमें कोई विचारशक्ति नहीं है, वे स्थूलदर्शी हैं, इसलिये वे इस सिद्धान्तके भीतर प्रवेश नहीं पाते। इस घटनामें परमार्थ नामकी कोई वस्तु नहीं है।'

(2) *'तामसिक गुरुदास'*—दूसरेको नीचा दिखलाने अथवा हिंसादिके लिये छलसे जो गुरुका आश्रय करते हैं, वे तामसिक गुरुदास होते हैं। इसका एक उदाहरण कर्ण है। अर्जुनकी प्रतिभा देखकर कर्णको उससे ईर्ष्या हो गयी। एक दिन जब रङ्गशालामें अर्जुनने सर्वश्रेष्ठ धनुर्विद्याका प्रदर्शन किया तो कर्णने भी वहाँ आकर बाण चलाने, मत्स्यभेद आदिमें अर्जुनके समान दक्षता दिखलायी। सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे और दुर्योधनने तो तुरन्त उठकर उसे गले लगा लिया। भीष्म पितामहने कहा,—'तुम यहाँ अर्जुनकी समता करनेके

लिये आये हो, पहले बतलाओ तुम कौन हो? ये राजकुमार हैं, ये तो पाण्डु पुत्र हैं और ये धृतराष्ट्र पुत्र हैं। तुम किसके पुत्र हो, तुम्हारे पिता-माताका नाम क्या है?' उसने कहा,—'मेरी माताका नाम राधे है।' तो भीष्म पितामहने कहा,—'तुम क्या सूतपुत्र हो? सूतपुत्रको इन राजकुमारोंसे समता करनेका कोई अधिकार नहीं है, इसलिये तुम यहाँसे चले जाओ।' उसी समय दुर्योधन एकदम उठकर खड़ा हुआ और अपना राजमुकुट देकर कहा,—'यह अङ्गदेशका राजा और हमारा परम मित्र है। इसका सम्मान हो।' लेकिन भीष्म पितामहके सामने उसकी एक नहीं चली। लज्जित होकर कर्ण वहाँसे चला गया।

अब उसने अर्जुनको हरानेकी ठान ली और इसलिये वह शस्त्र-शिक्षा लेनेके लिये परशुरामजीके पास गया। परशुरामजीने उसका परिचय पूछा कि वह किसका पुत्र है, किस जातिका है? तो उसने क्षत्रियका पुत्र न कहकर स्वयंको ब्राह्मणका पुत्र बतलाया। ऋषि-महर्षि लोग बड़े सरल सीधे होते हैं। उन्होंने उसकी बात मान ली कि यह झूठ क्यों कहेगा? और यह शस्त्र-शिक्षाके लिये एवं परमार्थके लिये आया है, इसलिये इसको अपना शिष्य स्वीकार करना चाहिये। तब उन्होंने उसको ब्रह्मास्त्रसे लेकर सब प्रकारके जितने शस्त्र हैं, सबकी शिक्षा दे दी। अब दीक्षा समारोहसे एक-दो पहले ही ऋषि उसके गोदीमें सर रखकर सो गये। तब वर्षाकाल था, एक लाल कीड़ा न जाने कैसे ऊपर चढ़ा और कर्णकी जङ्घाको छेदता हुआ नीचे निकल गया। रक्तकी धारा बहने लगी, परन्तु कर्ण थोड़ासा भी नहीं हिला। जब रक्त ऋषिके सिरमें लगा तो उन्हें कुछ गरम अनुभव हुआ और देखा कि रक्त बह रहा है। उठकर उन्होंने देखा कि यह रक्त तो कर्णकी जङ्घासे बह रहा है। परशुरामजीने कर्णसे उसका कारण पूछा तो उसने बताया कि एक कीड़ेने उसकी जङ्घाको छेद दिया था। परशुरामजी बोले कि इतनी पीड़ा सहन करके भी तुम हिले क्यों नहीं? कर्णने कहा कि गुरुजी मैं हिलता तो आपकी निद्रामें बाधा आती। तब परशुरामजी क्रोधित होकर बोले,—'तुम किसी प्रकारसे ब्राह्मण नहीं हो सकते, क्योंकि ब्राह्मणमें इतनी सहनशीलता नहीं होती। तुम अवश्य ही क्षत्रिय हो। सत्य बताओ, नहीं तो तुम्हें श्राप दे दूँगा। तुम किसके पुत्र हो?' उसने कहा,—'मैं सूतपुत्र हूँ।' परशुरामजीने कहा,—'यह सत्य पहले क्यों नहीं बताया? किसलिये यह शस्त्रकी शिक्षा ली है? अब सब सत्य बतलाओ।' तो कर्णने कहा,—'मैंने अर्जुनको परास्त करनेके लिये यह शिक्षा ली है।' परशुरामजीने कहा,—'तुमने यह बात पहले नहीं बतायी, तुमने गुरुसे झूठ बोला, इसलिये तुम मेरे शिष्य नहीं हो। जब तुम्हारे प्राण सङ्कटमें होंगे, तब तुम मेरी दी हुई समस्त विद्याको भूल जाओगे और वह तुम्हारे किसी काम नहीं आयेगी। जब तक ऐसा सङ्कट नहीं आयेगा, तब तक यह तुम्हारे काम आयेगी।' कर्णके भावको तामसिक भाव कहते हैं, इसलिये उसे तामसिक गुरुदास कहेंगे।

(3) *'राजसिक गुरुदास'*—सुख-ऐश्वर्य भोग, पत्नी आदिके लिये जो गुरु सेवा होती है वह राजसिक होती है। राजसिक गुरुदासका उदाहरण देवव्रत (भीष्म) हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं विवाह नहीं करूँगा, आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा और राजपद भी ग्रहण नहीं करूँगा। वे अपने भाइयोंके विवाहके लिये काशीनरेशकी कन्याओं अम्बा, अम्बालिका और अम्बिकाको युद्धमें जीतकर हरण करके ले आये। अम्बालिका और अम्बिका, इन दोनोंका तो विवाह हो गया, किन्तु अम्बाने कहा कि मैं किसी राजकुमारसे प्रेम करती हूँ, इसलिये मैं आपके भाईसे विवाह नहीं कर सकती। परन्तु आप मुझे हरण करके ले आये हैं, तो मेरे प्रियतम राजकुमार मुझे स्वीकार नहीं करेंगे, इसलिये आपको ही मुझसे विवाह करना होगा। भीष्मने कहा कि मैं तो प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, इसलिये विवाह नहीं कर सकता। अम्बाने सबसे प्रार्थना की, किन्तु कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सका, क्योंकि भीष्म तो महाप्रचण्ड और बलवान थे। तब

अम्बा उनके गुरु परशुरामके पास गयी और जोर-जोरसे रोने लगी। परशुरामजीने पूछा,—'बेटी, तुम क्यों रो रही हो, क्या बात है?' अम्बाने सारी बात उन्हें बतायी और कहा,—'जब ये देवव्रत मुझे जीत करके लाये हैं, तो उनसे ही विवाह करूँगी। इसलिये कृपा करके आप उन्हें ऐसा आदेश दे दीजिये।' परशुरामजीको दया आ गयी और उन्होंने देवव्रतको बुलवाया और कहा कि जब इसे जीतकर लाये हो, तब तुम इससे विवाह क्यों नहीं करते हो?

देवव्रतने कहा कि अपने भाइयोंके लिये इन्हें स्वयंवरमें जीतकर हरण करके लाया। परशुरामजीने कहा,—'जब तुम जीतकर लाये हो, तब तुम्हें इससे विवाह करना पड़ेगा।' देवव्रतने कहा,—'आप ऐसा आदेश मत दें। मैंने पिताजीको वचन दिया है कि मैं जीवन भर विवाह नहीं करूँगा और राज्य नहीं लूँगा।' परशुरामजीने कहा,—'क्या तुम्हें स्वयंवरमें जाकर इन कन्याओंको बलपूर्वक पकड़कर अपहरण करते समय अपना वचन स्मरण नहीं था? अब इसका भागी कौन होगा? अब इससे विवाह करो, अन्यथा मुझसे युद्ध करो।' देवव्रत यह सुनकर प्रसन्न हो गये कि एक मार्ग तो खुल गया, इसलिये उन्होंने कहा,—'मैं युद्ध करूँगा तो युद्धमें आपके द्वारा मारा जाऊँगा, किन्तु विवाह नहीं करूँगा।' उन दोनोंमें युद्ध हुआ, दोनों ही महावीर थे, इसलिये अन्तमें दोनोंमें-से कोई भी नहीं जीत सका। तब ब्रह्माजीने आकर उनका समाधान करा दिया। देवव्रतने विवाह तो नहीं किया, परन्तु उनके द्वारा गुरुका अपमान तो हुआ। इसमें कोई पारमार्थिक कारण नहीं था। इसलिये ऐसे शिष्योंको, भीष्म जैसे लोगोंको यहाँपर राजसिक कहा गया है।

(4) *'सात्त्विक गुरुदास'*—ऐसा शिष्य जो गुरुकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करे और निज हितके विषयमें विचार न करे, ऐसी गुरुसेवा सात्त्विक होती है। इस सन्दर्भमें आरुणी और उपमन्युकी कथाका वर्णन आता है। आरुणी गुरुपत्नीके आदेश पालन करनेके लिये वर्षाकालमें कड़कड़ाती ठण्डमें मेड़ बाँधनेके लिये चले गये। मूसलाधार वर्षाके कारण जलकी प्रबल धाराके वेगसे मिट्टी बह जाती थी। अन्तमें कोई अन्य उपाय न देखकर वे स्वयं मेड़के ऊपर लेट गये और इससे जलका प्रवाह बहुत कम हो गया। किन्तु भोर होते-होते आरुणी ठण्डसे ठिठुरकर निर्जीव प्रायः हो गये। गुरु लालटेन लेकर उन्हें खोजते हुए पुकारने लगे,—"आरुणी, तुम कहाँ हो?" तो आरुणीने मेढ़पर लेटे हुए अति क्षीण स्वरमें उत्तर दिया,—"गुरुजी मैं यहाँ हूँ, खेतमें जल भर जाता था, इसलिये मैं यहाँपर लेट गया।" गुरुने उन्हें हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया कि समस्त वेद-वेदान्तादि जो कुछ भी हैं, तुम्हें स्फुरित हो जाँय। गुरुके आशीर्वादसे आरुणी तत्क्षणात् मन्त्रदृष्टा ऋषि बन गये।

उपमन्यु गुरु आश्रममें रहकर गुरुसेवा करते थे और उनकी आज्ञासे गायोंको चराने ले जाते थे। गुरुदेवने उनसे पूछा,—"तुम बहुत मोटे हो रहे हो, क्या खाते हो?" उपमन्युने कहा,—"बछड़ोंके दूध पी लेनेके बाद जो गायका दूध बच जाता है, मैं उसे पी लेता हूँ।" गुरुदेवने कहा,—"अरे! बछड़ोंके पीनेकी वस्तु तुम पी लेते हो? आगेसे ऐसा मत करना।" कुछ दिनोंके बाद गुरुदेवने पुनः कहा,—"तुम अब भी मोटे हो रहे हो, क्या खाते हो?" उपमन्युने उत्तर दिया,—"गायोंके मुँहसे जो फेन निकलता है, उसको पोंछकर खा लेता हूँ।" गुरुदेवने उसके लिये भी उसे निषेध किया। अगले दिन गुरु-आज्ञाका पालन करते हुए उपमन्युने वह भी नहीं खाया। किन्तु उन्हें जब बहुत भूख लगी, तो उन्होंने एकमन्दका पत्ता खा लिया, उसका कुछ रस आँखमें लग जानेके कारण वे अन्धे हो गये और गायोंको ढूँढ़ते हुए कुएँमें गिर पड़े। शामको गायें तो आश्रममें लौट आयीं, किन्तु उपमन्यु नहीं लौटे। गुरुजी उन्हें खोजने निकले और उनका नाम लेकर जोरसे पुकारने लगे। उपमन्युने कहा कि गुरुजी मैं कुँएमें गिरा हुआ हूँ। गुरुजीने रस्सी डालकर उन्हें जैसे-तैसे कुएँसे

बाहर निकाला। गुरुजीने पूछा कि तुम कुएँमें कैसे गिर गये? तब उन्होंने सारी घटना कह सुनायी। प्रसन्न होकर गुरुजीने आशीर्वाद दिया कि वेद-उपनिषद् आदि सब तुमको स्मरण हो जाँय। गुरुजीके आशीर्वादसे उनको वेदादि सबका ज्ञान तत्क्षणात् हो गया और उनकी नेत्रज्योति भी पुनः आ गयी। वेद अधिकांश त्रिगुणात्मक होते हैं अर्थात् सांसारिक कामनाओं आदिकी पूर्त्ति करनेवाले होते हैं, इसलिये इन दोनोंको सात्त्विक गुरुदास कहा गया है।

(5) निर्गुण गुरुदास—त्रिगुणोंसे अतीत गुरुदास निर्गुण गुरुदास हैं। श्रीमद्भागवतमें इसका वर्णन आता है। एक बार गुरु-आश्रममें सुदामा और श्रीकृष्ण गुरुपत्नीके आदेशपर वनमें लकड़ी बीनने गये। बिना ऋतुके ही बड़ा भयङ्कर आँधी-पानी आ गया और चारों ओर पानी-ही-पानी हो गया। तब तक सूर्यास्त हो गया था और घना अन्धकार फैल गया। इसलिये वे वापस आश्रम नहीं लौट सके। प्रातःकालमें सान्दीपनि मुनि उन्हें खोजते हुये वनमें आये। उन्होंने देखा कि ये दोनों सिरपर गट्ठर रखकर खड़े हैं, तो सान्दीपनि मुनि बोले,—"अरे बोझा तो नीचे उतारकर रख देते।" इन्होंने कहा,—"गुरुजी लकड़ी भीग जाती तो फिर रसोई कैसे बनती?" तब गुरुजी बोले,—"सिरपर रखनेसे भी तो लकड़ी भीग गयी है।" इन्होंने कहा,—"यदि नीचे रख देते तो पानीसे लबालब भीगकर नष्ट हो जाती, इसलिये रात्रि भर सिरपर लकड़ी ले कर खड़े रहे हैं।" प्रसन्न होकर गुरुजीने वर दिया,—"तुम्हें चौंसठ-कलाओंका सम्पूर्ण ज्ञान हो जाय।" यह परमार्थिक सेवा है, इसमें स्वयंके लाभ-हानिका विचार नहीं है। एकमात्र गुरुकी सेवाकी भावनासे किया गया, इसलिये ये निर्गुण गुरुदास हैं।

इनसे भी श्रेष्ठ गुरुदास महाप्रभुके सेवक श्रीगोविन्द हैं। महाप्रभुकी इच्छाके अनुसार वे श्रीहरिदास ठाकुरको रोज प्रसाद देने जाते, क्योंकि वे दीनताके कारण आते नहीं थे। महाप्रभु जिस-जिसको प्रेम करते थे, उन्हींसे श्रीगोविन्दका सम्बन्ध था। महाप्रभुका जिनसे सम्बन्ध नहीं था, उनसे उनका भी सम्बन्ध नहीं था। शिष्यको भी ऐसा होना चाहिये। गुरुका जो प्रिय है, वह शिष्यको भी प्रिय होना चाहिये।

एक दिन महाप्रभु गम्भीराके द्वारपर शयन करने लगे, श्रीगोविन्द उनका पाद-सम्वाहन करनेके लिये आये। श्रीगोविन्दका यह प्रतिदिनका नियम था कि महाप्रभुके पाद-सम्वाहनके बाद ही जाकर महाप्रभुके अवशिष्ट प्रसादका भोजन करते थे। उस दिन महाप्रभु द्वारपर ऐसे लेटे थे कि श्रीगोविन्द भीतर नहीं जा पा रहे थे। उन्होंने महाप्रभुसे निवेदन किया कि मुझे भीतर जाने दीजिये। महाप्रभु ने कहा,—"मुझमें अपने शरीरको हिलाने-डुलानेकी भी शक्ति नहीं है।" श्रीगोविन्दके अनेक बार अनुरोध करनेपर भी महाप्रभुने पुनः पुनः वही उत्तर दिया। तब श्रीगोविन्दने अपने बहिर्वासको महाप्रभुके ऊपर डाल दिया और उनके पाद-सम्वाहनके लिये उन्हें लाँघकर गम्भीराके भीतर चले गये। श्रीगोविन्दकी कोमल मालिशसे महाप्रभुका सारा परिश्रम दूर हो गया और उनको बहुत अच्छी नींद आ गयी। श्रीगोविन्द तब भी धीरे-धीरे उनके अङ्गोंकी सेवा करते रहे। एक-दो घण्टेके बाद जब महाप्रभुकी निद्रा-भङ्ग हुई, तो उन्होंने श्रीगोविन्दको अभी तक भी वहीं बैठे देखकर क्रोधित होकर कहा—"तुम अब तक भी यहाँ क्यों बैठे हुए हो? तुम प्रसाद पानेके लिये क्यों नहीं गये?" श्रीगोविन्दने कहा कि आप तो दहलीजपर ही सो गये, जानेके लिये मार्ग ही नहीं है। महाप्रभुने कहा तुम जिस प्रकार भीतर आये, उसी प्रकारसे प्रसाद पानेके लिये क्यों नहीं गये? श्रीगोविन्दने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु मन-ही-मन कहा,—'मेरा तो सेवा करनेका ही नियम है, भले ही उसमें मेरा अपराध हो अथवा फिर नरकमें जाना पड़े। मैं प्रभुकी सेवाके लिये करोड़ों-करोड़ों अपराधोंकी भी परवाह नहीं करता, किन्तु अपने भोगोंके लिये अपराधके आभासमात्रसे भी भय करता हूँ।'

महाप्रभु भक्तोंके गुणोंको प्रकाशित करनेमें बहुत आनन्दित होते थे। उन्होंने अपने सेवक श्रीगोविन्दकी महिमाको प्रकाशित करनेके लिये ही ऐसी लीला की।

शिष्यको अपने सुखका विचार, अपना सर्वस्व त्यागकर अपने आराध्य जो गुरु हैं, उनकी सेवाके लिये सब कुछ बलिदान देना पड़ता है। श्रीगोविन्दका ऐसा गुण था जिसकी प्रशंसा करना भी कठिन है। उन्हें श्रीराय रामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदरका रात्रिमें महाप्रभुके पास आना अच्छा नहीं लगता था। वे मन-ही-मनमें सोचते थे कि इनके आनेसे पहले महाप्रभु तो कुछ ठीक रहते हैं, परन्तु जब ये दोनों आ जाते हैं, तो ये भी रातभर रोते हैं और महाप्रभुको भी रुलाते हैं। ये न तो स्वयं सोते हैं और न ही महाप्रभुको सोने देते हैं। परन्तु श्रीगोविन्द कुछ कह तो सकते नहीं, केवल चुपचाप बेचारे टुकुर-टुकुर देखते थे कि कब ये दोनों चले जाँय। श्रीगोविन्द सब कुछ सुनते थे और उनका रोदन देख करके इनका हृदय भी रोता रहता था। यह कितनी बड़ी सेवा है, इसे हम जब तक उस धरातलपर नहीं पहुँचेंगे, तब तक इस सेवाको नहीं समझ सकते। श्रीगोविन्द महाप्रभुके दुःखमें दुःखी और उनके सुखमें सुखी होते थे। वे ही उनके सर्वस्व जीवनके आधार हैं। ऐसे लोग ही वास्तविक हरिदास होते हैं।—"श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज"॥ 34॥

गोविन्दकुण्डमें स्नान और श्रीगोपालकी
अवस्थितिके संवादकी प्राप्ति :—

गोविन्दकुण्डादि'-तीर्थे प्रभु कैला स्नाने।
ताँहा शुनिला, गोपाल—गाँठोलि-ग्रामे॥ 35॥

अनुवाद—महाप्रभुने गोविन्दकुण्ड-तीर्थमें स्नान किया और उन्होंने वहींपर सुना कि श्रीगोपाल गाँठोलि-ग्राममें हैं॥ 35॥

अनुभाष्य—*'गोविन्दकुण्ड'*—पैठा-ग्रामसे श्रीगोवर्धन-पर्वतके ऊपर 'आनियोर'-ग्राम है। यहाँ श्रीगोविन्द और श्रीबलदेवके दो मन्दिर और 'गोविन्दकुण्ड' नामका सरोवर है; किसीके मतानुसार रानी पद्मावतीने इस सरोवरकी प्रतिष्ठा (स्थापना) की थी।

भक्तिरत्नाकरकी पाँचवीं-तरङ्गमें—

"एइ श्रीगोविन्दकुण्ड-महिमा अनेक।
एथा इन्द्र कैल गोविन्देर अभिषेक॥"

[अर्थात् "इस गोविन्दकुण्डकी बहुत महिमा है। यहाँ इन्द्रने श्रीगोविन्दका अभिषेक किया था।"] स्तवावलीके व्रजविलासस्तवमें—

"नीचैः प्रौढ़भयात् स्वयं सुरपति पादौ विधृत्येह यैः,
स्वर्गङ्गासलिलैश्चकार सुरभिद्वाराभिषेकोत्सवम्।
गोविन्दस्य नवं गवामधिगता राज्ये स्फुटं कौतुकात्
तैर्यत् प्रादूरभूत् सदा स्फुरतु तद्गोविन्दकुण्डं दृशोः॥"

[अर्थात् "श्रीकृष्णके प्रति अपराधके कारण इन्द्र बहुत भयभीत हो गये। स्वयं दीनभावसे गौओंके अधिपत्य राज्यमें अर्थात् व्रजमें आकर श्रीगोविन्दके श्रीचरणयुगलको धारण करके सुरभिके द्वारा जिस स्वर्ग-गङ्गा (मन्दाकिनी)के जलसे कौतुक भरा अभिषेक उत्सव किया था, उस जलसे प्रकाशित वह गोविन्दकुण्ड सदा मेरे नयनगोचर हो।"]

मथुरा-खण्डमें—

"यत्राभिषिक्तो भगवान् मघोना यदुवैरिणा।
गोविन्दकुण्डं तज्जातं स्नानमात्रेण मोक्षदम्॥"

[अर्थात् "जिस स्थानपर यदुओंके वैरी इन्द्रके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ था, उस अभिषेक-जलसे बने गोविन्दकुण्ड स्नान करनेमात्रसे ही मोक्ष प्रदान करते हैं।"]

'गाँठोली ग्राम'—गोपालपुर अथवा बिलछुरका अति निकटवर्ती ग्राम है। जनश्रुति यह है कि यहाँपर व्रज-नवयुव-युगलका (श्रीराधा-कृष्णका) प्रणयग्रन्थि बन्धन हुआ था। भक्तिरत्नाकरकी (पाँचवीं तरङ्गमें)—

"सखी दुँह वस्त्रे गाँठि दिल सङ्गोपने।
फागुया लैया केह गाँठि खुलि' दिला।"

[अर्थात् "श्रीराधा-कृष्ण होली खेलकर सिंहासनपर

बैठे थे और किसी सखीने गुप्त रूपसे उनके वस्त्रोंको गाँठ लगाकर बाँध दिया। श्रीराधा-कृष्ण जब सिंहासनसे उठे, तब उन्होंने वस्त्रोंका गठबन्धन देखा और उसे देखकर सखियाँ हँसने लगीं। श्रीराधा-कृष्ण, दोनों लज्जित हो गये। तब किसी सखीने 'फाग' लेकर उनके वस्त्रोंकी गाँठको खोल दिया।"]—इसी कारण इस ग्रामका नाम—गाँठोली है॥ 35॥

गाँठोलि-ग्राममें श्रीगोपालका दर्शन और स्तुति-नृत्य :—

सेइ ग्रामे गिया कैल गोपाल-दरशन।
प्रेमावेशे प्रभु करे कीर्त्तन-नर्त्तन॥ 36॥

गोपालेर सौन्दर्य देखि' प्रभुर आवेश।
एइ श्लोक पड़ि' नाचे, हैल दिन-शेष॥ 37॥

अनुवाद—गाँठोली-ग्राममें जाकर महाप्रभुने श्रीगोपालके दर्शन किये। प्रेमके आवेशमें आकर वे कीर्तन और नृत्य करने लगे। श्रीगोपालके सौन्दर्यको देखते ही महाप्रभु प्रेममें आविष्ट हो गये और उन्होंने एक श्लोक पढ़ा। फिर वे दिन समाप्त होने तक नृत्य-कीर्तन करते रहे॥ 36-37॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/62) :—

वामस्तामरसाक्षस्य भुजदण्डः स पातु वः।
क्रीड़ाकन्दुकतां येन नीतो गोवर्धनो गिरिः॥ 38॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 38॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कमलनयन श्रीकृष्णने जिस बाँयी भुजाके द्वारा गिरिराज गोवर्धनको उठाकर क्रीड़ा-कन्दुककी (खेलनेवाली गेंदकी) भाँति उसका व्यवहार किया था, वही बाँयी भुजा ही तुम्हारा पालन करे॥ 38॥

अनुभाष्य—

येन (वामबाहुना) गोवर्धनः गिरिः क्रीड़ाकन्दुकतां (क्रीड़ा-सामग्रीत्वं) नीतः (प्राप्तः) तामरसाक्षस्य (पद्मलोचनस्य कृष्णस्य) सः [प्रसिद्धः] वामः भुजदण्डः वः (युष्माकं) पातु (रक्षतु)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 38॥

तीन दिन श्रीगोपालके दर्शन :—

एइमत तिनदिन गोपाले देखिला।
चतुर्थ-दिवसे गोपाल स्वमन्दिरे गेला॥ 39॥

चौथे दिन गिरिराजके ऊपर स्थित मन्दिरमें श्रीगोपालका नृत्य-गीतके साथ जाना :—

गोपाल-सङ्गे चलि' आइला नृत्य-गीत करि।
आनन्द-कोलाहले लोक बले 'हरि' 'हरि'॥ 40॥

महाप्रभुकी श्रीगोपालके दर्शनकी अभिलाषा पूर्ण :—

गोपाल मन्दिरे गेला, प्रभु रहिला तले।
प्रभुर वाञ्छा पूर्ण सब करिल गोपाले॥ 41॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने तीन दिन तक श्रीगोपालके दर्शन किये। चौथे दिन श्रीगोपाल अपने मन्दिरमें जानेके लिये चले। महाप्रभु श्रीगोपालके साथ नृत्य तथा गान करते हुए चलने लगे। लोगोंकी भीड़ भी आनन्दसे 'हरि' 'हरि' बोलते हुए कोलाहल कर रही थी। तब श्रीगोपाल गोवर्धनके ऊपर अपने मन्दिरमें चले गये और महाप्रभु गोवर्धनकी तलहटीमें ही रह गये। श्रीगोपालने महाप्रभुकी समस्त वाञ्छाओंको पूर्ण कर दिया॥ 39-41॥

महाकृपालु श्रीगोपालके दर्शनमें भक्तका भाव :—

एइमत गोपालेर करुण स्वभाव।
सेइ भक्त जनेर देखिते हय 'भाव'॥ 42॥

अनुवाद—श्रीगोपालका ऐसा ही करुणामय स्वभाव है जिसे देखकर भक्तोंके हृदयमें उनके प्रति प्रेमावेश जाग्रत हो जाता है॥ 42॥

दयामय श्रीगोपालका किसी छलसे भक्तको दर्शन देना :—

देखिते उत्कण्ठा हय, ना चड़े गोवर्धने।
कोन छले गोपाल आसि' उतरे आपने॥ 43॥

अनुवाद—किसी भक्तके हृदयमें श्रीगोपालके दर्शन करनेकी उत्कण्ठा होनेपर भी यदि वह गोवर्धनपर नहीं चढ़ता, तो श्रीगोपाल स्वयं किसी छलसे गोवर्धनसे उतरकर नीचे आ जाते हैं॥ 43॥

जब जिस स्थानपर रहते हैं, वहीं आकर
भक्तके द्वारा उनका दर्शन करना :—

कभु कुञ्जे रहे, कभु रहे ग्रामान्तरे।
येइ भक्त, ताँहा आसि' देखये ताँहारे॥ 44॥

अनुवाद—कभी तो श्रीगोपाल कुञ्जमें रहते हैं और कभी ग्राम-ग्राममें स्थान बदलते रहते हैं। जो भक्त होता है, वह वहाँपर आकर उनके दर्शन करता है॥ 44॥

श्रीरूप-सनातनको इसी प्रकार
किसी छलसे दर्शन-दान :—

पर्वते ना चड़े दुइ—रूप-सनातन।
एइरूपे ताँ-सबारे दियाछेन दरशन॥ 45॥

अनुवाद—श्रीरूप और श्रीसनातन भी गोवर्धन पर्वतपर नहीं चढ़ते थे। श्रीगोपालने उन दोनोंको भी इसी प्रकारसे दर्शन दिये॥ 45॥

श्रीगोपालके दर्शनकी अभिलाषाके कारण श्रीरूपके
गोपाल-दर्शनके वृत्तान्तका वर्णन :—

वृद्धकाले रूप-गोसाञि ना पारे याइते।
वाञ्छा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते॥ 46॥

अनुवाद—वृद्धावस्थामें श्रीरूप गोस्वामी उनके दर्शनके लिये जा नहीं पा रहे थे, किन्तु उनके हृदयमें श्रीगोपालके सुन्दर रूपके दर्शन करनेकी अभिलाषा थी॥ 46॥

मथुरामें वल्लभपुत्र विट्ठलेश्वरके
घरपर एक मास तक वास :—

म्लेच्छभये आइला गोपाल मथुरा-नगरे।
एकमास रहिल विट्ठलेश्वर-घरे॥ 47॥

अनुवाद—म्लेच्छोंके भयसे श्रीगोपाल मथुरा-नगरीमें आ गये और वहाँ एक मास तक वे श्रीविट्ठलेश्वरके घरमें रहे॥ 47॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बादमें श्रीरूप-सनातनने आकर जब व्रजवास किया, तब वे भी श्रीगोवर्धन-पर्वतको साक्षात् भगवान्‌की मूर्ति जानकर उनपर नहीं चढ़ते थे। श्रीगोपालने जिस प्रकार महाप्रभुको दर्शन दिया, उन्हें भी उसी प्रकारसे दर्शन दिया था। वृद्धावस्थामें श्रीरूपगोस्वामी गोवर्धन जानेमें असमर्थ थे, परन्तु साथ ही श्रीगोपालका सौन्दर्य देखनेकी उनकी इच्छा हुई थी। तब श्रीगोपालने श्रीरूपगोस्वामीपर कृपा करनेके उद्देश्यसे इस प्रकार म्लेच्छोंसे भयरूपी 'छल' करके मथुरानगरीमें श्रीविट्ठलेश्वरके घरमें एक मास तक वास किया था॥ 45-47॥

अनुभाष्य—*'विट्ठलेश्वर'*—भक्तिरत्नाकरकी पाँचवीं-तरङ्गमें—

"विट्ठलेर सेवा कृष्णचैतन्यविग्रह।
ताहार दर्शने हैल परम आग्रह॥
श्रीविट्ठलनाथ—भट्टवल्लभ-तनय।
करिला यतेक प्रीति कहिले ना हय॥
गाँठोलि-ग्रामे गोपाल आइला 'छल' करि'।
ताँरे देखि' नृत्यगीते मग्न गौरहरि॥
श्रीदासगोस्वामी आदि परामर्श करि'।
श्रीविट्ठलेश्वरे कैला सेवा-अधिकारी॥
पिता श्रीवल्लभभट्ट ताँर अदर्शने।
कतदिन मथुराय छिलेन निर्जने॥"

[अर्थात् "श्रीविट्ठलनाथ श्रीवल्लभ-भट्टके पुत्र थे। वे श्रीकृष्ण-चैतन्यके विग्रहकी सेवा करते थे और उनके दर्शनमें उनका परम आग्रह था। गाँठोलि-ग्राममें श्रीगोपाल यवनोंके भयका छल करके आये और महाप्रभुको वहाँ दर्शन दिये। उनके दर्शन करके महाप्रभु प्रेममें मग्न होकर नृत्य और गान करने लगे। उस समय श्रीगोपालकी सेवा श्रीमाधवेन्द्रपुरीके दो गौड़ीय वैष्णव शिष्य करते थे। उन्होंने सभी वैष्णवोंसे कहा कि हमारे अप्रकट होनेपर श्रीगोपालकी सेवा कौन करेगा? तब श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदिने परामर्श करके श्रीविट्ठलनाथको श्रीगोपालका सेवाधिकारी नियुक्त किया। अपने पिता श्रीवल्लभ-भट्टके अप्रकट होनेके बाद कुछ समय तक वे मथुरामें निर्जन स्थानमें रहे।"]

श्रीवल्लभभट्टके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ 'गोपीनाथ'का जन्म 1432 शकाब्दमें हुआ था। कनिष्ठ 'विट्ठलनाथ'का

जन्म 1437 शकाब्दमें हुआ और उन्होंने 1507 शकाब्दमें परलोक गमन किया। विठ्ठलके सात पुत्र—गिरिधर, गोविन्द, बालकृष्ण, गोकुलेश, रघुनाथ, यदुनाथ और घनश्याम थे। विठ्ठलने पिताके असम्पूर्ण ग्रन्थोंको पूर्ण किया जिनमें ब्रह्मसूत्र-भाष्य, 'सुबोधिनी'-टिप्पणी, 'विद्वन्मण्डन', 'शृङ्गाररसमण्डन', 'न्यासादेश-विवरण' आदि ग्रन्थ थे।

"पूर्ण-सप्ततिवर्षाणि दिनान्यष्टौ च विंशतिः।
वसुधायां व्यराजन्तु श्रीमद्विठ्ठल दीक्षिताः॥"

श्रीमहाप्रभु श्रीवल्लभपुत्र श्रीविठ्ठलके जन्मसे एक वर्ष पहले या उससे भी एक वर्ष पहले श्रीवृन्दावनमें आये थे। श्रीरूप गोस्वामीजी वृद्धावस्थामें श्रीगोपाल श्रीवल्लभके पुत्र श्रीविठ्ठलनाथके मथुरा स्थित घरमें एकमास तक रहे थे॥ **47**॥

मथुरामें विठ्ठलेश्वरके घरमें एकमास
सपरिकर श्रीरूपके द्वारा श्रीगोपाल-दर्शन :—

तबे रूप-गोसाञि सब निजगण लञा।
एकमास दरशन कैला मथुराय रहिया॥ 48॥

सङ्गे गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ।
रघुनाथ-भट्टगोसाञि, आर लोकनाथ॥ 49॥

भूगर्भ-गोसाञि, आर श्रीजीव-गोसाञि।
श्रीयादव-आचार्य, आर गोविन्द-गोसाञि॥ 50॥

श्रीउद्धवदास, आर माधव, दुइजन।
श्रीगोपाल-दास, आर दास-नारायण॥ 51॥

'गोविन्द' भक्त, आर वाणी-कृष्णदास।
पुण्डरीकाक्ष, ईशान, आर लघु-हरिदास॥ 52॥

एइ सब मुख्यभक्त लञा निज-सङ्गे।
श्रीगोपाल दरशन कैला बहु-रङ्गे॥ 53॥

अनु**वाद**—तब श्रीरूप गोस्वामी अपने निजजनोंके साथ मथुरा आये और वहाँ एक मास तक रहकर श्रीगोपालके दर्शन किये। श्रीरूप गोस्वामीके साथ श्रीगोपाल-भट्ट, श्रीरघुनाथ-दास, श्रीरघुनाथ-भट्ट गोस्वामी, श्रीलोकनाथ, श्रीभूगर्भ गोस्वामी, श्रीजीव-गोस्वामी, श्रीयादव-आचार्य, श्रीगोविन्द-गोस्वामी, श्रीउद्धवदास, श्रीमाधव, श्रीगोपाल-दास, श्रीदास-नारायण, 'श्रीगोविन्द' भक्त, श्रीवाणी-कृष्णदास, श्रीपुण्डरीकाक्ष, श्रीईशान, छोटे-हरिदास आदि भक्त थे। इन सब मुख्य भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीरूप गोस्वामीने बड़े आनन्दपूर्वक श्रीगोपालके दर्शन किये॥ **48-53**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'लघु-हरिदास'—अनेक वैष्णवोंका नाम 'हरिदास' होता है। इसलिये 'लघु', 'मध्यम' आदि 'विशेषण' हरिदास नामक वैष्णवोंके नामके साथ दूसरे वैष्णव प्रयोग करते हैं। महाप्रभुके समय जो लघु-हरिदास (छोटे-हरिदास) थे, उन्होंने प्रयागमें देहत्याग किया था; ये 'लघु हरिदास'—अन्य एक व्यक्ति हैं॥ **52**॥

अनुभाष्य—*'लोकनाथ'*—श्रीमहाप्रभुके अत्यन्त विरक्त (वैरागी) महाभागवत पार्षद-गोस्वामी हैं। यशोहरके अन्तर्गत 'तालखड़ि'-ग्राममें इनका पहले निवास था; उससे पहले काचनापाड़ामें निवास था। इनके पिताका नाम—पद्मनाभ था; इनके एकमात्र छोटे भाई 'प्रगल्भ' थे। महाप्रभुकी आज्ञासे इन्होंने व्रजवास करके भजन किया और एकमात्र श्रीनरोत्तम-ठाकुर महाशयको दीक्षा प्रदान की। ऐसा लगता है, अत्यधिक दीनतावशतः इन्होंने अपने चरित्रका वर्णन करनेके लिये निषेध किया होगा, इसलिये इनका चरित्र श्रीचैतन्यचरितामृतमें विशेष रूपसे उल्लिखित नहीं हुआ है। इ, वि, आर लाइनमें 'यशोहर' स्टेशन है, वहाँसे मोटर गाड़ीके द्वारा सोनाखालि, वहाँसे खेजूरा, वहाँसे पैदल तथा वर्षाके समयमें नावके द्वारा 'तालखड़ि' जाना पड़ता है। इनके भाईके वंशज "तालखड़िके भट्टाचार्य" नामसे सामाजिक पद-मर्यादामें विशेष सम्मानित हैं। भ्रातृवंशके विवरणके लिये वैष्णव मञ्जुषा-समाहृति चतुर्थ संख्या देखें।

भक्तिरत्नाकरकी छठी तरङ्गमें—

"गोस्वामी गोपालभट्ट अति दयामय।

भूगर्भ, श्रीलोकनाथ—गुणेर आलय॥
श्रीमाधव, श्रीपरमानन्द-भट्टाचार्य।
श्रीमधु-पण्डित—याँर चरित्र आश्चर्य॥
प्रेमी कृष्णदास, कृष्णदास ब्रह्मचारी।
यादव आचार्य, नारायण कृपावान्।
श्रीपुण्डरीकाक्ष-गोसाञि, गोविन्द, ईशान॥
श्रीगोविन्द, वाणीकृष्णदास अत्युदार।
श्रीउद्धव—मध्ये मध्ये गौड़े गति याँर॥
द्विज-हरिदास, कृष्णदास कविराज।
श्रीगोपालदास याँर अलौकिक काय।
श्रीगोपाल, माधवादि यतेक वैष्णव।"

[श्रीनिवासाचार्यके द्वारा ग्रन्थरूपी रत्नोंको लेकर वृन्दावनसे गौड़देश जानेके समय विदायी देनेके लिये एकत्रित वैष्णवगण—परम दयामय श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, गुणोंके भण्डार श्रीभूगर्भ और **श्रीलोकनाथ गोस्वामी**, श्रीमाधव, श्रीपरमानन्द-भट्टाचार्य, श्रीमधु-पण्डित जिनका चरित्र आश्चर्यजनक है, प्रेमी कृष्णदास, श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीयादव आचार्य, कृपामय श्रीनारायण, श्रीपुण्डरीकाक्ष-गोसाईं, श्रीगोविन्द, श्रीईशान, श्रीगोविन्द, परम उदार श्रीवाणीकृष्णदास, श्रीउद्धव जो बीच-बीचमें गौड़देश जाया करते थे, श्रीद्विज-हरिदास, श्रीकृष्णदास कविराज, श्रीगोपालदास जिनके कार्य अलौकिक होते थे, श्रीगोपाल, श्रीमाधवादि जितने भी वैष्णव व्रजमें थे।"]॥ 49-52॥

एक मासके बाद श्रीगोपाल और श्रीरूपका अपने-अपने स्थानपर लौटना :—

एकमास रहि' गोपाल गेला निज-स्थाने।
श्रीरूप-गोसाञि आइला श्रीवृन्दावने॥ 54॥

अनुवाद—एक मास तक मथुरामें रहकर श्रीगोपाल अपने स्थानपर लौट गये और श्रीरूप-गोस्वामी श्रीवृन्दावन धाममें आ गये॥ 54॥

महाप्रभुका काम्यवनमें आगमन :—

प्रस्तावे कहिलुँ गोपाल-कृपार आख्यान।
तबे महाप्रभु गेला 'श्रीकाम्यवन'॥ 55॥

अनुवाद—प्रसङ्ग आनेपर ही मैंने श्रीगोपालकी कृपाका वर्णन किया है। महाप्रभु श्रीगोपालका दर्शन करके 'श्रीकाम्यवन'में गये॥ 55॥

अनुभाष्य—*'काम्यवन'*—आदि-वाराहमें—

"चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम्।
तत्र गत्वा नरो देवि मम लोके महीयते॥"

[अर्थात् "व्रजमण्डलके बारह वनोंमें चौथा वन काम्यवन है। यह व्रजमण्डलके सर्वोत्तम वनोंमें-से एक है। इस वनकी परिक्रमा करनेवाला सौभाग्यवान् व्यक्ति मेरे व्रजधाममें पूजनीय होता है।"]

भक्तिरत्नाकरकी पाँचवीं-तरङ्गमें—

"एइ काम्यवने कृष्णलीला मनोहर।
करिबे दर्शन स्थान कुण्ड बहुतर॥
काम्यवने यत तीर्थ लेखा नाहि तार॥"

[अर्थात् "इस काम्यवनमें श्रीकृष्णकी अनेक मनोहर लीलाएँ होती हैं। इस वनमें बहुत दर्शनीय कुण्ड हैं। काम्यवनमें जितने तीर्थ हैं, उनका वर्णन करना सम्भव नहीं है।"]॥ 55॥

वृन्दावनमें सभी लीला-स्थलियोंका दर्शन :—

प्रभुर गमन-रीति पूर्वे ये लिखिल।
सेइमत वृन्दावने तावत् देखिल॥ 56॥

अनुवाद—मैंने महाप्रभुके वृन्दावनमें भ्रमण करनेका वृत्तान्त लिखा है। उसी प्रकार ही महाप्रभुने प्रेमाविष्ट होकर सम्पूर्ण वृन्दावनका दर्शन किया॥ 56॥

वृन्दावनसे नन्दीश्वरमें श्रीनन्दके घरका दर्शन और प्रेम-विह्वलता :—

ताँहा लीलास्थली देखि' गेला 'नन्दीश्वर'।
'नन्दीश्वर' देखि' प्रेमे हइला विह्वल॥ 57॥

अनुवाद—काम्यवनमें श्रीकृष्णकी लीलास्थलियोंके दर्शन करके महाप्रभु 'नन्दीश्वर'में (नन्दभवनमें) गये। नन्दभवनमें पहुँचकर महाप्रभु प्रेममें विह्वल हो गये॥ 57॥

अनुभाष्य—*'नन्दीश्वर'*—नन्दालय (नन्दभवन); भक्तिरत्नाकरकी पाँचवीं-तरङ्गमें—

"देख नन्दीश्वर चतुर्द्दिके कुण्डवन।
कृष्णविलासेर स्थान भुवनपावन॥"

[अर्थात् "इस स्थान नन्दीश्वरको देखो, यहाँ चारों ओर कुण्ड और वन हैं। ये श्रीकृष्णके विलासके स्थान हैं और इनके दर्शनसे ही समस्त लोक पवित्र हो जाते हैं।"]॥ 57॥

पावन-सरोवरमें स्नान, विग्रहके सम्बन्धमें जिज्ञासा :—

'पावनादि' सब कुण्डे स्नान करिया।
लोकेरे पुछिल, पर्वत-उपरे यात्रा॥ 58॥

लोगोंसे गुफाके अन्दर विराजमान श्रीनन्द-यशोदा और श्रीकृष्णकी मूर्तिके अवस्थानके विषयमें श्रवण करना :—

"किछु देवमूर्त्ति हय पर्वत-उपरे?"
लोक कहे,—"मूर्त्ति हय गोफार भितरे॥ 59॥

दुइदिके माता-पिता पुष्ट-कलेवर।
मध्ये एक शिशु' हय त्रिभङ्गसुन्दर॥"60॥

शुनि' महाप्रभु मने आनन्द पात्रा।
'तिन' मूर्त्ति देखिला सेइ गोफा उघाड़िया॥ 61॥

अनुवाद—महाप्रभुने पावन-सरोवरादि सभी कुण्डोंमें स्नान करके पर्वतके ऊपर जाकर लोगोंसे पूछा,—"क्या पर्वतके ऊपर भगवान्‌का कोई श्रीविग्रह है?" लोगोंने कहा,—"गुफाके अन्दर विग्रह हैं। दोनों तरफ हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले माता और पिता हैं तथा बीचमें त्रिभङ्गसुन्दर एक बालक है।" इस बातको सुनकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने गुफामें प्रवेश करके तीनों मूर्तियोंके दर्शन किये॥ 58-61॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीनन्द-यशोदाकी वन्दना और श्रीकृष्ण-स्पर्शन :—

व्रजेन्द्र-व्रजेश्वरीर कैल चरण वन्दन।
प्रेमावेशे कृष्णेर कैल सर्वाङ्ग-स्पर्शन॥ 62॥

अनुवाद—महाप्रभुने व्रजेन्द्र श्रीनन्द तथा व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजीके चरणोंकी वन्दना की, उन्होंने प्रेमावेशमें श्रीकृष्णके सभी अङ्गोंका स्पर्श किया॥ 62॥

अनुभाष्य—*'पावन-सरोवर'*—मथुरा-माहात्म्यमें—

"पावने सरसि स्नात्वा कृष्णं नन्दीश्वरे गिरौ।
दृष्ट्वा नन्दं यशोदाञ्च सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्॥"

[अर्थात् "पावन-सरोवरमें स्नान करके नन्दीश्वर पर्वतपर (विराजमान) श्रीकृष्ण, श्रीनन्दमहाराज और श्रीयशोमती माताके दर्शन करनेसे सर्वाभीष्ट प्राप्त होता है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"ए पावन सरोवर कृष्णप्रिय अति॥"
"पर्वत-उपरे देख पुत्रेर सहिते।
श्रीनन्दयशोदा शोभे अपूर्व-गोफाते॥
ओहे श्रीनिवास, एथा श्रीचैतन्यराय।
करिते दर्शन गिया प्रवेशे गोफाय॥
श्रीनन्द-यशोदा—दुइदिके दुइजन।
मध्ये कृष्णचन्द्रे देखि' प्रफुल्ल नयन॥
श्रीनन्द-यशोदार चरण वन्दिया।
कृष्णेर सर्वाङ्ग स्पर्शे उल्लसित हञा॥
प्रेमेर आवेशे नृत्य-गीत आरम्भिल॥"

[अर्थात् "यह पावन सरोवर श्रीकृष्णको अति प्रिय है। पर्वतके ऊपर देखो—गुफामें पुत्रके सहित श्रीनन्द-यशोदाकी अपूर्व-शोभा है। ओहे श्रीनिवास, यहाँ श्रीचैतन्यरायने इनके दर्शन करनेके लिये गुफामें प्रवेश किया था। श्रीनन्द और श्रीयशोदाके मध्यमें श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर उनके नयन प्रफुल्लित हो गये। उन्होंने श्रीनन्द और श्रीयशोदाके चरणोंकी वन्दना की। उल्लसित होकर उन्होंने श्रीकृष्णके सभी अङ्गोंको स्पर्श किया। प्रेमके आवेशमें उन्होंने वहाँ नृत्य-गीत करना आरम्भ कर दिया।"]॥ 58-62॥

सारा दिन नृत्य-गीतके बाद खदिरवनमें आगमन :—

सब दिन प्रेमावेशे नृत्य-गीत कैला।
ताँहा हैते महाप्रभु 'खदिर-वन' आइला॥ 63॥

अनुवाद—प्रतिदिन महाप्रभु वहाँ प्रेमावेशमें नृत्य तथा गान करते। बादमें वहाँसे महाप्रभु 'खदीर-वन'में आ गये॥ 63॥

अनुभाष्य— *'खदिरवन'*—

'सप्तमन्तु वनं भूमौ खदिरं लोकविश्रुतम्॥'

[अर्थात् "द्वादश वनोंमें सातवाँ वन 'खदिर-वन' समस्त जगत्में विख्यात है।"] भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें—

"देखह खदिर वन विदित जगते।
विष्णु-लोकप्राप्ति एथा गमन-मात्रेते॥"

[अर्थात् "इस जगत्-विख्यात खदिर-वनको देखो। यहाँ जानेमात्रसे जीवको विष्णुलोककी प्राप्ति हो जाती है।"] ॥ 63॥

शेषशायी श्रीकृष्ण और लक्ष्मी-दर्शन :—

लीलास्थल देखि' ताँहा गेला 'शेषशायी'।
'लक्ष्मी' देखि' एइ श्लोक पड़ेन गोसाञि॥ 64॥

अनुवाद—खदीरवनकी लीलास्थलियोंको देखकर महाप्रभु वहाँसे 'शेषशायी' गये और वहाँपर लक्ष्मीको देखकर उन्होंने निम्नलिखित एक श्लोक पढ़ा—॥ 64॥

अनुभाष्य— *'शेषशायी'*—भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें—

'एइ 'शेषशायी' क्षीरसमुद्र एथाते।
कौतुके शुइला कृष्ण अनन्तशय्याते॥
एइ शेषशायि-मूर्त्ति दर्शन करिते।
श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र आइला एथाते॥
करिया दर्शन, महाकौतुक बाड़िल।
से-प्रेमावेशे प्रभु अधैर्य हइल॥"

[अर्थात् "'ये 'शेषशायी' हैं और यहाँ क्षीरसमुद्र है। लीला करते हुए कौतुकवश श्रीकृष्ण अनन्त-शय्यापर लेट गये थे। इन शेषशायी विग्रहके दर्शन करनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र यहाँ आये थे। दर्शन करके उनमें महाकौतुक बढ़ने लगा और प्रेमावेशमें महाप्रभु अधीर हो गये।"]॥ 64॥

श्रीमद्भागवतमें (10/31/19) :—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥ 65॥

अनुवाद—गोपियाँ कहती हैं—हे प्रिय, हम तुम्हारे जिन सुकोमल चरणकमलोंको अपने कठोर स्तनोंपर धीरे-धीरे धारण करती हैं, अपने उन्हीं चरणोंके द्वारा तुम अभी वनमें भ्रमण कर रहे हो, वहाँ छोटे-छोटे कङ्कड़-पत्थरादिके चुभनेसे अवश्य ही तुम्हें कष्ट हो रहा होगा। तुम हमारे जीवन-स्वरूप हो, इसलिये तुम्हारी चिन्तामें व्याकुल होकर हम सबकी बुद्धि भ्रमित हो रही है॥ 65॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/173 संख्या देखें॥ 65॥

खेलातीर्थ, भाण्डीरवन और भद्रवनमें आगमन :—

तबे 'खेला-तीर्थ' देखि' 'भाण्डीरवन' आइला।
यमुना पार हञा 'भद्रवन' गेला॥ 66॥

अनुवाद—तब महाप्रभु 'खेला-तीर्थ' (खेलनवन)के दर्शन करके भाण्डीरवन आ गये। फिर यमुना पार करके वे भद्रवनमें गये॥ 66॥

अनुभाष्य— *'खेलातीर्थ'*—भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें—

"देखह खेलनवन, एथा दुइ भाइ।
सखासह खेले भक्षणेर चेष्टा नाइ॥
मायेर यत्नेते भुञ्जे कृष्ण-बलराम।
ए खेलनवटेर श्रीखेलातीर्थ नाम॥"

[अर्थात् "इस खेलनवनको देखो, यहाँ दोनों भाई (श्रीकृष्ण और श्रीबलराम) सखाओंके साथ खेलते थे। खेलनेमें वे इतने आविष्ट हो जाते थे कि खाना आदि सब भूल जाते थे। माता यशोदाको उन्हें बड़े यत्नसे बुलाकर घर लाना पड़ता कि वे स्नान और भोजन कर लें। इस खेलनवटका नाम श्रीखेलातीर्थ है।"]

'भाण्डीर-वन'—भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें—

"चलये भाण्डीर-पथे उल्लास अन्तरे।
एबे लोक कहय 'अक्षयवट' तारे॥
बलराम कौतुके प्रलम्बवध कैला।
सखासह भाण्डीरे कृष्णेर नाना लीला॥"

[अर्थात् "उल्लाससे भरे हृदयसे महाप्रभु भाण्डीर-वनके मार्गपर चले। अब लोग उसे 'अक्षयवट'के नामसे बुलाते हैं। यहाँ खेल-ही-खेलमें श्रीबलरामने प्रलम्बासुरका वध किया था। सखाओंके साथ भाण्डीर-वनमें श्रीकृष्णकी अनेक लीलाएँ हुई थीं।"]

स्तवावलीके व्रजविलास-स्तवमें—

"मल्लीकृत्य निजाः सखीः प्रियतमागर्वेण सम्भाविता मल्लीभूय मदीश्वरी रसमयी मल्लत्वमुत्कण्ठया। यस्मिन् सम्यगुपेयुषा वकभिदा राधानियोद्धुं मुदा कुर्वाणा मदनस्य तोषमतनोद्भाण्डीरकं तं भजे॥"

[अर्थात् "जहाँ मेरी अधीश्वरी श्रीकृष्ण प्रियतमा श्रीराधिका मल्लयुद्धके कौतुकवश स्वयं मल्लवेशमें सुसज्जित होकर अपनी सखियोंको भी मल्लवेशमें सजाकर गर्वित हुईं थी और मल्लवेशधारी बकारि श्रीकृष्णके साथ आनन्दपूर्वक मल्लयुद्ध करके मदनका आनन्दवर्धन किया था, मैं उस भाण्डीर-वनका भजन करता हूँ।"]

'भद्रवन'—

"अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठञ्च वनमुत्तमम्।"

[अर्थात् "व्रजके वनोंमें उत्तम यह छठा वन भद्रवन है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"कृष्णप्रिय हय भद्रवन-गमनेते॥"

[अर्थात् "जो भद्रवनमें गमन करता है, वह श्रीकृष्णका प्रिय हो जाता है।"]॥ 66॥

श्रीवन, लोहवन और श्रीकृष्णजन्मभूमि गोकुल दर्शन :—

'श्रीवन' देखि' पुनः गेला 'लोह-वन'।
'महावन' गिया कैला जन्मस्थान-दरशन॥ 67॥

अनुवाद—श्रीवन (बिल्ववन)के दर्शन करके महाप्रभु पुनः लोह-वनमें गये और फिर महावनमें जाकर उन्होंने श्रीकृष्णके जन्मस्थानका दर्शन किया॥ 67॥

अनुभाष्य— *'श्रीवन'—*

"वनं बिल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम्।"

[अर्थात् "व्रजके वनोंमें दसवें वनका नाम बिल्ववन (बेलवन) है और देवता भी इस वनकी पूजा करते हैं।"] (भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"देवता-पूजित बिल्ववन शोभामय।"

[अर्थात् "अति शोभायुक्त बिल्ववनकी सभी देवता पूजा करते हैं।"]

'लोहवन'—

"लौहजङ्घ-वनं नाम लोहजङ्घेन रक्षितम्।
नवमन्तु वनं देवि सर्वपातकनाशनम्॥"

[अर्थात् "व्रजके वनोंमें नौवाँ वन लौहजङ्घ-वन है। लौहजङ्घा नामक एक असुर इसकी रक्षा करता था। हे देवि! यह वन समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।"] (भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"लौहवने कृष्णेर अद्भुत गो-चारण।
एथा लोहजङ्घासुरे वधे भगवान्॥"

[अर्थात् "लौहवनमें श्रीकृष्ण गोचारण कराते थे। यहीं श्रीकृष्णने लौहजङ्घा नामक असुरका वध किया था।"]

'महावन'—

"महावनं चाष्टमन्तु सदैव तु मम प्रियम्।"

[अर्थात् "व्रजके वनोंमें आठवाँ वन महावन मेरा सदा अति प्रिय है।"] (भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"देख, नन्द-यशोदा-आलय महावने।
×× एइ देख श्रीकृष्णचन्द्रेर जन्मस्थल।
×× श्रीगोकुल, महावन—दुइ 'एक' हय॥"

[अर्थात् "महावनमें श्रीनन्द और यशोदाके भवनका दर्शन करो। यहाँ श्रीकृष्णके जन्मस्थानको देखो।

महावन और श्रीकृष्णका जन्मस्थान गोकुल, दोनों ही एक और अभिन्न हैं।"]॥ 67॥

यमलार्जुन-भञ्जनस्थलके दर्शनसे प्रेमावेश :—

यमलार्जुनभङ्गादि देखिल सेइ 'स्थल'।
प्रेमावेशे प्रभुर मन हैल टलमल॥ 68॥

अनुवाद—यमलार्जुन-भञ्जनादि लीलास्थलीको देखकर वहाँ प्रेमावेशमें महाप्रभुका मन अस्थिर हो गया॥ 68॥

अनुभाष्य— *'यमलार्जुन'*—

"यमलार्जुनतीर्थञ्च कुण्डं तत्र च वर्त्तते।"

[अर्थात् "उस स्थानपर यमलार्जुन-तीर्थ और यमलार्जुन-कुण्ड हैं।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"एइ यमलार्जुन-भञ्जन तीर्थस्थल।
एथा उदूखले कृष्णे यशोदा बाँधिला।
बन्धन-स्वीकार कृष्ण कौतुके करिला॥"

[अर्थात् "यह यमलार्जुन-भञ्जन तीर्थस्थल है। यहाँ यशोदा माताने श्रीकृष्णको ऊखलसे बाँधा था। श्रीकृष्णने माताके प्रेमके कारण बन्धन स्वीकार किया था]॥ 68॥

उसके बाद मथुरामें योगपीठका दर्शन और माधवेन्द्रपुरीके शिष्यके घरमें अवस्थान :—

'गोकुल' देखिया आइला 'मथुरा'-नगरे।
'जन्मस्थान' देखि' रहे सेइ विप्र-घरे॥ 69॥

अनुवाद—महाप्रभु गोकुलका दर्शन करके 'मथुरा'-नगरीमें आये और उन्होंने वहाँ श्रीकृष्ण जन्मस्थानके दर्शन किये। मथुरामें वे उन सनोड़िया ब्राह्मणके घरमें रहे॥ 69॥

लोगोंकी भीड़के कारण वहाँसे जाकर अक्रूरतीर्थमें रहना :—

लोकेर संघट्ट देखि' मथुरा छाड़िया।
एकान्ते 'अक्रूर-तीर्थे' रहिला आसिया॥ 70॥

अनुवाद—मथुरामें लोगोंकी भीड़को देखकर महाप्रभु वहाँसे अक्रूर-तीर्थ आ गये। वहाँ आकर वे एकान्त स्थानमें रहने लगे॥ 70॥

अनुभाष्य— *'अक्रूरतीर्थ'*—

"अक्रूरतीर्थमत्यर्थमस्ति प्रियवरं हरेः।
तीर्थराजः हि चाक्रूरं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्॥"

[अर्थात् "अक्रूरतीर्थ श्रीहरिका अति प्रियतम है। यह तीर्थोंका राजा है और गुह्यसे भी अति गुह्यतम धाम है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"देख, श्रीनिवास, एइ अक्रूर ग्रामेते।
श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु छिलेन निभृते॥"

[अर्थात् "हे श्रीनिवास, देखो इस अक्रूर ग्राममें श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु एकान्त स्थानमें रहे थे।"]॥ 70॥

वृन्दावनके दर्शनके लिये आगमन एवं कालीय-ह्रद और प्रस्कन्दन-क्षेत्रमें स्नान :—

आर दिन आइला प्रभु देखिते वृन्दावन।
'कालीय-ह्रदे' स्नान कैला आर प्रस्कन्दन॥ 71॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभु वृन्दावनके दर्शनके लिये आये। उन्होंने कालीय-ह्रद और प्रस्कन्दन तीर्थमें स्नान किया॥ 71॥

अनुभाष्य— *'वृन्दावन'*—

"अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्धनो गिरिः।"
"वृन्दावनं द्वादशमं वृन्दया परिरक्षितम्॥"

[अर्थात् "अहो! वृन्दावन अति रमणीय स्थान है, जहाँ गिरिराज गोवर्धन हैं। बारह वनोंमें यह बारहवाँ वन है और वृन्दादेवीके द्वारा यह सभी प्रकारसे सुरक्षित है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"कृष्णेर परमप्रिय धाम-वृन्दावन।
कृष्णदेहरूप 'पञ्चयोजन' एइ वन।
xx वृन्दावन—षोलक्रोश, लोके इहा प्रचार॥"

[अर्थात् "यह वृन्दावन-धाम श्रीकृष्णका परम प्रिय

स्थान है। यह श्रीकृष्णकी देह स्वरूप है और इसका परिमाण पाँच योजन है। लोगोंमें इस बातका भी प्रचार है कि वृन्दावन सोलह कोस परिमाणका है।"]

'कालीयह्रद'—

"कालीयह्रदपूर्वेण कदम्बो महितो द्रुमः।
ततः कालीयतीर्थाख्यं तीर्थमघविनाशनम्॥
अनृत्यद्यत्र भगवान् बालः कालीय-मस्तके॥"

[अर्थात् "कालीय-ह्रदके पूर्वमें एक विशाल कदम्बका वृक्ष है। वहाँ कालीय-तीर्थ नामक एक तीर्थ है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बाल्य-लीला करते हुए कालीयके मस्तकपर नृत्य किया था।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"ए कालीय-तीर्थ पाप विनाशय।
कालीय-तीर्थस्थाने बहु कार्यसिद्धि हय॥"

[अर्थात् "इस कालीय-तीर्थमें स्नान करनेसे समस्त पापोंका विनाश हो जाता है। इसमें स्नान करनेसे अनेक लौकिक कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं।"]

'प्रस्कन्दन'—

"क्षेत्रं प्रस्कन्दनं नाम सर्वपापहरं शुभम्।
तस्मिन् स्नातस्तु मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥"

[अर्थात् "प्रस्कन्दन नामक क्षेत्र सभी पापोंको हरकर शुभ प्रदान करनेवाला है। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"देख 'प्रस्कन्दन'-क्षेत्र—स्नाने पाप याय।
प्राणत्याग हइलेइ विष्णुलोक पाय॥
ओहे श्रीनिवास, सूर्यगणेर तापेते।
दूरे गेल शीत, घर्म्म हइल देहेते॥
सेइ घर्म्मजल सूर्यकन्याय मिलिल।
एइ हेतु 'प्रस्कन्दन'-नाम तीर्थ हैल॥
श्रीकृष्णचैतन्याभिन्न श्रीअद्वैत ईश्वर।
कतदिन छिला एइ वनेर भितर॥"

[अर्थात् "ओहे श्रीनिवास! इस 'प्रस्कन्दन'-क्षेत्रको देखो, यहाँ स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं। यहाँ कोई प्राण त्याग करता है, तो उसी समय वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (कालीय ह्रदमें कालीय दमनके समय श्रीकृष्णको जलमें अधिक समय रहनेके कारण सर्दी लग रही थी) तब श्रीकृष्णकी सेवाके लिये सूर्य बारह कलाओंके साथ ताप देने लगे। उस तापसे श्रीकृष्णके शरीरसे शीत दूर हो गया और देहसे पसीना आने लगा। वह पसीना यमुनासे जाकर मिल गया, इस लिये इसका नाम 'प्रस्कन्दन'-तीर्थ हुआ। श्रीकृष्णचैतन्यसे अभिन्न श्रीअद्वैत प्रभु कुछ दिन तक इस वनके भीतर रहे थे।"]॥ 71॥

द्वादश-आदित्यसे केशीतीर्थमें रासस्थली-दर्शनसे मूर्च्छा :—

'द्वादश-आदित्य' हैते 'केशीतीर्थे' आइला।
रासस्थली देखि' प्रेमे मूर्च्छित हइला॥ 72॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रस्कन्दनमें स्नान करके 'द्वादश-आदित्य' तीर्थमें आये। वहाँसे वे केशीतीर्थपर आये और जब उन्होंने रासस्थलीको देखा तो वे प्रेमावेशमें मूर्च्छित हो गये॥ 72॥

अनुभाष्य— *'द्वादश-आदित्य'—*

"द्वादशादित्य-तीर्थाख्यं तीर्थं तदनुपावनम्।
तस्य दर्शनमात्रेण नृणामघो विनश्यति॥"

[अर्थात् "द्वादश-आदित्य-तीर्थ तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाला है। उसके दर्शनमात्रसे ही मनुष्यके पापोंका विनाश हो जाता है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"देखह द्वादशादित्य तीर्थ एइखाने॥"

[अर्थात् "इस स्थानपर द्वादशादित्य तीर्थको देखो।"]

'केशीतीर्थ'—आदि-वाराहमें—

"गङ्गा शतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः।"

[अर्थात् "जहाँ केशी दैत्यका वध हुआ था (वह केशीतीर्थ) गङ्गासे सैंकड़ों गुणा अधिक पुण्य स्थान है।"]

(भक्तिरत्नाकर पाँचवीं-तरङ्गमें)—

"केशीवध कैल कृष्ण परम-कौतुके॥"

[अर्थात् "खेल-ही-खेलमें श्रीकृष्णने केशी दैत्यका वध कर दिया था।"]॥ 72॥

सारा दिन प्रेमाविष्ट महाप्रभुकी पागलों जैसी चेष्टाएँ :—

चेतन पाञा पुनः गड़ागड़ि याय।
हासे, कान्दे, नाचे, पड़े, उच्चैःस्वरे गाय॥ 73॥

अनुवाद—महाप्रभु जब पुनः चेतन हुए, तब वे भूमिपर लोट-पोट खाने लगे। महाप्रभु कभी तो हँसते, कभी रोते, कभी नृत्य करते, तो कभी भूमिपर गिर पड़ते और कभी उच्चस्वरमें गाते॥ 73॥

वहाँसे सन्ध्याके समय अक्रूर-तीर्थमें आकर भोजन :—

एइरङ्गे सेइदिन तथा गोङाइला।
सन्ध्याकाले 'अक्रूरे आसि' भिक्षा निर्वाहिला॥ 74॥

अनुवाद—इस प्रकार वह दिन महाप्रभुने आनन्दपूर्वक केशीतीर्थमें ही व्यतीत किया। फिर सन्ध्याके समय अक्रूर-तीर्थमें आकर भोजन ग्रहण किया॥ 74॥

प्रातःकालमें चीरघाटमें स्नान, इमलीतलामें विश्राम :—

प्राते वृन्दावने कैला 'चीरघाटे' स्नान।
तेँतुलि-तलाते आसि' करिला विश्राम॥ 75॥

द्वापरयुगका इमलीका वृक्ष :—

कृष्णलीला-कालेर सेइ वृक्ष पुरातन।
तार तले पिँड़ि-बान्धा परम-चिक्कण॥ 76॥

उसके निकट ही यमुनाका प्रवाह :—

निकटे यमुना बहे शीतल समीर।
वृन्दावन-शोभा देखे यमुनार नीर॥ 77॥

इमलीके वृक्षके नीचे बैठकर महाप्रभुका नामसङ्कीर्तन, दोपहरमें अक्रूरतीर्थमें आकर भोजन :—

तेँतुल-तले बसि' करेन नाम-सङ्कीर्त्तन।
मध्याह्न करि' आसि' करे 'अक्रूरे' भोजन॥ 78॥

अनुवाद—महाप्रभुने अगले दिन प्रातःकाल वृन्दावनमें चीरघाटपर स्नान किया और इमलीतलामें आकर विश्राम किया। श्रीकृष्णलीलाके समयका बहुत प्राचीन वह इमलीका वृक्ष है। उस वृक्षके नीचे बहुत ही चिकना चबूतरा बना हुआ था। उसके निकट ही यमुनाजी बह रही थीं, इसलिये वहाँ शीतल वायु प्रवाहित हो रही थी। महाप्रभु वृन्दावनकी शोभा और यमुनाजीके जलका दर्शन कर रहे थे। इमलीतलापर बैठकर महाप्रभु नाम-सङ्कीर्तन कर रहे थे। महाप्रभुने दोपहरके समय स्नान करनेके बाद अक्रूरतीर्थमें आकर भोजन किया॥ 75-78॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'तेँतुलि-तलाते'*—इस स्थानको अब 'आम्लितला' कहते हैं॥ 75॥

अक्रूरतीर्थवासियोंका महाप्रभुके दर्शनके लिये आगमन और महाप्रभुके निर्जन भजनमें संख्या-नाम-कीर्तनमें बाधा :—

अक्रूरेर लोक आइसे प्रभुरे देखिते।
लोक-भिड़े स्वच्छन्दे नारे 'कीर्त्तन' करिते॥ 79॥

अनुवाद—अक्रूरतीर्थमें रहनेवाले लोग महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये आते, महाप्रभु लोगोंकी भीड़के कारण शान्तिसे संख्यापूर्वक नामकीर्तन नहीं कर पाते॥ 79॥

महाप्रभुके द्वारा मध्याह्नतक निर्जनमें संख्या-नामकीर्तन :—

वृन्दावने आसि' प्रभु बसिया एकान्त।
नामसङ्कीर्त्तन करे मध्याह्न-पर्यन्त॥ 80॥

दोपहरके बाद लोगोंको महाप्रभुके दर्शनका सुयोग और महाप्रभुके द्वारा सभीको नाम-कीर्तनका उपदेश :—

तृतीय-प्रहरे लोक पाय दरशन।
सबारे उपदेश करे 'नामसङ्कीर्त्तन'॥ 81॥

अनुवाद—इसी कारण महाप्रभु वृन्दावनमें आकर एकान्तमें बैठकर दोपहर तक नामसङ्कीर्तन करते। दोपहरके बाद तीसरे पहरमें लोगोंको महाप्रभुके दर्शन होते। महाप्रभु सभीको नामसङ्कीर्तनका उपदेश प्रदान करते॥ 80-81॥

उस समय महाप्रभुके दर्शन करने
राजपूत-कृष्णदासका आगमन :—

हेनकाले आइल वैष्णव 'कृष्णदास' नाम।
राजपुत-जाति, गृहस्थ, यमुना-पारे ग्राम॥ 82॥

'केशी' स्नान करि' सेइ 'कालीयदह' याइते।
आम्‌लि-तलाय गोसाञिरे देखे आचम्बिते॥ 83॥

अनुवाद—उस समय कृष्णदास नामक एक वैष्णव महाप्रभुके दर्शन करने आये। वे गृहस्थ थे और जातिसे राजपूत थे। यमुनाके पार उनका घर था। केशीघाटपर स्नान करनेके बाद कालीयदहकी ओर जाते समय उन्होंने अचानक इमलीतलामें श्रीचैतन्य महाप्रभुको देखा॥ 82-83॥

महाप्रभुके दर्शनसे कृष्णदासको चमत्कार :—

प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हइल चमत्कार।
प्रेमावेशे प्रभुरे करेन नमस्कार॥ 84॥

अनुवाद—महाप्रभुके सौन्दर्य और प्रेमको देखकर कृष्णदास आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने प्रेमावेशमें महाप्रभुको नमस्कार किया॥ 84॥

महाप्रभुके द्वारा उसके परिचयकी जिज्ञासा और
कृष्णदासके द्वारा दीनतापूर्वक अपना परिचय देना :—

प्रभु कहे,—"के तुमि, काँहा तोमार घर?"
कृष्णदास कहे,—"मुञि गृहस्थ पामर॥ 85॥

राजपुत-जाति मुञि, ओ-पारे मोर घर।
मोर इच्छा हय,—हङ वैष्णव-किङ्कर॥ 86॥

महाप्रभुके दर्शनसे अपने स्वप्नके
दर्शनकी सफलताका वर्णन :—

किन्तु आजि एक मुञि 'स्वप्न' देखिनु।
सेइ स्वप्न परतेक तोमा आसि' पाइनु॥"87॥

महाप्रभुकी उसपर कृपा, कृष्णदासका प्रेम :—

प्रभु ताँरे कृपा कैला आलिङ्गन करि'।
प्रेमे मत्त हैल सेइ, नाचे, बले 'हरि'॥ 88॥

महाप्रभुके साथ आकर महाप्रभुके उच्छिष्टकी प्राप्ति :—

प्रभु-सङ्गे मध्याह्ने अक्रूर-तीर्थे आइला।
प्रभुर अवशिष्ट पात्र-प्रसाद पाइला॥ 89॥

तबसे कृष्णदास महाप्रभुके कमण्डलको वहन करनेवाला
और नित्यसङ्गी हो गया :—

प्राते प्रभुसङ्गे आइला जलपात्र लञा।
प्रभु-सङ्गे रहे गृह-स्त्री-पुत्र छाड़िया॥ 90॥

अनुवाद—महाप्रभुने उनसे पूछा,—"आप कौन हैं? आपका घर कहाँ है?" कृष्णदासने कहा,—"मैं एक अधम गृहस्थ हूँ। मैं जातिसे राजपूत हूँ और यमुनाके उस पार मेरा घर है। मेरी इच्छा होती है कि मैं किसी वैष्णवका दास बनूँ। आज मैंने एक स्वप्न देखा था। उस स्वप्नके अनुसार मैं यहाँ आया और आप मुझे साक्षात् मिले।" महाप्रभुने उन्हें आलिङ्गन करके उनपर कृपा की। कृष्णदास प्रेममें मत्त होकर नृत्य करते हुए 'हरि' बोलते कीर्तन करने लगे। कृष्णदास दोपहरके समय महाप्रभुके साथ अक्रूरतीर्थमें आ गये और उन्होंने महाप्रभुके अवशिष्ट प्रसादको ग्रहण किया। अगले दिन प्रातःकाल कृष्णदास महाप्रभुके साथ उनके जलके पात्रको उठाकर वृन्दावन आ गये। तबसे वे अपने घर-पत्नी-पुत्रको छोड़कर महाप्रभुके साथ रहने लगे॥ 85-90॥

अनुभाष्य—*'परतेक'*—'प्रत्यक्ष', 'साक्षात्'॥ 87॥

वृन्दावनमें श्रीकृष्णके प्रकट होनेका लोगोंका शोर :—

वृन्दावने पुनः 'कृष्ण' प्रकट हइल।
याँहा ताँहा लोक सब कहिते लागिल॥ 91॥

अनुवाद—महाप्रभु कहीं भी जाते, सभी लोग यही बात कहते कि श्रीकृष्ण वृन्दावनमें पुनः प्रकट हुए हैं॥ 91॥

एकदिन वृन्दावनसे बहुतसे लोगोंका
महाप्रभुके निकट आगमन :—

एकदिन अक्रूरेते लोक प्रातःकाले।
वृन्दावन हैते आइसे करि कोलाहले॥ 92॥

अनुवाद—बहुतसे लोग एकदिन प्रातःकाल वृन्दावनसे अक्रूरतीर्थपर आकर बहुत अधिक कोलाहल करने लगे॥ 92॥

महाप्रभुके द्वारा उनके आगमनके कारणकी जिज्ञासा :—

प्रभु देखि' करिल लोक चरण वन्दन।
प्रभु कहे,—"काँहा हैते करिला आगमन?"॥ 93॥

अनुवाद—महाप्रभुको देखकर उन लोगोंने उनके चरणकमलोंकी वन्दना की। महाप्रभुने उनसे पूछा,—"आप लोग कहाँसे आये हैं?"॥ 93॥

लोगोंके द्वारा श्रीकृष्णके प्रकट होनेका शोर;
मूर्ख लोगोंका विवर्त्तभ्रम :—

लोके कहे,—"कृष्ण प्रकट कालीयदहेर जले!
कालीय-शिरे नृत्य करे, फणि-रत्न ज्वले॥"94॥

अनुवाद—लोगोंने कहा,—"कालीयदहके जलमें श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं! श्रीकृष्ण कालीयके सिरपर नृत्य करते हैं तथा कालीयके फणोंमें स्थित मणियाँ चमकती हैं॥"94॥

महाप्रभुका दर्शन ही श्रीकृष्ण-दर्शन;
तथापि महाप्रभुका कौतुक-हास्य :—

साक्षात् देखिल लोक—नाहिक संशय।
शुनि' हासि' कहे प्रभु,—सब 'सत्य' हय॥ 95॥

अनुवाद—(महाप्रभुके दर्शनसे) लोगोंने अपनी आँखोंसे श्रीकृष्णको देखा है, इसमें संशयकी कोई बात नहीं है। उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए महाप्रभुने कहा,—सब कुछ 'सत्य' है॥ 95॥

तीन दिन तक सभीके द्वारा श्रीकृष्णके
दर्शन होनेका वर्णन :—

एइमत तिन रात्रि लोकेर गमन।
सबे आसि' कहे,—'कृष्ण पाइलुँ दरशन॥'96॥

अनुवाद—इस प्रकार तीन रात तक लोग कालीय-ह्रद जाते और सभी आकर कहते,—'हमें श्रीकृष्णके दर्शन हुए हैं॥'96॥

सरस्वतीके द्वारा इन वचनोंकी सत्यताका स्थापन :—

प्रभु-आगे कहे लोक,—'श्रीकृष्ण देखिल।'
'सरस्वती' एइ वाक्ये 'सत्य' कहाइल॥ 97॥

अनुवाद—लोग महाप्रभुके आगे आकर कहते,—'हमने श्रीकृष्णको देखा है।' 'सरस्वती देवी' उनके मुखसे यह सत्य वचन ही कहलवातीं॥ 97॥

महाप्रभुके दर्शनसे ही लोगोंके श्रीकृष्णदर्शन 'सत्य'
होनेपर भी वास्तवमें उनका वर्णन
और उद्देश्य—विवर्त्तके आश्रित :—

महाप्रभु देखि' 'सत्य' कृष्ण-दरशन।
निज-ज्ञाने सत्य छाड़ि' 'असत्ये सत्य भ्रम'॥ 98॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभुका दर्शन करके सत्य ही उन्होंने श्रीकृष्णका दर्शन किया। किन्तु अपने ज्ञानके द्वारा उन्होंने सत्यको छोड़कर असत्य वस्तुको ही सत्य (श्रीकृष्ण) समझा॥ 98॥

सरलबुद्धिवाले भट्टका विवर्त्त-भ्रम :—

भट्टाचार्य तबे कहे प्रभुर चरणे।
"आज्ञा देह', याइ' करि कृष्ण-दरशने!"॥ 99॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्यने महाप्रभुके चरणकमलोंमें निवेदन करते हुए कहा,—"आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं भी जाकर श्रीकृष्णका दर्शन करूँ॥"99॥

महाप्रभुके द्वारा उसके भ्रमको दूर करना :—

तबे ताँरे कहे प्रभु चापड़ मारिया।
"मूर्खेर वाक्ये 'मूर्ख' हैला पण्डित हञा॥ 100॥

स्वयं श्रीकृष्ण होनेपर भी भट्टसे आत्म-गोपन, फिर भी
सरल बुद्धि भट्टका विवर्त्तके मुखसे उद्धार :—

कृष्ण केने दरशन दिबेन कलिकाले?
निज-भ्रमे मूर्ख लोक करे कोलाहले॥ 101॥

माया-मुग्धकी अचिद्‌में चिद्‌बुद्धि अथवा चिद्‌का आरोप करनेवाले मूर्ख विवर्त्तवादी ही 'पागल' :—

'वातुल' ना हइओ, घरे रहुत बसिया।
'कृष्ण' दरशन करिह कालि रात्र्ये याञा॥"102॥

अनुवाद—महाप्रभुने कृपा करते हुए उसे थप्पड़ मारकर कहा,—"पण्डित होकर भी मूर्खोंकी बातें सुनकर तुम भी मूर्ख बन गये। श्रीकृष्ण कलियुगमें दर्शन क्यों देंगे? अपने भ्रमके कारण ही मूर्ख लोग शोर मचाते हैं। पागल मत बनो, घरपर ही बैठे रहो। कल रातको जाकर श्रीकृष्णके दर्शन करना॥"100-102॥

प्रातःकालमें वहाँ आये शिष्ट लोगोंसे श्रीकृष्णके दर्शनके विषयमें पूछना :—

प्रातःकाले भव्य-लोक प्रभु-स्थाने आइला।
"कृष्ण देखि' आइला?"—प्रभु ताँहारे पुछिला॥103॥

अनुवाद—अगले दिन प्रातःकाल कुछ सभ्य लोग महाप्रभुके पास आये। महाप्रभुने उनसे पूछा,—"क्या आप लोग श्रीकृष्णके दर्शन करके आये हैं?"॥103॥

उन लोगोंके द्वारा वास्तविक बात बतलाना :—

लोक कहे,—"रात्र्ये कैवर्त्त्य नौकाते चड़िया।
कालीयदहे मत्स्य मारे, देउटी ज्वालिया॥104॥
दूर हैते ताहा देखि' लोकेर हय भ्रम।
'कालीयेर शरीरे कृष्ण करिछे नर्त्तन॥'105॥

मूर्ख लोगोंकी विपरीत बुद्धि :—

नौकाते कालीय-ज्ञान, दीपे रत्न-ज्ञाने!
जालियारे मूढ़-लोक 'कृष्ण' करि' माने!!"॥106॥

अनुवाद—उन लोगोंने कहा,—"रातके समय मछुवारा नौकामें बैठकर लालटेन जलाकर कालीयदहपर मछलियोंको पकड़ता है। दूरसे उसीको देखकर लोगोंको भ्रम होता है कि कालीयके सिरके ऊपर श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं। नौकाको कालीय, दीपकको मणि तथा मछुवारेको मूर्ख लोग श्रीकृष्ण मानते हैं!"॥104-106॥

पक्षान्तरमें लोगोंके शोर और लोगोंके श्रीकृष्ण-दर्शनकी क्रियाकी भी सत्यता :—

वृन्दावने 'कृष्ण' आइला,—सेह 'सत्य' हय।
कृष्णेरे देखिल लोक,—इहा 'मिथ्या' नय॥107॥

किन्तु वास्तवमें प्रतीतिकी विचित्रतामें ही विपरीत भ्रमका उदय :—

किन्तु काहाँ 'कृष्ण' देखे, काहाँ 'भ्रम' माने।
स्थाणु-पुरुषे यैछे विपरीत-ज्ञाने॥108॥

अनुवाद—[श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं कि] वृन्दावनमें 'श्रीकृष्ण' आये हैं,—यह 'सत्य' ही है। लोगोंने श्रीकृष्णको देखा है,—यह बात भी 'मिथ्या' नहीं है। किन्तु उन्होंने जहाँ श्रीकृष्णके दर्शन किये हैं, वही उनकी भूल है। कभी ठूँठको देखकर जैसे उसे मनुष्य समझ लिया जाता है, उसी प्रकार लोगोंको भी भ्रम हुआ है॥107-108॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'स्थाणु'*—पत्तोंके बिना सूखा वृक्ष। कुछ दूरसे पत्तोंसे रहित वृक्षको देखकर 'एक पुरुष आ रहा है' ऐसा विपरीत ज्ञान होता है। व्रजवासियोंका भी उसी प्रकार मछुवारेकी नौकाको कालीय समझनेका, उसके ऊपर लगे हुए दीपकको रत्न समझनेका तथा मछली पकड़नेवाले मछुवारेको श्रीकृष्ण समझनेका 'भ्रम' उदित हुआ था॥108॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीकृष्णके दर्शनकी प्राप्तिके संवादकी जिज्ञासा; महाप्रभुके दर्शनसे सुकृति-प्राप्त लोगोंकी उनके प्रति श्रीनारायण-बुद्धि :—

प्रभु कहे,—"काँहा पाइला 'कृष्ण-दरशन'?"
लोक कहे,—"संन्यासी तुमि जङ्गम-नारायण॥109॥
वृन्दावने हइला तुमि कृष्ण-अवतार।
तोमा देखि' सर्वलोक हइल निस्तार॥"110॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"आपको श्रीकृष्णके दर्शन कहाँपर हुए?" लोगोंने कहा,—"संन्यासी होनेके कारण आप ही चलते-फिरते श्रीनारायण (जङ्गम-श्रीनारायण)

हैं। आप ही वृन्दावनमें श्रीकृष्णके अवतार हैं। आपको देखकर सभी लोगोंकी मुक्ति हो गयी है॥"109-110॥

अनुभाष्य— *'जङ्गम-नारायण'*—चलनेकी शक्तिसे युक्त नारायण; "दण्डग्रहण-मात्रेण नरो नारायणो भवेत्" [संन्यास दण्ड ग्रहण करने मात्रसे मनुष्य श्रीनारायण हो जाता है]। दण्डधारियोंको केवलाद्वैतमायावादी लोग "ॐ नमो नारायणाय" कहकर बातचीत करते हैं। किन्तु जीव,—मुक्त और बद्ध, सभी अवस्थाओंमें ही मायाधीश परमेश्वर श्रीनारायणके 'नित्य-अधीन' हैं और कभी भी उन्हें श्रीनारायण कहकर नहीं बुलाया जा सकता। जो जीवको विष्णुके साथ समान या एक कहते हैं अथवा वैसा समझते हैं, वे मायावादी [विष्णुके चरणोंमें] अपराधी हैं॥109॥

महाप्रभुकी लोकशिक्षा,—जीव 'श्रीकृष्ण' नहीं है, इसलिये जीवको श्रीकृष्ण समझना निषिद्ध है :—

प्रभु कहे,—"'विष्णु', 'विष्णु' इहा ना कहिबा!
जीवधमे 'कृष्ण'-ज्ञान कभु ना करिबा!!111॥

जीव और श्रीकृष्णमें भेद-वर्णन :—

संन्यासी—चित्कण जीव, किरण-कण-सम।
षड्ऐश्वर्यपूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम॥112॥

जीव, ईश्वर-तत्त्व—कभु नहे 'सम'।
ज्वलदग्निराशि यैछे स्फुलिङ्गेर 'कण'॥113॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"'विष्णु'! 'विष्णु'! ऐसा मत कहिये! अधम जीवको कभी भी श्रीकृष्ण मत समझना! संन्यासी भी एक चित्कण जीव है। षड्ऐश्वर्यपूर्ण श्रीकृष्ण सूर्यके समान हैं और जीव उनकी किरणके कणके समान है। जीव और ईश्वर-तत्त्व कभी भी एक समान नहीं हो सकते। जैसे जलती हुई अग्नि और उसकी चिङ्गारीका कण एक समान नहीं हो सकते॥111-113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मायावादी संन्यासी स्वयंको 'ब्रह्म' कहकर, मुखसे 'नारायण' 'नारायण' कहते हैं। स्मार्त्तप्रथामें गृहस्थ-ब्राह्मणादि सभी उस संन्यासीको देखनेपर उसे 'श्रीनारायण' मानकर प्रणाम करते हैं। इस भ्रम-प्रथाको रोकनेके लिये महाप्रभुने कहा,—संन्यासी जीवके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं; वे कभी भी षड्ऐश्वर्यपूर्ण श्रीकृष्णरूपी सूर्यके समान नहीं हो सकते। वे चित्कण-मात्र हैं, इसलिये, जीव श्रीकृष्णरूपी सूर्यकी किरण-कणके समान हैं; उनको कभी भी 'श्रीनारायण' कहकर प्रणाम करना उचित नहीं है॥112॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/96 संख्या देखें॥111-113॥

श्रीकृष्ण—'ईश्वर', जीव-उनके 'वशीभूत' :—
भगवत्सन्दर्भमें उद्धृत सर्वज्ञसूक्त-वाक्य अथवा भाः 1/7/6 श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीके द्वारा उद्धृत श्रीविष्णुस्वामि-वाक्य :—

ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः।
स्वाविद्या-संवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः॥114॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥114॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ईश्वर—सदैव सच्चिदानन्द और 'ह्लादिनी' एवं 'सम्वित्'-शक्तिके द्वारा आश्लिष्ट (आलिङ्गित) हैं; किन्तु जीव सर्वदा ही अपनी (आरोपित) अविद्याके द्वारा पूरा ढका हुआ है, इसलिये वह सब प्रकारके क्लेशोंका उद्गम-स्थल है॥114॥

अनुभाष्य—

ईश्वरः (श्रीकृष्णः) सच्चिदानन्दः (सन्धिनीसम्वित्-ह्लादिनी-शक्तिमान्) ह्लादिन्या (यया खलु भगवान् स्वरूपानन्दविशेषी भवति, ययैव तं तमानन्दमन्यानप्यनुभावयति, सा ह्लादिनी शक्तिः तया) संविदा (अद्वयज्ञानस्वरूपभूतया चिच्छक्तया) आश्लिष्टः (आलिङ्गितः); जीवः तु स्वाविद्यासंवृतः (स्वस्य आत्मनः भगवतः बद्धजीवमोहिन्या अविद्यया मायया शक्तया सम्यक् आवृतः सन्) संक्लेशनिकराकरः (संक्लेशाः तु त्रिविधाः—"क्लेशास्तु पापं तद्बीजमविद्या चेति ते त्रिधा" इति न्यायात्, तेषां निकरस्य पुञ्जस्य आकरः खनिः)।

श्लोक-भावानुवाद—सन्धिनी-सम्वित्-ह्लादिनी-शक्तिमान् श्रीकृष्ण अपनी स्वरूपशक्तिकी विशेष वृत्ति आनन्दस्वरूपा 'ह्लादिनी' जो उन्हें आनन्द प्रदान करती है और

'सम्वित्' जो उनकी अद्वयज्ञानस्वरूपभूता शक्ति है, इन दोनोंके द्वारा सदैव आलिङ्गित रहते हैं। किन्तु जीव सदा अपनी (आरोपित) भगवान्‌की जीवको बाँधनेवाली अविद्यारूपी मायासे पूरा ढका हुआ है, इसलिये वह तीन प्रकारके क्लेशों (पाप, बीज और अविद्या) की निधिकी खान है॥ 114॥

जीव और श्रीनारायणको समान समझना ही पाखण्ड :—

येइ मूढ़ कहे,—जीव ईश्वर हय 'सम'।
सेइत 'पाषण्डी' हय, दण्डे तारे यम॥"115॥

अनुवाद—जो मूर्ख कहता है,—जीव और ईश्वर एक समान हैं, वह पाखण्डी है और यमराजके दण्डका भागी बन जाता है॥"115॥

अनुभाष्य—*'पाषण्डी'*—आदिलीला 3/78 संख्या देखें। मायावश जीवके अथवा मायिक जड़वस्तुके साथ मायाधीश शुद्धसत्त्व चेतन-विग्रह श्रीविष्णुको 'एक' अथवा समान माननेवाला 'पाखण्डी' है। श्रीभक्तिसन्दर्भके (255 संख्या)—'नामापराध-वर्णन-प्रसङ्ग'में एक अपराध 'श्रुति-शास्त्रनिन्दा'के वर्णनमें—

"यथा पाषण्डमार्गेण दत्तात्रेयर्षभदेवोपासकानां पाषाण्डिनाम्"

[अर्थात् "दत्तात्रेय और ऋषभदेवके पाखण्डी उपासक-गण पाखण्डमार्गके अनुसार वेदादि शास्त्रनिन्दक हैं।"]

पुनः अन्य एक अपराध 'अहं-मम-बुद्धि' अथवा 'देहात्मबुद्धि'के वर्णनमें—

"देह-द्रविणादि-निमित्तक-'पाषण्ड'-शब्देन च दशापराधा एव लक्ष्यन्ते, पाषण्डमयत्वात् तेषाम्"

[अर्थात् "पुनः, 'मैं और मेराकी बुद्धि'के वर्णनमें—'नामैकं यस्य वाचि'—श्लोकमें देह-धनादि निमित्त 'पाखण्ड'-शब्दके द्वारा भी दसों नामापराध लक्षित हुए हैं, क्योंकि ये समस्त अपराध ही पाखण्डमय हैं।"]

पुनः (223 संख्यामें)—

"उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च।
स पाषण्डीति विज्ञेयः स्वतन्त्रो वापि कर्मसु॥'
इति पाषण्डित्वञ्च वैष्णव-मार्गाद्भ्रष्टत्वमित्यर्थः।"

[अर्थात् "जो व्यक्ति दूसरे देवताओंके उद्देश्यसे ही दान और होमादि करता है, उसको पाखण्डी अथवा कर्मविषयमें स्वेच्छाचारी समझना चाहिये। इसलिये 'पाखण्ड' वैष्णवमार्गसे भ्रष्ट होना है।"]

पुनः (179 संख्या)में "विष्णुधर्म-ग्रन्थमें विष्णुभक्त उपरिचर-वसुके द्वारा पाखण्डी असुरोंके उद्धार करनेके वृत्तान्तका उल्लेख करते हुए कहा गया है—दैत्यगुरु शुक्राचार्यके आदेशसे दैत्य उपरिचर-वसुको पाखण्ड मार्गका उपदेश करने लगे। परन्तु ऐसा करनेपर भी दैत्यगण उनकी कृपासे भगवद्भक्त बन गये। पुनः (153 संख्यामें) हरिनाममें अर्थवाद तथा वैष्णव-अपराधके वर्णनमें—

"तादृशापराधे भक्तिस्तम्भश्च श्रूयते।
×× देहादिलोभार्थं ये पाषण्डा गुर्ववज्ञादिदशापराधयुक्ताः"

[अर्थात् "इस प्रकारके अपराधोंके कारण भक्ति स्तम्भित हो जाती है—ऐसा शास्त्रोंमें सुना जाता है। देह-सम्पत्तिके लोभके उद्देश्यसे नाम ग्रहण करनेका पाखण्ड करनेवाले और गुरु-अवज्ञादि दस नामापराध युक्त व्यक्तियोंको श्रीनाम-कीर्तनका फल बहुत देरसे प्राप्त होता है।"]

इस प्रकार अनेक स्थानोंपर 'पाखण्ड' शब्दका उपयोग हुआ है। भाः 4/2/28, 30, 32, 5/6/9 एवं 12/2/13, 43 आदि बहुतसे श्लोकोंमें पाखण्डियोंके पाखण्डका वर्णन है॥ 115॥

शास्त्र-प्रमाण :—
वैष्णवतन्त्र-वाक्य, पाद्मोत्तर-खण्ड (23/12)में और
हरिभक्तिविलास (1/73)में —

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥ 116॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 116॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओंके साथ श्रीनारायणको 'समान' रूपमें देखते हैं, वे निश्चय ही 'पाखण्डी' हैं॥ 116॥

अनुभाष्य—

यः (भाग्यहीनो जनः) तु (गर्हणार्थे) देवं नारायणं (ब्रह्मरुद्रोपास्यं तयोरधीश्वरं भगवन्तं विष्णुं) ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः (चतुर्मुख-पञ्चमुखादि-नारायणदासभूतैः देवैः जीवरूपैः सह) समत्वेन (नित्यप्रभुणा सह देवाख्यनित्यदासैः समानतया) वीक्षेत (पश्येत्) सः ध्रुवं (निश्चितम् एव) 'पाषण्डी' भवेत्—"अर्च्ये विष्णो शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिर्विष्णोर्वा वैष्णवाणां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बु बुद्धिः। श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकल-कलुषहे शब्द-सामान्यबुद्धिर्विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः।" इति पद्मपुराणवचनात्।

श्लोक-भावानुवाद—जो [निन्दाके अर्थमें—] भाग्यहीन लोग ब्रह्म-रुद्रके उपास्य और उनके अधीश्वर भगवान् विष्णुको जीवरूप चतुर्मुख-पञ्चमुखादि नारायणदास देवताओंके साथ समान अर्थात् नित्यप्रभुके साथ उनके नित्यदास देवोंको समान देखता है, वह निश्चित ही 'पाखण्डी' होता है। पद्मपुराणवचन,—"जो व्यक्ति श्रीमूर्तिमें शिला बुद्धि, वैष्णव और गुरुदेवमें मरणशील मानव बुद्धि, वैष्णवोंमें जाति बुद्धि, विष्णु और वैष्णवोंके चरण धौतजलमें जल बुद्धि तथा सर्वपाप नाशक विष्णुनाम, मन्त्रमें सामान्य शब्द बुद्धि एवं सर्वेश्वर विष्णुको अन्य देवताओंके साथ समान बुद्धि रखता है, वह नारकीय है।"॥ 116॥

लोगोंका महाप्रभुके 'श्रीकृष्ण' होनेका दृढ़ विश्वास और स्तुति :—

लोक कहे,—"तोमाते कभु नहे 'जीव'-मति।
कृष्णेर सदृश तोमार आकृति-प्रकृति॥ 117॥

'आकृत्ये' तोमारे देखि' 'व्रजेन्द्रनन्दन'।
देहकान्ति पीताम्बर कैल आच्छादन॥ 118॥

प्रियभक्तोंके सामने भगवद्-स्वरूपका स्वतःप्रकाश :—

मृगमद वस्त्रे बान्धे, तबु ना लुकाय।
'ईश्वर-स्वभाव' तोमार ढाका नाहि याय॥ 119॥

अनुवाद—लोगोंने कहा,—"आपको कोई भी 'जीव' नहीं मान सकता, क्योंकि आपकी आकृति तथा प्रकृति सभी प्रकारसे श्रीकृष्णके समान ही है। यद्यपि पीतवर्णने आपकी अपनी उस श्यामल कान्तिको ढक रखा है, तथापि 'आकृति'से हम आपको साक्षात् 'व्रजेन्द्रनन्दन' ही देख रहे हैं। जैसे कस्तूरीको वस्त्रमें बाँधकर रखनेपर भी उसकी गन्धको छिपाया नहीं जा सकता, वैसे ही आपका 'ईश्वर-स्वभाव' छिपानेपर भी छिपाया नहीं जा सकता॥ 117-119॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/85-89 संख्या देखें। जिस प्रकार कस्तूरीके वस्त्रमें बँधे होनेपर भी उसकी गन्ध सभी दिशाओंमें फैल जाती है, उसी प्रकार आपके द्वारा भक्तजीवरूपी आवरणसे अपनेको गोपन करनेपर भी आपका भगवत् स्वभाव छिपता नहीं है॥ 119॥

अधोक्षज होनेपर भी जगत्के आकर्षक :—

अलौकिक 'प्रकृति' तोमार—बुद्धि-अगोचर।
तोमा देखि' कृष्णप्रेमे जगत् पागल॥ 120॥

अनुवाद—आपकी अलौकिक 'प्रकृति' हमारी बुद्धिके अगोचर है। आपका दर्शन करके समस्त जगत् श्रीकृष्णप्रेममें पागल हो रहा है॥ 120॥

भगवद्दर्शन अथवा शुद्धनाम-श्रवणमात्रसे बालक-वृद्ध-स्त्री, यहाँ तक कि अन्त्यज्य भी 'आचार्य' बनकर जगत्का उद्धार करनेमें समर्थ :—

स्त्री-बाल-वृद्ध, आर 'चण्डाल', 'यवन'।
येइ तोमार एकबार पाय दरशन॥ 121॥

कृष्णनाम लय, नाचे हञा उन्मत्त।
आचार्य हइल सेइ, तारिल जगत॥ 122॥

अनुवाद—स्त्री, बालक, वृद्ध और यहाँ तक कि 'चण्डाल' और 'यवन'—जो कोई एकबार भी आपका दर्शन करता है, वह श्रीकृष्ण नामका कीर्तन करता है, उन्मत्त होकर नृत्य करता है तथा आचार्य बनकर जगत्का उद्धार करता है॥ 121-122॥

दर्शनेर कार्य आछुक, ये तोमार 'नाम' शुने।
सेइ कृष्णप्रेमे मत्त, तारे त्रिभुवने॥ 123॥

तोमार नाम शुनि' हय श्वपच 'पावन'।
अलौकिक शक्ति तोमार ना याय कथन॥ 124॥

अनुवाद—दर्शनकी तो बात दूर रहे, जो कोई आपका 'नाम' भी सुनता है, वही श्रीकृष्णप्रेममें मत्त होकर त्रिभुवनको तार देता है। आपके नामको सुनकर कुत्तेके माँसको खानेवाला भी 'पवित्र' हो जाता है। आपकी अलौकिक शक्तिका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 123-124॥

श्रीमद्भागवत (3/33/6)में :—

यन्नामधेय-श्रवणानुकीर्त्तनाद्-
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥ 125॥

अनुवाद—हे भगवन्, जिनके नाम श्रवण, अनुकीर्तन, प्रणाम और स्मरण करने मात्रसे चण्डाल और यवन कुलमें जन्मा व्यक्ति भी तत्क्षणात् सवन-यज्ञ (सोमयज्ञ) करनेके योग्य हो जाता है, ऐसे वे प्रभु आप हैं, आपके दर्शनसे क्या नहीं हो सकता?॥ 125॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 16/186 संख्या देखें॥ 125॥

उक्त समस्त ही महाप्रभुके 'तटस्थ' लक्षण, स्वरूपतः महाप्रभु—साक्षात् स्वयंरूप श्रीकृष्ण :—

एइत' महिमा—तोमार 'तटस्थ'-लक्षण।
'स्वरूप'-लक्षणे तुमि—व्रजेन्द्रनन्दन॥"126॥

अनुवाद—यह महिमा तो आपका 'तटस्थ'-लक्षण है, 'स्वरूप'-लक्षण तो आपका व्रजेन्द्रनन्दन होना है॥"126॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अन्य वस्तुके साथ तुलना नहीं करके जिन 'स्वतःसिद्ध-लक्षणों'से वस्तु परिचित होती है, वही उसके 'स्वरूप'-लक्षण हैं। अन्य वस्तुके साथ तुलना करके जिन लक्षणोंसे वस्तुका अपना परिचय साधित होता है, उन लक्षणोंको 'तटस्थ' कहते हैं। पूर्वोक्त महिमासमूहने तटस्थ लक्षणके रूपमें ही आपको 'व्रजेन्द्रनन्दन' कहकर स्थिर किया है। पुनः आपको देखनेमात्रसे ही 'व्रजेन्द्रनन्दन'के रूपमें जो बोध उदित होता है, यही आपका 'स्वरूप'-लक्षण है; स्वरूप-लक्षणके द्वारा ही आपको 'श्रीकृष्ण' कहकर स्थिर किया है॥ 126॥

सभीपर ही महाप्रभुकी कृपा; उनका अपने घर जाना :—

सेइ सब लोके प्रभु प्रसाद करिल।
कृष्णप्रेमे मत्त लोक निज घरे गेल॥ 127॥

अनुवाद—महाप्रभुने उन सब लोगोंपर कृपा की। वे लोग श्रीकृष्णप्रेममें मत्त हो गये और अन्तमें अपने घरोंमें लौट गये॥ 127॥

अक्रूरतीर्थमें रहकर लोगोंका उद्धार :—

एइमत कतदिन 'अक्रूरे' रहिला।
कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोक निस्तारिला॥ 128॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु कुछ दिन तक अक्रूरतीर्थमें रहे। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण-नाम और प्रेम प्रदान करके लोगोंका उद्धार किया॥ 128॥

सनोड़िया-विप्रका मथुरामें सभी सज्जनोंको ही महाप्रभुकी सेवाका सुयोग प्रदान करके उनका उद्धार करना :—

माधवपुरीर शिष्य सेइत' ब्राह्मण।
मथुरार घरे-घरे करा'न निमन्त्रण॥ 129॥

मथुरार यत लोक ब्राह्मण-सज्जन।
भट्टाचार्य-स्थाने आसि' करे निमन्त्रण॥ 130॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य वे सनोड़िया ब्राह्मण मथुराके घर-घरमें जाकर उन्हें महाप्रभुको निमन्त्रण करनेके लिये उत्साहित कर रहे थे। मथुराके जितने भी सज्जन ब्राह्मण थे, वे सभी बलभद्र भट्टाचार्यके पास आकर महाप्रभुके लिये निमन्त्रण देने लगे॥ 129-130॥

अनुभाष्य—'सेइत' ब्राह्मण'—सनोड़िया (मध्यलीला 17/179 संख्या देखें)॥ 129॥

एकसाथ बहुतसे व्यक्तियोंके द्वारा निमन्त्रण करनेपर भी, भट्टके द्वारा एक-एक व्यक्तिका ही निमन्त्रण-स्वीकार :—

एकदिन 'दश' 'बिश' आइसे निमन्त्रण।
भट्टाचार्य एकेर मात्र करेन ग्रहण॥ 131॥

अनुवाद—एक ही दिनमें दस-बीस निमन्त्रण आने लगे, परन्तु बलभद्र भट्टाचार्य केवल किसी एकके ही निमन्त्रणको स्वीकार करते॥ 131॥

सभीके द्वारा एक ही साथ महाप्रभुको भिक्षा देनेकी इच्छा करनेके कारण लोगोंके लिये महाप्रभुकी सेवाके अवसरका अभाव :—

अवसर ना पाय लोक निमन्त्रण दिते।
सेइ विप्र साधे लोक निमन्त्रण निते॥ 132॥

अनुवाद—क्योंकि सभी लोगोंको महाप्रभुको निमन्त्रण करनेका अवसर ही प्राप्त नहीं हो रहा था, इसलिये वे सनोड़िया ब्राह्मणसे ही निवेदन करते कि महाप्रभु उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लें॥ 132॥

वैदिक सद्ब्राह्मणोंका दीनतापूर्वक महाप्रभुको निमन्त्रण :—

कान्यकुब्ज-दाक्षिणात्येर वैदिक ब्राह्मण।
दैन्य करि', करे, महाप्रभुर निमन्त्रण॥ 133॥

अक्रूरतीर्थमें आकर स्वयं ही रसोई बनाकर महाप्रभुको भिक्षा-दान :—

प्रातःकाले अक्रूरे आसि' रन्धन करिया।
प्रभुरे भिक्षा देन शालग्रामे समर्पिया॥ 134॥

अनुवाद—कान्यकुब्ज, दक्षिण-भारत आदि स्थानोंके वैदिक ब्राह्मणोंने अत्यधिक दीनतापूर्वक महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। वे ब्राह्मण प्रातःकालमें अक्रूरतीर्थ आकर रसोई बनाते और शालग्रामको भोग समर्पित करके उसे महाप्रभुको समर्पित करते॥ 133-134॥

अनुभाष्य—'कान्यकुब्ज', 'सारस्वत', 'गौड़', 'मैथिल' और 'उत्कल'—ये पाँच गौड़-ब्राह्मण एवं 'आन्ध्र', 'कर्णाट', 'गुर्जर', 'द्राविड़' और 'महाराष्ट्र दक्षिण-भारतके ब्राह्मण,—इन दस प्रकारके वैदिक शुद्ध ब्राह्मण, जो वैदिक आचारका पूर्णरूपसे पालन करते थे अर्थात् तान्त्रिक-दुराचारके द्वारा जिन्होंने अपने वैदिक अनुष्ठानका त्याग नहीं किया, सभीने दैन्यपूर्वक महाप्रभुको निमन्त्रण किया था॥ 133॥

महाप्रभुके द्वारा अक्रूर घाटपर बैठकर ऐश्वर्य-पूजक अक्रूरके और माधुर्य-सेवक व्रजवासियोंके अपने-अपने अधिकारसे धाम दर्शनका विचार :—

एकदिन सेइ अक्रूर-घाटेर उपरे।
बसि' महाप्रभु किछु करेन विचारे॥ 135॥

'एइ घाटे अक्रूर वैकुण्ठ देखिल।
व्रजवासी लोक 'गोलोक' दर्शन कैल॥'136॥

अनुवाद—एकदिन उस अक्रूर घाटपर बैठकर महाप्रभु कुछ विचार कर रहे थे,—'इसी घाटपर अक्रूरने वैकुण्ठका दर्शन किया था और यहींपर व्रजवासी लोगोंने 'गोलोक'का दर्शन किया था॥ 135-136॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'अक्रूरघाट'—वृन्दावन और मथुराके बीचमें आधे रास्तेपर यह घाट है। यहाँ रथको खड़ा करके अक्रूरने श्रीबलराम-कृष्णको साथ लेकर यमुना-स्नान किया था। स्नानके समय अक्रूरने जलमें 'वैकुण्ठ'का दर्शन किया था एवं व्रजवासी लोगोंने उस घाटके जलमें गोलोकका दर्शन किया था॥ 135॥

महाप्रभुके द्वारा जलमें कूदना और डूबना :—

एत बलि' झाँप दिला जलेर उपरे।
डुबिया रहिला प्रभु जलेर भितरे॥ 137॥

अनुवाद—अक्रूर कैसे जलमें रहे, यह विचार करते हुए महाप्रभुने जलमें छलाँग लगा दी और वे जलके अन्दर ही डूबे रहे॥ 137॥

कृष्णदासके रोने-चिल्लानेको सुनकर भट्टके द्वारा उसी समय आकर महाप्रभुको निकालना :—

देखि' कृष्णदास कान्दि' फुकार करिल।
भट्टाचार्य शीघ्र आसि' प्रभुरे उठाइल॥ 138॥

अनुवाद—ऐसा देखकर कृष्णदास रोते-रोते बहुत जोरसे सहायताके लिये पुकारने लगे। बलभद्र भट्टाचार्यने जल्दीसे आकर महाप्रभुको बाहर निकाला॥ 138॥

भट्ट और ब्राह्मणका परामर्श :—

तबे भट्टाचार्य सेइ ब्राह्मणे लञा।
युक्ति करिला किछु निभृते बसिया॥ 139॥

"आजि आमि आछिलाङ, उठाइलुँ प्रभुरे।
वृन्दावने डुबेन यदि, के उठाबे ताँरे?॥ 140॥

लोगोंकी भीड़, भिक्षाकी परेशानी और महाप्रभुके सदैव प्रेमावेशसे भयभीत भट्टकी वृन्दावनसे महाप्रभुको अन्य स्थानपर ले जानेकी इच्छा :—

लोकेर संघट्ट, आर निमन्त्रणेर जञ्जाल।
निरन्तर आवेश प्रभुर,—ना देखिये भाल॥ 141॥

वृन्दावन हैते यदि प्रभुरे काड़िये।
तबे मङ्गल हय,—एइ भाल युक्ति हय॥"142॥

अनुवाद—तब बलभद्र भट्टाचार्यने सनोड़िया ब्राह्मणको अपने साथ लेकर एकान्तमें बैठकर कुछ विचार-विमर्श किया,—"आज तो मैं यहाँ था, मैंने महाप्रभुको जलसे बाहर निकाल लिया। यदि वे वृन्दावनमें डूबने लगें, वहाँ उन्हें कौन बाहर निकालेगा? वैसे भी यहाँ लोगोंकी इतनी भीड़ है और उसपर निमन्त्रणका जञ्जाल है। साथमें महाप्रभु भी निरन्तर आवेशमें रहते हैं। मुझे यहाँकी स्थिति अच्छी नहीं लग रही है। यदि महाप्रभुको वृन्दावनसे बाहर ले जा सकें, तभी अच्छा होगा। मुझे तो यही उचित लग रहा है॥"139-142॥

अनुभाष्य—*'काड़िये'*—ले जाँय॥ 142॥

ब्राह्मणके द्वारा माघस्नानके उपलक्ष्यमें गङ्गा तटके पथसे प्रयागमें ले जानेका परामर्श :—

विप्र कहे,—"प्रयागे प्रभु लञा याइ।
गङ्गातीर-पथे याइ, तबे सुख पाइ॥ 143॥

'सोरोक्षेत्रे' आगे याञा करि' गङ्गास्नान।
सेइ पथे प्रभु लञा करिये पयान॥ 144॥

माघ-मास लागिल, एबे यदि याइये।
मकरे प्रयाग-स्नान कत दिन पाइये॥ 145॥

अपने दुःखका निवेदन और सामयिक परामर्श देना :—

आपनार दुःख किछु करि' निवेदन।
'मकरे' पौँछिते प्रयागे करिह सूचन॥ 146॥

महाप्रभुसे भट्टके द्वारा भिक्षाके लिये अनुरोध करनेवालोंकी असुविधाका वर्णन करनेके बाद माघ-स्नानके लिये प्रयागमें जानेका अनुरोध :—

गङ्गातीर-पथे सुख जानाइह ताँरे।"
भट्टाचार्य आसि' तबे कहिल प्रभुरे॥ 147॥

अनुवाद—सनोड़िया ब्राह्मणने कहा,—"मेरा विचार है कि महाप्रभुको प्रयागमें ले चलें। यदि गङ्गातटवाले मार्गसे जायेंगे, तो उसमें बड़ा आनन्द होगा। पहले 'सोरोक्षेत्र'में जाकर गङ्गास्नान करके उसी मार्गसे महाप्रभुको लेकर आगे बढ़ेंगे। माघ-मास अभी आरम्भ हुआ है, यदि अभी यहाँसे जायेंगे, तो प्रयागमें मकर-सक्रान्तिके समय कुछ दिनके लिये वहाँ स्नान कर सकेंगे। आप महाप्रभुसे अपने दुःखका भी निवेदन करना और कहना कि यदि अभी चलेंगे तो हम लोग माघी-पूर्णिमा तक प्रयाग पहुँच जायेंगे। आप महाप्रभुसे कहना कि गङ्गातटवाले पथसे जानेपर यात्रा सुखप्रद होगी।" तब बलभद्र भट्टाचार्यने आकर महाप्रभुसे कहा,—॥ 143-147॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सोरोक्षेत्रे'*—मथुरासे सबसे निकटवर्ती गङ्गा-तटपर ही 'सोरोक्षेत्र' है॥ 144॥

अनुभाष्य—कर्मनिष्ठ व्यक्तियोंके लिये माघमासमें प्रयाग-स्नान विशेष फल प्रदान करनेवाला है;

"माघे मासि गमिष्यन्ति गङ्गायामुनसङ्गमम्।
गवां शतसहस्रस्य सम्यक् दत्तश्च यत्फलम्।
प्रयागे माघमासे वै त्र्यहं स्नातस्य तत्फलम्॥"

[अर्थात् "यदि कोई प्रयागमें जाकर गङ्गा-यमुनाके सङ्गमपर माघ-मासमें स्नान करता है, तो उसे लाखों गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। केवल तीन दिन वहाँ स्नान करनेसे उसे इतना पुण्य प्राप्त होता है।"]

एवं

"सर्वाधिकारितां माघस्नानस्य व्रवता यतः"

अर्थात् "माघस्नानके व्रतका सबसे अधिक फल होता है"

आदि व्यवस्था देखी जाती है॥ 145॥

"सहिते ना पारि आमि लोकेर गड़बड़ि।
निमन्त्रण लागि' लोक करे हुड़ाहुड़ि॥ 148॥

प्रातःकाले आइसे लोक, तोमारे ना पाय।
तोमारे ना पाञा लोक मोर माथा खाय॥ 149॥

तबे सुख हय यबे गङ्गापथे याइये।
एबे यदि याइ, 'मकरे' गङ्गास्नान पाइये॥ 150॥

उद्विग्न हइल प्राण, सहिते ना पारि।
प्रभुर ये आज्ञा हय, सेइ शिरे धरि॥"151॥

अनुवाद—"लोगोंकी भीड़ आकर जो गड़बड़ी करती है, मुझसे वह सहन नहीं होती। निमन्त्रण देनेके लिये लोग एकके बाद एक आते रहते हैं। वे लोग प्रातःकालमें ही आ जाते हैं, जब आप यहाँ नहीं होते। और आपको नहीं पाकर लोग मेरा दिमाग खाते हैं। मुझे तो तभी प्रसन्नता होगी, जब हम यहाँसे चलें और गङ्गातटके मार्गसे जाँय। यदि हम अभी जायेंगे, तब हम मकर-सक्रान्तिमें प्रयागमें गङ्गास्नान कर पायेंगे। मेरा मन बहुत उद्विग्न हो रहा है और मैं इसे सहन नहीं कर पा रहा हूँ, परन्तु आपकी जो आज्ञा होगी, मैं उसीको शिरोधार्य करूँगा॥"147-151॥

अनुभाष्य—*'गड़बड़ि'*—लोगोंके आने-जानेसे होनेवाली गड़बड़ी॥ 148॥

वृन्दावनको छोड़नेकी इच्छा नहीं होनेपर भी भट्टकी इच्छाकी पूर्त्ति और भट्टकी प्रशंसा :—

यद्यपि वृन्दावन-त्यागे नाहि प्रभुर मन।
भक्त-इच्छा पूरिते कहे मधुर वचन॥ 152॥

"तुमि आमाय आनि' देखाइला वृन्दावन।
एइ 'ऋण' आमि नारिब करिते शोधन॥ 153॥

ये तोमार इच्छा, आमि सेइत करिब।
याँहा लञा याह तुमि, ताँहाइ याइब॥"154॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभुकी वृन्दावनको छोड़कर जानेकी बिलकुल भी इच्छा नहीं थी, तथापि भक्तकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये उन्होंने मधुर वचन कहे,—"अपने साथ लाकर तुमने मुझे वृन्दावनके दर्शन कराये हैं, मैं तुम्हारे इस 'ऋण'को कभी भी नहीं चुका पाऊँगा। तुम्हारी जैसी इच्छा है, मैं वैसा ही करूँगा। तुम मुझे जहाँ ले जाओगे, मैं वहीं जाऊँगा॥"152-154॥

प्रातः स्नानके बाद भावि-विच्छेदके स्मरणसे प्रेमावेश :—

प्रातःकाले महाप्रभु प्रातःस्नान कैल।
'वृन्दावन छाड़िब' जानि' प्रेमावेश हैल॥ 155॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभुने प्रातःकालमें उठकर स्नान किया। 'वृन्दावनको छोड़कर जाऊँगा'—यह सोचकर ही वे प्रेमाविष्ट हो गये॥ 155॥

महाप्रभुको गोकुल जानेके लिये नौकामें बैठाकर दूसरी पार गमन :—

बाह्य विकार नाहि, प्रेमाविष्ट मन।
भट्टाचार्य कहे,—चल, याइ महावन॥ 156॥

एत बलि' महाप्रभुरे नौकाय बसाञा।
पार करि' भट्टाचार्य चलिला लञा॥ 157॥

अनुवाद—बाहरसे महाप्रभुमें कोई विकार दिखायी नहीं दे रहा था, परन्तु उनका मन प्रेममें आविष्ट था। बलभद्र भट्टाचार्यने महाप्रभुसे कहा,—चलिये, हम लोग महावन चलें। यह कहकर बलभद्र भट्टाचार्यने महाप्रभुको नौकामें बैठाया। नदी पार करनेके बाद वे महाप्रभुको साथ लेकर चल पड़े॥ 156-157॥

अनुभाष्य—*'महावन'*—गोकुल॥ 156॥

राजपूत कृष्णदास और मथुराके सनोड़िया ब्राह्मण—दोनों ही मार्गको जाननेवाले :—

प्रेमी कृष्णदास, आर सेइत ब्राह्मण।
गङ्गातीरे-पथे याइवार विज्ञ दुइजन॥ 158॥

अनुवाद—प्रेमी कृष्णदास और सनोड़िया ब्राह्मण—दोनों ही गङ्गातटवाले मार्गको भली-भाँति जानते थे॥ 158॥

मार्गमें एक वृक्षके नीचे सभीका विश्रामके लिये बैठना :—

याइते एक वृक्षतले प्रभु सबा लञा।
बसिला, सबार पथ-श्रान्ति देखिया॥ 159॥

अनुवाद—चलते हुए महाप्रभुने देखा कि उनके सङ्गी सब थक गये हैं, तो उनको साथमें लेकर वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये॥ 159॥

गैयाओंको घूमते देखकर व्रजलीलाका स्मरण :—

सेइ वृक्ष निकटे चरे बहु गाभीगण।
ताहा देखि' महाप्रभुर उल्लसित मन॥ 160॥

अनुवाद—उस वृक्षके निकट ही बहुत सी गायें घास चर रही थीं। उन्हें देखकर महाप्रभुके मनमें बहुत उल्लास हुआ॥ 160॥

हठात् एक वंशीध्वनिके श्रवणसे महाप्रभुकी प्रेम-मूर्च्छा :—

आचम्बिते एक गोप वंशी बाजाइल।
शुनि' महाप्रभुर महा-प्रेमावेश हैल॥ 161॥

अचेतन हञा प्रभु भूमिते पड़िला।
मुखे फेना पड़े, नासाय श्वास रुद्ध हैला॥ 162॥

अनुवाद—अचानक एक गोपने वंशी बजायी, उसे सुनते ही महाप्रभुमें अत्यधिक प्रेमावेश आ गया और वे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। उनके मुखसे झाग निकलने लगी तथा उनकी सांस रुक गयी॥ 161-162॥

उसी समय वहाँ दस घुड़सवार पठानोंका आगमन :—

हेनकाले ताँहा आशोयार दश आइला।
म्लेच्छ-पाठान घोड़ा हैते उत्तरिला॥ 163॥

अनुवाद—उसी समय वहाँपर दस घुड़सवार म्लेच्छ-पठान सैनिक आये और महाप्रभुको मूर्च्छित पड़े देखकर वे घोड़ोंसे उतरकर उनके पास आ गये॥ 163॥

अनुभाष्य—*'आशोयार'*—घुड़सवार सैनिक॥ 163॥

महाप्रभुके साथी चारों लोगोंको ही 'महाप्रभुकी हत्या करनेवाले डाकू' समझकर सरदारके द्वारा उनको मारनेका प्रयास :—

प्रभुरे देखिञा म्लेच्छ करये विचार।
'ऐइ यति-पाश छिल सुवर्ण अपार॥ 164॥

एइ चारि बाटोयार धुतुरा खाओयाञा।
मारि' डारियाछे, यतिर सब धन लञा॥'165॥

तबे सेइ पाठान चारि जनेरे बाँधिल।
काटिते चाहे, गौड़िया सब काँपिते लागिल॥ 166॥

अनुवाद—महाप्रभुको मूर्च्छित देखकर म्लेच्छ विचार करने लगे,—'इस संन्यासीके पास अवश्य ही बहुत अधिक सोना था। इन चारों डकैतोंने संन्यासीका सब कुछ लूटकर उसे धतूरा खिलाकर मार डाला है।' तब उन पठानोंने उन चारों लोगोंको बाँध दिया और उनको मारनेका निश्चय किया। दोनों बङ्गाली भयसे काँपने लगे॥ 164-166॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'बाटोयार'*—मार्गमें जो डकैती कर लेते हैं; *'मारि' डारियाछे'*—मार डाला है॥ 165॥

अनुभाष्य—*'बाटोयार'*—असहाय पथिकोंको लूटनेवाले डाकू। *'चारिजनेर'*—1) कृष्णदास राजपूत, 2) श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य 'सनोड़िया'-ब्राह्मण, 3) बलभद्र भट्टाचार्य, 4) बलभद्रके साथी ब्राह्मण॥ 165-166॥

कृष्णदास और मथुराके ब्राह्मणके द्वारा निर्भय होकर पठानको अपना परिचयादि देना :—

कृष्णदास—राजपुत, निर्भय से बड़।
सेइ विप्र—निर्भय, से—मुखे बड़ दड़॥ 167॥

अनुवाद—कृष्णदास तो राजपूत होनेके कारण बिलकुल निडर थे। सनोड़िया ब्राह्मण भी निडर और बोलनेमें निपुण थे॥ 167॥

अनुभाष्य—*'मुखे बड़ दड़'*—अति निपुण वक्ता, बातचीत-परिचयमें पटु॥ 167॥

विप्र कहे,—"पाठान, तोमार पात्सार दोहाइ।
चल तुमि, आमि सिक्दार-पाश याइ॥ 168॥

अनुवाद—सनोड़िया ब्राह्मणने कहा,—"पठान, बादशाह तुम्हारा स्वामी है। तुम हमें अपने सरदारके पास लेकर चलो॥ 168॥

अनुभाष्य—*'सिक्दार'*—शान्तिरक्षक विशेष कर्मचारी, अथवा पदपर विराजमान सेनाका अध्यक्ष, अथवा सिक्का (बादशाही मुद्रा)-दार (भारप्राप्त कर्मचारी)॥ 168॥

एइ यति—आमार गुरु, आमि—माथुर ब्राह्मण।
पात्सार आगे आमार आछे 'शत जन'॥ 169॥

अनुवाद—ये संन्यासी हमारे गुरु हैं और मैं मथुराका ब्राह्मण हूँ। मैं ऐसे सैकड़ों लोगोंको जानता हूँ, जो बादशाहकी नौकरी करते हैं॥ 169॥

एइ यति व्याधिते कभु हयेन मूर्च्छित।
अबँहि चेतन पाइबे, हइबे सम्वित॥ 170॥

अनुवाद—ये संन्यासी रोगके कारण कभी मूर्च्छित हो जाते हैं। थोड़ी देर प्रतीक्षा करके देखो, इनमें चेतनता आ जायेगी और इनकी सामान्य दशा हो जायेगी॥ 170॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अबँहि'*—अभी॥ 170॥

अनुभाष्य—*'सम्वित्'*—ज्ञान॥ 170॥

क्षणेक इँहा बैस, बान्धि' राखह सबारे।
इँहाके पुछिया, तबे मारिह आमारे॥"171॥

अनुवाद—थोड़ी देर तक यहीं बैठो और हम सबको भले ही बँधा ही रहने दो। जब इनकी चेतनता लौट आये, तब इनसे ही सब कुछ पूछना। उसके बाद ही चाहे हमें मार डालना॥"171॥

पठानके द्वारा क्रोधपूर्वक सभीको 'डाकू' कहना :—

पाठान कहे,—"तुमि पश्चिमा माथुर दुइजन।
'गौड़िया' ठक् एइ काँपे दुइजन॥"172॥

अनुवाद—पठानने कहा,—"तुम सभी ठग हो, तुम दोनों पश्चिम भारतके मथुराके रहनेवाले हो और ये जो भयसे काँप रहे हैं, दोनों बङ्गालके हैं॥"172॥

उसके उत्तरमें कृष्णदासके द्वारा पठानको भय दिखाना और कड़वे वचन कहना :—

कृष्णदास कहे,—"आमार घर एइ ग्रामे।
दुइशत तुर्की आछे, शतेक कामाने॥ 173॥

एखनि आसिबे सब, आमि यदि फुकारि।
घोड़ा-पिड़ा लुटि' लबे तोमा-सबा-मारि'॥ 174॥

गौड़िया—'बाटपाड़' नहे, तुमि—'बाटपाड़'।
तीर्थवासी लुठ', आर चाह' मारिवार॥"175॥

अनुवाद—कृष्णदासने कहा,—"इसी ग्राममें मेरा घर है। मेरे पास दो सौ तुर्की सैनिक और एक सौ तोपें हैं। यदि मैं उन्हें वंशी बजाकर बुलाऊँगा, तो वे सभी अभी आ जायेंगे। फिर वे तुम सबको मारकर तुम्हारे घोड़े, काठी और सब सामान ले लेंगे। गौड़ीय ठग नहीं हैं, बल्कि तुम ही ठग हो। तुम लोग तीर्थयात्रियोंको लूटते हो और उन्हें मारना चाहते हो॥"174-175॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'घोड़ा-पिड़ा'*—घोड़ा तथा उसकी पीठपर रखी काठी आदि वस्तुएँ॥ 174॥

अनुभाष्य—*'फुकारि'*—वंशीध्वनि करके॥ 174॥

पठानोंको भय :—

शुनिया पाठान मने सङ्कोच हइल।
हेनकाले महाप्रभु 'चैतन्य' पाइल॥ 176॥

अनुवाद—कृष्णदासकी बात सुनकर पठानोंके मनमें कुछ सङ्कोच हुआ। उसी समय अचानक महाप्रभुमें चेतनता आ गयी॥ 176॥

महाप्रभुकी बाह्यदशा और नृत्य-कीर्तन :—

हुङ्कार करिया उठे, बले 'हरि' 'हरि'।
प्रेमावेशे नृत्य करे ऊर्द्धबाहु करि'॥ 177॥

अनुवाद—महाप्रभु हुङ्कार करके उठ खड़े हुए और जोरसे 'हरि' 'हरि' बोलने लगे। तब महाप्रभु हाथ उठाकर प्रेमावेशमें नृत्य करने लगे॥ 177॥

पापी म्लेच्छोंको हरिनाम-श्रवण करनेसे कष्ट :—

प्रेमावेशे प्रभु यबे करेन चित्कार।
म्लेच्छेर हृदये येन लागे शेलधार॥ 178॥

अनुवाद—प्रेमावेशमें जब महाप्रभु चीत्कार कर रहे थे, तब म्लेच्छोंको ऐसा लग रहा था मानो कोई उनके हृदयको बाणकी नोकसे बेध रहा हो॥ 178॥

अनुभाष्य—*'लागे शेलधार'*—बाणकी नोककी भाँति बेधना (छेदना)॥ 178॥

म्लेच्छोंके द्वारा तत्क्षणात् चारों लोगोंको खोल देना; महाप्रभुके लिये भक्तद्रोहके दर्शनके अवकाश नहीं :—

भय पाञा म्लेच्छ छाड़ि' दिल चारिजन।
प्रभु ना देखिल निज-गणेर बन्धन॥ 179॥

अनुवाद—भयभीत होकर पठानोंने उसी समय चारों लोगोंको खोल दिया। इसलिये महाप्रभुने अपने साथियोंको बँधे हुए नहीं देखा॥ 179॥

म्लेच्छको देखकर महाप्रभुके द्वारा भावको छिपाना :—

भट्टाचार्य आसि' प्रभुरे धरि' बसाइल।
म्लेच्छगण देखि' महाप्रभुर 'बाह्य' हैल॥ 180॥

अनुवाद—तब बलभद्र भट्टाचार्यने आकर महाप्रभुको पकड़कर बैठाया। म्लेच्छोंको देखकर महाप्रभुको बाह्यज्ञान हुआ॥ 180॥

म्लेच्छोंके द्वारा महाप्रभुकी वन्दना और चारोंके विरुद्ध शिकायत :—

म्लेच्छगण आसि' प्रभुर वन्दिल चरण।
प्रभु-आगे कहे,—"एइ ठक् चारिजन॥ 181॥
एइ चारि मिलि' तोमाय धुतुरा खाओयाञा।
तोमार धन लैल, तोमाय पागल करिया॥"182॥

अनुवाद—म्लेच्छोंने आकर महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की और उनसे कहा,—"ये चारों लोग ठग हैं। इन चारोंने मिलकर आपको धतूरा खिलाकर पागल करके आपका सारा धन ले लिया है॥"181-182॥

चारों लोगोंको ही 'अपना' कहकर महाप्रभुके द्वारा उनका परिचय देना :—

प्रभु कहेन,—"ठक् नहे, मोर 'सङ्गी' जन।
भिक्षुक संन्यासी, मोर नाहि किछु धन॥ 183॥
मृगी व्याधिते आमि कभु हइ अचेतन।
एइ चारि दया करि' करेन पालन॥"184॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"ये लोग ठग नहीं, बल्कि मेरे साथी हैं। मैं एक भिक्षुक संन्यासी हूँ, मेरे पास कोई धन नहीं है। मैं मिरगीकी बीमारीके कारण कभी-कभी मूर्च्छित हो जाता हूँ। ये चारों लोग कृपा करके मेरा पालन करते हैं॥"183-184॥

पठानोंमेंसे एक व्यक्ति 'मौलाना' :—

सेइ म्लेच्छ-मध्ये एक परम गम्भीर।
कालवस्त्र परे सेइ,—लोके कहे 'पीर'॥ 185॥

अनुवाद—उन म्लेच्छोंमें-से एक व्यक्ति बहुत गम्भीर था। उसने काले वस्त्र पहने थे और लोग उसे 'पीर' (साधु) कहते थे॥ 185॥

महाप्रभुके दर्शनसे उसमें नम्रभाव और निर्विशेष-ब्रह्मको स्थापित करनेकी चेष्टा :—

चित्त आर्द्र हैल ताँर प्रभुरे देखिया।
'निर्विशेष-ब्रह्म' स्थापे स्वशास्त्र उठाञा॥ 186॥

अनुवाद—महाप्रभुको देखकर उस 'पीर'का चित्त द्रवीभूत हो गया। वह अपने शास्त्रके (कुरानके) द्वारा 'निर्विशेष-ब्रह्म'की स्थापना करनेके लिये महाप्रभुसे बात करना चाहता था॥ 186॥

अनुभाष्य—*'निर्विशेष-ब्रह्म'*—अज्ञेय, परिचयरहित 'ईश्वर'। 'खुदा' (ईश्वर) और 'बन्दा' (जीव)—इन दो नित्यभावोंसे रहित चिद्विलासहीन पारलौकिक अवस्थान॥ 186॥

मुस्लिम-शास्त्रकी युक्तिके द्वारा ही महाप्रभुके द्वारा उसके मतका खण्डन :—

'अद्वैत-ब्रह्मवाद' सेइ करिल स्थापन।
ताँर शास्त्रयुक्तये ताँरे प्रभु कैला खण्डन॥ 187॥

येइ येइ कहिल, प्रभु सकलि खण्डिल।
उत्तर ना आइसे मुखे, महास्तब्ध हैल॥ 188॥

अनुवाद—उस म्लेच्छाचार्यने कुरानके आधारपर 'अद्वैत-ब्रह्मवाद'की स्थापना की, परन्तु महाप्रभुने उसका खण्डन कर दिया। उसने जो-जो तर्क या विचार रखे, महाप्रभुने उस सबका खण्डन कर दिया। अन्तमें वह म्लेच्छाचार्य बिलकुल स्तब्ध हो गया और कुछ भी नहीं बोल सका॥ 187-188॥

मुस्लिम-शास्त्रोंमें सर्वप्रथम निर्विशेषत्वको स्थापित करनेके बाद अन्तमें सविशेष-ब्रह्मका ही स्थापन :—

प्रभु कहे,—"तोमार शास्त्र स्थापे 'निर्विशेषे'।
ताहा खण्डि' 'सविशेष' स्थापियाछे शेषे॥ 189॥

कुरानमें सबसे अन्तमें सविशेष-ब्रह्म श्रीकृष्णका परिचय :—

तोमार शास्त्रे कहे शेषे 'एकइ ईश्वर'।
'सर्वैश्वर्यपूर्ण' तेँहो—श्याम-कलेवर॥ 190॥

सच्चिदानन्द-देह, पूर्णब्रह्म-स्वरूप।
'सर्वात्मा', 'सर्वज्ञ', नित्य सर्वादि-स्वरूप॥ 191॥

सृष्टि, स्थिति, प्रलय ताँहा हैते हय।
स्थूल-सूक्ष्म-जगतेर तेँहो समाश्रय॥ 192॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"पहले तो तुम्हारे शास्त्र 'निर्विशेष'की स्थापना करते हैं, किन्तु अन्तमें उसीका खण्डन करके 'सविशेष'की स्थापना करते हैं। तुम्हारे शास्त्रमें अन्तमें 'एक ही ईश्वर'की बात कही गयी है। वे ईश्वर सब प्रकारके ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण हैं और उनका शरीर श्याम वर्णका है। उनकी देह सच्चिदानन्द है, वे पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं, वे सर्वात्मा, सर्वज्ञ, नित्य और सबके आदि-स्वरूप हैं। उन्हींके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। वे स्थूल और सूक्ष्म जगत्के वास्तविक आश्रय हैं॥ 189-192॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'स्वशास्त्र'—कुरान; मुसलमानोंमें 'सूफी' नामक एक सम्प्रदाय है, इनका मत ही 'निर्विशेष ब्रह्म' अथवा 'अद्वैत ब्रह्मवाद' है, इनका महावाक्य—"अनलहक्" है। यह सूफी-मत शाङ्कर मतसे उत्पन्न हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

तुम्हारे मोहम्मदके शास्त्रमें मोहम्मदके सप्तम स्वर्गमें ईश्वरके दर्शनके वर्णनमें ईश्वरका पूर्ण विग्रह स्वीकार किया गया है॥ 186-190॥

उन भगवान्की प्रीति अथवा भक्ति ही संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली और परम-पुरुषार्थ :—

सर्वश्रेष्ठ, सर्वाराध्य, कारणेर कारण।
ताँर भक्त्ये हय जीवेर संसार-तारण॥ 193॥

ताँर सेवा बिना जीवेर ना याय 'संसार'।
ताँहार चरणे प्रीति—'पुरुषार्थ-सार'॥ 194॥

अनुवाद—वे ईश्वर सर्वश्रेष्ठ, सभीके आराध्य तथा सभी कारणोंके भी कारण हैं। उनकी भक्तिसे जीव संसारसे तर जाता है। उनकी सेवाके बिना बद्धजीवोंका संसार क्षय नहीं होता। उन्हीं ईश्वरके चरणोंमें प्रीति ही सभी पुरुषार्थोंका सार है॥ 193-194॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उन ईश्वरकी 'एबादत्' अर्थात् पाँच समय नमाज आदि सेवा नहीं करनेसे जीवको पुरुषार्थकी प्राप्ति नहीं होती। तुम्हारे शास्त्रमें प्रीतिको ही पुरुषार्थ कहा गया है; उसमें कर्म-योग-ज्ञानादिको

स्थापित करके अन्तमें उसका खण्डन करके ईश्वरकी 'एबादत्' अर्थात् सेवाकी श्रेष्ठता ही स्थापित हुई है॥ 194॥

भगवद्-प्रेमकी महिमा :—

मोक्षादि आनन्द यार नहे एक 'कण'।
पूर्णानन्द-प्राप्ति ताँर चरण-सेवन॥ 195॥

अनुवाद—ईश्वरमें सायुज्य मोक्षका आनन्द उनके चरणोंकी सेवासे प्राप्त पूर्णानन्दके एक कणके समान भी नहीं है॥ 195॥

कुरानमें पहले 'कर्म', 'ज्ञान', 'योग'के विषयमें बतलाकर अन्तमें भगवद्भक्ति ही संस्थापित :—

'कर्म', 'ज्ञान', 'योग' आगे करिया स्थापन।
सब खण्डि' स्थापे 'ईश्वर', 'ताँहार सेवन'॥ 196॥

अनुवाद—तुम्हारे शास्त्र कुरानमें पहले 'कर्म', 'ज्ञान', 'योग'की स्थापना की गयी है, परन्तु अन्तमें इन सबका खण्डन करके सविशेष 'ईश्वर' और उनकी सेवाकी ही स्थापना की गयी है॥ 196॥

साधारणतः मुस्लिम-पण्डितोंमें कुरानके वास्तविक तात्पर्यके ज्ञानका अभाव; पूर्वमें वर्णित कर्म और ज्ञानकी विधिकी अपेक्षा बादमें वर्णित भक्तिकी विधि ही बलवान :—

तोमार पण्डित-सबार नाहि शास्त्र-ज्ञान।
पूर्वापर-विधि-मध्ये 'पर'—बलवान्॥ 197॥

मौलानाको कुरानके वास्तविक-निर्णय करनेका अनुरोध :—

निज-शास्त्र देखि' तुमि विचार करिया।
कि लिखियाछे शेषे कह निर्णय करिया॥"198॥

अनुवाद—तुम्हारे पण्डितोंको शास्त्र-ज्ञान नहीं है। वास्तवमें 'पूर्व' (पहलेवाली) और 'पर' (बादवाली) विधिमें-से 'पर' विधि ही बलवान् होती है। अपने शास्त्र कुरानको देखकर उसमें अन्तमें क्या लिखा है, उसपर विचार करके तुम मुझे अपना निर्णय बतलाओ॥"197-198॥

मौलानाके द्वारा महाप्रभुके वचनोंकी 'सत्यता'का अनुमोदन; मुस्लिम पण्डितोंके हृदय-दौर्बल्यको स्वीकार करना :—

म्लेच्छ कहे,—"येइ कह, सेइ 'सत्य' हय।
शास्त्रे लिखियाछे, केह लइते ना पारय॥ 199॥

अनुवाद—उस म्लेच्छाचार्यने कहा,—"आप जो कह रहे हैं, वही 'सत्य' है। कुरानमें तो ऐसा ही लिखा है, किन्तु हमारे कोई भी पण्डित लोग न तो उसे समझते हैं और न ही उसे स्वीकार करते हैं॥ 199॥

उनकी निर्विशेषत्वमें ही दृढ़ आस्था, चिन्मय सविशेषत्वकी सेवामें आस्था नहीं :—

'निर्विशेष-गोसाञि' लञा करेन व्याख्यान।
'साकार-गोसाञि'—सेव्य, कारो नाहि ज्ञान॥ 200॥

अनुवाद—निर्विशेष ईश्वरको लेकर ही सभी कुरानकी व्याख्या करते हैं, किन्तु ईश्वर साकार तथा सेव्य हैं, इसका किसीको भी ज्ञान नहीं है॥ 200॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पीरके जैसे काले वस्त्रधारी म्लेच्छाचार्यने कहा,—हमारे शास्त्रकी गूढ़ बात साधारण पण्डित नहीं समझ सकते; इसलिये वे हमारे अल्लाके 'निराकार भाव'को लेकर ही लोगोंको व्याख्या करते हैं। इस बातको अधिकांश लोग नहीं जानते कि चरम अवस्थामें ईश्वरका सच्चिदानन्द आकार ही सेव्य है॥ 199-200॥

अठारहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—*'गोसाञि'*—आराध्य वस्तु भगवान्; *'साकार'*—मनुष्यके अपने जड़ीय ज्ञानका अतिक्रम करके त्रिगुणातीत अप्राकृत सविशेष विग्रह अथवा चिन्मय आकारसे युक्त विग्रह॥ 200॥

महाप्रभुको 'परमेश्वर' मानना और कृपाकी याचना :—

सेइत 'गोसाञि' तुमि—साक्षात् 'ईश्वर'।
मोरे कृपा कर, मुञि—अयोग्य पामर॥ 201॥

अनुवाद—आप साक्षात् वही ईश्वर हैं। मुझपर कृपा कीजिये, मैं अयोग्य तथा पतित हूँ॥ 201॥

मौलानाके द्वारा स्वयं साधन और साध्य वस्तुकी मीमांसाकी चेष्टामें असमर्थताको मानना :—

अनेक देखिनु मुञि म्लेच्छ-शास्त्र हैते।
'साध्य-साधन-वस्तु' नारि निर्द्धारिते॥ 202॥

अनुवाद—मैंने मुस्लिम-शास्त्रोंमें बहुत ढूँढ़ा है, किन्तु साध्य-वस्तु क्या है और उसे पानेका साधन क्या है, मैं इसको निर्धारित नहीं कर पाया हूँ॥ 202॥

महाप्रभुके दर्शनसे मौलानाकी जिह्वापर स्वतः ही श्रीकृष्णनामकी स्फूर्त्ति और जड़ीय अभिमान दूर होना :—

तोमा देखि' जिह्वा मोर बले 'कृष्णनाम'।
'आमि—बड़ ज्ञानी'—एइ गेल अभिमान॥ 203॥

महाप्रभुको प्रणाम करके साध्य-साधनकी जिज्ञासा :—

कृपा करि' बल मोरे 'साध्य-साधने'।"
एत बलि' पड़े महाप्रभुर चरणे॥ 204॥

अनुवाद—आपको देखकर मेरी जिह्वा श्रीकृष्णनाम बोल रही है। 'मैं बहुत बड़ा ज्ञानी हूँ'—मेरा यह अभिमान भी दूर हो गया है। आप कृपा करके मुझे परम 'साध्य' और उसे पानेके 'साधन'के विषयमें बतलाइये।" इतना कहकर वे महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े॥ 203-204॥

महाप्रभुके द्वारा उसे आश्वासन, श्रीकृष्णनामके आभाससे ही उसके पापपुञ्जका विनाश :—

प्रभु कहे,—"उठ, कृष्णनाम तुमि लइला।
कोटि जन्मेर पाप गेल, 'पवित्र' हइला॥"205॥

महाप्रभुके आदेशसे सभीके द्वारा श्रीकृष्णनाम-ग्रहण :—

'कृष्ण' कह, 'कृष्ण' कह,—कैला उपदेश।
सबे 'कृष्ण' कहे, सबार हैल प्रेमावेश॥ 206॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"उठो, तुमने कृष्णनामका उच्चारण किया है, इसलिये तुम्हारे करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो गये हैं। अब तुम 'पवित्र' हो गये हो।" 'कृष्ण' बोलो, 'कृष्ण' बोलो—महाप्रभुने यह उपदेश उन सब पठानोंको दिया। जैसे ही वे 'कृष्ण'का उच्चारण करने लगे, सभीमें प्रेमका आवेश हो गया॥ 205-206॥

महाप्रभुके द्वारा उसका 'रामदास'-नाम-संस्कार प्रदान :—

'रामदास' बलि' प्रभु ताँर कैल नाम।
आर एक पाठान, ताँर नाम—'बिजली-खाँन'॥ 207॥

पठानोंके सरदार बिजली खाँका परिचय :—

अल्प वयस ताँर, राजार कुमार।
'रामदास' आदि पाठान—चाकर ताँहार॥ 208॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस म्लेच्छाचार्यको परोक्षरूपसे हरिनामकी दीक्षा देते हुए उसे 'रामदास' कहकर उसका नामकरण किया। उन लोगोंमें-से एक 'बिजली खाँन' नामका पठान था। उसकी आयु बहुत कम थी और वह राजाका पुत्र था। 'रामदास' आदि पठान उसके दास थे॥ 207-208॥

उसके द्वारा भी महाप्रभुके श्रीचरणोंमें शरण-ग्रहण, महाप्रभुका उसके मस्तकपर पदार्पण :—

'कृष्ण' बलि' पड़े सेइ महाप्रभुर पाय।
प्रभु श्रीचरण दिल ताँहार माथाय॥ 209॥

अनुवाद—वह बिजली-खाँन भी 'कृष्ण' बोलते हुए महाप्रभुके चरणोंमें पड़ गया। महाप्रभुने अपने श्रीचरणकमलको उसके मस्तकपर रख दिया॥ 209॥

महाप्रभुकी यात्रा, उन सब पठानोंके द्वारा वैराग्यधर्मको ग्रहण करना :—

ताँ-सबारे कृपा करि' प्रभु त' चलिला।
सेइत पाठान सब 'वैरागी' हइला॥ 210॥

अनुवाद—उन सबपर कृपा करके महाप्रभु तो चल दिये। वे सब पठान वैरागी बन गये॥ 210॥

उनकी 'पठान-वैष्णव'के रूपमें ख्याति और उनके द्वारा सर्वत्र महाप्रभुके गुणोंका गान :—

'पाठान-वैष्णव' बलि' हैल ताँर ख्याति।
सर्वत्र गाहिया बुले महाप्रभुर कीर्त्ति॥ 211॥

अनुवाद—वे सब 'पठान-वैष्णव'के नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे सर्वत्र महाप्रभुके गुणोंका गान करते हुए भ्रमण करने लगे॥ 211॥

सर्वत्र महाभागवत बिजली खाँकी महिमाका विस्तार :—

सेइ बिजली-खाँन हैल 'महा-भागवत'।
सर्वतीर्थे हैल ताँर परम-महत्त्व॥ 212॥

अनुवाद—वे बिजली-खाँन महाभागवत बन गये और सभी तीर्थोंमें उनकी महिमा फैल गयी॥ 212॥

पश्चिम-भारतमें आकर महाप्रभुके द्वारा म्लेच्छोंका उद्धार :—

ऐछे लीला करे प्रभु श्रीकृष्णचैतन्य।
'पश्चिमे' आसिया कैल यवनादि धन्य॥ 213॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ऐसी लीलाएँ करते हैं। पश्चिम भारतमें आकर उन्होंने यवनोंको भी धन्य कर दिया॥ 213॥

सोरोक्षेत्रमें गङ्गास्नान और गङ्गातटक पथसे प्रयागमें गमन :—

सोरो क्षेत्रे आसि' प्रभु कैला गङ्गास्नान।
गङ्गातीर-पथे कैला प्रयागे पयान॥ 214॥

अनुवाद—सोरोक्षेत्रमें आकर महाप्रभुने गङ्गास्नान किया और फिर गङ्गातटके मार्गसे उन्होंने प्रयागकी ओर यात्रा की॥ 214॥

सनोड़िया-ब्राह्मण और कृष्णदासको विदायी देनेकी इच्छा :—

सेइ विप्रे, कृष्णदासे, प्रभु विदाय दिला।
योड़-हाते दुइजन कहिते लागिला॥ 215॥

अनुवाद—सोरोक्षेत्रमें महाप्रभुने सनोड़िया ब्राह्मण तथा कृष्णदासको घर लौट जानेके लिये कहा, तब वे दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे॥ 215॥

अनुभाष्य—*'सेइ विप्रे, कृष्णदासे'*—श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य सनोड़िया ब्राह्मणको और कृष्णदास-राजपूतको सोरोसे विदायी दी॥ 215॥

उनकी प्रयाग तक अनुगमनकी प्रार्थना :—

"प्रयाग पर्यन्त दुँहे तोमा-सङ्गे याब।
तोमार चरण-सङ्ग पुनः काँहा पाब?॥ 216॥
म्लेच्छदेश, केह काँहा करये उत्पात।
भट्टाचार्य—पण्डित, कहिते ना जानेन बात्॥"217॥

अनुवाद—"हम दोनों प्रयाग तक आपके साथ जायेंगे। आपके चरणकमलोंका सङ्ग पुनः हमें कहाँ प्राप्त होगा? म्लेच्छ देश है, कौन कहाँ क्या उत्पात खड़ा कर दे? बलभद्र भट्टाचार्य यद्यपि पण्डित हैं, किन्तु वे यहाँकी भाषा नहीं जानते हैं॥"216-217॥

महाप्रभुका मन्द-मुस्काना और उनका महाप्रभुके पीछे-पीछे चलना :—

शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिते लागिला।
सेइ दुइजन प्रभुर सङ्गे चलि' आइला॥ 218॥

अनुवाद—उन दोनोंकी बात सुनकर महाप्रभु मन्द-मन्द मुस्करा दिये। वे दोनों महाप्रभुके साथ चले आये॥ 218॥

मार्गमें महाप्रभुका दर्शन करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके द्वारा ही श्रीकृष्णनाम-ग्रहण :—

येइ येइ जन प्रभुर पाइल दरशन।
सेइ प्रेमे मत्त हय, करे कृष्ण-सङ्कीर्त्तन॥ 219॥

उससे किसी दूसरे व्यक्तिको श्रवण करनेका सुयोग, इस प्रकार श्रवण-कीर्तनधाराकी परम्परासे सभी देशोंका उद्धार :—

ताँर सङ्गे अन्योन्ये, ताँर सङ्गे आन।
एइमत 'वैष्णव' कैला सब देश-ग्राम॥ 220॥

अनुवाद—जिस-जिस व्यक्तिको महाप्रभुके दर्शन प्राप्त हुए, वही प्रेममें मत्त हो गया और श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन करने लगा। महाप्रभुके दर्शनसे जो व्यक्ति वैष्णव बना, उसका जिसने सङ्ग किया, वह भी वैष्णव बन गया।

इस प्रकार सभी नगरों और गाँवोंके लोग एकके बाद एक वैष्णव बन गये॥ 219-220॥

दक्षिणकी भाँति पश्चिमदेशका भी उद्धार करना :—

दक्षिण याइते यैछे शक्ति प्रकाशिला।
सेइमत 'पश्चिमदेश' प्रेमे भासाइला॥ 221॥

अनुवाद—दक्षिण भारतमें जाते समय महाप्रभुने जैसे अपनी शक्तिको प्रकाशित किया था, उसी प्रकार उन्होंने 'पश्चिम-भारत'को भी श्रीकृष्णप्रेममें डुबो दिया॥ 221॥

अनुभाष्य— *'पश्चिम'-देश'*—कोई-कोई कहते हैं कि उस समय श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावनसे कुरुक्षेत्र जाकर फिर प्रयाग गये थे। कुरुक्षेत्रमें भद्रकाली-मन्दिरके निकट श्रीगौरविग्रह आज भी विराजमान है॥ 221॥

अठारहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

महाप्रभुका प्रयागमें आगमन; दस दिन त्रिवेणी-दर्शन और स्नान :—

एइमत चलि' प्रभु 'प्रयाग' आइला।
दशदिन त्रिवेणीते मकर-स्नान कैला॥ 222॥

अनुवाद—इस प्रकार चलते-चलते महाप्रभु 'प्रयाग'में आ गये। दस दिनों तक उन्होंने त्रिवेणीमें मकर-स्नान किया॥ 222॥

महाप्रभुका चरित्र अगाध; वृन्दावनके प्रेम-वर्णनमें साक्षात् शेषकी भी असमर्थता :—

वृन्दावन-गमन, प्रभु-चरित्र अनन्त।
'सहस्र-वदन' याँर नाहि पा'न अन्त॥ 223॥

अनुवाद—महाप्रभुका वृन्दावनमें गमन तथा वहाँपर उनकी लीलाएँ अनन्त हैं, 'सहस्र-मुखवाले' अनन्त-शेष भी उनकी लीलाओंका अन्त नहीं पाते॥ 223॥

ग्रन्थकारका दैन्य और दिग्दर्शनमात्र वर्णन :—

ताहा के कहिते पारे क्षुद्र जीव हञा।
दिग्दरशन कैलुँ मुञि सूत्र करिया॥ 224॥

अनुवाद—तब क्षुद्र जीव होकर कौन उनका वर्णन कर सकता है? मैंने तो सूत्रके रूपमें उनका दिग्दर्शन मात्र करवाया है॥ 224॥

दुर्भागे व्यक्तियोंका ही श्रीचैतन्यलीलामें अविश्वास :—

अलौकिक-लीला प्रभुर अलौकिक-रीति।
शुनिलेओ भाग्यहीनेर ना हय प्रतीति॥ 225॥

अनुवाद—महाप्रभुकी लीलाएँ और उनकी रीतियाँ, सब अलौकिक हैं। किन्तु भाग्यहीन व्यक्तियोंको उन लीलाओंको सुनकर भी उनके प्रति विश्वास नहीं होता॥ 225॥

सभी श्रोताओंको ही श्रीचैतन्यलीलामें दृढ़-श्रद्धा और वास्तविक सत्यवस्तुके ज्ञानमें विश्वास करनेका अनुरोध :—

आद्योपान्त चैतन्यलीला—'अलौकिक' जान'।
श्रद्धा करि' शुन इहा, 'सत्य' करि' मान'॥ 226॥

अनुवाद—आदिसे अन्त तक श्रीचैतन्यलीलाओंको अलौकिक जानो। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक उनका श्रवण करो और उन्हें 'सत्य' मानो॥ 226॥

अविश्वासी और तार्किकके द्वारा अपने ही अमङ्गलको बुलाना :—

येइ तर्क करे इँहा, सेइ—'मूर्खराज'।
आपनार मुण्डे से आपनि पाड़े बाज॥ 227॥

अनुवाद—जो इसमें तर्क करता है—वह 'महामूर्ख' है। वह अपने ही सिरपर जान-बूझकर व्रजपात करता है॥ 227॥

चैतन्यचरितामृत-रसामृतसिन्धुके जलमें जगत् प्लावित :—

चैतन्य-चरित्र एइ—'अमृतेर सिन्धु'।
जगत् आनन्दे भासाय यार एकबिन्दु॥ 228॥

अनुवाद—यह श्रीचैतन्यचरित 'अमृतका सिन्धु' है, जिसकी एक बूँद भी समस्त जगत्को आनन्दमें डुबो सकती है॥ 228॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 229॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे श्रीवृन्दावनदर्शन-विलासो नाम अष्टादश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 229॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें श्रीवृन्दावनदर्शन-विलास नामक अठारहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

उन्नीसवाँ अध्याय

कथासार—श्रीरूप-सनातन रामकेलिग्राममें महाप्रभुके दर्शन करनेके बाद विषयोंके त्यागके उपायोंको कार्यान्वित करने लगे। उन्होंने चैतन्य महाप्रभुके चरणोंका आश्रय प्राप्त करनेके लिये 'कृष्णमन्त्र'के दो पुरश्चरण करवाये। श्रीरूपगोस्वामी अपनी सम्पत्तिमें-से दस हजार मुद्राएँ गौड़देशमें एक व्यापारीके पास रखकर बाकी धनको नौकामें चढ़ाकर बाकला-चन्द्रद्वीपमें गये। उस धनको उन्होंने ब्राह्मणों, वैष्णवों और कुटुम्बियोंमें बाँट दिया और एक भाग किसी विपत्तिसे बचनेके लिये अलग रख दिया। महाप्रभु वनके पथसे किस दिन वृन्दावन-यात्रा करेंगे, इसे जाननेके लिये उन्होंने अपने दो सेवकोंको पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें भेजा। दूसरी ओर श्रीसनातन गोस्वामी रोगके छलसे पण्डितोंको लेकर भागवतादिकी चर्चा करने लगे। गौड़ेश्वर बादशाह हुसेनशाहने पहले वैद्यके द्वारा, बादमें स्वयं अपने नेत्रोंसे देखकर सनातनके राजकार्यको छोड़नेके छलको जानकर उन्हें कारागारमें बन्द करके उड़ीसा देशपर आक्रमण करनेके लिये यात्रा की।

महाप्रभुने जब वृन्दावन जानेके लिये वनपथसे यात्रा आरम्भ की, तब श्रीरूप गोस्वामीने गृहत्याग कर दिया। उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीको यह सन्देश भिजवाया कि वे गृहत्याग करके अपने भाई अनुपम मल्लिकके साथ महाप्रभुसे मिलने जा रहे हैं। श्रीरूप गोस्वामी प्रयागमें पहुँचकर महाप्रभुके पास दस दिन तक रहे। इसी बीच श्रीवल्लभभट्टने महाप्रभुको निमन्त्रण करके महाप्रभुका विशेष सम्मान किया। महाप्रभुने श्रीरूपका श्रीवल्लभभट्टके साथ परिचय करा दिया। उसके बाद श्रीरघुपति उपाध्यायके वहाँ पहुँचनेपर उनका महाप्रभुके साथ बहुत रस-आलाप हुआ। इस स्थानपर श्रीकविराज गोस्वामीने श्रीरूप और श्रीसनातनके व्रजजीवनके विषयमें कुछ वर्णन किया है। प्रयागमें दस दिन रहकर महाप्रभुने श्रीरूपको भक्तिरसतत्त्वकी सूत्ररूपमें शिक्षा देकर रसामृतसिन्धुकी रचना करनेकी आज्ञा दी। श्रीरूपको वहाँसे वृन्दावन भेजकर महाप्रभु काशीमें जाकर श्रीचन्द्रशेखरके घरमें रहे।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीरूपके द्वारा व्रजरसकेलि-तत्त्वको प्रकट करनेवाले श्रीगौरसुन्दर :—

वृन्दावनीयां रसकेलिवार्त्तां
कालेन लुप्तां निजशक्तिमुत्कः।
सञ्चार्य रूपे व्यतनोत् पुनः स
प्रभुर्विधौ प्रागिव लोकसृष्टिम्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगौरने सृष्टिसे पहले ब्रह्माके हृदयमें जिस प्रकार (सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक भगवत्तत्त्वकी) प्रेरणा की थी, उसी प्रकार श्रीरूप गोस्वामीमें अत्यधिक उत्सुक होकर निज-शक्तिका सञ्चार करके कालधर्मसे (कालके प्रभावसे) लुप्त हुई वृन्दावनकी रसकेलिवार्त्ताका विस्तार किया था॥1॥

अनुभाष्य—

सः प्रभुः (श्रीगौरः) उत्कः (उत्कण्ठितः सन्) लोक-सृष्टिं प्राक् (विश्व-सृष्ट्यादेः पूर्वं) विधौ (विधातरि ब्रह्मणि) इव रूपे (श्रीरूपगोस्वामिनि) निजशक्तिं सञ्चार्य (निधाय) कालेन (कालधर्मेण) लुप्ताम् (अन्तर्हितामिति) वृन्दावनीयां रसकेलिवार्त्तां (वृन्दावनसम्बन्धिनीं श्रीव्रजेन्द्रनन्दन-विलास-कथां) पुनः व्यतनोत् (प्रकाशितवान्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

महाप्रभुके दर्शनके बाद श्रीरूप-सनातनका अपने घरमें लौटना :—

श्रीरूप-सनातन रहे रामकेलि-ग्रामे।
प्रभुरे मिलिया गेला आपन-भवने॥3॥

अनुवाद—महाप्रभुसे रामकेलि ग्राममें मिलनेके बाद श्रीरूप और श्रीसनातन अपने घर लौट गये थे।॥3॥

विषय-त्याग और महाप्रभुकी प्राप्तिके लिये दोनोंका पुरश्चरण :—

दुइभाइ विषय-त्यागेर उपाय सृजिल।
बहुधन दिया दुइ ब्राह्मणे वरिल॥4॥
कृष्णमन्त्रे कराइल दुइ पुरश्चरण।
अचिरात् पाइबारे चैतन्य-चरण॥5॥

अनुवाद—दोनों भाइयोंने विषय-त्यागका उपाय सोच निकाला। इस कार्यके लिये उन्होंने बहुत-सा धन देकर दो ब्राह्मणोंको वरण किया। उन ब्राह्मणोंने तीनों सन्ध्या श्रीकृष्णमन्त्रका जप, श्रीकृष्ण-अर्चनादि पुरश्चरण नियमपूर्वक दो बार किये जिससे दोनों भाइयोंको श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंकी अतिशीघ्र प्राप्ति हो॥4-5॥

अनुभाष्य—*'पुरश्चरण'*—मध्यलीला 15/108 संख्या देखें॥5॥

श्रीरूपका फतेयाबादमें अपने घरपर आगमन :—

श्रीरूप-गोसाञि तबे नौकाते भरिया।
आपनार घरे आइला बहुधन लञा॥6॥

अनुवाद—उसके बाद श्रीरूपगोस्वामी बहुत-सा धन नौकामें भरकर अपने घरमें लेकर आये।॥6॥

ब्राह्मण-वैष्णवोंको आधा, स्वजनोंको एक-चौथाई धनका वितरण :—

ब्राह्मण-वैष्णवे दिला तार अर्द्ध-धने।
एक चौठि धन दिला कुटुम्ब-भरणे॥7॥

अनुवाद—उन्होंने उस धनका आधा भाग तो ब्राह्मणों और वैष्णवोंमें बाँट दिया तथा उन्होंने एक चौथाई धन अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये दे दिया।॥7॥

भावी-विपत्तिसे उद्धारके लिये धनको बचाकर रखना :—

दण्डबन्ध लागि' चौठि सञ्चय करिला।
भाल-भाल विप्र-स्थाने स्थाप्य राखिला॥8॥

अनुवाद—भविष्यमें आनेवाली किसी विपत्तिसे उद्धारके लिये बचा हुआ एक चौथाई धन एक अच्छे ब्राह्मणके पास रखवा दिया।॥8॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दण्डबन्ध'*—उपस्थित विपत्ति, राजदण्ड और बन्धनादिसे उद्धारके लिये॥8॥

गौड़में श्रीसनातनके लिये दस हजार मुद्राका रक्षण :—

गौड़े राखिल मुद्रा दश-हाजारे।
सनातन व्यय करे, राखे मुदि-घरे॥9॥

अनुवाद—श्रीरूपने गौड़देशमें श्रीसनातनके खर्च करनेके उद्देश्यसे दस हजार मुद्राएँ एक व्यापारीके घरपर रख दीं॥9॥

महाप्रभुके पुरी-गमन और वृन्दावनमें जानेके लिये तैयार होनेकी वार्त्ताका श्रवण :—

श्रीरूप शुनिल प्रभुर नीलाद्रि-गमन।
वनपथे याबेन प्रभु श्रीवृन्दावन॥10॥

उसके लिये दो दूतोंको भेजना :—

रूप-गोसाञि नीलाचले पाठाइल दुइजन।
प्रभु यबे वृन्दावन करेन गमन॥11॥

"शीघ्र आसि' मोरे ताँर दिबा समाचार।
शुनिया तदनुरूप करिब व्यवहार॥"12॥

अनुवाद—श्रीरूपने सुना कि महाप्रभु जगन्नाथपुरी लौट आये हैं और वे वनमार्गसे श्रीवृन्दावन जानेकी तैयारी कर रहे हैं। श्रीरूप गोस्वामीने नीलाचलमें दो लोगोंको यह पता करनेके लिये भेजा कि महाप्रभु कब श्रीवृन्दावनके लिये प्रस्थान करेंगे। श्रीरूप गोस्वामीने उनसे कहा,—"तुम लोग शीघ्र आकर मुझे उनका समाचार देना, मैं उसके अनुरूप अपना कार्यक्रम बनाऊँगा॥"10-12॥

श्रीसनातनका राजकार्यसे छुट्टी लेनेका सुयोग खोजना :—

एथा सनातन-गोसाञि भावे मने मन।
"राजा मोरे प्रीति करे, से—मोर बन्धन॥13॥

राजा उनसे रुष्ट हो, इसके लिये प्रयत्न :—

कोन मते राजा यदि मोरे क्रुद्ध हय।
तबे अव्याहति हय, करिलुँ निश्चय॥"14॥

अनुवाद—इधर रामकेलि ग्राममें श्रीसनातन अपने मनमें सोचने लगे,—"राजा मुझसे प्रीति करता है, यह मेरे लिये बन्धन है। यदि किसी प्रकारसे राजा मुझसे रुष्ट हो जाय, तभी मेरा छुटकारा होगा। यही मेरा निश्चय है॥"13-14॥

रोगका छल :—

अस्वास्थ्येर छद्म करि' रहे निज-घरे।
राजकार्य छाड़िला, ना याय राजद्वारे॥15॥

अपने घरपर भागवतका विचार :—

लोभी कायस्थगण राजकार्य करे।
आपने स्वगृहे करे शास्त्रेर विचारे॥16॥

भट्टाचार्य पण्डित बिश त्रिश लञा।
भागवत-विचार करेन सभाते बसिया॥17॥

अनुवाद—श्रीसनातन अस्वस्थ होनेका छल करके अपने घरपर ही रहने लगे। उन्होंने राजकार्य करना छोड़ दिया और राज-दरबारमें जाना भी बन्द कर दिया। लोभी कायस्थ (राजकीय लेखा और खाता लिखनेवालोंके अधिकारी) लोग राजकार्य देखने लगे तथा श्रीसनातन गोस्वामी अपने घरपर शास्त्रोंपर विचार-विमर्श करने लगे। वे बीस-तीस भट्टाचार्य पण्डितोंको अपने घरपर ही बुलाकर सभा करके भागवतपर विचार करने लगे॥15-17॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*छद्म'*—छल। जिस समय श्रीसनातन गोस्वामी राजमन्त्री थे, उस समय उनके अधीन कुछ 'कायस्थ' कर्मचारी थे। श्रीसनातनके वैराग्यभावको देखकर उनमेंसे कुछ व्यक्ति श्रीसनातनके पदको प्राप्त करनेके लोभसे राजकार्यमें विशेष निपुणता दिखलाने लगे। लोगोंका कहना है कि श्रीसनातन गोस्वामीके पद त्याग करनेके बाद उनके अधीन कार्य करनेवाले कर्मचारी प्रसिद्ध पुरन्दर खाँनको यह पद प्राप्त हुआ था॥15-16॥

अनुभाष्य—*'भागवत-विचार'*—विद्या 'दो' प्रकारकी है; (मुः उः 1/1/4-5)—

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म
यद् ब्रह्मविदो वदन्ति—परा चैवापरा च।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।"

[अर्थात् "ब्रह्मविद लोग कहते हैं,—विद्या परा और अपराके भेदसे दो प्रकारकी होती है। उनमें-से ऋक्, यजुः, साम, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—ये अपरा विद्या हैं। और जिसके द्वारा अक्षर-ब्रह्मको जाना जाता है, वह परा विद्या है।"]

पराविद्याकी बात ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्तमें ही कही गयी है। मुक्तिकामी वेदान्तिक लोग भी धर्म-अर्थकामियोंकी भाँति छलसे युक्त होते हैं। इसलिये अपरा-विद्यापरक अथवा परा-विद्यापरक शास्त्रोंमें जहाँ शुद्धभक्तिविरोधी मोक्षकी महिमाका गान हुआ है, वे

सभी बातें छलपूर्ण हैं; किन्तु श्रीमद्भागवत शास्त्रमें ऐसा छल नहीं है। यमदण्डके भागी कर्मी लोग अथवा अहंग्रहोपासकगण श्रीमद्भागवतके विचारसे सम्पूर्ण अयोग्य हैं; वैष्णवगण ही एकमात्र भागवतका विचार करके भक्तिबलसे संसारसे विमुक्त होते हैं; (भाः 12/13/18)—

"श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं,
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं,
तच्छ्र

[अर्थात् "श्रीमद्भागवत निर्मल पुराण है। यह वैष्णवोंका प्रिय ग्रन्थ है। इसमें एक अमल पारमहंस्य-ज्ञान वर्णित हुआ है। इसमें ज्ञान-वैराग्य-भक्तियुक्त नैष्कर्म्य-ज्ञान आविष्कृत (प्रकाशित) हुआ है। मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण, पाठ और विचार करके विमुक्ति प्राप्त करते हैं।"]॥ 17॥

एकदिन अचानक बादशाहका आगमन :—

आर दिन गौड़ेश्वर, सङ्गे एकजन।
आचम्बिते गोसाञि-सभाते कैल आगमन॥ 18॥

सभीके द्वारा आदरपूर्वक बादशाहकी अगवानी :—

पात्साह देखिया सबे सम्भ्रमे उठिला।
सम्भ्रमे आसन दिया राजारे बसाइला॥ 19॥

अनुवाद—जब श्रीसनातन गोस्वामीकी विद्वान ब्राह्मणोंके साथ गोष्ठी चल रही थी, तब एक दिन अचानक बादशाह एक व्यक्तिको अपने साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे। बादशाहको देखकर सभी ब्राह्मण और श्रीसनातन उठकर खड़े हो गये और उन्होंने आदरपूर्वक आसन देकर राजाका सम्मान करते हुए उन्हें बैठाया॥ 18-19॥

अनुभाष्य—*'गौड़ेश्वर'*—आलाऊदीन सैयद हुसेन शाह सेरिफ मक्का 1420 शकाब्दसे 1443 शकाब्द तक गौड़के सिंहासनपर अधिष्ठित थे। इसलिये 1424 शकाब्दमें यही हुसेन शाह ही श्रीसनातनकी सभामें उपस्थित हुए॥ 18॥

बादशाहकी उक्ति, श्रीसनातनके अभिप्रायकी जिज्ञासा :—

राजा कहे,—"तोमार स्थाने वैद्य पाठाइलुँ।
वैद्य कहे,—व्याधि नाहि, सुस्थ ये देखिलुँ॥ 20॥

आमार ये किछु कार्य, सब तोमा लञा।
कार्य छाड़ि' रहिला तुमि घरेते बसिया॥ 21॥

मोर यत कार्य-काम, सब कैला नाश।
कि तोमार हृदये आछे, कह मोर पाश॥"22॥

अनुवाद—बादशाहने कहा,—"मैंने तुम्हारे घरपर वैद्यको भेजा था। वैद्यने मुझसे कहा कि तुम्हें कोई भी बीमारी नहीं है, उसने अच्छी तरहसे जाँचकर तुम्हें पूर्णतया स्वस्थ पाया है। मैं राज-काजके समस्त कार्योंमें तुमपर निर्भर करता हूँ और तुम कार्यको छोड़कर घरपर बैठे हुए हो। तुमने मेरे सब कार्योंका नाश कर दिया है। तुम्हारे हृदयमें क्या विचार है, वह मुझे स्पष्ट रूपसे बतलाओ॥"20-22॥

श्रीसनातनकी राजकार्यमें अनिच्छा बताना :—

सनातन कहे,—"नहे आमा हैते काम।
आर एकजन दिया कर समाधान॥"23॥

अनुवाद—श्रीसनातनने कहा,—"अब मुझसे कोई काम नहीं होगा। अन्य किसी एक व्यक्तिको नियुक्त करके अपने कार्य करवा लीजिये॥"23॥

बादशाहकी क्रोधपूर्ण उक्ति :—

तबे क्रुद्ध हञा राजा कहे आरबार।
"तोमार 'बड़ भाइ' करे दस्यु-व्यवहार॥ 24॥

जीव-पशु मारि' कैल चाक्‌ला सब नाश।
एथा तुमि कैला मोर सर्व कार्य नाश॥"25॥

अनुवाद—तब क्रोधित होकर बादशाहने पुनः कहा,—"तुम्हारा 'बड़ा भाई' अर्थात् मैं डाकुओं जैसा कार्य अर्थात् लूट-पाट करता हूँ। शिकारमें बहुतसे पशुओंको मारकर मैंने चाक्‌ला नामक स्थानको प्रायः

नष्ट कर दिया है। और इधर तुम मेरी समस्त योजनाओंको नष्ट करनेमें लगे हो॥"24-25॥

श्रीसनातनकी कार्यसे छुटकारा पानेके लिये दण्डकी प्रार्थना :—

सनातन कहे,—"तुमि स्वतन्त्र गौड़ेश्वर।
ये येइ दोष करे, देह' तार फल॥"26॥

अनुवाद—श्रीसनातनने कहा,—"आप गौड़देशके बादशाह और पूर्ण स्वतन्त्र हैं। आपके राज्यमें जो व्यक्ति जो दोष करता है, आप उसे उसका फल देते हैं॥"26॥

बादशाहकी आज्ञासे श्रीसनातनको बाँधना :—

एत शुनि' गौड़ेश्वर उठि' घरे गेला।
पलाइब बलि' सनातनेरे बान्धिला॥27॥

अनुवाद—यह सुनकर बादशाह उठकर अपने घर चला गया। उसने श्रीसनातनको बन्दी बनानेका आदेश दिया जिससे वे कहीं भाग न जाँय॥27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सुना जाता है कि श्रीसनातन गोस्वामीको बादशाह हुसेनशाह 'छोटा भाई' मानता था। जब श्रीसनातनने कर्मत्यागकी अत्यन्त दृढ़ता दिखलायी, तब हुसेनशाहने प्रणय-रोषपूर्वक कहा कि,—"मैं तुम्हारा 'बड़ा भाई' हूँ, मैं बिल्कुल भी राज्यका पालन नहीं करता हूँ। मैं तो सेनाको लेकर युद्धके द्वारा केवल देश-विदेशको लूटते हुए घूमता हूँ एवं जातिसे यवन होनेके कारण गौड़-चाक्लामें शिकार करके बहुतसे जीव-पशुओंका नाश ही करता हूँ। तुमपर ही मेरा विश्वास है; तुम्हारा बड़ा भाई, मैं, जब केवल डाकुओंके जैसे कार्य तथा जीवोंके नाशके कार्यमें ही लगा हुआ था, और छोटे भाई, तुमने भी तब कार्यका परित्याग करके सब कार्योंका नाश कर दिया है, अब राज्य किस प्रकार चलेगा?" श्रीसनातनने छोटे भाईके नाते परिहास करते हुए कहा,—'आप गौड़देशके बादशाह हैं, स्वतन्त्र राजा हैं, आपके पास दण्ड प्रदान करनेकी पूर्ण सत्ता है; जो जैसा भी दोष करता है, आप उसे उसका फल प्रदान करते हैं।' इस वचनमें गूढ़ रहस्य है,—राजा स्वयं डाकुओं जैसा व्यवहार करता है, इसलिये वह उसका फल ग्रहण करे और मन्त्रीका (मेरा) जब कार्यमें आलस्य दिखलायी देता है, तब उसका (मेरा) कार्यसे छुटकारा रूपी फल हो। इससे श्रीसनातनके अभिलषित विषयको जानकर बादशाह उठकर चला गया॥24-27॥

बादशाहका उड़ीसा जानेका अभियान; श्रीसनातनको साथमें चलनेके लिये आह्वान :—

हेनकाले गेल राजा उड़िया मारिते।
सनातने कहे,—"तुमि चल मोर साथे॥"28॥

अनुवाद—उसी समय बादशाह उड़ीसापर आक्रमण करनेके लिये गया। बादशाहने सनातनसे कहा,—"तुम भी मेरे साथ चलो॥"28॥

अनुभाष्य—1424 शकाब्दमें हुसेनशाहने उड़ीसाके सामन्तराज गणोंको [उनके साथ युद्ध करनेके लिये] बाध्य किया॥28॥

विष्णु-विरोधी कार्यमें श्रीसनातनका असहयोग :—

तेँहो कहे,—"याबे तुमि देवताय दुःख दिते।
मोर शक्ति नाहि, तोमार सङ्गे याइते॥"29॥

अनुवाद—श्रीसनातनने कहा,—"आप श्रीजगन्नाथदेवको दुःख देने जा रहे हैं। मुझमें आपके साथ जानेकी शक्ति नहीं है॥"29॥

बादशाहकी यात्रा, महाप्रभुकी भी पुरीसे वृन्दावन-यात्रा :—

तबे ताँरे बान्धि' राखि' करिला गमन।
एथा नीलाचल हैते प्रभु चलिला वृन्दावन॥30॥

अनुवाद—श्रीसनातनको बन्दी बनाकर बादशाह उड़ीसा युद्धके लिये चला गया। इधर महाप्रभु नीलाचलसे वृन्दावनकी ओर चल दिये॥30॥

श्रीरूपको उन दो दूतोंके द्वारा महाप्रभुकी वृन्दावन-यात्राकी बात बतलाना :—

तबे सेइ दुइ चर रूप-ठाञि आइल।
'वृन्दावन चलिला प्रभु'-आसिया कहिल॥ 31॥

अनुवाद—तभी श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा नीलाचल भेजे गये दो दूत उनके पास लौटकर आये। उन्होंने बतलाया कि 'महाप्रभु वृन्दावनके लिये चल पड़े हैं॥'31॥

श्रीरूपका छोटे भाईके साथ महाप्रभुके दर्शनके लिये यात्राके संवादका श्रीसनातनको पत्रके द्वारा ज्ञापन; और उन्हें जिस-किसी उपायसे चले आनेका आह्वान :—

शुनिया श्रीरूप लिखिला सनातन-ठाञि।
'वृन्दावन चलिला श्रीचैतन्य-गोसाञि॥ 32॥
आमि-दुइभाइ चलिलाङ ताँहारे मिलिते।
तुमि यैछे तैछे छुटि' आइस ताँहा हैते॥ 33॥

अनुवाद—दूतोंकी बात सुनकर श्रीरूपने श्रीसनातनके पास पत्र लिखकर भेजा,—'श्रीचैतन्य गोसाईं वृन्दावनके लिये चल पड़े हैं। हम दोनों भाई उनसे मिलनेके लिये जा रहे हैं, आप भी वहाँसे जिस किसी प्रकारसे छूटकर आ जाइये॥ 32-33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आमि-दुइभाइ'*—मैं रूप और हमारे छोटे भाई अनुपम अथवा वल्लभ॥ 33॥

गौड़देशमें रखी हुई दस हजार मुद्राओंकी सहायतासे बन्धनसे मुक्त होनेका परामर्श देना :—

दशसहस्र मुद्रा तथा आछे मुदि-स्थाने।
ताहा दिया कर शीघ्र आत्म-विमोचने॥ 34॥
यैछे तैछे छुटि' तुमि आइस वृन्दावन।'
एत लिखि' दुइभाइ करिला गमन॥ 35॥

अनुवाद—गौड़देशमें अमुक व्यापारीके पास दस हजार मुद्राएँ रखी हैं, उनके द्वारा शीघ्र ही अपने आपको छुड़ा लीजिये। जिस किसी प्रकारसे छूटकर आप वृन्दावन आ जाइये।' इतना लिखकर दोनों भाई महाप्रभुसे मिलनेके लिये चल पड़े॥ 34-35॥

अनुपमका परिचय :—

अनुपम मल्लिक, ताँर नाम—'श्रीवल्लभ'।
रूप-गोसाञिर छोटभाइ—परम वैष्णव॥ 36॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीके छोटे भाई परम वैष्णव थे। उनका नाम 'श्रीवल्लभ' था। उनको अनुपम मल्लिक नाम दिया गया था॥ 36॥

अनुभाष्य—आदिलीला 10/84 संख्या देखें॥ 36॥

दोनों भाइयोंका प्रयागमें आगमन और वहाँ महाप्रभुके होनेके विषयमें सुनकर आनन्द :—

ताँहारे लञा रूप-गोसाञि प्रयागे आइला।
महाप्रभु ताँहा शुनि' आनन्दित हैला॥ 37॥

अनुवाद—श्रीवल्लभको अपने साथ लेकर श्रीरूप गोस्वामी प्रयागमें आ पहुँचे। महाप्रभुके भी वहीं होनेके विषयमें सुनकर वे बहुत आनन्दित हुए॥ 37॥

प्रयागमें महाप्रभुका बिन्दुमाधव दर्शन और लोगोंकी भीड़ :—

प्रभु चलियाछेन बिन्दुमाधव-दरशने।
लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुर मिलने॥ 38॥
केह कान्दे, केह हासे, केह नाचे, गाय।
'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' केह गड़ागड़ि याय॥ 39॥

अनुवाद—महाप्रभु बिन्दुमाधवका दर्शन करनेके लिये जा रहे थे। लाखों-लाखों लोग महाप्रभुसे मिलनेके लिये आ रहे थे। कोई रो रहा था, कोई हँस रहा था, कोई नाच रहा था, कोई गा रहा था। कोई तो 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए भूमिपर लोटपोट खा रहा था॥ 38-39॥

प्रेमकी बाढ़में प्रयाग निमग्न :—

गङ्गा-यमुना प्रयाग नारिल डुबाइते।
प्रभु डुबाइल कृष्णप्रेमेर वन्याते॥ 40॥

अनुवाद—गङ्गा तथा यमुना प्रयागको डुबो नहीं पायीं, किन्तु महाप्रभुने प्रयागको श्रीकृष्णप्रेमकी बाढ़में डुबो दिया॥ 40॥

दोनों भाइयोंका थोड़े एकान्त स्थानमें रहना :—

भिड़ देखि' दुइ भाइ रहिला निर्जने।
प्रभुर आवेश हैल माधव-दरशने॥ 41॥

अनुवाद—भीड़को देखकर दोनों भाई एकान्त स्थानमें खड़े रहे। महाप्रभु बिन्दुमाधवके दर्शनसे प्रेमाविष्ट हो गये॥ 41॥

महाप्रभुकी उस समयकी अवस्था :—

प्रेमावेशे नाचे प्रभु हरिध्वनि करि'।
ऊर्द्धबाहु करि' बले—बल 'हरि' 'हरि'॥ 42॥

प्रभुर महिमा देखि' लोके चमत्कार।
प्रयागे प्रभुर लीला नारि वर्णिवार॥ 43॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रेमावेशमें हरिध्वनि करते हुए नृत्य कर रहे थे और अपनी भुजाओंको ऊपर उठाकर लोगोंसे 'हरि' 'हरि' बोलनेके लिये कह रहे थे। महाप्रभुकी महिमा देखकर लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। प्रयागमें महाप्रभुने जो लीलाएँ की, मैं उनका यथार्थ रूपमें वर्णन नहीं कर सकता॥ 42-43॥

दक्षिण-भारतके ब्राह्मणके घरमें महाप्रभुकी भिक्षा :—

दाक्षिणात्य-विप्र-सने आछे परिचय।
सेइ विप्र निमन्त्रिया निल निजालय॥ 44॥

अनुवाद—महाप्रभुका दक्षिण भारतके एक ब्राह्मणके साथ परिचय था। वही ब्राह्मण महाप्रभुको निमन्त्रित करके अपने घरपर ले गया॥ 44॥

निर्जनमें महाप्रभुके साथ दोनों भाइयोंका मिलन :—

विप्र-गृहे आसि' प्रभु निभृते बसिला।
श्रीरूप-वल्लभ दुँहे आसिया मिलिला॥ 45॥

अनुवाद—ब्राह्मणके घरपर आकर महाप्रभु एकान्तमें बैठ गये। श्रीरूप और श्रीवल्लभ—दोनों वहींपर आकर महाप्रभुसे मिले॥ 45॥

दोनोंकी दैन्यपूर्ण उक्ति :—

दुइगुच्छ तृण दुँहे दशने धरिया।
प्रभु देखि' दूरे पड़े दण्डवत् हञा॥ 46॥

नाना श्लोक पड़ि' उठे, पड़े बार बार।
प्रभु देखि' प्रेमावेश हइल दुँहार॥ 47॥

अनुवाद—तृणके दो गुच्छोंको अपने दाँतोंमें दबाकर दोनों भाइयोंने दूरसे महाप्रभुको देखकर दण्डवत् प्रणाम किया। महाप्रभुके दर्शन करके उन दोनोंमें प्रेमावेश हो रहा था। वे अनेक श्लोक पढ़ते हुए बार-बार उठ रहे थे तथा पुनः भूमिपर गिरकर प्रणाम कर रहे थे॥ 46-47॥

उन्हें देखकर महाप्रभुका प्रसन्न होना :—

श्रीरूपे देखिया प्रभुर प्रसन्न हैल मन।
"उठ, उठ, रूप, आइस", बलिला वचन॥ 48॥

श्रीकृष्णकी कृपासे जीवके संसारसे उद्धारका वर्णन :—

"कृष्णेर करुणा किछु ना याय वर्णने।
विषयकूप हैते तोमा काड़िल दुइजने॥ 49॥

अनुवाद—श्रीरूपको देखकर महाप्रभुका मन बहुत प्रसन्न हो गया और उन्होंने कहा,—"उठो, उठो, रूप, यहाँपर आओ।" महाप्रभुने आगे कहा,—"श्रीकृष्णकी करुणाका वर्णन करना सम्भव नहीं है। उन्होंने तुम दोनोंको विषयरूपी कुएँसे निकाल लिया है॥ 48-49॥

जिस किसी भी कुलमें उत्पन्न वैष्णव ही भगवान्‌की भाँति सभीके द्वारा सर्वथा पूज्य :—
श्रीहरिभक्तिविलास (10/99)में—

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥" 50॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चतुर्वेदपाठी अर्थात् चौबे ब्राह्मण होनेपर ही 'भक्त' होता है, ऐसा नहीं है। मेरा भक्त

चण्डाल होनेपर भी मुझे प्रिय है; भक्त ही वास्तवमें दान-पात्र एवं ग्रहण-पात्र है; भक्तमात्र ही मेरे समान पूजनीय है॥"50॥

अनुभाष्य—

अभक्तः (शुद्धभक्तिविहीनः) चतुर्वेदी (चतुर्वेदनिपुणः ब्राह्मणः) मे (मम) प्रियः न (भवति); मद्भक्तः श्वपचः (सुनीचकुलोद्भवोऽपि) मे प्रियः (भवति); तस्मै (शुद्धभक्ताय नीचकुलोद्भवाय श्वपचाय) [अपि चतुर्वेदकुशलैर्ब्राह्मणादिभिः एव सम्मानादिकं] देयम्; ततः (तस्मात् नीचकुलोद्भूतात् श्वपचात् अपि शुद्धभक्तात्) ग्राह्यं (तदुच्छिष्टादिकं प्रतिगृह्णीयात्), यथा अहं (सर्वेश्वरेश्वरः श्रीभगवान् विष्णुः) पूज्यः [तथा] सः (श्वपचकुलजातोऽपि भक्तः) [तच्छिष्यस्थानीय-ब्राह्मणादिभिः सर्वैः एव पूज्यः च]।

श्लोक-भावानुवाद—शुद्धभक्तिविहीन चतुर्वेदोंमें निपुण ब्राह्मण मेरा प्रिय नहीं है, सुनीचकुलमें उत्पन्न मेरा भक्त मुझे प्रिय है। नीचकुलमें उत्पन्न शुद्धभक्त चतुर्वेदोंमें निपुण ब्राह्मणोंके द्वारा सम्मान दिये जाने योग्य और शुद्धभक्त होनेके कारण नीचकुलमें उत्पन्न चण्डालका उच्छिष्ट ग्रहण करनेके योग्य है। वह मेरे समान ही पूजनीय है [उसके शिष्य-स्थानीय ब्राह्मणादिके द्वारा भी पूजनीय है]॥50॥

महाप्रभुके द्वारा आलिङ्गन और दोनोंके
मस्तकपर अपने चरणार्पण :—

एइ श्लोक पड़ि' दुँहारे कैला आलिङ्गन।
कृपाते दुँहार माथाय धरिला चरण॥51॥

अनुवाद—महाप्रभुने यह श्लोकका पढ़कर उन दोनोंका आलिङ्गन किया और कृपापूर्वक अपने चरणकमल उन दोनोंके सिरपर रख दिये॥51॥

दोनों भाइयोंके द्वारा महाप्रभुका स्तव :—

प्रभु-कृपा पाञा दुँहे दुइ हात युड़ि'।
दीन हञा स्तुति करे विनय आचरि'॥52॥

अनुवाद—महाप्रभुकी कृपाको प्राप्त करके दोनों भाई दोनों हाथ जोड़कर दीनतापूर्वक विनयका आचरण करते हुए स्तुति करने लगे॥52॥

स्वरूप-नाम-रूप-गुण-लीलामय और
सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनाधिदेवता श्रीगौरको प्रणाम :—
श्रीरूप-वचन—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥53॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥53॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महावदान्य, श्रीकृष्णप्रेमप्रदाता, श्रीकृष्णस्वरूप, श्रीकृष्णचैतन्य नामक श्रीगौराङ्गरूपधारी प्रभु आपको नमस्कार है॥53॥

अनुभाष्य—

महावदान्याय (अतुलपरमकरुणामयाय) कृष्णप्रेमप्रदाय (शिवविरिञ्चदुर्लभकृष्णप्रेमदातृप्रवराय) कृष्णचैतन्यनाम्ने (कृष्णचैतन्याख्याय) गौरत्विषे (श्रीराधाद्युतिसुवलित-गौरकान्तिमयाय) कृष्णाय (गोपीजनवल्लभाय गोविन्दाय) ते (तुभ्यं) नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अतुलनीय परम करुणामय, शिव-ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ श्रीकृष्णप्रेमको प्रदान करनेमें अग्रणी, श्रीकृष्णचैतन्य नामक श्रीराधाकान्तियुक्त गौरकान्तिमय श्रीगोपीजनवल्लभ-गोविन्द, आपको नमस्कार है॥53॥

ग्रन्थकारके द्वारा श्रीगौर-प्रणाम—
श्रीगोविन्दलीलामृत (1/2)में ग्रन्थकारके वचन—

योऽज्ञानमत्तं भुवनं दयालुरुल्लाघयन्नप्यकरोत् प्रेमत्तम्।
स्वप्रेमसम्पत्सुधयाद्भुतेहं श्रीकृष्णचैतन्यममुं प्रपद्ये॥54॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥54॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिन दयालु पुरुषने अज्ञानमें मत्त जगत्को अज्ञानरूपी व्याधिसे मुक्त करके अपनी प्रेम-सम्पत्तिरूपी अमृतके द्वारा प्रमत्त किया था, मैं उन अद्भुत-चेष्टायुक्त श्रीकृष्णचैतन्यके शरणागत होता हूँ॥54॥

अनुभाष्य—

यः दयालुः (करुणामयविग्रहः) अज्ञानमत्तं (मायावाद-कर्मफलभोगादि-मार्ग-कारणे अज्ञाने मत्तं विह्वलं) भुवनं (लोकं) स्वप्रेमसम्पत्सुधया (निजकृष्णप्रीतिरूपा सम्पत् श्रीः सा एव सुधा अमृतं तया) उल्लाघयन् (तत्तज्ज्ञानादिकं प्रशमयन्) प्रमत्तं

(भोगमोक्षादि-प्राकृतविषयाद्यनुसन्धानरहितं निरन्तर-कृष्णानुशीलनासक्तम्) अकरोत्, अमुं (तं) अद्भुतेहम् (अश्रुतपूर्वचेष्टायुक्तं) श्रीकृष्णचैतन्यम् [अहं] प्रपद्ये (प्रपन्नोऽस्मि)।

श्लोक-भावानुवाद—जिन करुणामय पुरुषने मायावाद-कर्मफलभोगादि मार्गोंमें मत्त लोगोंको अपनी श्रीकृष्णप्रीतिरूपी सम्पत्तिकी शोभाके अमृतके द्वारा उन-उन अज्ञानका नाश करके एवं भोग-मोक्षादि प्राकृत विषयोंसे निवृत्त करके निरन्तर श्रीकृष्णानुशीलनमें आसक्त किया है, उन अद्भुत-अपूर्व-चेष्टायुक्त श्रीकृष्णचैतन्यके मैं शरणागत होता हूँ॥ 54॥

श्रीरूपसे श्रीसनातनके विषयमें जिज्ञासा :—

तबे महाप्रभु ताँरे निकटे बसाइला।
'सनातनेर वार्त्ता कह'—ताँहारे पुछिला॥ 55॥

श्रीरूपके द्वारा श्रीसनातनके कारागारमें बन्द होनेका संवाद देना :—

रूप कहेन,—"तेँहो बन्दी राज-घरे।
तुमि यदि उद्धार', तबे हइबे उद्धारे॥"56॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसनातनके बन्धनसे मुक्त होनेका संवाद देना :—

प्रभु कहे,—"सनातनेर हञाछे मोचन।
अचिरात् आमा-सह हइबे मिलन॥"57॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीरूपको अपने निकट बैठाया और उनसे पूछा—'सनातनका क्या समाचार है?' श्रीरूपने कहा,—"वे बादशाहके कारागारमें बन्दी हैं। यदि आप उनका उद्धार करें, तभी वे मुक्त हो सकते हैं।" महाप्रभुने कहा,—"सनातनकी कारागारसे मुक्ति हो गयी है। अति शीघ्र ही सनातनकी मुझसे भेंट होगी॥"55-57॥

उस दिन दोनोंका वहीं रहना :—

मध्याह्न करिते विप्र प्रभुरे कहिला।
रूप-गोसाञि से-दिवस तथाञि रहिला॥ 58॥

अनुवाद—तब ब्राह्मणने महाप्रभुको दोपहरका प्रसाद ग्रहण करनेके लिये कहा। श्रीरूप गोस्वामी उस दिन वहींपर रहे॥ 58॥

दोनोंको महाप्रभुके उच्छिष्टकी प्राप्ति :—

भट्टाचार्य दुइ भाइये निमन्त्रण कैल।
प्रभुर शेषप्रसाद-पात्र दुइभाइ पाइल॥ 59॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्यने उन दोनों भाइयोंको प्रसाद पानेका निमन्त्रण दिया। दोनों भाइयोंने महाप्रभुके पात्रसे उनके उच्छिष्ट प्रसादको प्राप्त किया॥ 59॥

महाप्रभुके वासस्थानके निकट ही दोनोंका रहना :—

त्रिवेणी-उपर प्रभुर वासा-घर स्थान।
दुइभाइ वासा कैल प्रभु-सन्निधान॥ 60॥

अनुवाद—त्रिवेणीके तटपर ही महाप्रभुका वासस्थान था। दोनों भाइयोंने भी महाप्रभुके वासस्थानके निकट ही अपना वासस्थान बनाया॥ 60॥

महाप्रभुके साथ वल्लभ-भट्टका मिलन :—

से-काले वल्लभ-भट्ट रहे आड़ाइल-ग्रामे।
महाप्रभु आइला शुनि' आइल ताँर स्थाने॥ 61॥

अनुवाद—उस समय श्रीवल्लभ-भट्ट आड़ाइल-ग्राममें रहते थे। महाप्रभुके प्रयागमें आनेका समाचार पाकर वे उनसे मिलने उनके वासस्थानपर आये॥ 61॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वल्लभ भट्ट'*—ये वैष्णव पण्डित थे। इन्होंने पहले श्रीमन्महाप्रभुके सम्प्रदायमें प्रविष्ट होकर भी अधिक सम्मान नहीं पानेके कारण विष्णुस्वामि-सम्प्रदायमें आचार्यत्व प्राप्त किया था। इनको ही लोग 'वल्लभाचार्य' कहते हैं। गोकुल और मुम्बई प्रदेशमें इनका बहुत प्रचार है। इनके द्वारा रचित 'अनुभाष्य', 'षोड़श ग्रन्थ' आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

'आड़ाइल-ग्राम'—सङ्गमके निकट यमुनाकी दूसरी पार (प्रायः एक मीलकी दूरीपर) अड़ैली-ग्राम अथवा आड़ाइल-ग्राम है; (यहाँपर 'वल्लभी'-सम्प्रदायका एक प्राचीन विष्णुमन्दिर वर्तमान है।)॥ 61॥

अनुभाष्य—*'वल्लभभट्ट'*—ये त्रैलङ्गदेशमें 'निडाडाभलु'—रेलस्टेशनसे सोलह मीलकी दूरीपर 'काङ्कड़वाड़' अथवा 'काकुँरपाढु'-नामक ग्रामके निवासी 'लक्ष्मण-दीक्षित'के पुत्र हैं। आन्ध्रके ब्राह्मणोंमें पाँच विभाग हैं,—वेल्ल-नाटी, वेगी-नाटी, मुरकि-नाटी, तेलगु-नाटी और काशल-नाटी; उनमेंसे वेल्ल-नाटी आन्ध्र-ब्राह्मणकुलमें 1400 शकाब्दमें श्रीवल्लभाचार्यने जन्म ग्रहण किया। कोई-कोई कहते हैं कि वल्लभके जन्म होनेसे पहले ही उनके पिताने संन्यास ग्रहणकर घरका त्याग कर दिया था, बादमें पुनः घर लौटनेके बाद वल्लभाचार्यको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया था।

अन्य मतके अनुसार,—विक्रम सम्वत् 1535 अर्थात् 1400 शकाब्दकी चैत्री कृष्णा-एकादशी तिथिमें त्रैलङ्गदेशीय वेल्लनाटी-ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न 'खम्भंपाटीवारु' उपाधिधारी लक्ष्मणभट्ट-दीक्षितके पुत्रके रूपमें वल्लभाचार्य 'चम्पकारण्य'में, मतान्तरमें,—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत वि. एन. आर. लाईनमें राजिम स्टेशनके निकट चाँपाझार-ग्राममें आविर्भूत हुए थे। ग्यारह वर्षों तक काशीमें वास करके विद्या अध्ययनके बाद अपने देशमें लौटते समय मार्गमें शेषाद्रिमें उन्होंने अपने पिताके परलोक-प्राप्तिके विषयमें सुना। भाई और माताको घरपर छोड़कर तुङ्गभद्राके तटपर विद्यानगरमें जाकर बुक्कराजके पौत्र कृष्णदेवका उल्लास विधान किया। उसके बाद तीन बार छः-छः वर्षवाली दिग्विजयमें अठारह वर्ष व्यतीत किये। तीस वर्षकी आयुमें काशीमें स्वजातीय ब्राह्मणकी 'महालक्ष्मी'-नामक कन्याका पाणिग्रहण किया। इन्होंने गोवर्धन-पर्वतके नीचे श्रीमूर्ति स्थापित करके प्रयागके निकट आड़ाइल ग्राममें वास किया था। इनके दो पुत्र—श्रीगोपीनाथ और श्रीविठ्ठलेश्वर थे। अन्तिम अवस्थामें त्रिदण्ड-संन्यास ग्रहण करके 1452 शकाब्दमें इन्होंने वाराणसीमें परलोक गमन किया। श्रीवल्लभके 'षोड़शग्रन्थ', ब्रह्मसूत्रका 'अनुभाष्य', श्रीमद्भागवतकी 'सुबोधिनी'-टीका आदि कुछ ग्रन्थोंके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ हैं॥ 61॥

श्रीवल्लभभट्टका महाप्रभुको प्रणाम, दोनोंमें परस्पर श्रीकृष्ण-कथाका आलाप :—

तेँहो दण्डवत् कैल, प्रभु कैला आलिङ्गन।
दुइजने कृष्णकथा हैल ततक्षण॥ 62॥

अनुवाद—श्रीवल्लभभट्टने महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया तथा महाप्रभुने उनका आलिङ्गन किया। तभी दोनों श्रीकृष्णकथाकी चर्चा करने लगे॥ 62॥

महाप्रभुमें प्रेमावेश और श्रीवल्लभको बहिरङ्ग-देखकर आवेशका सङ्गोपन :—

कृष्णकथाय प्रभुर महाप्रेम उथलिल।
भट्टेर सङ्कोचे प्रभु सम्वरण कैल॥ 63॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकथाकी चर्चामें महाप्रभुमें महा-प्रेमावेश होने लगा, किन्तु उन्होंने श्रीवल्लभभट्टके सङ्कोचसे उसे सम्वरण कर लिया॥ 63॥

महाप्रभुके प्रेमावेशको देखकर श्रीवल्लभका विस्मय :—

अन्तरे गर-गर प्रेम, नहे सम्वरण।
देखि' चमत्कार हैल वल्लभ-भट्टेर मन॥ 64॥

अनुवाद—महाप्रभुके हृदयमें प्रेमका प्रचण्ड वेग था, जिसे वे सम्वरण नहीं कर पा रहे थे। श्रीवल्लभ-भट्ट महाप्रभुमें प्रेमके वेगको देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ 64॥

महाप्रभुको भट्टका निमन्त्रण, भट्टको दोनों भाइयोंका परिचय देना :—

तबे भट्ट महाप्रभुरे निमन्त्रण कैला।
महाप्रभु दुइभाइ ताँहारे मिलाइला॥ 65॥

अनुवाद—तब श्रीवल्लभभट्टने महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने दोनों भाइयों श्रीरूप और श्रीवल्लभको उनसे मिलवाया॥ 65॥

अमानी होकर दोनोंके द्वारा श्रीवल्लभका सम्मान :—

दुइभाइ दूर हैते भूमिते पड़िया।
भट्टे दण्डवत् कैला अति दीन हञा॥ 66॥

अनुवाद—श्रीरूप और श्रीवल्लभ, दोनों भाइयोंने अति दीनतापूर्वक दूरसे ही भूमिपर गिरकर श्रीवल्लभभट्टको दण्डवत् प्रणाम किया॥ 66॥

श्रीभट्टकी आलिङ्गनकी चेष्टासे दोनोंका पीछे हटना :—

भट्ट मिलिबारे याय, दुँहे पलाय दूरे।
"अस्पृश्य पामर मुञि, ना छुँइह मोरे॥"67॥

अनुवाद—श्रीवल्लभभट्ट जैसे ही उनसे मिलनेके लिये आगे बढ़े, वे दोनों दूर भाग गये और श्रीरूप कहने लगे,—"मैं अस्पृश्य और महापापी हूँ, आप मुझे स्पर्श मत कीजिये॥"67॥

कुलीन पण्डिताभिमानी श्रीवल्लभको बहिरङ्ग-मानकर महाप्रभुके द्वारा उन्हें जड़ीय-प्रतिष्ठा देना या छलना :—

भट्टेर विस्मय हैल, प्रभुर हर्ष मन।
भट्टेरे कहिला प्रभु ताँर विवरण॥ 68॥

"इँहो ना स्पर्शिह, इँहो जाति अति-हीन!
वैदिक, याज्ञिक तुमि कुलीन प्रवीण!॥"69॥

अनुवाद—दोनों भाइयोंके व्यवहारसे श्रीवल्लभ भट्ट विस्मित हो गये, किन्तु महाप्रभुका मन बहुत प्रसन्न हुआ। महाप्रभुने श्रीवल्लभभट्टको दोनों भाइयोंका विवरण देते हुए कहा,—"आप इन्हें स्पर्श मत कीजिये, ये दोनों छोटी जातिके हैं। आप वैदिक सदाचारका पालन करनेवाले और यज्ञोंमें प्रवीण व्यक्ति हैं। साथ ही आप उच्च कुलके ब्राह्मण भी हैं॥"68-69॥

दोनोंके मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णनाम सुनकर श्रीभट्टका विस्मय और दोनोंको सर्वोत्तम मानना :—

दुँहार मुखे निरन्तर कृष्णनाम शुनि'।
भट्ट कहे, प्रभुर किछु इङ्गित-भङ्गी जानि'॥ 70॥

"दुँहार मुखे कृष्णनाम करिछे नर्त्तन।
एइ दुइ 'अधम' नहे, हय सर्वोत्तम॥ 71॥

अनुवाद—दोनोंके मुखसे निरन्तर कृष्णनाम सुनकर श्रीवल्लभभट्ट महाप्रभुके वचनोंकी कुछ इङ्गित-भङ्गिमाको समझ गये। उन्होंने कहा,—"दोनोंके मुखमें कृष्णनाम नृत्य कर रहा है। ये दोनों 'अधम' नहीं, अपितु सर्वोत्तम हैं॥ 70-71॥

श्रीमद्भागवत (3/33/7)में—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥"72॥

अनुवाद—हे भगवन्, जिनके मुखमें आपका नाम वर्तमान है, वे श्वपच (कुत्तेका मांस खानेवाले) होनेपर भी श्रेष्ठ है। जो आपका नाम-कीर्तन करते हैं, उन्होंने सब प्रकारकी तपस्या कर ली है, समस्त यज्ञ कर लिये हैं, सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया है एवं अङ्गसहित समस्त वेदोंका पाठ कर लिया है, इसलिये उनकी आर्योंमें गणना होती है॥"72॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 11/192 संख्या देखें॥ 72॥

श्रीभट्टकी सुबुद्धिको देखकर और सुसिद्धान्तको सुनकर महाप्रभुके द्वारा प्रशंसा :—

शुनि' महाप्रभु ताँरे बहु प्रशंसिला।
प्रेमाविष्ट हञा श्लोक पड़िते लागिला॥ 73॥

अनुवाद—इस श्लोकको सुनकर महाप्रभुने श्रीवल्लभभट्टकी बहुत प्रशंसा की। प्रेमाविष्ट होकर महाप्रभु श्लोक पढ़ने लगे॥ 73॥

नीचवंशमें उत्पन्न होनेपर भी हरिभक्त ही पूज्य, अभक्त होनेके कारण नामका ही ब्राह्मण वेदज्ञ होनेपर भी घृणाका पात्र :—
हरिभक्तिसुधोदय (3/11-12)में—

शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः।
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥ 74॥

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥ 75॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 74-75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सद्चरित्र, सद्भक्तिरूप दीप्ताग्निके द्वारा जिसका दुर्जातिमें उत्पन्न होनेका कल्मष जलकर समाप्त हो गया है, ऐसा चण्डाल भी पण्डितोंके द्वारा सम्मानित होने योग्य है; किन्तु नास्तिक व्यक्ति वेदज्ञ होनेपर भी सम्मानके योग्य नहीं है। भगवद्भक्तिहीन व्यक्तिके सद्जातिमें जन्म, शास्त्र-ज्ञान, जप और तप मृतदेहके अलङ्कारोंकी भाँति किसी कामके नहीं, केवल लोकरञ्जन मात्र ही हैं॥ 74-75॥

अनुभाष्य—

सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः (सती ऐकान्तिकी कृष्णभक्तिः एव दीप्ताग्निः तेन दग्धं निःशेषितं दुर्जात्यादिकम् एव कल्मषं प्रारब्धं पापं यस्य सः, अतः कृष्णभजनादेव) शुचिः (सदाचारः) श्वपाकः (अति-नीचकुलोद्भवः) अपि बुधैः (विद्वद्भिः) श्लाघ्यः (वरणीयः), (परन्तु) नास्तिकः (भगवत्-सेवाविमुखः) वेदज्ञः (वेदशास्त्रपारङ्गतः ब्राह्मणः अपिः) न [पूज्यः, दुःसङ्गत्वात् परमार्थपथिकेन सर्वथा परित्याज्य एवेत्यर्थः)।

भगवद्भक्तिहीनस्य (कृष्णसेवा-विमुखस्य) जातिः (प्राक्तन-सुकृतिवशात् उत्तमकुले जन्मादिकं) शास्त्रं (स्वाध्यायादिकं) जपं (मन्त्रोच्चारणादिकं), तपः (साधनाद्यनुशीलनं)—[एतत् सर्वमेव] अप्राणस्य (मृतस्य) देहस्य मण्डनम् (अलङ्करणम् इव व्यर्थमकिञ्चित्करं) लोकरञ्जनं (व्यवहारिकं जड़लोकानां बहिर्दर्शन-सुखकरमिव निष्फलमित्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—ऐकान्तिकी श्रीकृष्णभक्तिरूप दीप्ताग्निके द्वारा जिसका दुर्जातिमें उत्पन्न होनेका कल्मष और प्रारब्ध पाप जलकर समाप्त हो गये हैं, श्रीकृष्णभजनके कारण ऐसा चण्डाल भी पण्डितोंके द्वारा सम्मानित होने योग्य है; किन्तु भगवद्-सेवा-विमुख व्यक्ति वेद-शास्त्रोंमें पारङ्गत होनेपर भी सम्मानके योग्य नहीं है, अपितु दुःसङ्ग जानकर परमार्थ-पथिकको उसका सर्वथा त्याग करना चाहिये। श्रीकृष्णसेवा-विमुख व्यक्तिका पूर्व-सुकृतिके कारण उत्तमकुलमें जन्म, शास्त्र-ज्ञान, जप और तप—ये सभी मृतदेहके अलङ्कारोंकी भाँति व्यर्थ हैं, केवल सांसारिक लोगोंके बाहिरी दर्शनके सुखकर होनेपर भी निष्फल ही हैं॥ ॥ 74-75॥

महाप्रभुके प्रेम, प्रभाव-सौन्दर्यादि-दर्शनसे श्रीभट्टको विस्मय :—

प्रभुर प्रेमावेश, आर प्रभाव भक्तिसार।
सौन्दर्यादि देखि' भट्टेर हैल चमत्कार॥ 76॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रेमावेश, भक्तिसारके ज्ञान और उनके प्रभाव, सौन्दर्यादिको देखकर श्रीवल्लभभट्ट बड़े आश्चर्यचकित हुए॥ 76॥

परिकरों सहित महाप्रभुके साथ नौकामें बैठना :—

सगणे प्रभुरे भट्ट नौकाते चड़ाञा।
भिक्षा दिते निज घरे चलिला लञा॥ 77॥

अनुवाद—महाप्रभुको उनके परिकरों सहित नौकामें चढ़ाकर श्रीवल्लभ भट्ट उन्हें भिक्षा देनेके लिये अपने घर ले गये॥ 77॥

यमुनाके नीले जलको देखकर श्रीकृष्णके उद्दीपनके कारण महाप्रभुका प्रेमावेश :—

यमुनार जल देखि' चिक्कण श्यामल।
प्रेमावेशे महाप्रभु हइला विह्वल॥ 78॥

महाप्रभुका यमुनामें कूदना, सभीका भयभीत होना :—

हुङ्कार करि' यमुनार जले दिला झाँप।
प्रभु देखि' सबार मने हैल भय-काँप॥ 79॥

अनुवाद—यमुनाके चमकदार श्याम वर्णके जलको देखकर महाप्रभु प्रेमावेशमें विह्वल हो गये। हुङ्कार करते हुए महाप्रभुने यमुनाके जलमें छलाँग लगा दी। महाप्रभुको कूदते देखकर सभी भयभीत हो गये और काँपने लगे॥ 78-79॥

महाप्रभुको उठाकर नौकामें बैठाना, महाप्रभुका नृत्य :—

आस्ते-व्यस्ते सबे धरि' प्रभुरे उठाइल।
नौकार उपरे प्रभु नाचिते लागिल॥ 80॥

अनुवाद—जल्दीसे सभीने पकड़कर महाप्रभुको जलमेंसे निकाला। नौकाके ऊपर आकर महाप्रभु नृत्य करने लगे॥ 80॥

नृत्यके कारण नौकाका डगमगाना :—

महाप्रभुर भरे नौका करे टलमल।
डुबिते लागिल नौका, झलके भरे जल॥ 81॥

अनुवाद—महाप्रभुके भारसे नौका डगमगाने लगी। नौकाके डगमगानेसे उसमें जल भरने लगा और वह डूबने लगी॥ 81॥

बहिरङ्ग-श्रीभट्टके सामने भावको छुपानेकी चेष्टा करनेपर भी महाप्रभुकी प्रेम-मत्तता :—

यद्यपि भट्टेर आगे प्रभुर धैर्य हैल मन।
दुर्वार उद्भट प्रेम, नहे सम्वरण॥ 82॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीवल्लभ भट्टके आगे महाप्रभुने मनमें धैर्य धारण करनेका प्रयास किया, तथापि दुर्दमनीय प्रबल प्रेम होनेके कारण वे उसको सम्वरण नहीं कर पाये॥ 82॥

अनुभाष्य— *'दुर्वार'*—जिसका प्रकाश रोका अर्थात् बन्द नहीं किया जा सके; *'उद्भट'*—उदार, श्रेष्ठ, अभिनव, विचित्र, प्रसिद्ध, असाधारण, प्रबल॥ 82॥

महाप्रभुका धैर्य-धारण, दूसरी ओर उतरना :—

देश-पात्र देखि' महाप्रभु धैर्य हइल।
आड़ाइलेर घाटे नौका आसि' उत्तरिल॥ 83॥

अनुवाद—स्थान तथा पात्रको देखकर अन्तमें महाप्रभुने धैर्य धारण किया। तब नौका स्थिर होकर चलती हुई आड़ाइल ग्रामके घाटपर आ पहुँची॥ 83॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उस देशमें अधिकांश लोग प्रेमशून्य हैं और सामने उपस्थित श्रीवल्लभ भट्ट भी बहुत ही तर्कप्रिय व्यक्ति हैं; ऐसा देखकर महाप्रभुने धैर्य धारण किया॥ 83॥

अनुभाष्य— *'देश-पात्र'*—[जलमें] निमग्न प्रायः नौकाके ऊपर नृत्यादि सुविधाजनक नहीं है; और फिर, श्रीवल्लभ-दीक्षितकी भाँति प्रेमरहित पण्डितके समक्ष सात्त्विकभावका उल्लास नहीं होता॥ 83॥

श्रीवल्लभके द्वारा महाप्रभुके स्नान करनेके बाद उन्हें अपने घरपर लाना :—

भये भट्ट सङ्गे रहे, मध्याह्न कराञा।
निज-गृहे आनिला प्रभुरे सङ्गेते लञा॥ 84॥

अनुवाद—महाप्रभुकी कुशलताके भयके कारण श्रीवल्लभ भट्ट सब समय उनके साथमें रहे। उन्होंने महाप्रभुको वहींपर स्नान कराया और उन्हें अपने साथ ही अपने घरपर ले आये॥ 84॥

श्रीवल्लभके द्वारा अपने हाथोंसे महाप्रभुके श्रीचरणोंको धोना और सपरिवार चरणामृतका सम्मान :—

आनन्दित हञा भट्ट दिल दिव्यासन।
आपने करिल प्रभुर पादप्रक्षालन॥ 85॥

महाप्रभुको नये वस्त्र प्रदान :—

सवंशे सेइ जल मस्तके धरिल।
नूतन कौपीन-बहिर्वास पराइल॥ 86॥

अनुवाद—श्रीवल्लभ भट्टने आनन्दित होकर महाप्रभुको बैठनेके लिये दिव्य-आसन प्रदान किया और अपने हाथोंसे उन्होंने स्वयं महाप्रभुके चरणोंको धोया। फिर उन्होंने और उनके परिवारने उस जलको अपने-अपने मस्तकपर धारण किया। तब उन्होंने महाप्रभुको नया बहिर्वास तथा कौपीन प्रदान किया॥ 85-86॥

महाप्रभुकी पूजा और बलभद्रके द्वारा रसोई बनाना :—

गन्ध-पुष्प-धूप-दीपे महापूजा कैल।
भट्टाचार्ये मान्य करि' पाक कराइल॥ 87॥

अनुवाद—गन्ध, पुष्प, धूप और दीपसे श्रीवल्लभभट्टने महाप्रभुकी महापूजा की। तब उन्होंने बलभद्र भट्टाचार्यको सम्मान देते हुए उनके द्वारा भोजन बनवाया॥ 87॥

महाप्रभु और दोनों भाइयोंका श्रीवल्लभके घरमें भोजन करना :—

भिक्षा कराइल प्रभुरे सस्नेह यतने।
रूपगोसाञि-दुइभाइये कराइल भोजने॥ 88॥

अनुवाद—श्रीवल्लभभट्टने अति स्नेह और सेवाभावसे महाप्रभुको भोजन कराया। बादमें उन्होंने श्रीरूप गोस्वामी और उनके भाई श्रीवल्लभको भी भोजन कराया॥ 88॥

श्रीरूप और कृष्णदासको महाप्रभुके उच्छिष्टकी प्राप्ति :—

भट्टाचार्य श्रीरूपे दओयाइल 'अवशेष'।
तबे सेइ प्रसाद कृष्णदास पाइल शेष॥ 89॥

अनुवाद—बलभद्र भट्टाचार्यने पहले श्रीरूपको महाप्रभुका उच्छिष्ट प्रसाद दिया और बादमें बचे हुए उच्छिष्टको कृष्णदासको प्रदान किया॥ 89॥

श्रीवल्लभके द्वारा महाप्रभुका पाद-सम्वाहन :—

मुखवास दिया प्रभुरे कराइल शयन।
आपने भट्ट करेन प्रभुर पाद-सम्वाहन॥ 90॥

भोजन समाप्त करके श्रीवल्लभका पुनः आगमन :—

प्रभु पाठाइल ताँरे करिते भोजने।
भोजन करि' आइला तेँहो प्रभुर चरणे॥ 91॥

अनुवाद—मुखके अच्छे स्वादके लिये श्रीवल्लभ भट्टने महाप्रभुको लौंग, इलायची आदि देकर उन्हें विश्राम कराया और स्वयं महाप्रभुके श्रीचरण दबाने लगे। तब महाप्रभुने श्रीवल्लभ भट्टको भोजन करनेके लिये भेजा। भोजन करनेके बाद श्रीवल्लभभट्ट पुनः महाप्रभुके चरणकमलोंमें लौट आये॥ 90-91॥

त्रिहुत-पण्डित श्रीरघुपति उपाध्यायका आगमन :—

हेनकाले आइला रघुपति उपाध्याय।
तिरुहिता पण्डित, बड़ वैष्णव, महाशय॥ 92॥

अनुवाद—उसी समय त्रिहुत नामक स्थानके श्रीरघुपति उपाध्याय वहाँपर आये। वे बड़े विद्वान, बहुत बड़े वैष्णव और सम्मानित सज्जन थे॥ 92॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरघुपति उपाध्यायके द्वारा रचित कुछेक श्लोक पद्यावलीमें पाये जाते हैं। उनका निवास—त्रिहुत अथवा मिथिला देशमें था॥ 92॥

अनुभाष्य—'तिरुटिया' अथवा 'त्रिहुटिया'—वर्तमान समयमें सारण, चम्पारण, मुज्जफरपुर और द्वारभाङ्गा—ये चार जिले त्रिहुट् विभागके अन्तर्गत हैं; इस प्रदेशके अधिवासियोंको 'तिरुटिया' कहते हैं॥ 92॥

महाप्रभुकी वन्दना, महाप्रभुके द्वारा आशीर्वाद :—

आसि' तेँहो कैल प्रभुर चरण वन्दन।
'कृष्णे मति रहु' बलि' प्रभुर वचन॥ 93॥

अनुवाद—श्रीरघुपति उपाध्यायने आकर महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की और महाप्रभुने उनको आशीर्वाद देते हुए कहा,—'श्रीकृष्णमें तुम्हारी मति रहे॥'93॥

श्रीउपाध्यायको श्रीकृष्ण-वर्णन करनेका आदेश :—

शुनि' आनन्दित हैल उपाध्यायेर मन।
प्रभु ताँरे कहिल,—"कह कृष्णेर वर्णन॥"94॥

अनुवाद—महाप्रभुके आशीर्वाद वचन सुनकर श्रीरघुपति उपाध्यायका मन बहुत प्रसन्न हुआ। महाप्रभुने उनसे कहा,—"श्रीकृष्णके विषयमें कुछ वर्णन करो॥"94॥

श्रीउपाध्यायके द्वारा स्वरचित श्लोकका पढ़ना,
महाप्रभुमें प्रेमावेश :—

निज-कृत कृष्णलीला-श्लोक पड़िल।
शुनि' महाप्रभुर महा प्रेमावेश हैल॥ 95॥

अनुवाद—तब श्रीरघुपति उपाध्यायने स्वरचित एक श्रीकृष्णलीला-श्लोक पढ़ा। उसे सुनकर महाप्रभुमें महा प्रेमावेश उदित हो गया॥ 95॥

श्रीनन्द-प्रणाम :—
पद्यावली (126)में उद्धृत श्लोक—

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भव-भीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥ 96॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 96॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भवचक्रसे भयभीत सभी व्यक्तियोंमेंसे कोई श्रुतिओंका, कोई स्मृतिका या कोई महाभारतका भजन करे; (किन्तु मैं) इस स्थानपर

श्रीनन्दकी ही वन्दना करता हूँ,—जिनके आँगनमें परमब्रह्म श्रीकृष्ण लीला करते हैं॥ 96॥

अनुभाष्य—

भवभीताः (संसार-भयातुराः) अपरे (हरिजनेतराः मोक्षाभिलाषिणः) श्रुतिं (वेदशास्त्रम्), इतरे (हरिजनेतराः केचन फलकामि-कर्मिणः) स्मृतिं (लौकिक-प्रयोगानुष्ठानपर-शास्त्रम्), अन्ये (संसारिणः) भारतं (महाभारतादि-सकलजनसुखपाठ्य-ग्रन्थादिकं) भजन्तु; अहं तु इह (जगति) [तं] नन्दं (व्रजेन्द्रं) वन्दे,—यस्य (नन्दस्य) अलिन्दे (बहिर्द्वार-प्राङ्गणे) परंब्रह्म (श्रीकृष्णः) [विराजते]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 96॥

'आगे कह',—प्रभु-वाक्ये उपाध्याय कहिल।
रघुपति उपाध्याय नमस्कार कैल॥ 97॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—'आगे कहो।' श्रीरघुपति उपाध्यायने महाप्रभुको नमस्कार किया और महाप्रभुके वचनानुसार उन्होंने एक और श्लोक पढ़ा॥ 97॥

यमुनाके तटपर कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण :—
पद्यावली (98)में उद्धृत श्लोक—

कम्प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु।
गोपति-तनयाकुञ्जे गोपवधूटी-विटं ब्रह्म॥ 98॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 98॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसे बतला सकता हूँ, अब कौन उसपर विश्वास करेगा कि यमुना तटके कुञ्जोंमें गोपवधुओंके लम्पट परमब्रह्म लीला करते हैं?॥ 98॥

अनुभाष्य—

गोपति-तनयाकुञ्जे (गोपतिः सूर्यः तस्य तनया कालिन्दी तस्याः तटस्थकुञ्जे) गोपवधूटीविटं (गोपवधूट्यः तरुण्यः स्वल्पवयस्काः गोपरामाः,—क्षुद्रार्थे टीप्, तासां विटं लम्पटं) [परं] ब्रह्म (श्रीकृष्णः) [विराजते इति] सम्प्रति कं [जनं] प्रति कथयितुम् ईशे (समर्थो भवामि), कः वा प्रतीतिं (विश्वासम्) आयातु (स्थापयेत्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 98॥

श्रीरघुपतिके द्वारा श्लोक सुनानेपर महाप्रभुमें प्रेमावेश :—

प्रभु कहेन,—कह, तेँहो पड़े कृष्णलीला।
प्रेमावेशे प्रभुर देह-मन आलुयाइला॥ 99॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—कुछ और कहो। श्रीरघुपति उपाध्याय श्रीकृष्णलीला पढ़ने लगे। प्रेमावेशमें महाप्रभुके देह और मन शिथिल हो गये॥ 99॥

अनुभाष्य—*'आलुयाइला'*—असंलग्न होना; प्राकृत विचारशून्य होकर मन उदासीन होनेसे दैहिक क्रियाका भी शिथिल होना॥ 99॥

श्रीउपाध्यायमें विस्मय और महाप्रभुको
'श्रीकृष्ण' मानना :—

प्रेम देखि' उपाध्यायेर हैल चमत्कार।
'मनुष्य नहे, इँहो—कृष्ण'—करिल निर्द्धार॥ 100॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रेमावेशको देखकर श्रीरघुपति उपाध्याय आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने निर्णय किया कि महाप्रभु 'मनुष्य नहीं, ये—श्रीकृष्ण हैं॥'100॥

महाप्रभु और श्रीरघुपतिका संलाप; महाप्रभुके प्रश्न
और श्रीउपाध्यायका उत्तर देना :—
(1) श्रीकृष्णका "श्याम' रूप ही श्रेष्ठ—

प्रभु कहे,—"उपाध्याय, श्रेष्ठ मान' काय?"
***'श्याममेव परं रूपं'*—कहे उपाध्याय॥ 101॥**

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"उपाध्याय, किस रूपको सबसे श्रेष्ठ मानते हो?" श्रीरघुपति उपाध्यायने कहा,—'श्रीश्यामसुन्दर ही परम रूप हैं॥'101॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने श्रीरघुपतिसे जिज्ञासा की—श्रीकृष्ण, श्रीनारायण, राम और नृसिंहादि भगवान्‌के असंख्य आकार (रूप) हैं; उनमेंसे आपने किस आकारको सर्वश्रेष्ठ रूप जाना है?॥ 101॥

(2) मथुरा ही श्रेष्ठ धाम :—

"'श्याम'-रूपेर वासस्थान श्रेष्ठ मान' काय?"
***'पुरी मधुपुरी वरा'*—कहे उपाध्याय॥ 102॥**

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"श्यामसुन्दर रूपके किस वासस्थानको श्रेष्ठ मानते हो?" श्रीरघुपति उपाध्यायने कहा,—'श्रीमथुरापुरीको ही श्रेष्ठ मानता हूँ॥'102॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण कभी मथुरामण्डलमें, कभी द्वारकापुरीमें परव्योममें अवस्थान करते हैं; इन दोनोंमेंसे मथुरापुरीका ही श्रेष्ठ होना कहा गया है। श्रीरूपपादने भी 'उपदेशामृत'में—"वैकुण्ठाजनितो वरा मधुपुरी" आदि कहा है॥ 102॥

(3) किशोर-अवस्था ही आराध्य :—

"बाल्य, पौगण्ड, कैशोरे, श्रेष्ठ मान' काय?"
***'वयः कैशोरकं ध्येयं'*—कहे उपाध्याय॥ 103॥**

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"श्यामसुन्दरकी बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर अवस्थामेंसे किसे श्रेष्ठ मानते हो?" श्रीरघुपति उपाध्यायने कहा,—'कैशोर अवस्था ही ध्यान करने योग्य है॥'103॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी तीन प्रकारकी अवस्थाओंमेंसे आप किसे श्रेष्ठ मानते हो?॥ 103॥

(4) अप्राकृत शृङ्गार-रस ही सर्वोत्तम और श्रेष्ठ-आराध्य :—

"रसगण-मध्ये तुमि श्रेष्ठ मान' काय?"
***'आद्य एव परो रसः'*—कहे उपाध्याय॥ 104॥**

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"रसोंमेंसे तुम किस रसको श्रेष्ठ मानते हो?" श्रीरघुपति उपाध्यायने कहा,—'आदिरस (शृङ्गाररस) ही परम रस है॥'104॥

महाप्रभुको आनन्द :—

प्रभु कहे,—"भाल तत्त्व शिखाइला मोरे।"
एत बलि' श्लोक पड़े गद्गद-स्वरे॥ 105॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"तुमने मुझे बहुत सुन्दर तत्त्वकी शिक्षा प्रदान की है।" यह कहकर महाप्रभुने गद्गद स्वरमें एक श्लोक पढ़ा॥ 105॥

पद्यावली (82)में उद्धृत माधवेन्द्रपुरीकृत श्लोक :—

श्याममेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥ 106॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 106॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्यामरूप ही सर्वश्रेष्ठ रूप, मधुपुरी ही श्रेष्ठा पुरी, कैशोर अवस्था ही ध्यान-योग्य और आद्य अर्थात् शृङ्गार-रस ही श्रेष्ठ रस है॥ 106॥

अनुभाष्य—

[भगवद्रूपाणां वर्णाकाराणां भगवन्मूर्त्तिभेदानां मध्ये] श्यामं (नन्दनन्दन-श्यामसुन्दरस्य अभ्रवपुः) रूपम् एव परं (श्रेष्ठम्); [पुरीणां वैकुण्ठ-मथुरादीनां मध्ये] मधुपुरी पुरी (मथुरा एव) वरा (श्रेष्ठा); [बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-वयसां मध्ये यौवनपूर्वं धीरललित-नायकोचितं] कैशोरकं वयः [एव] ध्येयं (निरन्तरमाराध्यम्); [चिन्मयरसभेदानां मध्ये] आद्यः (मधुरः शृङ्गारः) रसः एव परः (श्रेष्ठः)।

श्लोक-भावानुवाद—पयार संख्या 101-104 का अनुवाद और अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 106॥

महाप्रभुके द्वारा आलिङ्गन, उपाध्यायके द्वारा नृत्य :—

प्रेमावेशे प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन।
प्रेमे मत्त हञा तेँहो करेन नर्त्तन॥ 107॥

श्रीवल्लभका विस्मय, पुत्रको महाप्रभुके चरणोंमें समर्पित करना :—

देखि' वल्लभ-भट्ट मने चमत्कार हैल।
दुइ (?) पुत्र आनि' प्रभुर चरणे पाड़िल॥ 108॥

अनुवाद—महाप्रभुने प्रेमावेशमें श्रीरघुपति उपाध्यायका आलिङ्गन किया। श्रीरघुपति उपाध्याय भी प्रेममें मत्त होकर नृत्य करने लगे। उन दोनोंके प्रेममें मत्त नृत्यको देखकर श्रीवल्लभ भट्ट आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने अपने दोनों [(?) इसी पयारका अनुभाष्य देखें] पुत्रोंको लाकर महाप्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दिया॥ 107-108॥

अनुभाष्य—*'दुइपुत्र'*—श्रीगोपीनाथ और श्रीविट्ठलेश्वर। महाप्रभु 1434 अथवा 1435 शकाब्दमें प्रयागमें आये थे,

उस समय श्रीविट्ठलका जन्म नहीं हुआ था। मध्यलीला 18/47 संख्या देखें॥ 108॥

आड़ाइल-ग्रामवासियोंके द्वारा महाप्रभुका दर्शन और वैष्णवताकी प्राप्ति :—

प्रभु देखिबारे ग्रामेर सब लोक आइल।
प्रभु-दरशने सब लोक 'कृष्णभक्त' हइल॥ 109॥

अनुवाद—महाप्रभुके आनेका समाचार पाकर आड़ाइल-ग्रामके सभी लोग उनके दर्शनके लिये आये। महाप्रभुके दर्शनसे सभी लोग 'कृष्णभक्त' बन गये॥ 109॥

ब्राह्मणोंका निमन्त्रण, श्रीवल्लभके द्वारा मना करना :—

ब्राह्मणसकल करेन प्रभुर निमन्त्रण।
वल्लभ-भट्ट ताँ सबारे करेन निवारण॥ 110॥
"प्रेमान्मादे पड़े गोसाञि मध्य-यमुनाते।
प्रयागे चालाइब, इँहा ना दिब रहिते॥ 111॥
याँर इच्छा, प्रयागे याञा करिबे निमन्त्रण।"
एत बलि' प्रभु लञा करिल गमन॥ 112॥

अनुवाद—उस ग्रामके सभी ब्राह्मण महाप्रभुको निमन्त्रण चाहते थे, किन्तु श्रीवल्लभ भट्टने उन सबको ऐसे करनेसे रोका और कहा,—"यहाँ आते हुए प्रेमोन्मादके कारण श्रीचैतन्य गोसाईं बीच यमुनामें कूद पड़े थे, इसलिये मैं इन्हें प्रयाग ले जाऊँगा, यहाँपर नहीं रहने दूँगा। जिसकी इच्छा हो, वह प्रयाग जाकर इन्हें निमन्त्रण करे।" इतना कहकर श्रीवल्लभ भट्ट महाप्रभुको लेकर चल दिये॥ 110-112॥

महाप्रभुको लेकर नौकासे दूसरी ओर प्रयागमें श्रीवल्लभका आगमन :—

गङ्गा-पथे महाप्रभुरे नौकाते बसाञा।
प्रयागे आइला भट्ट गोसाञिरे लञा॥ 113॥

अनुवाद—[यमुनाके मार्गको छोड़कर] श्रीवल्लभ भट्ट महाप्रभुको नौकामें बैठाकर गङ्गाके मार्गसे प्रयागमें ले आये॥ 113॥

महाप्रभुके द्वारा दशाश्वमेध-घाटपर एकान्तमें श्रीरूपमें शक्तिका सञ्चार और शिक्षा-प्रदान :—

लोक-भिड़-भये प्रभु 'दशाश्वमेधे' याञा।
रूप-गोसाञिरे शिक्षा करा'न शक्ति सञ्चारिया॥ 114॥

अनुवाद—लोगोंकी भीड़के भयसे महाप्रभु दशाश्वमेध घाटपर गये। यहींपर महाप्रभुने श्रीरूप गोस्वामीमें शक्तिका सञ्चार करके उन्हें शिक्षा प्रदान की॥ 114॥

अनुभाष्य—भगवान् अनन्तशक्तिसम्पन्न हैं। शक्तिमान् भगवान्से सुकृतिमान् जीव कृपा-शक्ति प्राप्त करता है। मायाके चङ्गुलमें पड़कर श्रीकृष्ण-विमुखतारूपी अज्ञानके कारण जीव सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्त्वमें प्रवेश नहीं कर पाता। भगवान् श्रीगौरहरिने कृपा करके श्रीरूप गोस्वामीको तत्त्वको समझनेकी शक्ति पहले अर्पण करके बादमें उन्हें तत्त्व-शिक्षा प्रदान की॥ 114॥

श्रीकृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व और रसतत्त्वकी सीमातक शिक्षा :—

कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व, रसतत्त्व-प्रान्त।
सब शिखाइल प्रभु भागवत-सिद्धान्त॥ 115॥

श्रीरामानन्दके द्वारा कहे भक्तिसिद्धान्तोंका श्रीरूपको उपदेश :—

रामानन्द-पाशे यत सिद्धान्त शुनिला।
रूपे कृपा करि' ताहा सब सञ्चारिला॥ 116॥

श्रीरूपके हृदयमें सभी तत्त्वोंकी स्फूर्ति :—

श्रीरूप-हृदये प्रभु शक्ति सञ्चारिला।
सर्वतत्त्व-निरूपिया 'प्रवीण' करिला॥ 117॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीरूप गोस्वामीको श्रीकृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व तथा रसतत्त्वकी सीमा तक शिक्षा प्रदान की। तब उन्होंने श्रीरूप गोस्वामीको श्रीमद्भागवतके चरम सिद्धान्तके विषयमें बतलाया। महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायसे जितने सिद्धान्त सुने थे, उन्होंने श्रीरूप गोस्वामीपर कृपा करके उन सब सिद्धान्तोंका उनमें सञ्चार किया। महाप्रभुने श्रीरूप गोस्वामीके हृदयमें शक्ति सञ्चारित की

और समस्त तत्त्वोंका निरूपण करके उन्हें उनमें 'प्रवीण' बना दिया॥ 115-117॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'प्रान्त'*—सीमा॥ 115॥

कविकर्णपूरके स्वकृत-ग्रन्थमें श्रीरूप-शिक्षाका उल्लेख :—

शिवानन्द-सेनेर पुत्र 'कविकर्णपूर'।
'रूपेर-मिलन' स्व-ग्रन्थे लिखियाछेन प्रचुर॥ 118॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्द सेनके पुत्र 'श्रीकविकर्णपूर'ने स्वरचित ग्रन्थ (श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक)में महाप्रभुसे 'श्रीरूपके मिलन'का विस्तारसे वर्णन किया है॥ 118॥

श्रीरूप-सनातनके द्वारा महाप्रभुकी
व्रजलीला-कथा-प्रकाश :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (9/38)—

कालेन वृन्दावनकेलिवार्त्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।
कृपामृतेनाभिषिषेच देव-
स्तत्रैव रूपश्च सनातनश्च॥ 119॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कालके प्रभावसे वृन्दावनकी रसक्रीड़ाओंकी कथा लुप्त हो गयी थी, उन कथाओंका विशेषरूपसे विस्तार करनेके लिये श्रीगौराङ्गदेवने कृपारूपी अमृतके द्वारा वहाँपर श्रीरूप एवं श्रीसनातनको अभिषिक्त किया था॥ 119॥

अनुभाष्य—

कालेन (भगवदिच्छारूप-कालवशेन) वृन्दावनकेलिवार्त्ता (वृन्दावनसम्बन्धिनी रसक्रीड़ा-कथा) लुप्ता (आच्छन्ना आसीत्) इति (अतः) तां (कथां) विशिष्य (विशिष्टां कृत्वा) ख्यापयितुं (प्रकाशयितुं) देवः (श्रीगौरहरिः) तत्रैव वृन्दावने रूपं च सनातनं च कृपामृतेन (करुणासुधा-वारिणा) अभिषिषेच (अभिषिक्तवान्)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 119॥

श्रीरूपपर कृपा करनेवाले महाप्रभु :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (9/29)में—

यः प्रागेव प्रियगुणगणैर्गाढ़बद्धोऽपि मुक्तो
गेहाध्यासाद्रस इव परो मूर्त्त एवाप्यमूर्त्तः।
प्रेमालापैर्दृढ़तरपरिष्वङ्गरङ्गैः प्रयागे
तं श्रीरूपं सममनुपमेनानुजग्राह देवः॥ 120॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 120॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो पहले प्रियगुणसमूहके (महाप्रभुके गुणोंके) द्वारा गाढ़-बद्ध होनेके कारण गृहकार्योंसे मुक्त हो गये थे, उन श्रीरूपके ऊपर, उनके छोटे भाई श्रीअनुपमके साथ, स्वयं रसके समान अमूर्त्त होनेपर भी श्रेष्ठ मूर्तिमान् श्रीगौराङ्गदेवने प्रयागमें प्रेमालाप और दृढ़तर (गाढ़) आलिङ्गनके द्वारा अनुग्रह किया था॥ 120॥

अनुभाष्य—

यः (श्रीरूपः) प्रागेव प्रियगुणगणैः (प्रियस्य गौरस्य गुणगणैः गुणसमूहैः) गाढ़बद्धः (गाढ़म् अतिशयं बद्धः आसक्तः) अपि गेहाध्यासात् (लीलाभिनीत-गृहासक्तेः) मुक्तः (त्यक्तस्पृहः) आसीत्, तं (श्रीरूपम्) अनुपमेन (अनुजेन) समं (सार्द्धम्) अमूर्त्तः अपि परः मूर्त्तः रसः इव (स्वरूपं प्रकटीकृत्य) देवः (गौरः) प्रयागे (गङ्गायामुनसङ्गमे) प्रेमालापैः दृढ़तरपरिष्वङ्गरङ्गैः (गाढ़ालिङ्गनविलासैः) अनुजग्राह (अनुकम्पां कृतवान्)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 120॥

महाप्रभुके द्वितीय स्वरूप, महाप्रभुके सर्वस्व श्रीरूपमें
भक्तिरसतत्त्व-शास्त्रका विस्तार :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (9/30)में —

प्रियस्वरूपे दयितस्वरूपे
प्रेमस्वरूपे सहजाभिरूपे।
निजानुरूपे प्रभुरेकरूपे
ततान रूपे स्वविलासरूपे॥ 121॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 121॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अपने प्रियस्वरूप, दयितस्वरूप, प्रेमस्वरूप, स्वाभाविक मनोज्ञरूपसे युक्त, मुख्य रूप एवं

अपने अनुरूप,—ऐसे अपने विलासरूप श्रीरूप गोस्वामीमें महाप्रभुने (भक्तिरस शास्त्रका) विस्तार किया था॥ 121॥

अनुभाष्य—

प्रियस्वरूपे (प्रियः भक्तः तत्स्वरूपः यः तस्मिन् भक्तरूपे) दयितस्वरूपे (दत्तम् आत्मस्वरूपं यस्मै तस्मिन्) प्रेमस्वरूपे (प्रेममय-निजाभिन्न-रूपे) सहजाभिरूपे (सहजं स्वाभाविकम् अभिरूपं मनोज्ञं रूपं यस्य तस्मिन्) निजानुरूपे (प्रेमप्रकाशकतया सदृशं रूपं यस्य तस्मिन्) एकरूपे (एकं मुख्यं रूपं यस्य तस्मिन्) स्वविलासरूपे (स्वस्य स्वस्वरूपस्य विलासः लीलार्थं रूपं यस्य तस्मिन्) रूपे (श्रीरूप-गोस्वामिनि) प्रभुः (श्रीमन्महाप्रभुः) ततान (श्रीरूपद्वारैव भक्तिरसशास्त्रं प्रकाशितवान्)।

श्लोक-भावानुवाद—प्रिय भक्त स्वरूप है जिनका, उन भक्तरूप, जिन्हें महाप्रभुने अपना स्वरूप दे दिया है, जो प्रेममय महाप्रभुसे अभिन्नरूप हैं, स्वाभाविक मनोज्ञ रूप है जिनका, प्रेमका प्रकाश होनेके कारण महाप्रभुके जैसा रूप है जिनका, जो महाप्रभुका ही एक मुख्य रूप हैं और अपने स्वरूपका विलास करनेके लिये अर्थात् लीला करनेके लिये जिनका रूप है, ऐसे श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा महाप्रभुने भक्तिशास्त्रोंको प्रकाशित करवाया॥ 121॥

एइमत कर्णपूर लिखे स्थाने-स्थाने।
प्रभु कृपा कैला यैछे रूप-सनातने॥ 122॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीकविकर्णपूरने स्वरचित ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर महाप्रभुने जिस प्रकार श्रीरूप-सनातनपर कृपा की थी, उसका वर्णन किया है॥ 122॥

अनुभाष्य—*'स्थाने स्थाने'*—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय ग्रन्थमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर॥ 122॥

श्रीरूप-सनातन—सभी श्रीगौरभक्तोंके सर्वाधिक प्रिय :—

महाप्रभुर यत बड़ बड़ भक्त मात्र।
रूप-सनातन—सबार कृपा-गौरव-पात्र॥ 123॥

अनुवाद—श्रीरूप-सनातन महाप्रभुके सभी बड़े-बड़े भक्तोंके कृपा तथा गौरवके पात्र थे॥ 123॥

सभीके आदरका दृष्टान्त; वृन्दावन दर्शन करनेवालोंसे श्रीरूप-सनातनके सम्बन्धमें आग्रहपूर्वक जिज्ञासा :—

केह यदि देशे याय देखि' वृन्दावन।
ताँरे प्रश्न करेन प्रभुर पारिषदगण॥ 124॥

"कह,—ताँहा कैछे रहे रूप-सनातन?
कैछे रहे, कैछे वैराग्य, कैछे भोजन?॥ 125॥

कैछे अष्टप्रहर करेन श्रीकृष्ण-भजन?"
तबे प्रशंसिया कहे सेइ भक्तगण॥ 126॥

श्रीरूप-सनातनके वैराग्ययुक्त-भक्तिरसके पानकी मत्तताका वर्णन :—

"अनिकेत दुँहे, वने यत वृक्षगण।
एक एक वृक्षेर तले एक एक रात्रि शयन॥ 127॥

'विप्रगृहे स्थूलभिक्षा, काँहा माधुकरी।
शुष्क रुटी-चाना चिबाय, भोग परिहरि'॥ 128॥

करोँया-मात्र हाते, काँथा, छिँड़ा-बहिर्वास।
कृष्णकथा, कृष्णनाम, नर्त्तन-उल्लास॥ 129॥

अष्टप्रहर कृष्णभजन, चारिदण्ड शयने।
नाम-सङ्कीर्त्तन-प्रेमे सेह नहे कोन दिने॥ 130॥

कभु भक्तिरसशास्त्र करये लिखन।
चैतन्यकथा शुने, करे चैतन्य-चिन्तन॥"131॥

अनुवाद—जो कोई भी श्रीवृन्दावनके दर्शन करके अपने गाँवमें पहुँचता, उससे महाप्रभुके परिकर प्रश्न करते,—"बतलाओ तो, वहाँ रूप और सनातन कैसे रहते हैं? वे क्या करते हैं? उनका वैराग्य कैसा है? वे क्या भोजन करते हैं? वे कैसे अष्टप्रहर श्रीकृष्णका भजन करते हैं?" तब वृन्दावनसे लौटा भक्त श्रीरूप-सनातनकी प्रशंसा करते हुए कहता,—"दोनोंका ही रहनेका कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है। वे दोनों एक-एक वृक्षके नीचे एक-एक रात्रि व्यतीत करते हैं। वे कभी तो ब्राह्मणके घरमें स्थूल भिक्षा ग्रहण करते हैं और कभी कहींपर माधुकरी माँगकर खा लेते हैं।

भोगका सम्पूर्ण रूपसे त्याग करके कभी सूखी रोटी और चना चबाते हैं। वे हाथमें केवल जलका पात्र ही रखते हैं, पुराने वस्त्रोंका बना कम्बल तथा फटा हुआ बहिर्वास धारण करते हैं। श्रीकृष्णकथा, श्रीकृष्णनाम और नृत्यमें ही उल्लास प्राप्त करते हैं। वे आठों प्रहर श्रीकृष्णका भजन करते हैं, केवल चार दण्ड ही शयन करते हैं। कभी-कभी तो नाम-सङ्कीर्तन और श्रीकृष्ण प्रेममें आविष्ट होनेके कारण वह भी नहीं होता। वे कभी भक्तिरससे सम्बन्धित शास्त्रका लेखन कार्य करते हैं और कभी श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कथाका श्रवण करते हैं और श्रीचैतन्य महाप्रभुका चिन्तन करते हैं॥"124-131॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'करोँया'*—संन्यासियोंके हाथमें रहनेवाला जलका पात्र॥ 129॥

अनुभाष्य— *'स्थूलभिक्षा'*—जिस भिक्षाको ग्रहण करनेपर उदरपूर्त्तिके लिये अन्य किसी व्यक्तिसे और किसी खाद्य पदार्थकी भिक्षा नहीं करनी पड़ती।

'माधुकरी'—मधुमक्खी जिस प्रकार अनेक पुष्पोंसे मधु संग्रह करके अपने छत्तेमें ले जाती है, उसी प्रकार बहुतसे स्थानोंसे थोड़ा-थोड़ा खाद्य पदार्थ संग्रह करके जो उदर भरते हैं, उन्हींकी वृत्ति ही 'माधुकरी'के नामसे जानी जाती है।

'भोग परिहरि'—सुख प्राप्तिकी आशासे इन्द्रियवृत्तिको वर्द्धित करनेके लिये जो सब उत्तेजक पदार्थ उपयोग किये जाते हैं, उन सबका त्याग करके वे भजनके उपयोगी जीवनकी रक्षा करनेके लिये सूखी रोटी और भुने हुए चनेके द्वारा जीवनका निर्वाह करते थे। ऐसे वैराग्ययुक्त जीवनमें वे कभी तो भक्तिरस शास्त्र लिखकर श्रीकृष्णभजन करते थे, कभी नाम-सङ्कीर्तन और कभी श्रीगौरलीला-स्मरण-मनन आदिके द्वारा श्रीकृष्णभजन करते थे। प्राकृत सहजियाओंमें यह विश्वास प्रबल है कि भक्तिशास्त्रोंको लिखना और पढ़ना तो नये साधकोंके लिये है। इनका परित्याग करके शास्त्रादिकी चर्चासे विराम प्राप्त करना ही भक्तिका 'साधन' है। श्रीरूपानुग-भक्तोंकी इस प्रकारकी बातोंमें आस्था नहीं है। किन्तु यदि साधकका शास्त्रोंके लिखने-पढ़ने आदिके द्वारा धन-उपार्जन करके इन्द्रिय-तृप्ति, जड़ीय प्रतिष्ठा अथवा पूजा, लाभ अथवा अन्य कोई तुच्छ उद्देश्य हो, जिसे 'उपशाखा' कहा जाता है, तब उस प्रकारके भ्रष्टाचार-परायण व्यक्तिका कभी भी मङ्गल नहीं होता। वास्तविक श्रीमद्‌रूपानुगोंकी ऐसी तुच्छ फलभोगमूलक कर्मवासना नहीं होती॥ 128-131॥

श्रीरूप-सनातनके भजनके आचरणको
सुनकर भक्तोंको सुख :—

एइकथा शुनि' महान्तेर महासुख हय।
चैतन्येर कृपा याँहे, ताँहे कि विस्मय?॥ 132॥

अनुवाद—श्रीरूप-सनातनसे सम्बन्धित इन बातोंको सुनकर महाप्रभुके परिकर बहुत प्रसन्न होते। जिनपर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा हो, उनके विषयमें यह सब सुनकर कैसा विस्मय?॥ 132॥

स्वरचित 'भक्तिरसामृतसिन्धु'में महाप्रभुकी कृपाका वर्णन :—

चैतन्येर कृपा रूप लिखियाछेन आपने।
रसामृतसिन्धु-ग्रन्थेर मङ्गलाचरणे॥ 133॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपाके विषयमें श्रीरूप गोस्वामीने स्वरचित भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें स्वयं यह लिखा है—॥ 133॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/1/2) :—

हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्त्तितोऽहं वराकरूपोऽपि।
तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य॥ 134॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 134॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हृदयमें जिनकी प्रेरणाके द्वारा सामान्य कङ्गालरूपी मैं भक्तिग्रन्थकी रचनामें प्रवृत्त हुआ हूँ, उन श्रीचैतन्यदेव हरिके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥ 134॥

अनुभाष्य—

[निज-भगवत्सेवा-प्रवर्त्तकं स्वाश्रयचरणकमलं भगवन्तं गौरहरिं नमस्करोति—] अहं वराकरूपः (क्षुद्र-दीन-रूपः, स्वयं गोस्वामिकुलचूड़ामणेरपि अतिदैन्यवशादेवेयमुक्तिः) अपि यस्य (कर्त्तृभूतस्य गौरस्य) हृदि (मनसि) प्रेरणया (हृद्विषयानुज्ञया) प्रवर्त्तितः (प्रेरितः), तस्य चैतन्यदेवस्य हरेः (गौरहरेः कृष्णचैतन्यस्य) पदकमलं (चरणारविन्दम्) अहं वन्दे।

श्लोक-भावानुवाद—[अपनी भगवद्भक्तिके प्रवर्तक भगवान् श्रीगौरहरिको, विशेषरूपसे उनके श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हुए कह रहे हैं—] मैं अति दीन (स्वयं गोस्वामिकुलके चूड़ामणि होनेपर भी अति दैन्यवशतः ऐसा कह रहे हैं) हृदयमें जिनकी प्रेरणासे भक्तिग्रन्थकी रचनामें प्रवृत्त हुआ हूँ, उन श्रीकृष्णचैतन्यदेवके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ॥ 134॥

प्रयागमें दस दिन तक महाप्रभुके द्वारा
श्रीरूपको शिक्षा-प्रदान :—

एइमत दशदिन प्रयागे रहिया।
श्रीरूपे शिक्षा दिल शक्ति सञ्चारिया॥ 135॥

अनुवाद—महाप्रभुने इस प्रकार दस दिन तक प्रयागमें रहकर श्रीरूपमें शक्ति सञ्चार करके उन्हें शिक्षा प्रदान की॥ 135॥

श्रीरूप-शिक्षा; सूत्राकारमें भक्तिरसके लक्षणका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"शुन, रूप, भक्तिरसेर लक्षण।
सूत्ररूपे कहि, विस्तार ना याय वर्णन॥ 136॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे रूप सुनो! भक्तिरसके लक्षणका सूत्ररूपमें ही वर्णन करूँगा, क्योंकि इसका विस्तारसे वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 136॥

महाप्रभुकी कृपासे श्रीरूपके द्वारा
भक्तिरसामृतसिन्धुकी एक बूँदका पान :—

पारापार-शून्य गभीर भक्तिरस-सिन्धु।
तोमाय चाखाइते तार कहि एक 'बिन्दु'॥ 137॥

अनुवाद—भक्तिरस-सिन्धु ओर-छोररहित है और इसकी गहराईको भी कोई नहीं जान सकता। तुम्हें भक्तिरस-सिन्धुको चखानेके लिये इसकी एक बिन्दुकी व्याख्या कर रहा हूँ॥ 137॥

अनुभाष्य— *'पारापार-शून्य'*—पार (अर्थात्) एक ओर, अपार (अर्थात्) दूसरी ओर; इसलिये जिसके दोनों ओरके बीचमें किसी भी ओरकी कोई सीमा नहीं है॥ 137॥

सर्वप्रथम ब्रह्माण्डके बद्धजीवोंका वर्णन;
संख्यामें बहुत अधिक :—

एइमत ब्रह्माण्ड भरि' अनन्त जीवगण।
चौराशी-लक्ष योनिते करये भ्रमण॥ 138॥

अनुवाद—इस प्रकार इस ब्रह्माण्डमें अनन्त जीव हैं जो चौरासी लाख योनियोंमें इस ब्रह्माण्डमें भ्रमण कर रहे हैं॥ 138॥

अनुभाष्य— *'चौराशी लक्षयोनि'* (विष्णुपुराणमें)—

"जलजा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः।
कृमयो रुद्रसंख्यकाः पक्षिणां दशलक्षकम्।
त्रिंशल्लक्षाणि पशवः चतुर्लक्षाणि मानुषाः॥"

[अर्थात् "जलचरोंकी नौ लाख योनियाँ हैं, बीस लाख योनियाँ स्थावर पेड़-पौधोंकी हैं, कीट-पतगोंकी ग्यारह लाख योनियाँ हैं, पक्षियोंकी दस लाख योनियाँ हैं, पशुओंकी तीस लाख योनियाँ हैं और मनुष्योंकी चार लाख योनियाँ हैं।"]॥ 138॥

जीवात्मा और जीवके स्वरूपका परिमाण :—

केशाग्र-शतेक-भाग पुनः शतांश करि।
तार सम सूक्ष्म जीवेर 'स्वरूप' विचारि॥ 139॥

अनुवाद—केशके अग्रभागको सौ भागोंमें बाँटनेके बाद, उसके एक भागको पुनः सौ भागोंमें बाँटनेपर, उस एक भागके समान सूक्ष्म जीवका स्वरूप है॥ 139॥

अनुभाष्य—मुण्डकमें 3/1/9—"एषोऽणुरात्मा" अर्थात् यह आत्मा अणुके समान सूक्ष्म है॥ 139॥

शास्त्र-प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (10/87/30)में श्रुति-स्तव-व्याख्यामें
उद्धृत-श्लोक—

केशाग्रशतभागस्य
शतांशसदृशात्मकः।
जीवः सूक्ष्मस्वरूपोऽयं
संख्यातीतो हि चित्कणः॥ 140॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—केशके अग्रभागके सौ भाग करनेपर उसके एक भागके पुनः सौवे अंशके सदृश स्वरूप ही जीवका सूक्ष्म स्वरूप है; जीव चित्कण और संख्यातीत (असंख्य) हैं॥ 140॥

अनुभाष्य—

अयं जीवः हि केशाग्रशतभागस्य (अति-सूक्ष्मकेशाग्रायामस्य शतधा विभक्तस्य, पुनः तादृश-परमसूक्ष्मांशस्य) शतांशसदृशात्मकः (पुनः शतखण्डांशतुल्यः) सूक्ष्मस्वरूपः (परमाणुचेतनः चित्कणः सूक्ष्मचिदणुखण्डः) संख्यातीतः (अनन्तसंख्यकः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 140॥

श्वेताश्वतर उपनिषदके मन्त्रानुसार
पञ्चदशी चित्रदीप (81)में :—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेय इति चाह परा श्रुतिः॥ 141॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 141॥

अमृतप्रवाह भाष्य—केशके अग्रभागके सौंवे भागको लेकर उसे सौ भागोंमें विभाग करनेसे जो सूक्ष्म भाग होता है, जीव—वैसा सूक्ष्म है, प्रधान श्रुतिओंने ऐसा कहा है॥ 141॥

अनुभाष्य—

[यः] बालाग्रशतभागस्य (केशाग्रस्य शतधा खण्डितस्य, तस्य पुनः) शतधा कल्पितस्य (विभक्तस्य) च भागः (खण्डः),—सः [एव] जीवः (जीवस्वरूपाकारः) विज्ञेयः (ज्ञातव्यः) इति च परा (श्रेष्ठा) श्रुतिः (श्वेताश्वतरप्रमुखा) आह।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 141॥

श्रीमद्भागवत (11/16/11)में :—

सूक्ष्माणामप्यहं जीवः॥ 142॥

अनुवाद—सूक्ष्म वस्तुओं अर्थात् अणुओंके मध्य मैं जीवात्मा हूँ॥ 142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसी-किसी पाठमें लिखा हुआ है,—श्रीमद्भागवतमें उद्धवके प्रति श्रीभगवद् वाक्य—

"गुणिनामप्यहं सूत्रं महताञ्च महानहम्।
सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः॥"

सूक्ष्मगणोंमें मैं (भगवान्) 'जीव' (भेदाभेद-प्रकाश) हूँ।॥ 142॥

अनुभाष्य—भगवान्की विभूतियोंका श्रवण करनेकी इच्छा करनेपर श्रीउद्धवके प्रति श्रीकृष्णकी उक्ति—

अहं (चिदचिदीश्वरः अद्वयज्ञानात्मकः श्रीभगवान्) सूक्ष्माणाम् (अणूनाम् अपि मध्ये) जीवः (जीवात्मा)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 142॥

श्रीमद्भागवत (10/87/30)में :—

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तद्विमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया॥ 143॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 143॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे ध्रुव (सर्वाश्रय)! यदि सभी अनन्त शरीरधारी जीव ध्रुव अर्थात् [आपसे उत्पन्न नहीं होकर] परम नित्य और सर्वव्यापी होते, तो फिर उनका आपके शासनके अधीन रहनेका नियम नहीं होता। यदि जीवको 'अणु', सामान्यतः 'नित्य' कहकर स्वीकार किया जाय, तभी वे आपके अधीन होते हैं। [अग्निरूप

आपसे चिङ्गारीरूप] होकर जिन जीवोंने जन्मग्रहण किया है, आप उनके अपरित्यज्य नियन्ता हैं। इसलिये जो जीव और आपको 'एक' मानते हैं, उनका मत—'मतवाद'से दूषित है॥ 143॥

अनुभाष्य—जनलोकमें ब्रह्मसत्र यज्ञमें श्रवण करनेके इच्छुक मुनियोंके निकट कुमारोंमें अन्यतम ब्रह्मर्षि सनन्दन श्रुतिओंके द्वारा किये गये भगवद्-स्तवका वर्णन कर रहे हैं—

हे ध्रुव (सर्वाश्रय, नित्य)! अपरिमिताः (वस्तुतः एव अनन्ताः) ध्रुवाः (नित्याः) तनुभृतः (शरीरधारिणः जीवाः) यदि सर्वगताः (विभवः व्यापकाः स्युः), तर्हि शास्यता (तत्शास्यता) इति यः त्वया नियमः (नियमनं) सः न स्यात्, इतरथा च [घटेत, नियम्यनियन्तृ-भावावस्थितत्वात्]; यन्मयं (यत् अग्न्यादिमयं स्फुलिङ्गादिकं कार्यं जीवाख्यं वस्तु) अजनि (जातं, तेषां जीवानां) नियन्तृ (शास्तृ) भवेत्, तत् अविमुच्य (तान् जीवान् अपरित्यज्य यत् उपादानरूपं परमात्मानं जीवतत्त्वेन) समम् अनुजानतां (केवलाद्वैतवादिनां) मतदुष्टतया (मतस्य दुष्टतया अशुद्धत्वेन) अमतम् एव (अज्ञातप्रायम् अविषयत्वात्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 143॥

विरूप-भेदसे जीव दो प्रकारके—1) स्थावर, 2) जङ्गम; जङ्गम तीन प्रकारके—जल, स्थल और आकाशके :—

तारे मध्ये 'स्थावर', 'जङ्गम'—दुइ भेद।
जङ्गमे तिर्यक्-जल-स्थलचर-विभेद॥ 144॥

अनुवाद—माया जगत्में अनन्त जीव 'स्थावर' तथा 'जङ्गम'—इन दो प्रकारके हैं। जङ्गम जीवोंमें पक्षी, जलचर तथा स्थलचर—ये तीन भेद हैं॥ 144॥

अनुभाष्य—*'तार मध्ये'*—ब्रह्माण्डके अन्तर्गत बद्धजीवोंमें॥ 144॥

स्थलचरका श्रेष्ठत्व; उनमेंसे मनुष्य जातिकी सर्वश्रेष्ठता; उनमेंसे कर्मी, ज्ञानी और भक्तोंमें तारतम्य-तुलना :—

तार मध्ये मनुष्य-जाति अति अल्पतर।
तार मध्ये म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध, शबर॥ 145॥

अनुवाद—इन जङ्गम जीवोंमें मनुष्य-जातिकी संख्या अति अल्पतर है। और मनुष्य-जातिमें भी म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध तथा शबरादि लोग हैं॥ 145॥

अनुभाष्य—*'तार मध्ये'*—वेदोंमें निष्ठा रखनेवालोंके विपरीत मनुष्य-जातिमें॥ 145॥

वेदनिष्ठ-मध्ये अर्द्धेक वेद 'मुखे' माने।
वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे॥ 146॥

अनुवाद—वेदनिष्ठ मनुष्योंमें प्रायः आधे तो वेदको केवल 'मुख'से मानते हैं, किन्तु वेदोंमें निषिद्ध पापोंको करते हैं। ऐसे लोग धर्मका पालन नहीं करते हैं॥ 146॥

अनुभाष्य—मुखसे स्वयंको 'वेदनिष्ठ'के रूपमें स्वीकार करके वेदोंके विरुद्ध आचरण करनेवाले—स्वेच्छाचारी 'कुकर्मी' अथवा 'अन्याभिलाषी' हैं॥ 146॥

धर्माचारि-मध्ये बहुत 'कर्मनिष्ठ'।
कोटि-कर्मनिष्ठ-मध्ये एक 'ज्ञानी' श्रेष्ठ॥ 147॥

अनुवाद—वेदोंमें वर्णित धर्मका आचरण करने वालोंमें-से भी बहुत सकाम कर्मोंमें निष्ठा रखनेवाले हैं। ऐसे करोड़ों सकाम कर्मियोंमेंसे श्रेष्ठ कोई एक 'ज्ञानी' होता है॥ 147॥

मुक्तगणोंमें भी श्रीकृष्णभक्तका सुदुर्लभ होना :—

कोटिज्ञानि-मध्ये हय एकजन 'मुक्त'।
कोटिमुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्णभक्त॥ 148॥

अनुवाद—करोड़ों ज्ञानियोंमेंसे कोई एक व्यक्ति ही मुक्त होता है। करोड़ों मुक्तोंमें भी एक कृष्णभक्त 'दुर्लभ' होता है॥ 148॥

अनुभाष्य—*'कर्मनिष्ठ'*—अपने सुखकी कामनाओंसे जो पुण्यादि सत्कर्म करते हैं, उन्हें कर्मनिष्ठ कहते हैं। *'ज्ञानी'*—पुनः ऐसे करोड़ों कर्मनिष्ठोंमेंसे निष्काम-कल्पनासे कोई-कोई ही अपने कर्मफलोंको त्याग करता है। इस प्रकारके व्यक्तिको भी कर्मनिष्ठ ही कहा जाता है। ऐसे

करोड़ों कर्मनिष्ठोंमेंसे जो सत्त्वगुणमें स्थित होकर रजोगुण और तमोगुणको दूर करनेके लिये, प्राकृत पुण्य और पाप, दोनों प्रकारकी अवस्थाओंसे हटकर आत्माकी निर्मलताका अनुसरण करनेके लिये प्रकृतिसे अतीत अभेद-ब्रह्मानुसन्धानमें रत होता है, वही ज्ञानी है। करोड़ों ज्ञानियोंमेंसे कोई-कोई ज्ञानमार्गमें सत्त्वगुणके आश्रित होकर शम-दमादि छः प्रकारके साधनादिरूपा मिश्रा और बिद्धा-भक्तिमूलक सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। फिर द्वैतबुद्धिसे अपने इन उपायोंको भी असम्पूर्ण मानकर उनका त्याग कर देते हैं। इस प्रकार अनित्य और असत्य साधनको ही नित्यसिद्धिके कारणरूपमें जानकर उस साधनके फलसे अन्तमें वे अभिमान करते हैं कि मैंने अपनी बद्धानुभूतिसे मुक्ति अर्थात् ब्रह्मभूत स्वरूप प्राप्त किया है। उसीके उद्देश्यसे वे अद्वैत-विचारसे 'दृष्टा', 'दर्शन' और 'दृश्य' अथवा 'ज्ञाता', 'ज्ञान' और 'ज्ञेय'के वैशिष्ट्यका लोप करते हैं। वैसे अचित्-मिश्रातीत केवलचिन्मयवादी ज्ञानी ही 'मुक्त' कहे जाते हैं। ऐसे करोड़ों मुक्तोंमें भी श्रीकृष्णभक्त विरले हैं॥ 148॥

श्रीकृष्ण भक्तके सुदुर्लभ होने और
सर्वश्रेष्ठ होनेका कारण :—

कृष्णभक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त'॥ 149॥

अनुवाद—श्रीकृष्णभक्त निष्काम होते हैं, इसलिये वे 'शान्त' होते हैं। भोग, मोक्ष और सिद्धिकी कामना करनेवाले सभी 'अशान्त' रहते हैं॥ 149॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जीव दो प्रकारके हैं,—नित्यमुक्त और नित्यबद्ध। नित्यबद्ध जीव स्थावर और जङ्गमके भेदसे दो प्रकारके हैं। जो—अचल (जैसे, वृक्षादि) हैं, वे ही 'स्थावर' जीव हैं; जो—सचल हैं, वे ही 'जङ्गम' हैं। जङ्गम तीन प्रकारके हैं,—तिर्यक् अर्थात् पक्षी, जलचर और स्थलचर। स्थलचरोंमें मानवजाति अत्यन्त अल्प संख्यक है। उन अल्पसंख्यक मनुष्योंमें म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध और शबरादिको छोड़ देनेपर वेदनिष्ठ मनुष्य ही बाकी रहते हैं। वेदनिष्ठ मनुष्य भी दो प्रकारके हैं,—धर्माचारी और अधर्माचारी। धर्माचारियोंमें अधिकांश कर्मनिष्ठ हैं; कोई-कोई ज्ञाननिष्ठ हैं। करोड़ों ज्ञाननिष्ठोंमें वास्तवमें कोई एक व्यक्ति ही 'मुक्त' है; यहाँ, जो जड़ीयबुद्धिसे मुक्त हैं, उन्हें ही 'मुक्त' कहा गया है। उन सब मुक्त व्यक्तियोंमें, जो श्रद्धालु होकर श्रीकृष्णभजनमें प्रवृत्त हैं, वे ही 'श्रीकृष्णभक्त' हैं। श्रीकृष्णभक्तमें कोई कामना नहीं होती। पहले कहे गये 'मुक्त' व्यक्ति तक सभी कामनायुक्त हैं; धर्माचारी और कर्मनिष्ठ—'भुक्तिकामी' हैं और मुक्त तक ज्ञानी-'मुक्तिकामी' हैं, उनमेंसे पुनः कोई-कोई योगफलके 'सिद्धिकामी' हैं। जब तक उनके हृदयमें ये तीन प्रकारकी कामनाएँ रहती हैं, तब तक उन्हें यह सब कामनाएँ शान्ति प्रदान नहीं करतीं; इसी कारण वे सभी 'अशान्त' हैं। इसलिये एकमात्र निष्काम श्रीकृष्णभक्त ही शान्त अर्थात् शान्ति प्राप्त किया हुआ है॥ 144-149॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण भक्त ही एकमात्र कामनाशून्य एवं एकमात्र श्रीकृष्णनिष्ठ होनेके कारण शान्त होता है। स्वर्गादि भुक्तिकामी कर्मी, निर्वाणादि मुक्तिकामी ज्ञानी एवं अणिमादि अठारह प्रकारकी सिद्धिकामी योगी अपनी-अपनी कामनाओंके वशीभूत होकर उन्हींकी प्राप्तिके लिये अशान्त रहते हैं। पुनः, कामनाकी तृप्ति होनेपर भी वे असत्-प्राप्तिके कारण श्रीकृष्णनिष्ठ नहीं होनेसे अशान्त ही रहते हैं॥ 149॥

शास्त्रप्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (6/14/5)में—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥ 150॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 150॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे महामुने, करोड़ों-करोड़ों मुक्तों और सिद्धोंमेंसे नारायण-परायण प्रशान्तात्मा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है॥ 150॥

अनुभाष्य—

मुक्तानां (अज्ञानबन्ध-रहितानां) सिद्धानां (योग-सिद्धानां) कोटिषु अपि मध्ये प्रशान्तात्मा (निष्काममनाः) नारायणपरायणः सुदुर्लभः। [तन्त्रवाक्य—"ज्ञानतः सुलभः मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादि-पुण्यतः। सेयं साधनसाहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा॥"]

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [तन्त्र-वाक्य—"ज्ञान-साधनसे 'मुक्ति' और यज्ञादि-पुण्यसे 'भोग' सुलभ हैं, किन्तु हजारों-हजारों साधनोंके द्वारा भी वह हरिभक्ति अतिशय दुर्लभ है।"]॥ 150॥

लताके साथ भक्तिकी उपमा; भक्तिका दूसरा नाम 'श्रीकृष्णानुराग'; बद्धजीवके लिये उस श्रीकृष्णप्रीति-सेवाकी प्राप्तिके क्रमके वर्णनके मूलमें भक्तिप्रदान करनेवाली श्रीकृष्णकृपारूपा सुकृति है, उसके फलस्वरूप सद्गुरुकी प्राप्ति, उनकी कृपासे श्रवणके फलसे सम्बन्धकी उपलब्धि और श्रद्धाका उदय :—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज॥ 151॥

अनुवाद—ब्रह्माण्डमें भ्रमण करते-करते कोई भाग्यवान् जीव ही गुरु और श्रीकृष्णकी कृपासे भक्तिलताके बीजको प्राप्त करता है॥ 151॥

अनुभाष्य—'ब्रह्माण्ड'का अर्थ चौदह भुवन है (आदिलीला, 5/98 संख्या देखें)।

'भाग्यवान्'—सुकृतिसम्पन्न जीव; अनजानेमें विष्णु-वैष्णवकी सेवा होनेसे जीवकी 'सुकृति' उदित होती है,—(श्रीनारदका जन्म-उपाख्यान—भागवत 1/5/23-30 देखें)। यह भक्ति उन्मुखी सुकृति—जीवात्माकी चिद्-वृत्तिका ही अस्फुट विकास है, यह जड़ीय कर्म नहीं है। सुकृतिके फलस्वरूप श्रद्धा और श्रवणसे सम्बन्धज्ञान प्राप्त होनेपर ही वास्तविक शुद्धभक्ति आरम्भ होती है।

'गुरुप्रसाद'—गुरु कृपा करके शिष्यको श्रीकृष्णभक्ति रूप सर्वोत्तम अनुग्रह दान करते हैं। सुकृतिवान् अनुग्रहयोग्य व्यक्तिके परम कल्याणके उद्देश्यसे श्रीभगवान् अपने प्रियतम किसी एक व्यक्तिमें शक्ति अर्पित करके जगत्में अपनी कृपाशक्तिके वितरणके लिये महान्त-गुरुके रूपमें भेजते हैं। श्रीगुरुदेव शिष्यको श्रीकृष्णसेवारूपी अपनी कृपा प्रदान करते हैं।

'कृष्णप्रसाद'—भक्तिलताके बीजको प्रदान करनेवाले आश्रयजातीय भगवद्-स्वरूप गुरुदेवको शिष्यके निकट भेजना ही श्रीकृष्णकी कृपा है। गुरुकी कृपासे श्रीकृष्ण कृपा प्राप्त होती है एवं श्रीकृष्णकी कृपासे गुरुकृपाकी प्राप्ति होती है।

'भक्तिलता-बीज'—जिस बीजसे भगवान्की सेवारूपी लतिका उत्पन्न होती है। भक्तिलताका कारण गुरुकी कृपा और श्रीकृष्णकी कृपा है। अन्याभिलाष-बीज, कर्म-बीज और ज्ञान-बीजसे वैसे-वैसे वृक्षादि उत्पन्न होते हैं। इन सब बीजोंसे भक्तिलताका बीज अलग है। गुरु-कृष्णकी प्रसन्नतासे ही भक्तिलताका बीज प्राप्त होता है। उनके अप्रसन्न होनेसे अन्याभिलाष, कर्म अथवा ज्ञान बीजकी प्राप्ति हो सकती है, किन्तु शुद्धभक्तिका बीज लुप्त हो जाता है। जिनका वास्तवमें सौभाग्य नहीं है, उनके भाग्यमें भक्तिलता-बीजकी प्राप्ति नहीं होती। श्रद्धावान् जीव ही गुरुपादपद्मका आश्रय करता है। सद्गुरुके द्वारा दिया गया अनुग्रह-मन्त्र और प्रदर्शित पथ ही 'भक्तिमार्ग' है॥ 151॥

उसके साथ ही अभिधेय आरम्भ; अनर्थयुक्त अवस्थामें भी भजन :—

माली हञा करे सेइ बीज आरोपण।
श्रवण-कीर्त्तन-जले करये सेचन॥ 152॥

अनुवाद—उस बीजको प्राप्त करके उस भाग्यवान् जीवको माली बनकर सावधानीसे उस बीजको अपने हृदयमें रोपना होगा और उसे श्रवण और कीर्तनके जलसे सींचना होगा॥ 152॥

अनुभाष्य—गुरुपादपद्मसे श्रवण करके फिर उसका कीर्तन-कार्य ही जलसे सींचना है, उसके द्वारा बीज क्रमशः लतामें परिणत होता है॥ 152॥

अनर्थमुक्त अवस्थामें भी भजन; रागमयी भक्तिका आश्रय—श्रीकृष्णमाधुर्य है, ब्रह्म और श्रीनारायणका ऐश्वर्य नहीं :—

उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' याय।
'विरजा', 'ब्रह्मलोक' भेदि' 'परव्योम' पाय॥ 153॥

अनुवाद—जलके द्वारा सिञ्चन करनेपर बीज अङ्कुरित होता है और क्रमशः लता बढ़ते हुए 'ब्रह्माण्ड'को भेद करके 'विरजा' एवं 'ब्रह्मलोक'को भी भेदकर 'परव्योम'में पहुँच जाती है॥ 153॥

अनुभाष्य—'ब्रह्माण्ड' अर्थात् चौदह भुवनोंके भीतर भक्तिलताका आश्रयस्वरूप कोई भी वृक्ष नहीं है। ब्रह्माण्डकी किसी भी वस्तुके प्रति भक्ति प्रयोग नहीं हो सकती। ब्रह्माण्डको पार करके 'विरजा-नदी' है; वहाँ तीन गुणोंकी साम्यावस्था लक्षित होती है,—वह प्राकृत-मलको धो देनेवाली नदी है। उसे पार करके ही ज्ञानियोंका आदर्श 'ब्रह्मलोक' है। विरजामें जैसे भक्ति-लताके आश्रय करने योग्य कोई वृक्ष नहीं है, ब्रह्मलोकमें भी वैसे भक्तिलताके सेव्य वृक्षका अभाव है। आश्रय-वृक्षको प्राप्त नहीं करके श्रवण-कीर्तनरूपी जलसे सिञ्चित बढ़ती हुई लता ब्रह्मलोकको पार करके 'परव्योम' धामको प्राप्त करती है॥ 153॥

तबे याय तदुपरि 'गोलोक-वृन्दावन'।
'कृष्णचरण'-कल्पवृक्षे करे आरोहण॥ 154॥

अनुवाद—तब लता और बढ़ती हुई उस परव्योमसे भी ऊपर गोलोक वृन्दावनमें पहुँच जाती है। वहाँपर श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी कल्पवृक्षका आश्रय ग्रहण करती है॥ 154॥

अनुभाष्य—ब्रह्मलोक और विरजाके एक ओर मायिक ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, वही 'देवीधाम' है। देवीधाम अथवा इतर-व्योम—प्रकृतिके अधीनरूपमें अवस्थित है। प्रकृतिके दूसरी ओर 'वैकुण्ठ' अथवा 'परव्योम' अवस्थित है। वहाँ माया कुछ भी प्रभाव दिखानेमें समर्थ नहीं होती। ब्रह्ममय वैकुण्ठके ऊपरी भागमें गोलोक-वृन्दावन अवस्थित है। वहाँ भक्तिलता श्रीकृष्णचरणरूपी कल्पवृक्षका आश्रय करती है। परव्योममें परव्योमनाथ श्रीनारायणकी जो पूजा विहित होती है, उसमें 'शान्त', 'दास्य' और 'आधा-सख्य'-रस लक्षित होता है; परन्तु गोलोक-वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी सेवामें 'शान्त', 'दास्य' और 'गौरव-अर्द्धसख्य'के साथ 'विश्रम्भ-सख्यका आधा', 'वात्सल्य' और 'मधुर',—ये पाँच भाव पूर्ण मात्रामें विकसित हैं; यहीं 'भक्तिलतिका' सम्पूर्णरूपमें आश्रय प्राप्त करती है॥ 154॥

श्रीकृष्णप्रेमरूपी प्रयोजनकी प्राप्ति; साधन-अवस्थामें सदैव श्रवण-कीर्तन :—

ताँहा विस्तारित हञा फले प्रेम-फल।
इँहा माली सेचे नित्य श्रवण-कीर्त्तनादि-जल॥ 155॥

अनुवाद—वहाँ लता विकसित होकर प्रेमरूपी-फल उत्पन्न करती है। और साधक इस जगत्में रहते हुए ही माली होकर उसे नित्य श्रवण-कीर्तनादि जलसे सींचता है॥ 155॥

अनुभाष्य—*'ताँहा'*—गोलोक-वृन्दावनमें; *'प्रेम-फल'*—अप्राकृत परम-लोभनीय श्रीकृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छा-मूलक अद्भुत वस्तु है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रकी अपनी वस्तु है, वह बद्धजीवकी भोगमय प्राकृत जड़बुद्धिके गोचर नहीं होती।

'इँहा'—प्रपञ्चमें; यहाँ रहकर उस भक्तिलताके बोये गये बीजको नित्य अप्राकृत श्रीकृष्णनाम, रूप, गुण, लीलाके श्रवण-कीर्तनादिरूप जलसे सींचना होता है॥ 155॥

अपक्व (कच्ची) अवस्थामें वैष्णव-अपराध ही साधनपथमें सबसे प्रधान 'विघ्न' :—

यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता।
उपाड़े वा छिण्डे, तार शुखि याय पाता॥ 156॥

अनुवाद—यदि साधक वैष्णव-अपराध करे, तो वह अपराधरूपी मत्त हाथी उस भक्तिरूपी लताको जड़से

उखाड़कर तहस-नहस कर देता है, जिससे लताके पत्ते सूख जाते हैं॥ 156॥

अनुभाष्य— *'वैष्णव-अपराध'*—मतवाले हाथीके समान है। *'अपराध'*—दस प्रकारके नामापराध (आदिलीला 8/24 संख्या देखें)। *'हाती माता'*—प्रबल भक्तिविरोधी भाव अथवा गुरुकी अवज्ञारूप वैष्णव-अपराध, वही भक्तिलताका विनाश करनेवाला है॥ 156॥

नामापराधसे सावधान रहना ही मङ्गलका कारण :—

ताते माली यत्न करि' करे आवरण।
अपराध-हस्तीर यैछे ना हय उद्गम॥ 157॥

अनुवाद—इसलिये मालीको यत्नपूर्वक उस लताके चारों ओर बाड़ लगा देनी चाहिये, जिससे अपराधरूपी हाथी उसमें प्रवेश ही न कर सके॥ 157॥

अनुभाष्य—भक्तिलताके चारों ओर बाड़ लगाना आवश्यक है। श्रीकृष्ण-अभक्तके सङ्गत्याग चेष्टारूपी आवरण अथवा बाड़के नहीं रहनेसे अभक्त-सङ्गके फलस्वरूप उत्पन्न अपराधरूप मतवाले हाथीके द्वारा भक्तिलताके उखाड़ने और नष्ट होने अथवा रौंदे जानेकी सम्भावना है। ऐसा न हो, उस विषयमें साधकके लिये सावधान रहना अति आवश्यक है। श्रीरूप प्रभुने 'उपदेशामृत'में कहा है—

"अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति॥"

[अर्थात् "अधिक आहार या सञ्चय, भक्ति-प्रतिकूल चेष्टा, वृथा-आलाप, नियमाग्रह, असत्सङ्ग एवं लौल्य अर्थात् बुरे मतोंको ग्रहण करनेके लिये चित्तकी चञ्चलता—इन छः प्रकारके दोषोंसे भक्ति विनष्ट हो जाती है।"]॥ 157॥

अमृतानुकणिका—श्रीमद्भागवत (7/1/1) की टीकामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं,—"महत् पुरुषके प्रति अपराधरूप हाथीके हाथसे महत्-कृपासे प्राप्त भक्तिलताको श्रीशिक्षाष्टकके तृतीय श्लोकमें वर्णित चार गुणों, यथा—'स्वयंको तृणसे भी अधिक दीन समझना, वृक्षसे अधिक सहनशील होना, अमानी होकर सबको यथायोग्य सम्मान देना' रूपी शिलाके आवरणके द्वारा संरक्षण करते हुए श्रवणादि जल-सिञ्चनसे पालन करना चाहिये॥"157॥

भक्तिकी भाँति आकृति अथवा देखनेमें समानता होनेपर भी जो भक्ति नहीं, ऐसी अभक्तिका समूह :—

किन्तु यदि लतार सङ्गे उठे 'उपशाखा'।
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, यत असंख्य तार लेखा॥ 158॥

'निषिद्धाचार', 'कुटीनाटी', 'जीवहिंसन'।
'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठादि' यत उपशाखागण॥ 159॥

अभक्तिको आश्रय देनेपर उसकी वृद्धिके कारण भक्तिपर शिथिलताके आवरणकी सम्भावना :—

सेकजल पाञा उपशाखा बाड़ि' याय।
स्तब्ध हञा मूलशाखा बाड़िते ना पाय॥ 160॥

अनुवाद—किन्तु भक्तिलताके साथ भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि आदि अनेक 'उपशाखाएँ' भी उपजती हैं और ये उपशाखाएँ असंख्य हैं। 'निषिद्धाचार', 'कुटीनाटी', 'जीवहिंसा', 'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठा' आदि अनेक उपशाखाएँ हैं। यदि अपराधोंका वर्जन न किया जाय तो श्रवण-कीर्तनरूपी जलको पाकर उपशाखाएँ बढ़ जाती हैं और मूलशाखा अर्थात् भक्तिलता स्तब्ध होकर बढ़ नहीं पाती॥ 158-160॥

अनुभाष्य— *'उपशाखा'*—वास्तविक लताकी अपनी शाखाके अतिरिक्त उसके जैसी समान आकृतिवाली अन्य लताकी शाखा इस वास्तविक लतासे लिपटकर उसीके ही 'अङ्ग'के जैसी प्रतीत होती है, परन्तु वह वास्तविक लता नहीं होती। *'भुक्ति'*—कर्मफल भोगवादीकी प्राप्य वस्तु है; *'मुक्ति'*—ज्ञानवादीकी प्राप्य वस्तु है; *'वाञ्छा'*—सिद्धिवादीको प्राप्त होनेवाले योगफलकी विभूतियाँ आदि हैं।

'निषिद्धाचार'—जो सिद्ध पुरुषोंका आचरण नहीं है

अथवा सिद्धि प्राप्तिमें बाधा है अर्थात् जिस आचरणके द्वारा भक्ति लुप्त हो जाती है। जैसे भोक्ताका अभिमान करके भोगमयी बुद्धिसे जीवका स्त्री-सङ्ग अथवा श्रीकृष्ण-अभक्तका सङ्ग अथवा विषयी-व्यक्तिका दर्शन और स्त्रीदर्शन।

'कुटीनाटी'—कुटिलतापूर्ण नाटक, कपटता; कु-टी एवं ना-टी—आत्म-प्रसादका विरोध अथवा असन्तोष है।

'जीवहिंसा'—श्रीकृष्णभक्तिमूलक नित्यकल्याण-वाणीके कीर्तनमें अथवा प्रचारमें सङ्कोच; अथवा कंजूसी अर्थात् मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषीको आश्रय देना; प्राणियोंको मारना अथवा प्राणीमात्रको ही उद्वेग अथवा क्लेश देना—ये सब जीवहिंसा है।

'लाभ'—जड़ेन्द्रियोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे जगत्में धन आदिकी प्राप्ति अथवा उसे संग्रह करनेकी अभिलाषा।

'पूजा'—सांसारिक लोगोंके मनोधर्मको बढ़ावा देकर सम्मान प्राप्त करना।

'प्रतिष्ठा'—संसारमें महत्वपूर्ण व्यक्ति बननेकी लालसा अथवा लोगोंसे अपने नश्वर यशको पानेकी प्रबल इच्छा।

श्रवण-कीर्तनादि जलकी सिंचाईके प्रभावसे उपशाखा पुष्ट होकर वर्धित होती है, उससे मूल भक्तिलता बढ़ नहीं पानेके कारण स्तब्ध हो जाती है। निरपराध श्रवण और कीर्तन अर्थात् दुःसङ्गका परित्याग नहीं करके अपराधके साथ अनुष्ठान करते-करते जीव विषयभोग परायण, अथवा मोक्षकामी, अथवा सिद्धिकामी हो जाता है। अथवा वह लोभी या कपटी या अवैध-स्त्रीलम्पट हो जायेगा। अथवा वह छल-भक्तिवाला अथवा प्राकृत-सहजियावादी होगा। अथवा वह उच्चकुलमें जन्मके अभिमानसे अपनेको बड़ा भक्त माननेवाला या राजा परीक्षितके द्वारा प्रदान किये गये कलिके पाँच स्थानोंका [द्यूत (जुआ), मद्यपान, (अवैध) स्त्री-सङ्ग, हिंसा और स्वर्ण (धन)] अधिवासी या वैष्णवोंमें जातिबुद्धि रखनेवाला हो जायेगा। अथवा वह नाम-मन्त्र-विग्रह-भागवतका व्यापारी या अवैध-वृत्तिके द्वारा धन आदिको संग्रह करनेमें तत्पर होगा। या स्वयंको 'निर्जन-भजनानन्दी' कहलाकर प्रतिष्ठाकी आकाङ्क्षा रखनेवाला, चिद् और जड़के समन्वयवादके पोषणके द्वारा यशको प्राप्त करनेका इच्छुक होगा। अथवा अयोग्य गुरुका दास बनकर विष्णु-वैष्णव-विरोधी अदैव-वर्णाश्रमके अधीन और उसका पोषक बनेगा और उपरोक्त एक अथवा अनेक वृत्तियोंके द्वारा उसके बहुत प्रकारके परिचय होंगे। अर्थात् वह अपनी इन्द्रियोंके सुखभोगमें प्रमत्त होकर शुद्धभक्तिके अतिरिक्त अन्य नश्वर वस्तुओंको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे अबोध लोगोंको ठगकर जगत्में 'धार्मिक' अथवा 'साधु' अथवा 'महान'के रूपमें परिचय प्राप्त करनेके आकाङ्क्षी होकर वास्तविक शुद्ध हरिसेवक नहीं बन पायेगा॥ 158-160॥

प्रथमावस्थामें ही साधकके लिये दुःसङ्गके त्यागकी व्यवस्था करना आवश्यक :—

प्रथमेइ उपशाखार करये छेदन।
तबे मूलशाखा बाड़ि' याय वृन्दावन॥ 161॥

अनुवाद—इसलिये प्रथम अवस्थामें ही उपशाखाओंको काट देना चाहिये, तभी मूलशाखा (भक्तिलता) बढ़ती हुई वृन्दावनमें जाती है॥ 161॥

अनुभाष्य—यदि पहले बतायी गयी 'उपशाखाओं'को अङ्कुरित होते देखकर उन्हें उसी समय जड़सहित उखाड़ फैंक दिया जाय, तभी मूल भक्तिलताकी शाखा वृन्दावनमें अप्राकृत प्रेमफलको जन्म देती है; अन्यथा उपशाखाकी प्रबलताके कारण लम्बे समयके लिये हरिभजनका साथ छूट जाता है अर्थात् ब्रह्माण्डमें (स्वर्गादि उच्चलोकोंमें, मर्त्यलोकमें अथवा नरकमें) क्लेशकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है॥ 161॥

तभी प्रयोजनसिद्धि अथवा श्रीकृष्णप्रेमको प्राप्त करनेकी सम्भावना :—

'प्रेमफल' पाकि' पड़े, माली आस्वादय।
लता अवलम्बि' माली 'कल्पवृक्ष' पाय॥ 162॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 162॥

अनुभाष्य—लताका आश्रय करके भक्त-माली श्रीकृष्णचरणकमलरूप कल्पवृक्षको प्राप्त करता है। गोलोक-वृन्दावनमें प्रेमफलके पककर गिरनेपर, प्रपञ्चमें अवस्थित भक्त उसका आस्वादन कर सकता है॥ 162॥

ताँहा सेइ कल्पवृक्षेर करये सेवन।
सुखे प्रेमफल-रस करे आस्वादन॥ 163॥

अनुवाद—वहाँ भक्त कल्पवृक्षकी अर्थात् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा करता है और आनन्दपूर्वक प्रेमफल-रसका आस्वादन करता है॥ 163॥

अनुभाष्य—*'ताँहा'*—अप्राकृत गोलोक-वृन्दावनमें; *'सेइ कल्पवृक्षेर'*—श्रीकृष्णचरण-कल्पवृक्षका; *'आस्वादन'*—भक्त अप्राकृत रूपसे सेवा करके अप्राकृत सेवा-सुख प्राप्त करता है॥ 163॥

श्रीकृष्णप्रेम ही चार-पुरुषार्थोंका धिक्कारी परमार्थ :—

एइत परम-फल 'परम-पुरुषार्थ'।
याँर आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ॥ 164॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा ही परम फल 'परम-पुरुषार्थ' है जिसके आगे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, ये चारों पुरुषार्थ तिनकेके समान हैं॥ 164॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समस्त जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार अनेक योनियोंमें ब्रह्माण्डमें भ्रमण कर रहे हैं। उनमेंसे जिनका भक्ति उत्पन्न होनेके उपयोगी सुकृतिरूपी भाग्य उदय होता है, वे गुरु-कृष्णकी कृपासे भक्तिलताका बीज जो 'श्रद्धा' है, उसे प्राप्त करते हैं। उस बीजको प्राप्त करने मात्रसे वह माली बनकर अपने हृदयक्षेत्रमें उसे रोपण करता है। माली बीज रोपित होकर अङ्कुरित होते-होते भगवद्-कथा और भक्तकथाके श्रवण-कीर्तनरूप जलसे उस क्षेत्रको सींचता है। भक्तिलता उत्पन्न होकर बढ़ते-बढ़ते इस मायिक ब्रह्माण्डको पार करके विरजा और ज्यातिर्मय ब्रह्मलोकको पार करके परव्योममें स्थान प्राप्त करती है। उस परव्योममें लता वृद्धिको प्राप्त करके उससे ऊपर गोलोक-वृन्दावन तक जाकर श्रीकृष्णचरणरूप कल्प-वृक्षपर आरोहण करती है। श्रीकृष्णचरणोंपर आरूढ़ भक्ति-लतापर ही 'प्रेमफल' फलित होता है। यहाँ तक माली श्रवण-कीर्तन-जलसे उस लताको सींचता रहता है। इस प्रक्रियाके समय जल सींचनेके अतिरिक्त अन्य एक प्रक्रिया है,—कुछ दिन जल सिञ्चन करते-करते लता जब वर्धित होती रहती है, तब अन्य जन्तु आकर उस लताको तहस-नहस कर डालता है, जिससे यह लता सूख जाती है। इस प्रक्रियामें वैष्णव-अपराध ही वह दुष्ट जन्तु है। वही वैष्णव-अपराध ही मत्त हाथीके समान यह सब क्षति पहुँचाता है। उस समय माली बाड़ बनाकर अथवा आवरण लगाकर विशेष यत्न करता है, जिससे अपराधरूपी हाथी प्रकट ही नहीं हो। वैष्णव-अपराध अथवा नाम-अपराध—दस प्रकारके हैं (आदिलीला 8/24 संख्या देखें)। इस समय और एक उत्पात होता है,—जिस समय भक्तिलता बढ़ती है, उस समय यदि उपशाखाएँ अधिक वर्धित होती हैं, तो उससे दोष उत्पन्न होता है। उपशाखाएँ—जैसे भोगकी इच्छा, मुक्तिकी इच्छा, निषिद्धाचार, कुटीनाटी, जीव-हिंसाकी प्रवृत्ति, लाभकी इच्छा, अपने सांसारिक सम्मान अथवा प्रतिष्ठाकी आशा। विशेष सावधानी नहीं करनेसे श्रवण-कीर्तनादि सिंचाईके जलको प्राप्त करके मूल-लताके प्रतिकूलमें उपशाखाएँ ही अत्यन्त बढ़ने लगती हैं, जिससे मूलशाखा स्तब्ध होकर बढ़ नहीं पाती। इसलिये मालीको इन उपशाखारूप अनर्थोंको श्रवण-कीर्तनरूप जलकी सिंचाईके समय पहलेसे ही उखाड़ देना चाहिये; तभी, मूलशाखा वर्द्धित होकर वृन्दावनमें जाती है। यही प्रेम ही जीवका परम-पुरुषार्थ है; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ इसके सामने तिनकेके समान हैं॥ 151-164॥

अनुभाष्य—*'तृणतुल्य'*—अति तुच्छ, तुलनामें मूल्यहीन; प्रेमके समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि कर्मी, ज्ञानी,

योगी आदिके द्वारा आकाङ्क्षित चार प्रकारके पुरुषार्थ—सर्वथा ही ग्रहण करनेके योग्य नहीं हैं॥ 164॥

ब्रह्मानन्दको धिक्कार करनेवाला श्रीकृष्णप्रेम-सेवानन्द :—
ललितमाधव (5/2)में—

ऋद्धा सिद्धिव्रज-विजयिता सत्यधर्मा समाधि-
ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत्।
यावत् प्रेम्णां मधुरिपु-वशीकार-सिद्धौषधीनां
गन्धोऽप्यन्तःकरणसरणी-पान्थतां न प्रयाति॥ 165॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 165॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जब तक श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाले सिद्ध औषधिरूप दास्यादि प्रेमका लेशमात्र अन्तःकरण पथका पथिक नहीं बनता, तब तक ही समृद्धिशालिनी सिद्धिसमूहके विजेता, सत्यादि धर्मसमूह, समाधि और उत्कृष्ट ब्रह्मानन्द अपनी-अपनी चकाचौंधसे जीवको चमत्कृत करते हैं॥ 165॥

अनुभाष्य—

यावत् मधुरिपुवशीकारसिद्धौषधीनां (मधुरिपोः कृष्णस्य वशीकारे बाध्यकरणविषये सिद्धौषधिरूपाणां) प्रेम्णां (शान्तादीनां) गन्धलेशोऽपि (लवमात्रमपि) अन्तःकरणसरणीपान्थताम् (अन्तःकरण-मार्गपथिकतां) न प्रयाति (गच्छति), ऋद्धा (सम्पन्ना) सिद्धिव्रजविजयिता (सिद्धीनां विभूतिनां व्रजः समूहः तेषां विजयिता विजयित्वं, विजेतृभावः इत्यर्थः), सत्यधर्मा (सत्यशौचदान-तपोधर्मा), समाधिः (चित्तैकाग्र्यं), ब्रह्मानन्दः (सर्वोत्कृष्टं ब्रह्मसुखं) च गुरुः (श्लाघ्यः महान्) अपि तावत् (तत्कालपर्यन्तम्) एव चमत्कारयति (चमत्कारं विदधाति—कृष्णसेवा-सुखे प्राप्ते सति विषयसुखं कैवल्यं ब्रह्मसुखञ्च तुच्छी भवतीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 165॥

शुद्धभक्तिके लक्षण—(1) साधनभक्ति :—

'शुद्धभक्ति' हैते हय 'प्रेमा' उत्पन्न।
अतएव शुद्धभक्तिर कहिये 'लक्षण'॥ 166॥

अनुवाद—'शुद्धभक्ति'के अनुशीलनसे प्रेम उत्पन्न होता है, इसलिये मैं शुद्धभक्तिके 'लक्षण' बतला रहा हूँ॥ 166॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्तिके आभाससे प्रेमकी उत्पत्ति नहीं होती; शुद्धभक्तिसे ही प्रेमकी उत्पत्ति होती है॥ 166॥

अनुभाष्य—*'शुद्धभक्ति'*—त्रिगुणातीत कर्मज्ञानके मिश्रणसे अतिरिक्त अहैतुकी निर्गुणा उत्तमा भक्ति॥ 166॥

सम्पूर्ण भागवतकी सार बात :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/1/11)—

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥ 167॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 167॥

अनुभाष्य—अमृतप्रवाह भाष्यमें यह श्लोक उद्धृत नहीं हुआ। इसका अनुवाद—

श्रीकृष्णसेवाके विरोधी अवैध स्त्री-सङ्गादि दुनीर्तिमूलक समस्त अभिलाषाओंसे रहित और मुक्ति एवं भुक्तिकी कामनाके द्वारा व्यवधान रहित, श्रीकृष्णकी इन्द्रियोंकी प्रीतिके अनुकूल-चेष्टामय जो श्रीकृष्णके लिये अर्थात् श्रीकृष्णसम्बन्धी अथवा श्रीकृष्ण-विषयक अनुक्षण भजन है, वही 'उत्तमा भक्ति' है।

[प्रागस्य तटस्थ-लक्षणमाह—] अन्याभिलाषिताशून्यं (अन्याभिलाषिता कृष्णभजन-सम्पादन-विरोधि-योषित्सङ्गादिरूपा दुर्नीतिमूला वाञ्छा, तया शून्यं विहीनं), ज्ञानकर्माद्यनावृतं (ज्ञानमत्र—निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धानं, न तु भजनीयत्वानुसन्धानमपि, तस्यावश्यापेक्षणीयत्वात्, कर्म च—स्मृत्याद्युक्तं नित्यनैमित्तिकादि, न तु भजनीय-परिचर्यादि, तस्य तदनुशीलनरूपत्वात्; आदि शब्देन वैराग्य-योग-सांख्याभ्यासादयः, तैः अनावृतम् अव्यवहितम् अप्रतिहतं); [ततः स्वरूपलक्षणमाह—] आनुकूल्येन (आनुकूल्यमत्र भजनोद्देशया श्रीकृष्णाय रोचमाना प्रवृत्तिः, प्रातिकूल्यं तु तद्विपरीतं ज्ञेयं तस्य भजनविरोधात्, तेनेति—विशेषणे तृतीया, न तु उपलक्षणेऽतः आनुकूल्यस्यापि भक्तित्वविधानं ज्ञेयं) कृष्णानुशीलनं (कृष्णशब्दश्चात्र स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य, तद्रूपाणां चान्येषामपि श्रीविष्णुतत्त्वानां ग्राहकश्चेति बोध्यः तस्य, कृष्णस्य सम्बन्धि, कृष्णार्थं वा अनुशीलनं कायवाङ्मानसीय-तच्चेष्टा-रूपं प्रीतिविषयात्मकं शैथिल्य-परित्यागपूर्वकं मुहुरेव तत्तत्-कर्म-प्रवर्त्तनं) एव उत्तमा भक्तिः [अनेन वैध-रागानुगमार्गयोः साधक-सिद्धदशयोरुभयत्राप्यस्याः सुष्ठु वैशिष्ट्यं स्फुटं कथितम्]।

श्लोक-भावानुवाद—[पहले तटस्थ लक्षण कह रहे हैं—] अन्याभिलाषाओंसे शून्य (कृष्णभजन-सम्पादनकी विरोधी स्त्रीसङ्गादिरूपा दुर्नीतिमूलक वाञ्छासे विहीन), ज्ञान-कर्मादिके द्वारा व्यवधानरहित (यहाँ 'ज्ञान'का तात्पर्य निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धानसे है, भजनीय श्रीकृष्णसे नहीं, क्योंकि श्रीकृष्ण-विषयक ज्ञान अवश्य ही अपेक्षणीय है; 'कर्मों'का तात्पर्य स्मृति-शास्त्रोंमें वर्णित नित्य-नैमित्तिकादि कर्मोंसे है, भजनीयकी सेवादिसे नहीं, क्योंकि उसका अनुशीलन कर्त्तव्य है; 'आदि'-शब्दसे वैराग्य-योग-सांख्यके अभ्यासादिको समझना चाहिये); [बादमें उसके स्वरूपलक्षणको कह रहे हैं—] अनुकूल भावसे (अर्थात् भजनके उद्देश्यसे श्रीकृष्णके लिये रोचमाना प्रवृत्तिः, प्रतिकूल भावसे रोचमाना प्रवृत्तिको भजनका विरोधी जानना चाहिये; आनुकूल्येन तृतीया विभक्तिके द्वारा विशेषणरूपमें प्रयोग किया गया है, न कि उपलक्षण रूपसे; अनुकूल भाव ही भक्तिका विधान करता है, ऐसा समझना चाहिये) कृष्णानुशीलन (कृष्ण-शब्दसे यहाँ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और उनके अन्य रूपों अर्थात् श्रीविष्णुतत्त्वको समझना चाहिये; कृष्णसे सम्बन्धित अथवा कृष्णके लिये अनुशीलन अर्थात् शैथिल्य त्यागकर कायिक-वाचिक-मानसिक चेष्टारूप प्रीतिविषयात्मक पुनः पुनः उन-उन कर्मोंमें प्रवृत्त होना) ही उत्तमा भक्ति है [इसके द्वारा वैधी और रागानुगा मार्गोंकी साधक एवं सिद्ध दशा, दोनोंका ही सुन्दररूपसे वैशिष्ट्य कहा गया है]॥ 167॥

पहले दो पद—'तटस्थ' और बादके दो पद—शुद्धभक्तिके 'स्वरूप' लक्षण :—

अन्य-वाञ्छा, अन्य-पूजा छाड़ि' 'ज्ञान', 'कर्म'।
आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिये कृष्णानुशीलन॥ 168॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 168॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शुद्धभक्तिका लक्षण यह है—शुद्धभक्तिमें श्रीकृष्णकी सेवाके लिये अपनी (पारमार्थिक सिद्धिके पथमें) उन्नतिकी इच्छाके अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं रह सकती। श्रीकृष्णके बिना अन्य किसी सेव्य ब्रह्म-परमात्मादि-स्वरूपकी पूजा रह ही नहीं सकती एवं ज्ञान और कर्म अपने-अपने स्वरूपोंमें नहीं रह सकते। इन सबसे विमुक्त होकर जीवन-यात्रामें जो भक्तिके अनुकूल हैं, केवलमात्र वही ग्रहण करते हुए समस्त इन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णानुशीलन करनेका नाम ही 'शुद्धभक्ति' है॥ 168॥

अनुभाष्य—*'अन्य वाञ्छा'*—श्रीकृष्णकी सेवाके अतिरिक्त अन्य वासना; *'अन्यपूजा'*—श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसीकी पूजा; *'कर्म'*—स्वरूप-विस्मृति होनेसे फल-भोगकी लालसाके उद्देश्यसे जिन सत्कर्मोंके अनुष्ठानकी व्यवस्था है; *'ज्ञान'*—स्वरूप-विस्मृति होनेसे भोगरहित होने (मुक्तिके) उद्देश्यसे आत्माके उत्कर्षके लिये नित्य अभेद्या (जिन्हें कभी भी पृथक् नहीं किया जा सके, ऐसी) सन्धिनी और ह्लादिनी नामक दोनों शक्तियोंसे रहित केवल सम्वित्की चेष्टा; *'आनुकूल्ये कृष्णानुशीलन'*—श्रीकृष्णकी प्रीतिके उद्देश्यसे श्रीकृष्णसेवा, श्रीकृष्णके अतिरिक्त मायाके अनुशीलनका त्याग करके अनुकूल भावसे श्रीकृष्णकी सेवा; *'सर्वेन्द्रिये'*—समस्त इन्द्रियोंके द्वारा। जड़ेन्द्रियोंके द्वारा मायाका ही अनुशीलन होता है; 'जड़ेन्द्रिय' अर्थात् वाणी, हाथ, पैर, मल और मूत्र त्यागकी इन्द्रियाँ एवं नेत्र, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा तथा मन। जड़ेन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णके बदले मायाकी सेवा करनेपर वह सेवा अपने भोगके लिये ही हो जाती है, इसलिये साधन-भक्तिके अन्तर्गत चौंसठ प्रकारके भक्तिके अङ्गोंकी व्यवस्था की गयी है। इसी साधनभक्तिके बलसे बद्धजीव जड़ीय भोगोंके चङ्गुलसे निकलकर अनर्थोंसे निवृत्त होकर अप्राकृत सेवाका अधिकारी बनता है॥ 168॥

शुद्धभक्तिरूप 'अभिधेय'से ही श्रीकृष्णप्रेमरूप 'प्रयोजन',—यही सात्वत पञ्चरात्र और भागवतका मत :—

एइ 'शुद्धभक्ति'—इहा हैते 'प्रेमा' हय।
पञ्चरात्रे, भागवते एइ लक्षण कय॥ 169॥

अनुवाद—यही 'शुद्धभक्ति' है, इससे ही 'प्रेम' उत्पन्न होता है। पञ्चरात्र और भागवतमें शुद्धभक्तिके यही लक्षण कहे गये हैं॥ 168-169॥

अनुभाष्य—*'शुद्धभक्तिके लक्षण'*—पाञ्चरात्रिक और भागवत-सम्प्रदाय, दोनोंका मत एक ही अर्थका प्रतिपादक है॥ 169॥

समस्त पञ्चरात्रका मत :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/1/12)-उद्धृत श्रीनारदपञ्चरात्र वाक्य—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते॥ 170॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 170॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समस्त इन्द्रियोंके द्वारा हृषीकेशकी सेवाका नाम 'भक्ति' है। इस स्वरूप-लक्षणमयी सेवाके दो 'तटस्थ' लक्षण हैं—जैसे, यह शुद्धभक्ति समस्त उपाधियोंसे मुक्त होगी और केवल श्रीकृष्णपरायण होकर स्वयं निर्मला रहेगी॥ 170॥

अनुभाष्य—

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं (सकलभेदावरणपरिशून्यं कृष्णेतरान्या-भिलाषिता-वर्जितं) तत्परत्वेन (कृष्णसेवैक-तात्पर्येण आनुकूल्येन) निर्मलं (कर्मावरण-ज्ञान-विमोहनाद्युपाधिरूप-मल-निर्मुक्तं) हृषीकेण (सेवोन्मुखेन्द्रियद्वारा) हृषीकेशसेवनं (सर्वेन्द्रियाधिपस्य विष्णोरनुशीलनम् एव) भक्तिः उच्यते (कथ्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य अभिलाषाओंको त्यागकर केवल श्रीकृष्णकी ही सेवाके तात्पर्यसे अनुकूल भावसे कर्मावरण एवं ज्ञान-विमोहनादि उपाधिरूप मलसे निर्मुक्त सेवोन्मुखेन्द्रियोंके द्वारा सर्वेन्द्रियोंके अधिपति श्रीविष्णुके अनुशीलनको ही भक्ति कहते हैं॥ 170॥

अहैतुकी अथवा ऐकान्तिकी शुद्धभक्तिसे
ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (3/29/11-14)में—

मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥ 171॥

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥ 172॥

सालोक्यसार्ष्टिसारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥ 173॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥ 174॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 171-174॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह समुद्रकी ओर निरन्तर बहता है, उस प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे सर्वान्तर्यामी मुझमें मनकी जो (तैलधारावत्) अविच्छिन्ना अवस्थाका उदय होता है, वही निर्गुण भक्तियोगका लक्षण है। पुरुषोत्तमस्वरूप मुझमें वह भक्ति अहैतुकी अर्थात् अकारण या स्वतःसिद्धा और अव्यवहिता अर्थात् बिना किसी व्यवधानके अथवा अन्य किसी फलकी आकाङ्क्षासे रहित है। (मेरे द्वारा) सालोक्य (वैकुण्ठवास), सार्ष्टि (ऐश्वर्यसम्पत्ति), सारूप्य (चतुर्भुजाकार), सामीप्य (निकटवास) और एकत्व (सायुज्य या अभेदगति) प्रदान करनेपर भी भक्त उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं, क्योंकि मेरी अप्राकृत सेवाके अतिरिक्त उनकी कोई भी अभिलाषा नहीं है। ऐसी भक्तिको ही 'आत्यन्तिक-भक्तियोग' कहा जाता है। उस भक्तियोगके द्वारा जीव गुणमयी मायाको पार करके मेरा विमल प्रेम प्राप्त करता है॥ 171-174॥

अनुभाष्य—शुद्धभक्तियोग पथकी कथा श्रवण करनेकी इच्छुक माता देवहूतिके प्रति भगवान् श्रीकपिलदेवकी उक्ति,—

(श्रीमद्भागवतके श्लोक (3/29/11-13)के लिये आदिलीला 4/205-207 संख्या देखें।)

स (उक्त लक्षणः) भक्तियोगाख्यः एव आत्यन्तिकः (अत्यन्ते सर्वान्ते भवः चरमकाष्ठाम् आपन्नः) उदाहृतः (कथितः) येन (आत्यन्तिक-भक्तियोगेन) [पुरुषः] त्रिगुणं (मायामयं संसारम्) अतिव्रज्य (अतिक्रम्य) मद्भावाय (मम साक्षात्काराय ब्रह्मभूतत्वाय) उपपद्यते (समर्थो भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 174॥

छल अथवा अपराध रहनेपर करोड़ों जन्मोंका
साधन भी सम्पूर्ण रूपसे विफल :—

भुक्ति-मुक्ति आदि-वाञ्छा यदि मने हय।
साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय॥ 175॥

अनुवाद—जब तक भोग-मोक्षादिकी इच्छाएँ मनमें रहती हैं, तब तक साधन करनेपर भी प्रेम उत्पन्न नहीं होता॥ 175॥

अनुभाष्य—हृदयमें कर्मफल भोगकी वासना अथवा संसार-बन्धनसे मुक्तिकी वासना रहनेपर ऐसे फलकी आकाङ्क्षासे युक्त व्यक्ति चौंसठ प्रकारकी साधन-भक्तिका जितना भी अनुष्ठान क्यों न करे, ऐसा तथाकथित बिद्धा-भजन कर्ममात्रमें अथवा निष्फल-ज्ञान-चेष्टामें ही परिणत होगा, इसलिये उसके भाग्यमें साधनभक्तिका फल श्रीकृष्णप्रेम नहीं होगा॥ 175॥

भुक्ति और मुक्तिकी कामनारूपी पिशाची—भक्तिका
लोप करनेवाली :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/22)—

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥ 176॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 176॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भुक्तिकी स्पृहा और मुक्तिकी स्पृहा,—ये दो पिशाची (राक्षसी) हैं; जब तक ये किसी व्यक्तिके हृदयमें विद्यमान रहती हैं, तब तक उसके हृदयमें भक्तिसुखका प्राकट्य नहीं हो सकता॥ 176॥

अनुभाष्य—

यावत् हृदि (अन्तर्मनसि) भुक्तिमुक्तिस्पृहा (भोगमोक्षवासनारूपा) पिशाची (ग्रासकारिणी राक्षसी) वर्त्तते, तावत् अत्र (अन्तःकरणे) भक्तिसुखस्य (कृष्णप्रीतिविधायक-सेवानन्दस्य) कथं (केन प्रकारेण) अभ्युदयः (प्राकट्यं) भवेत्?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 176॥

साधनभक्तिसे ही (2) भावभक्ति अथवा रति,
रतिसे ही (3) प्रेमभक्ति :—

साधनभक्ति हैते हय 'रति'र उदय।
रति गाढ़ हैले तार 'प्रेम' नाम कय॥ 177॥

अनुवाद—साधनभक्तिसे 'रति' उदित होती है। रतिके गाढ़ होनेपर उसीको 'प्रेम' कहते हैं॥ 177॥

अनुभाष्य—*'साधनभक्ति'*—(भः रः सिः पूः विः द्वितीय लहरी)—

"कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥"

श्रवण-कीर्तनादिकी सहायक इन्द्रियोंके द्वारा साधनीय भक्तिको ही 'साधन-भक्ति' कहते हैं; नित्यसिद्ध भावका हृदयमें प्रकट होना ही 'साधन' है। श्रद्धा, साधुसङ्ग (दीक्षा और श्रवण), भजन (निरपराध विष्णु-वैष्णवसेवा), निष्ठा, रुचि और आसक्ति तक 'साधनभक्ति' है। मध्यलीला 23/11-15 संख्या देखें।

'रति'—(भः रः सिः पूः विः तृतीय लहरी)—

"व्यक्तं मसृणतेवान्तर्लक्ष्यते रतिलक्षणम्।
मुमुक्षुप्रभृतीनाञ्चेद्भवेदेषा रतिर्न हि॥"

हृदयमें स्थित मसृणताके (कोमलताके) प्रकाशित होनेपर उसको ही 'रतिका लक्षण' कहते हैं। मुक्तिकामी अथवा भोगकामी लोगोंमें ऐसी मसृणताके प्रकाशित होनेपर भी उसे 'रति' नहीं कहा जाता।

'प्रेम'—(भः रः सिः पूः विः चतुर्थ लहरी प्रथम संख्या)—

"सम्यङ्मसृणित-स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥"

अन्तःकरणके सम्पूर्ण रूपसे मसृण (द्रवित) होनेपर अत्यधिक ममतायुक्त भावके गाढ़ता प्राप्त होनेपर पण्डितगण उसे 'प्रेम' कहते हैं॥ 177॥

प्रेमभक्तिकी गाढ़ताके तारतम्यका वैचित्र्य;
चरम अवस्थामें 'महाभाव'—

प्रेम वृद्धिक्रमे नाम—स्नेह, मान, प्रणय।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥ 178॥

उपमा :—

यैछे बीज, इक्षु-रस, गुड़, खण्ड-सार।
शर्करा, सिता-मिछरि, उत्तम-मिछरी आर॥ 179॥

रतिके साथ विभावादि चार प्रकारके
भावोंके मिलनसे रसका उदित होना :—

एइसब कृष्णभक्ति-रसे स्थायिभाव।
स्थायिभावे मिले यदि विभाव, अनुभाव॥ 180॥

सात्त्विक, व्यभिचारि-भावेर मिलने।
कृष्णभक्ति-रस हय अमृत आस्वादने॥ 181॥

अनुवाद—प्रेम वर्द्धित होनेपर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव नाम धारण करता है। जैसे गन्नेका बीज अङ्कुरित होकर गन्ना बनता है, फिर उस गन्नेका रस निकाला जाता है। तब उसको उबालनेपर वह गुड़ बनता है, गुड़से क्रमशः खाण्ड़, चीनी, सफेद मिश्री और उत्तम मिश्री बनती है। इसी प्रकार रतिसे महाभाव तक सभी श्रीकृष्णभक्ति-रसमें स्थायी-भाव कहलाते हैं। स्थायी-भावमें विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी भावके मिलनेसे श्रीकृष्णभक्ति-रस अमृतके समान आस्वादनीय हो जाता है॥ 178-181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्तिकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधनावस्था, भावावस्था और प्रेमावस्था। श्रवण-कीर्तनादि नौ प्रकारके अङ्ग पहले साधनभक्तिमें ही क्रियान्वित होते हैं। श्रद्धापूर्वक श्रवण-कीर्तनादि करते-करते पूर्वोक्त सभी अनर्थ जितनी मात्रामें कम होते हैं, उतनी ही श्रद्धावृत्ति क्रमशः उच्चभाव धारण करते हुए निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव या रति,—इन सब नामोंसे परिचित होती है। साधनभक्तिसे ही रतिका उदय होता है; श्रवण-कीर्तनादिके अनुशीलनसे ही वह रति जितनी गाढ़ होती जाती है, उतना ही 'प्रेमादि' नाम धारण करती है। (क्रमशः) प्रेम वर्धित होते हुए स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव तक उन्नत होता है। इसका उदाहरण यह है, गन्नेका रस—मानो रतिस्थानीय बीजस्वरूप है, वह जितना गाढ़ होता है, उससे पहले गुड़, बादमें खाण्ड़, चीनी, सफेद-मिश्री और उत्तम मिश्री—इन सब अवस्थाओंको प्राप्त करता है। रतिसे महाभाव तक, सब कुछ ही श्रीकृष्णभक्तिरसमें स्थायीभाव कहलाते हैं; रतिको ही सर्वत्र 'स्थायीभाव' कहा जाता है।

उसी स्थायीभावमें विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी,—इन चारों भावोंके मिलनेपर ही रस उदित होता है। श्रीकृष्णभक्तिके सम्बन्धमें स्थायीभावमें इन सब सामग्रियोंके संयुक्त होनेसे 'श्रीकृष्णभक्तिरस' होता है। स्थायीभाव ही रसोद्दीपन-कार्यका मुख्य आधार है। उसके साथ विभावादि चार सामग्रियाँ संयुक्त होती हैं। इसलिये स्थायीभाव ही रसका 'मूल', विभाव ही रसका 'हेतु', अनुभाव ही रसका 'कार्य', सात्त्विकभाव भी रसका 'विशेषकार्य' एवं सभी सञ्चारी अथवा व्यभिचारी भाव रसके 'सहायक' हैं। विभावके दो भाग हैं—'आलम्बन' और 'उद्दीपन'। आलम्बन पुनः दो प्रकारसे विभक्त है,—'विषय' और 'आश्रय'। श्रीकृष्णभक्तिरसमें भक्त ही 'आश्रय', श्रीकृष्ण ही 'विषय' एवं श्रीकृष्णके गुण ही 'उद्दीपन' हैं।

अनुभाव तेरह प्रकारके हैं,—1) नृत्य, 2) विलुण्ठन (पृथ्वीपर गिरकर लोटने लगना), 3) गान 4) जोरसे रोना, 5) शरीरको मरोड़ना, 6) हुङ्कार, 7) जम्भाई, 8) दीर्घश्वास, 9) लोकपेक्षा-त्याग (लोग क्या कहेंगे—इसकी परवाह नहीं करना), 10) लार टपकाना, 11) अट्टहास (जोरोंसे हँसना), 12) उद्घूर्णा (चक्कर आना), 13) हिचकी। एक ही समयमें समस्त अनुभाव-लक्षण उदित नहीं होते। रसका कार्य जिस प्रकार होता रहता है, उसी प्रकार कोई-कोई लक्षण समय-समयपर उदित होते हैं। सात्त्विकभाव,—आठ प्रकारके एवं सञ्चारी अथवा व्यभिचारी भाव—तैंतीस प्रकारके होते हैं। (मध्यलीला, 14/167 संख्याका अमृतप्रवाह भाष्य देखें)॥ 177-181॥

अनुभाष्य—*'स्नेह'*—(भ:र:सि: प:वि: द्वितीय लहरी)—

"सान्द्रश्चित्तद्रवं कुर्वन् प्रेमा 'स्नेह' इतीर्यते।
क्षणिकस्यापि नेह स्याद्विश्लेषस्य सहिष्णुता॥"

"चित्तको द्रवीभूत करनेवाले भावके अत्यधिक गाढ़ होनेपर प्रेम 'स्नेह'-संज्ञा प्राप्त करता है। उसमें एक क्षणका वियोग भी सहन नहीं होता।"

'मान'—मध्यलीला 2/66 संख्या देखें।

'प्रणय'—मध्यलीला 2/66 संख्या देखें।

'राग'—(भ:र:सि: प:वि: द्वितीय लहरी)—

"स्नेहः स रागो येन स्यात् सुखं दुःखमपि स्फुटम्।
तत्सम्बन्ध-लवेऽप्यत्र प्रीतिः प्राणव्ययैरपि॥"

"जिस स्नेहमें स्पष्टरूपसे दुःख ही 'सुख'के रूपमें प्रतीत होता है, वही 'राग' है। इस सम्बन्धमात्रसे अपने प्राणोंको नष्ट करके भी श्रीकृष्णकी प्रीतिको उदित करानेकी प्रवृति होती है।"

'अनुराग', 'भाव' और 'महाभाव'—मध्यलीला 6/13 संख्याके अनुभाष्यमें 'अधिरूढ़-महाभाव'का प्रसङ्ग देखें।

'स्थायीभाव'—(भ:र:सि: द:वि: प्रथम लहरी)—

"विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्णरतिः स्थायिभावो भक्तिरसो भवेत्॥"

"कृष्णरति—स्थायीभाव-स्वरूप है; श्रवणादिके द्वारा विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावोंके सम्मिलनसे, भक्तोंके हृदयमें आस्वादनीय भावसे लाये जानेपर वही 'भक्तिरस' होता है।"

'विभाव'—(भ:र:सि: द:वि: प्रथम लहरी)—

"तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः।
ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपना परे॥"

"रतिके आस्वादन-हेतुसमूहको 'विभाव' कहते हैं। विभाव—आलम्बन और उद्दीपनके भेदसे दो प्रकारका होता है।"

'अनुभाव'—(भ:र:सि: द:वि: द्वितीय लहरी)—

"अनुभावास्तु चित्तस्था भावानामवबोधकाः।
ते बहिर्विक्रिया-प्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया॥"

"जो उद्भास्वरयुक्त चित्तमें स्थित भावसमूहके प्रकाशक बाहरमें विकार जैसी चेष्टा प्रदर्शित करते हैं, वे ही 'अनुभाव' हैं।"

'सात्त्विक' और 'व्यभिचारी'—मध्यलीला 3/162 संख्या और मध्यलीला 14/167 संख्या देखें॥ **178-181**॥

उपमा :—

यैछे दधि, सिता, घृत, मरीच, कर्पूर।
मिलने 'रसाला' हय अमृत मधुर॥ 182॥

भक्तके भेदसे पाँच प्रकारकी रति और
रतिके भेदसे पाँच प्रकारके भक्तिरस :—

भक्तभेदे रति-भेद पञ्च परकार।
शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति आर॥ 183॥
वात्सल्यरति, मधुररति,—ए पञ्च विभेद।
रतिभेदे कृष्णभक्ति-रसे पञ्च भेद॥ 184॥

अनुवाद—जैसे दही, मिश्री, घी, काली मिर्च तथा कर्पूरको मिलानेसे 'रस' अमृतकी भाँति मधुर होता है। उसी प्रकार भक्तोंके भेदसे रति भी शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुररति—पाँच प्रकारकी होती है। रतिभेदसे श्रीकृष्णभक्तिरस भी पाँच प्रकारके होते हैं॥ **182-184**॥

अनुभाष्य—*'सिता'*—मिश्री।

'शान्तरति'—(भ:र:सि: द:वि: पञ्चम लहरी)—

"मानसे निर्विकल्पत्व शम इत्यभिधीयते"

अर्थात् "मानसमें संशयादि रहित भावको 'शम' कहते हैं।" (भ:र:सि: द:वि: पञ्चम लहरी)—

"विहाय विषयोन्मुख्यं निजानन्द-स्थितिर्यतः।
आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभावः शम इत्यसौ॥
प्रायः शमप्रधानानां ममतागन्धवर्जिता।
परमात्मतया कृष्णे जाता शान्तरतिर्मता॥"

अर्थात् "विषय वासनाको छोड़कर अपने आनन्दमें अवस्थित होनेको 'शम'-स्वभाव कहते हैं। शम-प्रधान व्यक्तियोंकी परमात्म-ज्ञानसे श्रीकृष्णके प्रति ममता-गन्धहीन शान्तरति उत्पन्न होती है।"

'दास्यरति'—(भ:र:सि: द:वि: पञ्चम लहरी)—

"स्वस्माद्भवन्ति ये न्यूनास्तेऽनुग्राह्या हरेर्मताः।
आराध्यत्वात्मिका तेषां रतिः प्रीतिरितीरिता।
तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीतिसंहारिणी ह्यसौ॥"

अर्थात् "श्रीभगवान्से स्वयंको छोटा माननेका अभिमान रखनेवाली रतिसे युक्त होनेपर जीव हरिके अनुग्रहका पात्र बन जाता है। 'भगवान् ही आराध्य हैं'—ऐसी प्रीति-नामक रति ही आराध्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें 'आसक्ति' उत्पन्न करती है एवं भगवान्के अतिरिक्त मायिक वस्तुओंके प्रति प्रीतिका विनाश करती है।"

'सख्यरति'—(भ:र:सि: द:वि: पञ्चम लहरी)—

"ये स्युस्तुल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मताः।
साम्याद्विश्रम्भरूपैषां रतिः सख्यमिहोच्यते॥
परिहासप्रहासादिकारिणीयमयन्त्रणा।"

अर्थात् "विद्वान और सज्जनोंके मतमें जो मुकुन्दके समान होनेके अभिमानसे युक्त रतिवाले हैं, वे ही 'सखा' हैं; श्रीकृष्णके साथ परस्पर समान भाव होनेके कारण सङ्कोचरहित विश्वासमयी रतिको 'सख्यरति' कहते हैं। यह सख्यरति—परिहास और उच्च-हास्यादि करानेवाली होती है, इसे अयन्त्रणा अर्थात् बन्धनहीना रति कहते हैं।"

'वात्सल्य-रति'—(भ:र:सि: द:वि: पञ्चम लहरी)—

"गुरुवो ये हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः।
अनुग्रहमयी तेषां रतिर्वात्सल्यमुच्यते।
इदं लालनभव्याशीशिचबुकस्पर्शनादिकुत्॥

अर्थात् "गुरु होनेके अभिमानसे युक्त रतिवाले जीवगण ही भगवानके 'पूज्य' हैं; उनकी अनुग्रहमयी रतिको 'वात्सल्य रति' कहते हैं। इस वात्सल्य-रतिमें लालन, कल्याण साधन, आशीर्वाद और ठोड़ीको स्पर्श करने आदिके अनुष्ठान हैं।"

'मधुर-रति'—(भ:र:सि: द:वि: पञ्चम लहरी)—

"मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च सम्भोगस्यादि-कारणम्।
मधुरापरपर्याया प्रियताख्योदिता रतिः।
अस्यां कटाक्षभ्रूक्षेपप्रियवाणीस्मितादयः॥"

अर्थात् "श्रीभगवान्के एवं मृगनयनियोंके परस्पर स्मरण-दर्शनादि आठ प्रकारके सम्भोगका मूल कारण—प्रियता अथवा मधुरा-रति है। मधुरा-रतिमें कटाक्ष, भ्रूक्षेप, प्रियवाक्य और मधुर-हास्यादि अनुष्ठान वर्तमान होते हैं॥"**182-184**॥

पाँच मुख्य भक्तिरस और सात गौणरस :—

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर-रस नाम।
कृष्णभक्ति-रसमध्ये ए पञ्च प्रधान॥ 185॥

अनुवाद—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर-रस, श्रीकृष्णभक्ति-रसमें ये पाँच प्रकारके रस मुख्य हैं॥ **185**॥

अनुभाष्य— *'शान्तभक्तिरस'*—(भ:र:सि: प:वि: प्रथम लहरी)—

"वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः।
स्थायी शान्तिरतिर्धीरैः शान्तभक्तिरसः स्मृतः।
प्रायः स्वसुखजातीयं सुखं स्यादत्र योगिनाम्।
किन्त्वात्मसौख्यमघनं घनं त्वीशमयं सुखम्॥
तत्रापीशस्वरूपानुभवस्यैवोरुहेतुता।
दासादिवन्मनोज्ञत्वलीलादेर्न तथा मता॥"

अर्थात् "शान्तरतिरूपी स्थायीभाव विचाराधीन विभावादिके साथ मिलकर जब शान्तभक्तोंके द्वारा आस्वादनीय होते हैं अर्थात् तद्रूपता प्राप्त करते हैं, तब 'शान्तभक्तिरस' होता है। शान्तरसमें योगियोंके सर्वमूल-स्वरूप निर्विशेष-ब्रह्मानन्दजातीय सुखकी प्राप्ति होती है, किन्तु यह आत्मानन्द-'अघन' अर्थात् बहुत कम होता है; और सच्चिदानन्द भगवद्विग्रह-स्फूर्तिमें प्रचुर सेवा-सुख ही 'गाढ़' होता है। शान्तभक्तोंका साक्षात्कारके लिये सुख अधिक तो होता है, किन्तु दास्य आदिकी भाँति भगवान्की मनोहर लीलाओंमें उनकी वैसी रुचि नहीं होती।"

'दास्य-भक्तिरस'—(भ:र:सि: प:वि: द्वितीय लहरी)—

"आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम्।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीतिभक्तिरसो मतः॥
अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्यत्वादप्ययं द्विधा।
भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरवप्रीत इत्यपि॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा भक्तोंके चित्तमें प्रीतिरति आकर आस्वादनीयताको प्राप्त करनेपर वही 'प्रीति' अथवा 'दास्य-भक्ति-रस' होता है। अनुग्रह-योग्य दासोंके दासत्व और लाल्यत्वके भेदसे दास्य रसमें सम्भ्रम-दास्य और गौरवदास्य,—दो प्रकारकी प्रीति लक्षित होती है।"

'सख्य-भक्तिरस'—(भ:र:सि: प:वि: चतुर्थ लहरी)—

"स्थायिभावो विभावाद्यैः सख्यमात्मोचितैरिह।
नीतश्चित्ते सतां पुष्टिं रसप्रेयानुदीर्यते॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा स्थायीभावमें भक्तोंके चित्तमें सख्यरतिके पुष्ट होनेपर 'प्रेयरस' अथवा 'सख्यभक्तिरस' होता है।"

'वात्सल्य-भक्तिरस'—(भ:र:सि: प:वि: चतुर्थ लहरी)—

"विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः।
एष वत्सल-नामात्र प्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः॥"

"स्थायीभाव भक्तके चित्तमें विभावादिके द्वारा वात्सल्यरतिके पुष्ट होनेपर भक्त-पण्डितगण उसे 'वात्सल्य-भक्तिरस' कहते हैं।"

'मधुर भक्तिरस'—(भ:र:सि: प:वि: पञ्चम लहरी)—

"आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि।
मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा सद्भक्तोंके हृदयमें मधुर-रति पुष्ट होनेपर 'मधुराख्य भक्तिरस' कहकर कीर्तित होती है॥"185॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/5/116) :—

हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि।
भयानकः स वीभत्स इति गौणश्च सप्तधा॥186॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥186॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मुख्यरस' शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—पाँच प्रकारके हैं। हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स—ये सात प्रकारके गौण रस हैं॥186॥

अनुभाष्य—

तथा हास्यः, अद्भुतः, वीरः, करुणः, रौद्रः, भयानकः, वीभत्सः—इति सप्तधा गौणरसश्च अपि।

श्लोक-भावानुवाद—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स—ये सात प्रकारके गौण रस हैं॥186॥

हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स, भय।
पञ्चविध-भक्ते गौण सप्तरस हय॥187॥

अनुवाद—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स तथा भयानक—ये सातों गौणरस पाँचों प्रकारके भक्तोंमें ही रहते हैं॥187॥

पाँच मुख्यरस—स्थायी; सात गौणरस—आगन्तुक :—

पञ्चरस 'स्थायी', व्यापी' रहे भक्त-मने।
सप्त गौण 'आगन्तुक' पाइये कारणे॥188॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥188॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पहले कहे गये पाँच मुख्यरस स्थायीभावसे ही भक्तके हृदयमें रहते हैं। हास्य-अद्भुतादि गौणरस 'कारण' उपस्थित होनेपर भक्तके हृदयमें आगन्तुकके रूपमें उदित होकर मुख्यरसको पुष्ट करके निवृत्त होते हैं॥188॥

अनुभाष्य—*'हास्य-भक्तिरस'*—(भ:र:सि: उ:वि: प्रथम लहरी)—

"वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं हासरतिर्गता।
हासभक्तिरसो नाम बुधैरेष निगद्यते॥"

"विचाराधीन विभावादिके द्वारा हास्यरतिके पुष्ट होनेपर ही पण्डितगण उसे 'हास्य-भक्तिरस' कहते हैं।"

'अद्भुत-भक्तिरस'—(भ:र:सि: उ:वि: द्वितीय लहरी)—

"आत्मोचितैर्विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तचेतसि।
सा विस्मयरतिर्नीताद्भुतभक्तिरसो भवेत्॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा भक्तके चित्तमें 'विस्मयरति' आस्वादनीयरूपमें आनेपर 'अद्भुत-भक्तिरस' होता है।"

'वीर-भक्तिरस'—(भ:र:सि: उ:वि: तृतीय लहरी)—

"सैवोत्साहरतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितैः।
आनीयमाना स्वाद्यत्वं वीरभक्तिरसो भवेत्।
युद्धदानदयाधर्मैश्चतुर्धा वीर उच्यते॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा भक्तके चित्तमें 'उत्साह-रति'के आस्वादनीयरूपमें आनेपर 'वीरभक्तिरस' होता है। 'युद्ध', 'दान', 'दया', और 'धर्म',—इन चार प्रकारके कार्योंमें चार प्रकारके 'वीर' कहे जाते हैं।"

'करुण-भक्तिरस'—(भः रः सिः उः विः चतुर्थ लहरी)—

"आत्मोचित्तैर्विभावाद्यैर्नीता पुष्टिं सतां हृदि।
भवेच्छोकरतिर्भक्ति-रसो हि करुणाभिधः॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा भक्तके चित्तमें 'शोक-रति'के पुष्ट होनेपर उसे 'करुणभक्तिरस' कहते हैं।"

'रौद्र-भक्तिरस'—(भः रः सिः उः विः पञ्चम लहरी)—

"नीता क्रोधरतिः पुष्टिं विभावाद्यैर्निजोचितैः।
हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्रभक्तिरसो भवेत्॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा भक्तके हृदयमें 'क्रोधरति'के पुष्ट होनेपर 'रौद्र-भक्तिरस' होता है।"

'भयानक-भक्तिरस'—(भः रः सिः उः विः षष्ठम लहरी)—

"वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं भयरतिर्गता।
भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैरुदीर्यते॥"

"विचाराधीन विभावादिके द्वारा 'भयरति'के पुष्ट होनेपर पण्डितगणोंके द्वारा वह 'भयानक-भक्तिरस' कहा जाता है।"

'वीभत्स-भक्तिरस'—(भः रः सिः उः विः सप्तम लहरी)—

"पुष्टिं निजविभावाद्यैर्जुगुप्सा रतिरागता।
असौ भक्तिरसो धीरैर्वीभत्साख्य इतीर्यते॥"

"आत्मोचित विभावादिके द्वारा भक्तके चित्तमें जुगुप्सा अथवा 'घृणा-रति'के पुष्ट होनेपर पण्डितगण उसे 'वीभत्स-भक्तिरस' कहते हैं।"

'पञ्चविध भक्ते'—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन स्थायी पाँच प्रकारके रसोंके भक्तोंमें हास्यादि सात गौणरस 'कारण'को देखकर प्रकाशित होते हैं॥ 187-188॥

शान्त और दास्य-रसके भक्तोंके नाम :—

शान्तभक्त—नवयोगेन्द्र, सनकादि आर।
दास्यभाव-भक्त—सर्वत्र सेवक अपार॥ 189॥

अनुवाद—नवयोगेन्द्र और सनकादि चार कुमार शान्तभावके भक्त हैं। दास्यभावके भक्तोंके असंख्य उदाहरण हैं, वे भगवद्-सेवक तो सर्वत्र विद्यमान हैं॥ 189॥

अनुभाष्य—*'नवयोगेन्द्र'*—(भाः 5/4/11 और 11/2/21)—(1) कवि, (2) हवि, (3) अन्तरीक्ष, (4) प्रबुद्ध, (5) पिप्पलायन, (6) आविर्होत्र, (7) द्रविड़ (द्रुमिल), (8) चमस और (9) करभाजन।

'सनकादि'—(1) सनक, (2) सनन्दन, (3) सनत्कुमार, (4) सनातन।

'दास्यभाव-भक्त'—(1) गोकुलमें रहनेवाले रक्तक-चित्रक-पत्रकादि दासगण, (2) द्वारकापुरीमें रहनेवाले दारुकादि दासगण, 3) वैकुण्ठमें स्थित दासगण, 4) हनुमानादि लीला-दासगण॥ 189॥

सख्य और वात्सल्य-रसके भक्तोंके नाम :—

सख्य-भक्त—श्रीदामादि, पुरे भीमार्जुन।
वात्सल्य-भक्त—माता-पिता, यत गुरुजन॥ 190॥

अनुवाद—सख्यभक्तोंके उदाहरण व्रजमें श्रीदामादि और द्वारकापुरीमें भीम तथा अर्जुनादि हैं। वात्सल्य-भक्तके उदाहरण माता-पिता [व्रजमें यशोदा-नन्द और द्वारकामें देवकी-वसुदेव] तथा जितने [वात्सल्यभावमें आयुमें बड़े] गुरुजन हैं॥ 190॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'व्रजे'*—व्रजमें श्रीदामादि, *'पुरे'*—द्वारका-लीलामें भीम-अर्जुन॥ 190॥

मधुर-रसके भक्तगण—द्वारकाकी कान्ताएँ
और व्रजकी कान्ताएँ :—

मधुर-रसे भक्तमुख्य—व्रजे गोपीगण।
महिषीगण, लक्ष्मीगण, असंख्य गणन॥ 191॥

अनुवाद—मधुर-रसके भक्तोंमें मुख्य व्रजमें गोपियाँ, द्वारकामें महिषियाँ, वैकुण्ठमें लक्ष्मियाँ हैं। मधुर-रसमें भी असंख्य भक्त हैं॥ 191॥

दो प्रकारकी रति—1) ऐश्वर्यमिश्रा और 2) केवला :—

पुनः कृष्णरति हय दुइत प्रकार।
ऐश्वर्यज्ञानमिश्रा, केवला-भेद आर॥ 192॥

गोकुलमें 'केवला' रति एवं वैकुण्ठ, मथुरा और द्वारकामें 'ऐश्वर्यप्रधान' रति :—

गोकुले 'केवला' रति—ऐश्वर्यज्ञानहीन।
पुरीद्वये, वैकुण्ठाद्ये—'ऐश्वर्य' प्रवीण॥ 193॥

ऐश्वर्यप्रधान रतिमें राग-सङ्कुचित, केवलामें ऐश्वर्य-ज्ञानका अभाव :—

ऐश्वर्यज्ञान-प्राधान्ये सङ्कुचित प्रीति।
देखिले ना माने ऐश्वर्य—केवलार रीति॥ 194॥

अनुवाद—ऐश्वर्यज्ञानमिश्रा और केवलाके भेदसे पुनः श्रीकृष्णरति भी दो प्रकारकी होती है। गोकुलमें 'केवला' रति है, यह ऐश्वर्यज्ञानसे रहित होती है। मथुरापुरी और द्वारकापुरी तथा वैकुण्ठादिमें 'ऐश्वर्य'-प्रधान रति होती है। ऐश्वर्यज्ञानकी प्रधानता होनेपर प्रीति सङ्कुचित हो जाती है। केवला-रतिकी यह रीति है कि वह ऐश्वर्यको देखनेपर भी उसे मानती नहीं है॥ 192-194॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णरति दो प्रकारकी है—ऐश्वर्यज्ञानमिश्रा और केवला अथवा ऐश्वर्यज्ञानहीना। दोनों पुरियों अर्थात् द्वारका और मथुरामें एवं वैकुण्ठादिमें ऐश्वर्यज्ञानमिश्रा भक्ति है। इसलिये वहाँ प्रेम सङ्कुचित होता है। किन्तु गोकुलमें केवला-रतिमें गोप-गोपियाँ श्रीकृष्णके ऐश्वर्यको देखनेपर भी उसे मानना नहीं चाहते॥ 192-194॥

व्रजमें शान्त और दास्यमें कहींपर ऐश्वर्यज्ञान रहनेपर भी सख्य, वात्सल्य और मधुररसमें ऐश्वर्यज्ञानका अभाव :—

शान्त-दास्य-रसे ऐश्वर्य काँहा उद्दीपन।
सख्ये, वात्सल्ये, मधुर-रसे सङ्कोचन॥ 195॥

अनुवाद—व्रजमें शान्त और दास्य रसमें कहीं-कहींपर ऐश्वर्यका उद्दीपन होता है, किन्तु सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रसमें ऐश्वर्य सम्पूर्ण रूपमें सङ्कुचित है॥ 195॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'काँहा'*—किसी विशेष स्थान पर॥ 195॥

अनुभाष्य—शान्त, दास्य और गौरव-सख्यमें स्थान-स्थानपर ऐश्वर्यकी प्रधानता लक्षित होती है; विश्रम्भ-सख्यमें, वात्सल्यमें और मधुर-रसमें ऐश्वर्यकी प्रधानताका भाव सङ्कुचित होता है॥ 195॥

ऐश्वर्यमिश्रित रतिमें स्वयंको 'दीन' और श्रीकृष्णको प्रभु मानना— (1) वात्सल्य-रतिमें वसुदेव और देवकी :—

वसुदेव-देवकीर कृष्ण चरण वन्दिल।
ऐश्वर्यज्ञाने दुँहार मने भय हैल॥ 196॥

अनुवाद—जब श्रीकृष्णने वसुदेव और देवकीके चरणोंकी वन्दना की, तब श्रीकृष्णके ऐश्वर्यज्ञानके कारण दोनोंके मनमें भय उत्पन्न हो गया॥ 196॥

श्रीमद्भागवत (10/44/51)में :—

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ।
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ॥ 197॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 197॥

अमृतप्रवाह भाष्य—देवकी और वसुदेव, बलदेव और श्रीकृष्णको 'जगदीश्वर' जानकर शङ्कासे युक्त होकर उन्हें आलिङ्गन नहीं कर पाये॥ 197॥

अनुभाष्य—कंस और उसके द्वारा नियुक्त मल्लोंका वध करके श्रीकृष्णने माता देवकी और पिता वसुदेवके बन्धनको खोलकर उन्हें प्रणाम किया, देवकी और वसुदेवमें यशोदा और नन्दकी भाँति भाव नहीं होनेके कारण ऐश्वर्यभावकी प्रबलता लक्षित,—

देवकी वसुदेवश्च (मातापितरौ) पुत्रौ (रामकृष्णौ) जगदीश्वरौ इति विज्ञाय (ज्ञात्वा) शङ्कितौ (भीतौ सन्तौ) कृतसंवन्दनौ (कृतप्रणामौ) अपि तौ न सस्वजाते (आलिङ्गितवन्तौ किन्तु प्रणतौ बद्धाञ्जली स्तुवन्तौ स्थितौ)।

श्लोक-भावानुवाद—जब बलदेव और कृष्णने देवकी और वसुदेवके चरण स्पर्श करके उनकी वन्दना की, तब उन दोनों पुत्रोंको जगदीश्वर जानकर कुछ भयभीत होकर वे उनको आलिङ्गन नहीं कर पाये, अपितु हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े रहे॥ 197॥

(2) सख्य-रतिमें अर्जुन :—

कृष्णेर विश्वरूप देखि' अर्जुनेर हैल भय।
सख्यभावे धार्ष्ट्य क्षमापय करिया विनय॥ 198॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके विश्वरूपको देखकर अर्जुन भयभीत हो गये और अपने द्वारा पहले सख्यभावमें की गयी धृष्टताके लिये श्रीकृष्णसे दीनतापूर्वक क्षमा-याचना की॥ 198॥

श्रीमद्भगवद्गीता [11/41 (तीन चरण)-
42 (अन्तिम चरण)] :—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ 199॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 199॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सखा मानकर आपकी महिमाको नहीं जाननेके कारण मैंने हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे,—इस प्रकारके शब्दोंके उपयोगके द्वारा बलपूर्वक जो-जो आपको कहा है, हे अप्रमेय-स्वरूप [अचिन्त्य-प्रभाव-स्वरूप]! मैं आपसे उसे क्षमा करनेकी प्रार्थना करता हूँ॥ 199॥

अनुभाष्य—

तव इदं [विराड्रूपं] महिमानं (महत्त्वम्) अजानता (अननुभवता) मया [प्रमादात् प्रणयेन् वा अपि] सखा इति मत्वा [त्वां प्रति] प्रसभं (हठात्) हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति यत् उक्तं (कथितं) [यत् च असत्कृतः असि] अहम् अप्रमेयम् (अचिन्त्यप्रभावं) तत् (सर्ववचन-रूपम् असत्कार-रूपं अपराधजातं वा) क्षामये (क्षमां कारयामि, त्वं क्षमस्व इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 199॥

(3) मधुर रतिमें रुक्मिणी :—

कृष्ण यदि रुक्मिणीरे कैला परिहास।
'कृष्ण छाड़िबेन'—जानि' रुक्मिणीर हैल त्रास॥ 200॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने जब रुक्मिणीके साथ परिहास किया, तब 'कृष्ण मुझे छोड़ देंगे'—ऐसा सोचकर रुक्मिणीके मनमें भय हो गया॥ 200॥

प्रमाण वचन :—
श्रीमद्भागवत (10/60/24)में—

तस्याः सुदुःखभय-शोक-विनष्ट-बुद्धे-
र्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात।
देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्
रम्भेव वातविहता प्रविकीर्य केशान्॥ 201॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 201॥

अमृतप्रवाह भाष्य—द्वारकामें रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णके परिहास करनेपर दुःख, भय और शोकके कारण रुक्मिणीकी विचारशक्ति लुप्त हो गयी, वियोगकी सम्भावनासे वे इतनी दुबली हो गयीं कि उनके हाथसे कङ्गन तक खिसक गया, हाथका चँवर भी गिर पड़ा, केश बिखर गये और आँधीसे गिरे केलेके वृक्षकी भाँति उनकी देह सहसा विकल होकर मोहको प्राप्त हो गयी॥ 201॥

अनुभाष्य—एक बार अपने घरमें रुक्मिणीने अपने हाथोंसे श्रीकृष्णकी सेवा आरम्भ की। तब श्रीकृष्णने उनके अनुरागकी परीक्षा करनेकी इच्छासे परिहास करते हुए स्वयंको दीन, निष्किञ्चन और उदासीन कहकर रुक्मिणीके प्रणयके सम्पूर्ण अयोग्य-पात्रके रूपमें वर्णन करके उन्हें उनका सङ्ग छोड़कर अन्यत्र प्रणय स्थापित करनेके लिये कहा। इसे सुनकर कृष्णैकप्राणा रुक्मिणीकी तात्कालिक अवस्थाका वर्णन,—

सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेः (सुदुःखम् अत्यन्तदुःखम् अप्रिय-श्रवणात्, भयं त्यागशङ्कया, शोकः अनुतापः तैः विनष्टा बुद्धिः यस्याः रुक्मिण्याः तस्याः) श्लथद्वलयतः (श्लथन्ति पतन्ति

वलयानि यस्मात् तस्मात्) हस्तात् व्यजनं (वीजनयन्त्रं) पपात। विक्लवधियः (विक्ल्वा अवशा धीः यस्याः तस्याः) देहः च सहसा एव मुह्यन् केशान् प्रविकीर्य (इतस्ततः विक्षिप्य) वातविहता (वायुताड़िता) रम्भा (कदलीवृक्षः) इव पपात।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 201॥

व्रजमें ऐश्वर्यहीन केवला-रतिसे श्रीकृष्णको अपने वशयोग्य समझना :—

'केवला'र शुद्धप्रेम 'ऐश्वर्य' ना जाने।
ऐश्वर्य देखिले निजसम्बन्ध ना माने॥ 202॥

अनुवाद—'केवला' रतिवालोंका शुद्धप्रेम श्रीकृष्णके 'ऐश्वर्य'को नहीं मानता। श्रीकृष्णका ऐश्वर्य देखनेपर भी केवला-रति भक्त उस ऐश्वर्यसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं मानते हैं॥ 202॥

अनुभाष्य—ऐश्वर्य-प्रधान भक्त केवला-रतिके शुद्ध प्रेमके माहात्म्यको नहीं समझ सकते। भगवान्के ऐश्वर्यको देखनेपर भी केवला-रतिपरायण भक्त उससे अपना सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते हैं॥ 202॥

(1) स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको यशोदाके द्वारा अपना पुत्र समझना :—
श्रीमद्भागवत (10/8/45)में—

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम्॥ 203॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 203॥

अमृतप्रवाह भाष्य—तीनों वेदों, उपनिषद्-समूह, सांख्ययोग और भक्तिशास्त्रोंके द्वारा जिनके माहात्म्यका गान किया जाता है, उन श्रीकृष्णको यशोदा अपना 'पुत्र' समझती हैं॥ *203*॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके मुखमें ऐश्वर्यमय विश्वरूपको देखकर यशोदामें तत्त्वज्ञानके कारण सम्भ्रम-बुद्धि आते ही पुनः श्रीकृष्णकी इच्छासे उनके सहज ममता-प्रबल हृदयमें श्रीकृष्णस्नेह गाढ़ होकर वर्धित हो गया—

त्रया (कर्मोपासनामयैः ऋग्यजुःसाम-वेदैः) [इन्द्रादिरूपेण इति], उपनिषद्भिः (वेदोत्तर-ज्ञानकाण्डात्मक-श्रुतिभिः) ['ब्रह्म' इति], सांख्यैः ['पुरुषः' इति], योगैः ['परमात्मा' इति], सात्वतैः (पञ्चरात्रागमैः) ['भगवान्' इति] उपगीयमान-माहात्म्यम् (उपगीयमानम् ईड्यमानं माहात्म्यं यस्य तं) हरिं सा (केवलरतिविशिष्टा यशोदा) आत्मजं (तनयम्) अमन्यत।

श्लोक-भावानुवाद—इन्द्रादि देवताओंकी उपासना-प्रधान कर्मकाण्ड उपासनामय ऋक्-यजु-साम—तीनों वेद (यज्ञपुरुषरूपमें), ब्रह्म-विषयक वेदोंसे श्रेष्ठ ज्ञानकाण्डात्मक श्रुतियाँ (ब्रह्मरूपमें), सांख्य (पुरुषरूपमें), योग (परमात्मारूपमें), सात्वत अर्थात् नारद-पञ्चरात्रादि भक्तियोगशास्त्र (भगवान्रूपमें) जिनकी महिमाका गान करते हैं, उन परमपुरुष श्रीहरिको केवलारतियुक्त यशोदाने अपना पुत्र ही माना॥ 203॥

श्रीमद्भागवत (10/9/14)में :—

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।
गोपीकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥ 204॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 204॥

अमृतप्रवाह भाष्य—साधारण मरणशील मनुष्यकी भाँति व्यक्त, उस अव्यक्त और इन्द्रियोंसे अतीत अधोक्षज-वस्तुको (भगवान्को) यशोदाने अपना गर्भजात पुत्र मानकर साधारण बालककी भाँति रस्सीके द्वारा ओखलीसे बाँध दिया॥ 204॥

अनुभाष्य—माताके स्नेहका दर्शन करनेके लिये लीलामय श्रीकृष्णने यशोदा-भवनमें ही दहीकी मटकीको फोड़कर चोरी करके माखन खाना आरम्भ किया, जिसे देखकर क्रोधित यशोदाके व्यवहारका वर्णन—

अव्यक्तं (जड़ेन्द्रियाद्यविषयम्) अधोक्षजम् (अधःकृतम् अक्षजम् इन्द्रियज-ज्ञानं येन तं स्वयं भगवन्तं) मर्त्यलिङ्गं (जीवानुकम्पया स्वीकृत-नरतनुम्) आत्मजं (पुत्रं) मत्वा गोपिका (यशोदा) प्राकृतं बालकं [माता] यथा, (तथा) दाम्ना (रज्जुना) उलुखले (उदूखले) बबन्ध (बन्धनार्थं यत्नवती आसीत्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त ज्ञान जिन तक पहुँच नहीं सकता, उन्हें

अधोक्षज कहते हैं। उन्होंने जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही नरदेहको स्वीकार किया॥ 204॥

(2) स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको श्रीदामादिके द्वारा सखा-मानना :—
श्रीमद्भागवत (10/18/24)में—

उवाह भगवान् कृष्णः श्रीदामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनश्च प्रलम्बो रोहिणीसुतम्॥ 205॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 205॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भगवान् श्रीकृष्णने पराजित होकर श्रीदामको कन्धेपर चढ़ाया; भद्रसेनने वृषभको उठाया तथा प्रलम्बने रोहिणीपुत्र श्रीबलदेवको उठाया॥ 205॥

अनुभाष्य—व्रजवनमें गोचारणके समय श्रीराम-कृष्णको चुरानेके लिये कपट-वेशी गोपरूपी प्रलम्बासुरको आते देखकर श्रीकृष्ण उसे मोहित करके गोचारण करते-करते श्रीकृष्णपक्षीय और श्रीरामपक्षीय सखाओंको परस्पर स्पर्द्धा क्रीड़ामें मत्त कराके भाण्डीरवनमें पहुँचे। तब श्रीकृष्णपक्षीय सखाओंकी हारके कारण अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उनकी श्रीरामपक्षीय सखाओंको उठाकर ले जानेकी चेष्टाका वर्णन,—

भगवान् कृष्णः पराजितः (सन्) श्रीदामानं, भद्रसेनः वृषभं, प्रलम्बः (गोपबालकवेषी कपटी असुरः) रोहिणीसुतं (भावि-तन्मृत्युरूपं बलदेवम्) उवाह।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। प्रलम्बने अपने भावी-मृत्युरूप श्रीबलदेवको उठाया॥ 205॥

(3) श्रीराधाके द्वारा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको अपने वशीभूत कान्त समझना :—
श्रीमद्भागवत (10/30/37-39)में—

सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठां सर्वयोषिताम्।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः॥ 206॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः॥ 207॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधुरन्वतप्यत॥ 208॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 206-208॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"काम ही जिन गोपियोंका वनमें आनेका कारण है, उन गोपियोंका परित्याग करके ये प्रिय कृष्ण मेरा भजन कर रहे हैं"—ऐसे अहङ्कारके कारण श्रीराधिकाने (स्वयंको सभी गोपियोंसे श्रेष्ठा जानकर अन्तमें) वनमें जाकर श्रीकृष्णसे कहा,—"हे कृष्ण, मैं और चल नहीं पा रही हूँ, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, मुझे वहाँ ले चलो।" श्रीराधिकाके ऐसे कहनेपर श्रीकृष्णने कहा,—"मेरे कन्धेपर चढ़ो।" इतना कहकर श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेपर वे श्रीकृष्णवधु श्रीराधिका अनुताप करने लगीं॥ 206-208॥

अनुभाष्य—रासलीलासे केवलमात्र श्रीमती राधिकाको लेकर श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेपर श्रीमतीको अहङ्कार होनेपर उनकी गर्वोक्ति,—

असौ प्रियः (कृष्णः) कामयाना (कामो यानम् आगमन-साधनं यासां ताः) गोपीः (सर्वाः) हित्वा (परित्यज्य) मां (राधिकां) भजते इति दृप्ता (गर्विता सती) सा (राधिका) आत्मानं (स्वां) सर्वयोषितां (सकलगोपीनां मध्ये) वरिष्ठां (श्रेष्ठां) मेने; ततः (एवमभिमानानन्तरं) वनोद्देशं (कानन-प्रदेशविशेषं) गत्वा "अहं चलितुं न पारये (शक्नोमि, अतः) यत्र (स्थाने) ते (तव) गन्तुं मनः (अभिलाषः), [तत्र हे केशव,] मां नय (वह)", इति सा केशवम् अब्रवीत्। एवम् उक्तः [सन् सः श्रीकृष्णः तां] प्रियां (राधिकां) [मम्] स्कन्धम् आरुह्यताम् इति आह; ततः [लीला-विलासी] कृष्णः च अन्तर्दधे (अन्तर्हितः आसीत्); [तद्दृष्ट्वा] सा वधू (राधिका) च अन्वतप्यत (अनुतापवती)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 206-208॥

श्रीमद्भागवत (10/31/16)में—

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान
अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव
योषितः कस्त्यजेन्निशि॥ 209॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 209॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे कृष्ण, हम अपने पति, पुत्र, अन्वय (पतिके सम्बन्धसे जो पुत्रके समान हैं), भाई और बन्धुओं, सभीका परित्याग करके तुम्हारे पास आयी हैं; हमारे आनेका कारण तुम जानते हो,—तुम्हारे गीतसे मोहित होकर हम आयी हैं। हे धूर्त, रात्रिकालमें स्त्रियोंका [तुम्हारे अतिरिक्त] कौन इस प्रकार परित्याग करता है?॥ 209॥

अनुभाष्य—गोपियोंके साथ रासलीला करते-करते श्रीकृष्णके अचानक अन्तर्धान होनेपर, श्रीकृष्णके उद्देश्यसे विरहमें कातर गोपियोंकी विलाप-गीति,—

हे अच्युत, गतिविदः (अस्मदागमनं जानतः, गीतगतीर्वा जानतः, यद्वा गतिविदः वयं) तव उद्गीतमोहिताः (उद्गीतेन् उच्चैर्गीतेन् मोहिताः वयं गोप्यः) पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् (पतीन् सुतान् अन्वयान् तत्सम्बन्धिनः पुत्रान् भ्रातृन् बान्धवांश्च सर्वान्) अतिविलङ्घ्य (अनादृत्य) ते (तव) अन्ति (समीपम्) आगताः; हे कितव, (वञ्चनशील शठ,) निशि एवम्भूताः योषितः (स्वयमागताः) [त्वां ऋते] कः त्यजेत् [न कोऽपीत्यर्थः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 209॥

शान्तरसके गुण और स्वरूप :—

शान्तरसे—'स्वरूपबुद्धये कृष्णैकनिष्ठता'।
***"शमो मन्निष्ठता बुद्धेः"* इति श्रीमुख-गाथा॥ 210॥**

अनुवाद—शान्तरसमें अपने स्वरूपमें स्थित होकर बुद्धिके द्वारा श्रीकृष्णमें निष्ठा होती है। श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे स्वयं उद्धवजीसे कहा है,—"मुझमें ही बुद्धिका एकाग्र होना 'शम' है॥"210॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुझमें निष्ठ बुद्धिसे 'शम'-धर्म उदित होता है; शम-धर्मसे 'शान्त'-रस होता है, इसलिये शान्तरसमें श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमार्थ स्वरूप हैं। समस्त विश्व ही (श्रीकृष्णपर आश्रित होनेपर भी श्रीकृष्ण-स्वरूपसे पृथक् अन्य) 'इतर' वस्तु है—यही निष्ठा लक्षित होती है॥ 210॥

अनुभाष्य—शान्तरसमें जड़ीय-भोगबुद्धिके दूर होने पर जीवकी स्वरूपबुद्धि उदित होती है। उनका नित्य स्वरूप ही श्रीकृष्णमें नित्य एकनिष्ठता-धर्मसे युक्त है। श्रीभगवान्ने उद्धवको अपने मुखसे कहा है कि 'शम'-शब्दका अर्थ 'कृष्णैकनिष्ठता' है॥ 210॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (3/1/47)में :—

शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति श्रीभगवद्वचः।
तनिष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्तरतिं बिना॥ 211॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 211॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुझमें निष्ठ-बुद्धिसे 'शमगुण'—इस भगवद्-वाक्यसे समझना होगा कि शान्तरतिके बिना भगवन्निष्ठा-अत्यन्त दुर्लभ है॥ 211॥

अनुभाष्य—

बुद्धेः मन्निष्ठता (कृष्णैकनिष्ठता) 'शमः' इति श्रीभगवद्वचः (उद्धवं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम्); एतां शान्तरतिं बिना बुद्धेः तन्निष्ठा (भगवन्निष्ठा) दुर्घटा (दुर्घटनीया)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 211॥

श्रीमद्भागवत (11/19/36)में :—

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः।
तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः॥ 212॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 212॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुझमें निष्ठ-बुद्धिसे 'शम' गुण, इन्द्रिय-संयमको 'दम', दुःख-सहन करनेका नाम 'तितिक्षा', जिह्वा और उपस्थको जीतनेका नाम 'धृति' है॥ 212॥

अनुभाष्य—उद्धवके प्रश्नके उत्तरमें श्रीकृष्णकी उक्ति,—

बुद्धेः मन्निष्ठता (न तु शान्तिमात्रं) 'शमः'; इन्द्रियसंयमः [न चौरादि-दमनं] 'दमः'; दुःखसंमर्षः (आत्मकृतविपाकस्य, विहित-दुःखस्य वा, सन्मर्षः सहनं, न तु भारादेः) 'तितिक्षा'; जिह्वोपस्थ जयः (जिह्वोपस्थयोः जयः वेगधारणं, न तु अनुद्वेगमात्रं) 'धृतिः'।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 212॥

कृष्ण बिना तृष्णा-त्याग—तार कार्य मानि।
अतएव 'शान्त' कृष्णभक्त एक जानि॥ 213॥

स्वर्ग, मोक्ष कृष्णभक्त 'नरक' करि' माने।
कृष्णनिष्ठा, तृष्णा-त्याग—शान्तेर 'दुइ' गुणे॥ 214॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-सम्बन्ध बिना समस्त प्रकारकी कामनाओंका त्याग ही शान्तरसके भक्तका कार्य है। इसलिये शान्तरसके आश्रितको भी एक श्रीकृष्णभक्त माना जाता है। श्रीकृष्णभक्त स्वर्ग तथा मोक्षको भी नरकके समान ही मानता है। श्रीकृष्णके प्रति निष्ठा और अन्यान्य तृष्णाओंका त्याग—ये शान्तरसके भक्तके दो गुण हैं॥ 213-214॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णसे अतिरिक्त अन्य वस्तुओंमें तृष्णारहित होना ही शान्तरसका कार्य स्वीकृत है; इसलिये एकमात्र श्रीकृष्णभक्त ही शान्त है। *'दुई गुणे'*—अर्थात् श्रीकृष्णनिष्ठा और श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं अथवा द्रव्योंमें लोभका त्याग—ये दो गुण हैं॥ 213-214॥

श्रीमद्भागवत (6/17/28)में :—

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः॥ 215॥

अनुवाद—स्वर्ग, अपवर्ग (मुक्ति) और नरकको एक समान देखनेवाले श्रीनारायण-भक्त किसीसे भी भयभीत नहीं होते॥ 215॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 9/270 संख्या देखें॥ 215॥

सभी भगवद्भक्तोंमें ही शान्त-रस विद्यमान :—

एइ दुइ गुण व्यापे सब भक्तजने।
आकाशेर 'शब्द'-गुण येन भूतगणे॥ 216॥

अनुवाद—श्रीकृष्णनिष्ठा और तृष्णा-त्याग—ये दो गुण सभी रसके भक्तोंमें विद्यमान रहते हैं। जैसे आकाशका 'शब्द'-गुण अन्य चारों भूतोंमें रहता है॥ 216॥

अनुभाष्य—*'सब भक्तजने'*—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारके भक्तोंमें ही अवस्थित है।

'आकाशका शब्दगुण'—मध्यलीला 8/85-87 संख्या देखें॥ 216॥

शान्तरसमें—श्रीकृष्णके प्रति निरपेक्ष-भाव :—

शान्तेर स्वभाव—कृष्णे ममता-गन्धहीन।
'परंब्रह्म'-'परमात्मा'-ज्ञान-प्रवीण॥ 217॥

अनुवाद—शान्तरसके भक्तके स्वभावमें श्रीकृष्णके प्रति ममताकी गन्ध भी नहीं होती। उनमें केवल परमब्रह्म (निराकार ब्रह्म) और परमात्माका ज्ञान ही प्रबल होता है॥ 217॥

दास्यरसमें—शान्तरस और सेवा :—

केवल 'स्वरूप-ज्ञान' हय शान्तरसे।
'पूर्णैश्वर्यप्रभु-ज्ञान' अधिक हय दास्ये॥ 218॥

ईश्वरज्ञान, सम्भ्रम-गौरव प्रचुर।
'सेवा' करि' कृष्णे सुख देन निरन्तर॥ 219॥

शान्तेर गुण दास्ये आछे, अधिक—'सेवन'।
अतएव दास्यरसेर एइ 'दुइ' गुण॥ 220॥

अनुवाद—शान्तरसमें जीवको केवल अपने स्वरूपका ज्ञान होता है। किन्तु दास्यरसमें जीवको श्रीकृष्णका अधिक ज्ञान होता है और वह उन्हें 'पूर्णैश्वर्यमय प्रभु'के रूपमें जानता है। दास्यरसके भक्त श्रीकृष्णको ईश्वर जानते हैं और उनके प्रति प्रचुर सम्भ्रम और गौरव भाव होता है। वे श्रीकृष्णकी सेवा करके उन्हें निरन्तर सुख प्रदान करते हैं। शान्तरसके गुण दास्यरसमें तो होते ही हैं, और साथमें 'सेवाकी भावना'—एक अधिक गुण होता है। इसलिये दास्यरसमें श्रीकृष्णनिष्ठा और सम्भ्रम सेवा—ये दो गुण होते हैं॥ 218-220॥

सख्यरसमें—शान्तको अपनेमें समाया दास्यरस + विश्रम्भ-ममता :—

शान्तेर गुण, दास्येर सेवन—सख्ये दुइ हय।
दास्येर 'सम्भ्रम-गौरव'-सेवा, सख्ये 'विश्वास'-मय॥ 221॥

कान्धे चड़े, कान्धे चड़ाय, करे क्रीड़ा-रण।
कृष्णे सेवे, कृष्णे कराय आपन सेवन!॥ 222॥

विश्रम्भ-प्रधान सख्य—गौरव-सम्भ्रम-हीन।
अतएव सख्य-रसेर 'तिन' गुण—चिह्न॥ 223॥

'ममता' अधिक, कृष्णे आत्मसम ज्ञान।
अतएव सख्यरसेर वश भगवान्॥ 224॥

अनुवाद—सख्यरसमें शान्तरसके दोनों गुण और दास्यरसका सेवाका गुण होते हैं। सख्यरसमें दास्यरसकी सम्भ्रम गौरवमयी सेवा परिवर्तित होकर विश्वासमयी हो जाती है। सखा कभी श्रीकृष्णके कन्धेपर चढ़ जाते हैं और कभी श्रीकृष्णको अपने कन्धेपर चढ़ा लेते हैं। कभी खेलमें उनसे कृत्रिम युद्ध करते हैं। कभी वे श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं और कभी श्रीकृष्णसे अपनी सेवा करवाते हैं! सख्यरसमें विश्रम्भकी प्रधानता होनेके कारण वह गौरव-सम्भ्रमसे रहित होता है। इसलिये सख्यरसके तीन गुण उसके लक्षण हैं। सख्यरसमें श्रीकृष्णके प्रति अधिक ममता होती है और वे श्रीकृष्णको अपने समान ही मानते हैं, इसलिये भगवान् सख्यरसके भक्तोंके वशीभूत रहते हैं॥ 221–224॥

वात्सल्यरसमें—दास्यको अपनेमें समाया सख्यरस + श्रीकृष्णको अपना पाल्य समझना :—

वात्सल्ये शान्तेर गुण, दास्येर सेवन।
सेइ सेइ सेवनेर इँहा नाम—'पालन'॥ 225॥

सख्येर गुण—'असङ्कोच', 'अगौरव' सार।
ममताधिक्ये ताड़न-भर्त्सन-व्यवहार॥ 226॥

आपनारे 'पालक' ज्ञान, कृष्णे 'पाल्य'-ज्ञान।
'चारि' गुणे वात्सल्य रस—अमृत-समान॥ 227॥

से अमृतानन्दे भक्त सह डुबेन आपने।
'कृष्ण—भक्तवश' गुण कहे ऐश्वर्य-ज्ञानिगणे॥ 228॥

अनुवाद—वात्सल्यरसमें शान्तरसके गुण, दास्यरसकी सेवा विद्यमान है, किन्तु दास्यरसकी सेवाओंका नाम वात्सल्य-रसमें 'पालन' हो जाता है। सख्यरसके गुणका सार 'असङ्कोच' और 'अगौरव' है। वात्सल्यरसके भक्तोंमें श्रीकृष्णके प्रति ममता अधिक होनेके कारण उनके व्यवहारमें श्रीकृष्णको डाँटना-डपटना, भर्त्सना करना आदि भी देखा जाता है। वात्सल्यरसके भक्त स्वयंको श्रीकृष्णका पालन करनेवाले जानकर श्रीकृष्णको अपना पाल्य मानते हैं। इन चार गुणोंसे वात्सल्यरस अमृतके समान है। उस अमृतानन्दमें श्रीकृष्ण भक्तोंके साथ स्वयं भी डूब जाते हैं। इसलिये ऐश्वर्यज्ञानसे युक्त ज्ञानी लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके वशीभूत रहते हैं॥ 225–228॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णमें एकनिष्ठा, और (उसके कारण) अन्य वस्तुओंमें तृष्णा-त्याग—ये दो शान्तरसके गुण हैं। जैसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सभी भूतोंमें आकाशका 'शब्दमात्र' गुण व्याप्त है, उसी प्रकार शान्तरसके गुण दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर-रसमें हैं। शान्तरसमें इन दो गुणोंके रहनेपर भी ममता ('वे मेरे ही हैं' ऐसा धर्म) नहीं है, इसलिये उस रसकी उपास्य-वस्तु—'परब्रह्म', 'परमात्मा' आदि हैं; यह उपासना-क्रिया—ज्ञान-प्रधान है। 'वे परमात्मा ही मेरे प्रभु हैं और मैं ही उनका नित्यदास हूँ'—ऐसा ममता-ज्ञान जब उसमें संयुक्त होता है, तब शान्तरस विकसित होकर दास्यरसमें परिणत होता है; तथापि उसमें 'ईश्वरज्ञान' और सम्भ्रमरूप 'गौरव' प्रचुर मात्रामें होता है। शान्तरसमें 'सेवा' नहीं होती, दास्यरसमें ही सेवा आरम्भ होती है। दास्यरसमें—शान्तके गुण और 'ममता'—ये दो गुण देखे जाते हैं। पुनः, सख्यरसमें—शान्तके गुण और दास्यके गुण तो होते ही हैं, उनमें विश्वासमय प्रेम भी थोड़ा संयुक्त होता है। विश्वासका नाम ही

'विश्रम्भ' है, उस विश्रम्भ-प्रधान सख्यरसमें गौरव-सम्भ्रम नहीं होता, इसलिये सख्यरसमें 'तीन' गुण होते हैं। दास्यमें जो 'ममता' थी, सख्यमें 'आत्मसम' होकर वही वर्द्धित होती है। वात्सल्यमें—शान्तके गुण, दास्यके सेवनकी 'पालन'रूपमें परिणति; विशेषतः सख्यका असङ्कोच और अगौरव-गुण भी ममताकी आधिक्यसे ताड़न-भर्त्सन-व्यवहार एवं स्वयंको 'पालक' जानकर श्रीकृष्णको 'पाल्य' मानना—इन चार-रसोंके गुणोंसे 'वात्सल्य' अमृतके समान बन गया है॥ 218-227॥

अनुभाष्य—ऐश्वर्यप्रधान ज्ञानीगण निजभक्त-वश्यताको श्रीकृष्णका गुण कहते हैं॥ 227॥

पद्मपुराणके 'दामोदराष्टक'में :—

इतीदृक्स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम्।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं
पुनः प्रेमतस्त्वां शतावृत्ति वन्दे॥ 229॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 229॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भगवन्, मैं आपकी सैकड़ों-सैकड़ों बार प्रेमपूर्वक वन्दना करता हूँ; क्योंकि इस प्रकार अपनी लीलाके द्वारा आप गोपियोंको आनन्दकुण्डमें निमज्जित करते हैं एवं आप भक्तोंसे पराजित हो जाते हैं—ऐसा ऐश्वर्य-ज्ञानसम्पन्न भक्तोंको बतलाते हैं॥ 229॥

अनुभाष्य—

इति (अनया दामोदरलीलया) ईदृक्स्वलीलाभिः (ईदृशीभिः दामोदरलीलासदृशीभिः स्वाभिः लीलाभिः क्रीड़ाभिः) स्वघोषं (स्वस्य प्रेमवतः गोपादीन् सर्वमेव) आनन्दकुण्डे निमज्जन्तं (परमसुखविशेषमनुभवन्तं) तदीयेशितज्ञेषु (भगवदैश्वर्यपरेषु भक्तेषु) भक्तैर्जितत्वम् (आत्मनो भक्तवश्यताम्) आख्यापयन्तं (प्रथयन्तम्) त्वाम् (ईश्वरं) प्रेमतः (भक्तिविशेषेण) शतावृत्ति (यथा स्यात् तथा शतवारान्) अहं वन्दे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 229॥

मधुररसमें—दास्य और सख्यको अपनेमें समाया वात्सल्य + अपने अङ्गोंके द्वारा सेवा :—

मधुर-रसे—कृष्णनिष्ठा, सेवा अतिशय।
सख्येर असङ्कोच, लालन-ममताधिक्य हय॥ 230॥
कान्तभावे निजाङ्ग दिया करेन सेवन।
अतएव मधुर-रसेर हय 'पञ्च' गुण॥ 231॥

अनुवाद—मधुररसमें श्रीकृष्णनिष्ठा, अतिशय सेवा, सख्यका असङ्कोच तथा लालन-ममताका आधिक्य होता है। कान्तभावमें सर्वाङ्ग देकर श्रीकृष्णकी सेवा होती है। इसलिये मधुर-रसमें 'पाँचों' गुण होते हैं॥ 230-231॥

आकाशादिका शब्दादि जिस प्रकार पृथ्वीके गन्धके गुणमें पर्यवसित हो जाता है, उसी प्रकार मधुररसमें अन्य चार रस विद्यमान :—

आकाशादि गुण येन पर पर भूते।
एक-दुइ-तिन-चारि-क्रमे पञ्च पृथिवीते॥ 232॥
एइमत मधुरे सब भाव-समाहार।
अतएव आस्वादाधिक्ये करे चमत्कार॥ 233॥

अनुवाद—आकाशादिके गुण जैसे अगले अगले भूतोंमें होते हैं, वैसे एक-दो-तीन-चारके क्रमसे बढ़ते हुए पृथ्वीमें पाँचों गुण विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार मधुररसमें समस्त प्रकारके रसोंके भाव विद्यमान रहते हैं। इसलिये मधुररसमें आस्वादनकी अधिकता चमत्कार उत्पन्न करती है॥ 232-233॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/87 संख्या देखें॥ 232॥

उन्नीसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

महाप्रभुका यह दिग्दर्शन भक्तिरसामृतसिन्धुमें विस्तृत रूपसे वर्णित :—

एइ भक्तिरसेर करिलाङ, दिग्दरशन।
इहार विस्तार मने करिह भावन॥ 234॥
भाविते भाविते कृष्ण स्फुरये अन्तरे।
कृष्णकृपाय अज्ञ पाय रससिन्धु-पारे॥"235॥

अनुवाद—(महाप्रभु अब उपसंहार करते हुए कह रहे हैं)—इस प्रकार मैंने तुम्हें भक्तिरसका दिग्दर्शन कराया है। इसे विस्तृत रूपसे जाननेके लिये तुम इसपर मनन करना। मनन करते-करते श्रीकृष्ण तुम्हारे हृदयमें स्फुरित होंगे। श्रीकृष्णकी कृपासे अज्ञ व्यक्ति भी रससिन्धुके तट तक पहुँच जाता है॥ 234-235॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शान्तकी 'कृष्णनिष्ठा', दास्यकी 'अतिशय सेवा', सख्यकी 'असङ्कोच सेवा' और वात्सल्यका 'ममताधिक्य लालन'—इन सब भावोंमें और कान्ता-भाव-गत 'निजाङ्ग-दानरूप-सेवा' दृढ़रूपसे संयुक्त होनेपर पाँच गुणोंसे युक्त 'मधुर-रस' होता है। उसमें सभी भावोंका ही संग्रह है। इसलिये आस्वादनका आधिक्य होनेके कारण इसमें अत्यन्त चमत्कारिता लक्षित होती है। संक्षेपमें कहे गये इस भक्ति-रसका सूत्र ही विचारपूर्वक भक्तिरसामृतसिन्धु-रूप शास्त्रको उदित करायेगा॥ 234-235॥

उन्नीसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

प्रयागसे महाप्रभुकी काशी यात्रा :—

एत बलि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन।
वाराणसी चलिबारे प्रभुर हैल मन॥ 236॥

प्रभाते उठिया यबे करिला गमन।
तबे ताँर पदे रूप करे निवेदन॥ 237॥

महाप्रभुके अनुगमनके लिये श्रीरूपकी आज्ञा-याचना :—

"आज्ञा-हय, आसि मुञि श्रीचरण-सङ्गे।
सहिते ना पारि मुञि विरह-तरङ्गे॥"238॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभुने श्रीरूपका आलिङ्गन किया। महाप्रभुने अब वाराणसी जानेका निश्चय किया। अगले दिन प्रातःकाल उठकर जब महाप्रभु जाने लगे, तब श्रीरूप गोस्वामीने उनके चरणकमलोंमें निवेदन किया,—"यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी आपके साथ चलूँ, मैं आपके विरहकी तरङ्गको सहन नहीं कर सकता॥"236-238॥

श्रीरूपको वृन्दावन जाने और बादमें वहाँसे पुरीमें आकर मिलनेकी आज्ञा देना :—

प्रभु कहे,—"तोमार कर्त्तव्य, आमार वचन।
निकटे आसियाछ तुमि, याह वृन्दावन॥ 239॥

वृन्दावन हैते तुमि गौड़देश दिया।
आमारे मिलिबा नीलाचलेते आसिया॥"240॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मेरे वचनका पालन करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम वृन्दावनके निकट आ पहुँचे हो, इसलिये वृन्दावन जाओ। वृन्दावनसे तुम गौड़देश (बङ्गाल) होते हुए मुझसे नीलाचलमें आकर मिलना॥"239-240॥

महाप्रभुका नौकापर चढ़ना, श्रीरूपकी मूर्च्छा :—

ताँरे आलिङ्गिया प्रभु नौकाते चड़िला।
मूर्च्छित हञा तेँहो ताहाञि पड़िला॥ 241॥

अनुवाद—श्रीरूपको आलिङ्गन करके महाप्रभु नौकापर चढ़ गये। श्रीरूप मूर्च्छित होकर वहींपर गिर पड़े॥ 241॥

श्रीरूप और अनुपमकी वृन्दावन-यात्रा :—

दाक्षिणात्य-विप्र ताँरे घरे लञा गेला।
तबे दुइ भाइ वृन्दावनेरे चलिला॥ 242॥

अनुवाद—दक्षिण भारतीय ब्राह्मण उनको अपने घरपर ले गये। तब वहाँसे दोनों भाई (श्रीरूप और श्रीवल्लभ) वृन्दावनकी ओर चल दिये॥ 242॥

महाप्रभुका काशीमें आगमन :—

महाप्रभु चलि' चलि' आइला वाराणसी।
चन्द्रशेखर मिलिला ग्रामेर बाहिरे आसि'॥ 243॥

वैद्य शेखरके स्वप्नके अनुसार महाप्रभुका दर्शन और अपने घरमें लाना :—

रात्रे तेँहो स्वप्न देखे,—प्रभु आइला घरे।
प्रातःकाले आसि' रहे ग्रामेर बाहिरे॥ 244॥

आचम्बिते प्रभु देखि' चरणे पड़िला।
आनन्दित हञा निज-गृहे लञा गेला॥ 245॥

अनुवाद—महाप्रभु चलते-चलते वाराणसी आ पहुँचे। श्रीचन्द्रशेखर नगरसे बाहर आकर उनसे मिले। रात्रिके समय श्रीचन्द्रशेखरने स्वप्न देखा था कि महाप्रभु उनके घरपर आये हैं। इसलिये वे प्रातःकालमें ही महाप्रभुको लेने नगरके बाहर आ गये। अचानक महाप्रभुको देखकर श्रीचन्द्रशेखर उनके चरणकमलोंमें गिर पड़े और आनन्दित होकर उन्हें अपने घरपर ले गये॥ 243-245॥

महाप्रभुको श्रीतपनमिश्रका और बलभद्रको श्रीचन्द्रशेखरका निमन्त्रण :—

तपनमिश्र शुनि' आसि' प्रभुरे मिलिला।
इष्टगोष्ठी करि' प्रभुर निमन्त्रण कैला॥ 246॥

निज घरे लञा प्रभुरे भिक्षा कराइल।
भट्टाचार्ये चन्द्रशेखर निमन्त्रण कैल॥ 247॥

अनुवाद—महाप्रभुके आगमनके विषयमें सुनकर श्रीतपनमिश्र श्रीचन्द्रशेखरके घरपर आकर उनसे मिले। वहाँपर वार्तालाप करनेके बाद उन्होंने महाप्रभुको अपने घर आनेका निमन्त्रण दिया। श्रीतपनमिश्र महाप्रभुको अपने घरपर ले गये और उन्होंने महाप्रभुको भोजन कराया। श्रीबलभद्र भट्टाचार्यको श्रीचन्द्रशेखरने भोजनका निमन्त्रण दिया॥ 246-247॥

काशीमें रहनेके समय तक महाप्रभुको भिक्षा देनेके लिये मिश्रकी आज्ञाकी याचना :—

भिक्षा-कराञा मिश्र कहे प्रभु-पाय धरि'।
"एक भिक्षा मागि, मोरे देह कृपा करि'॥ 248॥

यावत् तोमार हय काशीपुरे स्थिति।
मोर घर बिना भिक्षा ना करिबा कति॥"249॥

अनुवाद—महाप्रभुको भोजन करानेके बाद श्रीतपन मिश्रने महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंको पकड़कर कहा,—"मैं आपसे एक भिक्षा माँगता हूँ, कृपा करके आप मुझे वह भिक्षा प्रदान कीजिये। जब तक आप काशीमें रहेंगे, मेरे घरके अतिरिक्त अन्य कहीं भी भोजन ग्रहण मत कीजियेगा॥"248-249॥

मायावादी संन्यासियोंके सङ्गको दुःसङ्ग जानकर महाप्रभुके द्वारा भक्तकी प्रार्थनापर सम्मति :—

प्रभु जानेन—'दिन पाँच-सात से रहिब।
संन्यासीर सङ्गे भिक्षा काँहा ना करिब॥'250॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीतपनमिश्रके घरमें भिक्षा तथा श्रीचन्द्रशेखरके घरमें रहना :—

एत जानि' ताँर भिक्षा कैला अङ्गीकार।
वासा-निष्ठा कैला चन्द्रशेखरेर घर॥ 251॥

अनुवाद—महाप्रभु जानते थे,—'मैं काशीमें पाँच-सात दिन ही रहूँगा और मायावादी संन्यासियोंके साथ कहींपर भी भिक्षा ग्रहण नहीं करूँगा।' ऐसा जाननेके कारण महाप्रभुने श्रीतपनमिश्रकी भिक्षाके निमन्त्रणको स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने श्रीचन्द्रशेखरके घरमें ही रहनेका निश्चय किया॥ 250-251॥

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र
प्रभु ताँरे स्नेह करि' कृपा प्रकाशिला॥ 252॥

महाप्रभु आइला शुनि' शिष्ट शिष्ट जन।
ब्राह्मण, क्षत्रिय आसि' करेन दरशन॥ 253॥

अनुवाद—महाराष्ट्र
मिले। महाप्रभुने उन्हें बहुत स्नेह करके कृपा प्रकाशित की। महाप्रभुके आनेका समाचार सुनकर ब्राह्मण तथा क्षत्रिय समाजके सज्जन व्यक्तियोंने आकर उनका दर्शन किया॥ 252-253॥

श्रीरूप-शिक्षाका संक्षेपमें वर्णन :—

श्रीरूप-उपरे प्रभुर यत कृपा हैल।
अत्यन्त विस्तार-कथा संक्षेपे कहिल॥ 254॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीपर महाप्रभुकी जितनी कृपा हुई, उस अत्यन्त विस्तृत कथाको मैंने केवल संक्षेपमें ही वर्णन किया है॥ 254॥

श्रीरूपशिक्षा-श्रवणसे श्रीचैतन्यचरणोंमें प्रेमभक्ति-प्राप्ति :—

श्रद्धा करि' एइ कथा शुने येइ जने।
प्रेमभक्ति पाय सेइ चैतन्य-चरणे॥ 255॥

अनुवाद—श्रद्धापूर्वक जो व्यक्ति इस कथाका श्रवण करता है, उसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंमें प्रेमभक्तिकी प्राप्ति होती है॥ 255॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 256॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे श्रीरूपानुग्रहो नाम उनविंश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 256॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें श्रीरूपानुग्रह-नामक उन्नीसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

बीसवाँ अध्याय

कथासार—जब श्रीसनातन गोस्वामी गौड़देशकी कारागारमें बन्द थे, तब श्रीरूपगोस्वामीने उन्हें पत्रमें लिखा,—'महाप्रभु मथुरा गये हैं।' श्रीसनातनने कारागारके रक्षकको मीठे वचन कहकर सात हजार मुद्राएँ दीं और गङ्गा पार करके पलायन कर गये। साथी ईशानके पास आठ स्वर्णमुद्राएँ होनेके कारण पातड़ा-पर्वतके जमींदारने उन मुद्राओंको हरण करनेकी आशासे श्रीसनातनका आतिथ्य-सत्कार किया। ईशानसे पूछनेपर श्रीसनातनको पता चला कि उसके पास स्वर्णमुद्राएँ हैं। उन मुद्राओंको अनर्थरूप जानकर उन्हें जमींदारको देकर उन्होंने पर्वतमय देशको पार किया। पर्वत पार करके श्रीसनातनने ईशानको देश जानेके लिये विदायी दी। हाजिपुर पहुँचनेपर उनके बहनोई राजकर्मचारी श्रीकान्त उनसे मिले और समस्त वृत्तान्त सुनकर उन्हें गङ्गा पार करा दी। तब श्रीसनातन चलते-चलते काशीधाममें आकर श्रीचन्द्रशेखरके द्वारपर पहुँचे; महाप्रभुने उन्हें बुलवाया और उनके प्रति कृपा दिखलाते हुए उन्हें वेश बदलने और भद्र (सज्जन) व्यक्तिकी भाँति दिखने आज्ञा दी। श्रीसनातन केश मुँड़वाकर और स्नान करके आये एवं उन्होंने श्रीतपनमिश्रके द्वारा दिये गये पुराने वस्त्रको कौपीन और बहिर्वास बनाकर पहन लिया। बादमें उन्होंने अपने साथ लाये मूल्यवान कम्बलको गङ्गातटपर एक फटे-पुराने चिथड़ेसे बदलकर उसे धारण करके महाप्रभुको आनन्दित किया। श्रीसनातनने वहाँ रहकर जब महाप्रभुसे तत्त्वकी जिज्ञासा की, तब महाप्रभुने पहले 'जीवके स्वरूप' और 'श्रीकृष्णशक्ति'के विषयमें समझाया, बादमें सम्बन्ध-ज्ञान सिखलाकर अभिधेय-रूपा भक्तिकी व्याख्या की। श्रीकृष्णके स्वरूप-विचारमें ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्‌का विचार, स्वयंरूप और तदेकात्म और आवेश, उनमें 'वैभव' और 'प्राभव'-विलास आदिके विचारसे भगवान्‌की मूर्तियोंके भेद आदिके विषयमें बतलाया; उसके बाद पुरुषावतारके माया-वैभव, मन्वन्तरावतार, गुणावतार, शक्त्यावेशावतार और बाल्य-पौगण्ड-अवस्थाके भेदसे सभी लीलाओं एवं किशोर-लीलाकी नित्यताकी व्याख्या की।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्रीचैतन्यमहाप्रभुम्।
नीचोऽपि यत्प्रसादात् स्याद्भक्तिशास्त्रप्रवर्त्तकः॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनकी कृपासे नीच व्यक्ति भी भक्तिशास्त्रका प्रवर्त्तक हो सकता है, उन अनन्त-अद्भुत-ऐश्वर्यसे युक्त श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

यत्प्रसादात् (यस्य कृपया) नीचः (विषयी) अपि भक्ति-शास्त्र-प्रवर्त्तकः (भक्तिशास्त्रलेखकः) स्यात्, तम् अनन्ताद्भुतैश्वर्यम् (अशेषापूर्वैश्वर्यपूर्णं) श्रीचैतन्यमहाप्रभुम् अहं वन्दे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्र प्रभुकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

बन्दी श्रीसनातनको श्रीरूपके द्वारा लिखित पत्र-प्राप्ति :—

एथा गौड़े सनातन आछे बन्दिशाले।
श्रीरूप-गोसाञि पत्री आइल हेनकाले॥3॥

अनुवाद—जब श्रीसनातन गौड़देशमें कारागारमें बन्द

थे, तब उनके पास श्रीरूप-गोस्वामीका एक पत्र आया॥3॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पत्री'*—उद्भटचन्द्रिका-ग्रन्थके टीकाकारने लिखा है कि निम्नलिखित श्लोक श्रीरूपने बाक्लासे लिखकर गौड़देशके कारागारमें श्रीसनातनके पास भेजा था। इस श्लोकमें महाप्रभुके मथुरा जानेका सङ्केत होनेके कारण इसे श्रीरूप गोस्वामीकी पत्री कहकर विश्वास किया जा सकता है—

"यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी, रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला।
इति विचिन्त्य कुरुस्व मनः स्थिरं, न सदिदं जगदित्यवधारय॥"

[अर्थात् "यदुपतिकी मथुरापुरी कहाँ गयी है, रघुपतिकी ही उत्तरकोशला (अयोध्या) कहाँ गयी है—इसपर विशेषरूपसे चिन्ता करके मन स्थिर कीजिये और यह दृश्यमान् जगत् नित्य नहीं है,—इससे अवगत होइये।"]॥3॥

श्रीसनातनका आनन्द और कारागार-रक्षककी प्रशंसा :—

पत्री पाञा सनातन आनन्दित हैला।
यवन-रक्षक-पाश कहिते लागिला॥4॥

"तुमि एक जिन्दापीर महाभाग्यवान्।
केताब-कोराण-शास्त्रे आछे तोमार ज्ञान॥5॥

एक बन्दी छाड़े यदि निज-धर्म देखिया।
संसार हइते तारे मुक्त करेन गोसाञा॥6॥

प्रत्युपकारकी प्रार्थना :—

पूर्वे आमि तोमार करियाछि उपकार।
तुमि आमा छाड़ि' कर प्रत्युपकार॥7॥

शुद्धहरिभजनके लिये लौकिक सुनीतिके विचारसे घृणित चेष्टाकी भी श्रीसनातनके द्वारा अनुकूलरूपमें नियुक्ति—यही सत्य-धर्म :—

पाँच सहस्र मुद्रा दिब, तुमि कर अङ्गीकार।
पुण्य, अर्थ,—दुइ लाभ हइबे तोमार॥"8॥

अनुवाद—पत्रको प्राप्त करके श्रीसनातन बहुत प्रसन्न हुए। तब वे कारागार-अध्यक्षके पास गये और उनसे कहा,—"आप एक जिन्दापीर हैं और महासौभाग्यशाली हैं। आपको कुरान और अन्य शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान भी है। यदि कोई अपने धर्मका पालन करते हुए किसी एक बन्दीको मुक्त कर देता है, तब फिर खुदा उसे संसारसे मुक्त कर देते हैं। पहले मैंने आपके ऊपर उपकार किया था और अब मैं कठिनाईमें हूँ, इसलिये आप मुझे कारागारसे मुक्त करके उसका प्रत्युपकार करो। मैं आपको पाँच हजार स्वर्ण मुद्राएँ भी दूँगा, आप उसे स्वीकार करें। मुझे छोड़नेसे आपको पुण्य और धन—इन दोनोंकी प्राप्ति होगी॥"4-8॥

अनुभाष्य—*'जिन्दापीर'*—जीवित पीर। *'गोसाञा'*—खुदा, भगवान्॥5-6॥

कारागार-रक्षकको राजाका भय :—

तबे सेइ यवन कहे,—"शुन, महाशय।
तोमारे छाड़िब, किन्तु करि राजभय॥"9॥

अनुवाद—तब उस यवनने कहा,—"सुनो, महाशय! मैं आपको छोड़ना तो चाहता हूँ, किन्तु मुझे बादशाहका भय है॥"9॥

श्रीसनातनके द्वारा परामर्श देना :—

सनातन कहे,—"तुमि ना कर राजभय।
दक्षिण गियाछे, यदि लेउटि' आओयय॥10॥

ताँहारे कहिओ—सेइ बाह्यकृत्ये गेल।
गङ्गार निकट गङ्गा देखि झाँप दिल॥11॥

अनेक देखिल, तार लाग् ना पाइल।
दाडुका-सहित डुबि काँहा बहि' गेल॥12॥

किछु भय नाहि, आमि ए-देशे ना रब।
दरवेश हञा आमि मक्काके याइब॥"13॥

अनुवाद—श्रीसनातनने उससे कहा,—"आप बादशाहका भय मत कीजिये। अभी तो वे दक्षिणमें युद्ध करनेके लिये गये हैं, जब वे लौटकर आयेंगे, तो उनसे कहना—वे (साकर मल्लिक) गङ्गाके निकट मलत्याग करनेके लिये गङ्गा तटपर गये थे और

गङ्गाको देखकर उन्होंने उसीमें छलाँग लगा दी। हमने उन्हें बहुत खोजा, किन्तु उनका कहीं भी पता नहीं चला। वे बेड़ीके साथ ही डूबकर न जाने कहाँ बह गये? आपको भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं इस गौड़देशमें नहीं रहूँगा, दरवेश (फकीर) बनकर मक्कामें चला जाऊँगा॥"10–13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*दाडुका'*—बेड़ी॥12॥

अनुभाष्य—*'लेउटि' आओयय'*—लौट आनेपर। यह पश्चिम भारतकी हिन्दी भाषा है॥10॥

परन्तु कारागार-रक्षक इससे सन्तुष्ट नहीं होनेपर उसे और अधिक रिश्वत-देनेकी चेष्टा :—

तथापि यवन-मन प्रसन्न ना देखिला।
सात-हाजार मुद्रा तार आगे राशि कैला॥14॥

अनुवाद—इस प्रस्तावसे भी उस यवनके मनको सन्तुष्ट नहीं देखकर श्रीसनातनने सात हजार मुद्राएँ उसके आगे रख दीं॥14॥

श्रीसनातनकी कारागारसे मुक्ति :—

लोभ हइल यवनेर मुद्रा देखिया।
रात्रे गङ्गापार कैल दाडुका काटिया॥15॥

अनुवाद—उन मुद्राओंको देखकर उस यवनमें लोभ जाग उठा। उसने रात्रिके समय श्रीसनातन गोस्वामीकी बेड़ियोंको काटकर उन्हें गङ्गा पार करने दी॥15॥

ईशानके साथ श्रीसनातनका पातड़ा-पर्वतपर आगमन :—

गड़द्वार-पथ छाड़िला, नारे ताँहा याइते।
रात्रि-दिन चलि' आइला पातड़ा-पर्वते॥16॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामी इस प्रकार कारागारसे मुक्त हो गये, परन्तु वे किलोंके सामने राजमार्गसे नहीं जा सकते थे, इसलिये उस मार्गको उन्होंने छोड़ दिया। वे रात-दिन चलते-चलते पातड़ा-पर्वतपर आ पहुँचे॥16॥

(लुटेरे) जमींदारके साथ भेंट :—

तथा एक भौमिक हय, तार ठाञि गेला।
'पर्वत पार कर आमाय'—विनति करिला॥17॥

अनुवाद—वहाँपर एक जमींदार रहता था, श्रीसनातन गोस्वामी उसके पास गये और उससे विनती की—'आप हमें पर्वत पार करा दीजिये॥'17॥

जमींदारको ज्योतिषीसे श्रीसनातनके पास धन होनेका पता चलना और श्रीसनातनकी हत्याका सङ्कल्प :—

सेइ भूञार सङ्गे हय हातगणिता।
भूञार काणे कहे सेइ जानि' एइ कथा॥18॥

"इँहार ठाञि सुवर्णेर अष्ट मोहर हय।"
शुनि' आनन्दित भूञा सनातने कय॥19॥

श्रीसनातनका जमींदारके द्वारा आदर-सम्मान; श्रीसनातनका स्नान और भोजन :—

"रात्र्ये पर्वत पार करिब निज-लोक दिया।
भोजन करह तुमि रन्धन करिया॥"20॥

अनुवाद—उस जमींदारके साथमें एक ज्योतिषी था। उस ज्योतिषीने जमींदारके कानमें कहा,—"इनके पास सोनेकी आठ मोहरें हैं।" यह बात सुनकर जमींदारने प्रसन्न होकर श्रीसनातन गोस्वामीसे कहा,—"रातमें मैं अपने लोगोंको आपके साथ भेजकर आपको पर्वत पार करा दूँगा। अभी आप रसोई बनाकर भोजन ग्रहण कीजिये॥"18–20॥

एत बलि' अन्न दिल करिया सम्मान।
सनातन आसि' तबे कैल नदीस्नान॥21॥

दुइ उपवासे कैला रन्धन-भोजने।
राजमन्त्री सनातन विचारिला मने॥22॥

श्रीसनातनको सन्देह और आशङ्का, ईशानसे धनके विषयमें जानना :—

'एइ भूञा केने मोरे सम्मान करिल?'
एत चिन्ति' सनातन ईशाने पुछिल॥23॥

"तोमार ठाञि जानि किछु द्रव्य आछय।"
ईशान कहे,—"मोर ठाञि सात मोहर हय॥"24॥

अनुवाद—इतना कहकर जमींदारने उन्हें सम्मानपूर्वक रसोई बनानेके लिये चावल, दाल आदि दिये। श्रीसनातन गोस्वामीने पहले नदीमें जाकर स्नान किया। वे दो दिनसे उपवास कर रहे थे, इसलिये रसोई बनाकर उन्होंने भोजन ग्रहण किया। पूर्व-राजमन्त्री श्रीसनातनने अपने मनमें विचार किया,—'इस जमींदारने मेरा इतना सम्मान क्यों किया?' यह सोचकर श्रीसनातन गोस्वामीने ईशानसे पूछा,—"मुझे लगता है कि तुम्हारे पास कोई मूल्यवान वस्तु है?" ईशानने कहा,—"मेरे पास स्वर्णकी सात मोहरें हैं॥"21-24॥

अनुभाष्य—*'दुइ उपवासे'*—दो दिन उपवास करके। *'हय'*—हैं; पश्चिम भारतकी हिन्दी-भाषामें "हैं" कहते हैं॥22-24॥

ईशानको डाँटना :—

शुनि' सनातन तारे करिला भर्त्सन।
"सङ्गे केने आनियाछ एइ काल-यम?"॥25॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीसनातन गोस्वामीने ईशानको डाँट लगायी और पूछा,—"इस मृत्यु-नादको साथमें क्यों लाये हो?॥"25॥

जमींदारको धन देना और सहायताकी प्रार्थना :—

तबे सेइ सात मोहर हस्तेते करिया।
भूञार काछे याञा कहे मोहर धरिया॥26॥

"एइ सात सुवर्ण मोहर आछिल आमार।
इहा लञा धर्म देखि' पर्वत कर पार॥27॥

राजबन्दी आमि, गड़द्वार याइते ना पारि।
पुण्य हबे, पर्वत आमा देह' पार करि॥"28॥

अनुवाद—तब उन सात मोहरोंको अपने हाथमें लेकर श्रीसनातन गोस्वामी जमींदारके पास गये। अपने हाथमें मोहरें दिखाकर कहा,—"मेरे पास ये सात स्वर्णकी मोहरें हैं, इन्हें आप ले लीजिये और अपना धर्म समझकर हमें पर्वत पार करा दीजिये। मैं एक (भागा हुआ) राजबन्दी हूँ, इसलिये किलोंके साथ राजमार्गसे नहीं जा सकता। आपका बहुत पुण्य होगा यदि आप हमें पर्वत पार करा देंगे॥"25-28॥

जमींदारका हत्याके सङ्कल्पको छोड़ना; धन लेनेसे मना करना और सहायता करना स्वीकार :—

भूञा हासि' कहे,—"आमि जानियाछि पहिले।
अष्ट-मोहर हय तोमार सेवक-आँचले॥29॥

तोमा मारि' मोहर लइताम आजिकार रात्र्ये।
भाल हैल, कहिला तुमि, छुटिलाङ पाप हैते॥30॥

सन्तुष्ट हइलाङ आमि, मोहर ना लइब।
पुण्य लागि' पर्वत तोमा' पार करि' दिब॥"31॥

अनुवाद—जमींदारने हँसते हुए कहा,—"मुझे पहलेसे ही पता चल गया था कि आपके सेवकके आँचलमें आठ स्वर्ण मोहरें हैं। आप लोगोंको मारकर आज रात्रिमें मैं मोहरें ले लेता, अच्छा हुआ आपने स्वयं आकर ही बतला दिया, मैं पाप करनेसे बच गया। मैं आपके व्यवहारसे बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ, इसलिये मैं मोहरें नहीं लूँगा और पुण्य कार्य करते हुए आप लोगोंको पर्वत पार करा दूँगा॥"29-31॥

गोसाञि कहे,—"केह द्रव्य लइबे आमा मारि'।
आमार प्राण रक्षा कर द्रव्य अङ्गीकरि'॥"32॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"यदि आप इन्हें नहीं लेंगे, तो अन्य कोई हमें मारकर इन मोहरोंको ले लेगा, इसलिये आप ही इन मोहरोंको स्वीकार करके हमारे प्राणोंकी रक्षा करो॥"32॥

जमींदारकी श्रीसनातनको पर्वतको पार करनेमें सहायता :—

तबे भूञा गोसाञिर सङ्गे चारि पाइक दिल।
रात्र्ये रात्र्ये वनपथे पर्वत पार कैल॥33॥

अनुवाद—तब जमींदारने श्रीसनातन गोस्वामीके साथ चार सेवक भेजे। रात-रातमें वनके मार्गसे उन्होंने पर्वत पार किया॥ 33॥

श्रीसनातनके द्वारा ईशानसे बचे हुए धनका पूछना और देशमें भेजना :—

पार हञा गोसाञि तबे पुछिला ईशाने।
"जानि,—शेष द्रव्य किछु आछे तोमा-स्थाने॥"34॥

ईशान कहे,—"एक मोहर आछे अवशेष।"
गोसाञि कहे,—"मोहर लञा याह' तुमि देश॥"35॥

अनुवाद—पर्वतको पार करके श्रीसनातन गोस्वामीने ईशानसे पूछा,—"मैं जानता हूँ कि अभी भी कुछ मूल्यवान वस्तु तुम्हारे पास बची है।" ईशानने कहा,—"मेरे पास अब एक मोहर बची है।" श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"तुम मोहरको लेकर अपने घर लौट जाओ॥"34-35॥

अकिञ्चन, निसहाय श्रीसनातनका अकेले ही जाना :—

तारे विदाय दिया गोसाञि चलिला एकला।
हाते करोँया, छिड़ा कान्था, निर्भय हइला॥ 36॥

अनुवाद—ईशानको विदायी देकर श्रीसनातन गोस्वामी अकेले चल दिये। अब उनके हाथमें जलका पात्र और कन्धेपर पुराने वस्त्रोंको जोड़कर बना कम्बल था। श्रीसनातन गोस्वामी अब निश्चिन्त हो गये॥ 36॥

हाजिपुरमें आगमन :—

चलि' चलि' गोसाञि तबे आइला हाजिपुरे।
सन्ध्याकाले बसिला एक उद्यान-भितरे॥ 37॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामी चलते-चलते हाजिपुर आ पहुँचे। वे सन्ध्याके समय वे एक उद्यानके अन्दर जाकर बैठे॥ 37॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'हाजिपुर'*—गङ्गा-नदीके और गण्डक-नदके सङ्गम स्थलपर पटनाके दूसरी ओर हाजिपुर है॥ 37॥

वहाँ बहनोई राजसेवक श्रीकान्तके साथ भेंट :—

सेइ हाजिपुरे रहे,—श्रीकान्त ताहार नाम।
गोसाञिर भगिनीपति, करे राजकाम॥ 38॥

तिन लक्ष मुद्रा राजा दियाछे तार स्थाने।
घोड़ा मूल्य लञा पाठाय पात्सार स्थाने॥ 39॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीके बहनोई श्रीकान्त हाजिपुरमें रहते थे और राजकार्य करते थे। बादशाहने उनके पास तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेजी थीं। उस धनसे वे घोड़ोंको खरीदकर बादशाहके पास भेजते थे॥ 38॥

श्रीसनातनके साथ वार्तालाप :—

टुङ्गिर उपर बसि' सेइ गोसाञिरे देखिल।
रात्र्ये एकजन-सङ्गे गोसाञि-पाश आइल॥ 40॥

दुइजन मिलि' तथा इष्टगोष्ठी कैल।
बन्धन-मोक्षण-कथा सकलि गोसाञि कहिल॥ 41॥

अनुवाद—श्रीकान्त एक ऊँचे स्थानपर बैठे थे और वहींसे उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीको देखा। वे रात्रिके समय एक व्यक्तिको अपने साथ लेकर श्रीसनातन गोस्वामीके पास आये। श्रीकान्त और श्रीसनातन गोस्वामीने मिलकर वहींपर ही वार्तालाप किया। श्रीसनातन गोस्वामीने अपने कारागारसे छूटनेकी सारी बात उन्हें बतलायी॥ 40-41॥

श्रीकान्तका श्रीसनातनको वहाँ रहनेके लिये अनुरोध :—

तेँहो कहे,—"दिन-दुइ रह एइस्थाने।
भद्र हओ, छाड़' एइ मलिन वसने॥"42॥

श्रीसनातनकी असम्मति और गङ्गा पार करानेका अनुरोध :—

गोसाञि कहे,—"एकक्षण इहा ना रहिब।
गङ्गा पार करि' देह', एक्षणे चलिब॥"43॥

अनुवाद—श्रीकान्तने कहा,—"आप दो दिन यहाँपर रहिये। इन मैले वस्त्रोंको त्यागकर सज्जन व्यक्तिकी

भाँति वस्त्र पहनो।" श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"मैं एक क्षण भी यहाँपर नहीं रहूँगा। आप मुझे गङ्गा पार करा दीजिये, मैं अभी चला जाऊँगा॥"42-43॥

श्रीसनातनको ऊनी कम्बल देना और
गङ्गा पार करवाना :—

यत्न करि' तेँहो एक भोटकम्बल दिल।
गङ्गा पार करि' दिल—गोसाञि चलिल॥ 44॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीके मना करनेपर भी बहुत अनुरोध करके श्रीकान्तने उन्हें एक बहुत अच्छा ऊनी कम्बल दिया और गङ्गा पार करा दी। श्रीसनातन गोस्वामी आगे बढ़ चले॥ 44॥

श्रीसनातनका काशीमें आगमन :—

तबे वाराणसी गोसाञि आइला कतदिने।
शुनि' आनन्दित हइला प्रभुर आगमने॥ 45॥

अनुवाद—कुछ दिनोंमें श्रीसनातन गोस्वामी वाराणसी आ पहुँचे। महाप्रभुके वाराणसीमें आनेके विषयमें सुनकर उन्हें बहुत आनन्द हुआ॥ 45॥

श्रीचन्द्रशेखरके घरपर पहुँचना :—

चन्द्रशेखरेर घरे आसि' द्वारेते बसिला।
महाप्रभु जानि' चन्द्रशेखरे कहिला॥ 46॥

बाहरी वेशके प्रति निरपेक्ष वास्तविक वैष्णव श्रीसनातनको
लानेके लिये शेखरको आदेश :—

"द्वारे एक 'वैष्णव' हय, बोलाह ताँहारे।"
चन्द्रशेखर देखे, 'वैष्णव' नाहिक द्वारे॥ 47॥

श्रीसनातनके बाहरी वैष्णव-वेशको
नहीं देखनेपर लौटकर आना :—

"द्वारेते वैष्णव नाहि"—प्रभुरे कहिल।
'केह हय?' करि' प्रभु ताहारे पुछिल॥ 48॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामी श्रीचन्द्रशेखरके घर पहुँचकर बाहर द्वारपर बैठ गये। श्रीसनातन गोस्वामीके आगमनको जानकर महाप्रभुने श्रीचन्द्रशेखरसे कहा,—"द्वारपर एक वैष्णव हैं, उन्हें बुलाकर ले आओ।" श्रीचन्द्रशेखरने जाकर देखा कि द्वारपर तो कोई 'वैष्णव' नहीं है। श्रीचन्द्रशेखरने आकर महाप्रभुसे कहा,—"द्वारपर तो कोई वैष्णव नहीं हैं।" महाप्रभुने उनसे पूछा,—'क्या कोई द्वारपर है?'॥ 46-48॥

दरवेश वेशधारी श्रीसनातनको लानेके
लिये महाप्रभुका आदेश :—

तेँहो कहे,—"एक 'दरवेश' आछे द्वारे।"
'ताँरे आन' प्रभुर वाक्ये कहिल आसि' ताँरे॥ 49॥

श्रीचन्द्रशेखरका श्रीसनातनको
'दरवेश' कहकर सम्बोधन :—

"प्रभु तोमाय बोलाय, आइस, दरवेश!"
शुनि' आनन्दे सनातन करिला प्रवेश॥ 50॥

श्रीसनातनको देखकर तेजीसे महाप्रभुका
आगमन और आलिङ्गन :—

ताँहारे अङ्गने देखि' प्रभु धाञा आइला।
ताँरे आलिङ्गन करि' प्रेमाविष्ट हैला॥ 51॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखरने कहा,—"द्वारपर एक 'फकीर' है।" महाप्रभुने कहा,—'उन्हींको ले आओ।' श्रीचन्द्रशेखरने द्वारपर आकर श्रीसनातन गोस्वामीको महाप्रभुके ये वचन कहे,—"हे फकीर! आओ, महाप्रभु तुम्हें बुला रहे हैं।" श्रीचन्द्रशेखरकी बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने घरके अन्दर प्रवेश किया। श्रीसनातन गोस्वामीको आँगनमें देखकर महाप्रभु दौड़े हुए चले आये और उनको आलिङ्गन करके महाप्रभु प्रेममें आविष्ट हो गये॥ 49-51॥

आलिङ्गनके फलस्वरूप श्रीसनातनमें प्रेम
और उनकी दैन्य-उक्ति :—

प्रभुस्पर्शे प्रेमाविष्ट हइला सनातन।
'मोरे ना छुँइह'—कहे गद्गद-वचन॥ 52॥

अनुवाद—महाप्रभुके स्पर्शसे श्रीसनातन गोस्वामी भी प्रेममें आविष्ट हो गये। श्रीसनातन गोस्वामीने गद्गद वाणीसे कहा,—'आप मुझे मत छुइये॥'52॥

महाप्रभु और श्रीसनातन, दोनोंका ही प्रेम-क्रन्दन, श्रीचन्द्रशेखरका विस्मय :—

दुइजने गलागलि रोदन अपार।
देखि' चन्द्रशेखरेर हइल चमत्कार॥ 53॥

अनुवाद—दोनों परस्पर गले लगकर बहुत रोने लगे। उन दोनोंकी ऐसी अवस्थाको देखकर श्रीचन्द्रशेखरको बहुत आश्चर्य हुआ॥ 53॥

स्नेहपूर्वक श्रीसनातनको अपने निकट आसन देना :—

तबे प्रभु ताँर हात धरि' लञा गेला।
पिण्डार उपरे ताँरे आपन-पाश बसाइला॥ 54॥

अपने हाथोंसे श्रीसनातनके अङ्गोंका मार्जन, श्रीसनातनका दीनतापूर्वक कहना :—

श्रीहस्ते करेन ताँर अङ्ग सम्मार्जन।
तेँहो कहे,—"मोरे, प्रभु, ना कर स्पर्शन॥"55॥

अनुवाद—तब महाप्रभु श्रीसनातनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने साथ ले गये और उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीको अपने निकट चबूतरेपर बैठाया। महाप्रभु अपने श्रीहस्तकमलोंसे श्रीसनातन गोस्वामीके अङ्गोंका सम्मार्जन करने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी कहने लगे,—"हे प्रभो, आप मुझे स्पर्श मत कीजिये॥"54-55॥

महाप्रभुके द्वारा उन्हें महाभागवतके लिये उचित गौरव देना :—

प्रभु कहे,—"तोमा स्पर्शि आत्म पवित्रिते।
भक्ति-बले पार तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते॥ 56॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं तो अपनेको पवित्र करनेके लिये आपको स्पर्श कर रहा हूँ, क्योंकि आप अपनी भक्तिके बलसे ब्रह्माण्डको पवित्र कर सकते हैं॥ 56॥

श्रीमद्भागवत (1/13/10)में—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं प्रभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥ 57॥

अनुवाद—आपके जैसे भागवतजन स्वयं तीर्थस्वरूप हैं। आप लोग अपने अन्तःस्थित भगवान्‌की पवित्रताके बलसे पापियोंके पापोंके द्वारा मलिन सभी तीर्थोंको पवित्र करते हैं॥ 57॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/63 संख्या देखें॥ 57॥

हरिभक्तिविलास (10/91)में :—

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥ 58॥

अनुवाद—चतुर्वेदपाठी अर्थात् चौबे ब्राह्मण होनेपर ही 'भक्त' होता है, ऐसा नहीं है। मेरा भक्त चण्डाल होनेपर भी मुझे प्रिय है; भक्त ही वास्तवमें दान-पात्र एवं ग्रहण-पात्र है; भक्तमात्र ही मेरे समान पूजनीय है॥"58॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 19/50 संख्या देखें॥ 58॥

श्रीमद्भागवत (7/9/10)में—

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित-मनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥ 59॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 59॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णके चरणकमलोंसे विमुख बारह-गुणोंसे युक्त ब्राह्मणकी अपेक्षा भी जिसके मन, वचन, चेष्टा, अर्थ और प्राण श्रीकृष्णमें समर्पित हैं, ऐसे चण्डालको भी मैं श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि वह (चण्डाल कुलमें उत्पन्न भक्त) अपने कुलको पवित्र करता है, और अत्यधिक सम्मानसे युक्त ब्राह्मण वैसा नहीं कर सकता॥ 59॥

अनुभाष्य—धर्मराज युधिष्ठिरको देवर्षि नारद भगवान् श्रीनृसिंहके द्वारा किये गये हिरण्यकशिपुके वध-वृत्तान्तके वर्णन-प्रसङ्गमें वधके बाद भक्त प्रह्लादके द्वारा किये गये भगवान् नृसिंहके स्तवका वर्णन कर रहे हैं,—

अरविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् (पद्मनाभ-कृष्णस्य पादपद्मात् विमुखात्) द्विषड्गुणयुतात् (पूर्वश्लोकोक्ताः धनाभिजन-रूप-तपः-श्रुतौजस्तेजः-प्रभाव बल-पौरुष-बुद्धियोगाः इत्यादयः ये द्विषट् द्वादशगुणाः, यद्वा, "धर्मश्च सत्यश्च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया। यज्ञश्च दानञ्च धृतिः श्रुतञ्च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य॥" इति महाभारतीय-सनत्सुजातोक्ता द्वादश-गुणाः, यद्वा, "शमो दमस्तपः शौचं क्षान्त्यार्जव-विरक्तयः। ज्ञान-विज्ञान-सन्तोषाः सत्यास्तिक्ये द्विषड्गुणाः॥" इति मुक्ताफल-टीकोक्ता द्वादशगुणाः, तैः युक्तात्) विप्रात् अपि तदर्पितमनो-वचनेहितार्थप्राणं (तत् तस्मिन् अरविन्दनाभे कृष्णे अर्पिताः मनः वचनं ईहितं कर्म अर्थः प्राणश्च एते येन, तं) श्वपचं वरिष्ठं (श्रेष्ठम्) अहं मन्ये; [यतः] स (एवम्भूतः श्वपचः सर्वं) कुलं पुनाति, भूरिमानः (भूरिः मानः गर्वः यस्य स विप्रः) तु [आत्मानमपि] न [पुनाति, कुतः कुलम्? यतो भक्तिहीनस्य एते गुणाः गर्वायैव भवन्ति, न तु शुद्धये; अतो हीन इति भावः]।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णके चरणकमलोंसे विमुख बारह-गुणोंसे (श्रीमद्भागवतमें "विप्राद्द्विषड्"-श्लोकके पूर्व श्लोकमें ये 'द्विषट्' अर्थात् बारह गुण कहे गये हैं—"धन, सत्कुलमें जन्म, सौन्दर्य, तपस्या, पाण्डित्य, इन्द्रिय-नैपुण्य, तेज, प्रताप, शारीरिक बल, पौरुष, बुद्धि और अष्टाङ्गयोग" आदि; अथवा महाभारतमें सनत्सुजातके द्वारा कथित बारह गुण—"धर्म, सत्य, दम, तप, मात्सर्यशून्यता, लज्जा, सहनशीलता, ईर्ष्याशून्यता, यज्ञ, दान, धैर्य, पाण्डित्य—ये ही ब्राह्मणके बारह व्रत हैं।" अथवा, 'मुक्ताफल'-टीकामें कहे गये बारह गुण, जैसे,—"शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, विषय-विरक्ति, ज्ञान, विज्ञान, सन्तोष, सत्य, आस्तिकता—ये बारह गुण हैं।") युक्त ब्राह्मणकी अपेक्षा भी जिसके मन, वचन, चेष्टा, अर्थ और प्राण श्रीकृष्णमें समर्पित हैं, ऐसे चण्डालको भी मैं श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि वह (चण्डाल कुलमें उत्पन्न भक्त) अपने कुलको पवित्र करता है। और अपने उच्चकुलका गर्व करनेवाला ब्राह्मण जब स्वयंको भी पवित्र नहीं कर सकता, [तब वह कुलको कैसे पवित्र करेगा? जो भक्तिहीन ऐसे गुणोंसे गर्वित होता है, वह शुद्ध नहीं है, इसलिये वह हीन है—यह भाव है]॥ 59॥

भक्त-सेवामें लगनेसे ही सभी इन्द्रियोंकी सार्थकता :—

तोमा देखि, तोमा स्पर्शि, गाइ तोमार गुण।
सर्वेन्द्रिय-फल,—एइ शास्त्र-निरूपण॥ 60॥

अनुवाद—आपको देखना, आपको स्पर्श करना, आपके गुणोंका गान करना ही सभी इन्द्रियोंका फल है—शास्त्र यही निरूपण करते हैं॥ 60॥

जगत्में शुद्ध-भगवद्भक्त—सुदुर्लभ :—
हरिभक्तिसुधोदय (13/2)में—

अक्ष्णोः फलं त्वादृश-दर्शनं हि
तनोः फलं त्वादृश-गात्रसङ्गः।
जिह्वाफलं त्वादृश-कीर्त्तनं हि
सुदुर्लभा भागवता हि लोके॥ 61॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 61॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे वैष्णव, तुम्हारे जैसे व्यक्तिका दर्शन करना ही नेत्रोंका फल है; तुम्हारे जैसे व्यक्तिकी देहको स्पर्श करना ही शरीरका फल है; तुम्हारे जैसे व्यक्तिके गुणोंका कीर्तन करना ही जिह्वाका फल है; क्योंकि, जगत्में भागवतजन ही सुदुर्लभ हैं॥"61॥

अनुभाष्य—

त्वादृशदर्शनं (त्वादृशानां भवत्तुल्यानां भागवतानां श्रद्धापूर्वक-दर्शनं) अक्ष्णोः (चक्षुर्भ्यां वीक्षणकार्यस्य) फलं (तात्पर्यम्); त्वादृशगात्रसङ्गः (त्वादृशानां भक्तानां गात्रसङ्गः अङ्गस्पर्शः) तनोः (शरीरस्य धारणकार्यस्य) फलम्; त्वादृशकीर्त्तनं (त्वादृशानां भक्तानां गुणकीर्त्तनं) हि (एव) जिह्वाफलं (वाक्योच्चारणस्य प्रयोजनम्); [अतः] लोके (जगति) भागवताः (शुद्धभक्ताः) सुदुर्लभाः (सुदुरापाः) हि (एव)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 61॥

श्रीकृष्णकी अहैतुकी कृपाके माहात्म्यका वर्णन; महाप्रभु स्वयं ही श्रीसनातनके कारागारमें बन्द होने और वहाँसे छूटनेकी लीलाके अभिनयके मूल-सूत्रधार :—

एत कहि' कहे प्रभु,—"शुन, सनातन।
कृष्ण—बड़ दयामय, पतित-पावन॥ 62॥

महारौरव हैते तोमाय करिला उद्धार।
कृपार समुद्र कृष्ण गम्भीर अपार॥"63॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने आगे कहा,—"हे सनातन! सुनो, भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही दयामय और पतित-पावन हैं। उन्होंने महारौरव-नरकसे तुम्हारा उद्धार किया है। कृपाके समुद्र श्रीकृष्ण अपार और गम्भीर हैं॥"62-63॥

अनुभाष्य—*'महा-रौरव'*—जीविकाके उद्देश्यसे जन्तुओंका वध करनेवाले 'महारौरव' नामक नरकको प्राप्त करते हैं (भाः 5/26/10-12 श्लोक देखें)॥63॥

श्रीसनातनका महाप्रभुको श्रीकृष्णसे अभिन्न मानना :—

सनातन कहे,—"कृष्ण आमि नाहि जानि।
आमार उद्धार-हेतु तोमार कृपा मानि॥"64॥

महाप्रभुके प्रश्नके उत्तरमें अपने वृत्तान्तका वर्णन :—

'केमने छुटिला' बलि प्रभु प्रश्न कैला।
आद्योपान्त सब कथा तेँहो शुनाइला॥65॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीरूप और श्रीअनुपमका संवाद देना :—

प्रभु कहे,—"तोमार दुइ भाइ प्रयागे मिलिला।
रूप, अनुपम,—दुँहे वृन्दावन गेला॥"66॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"मैं श्रीकृष्णको नहीं जानता हूँ। मैं तो आपकी कृपाको अपने उद्धारका कारण मानता हूँ।" 'आप कैसे छूटे'—यह कहकर महाप्रभुने प्रश्न किया और श्रीसनातन गोस्वामीने आरम्भसे अन्त तकका सब वृत्तान्त कह सुनाया। महाप्रभुने कहा,—"तुम्हारे दोनों भाई रूप और अनुपम, मुझसे प्रयागमें मिले थे। वहाँसे वे दोनों वृन्दावन गये हैं॥"64-66॥

श्रीतपनमिश्र और श्रीचन्द्रशेखरके साथ श्रीसनातनका मिलन :—

तपनमिश्रेरे आर चन्द्रशेखरेरे।
प्रभु-आज्ञाय सनातन मिलिला दोँहारे॥67॥

अनुवाद—महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीसनातन गोस्वामी श्रीतपनमिश्र और श्रीचन्द्रशेखरसे मिले॥67॥

श्रीसनातनको श्रीतपनमिश्रका निमन्त्रण, श्रीसनातनको मुण्डन करानेके लिये महाप्रभुकी आज्ञा :—

तपनमिश्र तबे ताँरे कैला निमन्त्रण।
प्रभु कहे,—"क्षौर कराह, याह, सनातन॥"68॥

अनुवाद—श्रीतपनमिश्रने श्रीसनातन गोस्वामीको निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीसे कहा,—"हे सनातन, जाओ और मुण्डन करवाकर आओ॥"68॥

श्रीचन्द्रशेखरको श्रीसनातनके अवैष्णव-वेशको त्याग कराके वैष्णवोचित वेश धारण करानेकी आज्ञा :—

चन्द्रशेखरेरे प्रभु कहे बोलाञा।
"एइ वेश दूर कर, याह इँहारे लञा॥"69॥

भद्र कराञा ताँरे गङ्गास्नान कराइल।
शेखर आनिया ताँरे नूतन वस्त्र दिल॥70॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीचन्द्रशेखरको बुलाकर कहा,—"आप सनातनको अपने साथ ले जाकर इनके इस वेशको दूर करो।" श्रीचन्द्रशेखरने श्रीसनातनका मुण्डन कराके उन्हें गङ्गास्नान कराया और उन्हें नये वस्त्र लाकर दिये॥69-70॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भद्र कराञा'*—मुण्डन करवाकर अर्थात् दरवेशी दाड़ी और बालोंका मुण्डन करवाकर सुवैष्णव जैसा वेश धारण कराया॥70॥

अमृतानुकणा—महाप्रभुकी कृपा पानेकी इच्छुक श्रीसनातनने जब महाप्रभुकी मधुर मूर्तिके दर्शन किये, उस समय श्रीसनातनकी दाड़ी-मूँछ थी। वह दाड़ी-मूँछ ही बाउल-वैष्णवोंके दाड़ी-मूँछ रखनेका एकमात्र प्रमाण है। किन्तु महाप्रभुने श्रीसनातनको देखकर प्रेमालिङ्गन करके तुरन्त उनका मुण्डन करवाया था। इसलिये बाउल-वैष्णवोंका अकाट्य प्रमाण उसी समय ही नाईके उस्तरेके द्वारा काटा गया था। अब सभी अवश्य ही

यह स्वीकार करेंगे कि बाउल-लोग कभी भी श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके वैष्णव नहीं कहला सकते।

श्रीसनातनको 'फकीर' कहकर उल्लेख करनेसे साँई, दरवेश, चरणपाली, दुलालचाँदी आदि अधिकांश लोग मुसलमानके फकीर-वेशको धारण करके उनके जैसे आचार-व्यवहार करते हैं और स्वयंको चैतन्य-सम्प्रदाय-वैष्णव कहकर अपना परिचय देते हैं। यदि कोई उनसे पूछे कि तुम लोग प्रायः मुसलमानके फकीरका वेश धारण और उनके जैसा आचार-व्यवहार भी करते हो और चैतन्य-सम्प्रदाय-वैष्णव कहकर अपना परिचय देते हो, इसका क्या प्रमाण है? इस प्रश्नके उत्तरमें वे कहते हैं कि इसका प्रमाण श्रीसनातन गोस्वामी हैं, वे फकीर थे। किन्तु जब महाप्रभुने श्रीसनातनके दाड़ी-मूँछ और सिरके केश मुण्डन करवाकर वैष्णव-वेश धारण करवाया था, तब उस स्थानपर ही साँई, दरवेश, चरणपाली, दुलालचाँदी आदिका प्रमाण परिसमाप्त हो गया है। इस कारण साँई, दरवेशादि लोगोंका चैतन्य-सम्प्रदाय-वैष्णव होना तो दूर रहे, अपितु उनको एक प्रकार मोहम्मद-सम्प्रदाय ही कहा जाना चाहिये। (—जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर-कृत 'श्रीश्रीसनातन गोस्वामी प्रभु' प्रबन्ध। श्रीगौड़ीय-पत्रिका, 7वाँ वर्ष, 4र्थ संख्या)॥ 68-69॥

श्रीचन्द्रशेखरके द्वारा दिये नये वस्त्रोंको पहननेमें श्रीसनातनकी असम्मति :—

सेइ वस्त्र सनातन ना कैल अङ्गीकार।
शुनिया प्रभुर मने आनन्द अपार॥ 71॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखरके द्वारा लाये गये उन नये वस्त्रोंको श्रीसनातनने स्वीकार नहीं किया। इस बातको सुनकर महाप्रभुके मनमें अपार आनन्द हुआ॥ 71॥

दोपहरमें श्रीतपनमिश्रके घरमें महाप्रभुका भोजन, श्रीसनातनको महाप्रभुके उच्छिष्टकी प्राप्ति :—

मध्याह्न करिया प्रभु गेला भिक्षा करिवारे।
सनातने लञा गेला तपनमिश्रेर घरे॥ 72॥

अनुवाद—दोपहरका स्नान करनेके बाद महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामीको अपने साथ लेकर भोजनके लिये श्रीतपन मिश्रके घरपर गये॥ 72॥

पादप्रक्षालन करि' भिक्षाते बसिला।
"सनातने भिक्षा देह"—मिश्रेरे कहिला॥ 73॥

अनुवाद—चरणोंको धोनेके बाद महाप्रभु भोजनके लिये बैठे। महाप्रभुने श्रीतपनमिश्रसे कहा,—"सनातनको भोजन प्रदान करो॥"73॥

मिश्र कहे,—"सनातनेर किछु कृत्य आछे।
तुमि भिक्षा कर, प्रसाद ताँरे दिब पाछे॥"74॥

अनुवाद—श्रीतपनमिश्रने कहा,—"सनातनका अभी कुछ कार्य बाकी है। आप भोजन ग्रहण कीजिये, मैं उन्हें बादमें प्रसाद दूँगा॥"74॥

भिक्षा करि' महाप्रभु विश्राम करिला।
मिश्र प्रभुर शेषपात्र सनातने दिला॥ 75॥

अनुवाद—भोजन करनेके बाद महाप्रभुने थोड़ा विश्राम किया। श्रीतपनमिश्रने महाप्रभुका उच्छिष्ट प्रसाद श्रीसनातन गोस्वामीको दिया॥ 75॥

मिश्रके द्वारा दिये नये वस्त्रोंको पहननेमें श्रीसनातनकी आपत्ति :—

मिश्र सनातने दिला नूतन वसन।
वस्त्र नाहि निला, तेँहो करे निवेदन॥ 76॥

वैष्णव-उच्छिष्ट पुराने वस्त्र-ग्रहण करनेकी श्रीसनातनकी इच्छा :—

"मोरे वस्त्र दिते यदि तोमार हय मन।
निज परिधान एक देह' पुरातन॥"77॥

एक वस्त्रको दो टुकड़ोंमें बाँटकर बहिर्वास और उसके उपयोगी डोर-कौपीन बनाना :—

तबे मिश्र पुरातन एक धुति दिला।
तेँहो दुइ बहिर्वास-कौपीन करिला॥ 78॥

अनुवाद—श्रीतपनमिश्रने श्रीसनातन गोस्वामीको एक नया वस्त्र दिया, परन्तु उन्होंने वह वस्त्र नहीं लिया। उन्होंने श्रीतपनमिश्रसे निवेदन किया,—"यदि आपकी मुझे वस्त्र देनेकी इच्छा ही है, तो फिर मुझे अपना पहना हुआ एक पुराना वस्त्र दीजिये।" तब श्रीतपनमिश्रने श्रीसनातन गोस्वामीको अपनी व्यवहार की गयी एक पुरानी धोती दी। श्रीसनातन गोस्वामीने उस धोतीको फाड़कर उसमेंसे ही दो बहिर्वास और दो डोर-कौपीन बनाये॥ 76-78॥

अमृतानुकणा—इस जगत्में अपनी इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त ज्ञानको श्रेष्ठ माननेवालोंके लिये वर्ण-चिह्न और आश्रम-चिह्नकी व्यवस्था पूर्ण रूपसे अनावश्यक नहीं है। तो भी बहुत बार ऐसे लोग चिह्नमात्र देखनेसे धोखा खा जाते हैं। जिस प्रकार सिंदूर वर्णके मेघोंको देखकर गाय आदि पशु भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग वैष्णवोंके बाह्य चिह्नोंसे धोखा खाकर लज्जित होते हैं। इसलिये इनकी अन्तर्मुखी-प्रवृत्ति नहीं होनेके कारण इस प्रकारका अपमान अवश्यम्भावी है।"

"गौड़ीय-वैष्णव परमहंस हो सकते हैं, परन्तु उनके वेशको देखकर कि वे वैष्णव अथवा अवैष्णव हैं, ऐसा कोई निर्णय नहीं कर सकता। श्रीसनातन गोस्वामीके वेशमें वर्णाश्रमके चिह्न नहीं थे, और श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामीके वेशमें गेरुए वस्त्र और त्रिदण्ड देखा जाता है। श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीईश्वरपुरी आदिके वेशमें एक दण्ड और गेरुए वस्त्र दिखायी देते हैं। (इसलिये) त्रिदण्डी और एकदण्डी या निर्दण्डी (बिना दण्डके), सभी गौड़ीय वैष्णव हो सकते हैं। वे कर्म-त्रिदण्ड, ज्ञान-त्रिदण्ड और भक्ति-निर्दण्ड आदि आश्रम-चिह्न परित्याग करनेके लिये वेश ले सकते हैं। और वर्णाश्रममें अवस्थित गौड़ीय वैष्णवोंका भी अभाव नहीं है। वे अपने वर्णचिह्न और आश्रमवेशको रखकर भी गौड़ीय वैष्णव हो सकते हैं। और भक्तचिह्न धारण करके किसीको कोई वर्णाश्रममें अवस्थित होनेमें बाधा नहीं दे सकता। गेरुए-वस्त्रके माहात्म्यका और त्रिदण्डके माहात्म्यका शास्त्रोंमें प्रचुर परिमाणमें उल्लेख किया गया है। परन्तु चिह्नके द्वारा और वेशग्रहणकी रीतिको देखकर गौड़ीय-वैष्णवको निर्देश नहीं कर सकते। हरिभजनमें निष्कपटता ही वैष्णव-परिचयका एकमात्र निर्देश है। जो लोग कर्मकाण्डको वैष्णवके कन्धेपर मढ़कर वैष्णवको कर्मी या ज्ञानीमात्र जानते हैं, वे सुविचार करनेमें असमर्थ और वैष्णवविरोधी हैं। लँगोट-बाह्य-वस्त्रादि दिखाकर जो वैष्णवताको लज्जित करते हैं और भजनको लक्ष्य नहीं करके 'नवमीमें लौकी खाना मना है' आदि नियमोंको ही वैष्णवाचार कहकर सिद्ध करनेमें व्यस्त हैं। वे श्रीमद्भागवतके विचारके अनुसार 'त्रिधातुके (कफ-वात-पित्तके) शरीर'को लेकर ही प्रमत्त हैं, इसलिये वैष्णव-वेशको स्थिर करते हुए (वे) लोकदृष्टिके अनुगमनसे वैष्णवोंको पहचाननेमें असमर्थ हैं। [—जगद्गुरु श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद-कृत 'गौड़ीयका वेश' प्रबन्ध। (साप्ताहिक 'गौड़ीय' 2रा वर्ष, श्रीगौड़ीय-पत्रिका 17वाँ वर्ष)]॥ 78॥

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र

सेइ विप्र ताँरे कैल महा-निमन्त्रणे॥ 79॥

काशीमें रहते समय श्रीसनातनको ब्राह्मणके द्वारा प्रतिदिन अपने घरमें निमन्त्रण :—

"सनातन, तुमि यावत् काशीते रहिबा।
तावत् आमार घरे भिक्षा ये करिबा॥"80॥

अनुवाद—महाप्रभुने महाराष्ट्र गोस्वामीसे मिलवाया। उस ब्राह्मणने श्रीसनातन गोस्वामीको लम्बा निमन्त्रण दिया,—"हे सनातन! आप जब तक काशीमें रहोगे, तब तक मेरे घरपर ही भोजन ग्रहण करना॥"79-80॥

श्रीसनातनके द्वारा स्थूल भिक्षामें असम्मति, माधुकरी-भिक्षाकी इच्छा :—

सनातन कहे,—"आमि माधुकरी करिब।
ब्राह्मणेर घरे केने एकत्र भिक्षा लब?"॥ 81॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"मैं माधुकरी करूँगा। ब्राह्मणके घरमें पूरा भोजन क्यों ग्रहण करूँगा?"॥ 81॥

अमृतानुकणिका—भ्रमर पुष्पोंसे मधु ग्रहण करता है, इसलिये उसे मधुकर कहते हैं। वह एक ही पुष्पसे मधु नहीं ग्रहण करता, अपितु अनेक पुष्पोंसे मधु संग्रह करता है। श्रीसनातन गोस्वामीका विचार था कि यदि वे प्रतिदिन एक ही ब्राह्मणके घरमें पूरा भोजन करेंगे तो उन ब्राह्मणको कष्ट होगा। इसलिये उन्होंने कहा कि वे अपने शरीर निर्वाहके लिये जितना आवश्यक है, उतना भोजन अल्प मात्रामें दो-तीन ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा करेंगे॥ 81॥

श्रीसनातनके युक्त वैराग्यसे महाप्रभुको आनन्द :—

सनातनेर वैराग्ये प्रभुर आनन्द अपार।
भोटकम्बल-पाने प्रभु चाहे बारे बार॥ 82॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामीके वैराग्यको देखकर बहुत प्रसन्न थे, परन्तु वे बार-बार उनके बहुमूल्य कम्बलकी ओर देखते थे॥ 82॥

बहुमूल्य कम्बल महाप्रभुको पसन्द नहीं, ऐसा जानकर पुराने-फटे कपड़ोंसे बनी गुदड़ी-ग्रहण :—

सनातन जानिल एइ प्रभुरे ना भाय।
भोट त्याग करिवारे चिन्तिला उपाय॥ 83॥

अनुवाद—महाप्रभुके बार-बार कम्बलको देखनेसे श्रीसनातन गोस्वामी समझ गये कि यह कम्बल उन्हें अच्छा नहीं लग रहा है। श्रीसनातन गोस्वामीने तब उस कम्बलको त्याग करनेके उपायपर विचार किया॥ 83॥

एत चिन्ति' गेला गङ्गाय मध्याह्न करिते।
एक गौड़ीया दियाछे कान्था धुञा शुकाइते॥ 84॥

अनुवाद—उपायका विचार करके श्रीसनातन गोस्वामी गङ्गामें दोपहरका स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक गौड़ीयने अपने पुराने वस्त्रोंसे बने कम्बलको (गुदड़ीको) धोकर धूपमें सुखानेके लिये डाल रखा था॥ 84॥

तारे कहे,—"ओरे भाइ, कर उपकारे।
एइ भोट लञा एइ काँथा देह' मोरे॥"85॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने उस गौड़ीयसे कहा,—"हे भाई, मुझपर उपकार करो। इस ऊनी कम्बलको लेकर मुझे अपनी यह गुदड़ी दे दो॥"85॥

सेइ कहे,—"रहस्य कर प्रामाणिक हञा?
बहुमूल्य भोट दिबा केने काँथा लञा?"॥ 86॥

अनुवाद—उस गौड़ीयने कहा,—"आप सज्जन व्यक्ति होकर भी मुझसे परिहास कर रहे हैं? आप किसलिये बहुमूल्य कम्बल देकर बदलेमें गुदड़ी लेंगे?"॥ 86॥

अनुभाष्य—*'प्रामाणिक'*—आदर्श विचार-चरित्रवाला, पण्डित॥ 86॥

तेँहो कहे,—"रहस्य नहे, कहि सत्यवाणी।
भोट लह, तुमि देह' मोरे काँथाखानि॥"87॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"मैं परिहास नहीं कर रहा, मैं सत्य कह रहा हूँ। इस ऊनी कम्बलको लेकर तुम मुझे यह गुदड़ी दे दो॥"87॥

एत बलि' काँथा लइल, भोट ताँरे दिया।
गोसाञिर ठाँइ आइला काँथा गले दिया॥ 88॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीसनातन गोस्वामीने उसे बहुमूल्य ऊनी कम्बल देकर गुदड़ी ले ली। फिर उस गुदड़ीको अपनी कन्धोंपर लपेटकर वे महाप्रभुके पास आये॥ 88॥

महाप्रभुके द्वारा बहुमूल्य कम्बलके विषयमें पूछना, श्रीसनातनके द्वारा पूरी घटनाका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"तोमार भोटकम्बल कोथा गेल?"
प्रभुपदे सब कथा गोसाञि कहिल॥ 89॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"तुम्हारा बहुमूल्य कम्बल कहाँ गया?" श्रीसनातन गोस्वामीने महाप्रभुको पूरी बात बतायी॥ 89॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीकृष्णकृपा-माहात्म्यका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"इहा आमि करियाछि विचार।
विषय-रोग खण्डाइल कृष्ण ये तोमार॥ 90॥

से केने राखिबे तोमार शेष विषय-भोग?
रोग खण्डि' सद्वैद्य ना राखे शेष रोग॥ 91॥

आचार और प्रचारमें परस्पर सामञ्जस्य रखनेका उपदेश :—

तिन मुद्रार भोट गाय, माधुकरी ग्रास।
धर्महानि हय, लोके करे उपहास॥"92॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैंने विचार किया है कि श्रीकृष्णने तुम्हारे विषय-रोगको दूर कर दिया है। तब वे तुम्हारे अन्तिम विषय-भोगको क्यों छोड़ देंगे? जैसे एक अच्छा वैद्य रोगको दूर करके उसका लेशमात्र भी शरीरमें शेष नहीं रहने देता। तीन मुद्राओं मूल्यका महँगा कम्बल शरीरपर धारण करके भोजनके लिये माधुकरी करना परस्पर विरोधी कार्य हैं। इससे धर्मकी हानि होती है और लोग भी उपहास करेंगे॥"90-92॥

श्रीसनातनके द्वारा महाप्रभु-कृपा-माहात्म्यकी प्रशंसा :—

गोसाञि कहे,—"ये खण्डिल कुविषय-भोग।
ताँर इच्छाय गेल मोर शेष विषय-रोग॥"93॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने कहा,—"जिन्होंने मेरी पापमय जीवनसे रक्षा की है, उन्हींकी इच्छासे मेरी अन्तिम विषय-आसक्ति भी दूर हो गई है॥"93॥

अनुभाष्य—*'कुविषय-भोग'*—पाप-विषय-सेवा॥ 93॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसनातनमें शक्ति-सञ्चार :—

प्रसन्न हञा प्रभु ताँरे कृपा कैल।
ताँर कृपाय प्रश्न करिते ताँर शक्ति हैल॥ 94॥

अनुवाद—महाप्रभुने प्रसन्न होकर उनपर कृपा की। महाप्रभुकी कृपासे उनमें प्रश्न करनेकी शक्ति आयी॥ 94॥

पहले महाप्रभुकी शक्तिके बलसे श्रीरायके द्वारा महाप्रभुके प्रश्नोंके उत्तर देनेका सामर्थ्य :—

पूर्वे यैछे राय-पाशे प्रभु प्रश्न कैला।
ताँर शक्तये रामानन्द ताँर उत्तर दिला॥ 95॥

अनुवाद—पहले (गोदावरीके तटपर) जैसे श्रीरामानन्द रायसे महाप्रभुने प्रश्न पूछे थे और उनकी शक्तिसे श्रीरामानन्द रायने उनके उत्तर दिये थे॥ 95॥

उसी प्रकार महाप्रभुकी शक्तिके सञ्चारके बलसे श्रीसनातनके प्रश्न, और स्वयं महाप्रभुका उत्तर देना :—

इहाँ प्रभुर शक्तये प्रश्न करे सनातन।
आपने महाप्रभु करे 'तत्त्व'-निरूपण॥ 96॥

अनुवाद—यहाँपर महाप्रभुकी शक्तिसे श्रीसनातन गोस्वामी प्रश्न कर रहे थे और स्वयं महाप्रभु 'तत्त्व'का निरूपण कर रहे थे॥ 96॥

श्रीसनातनको स्वयं महाप्रभुके द्वारा सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्त्वको बतलाना :—
(ग्रन्थकार-वाक्य—)

कृष्णस्वरूपमाधुर्यैश्वर्यभक्तिरसाश्रयम्।
तत्त्वं सनातनायेशः कृपयोपदिदेश सः॥ 97॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 97॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने कृपापूर्वक श्रीसनातनको श्रीकृष्णके स्वरूप-माधुर्य, उनके स्वरूप-ऐश्वर्य और भक्तिरसाश्रय-रूप तत्त्वका उपदेश दिया॥ 97॥

अनुभाष्य—

स ईशः (महाप्रभुः) कृपया (अतुल-करुणया) सनातनाय (सनातन-गोस्वामिने) कृष्णस्वरूपमाधुर्यैश्वर्यभक्तिरसाश्रयं (कृष्णस्य स्वरूपं सर्वेश्वरेश्वरेश्वर-सच्चिदानन्दघनात्मक-किशोर-शेखर-यशोदानन्दनत्वं, माधुर्यम् असमोर्ध्वतया सर्वमनोहरं स्वाभाविक-रूपगुणलीलादिसौष्ठवं, ऐश्वर्यम् असमोर्द्धानन्त-

स्वाभाविकप्रभुत्वं, भक्तिरसश्च, तेषाम् आश्रयं—"दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम्" इति वचनोद्दिष्टं वस्तु तत् एव) तत्त्वम् (अद्वयज्ञानम्) उपदिदेश (उपदिष्टवान्)।

श्लोक-भावानुवाद—भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने अतुल-करुणापूर्वक श्रीसनातन-गोस्वामीको श्रीकृष्णके स्वरूपके (सर्वेश्वरेश्वरेश्वर सच्चिदानन्दघन किशोरशेखर यशोदानन्दनस्वरूप), माधुर्यके (असमोर्ध्व सर्वमनोहर स्वाभाविक-रूपगुणलीलादिके परम सौन्दर्ययुक्त), ऐश्वर्यके (असमोर्ध्व अनन्त स्वाभाविक प्रभुता), भक्तिरसके एवं उसके आश्रयके ("दशम स्कन्धमें भागवतके दशम लक्षण आश्रय-विग्रह"—इस वचनके द्वारा उद्दिष्ट वस्तुके भी) तत्त्वका (अद्वयज्ञानका) उपदेश दिया॥ 97॥

'सनातनशिक्षा'का वर्णन आरम्भ; दीनतापूर्वक प्रणिपात-परिप्रश्न और सेवापूर्वक लोक-शिक्षाके लिये नित्यसिद्ध श्रीसनातनके द्वारा बद्धजीवका अभिनय करते हुए शिष्यकी भाँति कीर्तन-विग्रह जगद्गुरु महाप्रभुसे तत्त्व-जिज्ञासा :—

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।
दैन्य विनति करे दन्ते तृण लञा॥ 98॥

"नीच जाति, नीच सङ्गी, पतित अधम।
कुविषय-कूपे पड़ि' गोङाइनु जनम!॥ 99॥

आपनार हिताहित किछुइ ना जानि!
ग्राम्य-व्यवहारे पण्डित, ताइ सत्य मानि॥ 100॥

कृपा करि' यदि मोरे करियाछ उद्धार।
आपन-कृपाते कह 'कर्त्तव्य' आमार॥ 101॥

जीवके स्वरूप और बन्धनसे उत्पन्न दुःखके कारणकी जिज्ञासा :—

के आमि, केने आमाय जारे तापत्रय।
इहा नाहि जानि—केमने 'हित' हय॥ 102॥

'साध्य', 'साधन'-तत्त्व पुछिते ना जानि।
कृपा करि' सब तत्त्व कह त' आपनि॥"103॥

अनुवाद—तब श्रीसनातन गोस्वामीने दाँतोमें तिनका दबाकर महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर दीनतापूर्वक विनती करते हुए कहा,—"मैं नीच जातिका, नीच लोगोंका सङ्ग करनेवाला, अधम-पतित हूँ। पापरूपी कुएँमें पड़े रहकर ही मैंने अपना जन्म गँवा दिया है। मैं अपने हित और अहितके विषयमें कुछ भी नहीं जानता हूँ। लोग मुझे लौकिक व्यवहारमें पण्डित मानते हैं और मैं भी इसे सत्य मानता हूँ। आपने अपनी अहैतुकी कृपासे मेरा उद्धार किया है। अब स्वयं अपनी अहैतुकी कृपासे मुझे मेरे कर्त्तव्यसे भी अवगत कराइये। मैं कौन हूँ, मुझे (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) तीन ताप क्यों जलाते हैं? मैं यह नहीं जानता हूँ कि मेरा कल्याण कैसे होगा? मैं 'साध्य' और 'साधन-तत्त्व'के विषयमें पूछना भी नहीं जानता हूँ। इसलिये कृपा करके आप स्वयं ही मुझे सभी तत्त्वोंके विषयमें बतलाइये॥"98-103॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसनातनने जिज्ञासा की,—"मैं कौन हूँ? आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक—ये तीन ताप मुझे क्यों जला रहे हैं और मेरा कल्याण किस प्रकार होगा? मैं साध्य-साधन तत्त्वकी जिज्ञासा करनेमें असमर्थ हूँ, आप कृपा करके मुझे मेरे जानने योग्य विषय बतलाइये॥ 102-103॥

अनुभाष्य—*'ग्राम्य-व्यवहार'*—स्त्री-पुरुषगत लौकिक-व्यवहार। *'तापत्रय'*—(1) आध्यात्मिक, (2) आधिभौतिक और (3) आधिदैविक—ये तीन प्रकारके दुःख हैं। (1) आध्यात्मिक ताप दो प्रकारके हैं—(क) शारीरिक, जैसे—ज्वर आदि रोग; (ख) मानसिक, जैसे—प्रिय आदिका वियोग। (2) आधिभौतिक ताप चार प्रकारके हैं—(क) जरायुज-प्राणियोंसे (गर्भसे उत्पन्न मनुष्य-पशु आदिसे) ताप (ख) अण्डज-प्राणियोंसे (अण्डेसे उत्पन्न कीट-पक्षी आदिसे) ताप; (ग) स्वेदज-प्राणियोंसे (शरीरके स्रावसे उत्पन्न जीवाणुओंसे) ताप; (घ) उद्भिज्ज-प्राणियोंसे (पृथ्वीसे उत्पन्न वृक्षादिसे) ताप; (3) आधिदैविक ताप अर्थात् वरदेवता जैसे इन्द्रादिसे उत्पन्न ताप—शीत,

वज्रपात आदि और अपदेवता जैसे हिंसक स्वभाववाले यक्ष-पिशाचादिसे अशुभजनक कष्टादि-ताप॥ 102॥

श्रीसनातनको नित्यसिद्ध जानकर केवल बद्धजीवोंके मङ्गलके उद्देश्यसे महाप्रभुके द्वारा उत्तर देना :—

प्रभु कहे,—"कृष्ण-कृपा तोमाते पूर्ण हय।
सब तत्त्व जान, तोमार नाहि तापत्रय॥ 104॥

कृष्णभक्ति धर तुमि, जान तत्त्वभाव।
जानि' दार्ढ्य लागि' पुछे,—साधुर स्वभाव॥ 105॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"तुमपर भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा है, इसलिये तुम सभी तत्त्वोंको जानते हो और तुम्हारे लिये तीनों तापोंका अस्तित्व ही नहीं है। तुम श्रीकृष्णभक्तिको धारण करते हो और सभी तत्त्वोंको भी जानते हो। किन्तु जाननेपर भी दृढ़ताके लिये पूछना साधुका स्वभाव होता है॥ 104-105॥

तत्त्व-जिज्ञासाकी ऐकान्तिक आवश्यकता, उसीसे ही अभीष्टसिद्धि :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/103)में उद्धृत नारदजीके वचन :—

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः।
अचिरादेव सर्वार्थः सिद्ध्यत्येषामभीप्सितः॥ 106॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 106॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सद्धर्मको उदित करानेके लिये जिनकी दृढ़ मति है, उनकी शीघ्र ही अभिलषित सर्वार्थ-सिद्धि होती है॥ 106॥

अनुभाष्य—

सद्धर्मस्य (नित्योपादेय-भागवतधर्मस्य) अवबोधाय (तत्त्वज्ञानाय, तत्त्वं जिज्ञासितुमित्यर्थः) येषां (भक्त्युन्मुख-सुकृतिवतां पुंसां) निर्बन्धिनी (अचञ्चला) मतिः (रुचिः बुद्धिर्वा) (वर्त्तते), एषां (शुद्धचित्तानां निर्मलचेतसाम्) अभीप्सितः (प्रार्थितः) सर्वार्थः (साध्यः) अचिरात् (शीघ्रम्) एव सिद्ध्यति (सफलो भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—भागवतधर्मके तत्त्वको जाननेके जिज्ञासु जिन सुकृतिवान् व्यक्तियोंकी अचलबुद्धि होती है, ऐसे निर्मल चित्तवालोंको उनके द्वारा प्रार्थित साध्य-प्राप्तिमें शीघ्र सफलता मिलती है॥ 106॥

महाप्रभुका श्रीसनातनको आचार्यरूपमें अङ्गीकार करना :—

योग्यपात्र हओ तुमि भक्ति प्रवर्त्ताइते।
क्रमे सब तत्त्व शुन, कहिये तोमाते॥ 107॥

अनुवाद—तुम भक्तिका प्रवर्तन (प्रचार) करनेके लिये योग्यपात्र हो। क्रमशः तुम सब तत्त्वोंको सुनो, मैं तुम्हें सब बतला रहा हूँ॥ 107॥

श्रीश्रीसनातन-शिक्षारम्भ; (क-1)

सर्वप्रथम जीवके स्वरूपका विचार :—

जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्यदास'।
कृष्णेर 'तटस्था-शक्ति', 'भेदाभेद-प्रकाश'॥ 108॥

सूर्यांशु-किरण, येन अग्निज्वालाचय।
स्वाभाविक कृष्णेर तिनप्रकार 'शक्ति' हय॥ 109॥

अनुवाद—जीव श्रीकृष्णका 'नित्यदास' है, यही जीवका स्वरूप है, क्योंकि वह श्रीकृष्णकी तटस्था-शक्ति और उनका भेदाभेद-प्रकाश है। जीव सूर्य-स्वरूप श्रीकृष्णका किरण-कण है अथवा वह प्रज्ज्वलित अग्निरूपी श्रीकृष्णकी चिङ्गारीके जैसा है। श्रीकृष्णकी स्वाभाविक तीन प्रकारकी शक्तियाँ हैं॥ 108-109॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"मैं कौन हूँ?" इन प्रश्नके उत्तरमें महाप्रभुने कहा,—"तुम—जीव हो। क्या तुम जड़से उत्पन्न यह शरीर हो? ऐसा नहीं है। अथवा तुम मन-बुद्धि-अहङ्कारस्वरूप लिङ्ग-शरीर हो? वह भी नहीं है। तुम स्वरूपतः श्रीकृष्णके नित्यदास हो। तुम श्रीकृष्णकी तटस्थाशक्ति हो अर्थात् श्रीकृष्णके चिद्-जगत् और मायिक जगत्,—इन दोनोंके बीचकी सीमापर (तटपर) स्थित होनेके कारण तुम्हारा दोनों जगत्से सम्बन्ध है, तुम—तटस्था-शक्ति हो। श्रीकृष्णके साथ तुम्हारा भेदाभेद-प्रकाशरूप दोनों प्रकारका 'सम्बन्ध' है।

चिन्मयधर्मके सम्बन्धसे तुम—श्रीकृष्णके अभेद-प्रकाश हो और अणुचैतन्य-धर्मके कारण बृहद्-चैतन्य श्रीकृष्णके भेद-प्रकाश हो। (श्रीकृष्णके साथ तुम्हारा) भेद और अभेद—युगपत् (एक ही समयमें) सिद्ध है। जीवके तटस्थ-स्वभावसे ही यह युगपत् भेदाभेद प्रकाश सिद्ध हुआ है। जीव सूर्यस्वरूप श्रीकृष्णका किरण-कण है; अथवा प्रज्वलित अग्निरूप श्रीकृष्णकी असंख्य चिङ्गारियाँ जीवसमूहका उदाहरण-स्थल है॥ 108-109॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/96 संख्या देखें॥ 108-109॥

विष्णुका सर्वव्यापिनी शक्तिके द्वारा लीला-विलास :—
विष्णुपुराण (1/22/53)में—

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥ 110॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 110॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक स्थानपर स्थित अग्निका प्रकाश अथवा आलोक जिस प्रकार विस्तृत होता है, परब्रह्मकी शक्ति भी अखिल जगत्में उसी प्रकार व्याप्त है॥ 110॥

अनुभाष्य—

यथा एकदेशस्थितस्य (निर्दिष्टस्थानाधिष्ठितस्य) अग्नेः ज्योत्सना (प्रभा) विस्तारिणी (व्यापिनी), तथा इदम् अखिलं (सर्वं चिदचिन्मयं) जगत् परस्य ब्रह्मणः (कृष्णस्य) शक्तिः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 110॥

(क-2) श्रीकृष्णकी शक्तिका विचार :—

कृष्णेर स्वाभाविक तिनशक्ति परिणति।
चिच्छक्ति, जीवशक्ति, आर मायाशक्ति॥ 111॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी स्वाभाविक शक्तिकी तीन परिणति हैं-चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति॥ 111॥

तीन प्रकारकी शक्ति :—
विष्णुपुराण (6/7/61)में—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या-कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥ 112॥

अनुवाद—विष्णुशक्ति—परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या नामक तीन प्रकारकी है। विष्णुकी पराशक्ति ही 'चित्-शक्ति' है, क्षेत्रज्ञा-शक्ति ही जीवशक्ति है (जिसे मायारूपी 'अविद्या'से 'अपरा' अर्थात् भिन्ना कहा गया है) और कर्म नामक अविद्या-शक्तिका नाम 'माया' है॥ 112॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/119 संख्या देखें॥ 112॥

(1) अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति अकाट्य-भावसे शक्तिमानकी आश्रित :—
विष्णुपुराण (1/3/2)में—

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता॥ 113॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सभी भावोंकी अचिन्त्यज्ञानसे गोचर समस्त शक्तियाँ ब्रह्ममें विद्यमान हैं; इस कारणसे ब्रह्मकी वे समस्त शक्तियाँ सृष्टि आदि भावशक्तिके रूपमें क्रिया करती हैं। हे तापस-श्रेष्ठ, अग्निका जिस प्रकार गर्मी प्रदान करनेवाला धर्म स्वतःसिद्ध है, उसी प्रकार सभी शक्तियाँ भी ब्रह्मका स्वतःसिद्ध धर्म हैं॥ 113॥

अनुभाष्य—

हे तपतां (तापसानां) श्रेष्ठ, यथा पावकस्य (अग्नेः) उष्णता (दाहकत्वादिशक्तिः) [अस्ति, तथा] यतः (ब्रह्मणः) एव सर्वभावानाम् अचिन्त्यज्ञानगोचराः (मानवबुद्धेः अगोचराः) अतः तु [एव] ताः (तथाविधाः) सर्गाद्याः (चित्सर्गाद्याः) [अविच्छेद्यरूपेण] ब्रह्मणः शक्तयः [नित्यप्रकटिताः] भवन्ति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 113॥

(2) तटस्था जीवशक्ति :—
विष्णुपुराण (6/7/62-63)में—

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान्॥ 114॥

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञ-संज्ञिता।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन वर्त्तते॥ 115॥

अनुवाद—क्षेत्रज्ञ-शक्ति ही जीवशक्ति है; वह जीवशक्ति सर्वज्ञ होनेपर भी मायावृत्तिरूप अविद्याके द्वारा आवृत्त होकर संसारके समस्त तापोंको नित्य भोग करती है। और, वही 'क्षेत्रज्ञ'-नामक शक्ति अविद्या-कुण्ठासे आवृत्त होकर, हे भूपाल, सभी जीवोंमें तारतम्यके सहित वर्तमान रहती है। तात्पर्य यह है, भगवान्‌की चिद्-शक्ति—सर्वश्रेष्ठा, जीवशक्ति-मध्यमा और अविद्या-कर्म कहलानेवाली मायाशक्ति—अधमा है। जीवशक्ति मायाके द्वारा आवृत्त होकर अर्थात् चिद्-शक्तिकी वृत्तिसे दूर होकर संसारके तापोंको भोगती है। वह चिद्-शक्तिसे दूर रहते हुए अपने द्वारा किये हुए कर्मोंके चक्रमें प्रवेश करके ऊँची-नीची अवस्थाएँ प्राप्त करती है॥ 114-115॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/155-156 संख्या देखें॥ 114-115॥

(3) बहिरङ्गा मायाशक्ति :—
श्रीमद्भगवद्गीता (7/5)में—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ 116॥

अनुवाद—[आठ भेदोंवाली जड़ा प्रकृतिसे] श्रेष्ठ जीवस्वरूपा मेरी एक अन्य प्रकृति जानो जिसके द्वारा यह जगत् अपने कर्मके द्वारा भोगनेके लिये गृहीत होता है॥ 116॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/118 संख्या देखें॥ 116॥

(ख) विरूप-विचार; बद्धजीवका भवरोग और उसके फलस्वरूप दुर्दशा और सजा :—

कृष्ण भुलि' सेइ जीव—अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार-दुःख॥ 117॥

अनुवाद—श्रीकृष्णको भूलनेके कारण ही जीव अनादिकालसे श्रीकृष्णसे बहिर्मुख हुआ है, इसलिये माया उसे संसाररूपी दुःख प्रदान करती है॥ 117॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मैं श्रीकृष्णका नित्यदास हूँ,—इस बातको भूल जानेसे ही जीवका मायाबन्धन है। तटस्थशक्तिरूप जीवकी चिद्-जगत् और मायिक जगत्‌के सन्धिःसीमापर रहनेके समय मायाभोगकी वासना करनेके कारण उसका मायामें प्रवेश हुआ है। मायामें प्रवेश करनेसे ही मायिक-कालकी गणना है। उस काल गणनासे पहले ही बहिर्मुखता होनेके कारण उसे 'अनादि' कहा जाता है; क्योंकि वह मायिक-कालसे पहले हुआ है॥ 117॥

कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय।
दण्ड्यजने राजा येन नदीते चुबाय॥ 118॥

अनुवाद—जैसे कभी राजा अपराधी व्यक्तिको दण्ड देनेके लिये उसे नदीमें डुबोने और पुनः उसे थोड़ी देरके लिये बाहर निकालनेका आदेश देता है जिससे वह मरे नहीं, उसी प्रकार माया जीवको उठाकर कभी तो स्वर्गमें ले जाती है और कभी उसे नरकमें डुबोती है॥ 118॥

अनुभाष्य—नित्यमुक्त जीव कभी भी श्रीकृष्णको नहीं भूलते, वे अनादिकालसे श्रीकृष्णोन्मुख रहकर हरिसेवारूपी अपनी नित्यवृत्तिमें स्थित रहते हैं। किन्तु जो सब जीव अपने श्रीकृष्ण-सेवाधिकारको भूलकर अनादिकालसे अपने कर्मफलोंसे उत्पन्न भोगवासनाके कारण मायाका अनुशीलन करके स्वयंको कर्मफलका भोक्ता मानते हैं, उनके कर्मफल-भोगका निर्णय मायाके द्वारा होता है। राजाके पुरस्कार और दण्डकी भाँति बद्धजीव भी मायाके द्वारा पुण्यकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें देवताके पदपर आरूढ़ होकर सुख भोग करता है, पुनः पापके फलसे नरकादिमें क्लेश प्राप्त करता है॥ 118॥

अमृतानुकणिका—राजा जो अपराधी व्यक्तिको दण्ड देता है, वह केवल उसे दुःख भोग करानेके लिये नहीं होता। उस दुःख भोगका मुख्य उद्देश्य अपराधी व्यक्तिकी अपराध करनेकी वृत्तिको दूर करना होता है

जिससे वह भविष्यमें अपराध करके दण्डका भागी न हो। इसलिये उद्देश्यके प्रति लक्ष्य करनेपर यह समझा जा सकता है कि राजाका दण्ड देना भी उस अपराधीके प्रति करुणा है।

श्रीकृष्णको भूलकर जीव सुखकी आशासे इस जगत्में आता है। परन्तु (गीता 8/15)में भगवान् श्रीकृष्णने इस जगत्को *'दुःखालयमशाश्वतम्'* कहा है। यहाँ जो सुख प्रतीत होता है, वह भी दुःखसे मिश्रित होता है और परिणाममें दुःख ही होता है। (गीता 9/20-21)में भगवान्ने कहा है,—'ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। अर्थात् अनेक पुण्य कर्मोंके फलस्वरूप जीव स्वर्गको प्राप्त करता है। वहाँ सुखभोग करनेपर पुण्य क्षीण होनेपर जीव पुनः मृत्युलोकमें पतित होता है।' इस प्रकार स्वर्गभोग भी नश्वर और अन्ततः दुःखपूर्ण है। अपने प्रयासोंसे जीव जन्म-मृत्युके हाथोंसे छुटकारा नहीं पा सकता, तब वह यह समझ जाता है कि सुखकी आशासे इस जगत्में आकर उसने बहुत बड़ी भूल की है। तब वह समझ सकता है कि कृष्ण-विमुखता ही उसकी मूल भूल है और भाग्यवशतः तब जीव कृष्णोन्मुख होनेकी चेष्टा कर सकता है। इसी उद्देश्यसे ही माया जीवको दुःख प्रदान करती है॥ 118॥

(ग) बद्धजीवका रोग; उसका उपाय और चिकित्सा अर्थात् पथ्य एवं औषधिके सेवनकी विधि :—

श्रीमद्भागवत (11/2/37)में—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥ 119॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णसे इतर (अन्य) जो माया है, उसमें अभिनिविष्ट जीवमें 'भय' उपस्थित होता है और उन ईश्वरसे बहिर्मुख होनेके कारण मायाजनित विपरीत स्मृति होती है; इसी कारण पण्डित व्यक्ति गुरुको 'देवता' और 'आत्म'-स्वरूप मानकर अनन्य-भक्तिके साथ उन परमेश्वरका भजन करेंगे॥ 119॥

अनुभाष्य—द्वारकापुरीमें श्रीवसुदेवकी जिज्ञासा करने पर देवर्षि नारदने भागवत-धर्मके वर्णनके प्रसङ्गमें विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्रके संवादका वर्णन किया; राजा निमिके यज्ञमें नवयोगेन्द्रके आनेपर राजा निमिने उनसे भागवत-धर्मका वर्णन करनेकी प्रार्थना की, नवयोगेन्द्रोंमें एक 'कवि' ऋषि सर्वप्रथम भागवत धर्मके लक्षण बतलाकर बद्धजीवकी दुरावस्था और भगवद्भजनकी कर्त्तव्यताका उपदेश कर रहे हैं,—

[यतः] ईशात् (भगवतः कृष्णात्) अपेतस्य (विमुखस्य बद्धजीवस्य) तन्मायया (तस्य भगवतः कृष्णस्य मायया बहिरङ्गशक्त्या) अस्मृतिः (भगवतः स्वरूपस्य अस्फूर्त्तिः धारणाभावः इत्यर्थः) [ततः] विपर्ययः (मायाकृत-कर्मफल-भोगपराभिमानः—स्वरूपास्मरणात् देहोऽस्मीति विवर्त्तमूल-बुद्धिवैपरीत्यमित्यर्थः) [ततः] द्वितीयाभिनिवेशतः (निज-भोगज-कल्पनात्—स्वरूपात् अन्यस्मिन् वस्तुनि देहादौ आवेशतः, स च देहाहङ्कारतः, स च स्वरूपास्मरणात्) भयं (देहद्रविण-सुहृन्निमित्तं संसृतिः आशङ्काः वा) स्यात् (भवति)। अतः बुध (कृष्णोन्मुखो बुद्धिमान् जीवः) तम् (ईशम् अधोक्षजम् एव) गुरुदेवतात्मा (गुरुः एव देवता ईश्वरः, आत्मा प्रेष्ठश्च यस्य तथादृष्टिः सन्) एकया (केवलया अव्यभिचारिण्या ऐकान्तिक्या) भक्त्या (इतरज्ञान-कर्ममार्गानुसरणत्यागेन) आभजेत् (सम्यक् सेवेत)।

श्लोक-भावानुवाद—जब भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख बद्धजीवको भगवान् श्रीकृष्णकी माया (बहिरङ्गाशक्ति) के द्वारा भगवद् स्वरूपकी स्मृतिका अभाव होता है, तब उसे मायाकृत कर्मफलके भोक्ताके अभिमानसे और स्वरूपकी विस्मृतिसे मैं यह देह हूँ, ऐसी विपरीत बुद्धि होती है और तब द्वितीय-अभिनिवेश अर्थात् अपनेको भोक्ता मानकर अपने स्वरूपसे अन्य वस्तु—देहमें आवेश होनेके कारण देहमें आत्मबुद्धिके अहङ्कार और स्वरूपकी विस्मृतिके कारण देह-धन-सुहृदसे बिछुड़नेका

भय होता है। इसलिये श्रीकृष्ण-उन्मुख बुद्धिमान् जीव गुरुदेवको आराध्य-देवता और प्रियतम जानकर भगवान्‌की ऐकान्तिक भक्तिके द्वारा (श्रीकृष्णसे अतिरिक्त ज्ञान-कर्ममार्गके अनुसरणको त्यागकर) सम्यक्‌रूपसे सेवा करेंगे॥ 119॥

(घ) चिद्‌शक्तिमान् परमेश्वरके अवरोह अथवा अवतारका वर्णन; मायाको जीतनेका एकमात्र उपाय :—

साधु-शास्त्र-कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तारे, माया ताहारे छाड़य॥ 120॥

अनुवाद—साधु और शास्त्रकी कृपासे जीव जब श्रीकृष्णोन्मुख होता है, तब उस जीवका उद्धार होता है और माया उसे छोड़ देती है॥ 120॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णबहिर्मुखतासे ही जीवका पतन होता है—यह साधु और शास्त्रकी कृपासे ही जाना जाता है। इसे जानकर जो जीव पुनः श्रीकृष्णोन्मुख होता है, उसका ही उद्धार होता है और माया उसे अपने चङ्गुलसे मुक्त कर देती है॥ 120॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण-विमुख रहकर जीव संसारमें सुखभोगमें व्यस्त हो जाता है। वैष्णवकी कृपा और शास्त्रके अनुग्रहसे जीव कर्मफलभोग-वासनासे मुक्त होकर जब श्रीकृष्ण-सेवोन्मुख होता है, तब वह भोग करने अथवा मुक्त होनेकी पिपासासे छुटकारा प्राप्त करता है। श्रीकृष्णसेवा-परायण बुद्धि होनेसे विषयभोग-वासनारूपी माया उसे छोड़ देती है। श्रीकृष्ण-सेवोन्मुख होनेपर तब जीव पुनः अहंग्रहोपासनामें मत्त होकर मुक्तिकामी ज्ञानी अथवा विषय-भोगवासनासे फलभोगकामी होकर श्रीकृष्णसे भिन्न वस्तुओंमें आबद्ध नहीं होता, अपितु मायाके चङ्गुलसे छुटकारा प्राप्त करता है॥ 120॥

एकमात्र श्रीकृष्णके शरणागत भक्त ही मायाको जीतनेवाले :—
श्रीमद्भगवद्‌गीता (7/14)में—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ 121॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 121॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरी इस त्रिगुणमयी मायासे अत्यन्त कष्टसे पार हुआ जाता है; जो मेरे शरणागत होते हैं, वे ही केवल इस मायासे पार हो सकते हैं॥ 121॥

अनुभाष्य—

एषा मम (परमेश्वरस्य) दैवी (अलौकिकी वैष्णवी) गुणमयी (सत्त्वरजस्तमोमयी) माया (बहिरङ्गा शक्तिः) दुरत्यया (भुक्तिमुक्तिवासनाबद्धजीवानां दुरतिक्रमा) हि (एव); मां (स्वरूपशक्तियुक्तं स्वयं भगवन्तं कृष्णं) ये (जनाः) प्रपद्यन्ते (सर्वात्मना आश्रयं कुर्वन्ति), ते (एव) एतां मायां (जीवविमोहिनीं प्रकृतिं) तरन्ति (अतिक्रामन्ति पराजयन्ते)।

श्लोक-भावानुवाद—भुक्ति-मुक्तिकी वासनासे बद्ध जीवोंके लिये मुझ परमेश्वरकी इस अलौकिकी वैष्णवी (सत्त्व-रज-तमकी) त्रिगुणमयी बहिरङ्गा शक्तिका अतिक्रम करना अति दुष्कर है, किन्तु जो स्वरूपशक्तियुक्त स्वयं मुझ कृष्णका सभी प्रकारसे आश्रय ग्रहण करते हैं, वे इस जीव-विमोहिनी प्रकृतिको जय कर लेते हैं॥ 121॥

जीवके प्रति अहैतुकी-कृपामय अधोक्षज विष्णुके द्वारा अपने अवतारका प्राकट्य :—

मायामुग्ध जीवेर नाहि कृष्णस्मृति-ज्ञान।
जीवेरे कृपाय कैला कृष्ण वेद-पुराण॥ 122॥

अनुवाद—मायामुग्ध जीवको श्रीकृष्णका स्मृतिरूपी ज्ञान नहीं रहता, जीवपर कृपा करके ही श्रीकृष्णने वेदों और पुराणोंको प्रकाशित किया है॥ 122॥

अनुभाष्य—मायामुग्ध जीव प्रतिक्षण प्रत्येक विषयमें स्वरूपविभ्रमके कारण अपने भोगफलको प्राप्त करनेमें लगे रहते हैं। कभी तो वे मायाबद्ध-बुद्धिसे फलभोगकी कामनासे छूटनेकी इच्छा करते हैं, कभी वे फलकामी बनकर अनित्य भोगोंका बहुत आदर करते हैं; दोनों अवस्थाओंमें ही, मायासे ढके होनेके कारण उनके श्रीकृष्ण-स्मरणका अभाव लक्षित होता है। इसलिये परमकरुणामय श्रीकृष्णने ऐसे भ्रान्तबुद्धि कुविचारपरायण

और भोगपरायण व्यक्तियोंका अमङ्गलसे उद्धार करनेके लिये वेद-पुराणादि प्रकाशित किये हैं॥ 122॥

श्रीकृष्ण ही तीन प्रकाशोंसे श्रीकृष्णज्ञान देनेवालेके रूपमें अवतीर्ण—(1) वेद अथवा वेदान्त-भाष्य श्रीमद्भागवत, (2) भागवत-श्रेष्ठ गुरु, (3) अन्तर्यामी :—

'शास्त्र'-'गुरु'-'आत्म'-रूपे आपनारे जानान।
'कृष्ण मोर प्रभु, त्राता'—जीवेर हय ज्ञान॥ 123॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण 'शास्त्र', 'गुरु' और 'अन्तर्यामी'के रूपमें जीवको अपने तत्त्वसे अवगत कराते हैं। श्रीकृष्णका ज्ञान होनेपर जीव यह समझ पाता है कि 'श्रीकृष्ण ही मेरे स्वामी और मेरी रक्षा करनेवाले हैं॥'123॥

अनुभाष्य—शास्त्र, गुरु और चैत्यगुरु—इन तीन रूपोंमें भगवान् उदित होकर बद्धजीवके हृदयमें 'जीवके प्रभु' अथवा 'जीवोंके उद्धार-कर्त्ता' आदि भावोंको प्रकाशित करा देते हैं॥ 123॥

(ङ) ईश्वर-विश्वासी मात्रको ही वेदके अपौरुषेय-ज्ञानके कारण ग्रन्थकारके द्वारा पूर्वोक्त तीन प्रकारके प्रमाणोंमेंसे सर्व-प्रत्यक्षीभूत वेद अथवा श्रुतिकी सहायतासे अपने वक्तव्य एकमात्र शुद्धभक्तिके श्रेष्ठ-अभिधेय होनेका संस्थापन; शास्त्रोंमें प्रतिपादित तीन प्रकारके अन्वेषणीय तत्त्व अथवा ब्रह्मवस्तु :—

वेदशास्त्र कहे—'सम्बन्ध', 'अभिधेय', 'प्रयोजन'।
'कृष्ण'—प्राप्य-सम्बन्ध, 'भक्ति'—प्राप्येर साधन॥ 124॥

श्रीकृष्ण ही सम्बन्ध, शुद्धभक्ति ही अभिधेय, प्रेम ही प्रयोजन :—

अभिधेय-नाम—'भक्ति', 'प्रेम'—प्रयोजन।
पुरुषार्थ-शिरोमणि—प्रेम महाधन॥ 125॥

साधनभक्तिके साध्य प्रेमकी चेष्टा :—

कृष्णमाधुर्य-सेवा-प्राप्त्येर कारण।
कृष्णे सेवा करे, कृष्णरस-आस्वादन॥ 126॥

अनुवाद—वेदशास्त्र 'सम्बन्ध', 'अभिधेय' और 'प्रयोजन'के विषयमें बतलाते हैं। जीवके प्राप्य श्रीकृष्ण ही 'सम्बन्ध' हैं, प्राप्य श्रीकृष्णसेवाका साधन ही भक्ति अथवा 'अभिधेय' है, और पुरुषार्थ-शिरोमणि महाधन स्वरूप प्रेम ही 'प्रयोजन' है। जीव जब श्रीकृष्णमाधुर्यके आनन्दको अनुभव करता है, तब वह श्रीकृष्णकी सेवा करता है। उस सेवाके द्वारा वह श्रीकृष्णरसका आस्वादन करता है॥ 124-126॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जीव मायामुग्ध होकर श्रीकृष्णस्मृति-ज्ञानसे वञ्चित हो गये हैं, ऐसा देखकर अपार-करुणामय श्रीकृष्ण वेद-पुराण-शास्त्रोंको प्रकाशित करके उन शास्त्रोंके रूपमें, शास्त्रोंके अर्थ-प्रदर्शक गुरुरूपमें और अन्तर्यामी आत्मारूपमें जीवको अपने तत्त्वसे अवगत कराते हैं। सभी वेदशास्त्रोंमें सम्बन्ध-ज्ञान, अभिधेय-ज्ञान और प्रयोजन-ज्ञानकी शिक्षा है। जीवके प्राप्य श्रीकृष्ण जो तत्त्व हैं, वे सम्बन्धज्ञानसे प्राप्त होते हैं। उन श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके साधनका नाम—'भक्ति' है; उसे 'अभिधेय' कहते हैं। श्रीकृष्ण-प्राप्तिमें 'प्रेम' नामक एक विचित्र कार्य है, उसका नाम 'प्रयोजन' है॥ 123-125॥

अनुभाष्य—वेदशास्त्रोंमें 'सम्बन्ध', 'अभिधेय' और 'प्रयोजन'—ये तीन विषय कहे गये हैं। शुद्धजीवके प्राप्य श्रीकृष्ण ही 'सम्बन्ध' हैं; प्राप्य श्रीकृष्णसेवाका साधन ही 'अभिधेय' है; और धर्म-अर्थ-कामभोग और भोगरहित 'मोक्ष'—इन चारों पुरुषार्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ महानधनरूप प्राप्य श्रीकृष्णप्रेम ही 'प्रयोजन' है॥ 125॥

चार प्रकारके अभिधेयोंमेंसे सभी शास्त्रोंमें एकमात्र शुद्धभक्तिके ही निर्विघ्न और अनायास प्राप्त होनेका वर्णन; उपमा—सर्वज्ञ अथवा सिद्ध महाजनोंका उपदेश :—

इहाते दृष्टान्त—यैछे दरिद्रेर घरे।
'सर्वज्ञ' आसि' दुःख देखि' पुछये ताहारे॥ 127॥

जीवका नित्यसिद्धभाव श्रीकृष्णप्रेम :—

'तुमि केने एत दुःखी, तोमार आछे पितृधन।
तोमारे ना कहिल, अन्यत्र छाड़िल जीवन॥'128॥

अनुवाद—इसका दृष्टान्त—जैसे किसी दरिद्र व्यक्तिके

घरमें एक ज्योतिषीने आकर उसके दुःखको देखकर उससे पूछा,—'तुम इतने दुःखी क्यों हो? तुम्हारे पिताने तुम्हारे लिये बहुत धन छोड़ा है। परन्तु तुम्हारे पिताने अन्य किसी स्थानपर शरीर छोड़ा था, इसलिये वे तुम्हें धनके विषयमें बतला नहीं पाये॥'127-128॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जीवकी श्रीकृष्ण-बहिर्मुखताके कारण उसकी स्वरूपस्मृतिके लुप्त होनेपर श्रीकृष्णने वेद-पुराणादिका प्रवर्तन करके स्वयंको प्रकाशित किया है। 'दरिद्र और ज्योतिषीकी कथा'—उसकी उपमा है॥127॥

अनुभाष्य—*'सर्वज्ञ'*—भाः 5/5/10-13 माध्व-भाष्य देखें॥127॥

अमृतानुकणा—छान्दोग्योपनिषद् (8वाँ प्रपाठक)—

"त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषां सत्यानां सतामनृतमपिधानं ×× अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेतामच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानाः। तद् यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः।"

अर्थात् "इस जगत्में ये सब सत्यकामनाएँ आत्मामें विद्यमान रहनेपर भी अविद्यारूप असत्यके आवरणमें आवृत हैं। किन्तु आत्मदर्शी व्यक्ति सत्यकाम होकर इस लोकमें स्थित, परलोकमें स्थित अथवा अन्य जो कुछ दुर्लभ है, उन सबको हृदयाकाशमें गमनके द्वारा प्राप्त करता है। जैसे, पृथ्वीमें छिपे स्वर्ण आदि गुप्तधनके सम्बन्धमें अज्ञ व्यक्ति उस भूमिके ऊपर बार-बार विचरण करनेपर भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे ही सभी प्राणी अज्ञानके कारण हृदयमें अवस्थित ब्रह्मवस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते।"

'सर्वज्ञ'—(भःरःसिः 2/1/182)—

"परचित्तस्थितं देशकालाद्यन्तरितं तथा।
यो जानाति समस्तार्थं स सर्वज्ञो निगद्यते॥"

अर्थात् "जो दूसरोंके हृदयकी बात और देश-कालादिकी ढकी हुई सभी बातोंको जानता है, उसको सर्वज्ञ कहते हैं॥"127-128॥

साध्य-प्रेमके साधनभूत भक्तिकी अवश्य-कर्त्तव्यता; शास्त्रमें इसीका ही विधान :—

सर्वज्ञेर वाक्ये करे धनेर उद्देशे।
ऐछे वेद-पुराण जीवे 'कृष्ण' उपदेशे॥129॥

अनुवाद—उपरोक्त दृष्टान्तमें ज्योतिषीके वचन जैसे धनके विषयमें निर्देश करते हैं, उसी प्रकार वेद-पुराण जीवको 'श्रीकृष्ण'के विषयमें बतलाते हैं॥129॥

जीवोंके नित्य सम्बन्धी श्रीकृष्ण ही सभी शास्त्रोंके उद्दिष्ट :—

सर्वज्ञेर वाक्ये मूलधन अनुबन्ध।
सर्वशास्त्रे उपदेशे, 'श्रीकृष्ण'—सम्बन्ध॥130॥

अनुवाद—ज्योतिषीके वचनोंसे जिस प्रकार दरिद्र व्यक्तिको अपने धनके विषयमें पता चल जाता है, उसी प्रकार सभी शास्त्रोंके उपदेशोंसे जीवको श्रीकृष्णसे अपने सम्बन्धके विषयमें पता चल जाता है॥130॥

नित्यसिद्ध भावका प्राकट्य ही बद्धजीवका साधन :—

'बापेर धन आछे'—जाने, धन नाहि पाय।
सर्वज्ञ कहे तारे प्राप्तिर उपाय॥131॥

अनुवाद—'पिताके द्वारा छोड़ा गया धन है'—ज्योतिषीके वचनानुसार दरिद्र व्यक्तिको इसे जानकर भी उस धनकी प्राप्ति नहीं होती। ज्योतिषी ही उसे प्राप्तिका उपाय भी बतलाता है॥131॥

अभक्ति-मार्ग—(1) भोगकी प्राप्तिके लिये कर्ममार्गमें विपत्तिकी आशङ्का :—

'एइ स्थाने आछे धन'—बलि' दक्षिणे खुदिबे।
'भीमरुल-वरुली' उठिबे, धन ना पाइबे॥132॥

अनुवाद—'इस स्थानपर धन है'—यह बताकर ज्योतिषीने कहा—यदि तुम दक्षिण भागमें खोदोगे, तो

ततैये और मधुमक्खियाँ निकलेंगे और तुम्हें धनकी प्राप्ति नहीं होगी॥ 132॥

(2) विभूति-सिद्धिकी प्राप्तिके लिये योगमार्गमें विपत्तिकी आशङ्का :—

'पश्चिमे' खुदिबे, ताहा 'यक्ष' एक हय।
से विघ्न करिबे,—धने हात ना पड़य॥ 133॥

अनुवाद—यदि तुम पश्चिम भागमें खोदोगे, तो वहाँ एक यक्ष है, वह ऐसी बाधा उत्पन्न करेगा, जिससे धन तुम्हारे हाथ नहीं लगेगा॥ 133॥

(3) सायुज्य प्राप्तिके लिये ज्ञान-मार्गमें विपत्तिकी आशङ्का :—

'उत्तरे' खुदिले आछे कृष्ण-'अजगरे'।
धन नाहि पाबे, खुदिते गिलिबे सबारे॥ 134॥

अनुवाद—उत्तर भागमें खोदनेपर देखोगे कि वहाँ काले रङ्गका अजगर है। तुम्हें धन तो मिलेगा नहीं, अपितु वही अजगर ही खोदनेवालेको निगल जायेगा॥ 134॥

पूर्व अथवा पुराण अथवा नित्य शाश्वत धन श्रीकृष्णभक्ति ही एकमात्र विपत्ति-रहित :—

पूर्वदिके ताते माटी अल्प खुदिते।
धनेर झारि पड़िबेक तोमार हातेते॥ 135॥

अनुवाद—पूर्व दिशामें थोड़ी सी मिट्टी खोदनेपर ही धनकी मटकी तुम्हारे हाथ लगेगी॥ 135॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वेद और पुराण शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके उपायोंकी बात स्थान-स्थानपर लिखी है; उसमें किसी ओर ततैयारूप कर्मकाण्ड, किसी ओर ज्ञान-काण्डरूपी यक्ष, किसी ओर काले रङ्गका अजगर-रूपी योगगत कैवल्य, पुनः किसी ओर रक्षित धनका पात्र बहुत कम परिश्रमसे ही हाथमें आ जाता है। इसलिये वेदशास्त्रोंने कहा है कि कर्म, ज्ञान और योगको परित्यागकर भक्तिपथसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है॥ 135॥

अनुभाष्य— *'उपमेय'*,—जैसे, पूर्वदिशामें—श्रीकृष्णभक्ति, दक्षिणदिशामें—कर्मकाण्ड, पश्चिमदिशामें—सिद्धिकाण्ड (मतान्तरमें ज्ञानकाण्ड), उत्तरदिशामें—ज्ञानकाण्ड (मतान्तरमें योगकाण्ड)।

और इनके *'उपमान'*,—जैसे, पूर्वदिशामें—पितृधन, दक्षिणदिशामें—ततैये और मधुमक्खी, पश्चिमदिशामें—यक्ष, उत्तरदिशामें—काला अजगर।

दक्षिणा-मार्गीय साधन ही फलभोगपरक कर्मकाण्ड है; यमके द्वारा दण्डनीय 'दक्षिणा' ग्रहण करके फलका आरोप करते हैं। इस कर्ममार्गमें जीव भोगवासनारूपी ततैये, मधुमक्खी आदिके द्वारा डंक मारे जानेपर कष्ट प्राप्त करते हैं, इससे उनके भोगकी आशा पूर्ण नहीं होती, केवल उत्तरोत्तर वर्धित ही होती है।

उत्तरा-मार्गीय साधन ही सिद्धिवाञ्छा-परायण योगमार्ग है; उसमें कैवल्यरूपी काले रङ्गका अजगर-सर्प शुद्धजीवकी सत्ताको ग्रास कर लेता है। किसीके मतानुसार, उत्तरा-मार्गीय साधन ही निष्काम-ज्ञानमार्ग है, वहाँ शुद्धजीवकी सत्ताको ब्रह्मसायुज्यरूपी काले सर्पने ग्रास कर रखा है।

यक्ष धनका रक्षक है, धनको प्रदान करनेवाला नहीं। यक्षसे प्रार्थना करनेवालोंका विनाशके अतिरिक्त धनकी प्राप्ति दुराशामात्र है, अर्थात् धनके लोभसे प्रलोभित करके यक्ष अन्तमें धन पानेके अभिलाषी व्यक्तिका विनाश करनेवाला है; वास्तवमें ज्ञानमार्गमें अथवा योगमार्गमें सायुज्य अथवा कैवल्य, दोनों ही जीवकी सत्ताके संहारक हैं।

श्रीकृष्णभक्ति ही बद्धजीवका 'पूर्व' अर्थात् सिद्धधन है। उसे प्राप्त करके शुद्धजीव नित्यकालके लिये धनी हो जाता है। भक्तिधन-हीन व्यक्ति जड़ीय नश्वर अभावोंसे ग्रस्त होकर कभी तो कर्मरूपी ततैयेके डंकसे छटपट करता है, धन प्राप्त नहीं करता; पुनः कभी श्रीकृष्णकी तरफ पीठ करके अहंग्रोपासनामें अथवा कैवल्यके साधनमें व्यस्त होकर योगरूपी यक्षके द्वारा प्रेमधनसे वञ्चित होता है; पुनः उत्तरमें अर्थात्

शुद्धजीवसत्तासे रहित सायुज्य अथवा कैवल्यरूपी सर्पके मुखमें गिरकर भी धन प्राप्त नहीं करता॥ 132-135॥

शुद्धभक्तिके बलसे श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति ही सभी शास्त्रोंका तात्पर्य :—

ऐछे शास्त्र कहे,—कर्म, ज्ञान, योग त्यजि'।
'भक्त्ये' कृष्ण वश हय, भक्त्ये ताँरे भजि॥ 136॥

अनुवाद—इसी प्रकार शास्त्र कहते हैं,—कर्म, ज्ञान और योगको त्यागकर भक्तिके द्वारा श्रीकृष्णका भजन करना चाहिये जिसके द्वारा श्रीकृष्ण वशीभूत हो जाते हैं॥ 136॥

भगवान् भक्तके लिये ही प्राप्य; भक्तिके बलसे ही अशुद्ध भी पवित्र :—
श्रीमद्भागवत (11/14/20-21)में—

न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥ 137॥

अनुवाद—हे उद्धव! मेरी प्रति की गयी प्रबला भक्ति जिस प्रकार मुझे वशीभूत कर सकती है, अष्टाङ्ग-योग, अभेद-ब्रह्मवादरूप सांख्यज्ञान, ब्राह्मणोंका स्वशाखा-अध्ययनरूप स्वाध्याय, सब प्रकारकी तपस्या और त्यागरूप संन्यासादिके द्वारा मुझे वैसा वशीभूत नहीं किया जा सकता॥ 137॥

अनुभाष्य—आदिलीला 17/76 संख्या देखें॥ 137॥

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः
श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा
श्वपाकानपि सम्भवात्॥ 138॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 138॥

अमृतप्रवाह भाष्य—साधुओंका प्रिय मैं, अनन्य श्रद्धासे उत्पन्न भक्तिके द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। भक्ति ही मुझमें निष्ठा रखनेवाले चण्डालका भी जन्मदोषसे उद्धार करती है॥ 138॥

अनुभाष्य—उद्धवजीके प्रश्नके उत्तरमें श्रीकृष्णकी उक्ति,—

सतां (नित्यसेवकानां सज्जनानां) प्रियः (सेव्यः) आत्मा (प्रेष्ठः) अहम् (स्वयं भगवान् कृष्णः) एकया (अव्यभिचारिण्या, अहैतुक्या) श्रद्धया (श्रद्धापूर्विकया) भक्त्या ग्राह्यः (साध्यः, प्राप्यः, लभ्यः इत्यर्थः); मन्निष्ठा (कृष्णैकसेवनधर्म-तत्परा) भक्तिः श्वपाकान् (नीचकुलोद्भवान् जनान्) अपि सम्भवात् (प्राक्तन-दुष्कृति-जनित-शौक्र-जाति-दोषात्) पुनाति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 138॥

सभी शास्त्रोंमें श्रीकृष्णप्राप्तिके साधन—'भक्ति'को ही अभिधेय होनेका गान :—

अतएव 'भक्ति'—कृष्णप्राप्त्येर उपाय।
'अभिधेय' बलि' तारे सर्वशास्त्रे गाय॥ 139॥

अनुवाद—इसलिये भक्ति ही श्रीकृष्ण-प्राप्तिका उपाय है। सभी शास्त्र इसी 'भक्ति'को ही 'अभिधेय' कहकर वर्णन करते हैं॥ 139॥

दृष्टान्त :—

धन पाइले यैछे सुखभोग-फल पाय।
सुखभोग हैते दुःख आपनि पलाय॥ 140॥

सम्बन्धयुक्त सेवाके फलसे श्रीकृष्णप्रीतिकी वृद्धि; उसके साथ-ही-साथ मुक्ति अथवा अनर्थ-निवृत्ति :—

तैछे भक्ति-फले कृष्णे प्रेम उपजय।
प्रेमे कृष्णास्वाद हैले भव नाश पाय॥ 141॥

अनुवाद—धन प्राप्त होनेसे जैसे सुखभोगरूप फलकी प्राप्ति होती है और सुखभोगसे दुःख अपने आप ही दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार भक्तिके फलसे श्रीकृष्णके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और प्रेममें श्रीकृष्णास्वादन होनेपर भवनाश (पुनः जन्म-मृत्युके चक्रका नाश) हो जाता है॥ 140-141॥

श्रीकृष्णप्रीतिमूलक सेवाका मुख्य फल—श्रीकृष्णप्रेमानन्दकी प्राप्ति, गौणफल—विमुखताका दूर होना और मुक्ति :—

दारिद्रय-नाश, भवक्षय,—प्रेमेर 'फल' नय।
प्रेमसुख-भोग—मुख्य प्रयोजन हय॥ 142॥

अनुवाद—दरिद्रताका नाश और भवक्षय—ये दोनों प्रेमके वास्तविक 'फल' नहीं हैं। प्रेमसुखका भोग ही भगवद्-सेवाका मुख्य प्रयोजन है॥ 142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णसेवा आस्वादनका मुख्य फल ही प्रेम-सुख है, श्रीकृष्ण-बहिर्मुखता ही जीवकी दरिद्रता है। इस दरिद्रताका नाश एवं संसार-क्षय श्रीकृष्णसेवा आस्वादनके साथ-साथ गौण-फलके रूपमें उदित होते हैं, वास्तवमें वे मुख्य फल नहीं हैं॥ 142॥

वेदोंमें श्रीकृष्ण—सम्बन्ध, भक्ति—अभिधेय, प्रेम—प्रयोजन :—

वेदशास्त्रे कहे सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।
कृष्ण, कृष्णभक्ति, प्रेम,—तिन महाधन॥ 143॥

अनुवाद—वेदशास्त्रोंमें श्रीकृष्णको सम्बन्ध, उनकी भक्तिको अभिधेय और श्रीकृष्णप्रेमको प्रयोजन कहा गया है। इसलिये श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णभक्ति और श्रीकृष्ण-प्रेम—ये तीनों महाधन हैं॥ 143॥

सम्बन्ध ज्ञानके साथ-ही-साथ भवबन्धनका कटना :—

वेदादि सकल शास्त्रे कृष्ण—मुख्यसम्बन्ध।
ताँर ज्ञाने आनुषङ्गे याय मायाबन्ध॥ 144॥

अनुवाद—वेदादि समस्त शास्त्रोंमें श्रीकृष्णको मुख्य सम्बन्ध कहा गया है। उनका ज्ञान होनेपर मायाका बन्धन तो आनुषङ्गिक रूपमें अपने आप ही दूर हो जाता है॥ 144॥

समस्त पुराणों और आगमोंमें विष्णुके ही परमेश्वर होनेका वर्णन :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/4/142)—में उद्धृत पद्मपुराणके वैशाख-माहात्म्यमें यमब्राह्मण-संवादमें—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमा-
स्तां तामेव हि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पावधि।
सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान् विष्णुः समस्तागम-
व्यापारेषु विवेचनव्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते॥ 145॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वे-वे पुराण और आगम ग्रन्थ सभी चाहे चर-अचर प्राणियोंके मोहको उत्पन्न करनेके लिये अपने-अपने उद्दिष्ट देवताओंको 'प्रधान' कहकर 'कल्प'-काल तक जल्पना करते रहें, तो भी उन सभी आगमादिका भली-भाँति विचार करके देखनेपर सिद्धान्तके अनुसार विष्णुको ही एकमात्र भगवान् कहकर निश्चित किया गया है॥ 145॥

अनुभाष्य—

चराचरस्य (स्थिरजङ्गमस्य) जगतः व्यामोहाय (अज्ञान-तमोवर्द्धनाय) ते ते पुराणागमाः (स्मृतितन्त्रादयः) कल्पावधि (कल्पकालपर्यन्तं) तां तां देवताम् एव परमिकां (श्रेष्ठां) जल्पन्तु (कथ्यन्तु इत्युपहासे); पुनः (किन्तु) समस्तागमव्यापारेषु (समस्तानां सकलानाम् आगमानां शास्त्राणां व्यापारेषु प्रयोजनेषु) विवेचनव्यतिकरं (विवेचनस्य व्यापारस्य दूषणत्वेन तदेव स्कन्दपुराणादि-विचारस्य व्यतिकरः आसङ्गः तं) नीतेषु (प्रापितेषु सत्सु) सिद्धान्ते (विषये) विष्णुः एव एकः भगवान् (सर्वेश्वरः इति) निश्चीयते (निर्द्धार्यते, संस्थाप्यते इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अन्वय और व्यतिरेक रूपसे समस्त-वेदोंसे श्रीकृष्ण ही जानने योग्य और प्रतिपाद्य :—

मुख्य-गौण-वृत्ति, किंवा अन्वय-व्यतिरेके।
वेदेर प्रतिज्ञा केवल कहये कृष्णके॥ 146॥

अनुवाद—मुख्य या गौण वृत्तिसे अथवा अन्वय और व्यतिरेक भावसे वेदोंको जाननेपर यह उपलब्धि होती है कि वेदोंका प्रतिपाद्य विषय केवल श्रीकृष्ण ही हैं॥ 146॥

अनुभाष्य—रूढ़ि और लक्षणा-वृत्ति अथवा अन्वय और व्यतिरेक दर्शनसे भी श्रीकृष्ण ही वेदोंके प्रतिपाद्य-विषयरूपमें निर्दिष्ट हैं॥ 146॥

शास्त्र प्रमाण; श्रीमुखकी वाणी :—
श्रीमद्भागवत (11/21/42-43)में—

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन॥ 147॥

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम्।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति॥ 148॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 147–148॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समस्त वेदवचन किसका विधान करते हैं और किसे प्रतिपादित करते हैं, किसे लक्ष्य करके विकल्प करते हैं—वेदोंके ऐसे तात्पर्यको मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मैं कह रहा हूँ कि समस्त वेदवचन मेरा ही साक्षात् विधान और नाम लेते हैं एवं मुझे ही विकल्पके द्वारा वर्णन करते हैं। मैं ही समस्त वेदार्थोंका एकमात्र तात्पर्य हूँ। वेद मायामात्रका विचार करके उसे अन्तमें सम्पूर्णरूपसे निषेध करके प्रसन्न (विचारादिसे शान्त) होते हैं॥ 147–148॥

अनुभाष्य—वेदोंकी विधि और निषेधके सम्बन्धमें उद्धवके द्वारा जिज्ञासा करनेपर श्रीकृष्णने पहले वैदिक कर्मकाण्डकी फलश्रुति और फिर विविध वैदिक छन्दोंका वर्णन करके गूढ़ रहस्यमय बड़ी कठिनाईसे जानने योग्य समस्त त्रिकाण्डात्मक वेदोंके एकमात्र प्रतिपाद्य विषय और जानने योग्य वस्तु जो वे स्वयं ही हैं, उस विषयमें बतला रहे हैं,—

[बृहत्याः वैखर्य्याः श्रुतेः साकल्येन स्वरूपतो दुर्ज्ञेयत्वमुक्त्वा अर्थतोऽपि दुर्ज्ञेयत्वमाह—] किं विधत्ते (कर्म-देव-ज्ञान-त्रिकाण्डात्मक-वेदशास्त्रमध्ये कर्मकाण्डे विधिवाक्यैः किं विदधाति), किम् आचष्टे (देवताकाण्डे मन्त्रवाक्यैः किं प्रकाशयति कथयतीत्यर्थः), किम् अनूद्य (ज्ञानकाण्डे किम् आश्रित्य) विकल्पयेत् इति (एवम्) अस्याः (श्रुतेः) हृदयं (तात्पर्यं) लोके (इह जगति) मत् (मत्तः) अन्यः कश्चन न वेद (जानाति)। [ननु तर्हि त्वं मत्कृपया कथयेति कथयति—] मां (यज्ञरूपं) [विधिना] विधत्ते, [अभिधा-वृत्त्या] मामेव (तत्तद्देवतारूपं) अभिधत्ते, अहम् (एव) विकल्प्य (सन्देहं कृत्वा) अपोह्यते (निराक्रियते, तदप्यहमेव, न मत्तः पृथगस्ति)। [सर्ववेदार्थं संक्षेपतः कथयति-] एतावान् एव सर्ववेदार्थः (सर्वेषां वेदानां तात्पर्यम्)—शब्दः (वेदः) भिदाम् (अवतारादिरूपाम्) अनूद्य (उक्त्वा) मायामात्रं (जगत्) प्रतिषिद्ध्य (निषिद्ध्य) अन्ते (शेषे) मां (परमार्थरूपम्) आस्थाय (आश्रित्य) प्रसीदति (निवृत्तव्यापारो भवति; मां श्रीकृष्णरूपमेवावलम्ब्य कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—[भगवद्-वाणी श्रुतियोंसे भगवद्-स्वरूपकी सम्पूर्णरूपमें दुर्ज्ञेयताका वर्णन करके उस स्वरूपकी अर्थके द्वारा भी सम्पूर्णरूपसे दुर्ज्ञेयताका वर्णन करते हैं—] कर्म-देव-ज्ञानका वर्णन करनेवाले त्रिकाण्डात्मक वेदशास्त्रोंके मध्य अर्थात् कर्मकाण्डमें विधि वाक्योंसे किसका स्थापन किया जाता है, देवता-काण्डमें मन्त्रवाक्योंसे किसको प्रकाशित किया जाता है, ज्ञानकाण्डमें किसका आश्रय लेकर वेदोंका प्रतिपादन होता है, इस प्रकारसे इन श्रुतियोंके तात्पर्यको इस जगत्में मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं जानता है। [तब यदि उद्धव कहें कि आप मेरे ऊपर कृपाकर उसका वर्णन कीजिये, तो भगवान् उत्तरमें कहते हैं—] कर्मकाण्ड विधिके द्वारा यज्ञपुरुषरूप मेरा ही स्थापन करता है [अभिधा-वृत्तिसे] मुझे ही विभिन्न देवताओंके रूपमें सम्बोधित करता है [अभिधत्ते] और मेरे विषयमें ही पहले सन्देह उत्पन्नकर फिर उसका निराकरण करता है [अपोह्यते], वह निराकरण भी मैं ही हूँ, वह मुझसे भिन्न नहीं है। [अब समस्त वेदान्तको संक्षेपमें कहते हैं—] सभी वेदोंका तात्पर्य यह है—शब्द-प्रमाणरूप वेद अवतारादि रूप भेदोंका निरूपण करके [अनुद्य] मायामात्र जगत्का निषेधकर अन्तमें परमार्थ-तत्त्व रूप मेरा ही आश्रय लेकर परम प्रसन्न होते हैं अर्थात् अपने विवेचनके कार्यसे निवृत्ति प्राप्त करते हैं। तात्पर्य यह है कि मुझ कृष्ण रूपका ही अवलम्बनकर वेद कृतकृत्य होते हैं॥ 147–148॥

अनन्तस्वरूप-श्रीकृष्णकी अनन्त-शक्तिका वैभव :—

कृष्णेर स्वरूप—अनन्त, वैभव—अपार।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति आर॥ 149॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके अनन्त स्वरूप हैं, उनका वैभव भी अपार है। वे चिद्-शक्ति, मायाशक्ति और जीवशक्तिके आश्रय हैं॥ 149॥

चित् और अचित् जगत्—उनकी शक्तिका परिणाम एवं श्रीकृष्णाश्रित :—

वैकुण्ठ, ब्रह्माण्डगण—शक्ति-कार्य हय।
स्वरूपशक्ति शक्ति-कार्येर—कृष्ण समाश्रय॥ 150॥

अनुवाद—वैकुण्ठ और मायिक ब्रह्माण्ड, सभी श्रीकृष्णकी शक्तिका कार्य हैं। श्रीकृष्ण ही स्वरूपशक्ति और मायाशक्तिके कार्यरूप वैकुण्ठ एवं मायिक ब्रह्माण्डोंके एकमात्र आश्रय हैं॥ 150॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वरूपशक्ति और समस्त शक्तियोंके कार्यरूप जगत्,—श्रीकृष्ण ही इनके एकमात्र परम आश्रय हैं॥ 150॥

भावार्थदीपिका (श्रीमद्भागवत 10/1/1)में :—

दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम्।
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत्॥ 151॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण नामक दशम पदार्थ ही भागवतके दशम स्कन्धका लक्ष्य हैं, वे आश्रितोंके आश्रयविग्रह स्वरूप हैं, परमधाम और जगत्के आधार स्वरूप हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ॥ 150॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/95 संख्या देखें॥ 150॥

श्रीकृष्णके स्वरूपका विचार; वे—अद्वयज्ञान, विभु-सच्चिदानन्द, सर्वावतारी, किशोर और व्रजेन्द्रनन्दन :—

कृष्णेर स्वरूप-विचार शुन, सनातन।
अद्वयज्ञान-तत्त्व, व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥ 152॥

सर्व-आदि, सर्व-अंशी, किशोर-शेखर।
चिदानन्द-देह, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर॥ 153॥

अनुवाद—हे सनातन, श्रीकृष्णके स्वरूपके विषयमें सुनो। श्रीकृष्ण अद्वयज्ञानतत्त्व हैं, तथापि वे व्रजमें व्रजेन्द्रनन्दन हैं। वे सबके आदि अर्थात् मूल हैं और वे सबके अंशी अर्थात् सभी उनके अंश हैं। उनका नित्य परम मनोहर किशोर स्वरूप है और उनकी देह पूर्ण चिदानन्दमय है। वे सबके परम आश्रय और समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं॥ 152-153॥

अनुभाष्य—हे सनातन, श्रीकृष्णके स्वरूपका विचार यह है कि श्रीकृष्ण व्रजधाममें व्रजपति नन्दके पुत्र हैं। वे अद्वयज्ञानतत्त्व हैं, उनके नाम, रूप, गुण और लीला,—इन चार प्रकारके तत्त्वोंमें मायाजनित परस्पर भेद अथवा विरोध नहीं देखा जाता अर्थात् श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलामें मायिक भेद-विधि कोई कार्य नहीं करती है। श्रीकृष्ण समस्त विष्णुतत्त्वों और वैष्णवतत्त्वोंके आदि तत्त्व हैं; उन्हींसे ही सभी अंश प्रकट हुए हैं; वे पूर्ण किशोर अवस्थावाले हैं, सच्चिदानन्द विग्रह हैं, सभीके प्रभु और समस्त वस्तुओंके आश्रय हैं॥ 152-153॥

ब्रह्मसंहिता (5/1)में :—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥ 154॥

अनुवाद—सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं; वे स्वयं अनादि और सभीके आदि एवं समस्त कारणोंके कारण हैं॥ 154॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/107 संख्या देखें॥ 154॥

श्रीकृष्ण ही श्रीगोविन्द एवं गोलोकधाममें विराजमान :—

स्वयं भगवान् कृष्ण, 'गोविन्द'—पर-नाम।
सर्वैश्वर्यपूर्ण याँर गोलोक—नित्यधाम॥ 155॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। 'गोविन्द' उनका मुख्य नाम है। समस्त प्रकारके ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण गोलोक उनका नित्यधाम है॥ 155॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पर-नाम'*—श्रेष्ठ अर्थात् मुख्य नाम; 'कृष्ण', 'गोविन्द' आदि—भगवान्के मुख्य नाम हैं॥ 155॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णका आवास स्थल—समस्त ऐश्वर्यपूर्ण, अविनाशी और नित्यकालस्थित गोलोक-धाम है॥ 155॥

श्रीमद्भागवत (1/3/28)में :—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे॥ 156॥

अनुवाद—राम-नृसिंहादि, पुरुषावतारके अंश या कला (अंशके अंश) हैं, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। दैत्योंके द्वारा पीड़ित लोगोंकी प्रत्येक युगमें ये (अवतार) रक्षा करते हैं॥ 156॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/67 संख्या देखें॥ 156॥

तीन प्रकारके अभिधेयोंमें सम्बन्ध-तत्त्व अद्वयज्ञान
श्रीकृष्णकी तीन प्रकारकी प्रतीति :—

ज्ञान, योग, भक्ति,—तिन साधनेर वशे।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—त्रिविध प्रकाशे॥ 157॥

अनुवाद—ज्ञान, योग और भक्ति—इन तीन प्रकारके साधनोंके द्वारा श्रीकृष्ण क्रमशः ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन प्रकारके रूपोंमें प्रकाशित होते हैं॥ 157॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो निर्विशेष ज्ञानके द्वारा उन अद्वयतत्त्वका अनुसन्धान करते हैं, उनके लिये वे निर्विशेष ब्रह्म ही प्रतीत होते हैं। जो अष्टाङ्गयोग मार्गसे उस परम वस्तुका अनुसन्धान करते हैं, उनके हृदयमें स्थित होकर जगत्के परमात्मा उदित होते हैं। जो शुद्धभक्तिके द्वारा परम-तत्त्वका साधन करते हैं, वे भगवान्का दर्शन करते हैं॥ 157॥

शास्त्र-प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (1/2/11)में—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ 158॥

अनुवाद—जो अद्वयज्ञान अर्थात् एक अद्वितीय वास्तव वस्तु है, उसीको तत्त्वज्ञानीजन परमार्थ कहते हैं। वही तत्त्ववस्तु ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीनों नामोंसे जानी जाती है॥ 158॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/11 संख्या देखें॥ 158॥

(1) निर्विशेष ब्रह्म—श्रीकृष्णके अङ्गकी प्रभा :—

ब्रह्म—अङ्गकान्ति ताँर, निर्विशेष-प्रकाशे।
सूर्य येन चर्मचक्षे ज्योतिर्मय भासे॥ 159॥

अनुवाद—ब्रह्म श्रीकृष्णकी अङ्ग-कान्ति हैं और उनका निर्विशेष प्रकाश हैं। जिस प्रकार साधारण नेत्रोंसे सूर्य ज्योतिर्मय ही दिखलायी देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी निर्विशेष ज्ञानियोंके समक्ष निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें प्रतीत होते हैं॥ 159॥

शास्त्र-प्रमाण :—
ब्रह्मसंहिता (5/40)में—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 160॥

अनुवाद—कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें समस्त पृथ्वी आदि ऐश्वर्योंके द्वारा पृथक्कृत, निष्कल, अनन्त, असीम ब्रह्म जिनकी प्रभासे उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ 160॥

अनुभाष्य—आदिलीला, 2/14 संख्या देखें॥ 160॥

(2) परमात्मा—श्रीकृष्णांश-वैभव :—

परमात्मा येँहो, तेँहो कृष्णेर एक अंश।
आत्मार 'आत्मा' हन कृष्ण—सर्व-अवतंस॥ 161॥

अनुवाद—जो परमात्मा हैं, वे भी श्रीकृष्णका ही एक अंश हैं। किन्तु श्रीकृष्ण समस्त आत्माओंके भी 'आत्मा' होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ हैं॥ 161॥

अनुभाष्य—मायिक अनुभूतिके द्वारा सर्वव्यापी परमात्माको मायिक जगत्के अंशसमूहका अंशी कहकर सर्वव्यापक 'परमात्मा' कहा जाता है। किन्तु श्रीकृष्ण समस्त चित्-अचित् प्रकाशके और समस्त परमात्माओंके भी 'परमात्मा' होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ हैं॥ 161॥

श्रीकृष्ण ही परमात्मा :—
श्रीमद्भागवत (10/14/55)में—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय योऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥ 162॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 162॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अखिल आत्माओंके आत्म-स्वरूपके रूपमें इन श्रीकृष्णको जानो; जगत्के हितकी कामनासे वे यहाँ स्वरूपशक्तिके आश्रयमें मनुष्यकी भाँति प्रकट हुए हैं॥ 162॥

अनुभाष्य—परीक्षितके द्वारा श्रीकृष्णको व्रजवासियोंके पुत्र और प्राणादि सभी वस्तुओंकी अपेक्षा प्रियतम समझनेके कारणकी जिज्ञासा करनेपर श्रीशुकदेव कह रहे हैं कि आत्मा ही सभी प्राणियोंको सबसे अधिक प्रियतम और आदरणीय है एवं श्रीकृष्ण ही सभी आत्माओंकी आत्मा हैं, इसलिये स्वाभाविक रूपसे ही वे सभीको आकर्षण करनेवाले और नित्यानन्द प्रदान करनेवाले हैं,—

त्वम् एनं कृष्णं अखिलात्मनां (सकलदेहिनाम्) आत्मानं (प्राणस्वरूपं) अवेहि (जानीहि); यः (कृष्णः) अपि अत्र (जगति) जगद्धिताय (पृथिव्याः मङ्गलाय) मायया (स्वरूपशक्त्या) देही (नरः जीवः) इव आभाति (प्रकाशयति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 162॥

श्रीमद्भगवद्गीता (10/42)में :—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ 163॥

अनुवाद—अथवा हे अर्जुन! इस पृथक्-पृथक् उपदिष्ट ज्ञानसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम मात्र इतना ही जानो कि मैं अपने एकांशसे इस समस्त जगत्को धारणकर अवस्थित हूँ॥ 163॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/20 संख्या देखें॥ 163॥

(3) भक्तियोगमें ही श्रीकृष्णकी पूर्ण भगवत्-प्रतीति :—

'भक्त्ये' ओ भगवानेर अनुभव—पूर्णरूप।
एकइ विग्रहे ताँर अनन्त स्वरूप॥ 164॥

अनुवाद—भक्तिके द्वारा ही भगवान्का पूर्णरूपमें अनुभव होता है। यद्यपि उनका एक ही विग्रह है, तथापि वे अनन्त स्वरूपोंमें अपना विस्तार कर सकते हैं॥ 164॥

एक ही श्रीकृष्णके तीन रूप—(क) स्वयंरूप, (ख) तदेकात्मरूप और (ग) आवेशरूप :—

स्वयंरूप, तदेकात्मरूप, आवेश—नाम।
प्रथमेइ तिनरूपे रहेन भगवान्॥ 165॥

अनुवाद—भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंरूप, तदेकात्मरूप और आवेशरूप—इन तीन मुख्य रूपोंमें होते हैं॥ 165॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्तिसे भगवान्की उपासना करनेसे उनका पूर्णरूपमें अनुभव होता है, उन एक नित्यविग्रहसे अनन्तस्वरूप प्रकाशित होते हैं। भगवान् पहले 'स्वयंरूप', 'तदेकात्मरूप' और 'आवेशरूप'—इन तीन रूपोंमें पूर्णरूपसे दिखायी देते हैं। स्वयंरूपमें 'स्वयं और प्रकाश'—इन दो रूपोंमें उनकी स्फूर्त्ति होती है। उनमेंसे स्वयंरूपमें व्रजमें गोपमूर्तिरूपमें श्रीकृष्ण उदित हुए। भागवतामृतके मतानुसार,—श्रीकृष्णकी गोपमूर्ति ही स्वयंरूप है; क्योंकि, वह उनके और किसी भी रूपकी अपेक्षा नहीं करती। उनका जो रूप स्वयंरूपसे अभेद है, किन्तु आकृति और वैभवादिमें भिन्न है, उसे ही 'तदेकात्मरूप' कहते हैं। जिन सब जीवोंमें भगवान्की शक्ति प्रवेश करके उनके माध्यमसे महान कार्य करती है, वे ही भगवान्के 'आवेश'-रूप हैं॥ 164-165॥

अनुभाष्य—*'स्वयंरूप'*—(श्रीरूपप्रभु-कृत लघु-भागवतामृतके पूर्व खण्डका 12वाँ श्लोक)—

"अनन्यापेक्षि यद्रूपं स्वयंरूपः स उच्यते"

"श्रीकृष्णका जो रूप अन्य रूपोंकी अपेक्षा नहीं करता अर्थात् स्वतःसिद्ध श्रीकृष्णरूपको ही 'स्वयंरूप' कहा जाता है।"

'तदेकात्मरूप'—(लघुभागवतामृतके पूर्वखण्डमें 14वाँ श्लोक)—

"यद्रूपं तदभेदेन स्वरूपेण विराजते।
आकृत्यादिभिरन्यादृक् स तदेकात्मरूपकः॥"

"जो रूप स्वयंरूपके साथ एक रूपमें ही प्रकाशित होता है, किन्तु आकृति और वैभवादिमें (अङ्ग-गठन और चरित्रादिमें) भिन्न रूपमें प्रकाशित होता है, उसे 'तदेकात्मरूप' कहते हैं; वह—स्वांश और विलासके भेदसे दो प्रकारका है।"

'आवेशरूप'—(लघुभागवतामृतके पूर्वखण्डका 18वाँ श्लोक)—

"ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्द्दनः।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥"

"जिन सब जीवोंमें श्रीजनार्द्दन ज्ञान-शक्ति आदि कलाओंके द्वारा आविष्ट होते हैं, उन सब महत्तम जीवोंको 'आवेश' कहा जाता है॥"165॥

(क) 'स्वयंरूप'—दो प्रकार के; (1) 'स्वयं रूप' व्रजेन्द्रनन्दन और (2) 'स्वयंप्रकाश' :—

'स्वयंरूप' 'स्वयंप्रकाश'—दुइरूपे स्फूर्त्ति।
स्वयंरूपे—एक 'कृष्ण' व्रजे गोपमूर्त्ति॥ 166॥

अनुवाद—भगवान्का स्वयंरूप (मूल रूप) 'स्वयंरूप' और 'स्वयंप्रकाश'—इन दो रूपोंमें प्रकाशित होता है। स्वयंरूपमें श्रीकृष्ण व्रजमें गोपबालकके रूपमें प्रकाशित हैं॥ 166॥

श्रीकृष्णस्वरूपके छः प्रकारके विलासमेंसे (2) स्वयं प्रकाश दो प्रकारके—(क) प्राभव, और (ख) वैभव; उनमेंसे (क) प्राभवप्रकाशरूपमें अनेकरूपोंसे लीला या विलास जैसे रासमें, जैसे महिषी-विवाहमें :—

'प्राभव'-'वैभव'रूपे द्विविध प्रकाशे।
एक-वपु बहु रूप यैछे हैल रासे॥ 167॥
महिषी-विवाहे हैल बहुविध मूर्त्ति।
'प्राभव-प्रकाश'—एइ शास्त्र-परसिद्धि॥ 168॥

अनुवाद—भगवान्का स्वयंप्रकाश दो प्रकारका होता है—'प्राभव'-प्रकाश और 'वैभव'-प्रकाश। जैसे रासमें एक ही विग्रह (जितनी गोपियाँ थीं, उनके साथ एक-एक रूपमें) अनेक रूपोंमें प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार द्वारकामें एक ही विग्रह (सोलह हजार एक सौ आठ) महिषियोंके साथ विवाहमें उतने ही रूपोंमें प्रकाशित हुआ। विग्रहके इन विस्तारोंको शास्त्रोंमें 'प्राभव-प्रकाश' कहा जाता है॥ 167-168॥

वे आत्मारामगणोंके भी मनका हरण करनेवाले, कभी भी प्राकृत नहीं :—

सौभर्यादि-प्राय सेइ कायव्यूह नय।
कायव्यूह हैले नारदेर विस्मय ना हय॥ 169॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 169॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सौभरि आदि ऋषियोंने योगबलसे कायव्यूह होकर अपना-अपना कार्य सम्पन्न किया था। किन्तु श्रीकृष्णके द्वारा अनेक मूर्तियोंका प्रकाश वैसा नहीं है; क्योंकि, योगमार्गके कायव्यूहको देखकर नारदमें विस्मय उत्पन्न नहीं होता॥ 169॥

अमृतानुकणिका—नारदजी स्वयं कायव्यूहकी सृष्टि करना जानते हैं, इसलिये उन्हें कायव्यूह देखकर आश्चर्य नहीं होता। कायव्यूह योगबलसे निर्मित होता है, परन्तु प्रकाश वैसा नहीं है, इसमें एक ही देह भिन्न स्थानोंपर प्रकट होती है। श्रीकृष्णके विभु होनेके कारण उनके लिये यह सम्भव है। कायव्यूहमें क्रियाकी समानता होती है अर्थात् मूल कायके द्वारा की गयी क्रिया अन्य कायव्यूहमें भी वैसे ही फलित होती है। प्रकाशमें रूपकी समानता होती है और क्रियाओंमें विभिन्नता होती है, जैसा कि नारदजीने द्वारकाके विभिन्न महलोंमें देखा॥ 169॥

श्रीमद्भागवत (10/69/2) :—

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक्।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्॥ 170॥

अनुवाद—आश्चर्यका विषय यह है कि एक ही श्रीकृष्णने एक-एक स्वरूपमें प्रत्येक घरमें एक साथ सोलह हजार स्त्रियोंके साथ विवाह किया॥ 170॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/74 संख्या देखें॥ 170॥

(ख) वैभव-प्रकाशकी संज्ञा :—

सेइ वपु, सेइ आकृति पृथक् यदि भासे।
भावावेश-भेदे नाम 'वैभवप्रकाशे'॥ 171॥

अनुवाद—भाव और आवेशके भेदसे जो देह और आकृति स्वयंरूपसे पृथक् प्रकाशित होती है—उसे 'वैभवप्रकाश' कहते हैं॥ 171॥

एक ही अंशी श्रीकृष्णके असंख्य प्राभव और वैभव-प्रकाशमें अचिन्त्यशक्तिके कारण परस्परमें नाम-रूपादिकी विचित्रता :—

अनन्त-प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्त्तिभेद।
आकार-वर्ण-अस्त्रभेदे नाम-विभेद॥ 172॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-स्वरूपके अनन्त रूपोंमें प्रकाशित होनेपर भी उन सबमें कोई पार्थक्य नहीं है, किन्तु आकार, वर्ण और अस्त्रके भेदसे उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं॥ 172॥

श्रीमद्भागवत (10/40/7)में :—

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकम्॥ 173॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 173॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(सात्वत और शैव तन्त्रादिमें) उल्लिखित विधिके द्वारा जो संस्कृतात्मा [अर्थात् दीक्षा ग्रहण करनेके बाद पवित्र हो गये] हैं, वे अनेक मूर्तियोंमें [प्रकाशित] एकमूर्तिस्वरूप आपका ही भजन करते हैं॥ 173॥

अनुभाष्य—भगवान् श्रीबलराम और श्रीकृष्णको रथमें चढ़ाकर गोकुलसे मथुरा लेकर जानेके मार्गमें महात्मा अक्रूर यमुनाके जलमें प्रवेश करके वहाँ विष्णुलोकमें शेष, नारद और चतुःसनादिके साथ परम ऐश्वर्यमय भगवान्के दर्शन करके स्तव करते-करते सांख्य-योगत्रयी मार्गका विषय बतलाकर वैष्णव और शैव-पाशुपतादि दीक्षामें दीक्षित व्यक्तियोंके उपासना-मार्गके सम्बन्धमें वर्णन कर रहे हैं,—

अन्ये (जनाः) च ते (त्वया) अभिहितेन (कथितेन) विधिना (पाञ्चरात्रिकविधानादिना) संस्कृतात्मनः (वैष्णव-शैव-दीक्षया-दीक्षिताः संस्कृताः आत्मानः येषां ते) त्वन्मयाः (त्वन्मयत्वेन आत्मानम् अप्राकृतसेवनधर्मपरं भावयन्तः त्वदेकप्रधाना इति वा) बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकं (वासुदेव-सङ्कर्षण- प्रद्युम्नानिरुद्ध-भेदेन तथा युग-मन्वन्तर-लीलावतारभेदेन च बहुमूर्त्तिं महानारायणरूपेण मूर्त्तिकं च त्वां) वै (एव) यजन्ति (अर्चयन्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—अन्य जन जो वैष्णव-शैव-दीक्षामें दीक्षित हो गये हैं, वे आपके द्वारा कथित पाञ्चरात्रिक विधिके अनुसार आपमें चित्तको निवेश करके वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-भेदसे तथा युग-मन्वन्तर-लीलावतारभेदसे अनेक मूर्तियोंमें प्रकाशित महानारायणरूप एकमूर्तिस्वरूप आपका ही भजन करते हैं॥ 173॥

(ख) वैभव प्रकाश—(1) श्रीबलराम :—

वैभवप्रकाश कृष्णेर—श्रीबलराम।
वर्णमात्र-भेद, सब—कृष्णेर समान॥ 174॥

अनुवाद—श्रीबलराम श्रीकृष्णके वैभवप्रकाश हैं। श्रीकृष्णसे इनका केवल वर्णका भेद है, अन्यथा वे प्रकारसे श्रीकृष्णके समान ही हैं॥ 174॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वयंरूप, तदेकात्मरूप, आवेश, वैभव, प्राभवादि समझनेके लिये परस्परका सम्बन्ध संक्षेपमें नीचे प्रदर्शित हुआ। श्रीकृष्णके आदि तीन रूप—

(1) **'स्वयंरूप'**—व्रजमें गोपमूर्ति श्रीकृष्ण,

(2) **'तदेकात्मरूप'**—

(**क**) *'स्वांशक'*—

(i) कारणब्धिशायी, गर्भोदशायी, क्षीरोदशायी,

(ii) मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंहादि।

(**ख**) *'विलास'*—

(i) प्राभव—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध;

(ii) वैभव—चौबीस मूर्तियाँ—

(क) आवरण—चतुर्व्यूहगत वासुदेवादि चार मूर्तियाँ;

(ख) प्रत्येककी तीन-तीन मूर्तियाँ करके बारह मूर्तियाँ—बारह महीनों और तिलकोंके आदर्श देवता;

(ग) इन चारोंकी पुरुषोत्तम और अच्युतादि आठ विलासमूर्तियाँ।

इन चौबीस मूर्तियोंके ही अस्त्रधारणके भेदसे भिन्न-भिन्न नाम हैं॥ 174॥

(2) श्रीकृष्णरूपी द्विभुज श्रीवासुदेव अथवा श्रीदेवकीनन्दन, (3) श्रीकृष्णरूपी चतुर्भुज श्रीवासुदेव अथवा श्रीदेवकीनन्दन :—

वैभवप्रकाश यैछे देवकी-तनुज।
द्विभुज-स्वरूप कभु, कभु हन चतुर्भुज॥ 175॥

उक्त चतुर्भुज—उक्त द्विभुजका ही प्रकाश-विग्रह :—

ये-काले द्विभुज, नाम—वैभवप्रकाश।
चतुर्भुज हैले, नाम—प्राभवविलास॥ 176॥

अनुवाद—श्रीदेवकीनन्दन स्वयंरूप श्रीकृष्णके 'वैभव-प्रकाश' हैं। वे श्रीदेवकीनन्दन कभी द्विभुज-स्वरूपमें और कभी चतुर्भुज-स्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। जिस समय वे द्विभुज होते हैं, तब उनका नाम वैभवप्रकाश होता है। जब वे चतुर्भुज होते हैं, तब उनका नाम प्रभावविलास होता है॥ 175-176॥

व्रजेन्द्रनन्दनमें गोप-अभिमान और श्रीवासुदेवमें क्षत्रिय-अभिमान :—

स्वयंरूपेर गोपवेश, गोप-अभिमान।
वासुदेवेर क्षत्रिय-वेश, 'आमि—क्षत्रिय'-ज्ञान॥ 177॥

श्रीवासुदेवकी अपेक्षा श्रीनन्दनन्दनमें चार अधिक चमत्कारिताएँ :—

सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य, वैदग्ध्य-विलास।
व्रजेन्द्रनन्दने इहा अधिक उल्लास॥ 178॥

अनुवाद—स्वयंरूपमें श्रीकृष्णका गोपवेश और गोप-अभिमान होता है। श्रीवासुदेवके रूपमें वे क्षत्रिय वेश धारण करते हैं और 'मैं क्षत्रिय हूँ'—ऐसा ज्ञान रहता है॥ 177॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 178॥

अनुभाष्य—वसुदेव-नन्दनके सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य और वैदग्ध्य-विलासकी अपेक्षा नन्दनन्दनके ये चार विलास अधिक आनन्द प्रदान करनेवाले हैं॥ 178॥

श्रीनन्दनन्दनके माधुर्यसे श्रीवासुदेव भी मुग्ध और आकृष्ट :—

गोविन्देर माधुरी देखि' वासुदेवेर क्षोभ।
से माधुरी आस्वादिते उपजय लोभ॥ 179॥

दृष्टान्तस्थल—मथुरा और द्वारकामें :—

मथुराय यैछे गन्धर्वनृत्य-दरशने।
पुनः द्वारकाते यैछे चित्र-विलोकने॥ 180॥

अनुवाद—श्रीगोविन्दके माधुर्यको देखकर श्रीवासुदेव भी क्षुब्ध हो जाते हैं और उनमें उस माधुरीका आस्वादन करनेका लोभ उत्पन्न हो जाता है। जैसे मथुरामें गन्धर्व नृत्यको देखकर और पुनः द्वारकामें श्रीगोविन्दके अङ्कित चित्रको देखकर श्रीवासुदेवका चित्त श्रीगोविन्दकी ओर आकर्षित हो गया था॥ 179-180॥

अनुभाष्य—नन्दनन्दनके लोभनीय माधुर्यको देखकर श्रीवासुदेव क्षुब्ध हो जाते हैं; उस माधुरीके आस्वादनमें लुब्ध होनेका प्रसङ्ग मथुरामें गन्धर्व नृत्य-दर्शनमें और द्वारकामें नन्दनन्दन श्रीकृष्णके चित्राङ्कनको देखकर सुस्पष्ट हुआ है॥ 179॥

ललितमाधव (4/19)में :—

उद्गीर्णाद्भुत-माधुरी-परिमलस्याभीरलीलस्य मे
द्वैतं हन्त समक्षयन् मुहुरसौ चित्रीयते चारणः।
चेतः केलि-कुतूहलोत्तरलितं सत्यं सखे मामकं
यस्य प्रेक्ष्य स्वरूपतां व्रजवधूसारूप्यमन्विच्छति॥ 181॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सखे, यह चारण (नट) मेरे

द्वितीय स्वरूपकी भाँति मेरी अद्भुत-माधुरीसुगन्धयुक्त गोपलीलात्मिका लीलाको चित्रित कर रहा है। मेरा चित्त केलि-कौतुहलके द्वारा द्रवीभूत होकर मेरे अपने चरित्रका दर्शन करते हुए व्रजवधुओंके सारूप्य अर्थात् उनके जैसे स्वरूपको धारण करनेकी इच्छा कर रहा है॥ 181॥

अनुभाष्य—

हे सखे, असौ चारणः (नटः) उद्गीर्णाद्भुतमाधुरी-परिमलस्य (उद्गीर्णः उत्थितः निर्गतः अद्भुतायाः अपूर्वायाः माधुर्याः परिमलः सुगन्धः यस्य तस्य) आभीरलीलस्य (गोपनन्दनन्दन-लीलामयस्य) मे (मम) द्वैतं (द्वितीयमूर्त्तिं) समक्षयन् (दर्शयन्) मुहुः (पुनः पुनः) चित्रीयते; यस्य स्वरूपतां (सादृश्यं) प्रेक्ष्य (दृष्ट्वा) हन्त (अहो) मामकं (मदीयं) चेतः (मनः) सत्यं केलिकुतूहलोत्तरलितं (केलिषु व्रजजनोचितक्रीड़ासु कुतूहलाय उत्सुक्याय उत्तरलितम् अतिशयेन द्रवीभूतं सत्) व्रजवधूसारूप्यं (श्रीवार्षभानव्याः सदृशरूपतां) अन्विच्छति (वाञ्छति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 181॥

ललितमाधव (8/34)में :—

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरतु मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥ 182॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण बोले,—"अहो! ये प्रगाढ़ माधुर्य-चमत्कारकारी अनिर्वचनीय चित्रित श्रेष्ठ पुरुष कौन हैं? इनपर दृष्टि पड़ते ही मैं क्षुब्धचित्तसे इन्हें देखता ही जा रहा हूँ और राधिकाकी भाँति इनका बलपूर्वक आलिङ्गन करनेकी मेरी इच्छा हो रही है॥"182॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/146 संख्या देखें॥ 182॥

(ख) तदेकात्मरूपकी संज्ञा :—

सेइ वपु भिन्नाभासे किछु भिन्नाकार।
भावावेशाकृति-भेदे 'तदेकात्म'-नाम ताँर॥ 183॥

अनुवाद—जब वह विग्रह भिन्न-आभासमें और कुछ भिन्न आकारमें प्रकट होता है, तब वह भाव, आवेश अथवा आकृतिके भेदके कारण 'तदेकात्म' कहलाता है॥ 183॥

वह दो प्रकारका—(1) विलास और (2) स्वांश :—

तदेकात्मरूपे 'विलास', 'स्वांश'—दुइ भेद।
विलास, स्वांशेर भेदे विविध विभेद॥ 184॥

अनुवाद—तदेकात्मरूपमें 'विलास' और 'स्वांश'—ये दो भेद होते हैं। विलास और स्वांशके भेदसे विविध विभेद (अर्थात् एकसे विकसित होकर अनेक रूप) होते हैं॥ 184॥

अनुभाष्य— *'विलास'*—आदिलीला 1/77 संख्या देखें।

'स्वांश'—लघुभागवतामृतमें पूर्वखण्डमें 17वाँ श्लोक—

"तादृशो न्यूनशक्तिं यो व्यनक्ति स्वांश ईरितः।
सङ्कर्षणादि मत्स्यादिर्यथा तत्वत्स्वधामसु॥"

स्वयंरूपके साथ अभिन्न होकर भी जो विलासकी अपेक्षा न्यून (बहुत कम) शक्ति प्रकाश करते हैं, उन्हें 'स्वांश' कहते हैं। जैसे अपने-अपने धाममें विराजमान सङ्कर्षणादि पुरुषावतार, मत्स्यादि लीलावतार, मन्वन्तरावतार और युगावतारगण॥ 184॥

दो प्रकारके विलास—(क) प्राभव और (ख) वैभव :—

प्राभव-वैभव-भेदे विलास—द्विधाकार।
विलासेर विलास-भेद—अनन्त प्रकार॥ 185॥

अनुवाद—प्राभव और वैभवके भेदसे विलास दो प्रकारके होते हैं। विलासके भी विलास-भेद असंख्य प्रकारके हैं॥ 185॥

(क) प्राभवविलास—मथुरा और द्वारका-पुरीमें आदि चतुर्व्यूहकी चार मूर्तियाँ :—

प्राभवविलास—वासुदेव, सङ्कर्षण।
प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,—मुख्य चारिजन॥ 186॥

अनुवाद—श्रीवासुदेव, श्रीसङ्कर्षण, श्रीप्रद्युम्न और

श्रीअनिरुद्ध—ये मुख्य चतुर्व्यूह 'प्राभवविलास' कहलाते हैं॥ 186॥

उनमेंसे एक मूर्तिमें ही श्रीबलराम—व्रजमें गोपाभिमानी और पुरमें क्षत्रियाभिमानी; विलास-संज्ञाका कारण :—

व्रजे गोपभाव रामेर, पुरे क्षत्रिय-भावन।
वर्ण-वेश-भेद, ताते 'विलास' ताँर नाम॥ 187॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके समान ही श्रीबलरामका व्रजमें गोपभाव और मथुरा एवं द्वारकामें उनका क्षत्रिय होनेका अभिमान है। परन्तु श्रीकृष्णसे वर्ण और वेशका भेद होनेके कारण उन्हें 'विलास' कहा जाता है॥ 187॥

वैभवप्रकाशके रूपमें और प्राभवविलास (आदि चतुर्व्यूह)के रूपमें भावके भेदसे एक ही श्रीबलराम :—

वैभवप्रकाशे आर प्राभवविलासे।
एकइ मूर्त्ये बलदेव भाव-भेदे भासे॥ 188॥

अनुवाद—वैभवप्रकाशमें और प्राभवविलासमें भावके भेदसे एक ही बलदेव प्रकाशित होते हैं॥ 188॥

अनुभाष्य—श्रीबलदेव—श्रीकृष्णके वैभवप्रकाश हैं; वे ही आदि-चतुर्व्यूह श्रीवासुदेव, श्रीसङ्कर्षण, श्रीप्रद्युम्न और श्रीअनिरुद्ध,—इन चार प्राभव विलासोंमें भावभेदसे (श्रीसङ्कर्षणरूपमें) प्रकाशित हैं॥ 188॥

प्राभवविलास आदि-चतुर्व्यूह ही समस्त चतुर्व्यूहरूपी वैभवविलासगणोंका कारण :—

आदि-चतुर्व्यूह—केह नाहि इँहार सम।
अनन्त चतुर्व्यूहगणेर प्राकट्य-कारण॥ 189॥

वे ही पुरीके (मथुराके और द्वारकाधामके) अधीश्वर :—

कृष्णेर एइ चारि प्राभवविलास।
द्वारका-मथुरा-पुरे नित्य इँहार वास॥ 190॥

अनुवाद—आदि चतुर्व्यूहके समान कोई नहीं है अर्थात् वे अद्वितीय हैं। वे ही अनन्त चतुर्व्यूहोंके प्राकट्यका कारण हैं। श्रीकृष्णके इन चार प्राभवविलासोंका नित्य ही द्वारकापुरी और मथुरापुरीमें वास है॥ 189-190॥

अनुभाष्य—अनन्त चतुर्व्यूहोंके गण आदि-चतुर्व्यूहके समान नहीं हैं; आदि-चतुर्व्यूह—प्राभवविलास हैं, अन्य चतुर्व्यूहगण—वैभवविलास हैं; प्राभवविलास ही वैभवविलासके प्राकट्यका कारण है। परव्योमके ऊपरी भागमें गोलोकके तीन प्रकारके प्रकोष्ठोंमें मथुरा और द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णका प्राभवविलास नित्य अवस्थित है। गोकुलमें वैभवप्रकाश श्रीबलदेव नित्य विराजमान हैं। चारों प्राभवविलासोंमेंसे प्रत्येकके चारों हाथोंमें अस्त्रके भेदसे चौबीस मूर्तियोंके रूपमें वैभवविलास प्रकाशित हैं॥ 189-190॥

(1) आदि चतुर्व्यूहसे ही नाम और अस्त्रकी विचित्रतासे 24 प्रकारके 'वैभवविलास' :—

एइ चारि हैते चब्बिश मूर्त्ति परकाश।
अस्त्रभेदे नाम-भेद—वैभवविलास॥ 191॥

अनुवाद—इन चारोंसे ही चौबीस मूर्तियाँ प्रकाशित होती हैं। चारों हाथोंमें धारण करनेवाले अस्त्रोंके भेदसे इनके नामोंमें भेद है। ये वैभवविलास कहलाते हैं॥ 191॥

(क) पुरमें आदि-चतुर्व्यूहके साथ श्रीकृष्ण ही वैकुण्ठमें दूसरे चतुर्व्यूहके साथ श्रीनारायणरूपमें विलासविग्रह :—

पुनः कृष्ण चतुर्व्यूह लञा पूर्वरूपे।
परव्योम-मध्ये बैसे नारायणरूपे॥ 192॥

ताँहा हैते पुनः चतुर्व्यूह-परकाश।
आवरणरूपे चारिदिके याँर वास॥ 193॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण पुनः विस्तार करते हैं और पहलेकी भाँति चतुर्व्यूहको अपने साथ लेकर परव्योममें श्रीनारायणके रूपमें वास करते हैं। मूल चतुर्व्यूहसे पुनः द्वितीय चतुर्व्यूह प्रकाशित होता है, जिनके वासस्थान श्रीनारायणको चारों ओरसे आवृत करते हैं॥ 192-193॥

अनुभाष्य—ऊपरी गोलोकके नीचेवाले भागमें परव्योममें श्रीकृष्ण ही चतुर्भुजरूप होकर श्रीनारायणरूपमें विराजमान हैं। परव्योमनाथ श्रीनारायणसे पुनः आवरणरूपमें चारों ओर अनन्त चतुर्व्यूह प्रकाशित होते हैं॥ 192-193॥

(ख) दूसरे चतुर्व्यूहमें प्रत्येकका तीन-मूर्तिके रूपमें प्रकाश-विग्रह—बारह मासों और बारह तिलकोंके बारह देवता :—

चारिजनेर पुनः पृथक् तिन तिन मूर्त्ति।
केशवादि यथा हैते विलासेर पूर्त्ति॥ 194॥

अनुवाद—द्वितीय चतुर्व्यूह पुनः पृथक् तीन-तीन मूर्तियाँ धारण करते हैं जिनसे श्रीकेशवादि विलास-रूपोंकी पूर्त्ति होती है॥ 194॥

इन बारह मूर्तिरूपमें वैभवविलासका परिचय :—

चक्रादि-धारण-भेदे नाम-भेद सब।
वासुदेवेर मूर्त्ति—केशव, नारायण, माधव॥ 195॥

सङ्कर्षणेर मूर्त्ति—गोविन्द, विष्णु, श्रीमधुसूदन।
ए अन्य गोविन्द—नहे व्रजेन्द्रनन्दन॥ 196॥

प्रद्युम्नेर मूर्त्ति—त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर।
अनिरुद्धेर मूर्त्ति—हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर॥ 197॥

अनुवाद—चक्रादि धारणके भेदसे सबके नामोंका भेद है। श्रीवासुदेवकी मूर्तियाँ—श्रीकेशव, श्रीनारायण और श्रीमाधव हैं। श्रीसङ्कर्षणकी मूर्तियाँ—श्रीगोविन्द, श्रीविष्णु और श्रीमधुसूदन हैं। श्रीसङ्कर्षणकी मूर्तिके रूपमें वर्णित श्रीगोविन्द अन्य श्रीगोविन्द हैं, व्रजेन्द्रनन्दन नहीं। श्रीप्रद्युम्नकी मूर्तियाँ—त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर हैं और श्रीअनिरुद्धकी मूर्तियाँ—हृषिकेश, पद्मनाभ और दामोदर हैं॥ 195-197॥

वे ही बारह मासोंके बारह देवता :—

द्वादश-मासेर देवता—एइ बार जन।
मार्गशीर्षे—केशव, पौषे—नारायण॥ 198॥

माघेर देवता—माधव, गोविन्द—फाल्गुने।
चैत्रे—विष्णु, वैशाखे—श्रीमधुसूदने॥ 199॥

ज्येष्ठे—त्रिविक्रम, आषाढ़े—वामन देवेश।
श्रावणे—श्रीधर, भाद्रे—देव हृषीकेश॥ 200॥

आश्विने—पद्मनाभ, कार्त्तिके—दामोदर।
'राधा-दामोदर' अन्य व्रजेन्द्र-कोङर॥ 201॥

अनुवाद—बारह मासोंके देवता—यही बारह जन हैं। मार्गशीर्षके देवता श्रीकेशव, पौषके श्रीनारायण, माघके श्रीमाधव, फाल्गुनके श्रीगोविन्द, चैत्रके श्रीविष्णु, वैशाखके श्रीमधुसूदन, ज्येष्ठके श्रीत्रिविक्रम, आषाढ़के श्रीवामनदेव, श्रावणके श्रीधर, भाद्रके श्रीहृषीकेश, आश्विनके श्रीपद्मनाभ और कार्तिकके श्रीदामोदर है। ये श्रीदामोदर व्रजेन्द्रनन्दन 'श्रीराधा-दामोदर'से भिन्न हैं॥ 198-201॥

पुनः वे ही बारह तिलक-मन्त्रोंके बारह मूर्ति देवता :—

द्वादश-तिलक-मन्त्र एइ द्वादश नाम।
आचमने एइ नामे स्पर्शि तत्तत्स्थान॥ 202॥

अनुवाद—बारह तिलक-मन्त्रोंके भी यही बारह नाम हैं। आचमन करते समय इन नामोंका उच्चारण करते हुए ही उन-उन स्थानोंको स्पर्श करते हैं॥ 202॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आचमन'*—आह्निकपूजाके बाद मुखसे जिस जल स्पर्शरूप आचमनका विधान है, वह॥ 202॥

अनुभाष्य—बारह तिलकमन्त्रोंमें बारह विष्णुनाम (हः भः विः चतुर्थ विः 170-172 संख्या)—

"ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवन्तु गोविन्दं कण्ठकूपके॥
विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके॥
श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशन्तु कन्धरे।
पृष्ठे च पद्मनाभञ्च कट्यां दामोदरं न्यसेत्॥"

"ललाटमें केशव, उदरमें श्रीनारायण, वक्षःस्थलमें माधव, कण्ठकूपमें श्रीगोविन्द, पेटके दायें भागमें विष्णु, दाहिनी भुजामें मधुसूदन, दायें कन्धेमें त्रिविक्रम, पेटके बायें भागमें वामन, बायीं भुजामें श्रीधर, बायें कन्धेमें हृषिकेश, पीठमें पद्मनाभ और कमरमें दामोदरका ध्यान करके तिलकका न्यास (स्थापन) करें।"

वैष्णवाचमन (हः भः विः तृतीय विः 202 संख्या)—

"त्रिःपाने केशवं नारायणं माधवमप्यथ।
प्रक्षालने द्वयोः पाण्योर्गोविन्दं विष्णुमप्युभौ॥
मधुसूदनमेकञ्च मार्जनेऽन्यं त्रिविक्रमम्।
उन्मार्जनेऽप्यधरयोर्वामन-श्रीधरावुभौ॥
प्रक्षालने पुनः पाण्योर्हृषीकेशञ्च पादयोः।
पद्मनाभं प्रोक्षणे तु मूर्ध्नोदामोदरं ततः॥
वासुदेवं मुखे सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमित्युभौ।
नासयोर्नेत्रयुगलेऽनिरुद्धं पुरुषोत्तमम्॥
अधोक्षजं नृसिंहञ्च कर्णयोर्नाभितोऽच्युतम्।
जनार्द्दनञ्च हृदये उपेन्द्रं मस्तके ततः॥
दक्षिणे तु हरिं बाहौ वामे कृष्णं यथाविधि।
नमोऽन्तञ्च चतुर्थ्यन्तमाचमेत् क्रमतो जपन्॥"

[अर्थात् "तीन बार आचमनके समय केशव, श्रीनारायण और माधवको, उसके बाद दोनों हाथोंको धोनेमें श्रीगोविन्द और विष्णुको, एक हाथ धोनेमें मधुसूदनको और दूसरे हाथ धोनेमें त्रिविक्रमको, अधर और ओष्ठके मार्जनमें वामन और श्रीधर दोनोंको, पुनः दोनों हाथोंको धोनेमें हृषीकेशको, दोनों पैरोंको धोनेके समय पद्मनाभको और उसके बाद सिरको धोनेमें दामोदरको, मुखको धोनेमें वासुदेवको, दोनों नासिकाको धोनेमें सङ्कर्षण और प्रद्युम्नको, दोनों नेत्रोंमें अनिरुद्ध और पुरुषोत्तमको, दोनों कानोंमें अधोक्षज और नृसिंहको, नाभिदेशमें अच्युतको, हृदयमें जनार्द्दनको, उसके बाद मस्तकमें उपेन्द्रको, दाहिनी भुजामें हरिको और बायीं भुजामें कृष्णको यथाविधि क्रमानुसार (भगवद्-नामोंको) चतुर्थी विभक्तिके संयोगसे [जैसे केशवाय, नारायणाय आदि] अन्तमें नमः-शब्दके साथमें जप करते-करते आचमन करेंगे।"] ॥ 202 ॥

(ग) द्वितीय चतुर्व्यूहके प्रत्येककी दो मूर्तियाँ करके विलास-विग्रह—आठ वैभवविलास :—

एइ चारिजनेर विलास-मूर्त्ति आर अष्ट जन।
ताँ सबार नाम कहि, शुन, सनातन॥ 203॥

पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनार्द्दन।
हरि, कृष्ण, अधोक्षज, उपेन्द्र,—अष्टजन॥ 204॥

वासुदेवेर विलास दुइ—अधोक्षज, पुरुषोत्तम।
सङ्कर्षणेर विलास—उपेन्द्र, अच्युत, दुइजन॥ 205॥

प्रद्युम्नेर विलास—नृसिंह, जनार्द्दन।
अनिरुद्धेर विलास—हरि, कृष्ण, दुइजन॥ 206॥

अनुवाद—इन चारों वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धके विस्तार आठ और विलास मूर्तियाँ हैं। हे सनातन—सुनो, मैं उन सबके नाम बतला रहा हूँ। ये आठ विलास-मूर्तियाँ—पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनार्द्दन, हरि, कृष्ण, अधोक्षज और उपेन्द्र हैं। वासुदेवके दो विलास—अधोक्षज और पुरुषोत्तम, सङ्कर्षणके दो विलास—उपेन्द्र और अच्युत, प्रद्युम्नके दो विलास—नृसिंह और जनार्द्दन तथा अनिरुद्धके दो विलास—हरि और कृष्ण हैं॥ 203-206॥

प्राभवविलास आदि-चतुर्व्यूहका ही विलास—वैभवविलास; अस्त्रके भेदसे नामकी विचित्रता :—

एइ चब्बिश मूर्त्ति—प्राभवविलास प्रधान।
अस्त्रधारण-भेदे धरे भिन्न भिन्न नाम॥ 207॥

वेश और आकारके भेदसे पुनः इनका ही विलास-वैभव-वैचित्र्य :—

इँहार मध्ये याहार हय आकार-वेश-भेद।
सेइ सेइ हय विलास-वैभव-विभेद॥ 208॥

अनुवाद—इन चौबीस मूर्तियोंमें प्राभवविलास आदि-चतुर्व्यूह प्रधान है। इनके अस्त्रोंको धारण करनेके भेदसे भिन्न-भिन्न नाम हैं। इनमेंसे जिनके आकार और वेशमें भेद होता है, वे विलास-वैभवका विभेद हैं॥ 207-208॥

आकारमें विचित्रतासे युक्त विष्णुमूर्तिगण :—

पद्मनाभ, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन।
हरि, कृष्ण आदि हय 'आकारे' विलक्षण॥ 209॥

अनुवाद—पद्मनाभ, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन, हरि, कृष्ण आदि 'आकार'में विलक्षण (भिन्न) होते हैं॥ 209॥

दूसरे चतुर्व्यूहके अतिरिक्त शेष बीस मूर्तियाँ विलास-विग्रह :—

कृष्णेर प्राभवविलास—वासुदेवादि चारिजन।
सेइ चारिजनार विलास—विंशति गणन॥ 210॥

अनुवाद—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चारों श्रीकृष्णके प्राभवविलास हैं। उन चारोंका विलास बीस प्रकारका होता है॥ 210॥

आठों दिशाओंके प्रत्येक ओर तीन-तीन मूर्ति करके चौबीस मूर्तियाँ ही वैकुण्ठमें अपने-अपने धाममें नित्य विराजमान :—

इँहा सबार पृथक् वैकुण्ठ—परव्योम-धामे।
पूर्वादि अष्टदिके तिन तिन क्रमे॥ 211॥

अनुवाद—परव्योम-धाममें इन सबके पूर्व-दिशासे आरम्भ करके क्रमशः आठों दिशाओंमें पृथक् वैकुण्ठ लोक हैं। आठों दिशाओंमें तीन-तीन करके कुल चौबीस मूर्तियाँ विराजमान हैं॥ 211॥

किसी-किसी तदेकात्मरूपका अपने-अपने धाम सहित ब्रह्माण्डमें अधिष्ठान :—

यद्यपि परव्योम सबाकार नित्यधाम।
तथापि ब्रह्माण्डे कारो काँहो सन्निधान॥ 212॥

अनुवाद—यद्यपि परव्योम सभीका नित्य धाम है, तथापि कोई-कोई अपने-अपने धाम सहित मायिक ब्रह्माण्डोंमें भी विद्यमान हैं॥ 212॥

वैकुण्ठमें दूसरे-चतुर्व्यूह आवरणके साथ श्रीनारायण, उसके ऊपर गोलोकमें अर्थात् पुरमें आदि-चतुर्व्यूह आवरणके साथ श्रीदेवकीनन्दन और गोकुलमें श्रीयशोदानन्दन :—

परव्योम-मध्ये नारायणेर नित्य-स्थिति।
परव्योम-उपरि कृष्णलोकेर विभूति॥ 213॥

अनुवाद—परव्योममें श्रीनारायणका नित्य-वास है, परव्योमके ऊपरी भागमें समस्त ऐश्वर्य-पूर्ण श्रीकृष्णलोक है॥ 213॥

कृष्णलोकमें तीन प्रकोष्ठ :—

एक 'कृष्णलोक' हय त्रिविधप्रकार।
गोकुलाख्य, मथुराख्य, द्वारकाख्य आर॥ 214॥

अनुवाद—एक ही 'कृष्णलोक'में गोकुल, मथुरा और द्वारका नामक तीन विभाग हैं॥ 214॥

ब्रह्माण्डमें चौबीस विभिन्न स्थानोंपर इन चौबीस मूर्तियोंका अपने-अपने धामके साथ अधिष्ठान :—

मथुराते केशवेर नित्य सन्निधान।
नीलाचले पुरुषोत्तम—'जगन्नाथ' नाम॥ 215॥

प्रयागे माधव, मन्दारे श्रीमधुसूदन।
आनन्दारण्ये वासुदेव, पद्मनाभ, जनार्द्दन॥ 216॥

विष्णुकाञ्चीते विष्णु रहे, हरि मायापुरे।
ऐछे आर नाना मूर्त्ति ब्रह्माण्ड-भितरे॥ 217॥

अनुवाद—मथुरामें श्रीकेशवका नित्य वास है। नीलाचलमें पुरुषोत्तम भगवान् 'जगन्नाथ'के नामसे नित्य वास करते हैं। भगवान् प्रयागमें बिन्दुमाधव, मन्दार-पर्वत पर श्रीमधुसूदन, आनन्दारण्यमें श्रीवासुदेव, पद्मनाभ और जनार्द्दन, विष्णुकाञ्चीमें विष्णु और मायापुरमें हरिके रूपमें नित्य रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्डमें उनकी और भी अनेक मूर्तियाँ विराजमान हैं॥ 215-217॥

अनुभाष्य—ब्रह्माण्डमें अर्चा-मूर्तिके रूपमें मथुरामें 'श्रीकेशव', नीलाचलमें 'पुरुषोत्तम जगन्नाथ', प्रयागमें 'बिन्दुमाधव', मन्दारमें 'मधुसूदन', केरल प्रान्तके दक्षिणमें आनन्दारण्यमें 'वासुदेव', 'पद्मनाभ' और 'जनार्द्दन', विष्णुकाञ्चीमें 'वरदराज विष्णु', मायापुरमें 'हरि' एवं अन्यान्य स्थानोंपर अनेक मूर्तियोंमें भगवान् विराजमान हैं॥ 215-217॥

भक्तोंको सुखी करना, धर्मकी स्थापना करना और अधर्मके नाशरूपी विलास अथवा लीलाके निमित्त ही ब्रह्माण्डमें उनका प्राकट्य :—

एइमत ब्रह्माण्ड-मध्ये सबार 'परकाश'।
सप्तद्वीपे नवखण्डे याँहार विलास॥ 218॥

सर्वत्र प्रकाश ताँर—भक्ते सुख दिते।
जगतेर अधर्म नाशि' धर्म स्थापिते॥ 219॥

अनुवाद—इस प्रकार ब्रह्माण्डमें भगवान्‌का इन सब रूपोंमें 'प्रकाश' है। वे सात द्वीपोंके नौ खण्डोंमें वास करते हुए विलास करते हैं। भगवान् भक्तोंको सुखी करने और जगत्‌में अधर्मका नाश करके धर्मको स्थापित करनेके लिये ही सभी ब्रह्माण्डोंमें विभिन्न रूपोंमें प्रकाशित होते हैं॥ 218–219॥

अनुभाष्य—*'सप्तद्वीप'*—(सिद्धान्तशिरोमणिमें गोलाध्यायमें गोलप्रशंसा-प्रकरणमें)—

"भूमेरर्द्धं क्षीरसिन्धोरुदकस्थं जम्बुद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः।
अर्द्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः॥
शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रोञ्चञ्च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति॥"

[अर्थात् "पृथ्वीके मध्यस्थलमें लवणसमुद्र है, उसके उत्तरमें पृथ्वीका आधा अंश और दक्षिणमें आधा अंश है। उत्तरके आधे अंशका नाम जम्बुद्वीप है और दक्षिणके आधे अंशमें सात समुद्र और नौ द्वीप हैं। पहले लवणसमुद्र है, उसके बाद दुग्धसमुद्र है जिससे अमृत, चन्द्र और लक्ष्मी प्रकट हुए हैं एवं जिसमें ब्रह्मादि देवताओंके पूजित चरणकमल और समस्त भुवनोंके आश्रय भगवान् वासुदेव वास करते हैं। उसके बाद क्रमशः दही, घी, गन्नेके रस, मद्य और सबसे अन्तमें स्वादुजलका समुद्र है। पृथ्वीके (लवणसमुद्रके) दायें आधे भागमें पहले शाकद्वीप, उसके बाद क्रमशः शाल्मल, क्रोश अथवा कुश, क्रोञ्च, गोमेदक और पुष्करद्वीप हैं। दो-दो समुद्रोंके बीचमें एक-एक द्वीप अवस्थित है।"]

(1) जम्बु, (2) शाक, (3) शाल्मली, (4) कुश, (5) क्रौञ्च, (6) गोमेद अथवा प्लक्ष और (7) पुष्कर,—ये सप्तद्वीप हैं।

'नवखण्ड'—(1) भारत, (2) किन्नर (किंपुरुष), (3) हरि, (4) कुरु, (5) हिरण्मय, (6) रम्यक (रमणक), (7) इलावृत, (8) भ्रदाश्व, (9) केतुमाल—ये नवखण्ड अथवा वर्ष (जम्बुद्वीपके नौ अंश हैं); दो पर्वतोंके बीचवाले प्रदेशको 'खण्ड' अथवा 'वर्ष' कहते हैं—गोलाध्यायमें भुवनकोष देखें॥ 218॥

उनमेंसे कोई-कोई जगत्‌में अवतीर्ण :—

ईँहार मध्ये कारो हय 'अवतारे' गणन।
यैछे विष्णु, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन॥ 220॥

अनुवाद—इनमेंसे किसी-किसीकी अवतारोंमें गिनती होती है जैसे विष्णु, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामनादि॥ 220॥

अस्त्रके भेदसे परस्परके नामका वैचित्र्य :—

अस्त्रधृति-भेद—नाम-भेदेर कारण।
चक्रादि-धारण-भेद शुन, सनातन॥ 221॥
दाक्षिणाधो हस्त हैते वामाधः पर्यन्त।
चक्रादि अस्त्रधारण-गणनार अन्त॥ 222॥

अनुवाद—इन विष्णु मूर्तियोंके द्वारा अस्त्रादिको धारण करनेके भेदसे ही इनके नामोंमें भेद है। हे सनातन, अब तुम चक्रादि अस्त्रोंके धारणके भेदके विषयमें सुनो। नीचेवाले दायें हाथसे लेकर नीचेवाले बायें हाथ तक चक्रादि अस्त्रोंको धारण करनेकी गणना पूर्ण होती है॥ 221–222॥

अनुभाष्य—चतुर्भुज विष्णुके दायें ओरके नीचेवाले हाथमें, दायें ओरके ऊपरवाले हाथमें, बाईं ओरके ऊपरवाले हाथमें और बाईं ओरके नीचेवाले हाथमें क्रमशः चार प्रकारके अस्त्र लिखे गये हैं॥ 222॥

सिद्धार्थ-संहिता-कथित चौबीस मूर्तियाँ :—

सिद्धार्थ-संहिता करे चब्बिश मूर्त्ति गणन।
तार मते आगे कहि चक्रादि-धारण॥ 223॥

अनुवाद—सिद्धार्थ-संहितामें चौबीस मूर्तियोंकी गणना की गयी है। पहले मैं उसीके मतानुसार चक्रादि धारणके विषयमें बतला रहा हूँ॥ 223॥

अनुभाष्य—चौबीस मूर्तियाँ—1) वासुदेव, 2) सङ्कर्षण, 3) प्रद्युम्न, 4) अनिरुद्ध, 5) श्रीकेशव, 6) श्रीनारायण, 7) माधव, 8) श्रीगोविन्द, 9) विष्णु, 10) मधुसूदन, 11) त्रिविक्रम, 12) वामन, 13) श्रीधर, 14) हृषीकेश, 15) पद्मनाभ, 16) दामोदर, 17) पुरुषोत्तम, 18) अच्युत, 19) नृसिंह, 20) जनार्द्दन, 21) हरि, 22) कृष्ण, 23) अधोक्षज और 24) उपेन्द्र॥ 223॥

परव्योममें दूसरे-चतुर्व्यूहके अस्त्रभेद :—

वासुदेव—गदा-शङ्ख-चक्र-पद्मधर।
सङ्कर्षण—गदा-शङ्ख-पद्म-चक्रधर॥ 224॥

प्रद्युम्न—चक्र-शङ्ख-गदा-पद्मधर।
अनिरुद्ध—चक्र-गदा-शङ्ख-पद्मकर॥ 225॥

परव्योमे वासुदेवादि—निज निज अस्त्रधर।
ताँर मत कहि, ये-सब अस्त्रकर॥ 226॥

अनुवाद—भगवान् श्रीवासुदेव अपने नीचेवाले दायें हाथमें गदा, ऊपरवाले दायें हाथमें शङ्ख, ऊपरवाले बाँयें हाथमें चक्र और नीचेवाले बाँयें हाथमें पद्म (कमल) धारण करते हैं। सङ्कर्षण अपने नीचेवाले दायें हाथमें गदा, ऊपरवाले दायें हाथमें शङ्ख, ऊपरवाले बाँयें हाथमें पद्म और नीचेवाले बाँयें हाथमें चक्र धारण करते हैं। प्रद्युम्न अपने नीचेवाले दायें हाथमें चक्र, ऊपरवाले दायें हाथमें गदा, ऊपरवाले बाँयें हाथमें शङ्ख और नीचेवाले बाँयें हाथमें पद्म धारण करते हैं। अनिरुद्ध अपने नीचेवाले दायें हाथमें चक्र, ऊपरवाले दायें हाथमें गदा, ऊपरवाले बाँयें हाथमें शङ्ख और नीचेवाले बाँयें हाथमें पद्म धारण करते हैं। परव्योममें श्रीवासुदेवादि अपने-अपने अनुसार अपने हाथोंमें अस्त्रोंको धारण करते हैं। मैं सिद्धार्थ-संहिताके मतानुसार यह वर्णन कर रहा हूँ॥ 224-226॥

परव्योममें बाकी बीस मूर्तियोंके अस्त्र-भेदका वर्णन :—

श्रीकेशव—पद्म-शङ्ख-चक्र-गदाधर।
नारायण—शङ्ख-पद्म-गदा-चक्रधर॥ 227॥

श्रीमाधव—गदा-चक्र-शङ्ख-पद्मकर।
श्रीगोविन्द—चक्र-गदा-पद्म-शङ्खधर॥ 228॥

विष्णुमूर्त्ति—गदा-पद्म-शङ्ख-चक्रकर।
मधुसूदन—चक्र-शङ्ख-पद्म-गदाधर॥ 229॥

त्रिविक्रम—पद्म-गदा-चक्र-शङ्खकर।
श्रीवामन—शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर॥ 230॥

श्रीधर—पद्म-चक्र-गदा-शङ्खकर।
हृषीकेश—गदा-चक्र-पद्म-शङ्खधर॥ 231॥

पद्मनाभ—शङ्ख-पद्म-चक्र-गदाकर।
दामोदर—पद्म-चक्र-गदा-शङ्खधर॥ 232॥

पुरुषोत्तम—चक्र-पद्म-शङ्ख-गदाधर।
श्रीअच्युत—गदा-पद्म-चक्र-शङ्खधर॥ 233॥

श्रीनृसिंह—चक्र-पद्म-गदा-शङ्खधर।
जनार्द्दन—पद्म-चक्र-शङ्ख-गदाकर॥ 234॥

श्रीहरि—शङ्ख-चक्र-पद्म-गदाकर।
श्रीकृष्ण—शङ्ख-गदा-पद्म-चक्रकर॥ 235

अधोक्षज—पद्म-गदा-शङ्ख-चक्रकर।
उपेन्द्र—शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मकर॥ 236॥

अनुवाद—(सबके अस्त्र धारण करनेवाले हाथोंका क्रम इस प्रकार है—नीचेवाला दाहिना हाथ, ऊपरवाला दाहिना हाथ, ऊपरवाला बायाँ हाथ और नीचेवाला बायाँ हाथ) श्रीकेशव—पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करते हैं। श्रीनारायण—शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र धारण करते हैं। श्रीमाधव—गदा, चक्र, शङ्ख और पद्म धारण करते हैं। श्रीगोविन्द—चक्र, गदा, पद्म और शङ्ख धारण करते हैं। विष्णुमूर्ति—गदा, पद्म, शङ्ख और चक्र धारण करते हैं। मधुसूदन—चक्र, शङ्ख, पद्म और गदा धारण करते हैं। त्रिविक्रम—पद्म, गदा, चक्र और शङ्ख धारण करते हैं। श्रीवामन—शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं। श्रीधर—पद्म, चक्र, गदा और शङ्ख धारण

करते हैं। हृषीकेश—गदा, चक्र, पद्म और शङ्ख धारण करते हैं। पद्मनाभ—शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा धारण करते हैं। दामोदर—पद्म, चक्र, गदा और शङ्ख धारण करते हैं। पुरुषोत्तम—चक्र, पद्म, शङ्ख और गदा धारण करते हैं। श्रीअच्युत—गदा, पद्म, चक्र और शङ्ख धारण करते हैं। श्रीनृसिंह—चक्र, पद्म, गदा और शङ्ख धारण करते हैं। जनार्द्दन—पद्म, चक्र, शङ्ख और गदा धारण करते हैं। श्रीहरि—शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा धारण करते हैं। श्रीकृष्ण—शङ्ख, गदा, पद्म और चक्र धारण करते हैं। अधोक्षज—पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करते हैं। उपेन्द्र—शङ्ख, गदा, चक्र और पद्म धारण करते हैं॥ **227–236**॥

अनुभाष्य—सिद्धार्थ-संहितामें—(हः भः विः पञ्चम विः 176 और 177 संख्या)

"वासुदेवो गदाशङ्खचक्रपद्मधरो मतः।
पद्मं शङ्खं तथा चक्रं गदां वहति केशवः।
शङ्खं पद्मं गदाश्चक्रं धत्ते नारायणः सदा।
गदां चक्रं तथा शङ्खं पद्मं वहति माधवः।
चक्रं पद्मं तथा शङ्ख गदाश्च पुरुषोत्तमः।
पद्मं कौमोदकीं शङ्खं चक्रं धत्तेऽप्यधोक्षजः।
सङ्कर्षणो गदाशङ्खपद्मचक्रधरः स्मृतः।
चक्रं गदां पद्मशङ्खौ गोविन्दो धरते भुजैः॥
गदां पद्मं तथा शङ्खं चक्रं विष्णुर्विभर्त्ति यः।
चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदाश्च मधुसूदनः।
गदां सरोजं चक्रश्च शङ्खं धत्तेऽच्युतः सदा।
शङ्खं कौमोदकीं चक्रमुपेन्द्रः पद्ममुद्वहेत्।
चक्रशङ्खगदापद्मधरः प्रद्युम्न उच्यते।
पद्मं कौमोदकीं चक्रं शखं धत्ते त्रिविक्रमः॥
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं वामनो वहते सदा।
पद्मं चक्रं गदां शङ्खं श्रीधरो वहते भुजैः॥
चक्रं पद्मं गदां शङ्खं नरसिंहो विभर्त्ति यः।
पद्मं सुदर्शनं शङ्खं गदां धत्ते जनार्द्दनः॥
अनिरुद्धश्चक्रगदाशङ्खपद्मलसम्भुजः।
हृषीकेशो गदां चक्रं पद्मं शङ्खश्च धारयेत्॥
पद्मनाभो वहेत् शङ्खं पद्मं चक्रं गदां तथा।
पद्मं चक्रं गदां शङ्खं धत्ते दामोदरः सदा॥
शङ्खं चक्रं सरोजश्च गदां वहति यो हरि।
शङ्खं कौमोदकीं पद्मं चक्रं कृष्णो विभर्त्ति यः।
एताश्च मूर्त्तयो ज्ञेया दक्षिणाधः-करक्रमात्॥"

श्लोक-भावानुवादके लिये 224–236 पयारोंका अनुवाद देखें॥ **224–236**॥

हयशीर्ष-पञ्चरात्रमें कथित सोलह
मूर्तियोंके अस्त्र-भेदका वर्णन :—

हयशीर्ष-पञ्चरात्रे कहे षोलजन।
तार मते कहि एबे चक्रादि-धारण॥ 237॥

केशव-भेदे पद्म-शङ्ख-गदा-चक्रधर।
माधव-भेदे चक्र-गदा-शङ्ख-पद्मकर॥ 238॥

नारायण-भेदे नाना अस्त्र-भेद-धर।
इत्यादिक भेद एइ सब अस्त्रकर॥ 239॥

अनुवाद—हयशीर्ष-पञ्चरात्रमें सोलह मूर्तियोंके विषयमें कहा गया है। इनके हाथोंमें चक्रादि धारणका अब मैं उसीके मतानुसार वर्णन करता हूँ। इसमें कहा गया है कि केशव अपने हाथोंमें क्रमशः पद्म, शङ्ख, गदा और चक्र धारण करते हैं तथा माधव चक्र, गदा, शङ्ख और पद्म धारण करते हैं जो सिद्धार्थ संहितामें दिये गये वर्णनसे भिन्न है। इसी प्रकार श्रीनारायणके अस्त्र धारणमें भी दोनों मतोंमें पार्थक्य है। इसी प्रकार सभी मूर्तियोंके अस्त्रधारणमें भेद हैं॥ **237–239**॥

अनुभाष्य—सोलह मूर्तियाँ—1) वासुदेव, 2) सङ्कर्षण, 3) प्रद्युम्न, 4) अनिरुद्ध, 5) श्रीकेशव, 6) श्रीनारायण, 7) माधव, 8) श्रीगोविन्द, 9) विष्णु, 10) मधुसूदन, 11) त्रिविक्रम, 12) वामन, 13) श्रीधर, 14) हृषीकेश, 15) पद्मनाभ, 16) दामोदर।

हयशीर्ष-पञ्चरात्रमें (हः भः विः पञ्चम विः 168–175)—

"आदिमूर्त्तिर्वासुदेवः सङ्कर्षणमथासृजत्।
चतुर्मूर्त्तिः परं प्रोक्तमेकैको भिद्यते त्रिधा।
केशवादिप्रभेदेन मूर्त्तिर्द्वादशकं स्मृतम्॥
पङ्कजं दक्षिणे दद्यात् पाञ्चजन्यं तथोपरि।
वामोपरि गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम्॥

आदिमूर्त्तेस्तु भेदोऽयं केशवेति प्रकीर्त्त्यते।
अधरोत्तरभावेन कृतमेतत्तु यत्र वै।
नारायणाख्या सा मूर्त्तिः स्थापिता भुक्तिमुक्तिदा॥
सव्याधः पङ्कजं यस्य पाञ्चजन्यं तथोपरि।
दक्षिणोर्द्धं गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम्।
आदिमूर्त्तेस्तु भेदोऽयं माधवेति प्रकीर्त्त्यते॥
दक्षिणाधःस्थितं चक्रं गदा यस्योपरि स्थिता।
वामोर्द्धसंस्थितं पद्मं शङ्खं चाधो व्यवस्थितम्।
सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं गोविन्देति प्रकीर्त्त्यते॥
दक्षिणोपरि पद्मन्तु गदा चाधो व्यवस्थिता।
सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं विष्णुरित्यभिशब्दते॥
दक्षिणोपरि शङ्खश्च चक्रं चाधः प्रदृश्यते॥
वामोपरि तथा पद्मं गदा चाधः प्रदृश्यते।
मधुसूदननामायं भेदः सङ्कर्षणस्य च॥
वामोर्द्धसंस्थितश्चक्रमधः शङ्खं प्रदृश्यते।
ब्रह्माण्डगं वामपदं दक्षिणं शेषपृष्ठगम्।
बलिवञ्चन संयुक्तं वामनञ्चाप्यधःस्थितम्॥
वामोर्द्धे कौमोदी यस्य पुण्डरीकमधःस्थितम्।
दक्षिणोर्द्धं सहस्रारं पाञ्चजन्यमधःस्थितम्।
सप्ततालप्रमाणेन वामनं कारयेत् सदा॥
ऊर्ध्वं दक्षिणतश्चक्रमधः पद्मं व्यवस्थितम्।
पद्मा पद्मकरा वामे पार्श्वे यस्य व्यवस्थिता।
स्थितो वाप्युपविष्टो वा सानुरागो विलासवान्।
प्रद्युम्नस्य हि भेदोऽयं श्रीधरेति प्रकीर्त्त्यते॥
दक्षिणोर्द्धं महाचक्रं कौमोदी तदधःस्थिता।
वामोर्द्धे नलिनं यस्य अधः शङ्खं विराजते।
हृषीकेशेति विज्ञेयः स्थापितः सर्वकामदः॥
दक्षिणोर्द्धे पुण्डरीकं पाञ्चन्यमधस्तथा।
वामोर्द्धे संस्थितं चक्रं कौमोदी तदधःस्थिता।
पद्मनाभेति सा मूर्त्तिः स्थापिता मोक्षदायिनी॥
दक्षिणोर्द्धे पाञ्चजन्यमधस्तात्तु कुशेशयम्।
सव्योर्द्धे कौमोदी चेव हेतिराजमधःस्थितम्।
अनिरुद्धस्य भेदोऽयं दामोदर इति स्मृतः॥
एतेषान्तु स्त्रियौ कार्ये पद्मवीणाधरे शुभे।
इति क्रमेण मार्गादि-मासाधिपाः केशवादयो द्वादश॥

[अर्थात् "हयशीर्ष-पञ्चरात्रके अनुसारमें—आदिमूर्ति वासुदेव सङ्कर्षणको प्रकाश करते हैं। इस प्रकारसे प्रधानरूपमें कही गई चार मूर्तियाँ (वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) प्रत्येक तीन मूर्तियोंमें विभक्त होते हैं। वे केशवादिके भेदसे बारह मूर्तियाँ कहलाती हैं। जो दायें ओर नीचेवाले हाथमें पद्म और ऊपरवाले हाथमें पाञ्चजन्य शङ्ख, बाँयें ओर ऊपरवाले हाथमें गदा और नीचेवाले हाथमें चक्र धारण करते हैं—आदिमूर्ति श्रीवासुदेवके इस भेदको 'केशव'-नामसे कहा जाता है। केशव-मूर्तिके अस्त्रधारणके विपरीत क्रमसे जिस मूर्तिमें अस्त्रधारण होता है, वे भुक्तिमुक्तिप्रदाता 'श्रीनारायण'-नामसे कहे जाते हैं। जिनके बाँयें ओरके नीचे हाथमें पद्म और ऊपरवाले हाथमें पाञ्चजन्य-शङ्ख, दायें ऊपरी हाथमें गदा और नीचेवाले हाथमें चक्र—वे आदिमूर्तिके भेद 'माधव' नामसे विख्यात हैं। जिनके दायें नीचेवाले हाथमें चक्र और ऊपरवालेमें गदा, बाँयें ऊपरी हाथमें पद्म और नीचवालेमें शङ्ख है—सङ्कर्षणके ये भेद 'गोविन्द'-नामसे कहे जाते हैं। दायें ऊपरवाले हाथमें पद्म और नीचेवाले हाथमें गदा, बाँयें ऊपरवाले हाथमें शङ्ख और नीचेवाले हाथमें चक्र—सङ्कर्षणके ये भेद 'विष्णु'-नामसे कथित होते हैं। जिनके दायें ऊपरी हाथमें शङ्ख और नीचेमें चक्र दिखायी देता है, बाँयें ऊपरी हाथमें पद्म और नीचे गदा दिखायी देते हैं—सङ्कर्षणके ये भेद 'मधुसूदन'-नामसे कहे जाते हैं। जिनके दायें नीचेवाले हाथमें पद्म और ऊपरी हाथमें गदा, बाँयें ऊपरी हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें शङ्ख दिखायी देता है, बाँया चरण ब्रह्माण्डगामी और दायाँ चरण अनन्तदेवकी पीठ तक जाता है—वे 'त्रिविक्रम' हैं। बलिकी वञ्चना करनेवाले और अधोलोकमें अवस्थित जिनके बाँयें ऊपरी हाथमें गदा और नीचेवाले हाथमें पद्म तथा दायें ऊपरी हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें शङ्ख—इस प्रकार 'श्रीवामन'देवकी मूर्ति सप्तताल-परिमाणमें निर्मित करनी होगी। दायें ऊपरी हाथमें चक्र नीचेवाले हाथमें पद्म, बाँयें ऊपरी हाथमें गदा और नीचेवाले हाथमें शङ्खयुक्त जिनके बाँयेंमें लक्ष्मीदेवी हस्तमें कमल लेकर अवस्थित हैं और जो खड़े हुए

अथवा बैठे हुए, इस प्रकार अनुरागयुक्त और विलासवान् 'श्रीधर' प्रद्युम्नके भेद कहलाये जाते हैं। जिनके दायें ऊपरी हाथमें महाचक्र, नीचेवाले हाथमें गदा और बाँयें ऊपरी हाथमें पद्म, नीचेवाले हाथमें शङ्ख विराजित हैं, उनको समस्त कामना पूर्ण करनेवाले 'हृषीकेश' जानना होगा। जिनके दायें ऊपरी हाथमें पद्म और नीचेवाले हाथमें पाञ्चजन्य-शङ्ख एवं बाँयें ऊपरी हाथमें चक्र तथा नीचेवाले हाथमें गदा अवस्थित है, वह मूर्ति मोक्षप्रदाता 'पद्मनाभ'-नामसे प्रतिष्ठित है। दायें ऊपरी हाथमें पाञ्चजन्य-शङ्ख, नीचेवाले हाथमें पद्म और बाँयें ऊपरी हाथमें गदा और नीचेवालेमें चक्र—अनिरुद्धके इन भेदको 'दामोदर'-नामसे कहा जाता है। उन सबके साथ पद्म और वीणा धारण करनेवाली परमशुभा दो-दो स्त्रियाँ विद्यमान होती हैं। केशवादि बारह मूर्तियाँ इस प्रकारसे अग्रहायणादि सभी महीनोंके अधिपति हैं।] ॥ 237–239 ॥

व्रजेन्द्रनन्दनके दो नाम :—

'स्वयं भगवान्', आर 'लीला-पुरुषोत्तम'।
एइ दुइ नाम धरे व्रजेन्द्रनन्दन ॥ 240 ॥

अनुवाद—व्रजेन्द्रनन्दन 'स्वयं भगवान्' और 'लीला-पुरुषोत्तम'—इन दो नामोंको धारण करते हैं ॥ 240 ॥

मथुरा और द्वारकाके आवरणके रूपमें नवव्यूह :—

पुरीर आवरणरूपे पुरीर नवदेशे।
नवव्यूहरूपे नवमूर्त्ति परकाशे ॥ 241 ॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण स्वयं मथुरा और द्वारकापुरीको आवृत करके उनकी रक्षा करते हैं। वे इन पुरियोंमें नौ स्थानोंपर नवव्यूहके रूपमें नौ मूर्तियाँ धारण करते हैं ॥ 241 ॥

अनुभाष्य—यहाँपर देखने योग्य यह है कि इस नवव्यूहके अन्तर्गत वराह और हयग्रीव 'वैभवावस्थ' अवतार होनेपर भी 'परावस्थ'के समान हैं ॥ 241 ॥

नवव्यूहका परिचय :—
लघुभागवतामृत (1/451)में—

चत्वारो वासुदेवाद्या नारायणनृसिंहकौ।
हयग्रीवो वराहश्च ब्रह्मा चेति नवोदिताः ॥ 242 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 242 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चतुर्व्यूहके वासुदेवादि चार विग्रह, श्रीनारायण, नृसिंह, हयग्रीव, वराह और ब्रह्मा,—ये नौ विग्रह हैं ॥ 242 ॥

अनुभाष्य—

वासुदेवाद्याः (वासुदेवसङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धाः) चत्वारः (द्वितीय-व्यूहाः) नारायणनृसिंहकौ (नारायणः नृसिंहश्च द्वौ), हयग्रीवः, वराहश्च, ब्रह्मा च इति नवमूर्त्तयः (व्यूहाः) उदिताः (कथिताः—"तत्र ब्रह्मा तु विज्ञेयः पूर्वोक्तविधया हरिः" इति, "भवेत् क्वचिन्महाकल्पे ब्रह्मा जीवोऽप्युपासनैः। क्वचिदत्र महाविष्णुर्ब्रह्मत्वं प्रतिपद्यते॥" इति पाद्मवचनोक्तरीत्या ब्रह्मणोऽत्रेश्वरकोटित्वं ज्ञेयम्)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें। (पूर्वोक्त विधिके अनुसार वहाँ जिन्हें ब्रह्मा कहा गया है, उन्हें श्रीहरि ही जानना होगा। किसी-किसी महाकल्पमें जीव भी उपासनाके द्वारा ब्रह्मा होते हैं, और किसी समयमें महाविष्णु ब्रह्मा-रूपमें प्रतिपादित होते हैं। इस पद्मपुराणमें कहे गये नियमके अनुसार इस स्थानपर ब्रह्माको ईश्वर-कोटिका जानना होगा।) ॥ 242 ॥

अब तक श्रीकृष्णस्वरूपके छः प्रकारके विलासके अन्तर्गत प्राभव और वैभवरूपी दो प्रकारके प्रकाशोंका विलास वर्णित; अब स्वांश और शक्त्यावेशरूपी दो प्रकारके अवतारोंका वर्णन :—

प्रकाश-विलासेर एइ कैलुँ विवरण।
स्वांशेर भेद एबे शुन, सनातन ॥ 243 ॥

अनुवाद—हे सनातन, मैंने अब तक तुम्हें भगवान्के प्रकाश और विलासका विवरण सुनाया है। अब तुम स्वांशके भेदको सुनो ॥ 243 ॥

स्वांशके प्रधानतः दो रूप—(1) प्रकृतिके अधिष्ठाता चालक, (2) साधुओंके पालक और असाधुओंके विनाशक रूपमें अनेक अवतार :—

सङ्कर्षण, मत्स्यादिक,—दुइ भेद ताँर।
सङ्कर्षण—पुरुषावतार, मत्स्यादि—अवतार॥ 244॥

अनुवाद—स्वांशके दो भेद हैं—पहला सङ्कर्षण और दूसरा मत्स्यादि अवतार। सङ्कर्षणसे पुरुषावतार प्रकाशित होते हैं और मत्स्यादि अवतार विभिन्न युगोंमें अनेक लीलाएँ करते हैं॥ **244**॥

छः प्रकारके अवतार :—

अवतार हय कृष्णेर षड्विध प्रकार।
पुरुषावतार एक, लीलावतार आर॥ 245॥
गुणावतार, आर मन्वन्तरावतार।
युगावतार, आर शक्त्यावेशावतार॥ 246॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके अवतार छः प्रकारके होते हैं। पुरुषावतार, लीलावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार और शक्त्यावेशावतार—ये छः प्रकारके होते हैं॥ **245-246**॥

अनुभाष्य—*'पुरुषावतार'*—महासङ्कर्षणसे कारणोदकशायी (भाः 11/4/3), गर्भोदकशायी (भाः 1/3/2-3) और क्षीरोदकशायी (भाः 1/18/21, 2/2/8, 2/8/16, 10/88/5)—ये तीन मूर्तियाँ प्रकाशित होती हैं।

'लीलावतार'—(भाः प्रथम स्कन्ध तृतीय अध्याय देखें) 1) चतुःसन, 2) नारद, 3) वराह, 4) मत्स्य, 5) यज्ञ, 6) नर-नारायण, 7) कर्दम ऋषिके पुत्र कपिल, 8) दत्त (आत्रेय—भाः 2/7/4), 9) हयशीर्षा (भाः 2/7/11), 10) हंस (भाः 2/7/19), 11) ध्रुवप्रिय अथवा पृश्निगर्भ (भाः 2/7/8), 12) ऋषभ, 13) पृथु, 14) नृसिंह, 15) कूर्म, 16) धन्वन्तरि, 17) मोहिनी, 18) वामन, 19) भार्गव परशुराम, 20) राघवेन्द्र, 21) व्यास, 22) प्रलम्बारि बलराम, 23) कृष्ण, 24) बुद्ध, 25) कल्कि—ये पच्चीस मूर्तियाँ लीलावतार हैं। ये प्रायः प्रतिकल्पमें ही (ब्रह्माके एक दिनका नाम ही एक 'कल्प' है) आविर्भूत होनेके कारण 'कल्पावतार'-नामसे भी जाने जाते हैं। इनमें 'हंस' और 'मोहिनी'—प्राभवावस्थ अवतार अस्थायी और अल्प प्रसिद्धिवाले हैं। कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, धन्वन्तरि और व्यास,—ये पाँच मूर्तियाँ चिरस्थायी और विस्तृत कीर्ति एवं मुनियोंके रूपमें प्राभवावस्थ अवतार हैं। और कूर्म, मत्स्य, श्रीनारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ और प्रलम्बासुरनाशक बलदेव—ये वैभवावस्थ अवतार हैं।

'गुणावतार'—ब्रह्मा, विष्णु और शिव (भाः 10/88/3),—ये तीन मूर्तियाँ।

'मन्वन्तरावतार'—(भाः आठवाँ स्कन्ध—पहला, पाँचवाँ और तेरहवाँ अध्याय)—1) यज्ञ, 2) विभु, 3) सत्यसेन, 4) हरि, 5) वैकुण्ठ, 6) अजित, 7) वामन, 8) सार्वभौम, 9) ऋषभ, 10) विष्वक्सेन, 11) धर्मसेतु, 12) सुधामा, 13) योगेश्वर, 14) बृहद्भानु,—इन चौदह मूर्तियोंमेंसे 'यज्ञ' और 'वामन' लीलावतार भी हैं, इसलिये बारह मूर्तियाँ मन्वन्तरावतार हैं; पुनः ये चौदह मन्वन्तरावतार 'वैभवावस्थ' अवतारके नामसे भी कहे जाते हैं।

'युगावतार'—1) सत्ययुगमें 'शुक्ल' (भाः 11/5/21), 2) त्रेतायुगमें 'रक्त' (भाः 11/5/24), 3) द्वापरयुगमें 'श्याम' (भाः 11/5/27), 4) साधारण-कलियुगमें 'कृष्णवर्ण' और विशेष कलियुगमें 'पीतवर्ण' (भाः 11/5/32 और 10/8/13 देखें)।

'शक्त्यावेशावतार'—(क) भगवदावेश—कपिल और ऋषभदेव, (ख) शक्त्यावेश—1) वैकुण्ठमें स्थित शेष (निज-सेवनशक्ति), 2) अनन्त (भूधारण-शक्ति), 3) ब्रह्मा (सृष्टिशक्ति), 4) चतुःसन (ज्ञानशक्ति), 5) नारद (भक्तिशक्ति), 6) पृथु (पालनशक्ति), 7) परशुराम (दुष्टदमन शक्ति)—ये सात मूर्तियाँ हैं॥ **245-246**॥

किशोर श्रीकृष्णके छः प्रकारके विलासोंमेंसे आयुके धर्मके भेदसे दो प्रकारके विलास अथवा लीला :—

बाल्य, पौगण्ड हय विग्रहेर धर्म।
एतरूपे लीला करेन व्रजेन्द्रनन्दन॥ 247॥

अनुवाद—बाल्य और पौगण्ड विग्रहका धर्म है। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण इन (बाल्य और पौगण्ड) रूपोंमें लीला करते हैं॥ 247॥

श्रीकृष्णके असंख्य अवतार :—

अनन्त अवतार कृष्णेर, नाहिक गणन।
शाखा-चन्द्र-न्याय करि दिग्‌दरशन॥ 248॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके असंख्य अवतार हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। मैं तो केवल शाखा-चन्द्र-न्यायकी भाँति इनका दिग्दर्शन करा रहा हूँ॥ 248॥

अनुभाष्य—*'शाखा-चन्द्र-न्याय'*—भूमिपर स्थित समतलमें वृक्षकी शाखाको निर्देश करके उसके पीछे आकाश-गोलमें स्थित चन्द्रके स्थानके निर्देशकी भाँति दिशाके प्रदर्शन मात्रको शाखा-चन्द्र-न्याय कहते हैं। अवतारसमूह लौकिक नेत्रोंके द्वारा देखे जानेपर भी वे मायिक नहीं हैं। उनकी अप्राकृत लीलाको अन्वय भावसे अनुगत जीवोंके द्वारा ही जाना जा सकता है, तर्कपन्थी लोगोंकी प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा वह ग्रहणीय नहीं है॥ 248॥

श्रीमद्भागवत (1/3/26)में—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
तथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥ 249॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 249॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे द्विजगणों! जैसे बहुत बड़े सरोवरमेंसे हजारों हजारों छोटे जलाशय उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि हरिके अवतार असंख्य हैं॥ 249॥

अनुभाष्य—शौनकादि ऋषियोंको श्रीसूत-गोस्वामी श्रीहरिके असंख्य अवतारोंकी कथाका वर्णन करके अवतारोंके असंख्य होनेके विषयमें बतला रहे हैं—

हे द्विजाः, अविदासिनः (अपक्षयहीनात्) सरसः [सकाशात्] [यथा] कुल्याः (स्वल्पप्रवाहाः) सहस्रशः स्युः (सम्भवन्ति), तथा हि सत्त्वनिधेः (सर्वसत्त्वाश्रयस्य विशुद्धसत्त्वसेवधेः) हरेः असंख्येयाः (गणनातीताः) अवताराः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 249॥

(क) सर्वप्रथम तीन पुरुषावतार—
कारण-गर्भ-क्षीरसागरशायी :—

प्रथमेइ करे कृष्ण 'पुरुषावतार'।
सेइत पुरुष हय त्रिविध प्रकार॥ 250॥

अनुवाद—सर्वप्रथम श्रीकृष्ण 'पुरुषावतार' प्रकाशित करते हैं। वे पुरुषावतार तीन प्रकारके होते हैं॥ 250॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सेइत पुरुष हय त्रिविध प्रकार'*—यहाँ तक श्रीकृष्णके बहुत प्रकारके स्वरूपोंका विचार हुआ है। अब श्रीकृष्णकी शक्तिका विचार किया जायेगा॥ 250॥

लघुभागवतामृत (1/33)में सात्वततन्त्र-वाक्य :—

विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः।
एकन्तुः महतः स्रष्टृ
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥ 251॥

अनुवाद—नित्यधाममें विष्णुके तीन रूप हैं। प्रथम—महत्तत्त्वके स्रष्टा कारणाब्धिशायी महाविष्णु; द्वितीय—गर्भोदशायी और समष्टिब्रह्माण्डगत पुरुष; तृतीय—क्षीरोदशायी व्यष्टिब्रह्माण्डगत पुरुष, वे प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी ईश्वर और परमात्मा हैं। इन तीनोंको तत्त्वसे जान लेनेपर जीव जड़बुद्धिसे मुक्त हो जाता है॥ 251॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/77 संख्या देखें॥ 251॥

एक श्रीकृष्ण ही तीन प्रकारकी
स्वरूपशक्तिके अधिष्ठाता :—

अनन्तशक्ति-मध्ये कृष्णेर तिन शक्ति प्रधान।
'इच्छाशक्ति', 'क्रियाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति' नाम॥ 252॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी अनन्त शक्तियोंमेंसे उनकी तीन शक्तियाँ प्रधान हैं। वे 'इच्छाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति' और 'क्रियाशक्ति'—इन तीन नामोंसे कही जाती हैं॥ 252॥

स्वयं श्रीकृष्ण—इच्छा अथवा आनन्दशक्तिके एवं चतुर्व्यूहके बीचमें (1) वासुदेवरूपमें वे ही सम्वित्शक्तिके प्रभु :—

इच्छाशक्ति-प्रधान कृष्ण—इच्छाय सर्वकर्त्ता।
ज्ञानशक्ति-प्रधान वासुदेव अधिष्ठाता॥ 253॥

इच्छा-ज्ञान-क्रिया बिना ना हय सृजन।
तिनेर तिनशक्ति मेलि' प्रपञ्च-रचन॥ 254॥

अनुवाद—इच्छाशक्तिके अधिष्ठातृ देवता श्रीकृष्ण हैं, उनकी इच्छासे ही सभी वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं। इच्छाशक्तिके साथ ज्ञानकी भी आवश्यकता होती है और ज्ञानशक्तिके अधिष्ठातृ देवता वासुदेव हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्तिके बिना सृष्टि नहीं होती। तीनों अधिष्ठातृ देवताओंकी शक्तियाँ परस्पर मिलकर प्रपञ्चकी (भौतिक जगत्की) रचना करती हैं॥ 253-254॥

वे ही श्रीबलराम अथवा श्रीसङ्कर्षणके रूपमें सन्धिनीशक्तिके प्रभु, तीन प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा चिद्-अचिद् जगत्का प्राकट्य :—

क्रियाशक्ति-प्रधान सङ्कर्षण बलराम।
प्राकृताप्राकृत-सृष्टि करेन निर्माण॥ 255॥

अनुवाद—क्रिया-शक्तिके अधिष्ठातृ देवता श्रीसङ्कर्षण ही श्रीबलराम हैं। वे प्राकृत और अप्राकृत, दोनों प्रकारकी सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं॥ 255॥

श्रीसङ्कर्षण ही आदिपुरुष अथवा कारणशायी और चिद्वैभवकी सत्ताके कारण :—

अहङ्कारेर अधिष्ठाता कृष्णेर इच्छाय।
गोलोक, वैकुण्ठ सृजे चिच्छक्तिद्वाराय॥ 256॥

अनुवाद—अहङ्कारके अधिष्ठातृ देवता श्रीसङ्कर्षण श्रीकृष्णकी इच्छासे चिद्-शक्तिके द्वारा गोलोक और वैकुण्ठका सृजन करते हैं॥ 256॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उन अद्वयतत्त्व श्रीकृष्णकी अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमेंसे 'इच्छाशक्ति', 'क्रियाशक्ति' और 'ज्ञानशक्ति'—सभी कार्योंमें ही इन तीनोंका विशेष परिचय मिलता है। 'इच्छाशक्ति'के प्रधान—'श्रीकृष्ण' हैं, जिनकी इच्छासे ही समस्त कार्य होते हैं; 'ज्ञानशक्ति'के प्रधान—'वासुदेव' और 'क्रियाशक्ति'के प्रधान—'सङ्कर्षण' हैं। इन तीनोंकी इन शक्तियोंको लेकर ही प्राकृत-अप्राकृत जगत्की सृष्टि अथवा प्रकाश होता है। अहङ्कारके अधिष्ठाता 'सङ्कर्षण'ने श्रीकृष्णकी इच्छासे चिद्-शक्तिके द्वारा चिद्-शक्तिविलासरूप गोलोक-वैकुण्ठादि धाम प्रकट किये हैं॥ 252-256॥

चिद्-शक्ति विलास तद्रूपवैभव सङ्कर्षणसे प्रकाशित :—

यद्यपि असृज्य नित्य चिच्छक्तिविलास।
तथापि सङ्कर्षण-इच्छाय ताहार प्रकाश॥ 257॥

अनुवाद—यद्यपि चिद्-शक्तिके विलास वैकुण्ठादिके नित्यत्वके कारण उनकी सृष्टि सम्भव नहीं है, तथापि सङ्कर्षणकी इच्छासे उनका प्रकाश होता है॥ 257॥

अनन्तरूपी सङ्कर्षणसे गोलोकधामका प्राकट्य :—
ब्रह्मसंहिता (5/2)में—

सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम्।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसम्भवम्॥ 258॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 258॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गोकुल-नामक महत्पद—सौ पत्तोंवाले कमलके समान है; उसकी कर्णिका ही उसका आधार है, सब कुछ ही अनन्तके (बलदेवके) अंशसे उत्पन्न हुआ है॥ 258॥

अनुभाष्य—

गोकुलाख्यं महत्पदं (तद्रूपवैभवश्रेष्ठं धाम)—सहस्रपत्रं कमलं (सहस्रदल-पद्ममिव); तत्कर्णिकारं (तत्पद्मपुष्पमध्यम् एव) तद्धाम (तस्य कृष्णस्य धाम); तत्—अनन्तांशसम्भवं (बलदेवांशजातम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 258॥

सांख्यवादका खण्डन, सङ्कर्षणकी ईक्षणशक्तिसे क्षुब्ध जड़ीय माया ही क्रियावती होकर विश्वकी सृष्टि करनेवाली :—

माया-द्वारे सृजे तेँहो ब्रह्माण्डेर गण।
जड़रूपा प्रकृति नहे ब्रह्माण्ड-कारण॥ 259॥

जड़ हैते सृष्टि नहे ईश्वरशक्ति बिने।
ताहातेइ सङ्कर्षण करे शक्तिर आधाने॥ 260॥

उपमा :—

ईश्वरेर शक्त्ये सृष्टि करये प्रकृति।
लौह येन अग्निशक्त्ये पाय दाह-शक्ति॥ 261॥

अनुवाद—मायाके द्वारा सङ्कर्षण ही ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करते हैं। जड़रूपा प्रकृति ब्रह्माण्डका कारण नहीं है। ईश्वरकी शक्तिके बिना जड़से सृष्टि नहीं हो सकती। जड़रूपा प्रकृतिमें सङ्कर्षण ही शक्तिका सञ्चार करते हैं। ईश्वरकी शक्तिसे ही प्रकृति सृष्टि करती है, जैसे लोहा अग्निकी शक्तिसे दाहक-शक्ति (जलानेकी शक्ति) प्राप्त करता है॥ 259-261॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/60-64 संख्या देखें॥ 259-261॥

श्रीबलराम-कृष्ण ही विश्वके एकमात्र
जनक और नियामक :—
श्रीमद्भागवत (10/46/31)में—

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी
रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम्।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ॥ 262॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 262॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये—राम-कृष्ण, इस विश्वके बीजयोनिस्वरूप हैं। इन दोनोंने ही समस्त भूतोंमें प्रवेश करके परस्पर भेद-ज्ञान उत्पन्न किया है॥ 262॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके अनुरोधसे व्रजवासियोंके श्रीकृष्णके विरहसे उत्पन्न शोकको कम करनेके उद्देश्यसे महात्मा उद्धवके व्रजमें आकर विश्राम करनेके बाद श्रीनन्दके द्वारा श्रीकृष्णके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनेपर श्रीनन्द-यशोदाको उद्धवजीके द्वारा श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन,—

रामः मुकुन्दश्च इति एतौ—विश्वस्य बीजयोनी (निमित्तोपादाने), पुरुषः (अंशः), प्रधानं (शक्तिः) [अतः प्रधान-पुरुषौ अपि एतौ एवेत्यर्थः,—एवमनयोर्जनकत्वमुक्तम्]; इमौ—पुराणौ (अनादी, सनातनौ; अतः) भूतेषु अन्वीय (अनुप्रविश्य) [भूतानां तदुपहितस्य] विलक्षणस्य (नानाभेदस्य) ज्ञानस्य (जीवस्य) च ईशाते (नियन्तारौ भवतः, एवमनयोर्नियन्तृत्वमप्युक्तम्)।

श्लोक-भावानुवाद—बलराम और श्रीकृष्ण इस विश्वके बीजयोनि स्वरूप (निमित्त और उपादानस्वरूप) हैं, ये ही पुरुष (कारणोदशायी विष्णु) और प्रधान (शक्ति) हैं [इसलिये इन्हें सभीका जनक कहा गया है]। इन दोनों अनादी पुरुषोंने ही समस्त भूतोंमें अन्तर्यामीरूपमें प्रवेश करके परस्पर भेद-ज्ञान उत्पन्न किया है [इसलिये ये सभीके नियन्ता कहे गये हैं]॥ 262॥

प्रपञ्चातीत धामसे कृपापूर्वक प्रपञ्चमें प्राकट्य और
अवतरण ही अवतार :—

सृष्टि-हेतु येइ मूर्त्ति प्रपञ्चे अवतरे।
सेइ ईश्वरमूर्त्ति 'अवतार' नाम धरे॥ 263॥

मायातीत परव्योमे सबार अवस्थान।
विश्वे अवतरि' धरे 'अवतार' नाम॥ 264॥

अनुवाद—सृष्टिके लिये जो विग्रह प्रपञ्चमें अवतरित होते हैं, उन्हीं विग्रहोंको 'अवतार' कहते हैं। ये सब विग्रह मायातीत परव्योममें ही वास करते हैं। इस विश्वमें अवतरित होनेके कारण उन्हें 'अवतार' कहते हैं॥ 263-264॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/81 संख्या देखें॥ 264॥

सङ्कर्षण ही प्रकृतिके प्रति ईक्षण और
बीज बोनेवाले आदि-पुरुषावतार :—

सेइ माया अवलोकिते श्रीसङ्कर्षण।
पुरुषरूपे अवतीर्ण हइला प्रथम॥ 265॥

अनुवाद—मायापर ईक्षण करके उसमें शक्ति सञ्चरित करनेके लिये ही श्रीसङ्कर्षण प्रथम-पुरुषके रूपमें अवतीर्ण हुए॥ 265॥

श्रीमद्भागवत (1/3/1)में—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोड़शकलमादौ लोकसिसृक्षया॥ 266॥

अनुवाद—भगवान्ने लोकसृष्टि करनेकी इच्छासे महत्तत्त्वादिके साथ और सोलह कलायुक्त 'पुरुष' कहलाने वाले रूपको धारण किया॥ 266॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/84 देखें॥ 266॥

श्रीमद्भागवत (2/6/42)में—

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य
कालः स्वभावः सदसन्मनश्च।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट्
स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः॥ 267॥

अनुवाद—कारणाब्धिशायी पुरुष ही भगवान्के आदि अवतार हैं। काल, स्वभाव, कार्य-कारणरूप प्रकृति, मनादि महत्तत्त्व, महाभूतादि अहङ्कार, सत्त्वादि गुण, इन्द्रियसमूह, विराट्, स्वराट्, स्थावर और जङ्गम प्राणी, सभी उनके विभूतिरूप हैं॥ 267॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/83 संख्या देखें॥ 267॥

(1) अपने वैकुण्ठमें शेष-शय्यापर कारणार्णव अथवा विरजाशायी—प्रकृतिके अन्तर्यामी ब्रह्माण्ड-कारण-स्रष्टा :—

सेइ पुरुष विरजाते करेन शयन।
'कारणाब्धिशायी' नाम—जगत्कारण॥ 268॥

विरजा अथवा कारणाब्धिके एक ओर तुरीय परव्योम अथवा चिद्-वैभव वैकुण्ठ, दूसरी ओर मायाविलास अथवा अचिद्-वैभव प्राकृत देवीधाम :—

कारणाब्धि-पारे मायार नित्य अवस्थिति।
विरजार पारे परव्योमे नाहि गति॥ 269॥

अनुवाद—वे पुरुष अर्थात् सङ्कर्षण (अप्राकृत और प्राकृत जगत्के मध्य) विरजा-नदीमें (कारण-समुद्रमें) शयन करते हैं। उनका नाम ही 'कारणाब्धिशायी' है और वे भौतिक जगत्की सृष्टिके मूल कारण हैं। कारण-समुद्रके एक ओर मायाकी नित्य स्थिति है। विरजा अर्थात् कारण-समुद्रके दूसरी ओर स्थित परव्योममें मायाका प्रवेश नहीं है॥ 268-269॥

वैकुण्ठका माहात्म्य :—

श्रीमद्भागवत (2/9/10)में—

प्रवर्त्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वञ्च
मिश्रं न च कालविक्रमः।
न यत्र माया किमुतापरे हरे-
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥ 270॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 270॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उस वैकुण्ठमें रज-तमः अथवा उनके साथ मिश्रसत्त्व अथवा कालका प्रभाव नहीं है और वहाँ माया तक भी नहीं है, औरोंकी तो बात ही क्या? देवताओं और दैत्योंके द्वारा अर्चित एवं श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण समर्पित पार्षद-भक्तगण वहाँ वास करते हैं॥ 270॥

अनुभाष्य—'शुद्ध जीवात्माका किस प्रकार देहसे सम्बन्ध होता है?'—राजा परीक्षितके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवने उनको भगवान्के द्वारा ब्रह्माको चतुःश्लोकीमें कहे गये तत्त्वज्ञानके उपदेशके प्रसङ्गको बतलानेसे पहले सृष्टिके प्रारम्भमें भगवद्-दर्शनके लिये ब्रह्माकी दिव्य एक हजार वर्षों तककी तपस्याके फलसे भगवान्ने ब्रह्माको जिस वैकुण्ठधामका दर्शन कराया था, उस वैकुण्ठका वर्णन कर रहे हैं,—

यत्र (वैकुण्ठे) रजः, तमः, तयोः मिश्रं (ताभ्यां युक्तं) सत्त्वं च [न प्रवर्त्तते, परन्तु विशुद्धमेव सत्त्वं प्रवर्त्तते], कालविक्रमः (नाशः च न प्रवर्त्तते), यत्र (वैकुण्ठे), माया न प्रवर्त्तते (नास्ति), अपरे (मायासम्बन्धिनः राग-लोभादयः) न [सन्ति इति] किमुत (किं वक्तव्यम्?) यत्र (वैकुण्ठे) सुरासुरार्चिताः (देव-दैत्यैः सर्वैः अपि पूजिताः) हरेः अनुव्रताः (पार्षदाः) [वर्त्तन्ते]।

श्लोक-भावानुवाद—वैकुण्ठमें रज-तमः और दोनोंसे मिश्रित सत्त्वगुण भी नहीं है, परन्तु वहाँ विशुद्ध-सत्त्व ही सदा विराजमान है। वहाँ कालका भी कोई विक्रम

नहीं है अर्थात् किसी भी वस्तुका नाश नहीं होता। वैकुण्ठमें जब मायाका भी प्रवेश नहीं है, तब मायासम्बन्धी राग-लोभादिके प्रवेशके विषयमें क्या कहें? वैकुण्ठमें देवताओं-दैत्यों सभीके पूजित श्रीकृष्णके पार्षद वास करते हैं॥ 270॥

मायाकी दो रूपोंमें दो प्रकारकी वृत्ति—(क) माया अथवा प्रकृति और (ख) प्रधानका कार्य :—

मायार ये दुइ वृत्ति—'माया' आर 'प्रधान'।
'माया' निमित्तहेतु, 'प्रधान' विश्वेर उपादान॥ 271॥

अनुवाद—मायाकी दो प्रकारकी वृत्ति है—एक 'माया' और दूसरी 'प्रधान'। माया जगत्का निमित्त-कारण और 'प्रधान' विश्वका उपादान है॥ 271॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/58 संख्या देखें॥ 271॥

प्रकृतिके प्रति कारणोदशायीका ईक्षण :—

सेइ पुरुष माया-पाने करे अवधान।
प्रकृति क्षोभित करि' करे वीर्येर आधान॥ 272॥

स्वयं शुद्ध होनेपर भी अशुद्धकी भाँति प्रतीत; सङ्कल्पमात्रसे ही प्रकृति-स्पर्श और प्रकृतिकी योनिमें लोमकूपोंमें रहनेवाले अनन्त चित्परमाणु जीवशक्तिको स्थापित करना :—

स्वाङ्ग-विशेषाभासरूपे प्रकृति-स्पर्शन।
जीव-रूप 'बीज' ताते कैला समर्पण॥ 273॥

अनुवाद—वे पुरुष (कारणब्धिशायी) मायाके प्रति दृष्टिपात करके उसे क्षोभित कर देते हैं और फिर उसमें वीर्यको (जीवरूपी बीजको) स्थापित करते हैं। कारणब्धिशायी मायाको साक्षात् स्पर्श नहीं करते हैं, अपितु अपने विशेष अङ्ग नेत्रोंके आभासके द्वारा (ईक्षणके द्वारा) ही प्रकृतिका स्पर्श करते हैं। इस प्रकार वे क्षुब्ध प्रकृतिमें अपने विभिन्नांश जीवरूपी 'बीज'को स्थापित करते हैं॥ 272-273॥

अनुभाष्य—ब्रह्मसंहितामें पाँचवें अध्यायके 10-13 श्लोक देखें॥ 272-273॥

जीव और उसके भोगोंके सत्ताइस तत्त्वोंकी उत्पत्तिका इतिहास; प्रकृतिका आदि परिणाम और विश्वाङ्कुर चित्तरूपी 'महत्तत्त्व'की उत्पत्तिका कारण :—

श्रीमद्भागवत (3/26/19)में—

दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्।
आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम्॥ 274॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 274॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वे श्रेष्ठ पुरुष अनादिकालसे अपनी त्रिगुणमयी मायाके तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न करके प्रकृतिमें जीवोंको स्थापित करते हैं। तब माया हिरण्मय महत्तत्त्वको जन्म देती है॥ 274॥

अनुभाष्य—देवहूतिके द्वारा पुरुष और प्रकृतिके लक्षणोंकी जिज्ञासा करनेपर भगवान् कपिलदेवने उनको महदादि अट्ठाईस-तत्त्वोंका वर्णन करके उनके अधीश्वर-तत्त्व पुरुषावतार भगवान् और उनसे जीवोंके प्रकट होनेका वर्णन कर रहे हैं—

दैवात् (कालात्) क्षुभितधर्मिण्यां (क्षुभिताः धर्माः गुणाः यस्यां तस्यां) [स्वकीयायां] योनौ (अभिव्यक्तिस्थाने प्रकृतौ) परः पुमान् (परमपुरुषः भगवान् कारणार्णवशायी) वीर्यं (जीवशक्तिम्) आधत्त (आहितवान्); सा (प्रकृतिः) हिरण्मयं (प्रकाशबहुलं) महत्तत्त्वम् असूत।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 274॥

जीवशक्तिके प्रकट होनेका इतिहास :—

श्रीमद्भागवत (3/5/26)में—

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमयामधोक्षजः।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान्॥ 275॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 275॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कालवृत्तिके द्वारा (अर्थात् समय आनेपर) गुणमयी (क्षुभिता) मायामें वीर्यवान् (चिद्-शक्तिमान्) अधोक्षजके (महावैकुण्ठनाथके) आत्मांशस्वरूप पुरुष अर्थात् प्रकृतिके अधिष्ठाता आदि-पुरुषके (कारणाब्धिशायीके) द्वारा वीर्य (चित्परमाणुपुञ्ज जीवशक्ति)को स्थापित किया गया था॥ 275॥

अनुभाष्य—महात्मा विदुरके द्वारा श्रीमैत्रेय ऋषिसे श्रीहरिके पुरुषावतार-लीला-कथाकी जिज्ञासा करनेपर श्रीमैत्रेय ऋषि पुरुषावतारकी मायाके द्वारा विश्वकी सृष्टि करनेका वर्णन करनेके बाद उनसे जीवसर्गके उत्पन्न होनेका वर्णन कर रहे हैं,—

वीर्यवान् (चिच्छक्तिमान्) अधोक्षजः (अतीन्द्रियः महावैकुण्ठनाथः भगवान्) आत्मभूतेन (स्वांशेन) पुरुषेण (प्रकृत्यधिष्ठातृरूपेण कारणब्धिशायिना) कालवृत्त्या (निमित्तभूतया कालशक्तया) गुणमयां (क्षुभितगुणायां) मायायां वीर्यं (चिदाभास-जीवाख्य-शक्तिम्) आधत्त (आदधौ)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 275॥

ब्रह्माण्डके उपादान-समूह—महत्तत्त्वसे 'तीन-अहङ्कार' :—

तबे महत्तत्त्व हैते त्रिविध अहङ्कार।
याहा हैते देवतेन्द्रियभूतेर प्रचार॥ 276॥

अनुवाद—प्रकृतिकी परिणतिसे प्रथम-तत्त्व महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। फिर महत्तत्वसे तीन प्रकारके अहङ्कारोंकी उत्पत्ति होती है। पुनः इन्हीं अहङ्कारोंसे देवता, इन्द्रियाँ और पञ्चभूत प्रकाशित होते हैं॥ 276॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'त्रिविध अहङ्कार'*—वैकारिक, तैजस और तामस॥ 276॥

अनुभाष्य—चित्तरूपमें महत्तत्त्वका अवस्थान है, जिसके अधिष्ठातृदेव—वासुदेव हैं (भाः 3/26/21); महत्तत्त्वके विकारसे (1) वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार उत्पन्न होता है, उससे ग्यारहवीं इन्द्रिय अर्थात् मन उत्पन्न होता है, जिसके अधिष्ठातृदेव—अनिरुद्ध हैं (भाः 3/26/27-28); (2) तैजस अर्थात् राजस अहङ्कारसे 'बुद्धि' (जिसके अधिष्ठातृदेव—प्रद्युम्न) हैं एवं इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं (भाः 3/26/30-31); (3) तामस अहङ्कारसे शब्द-तन्मात्रा और उससे आकाश तथा श्रवणेन्द्रिय आदिकी उत्पत्ति होती है (भाः 3/26/32); इन तीन प्रकारके अहङ्कारोंके अधिष्ठातृदेव-सङ्कर्षण हैं (भाः 3/26/25)।

सांख्यकारिकामें—

"सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात्—भूतादेस्तन्मात्रं तामसस्तैजसादुभयम्।"

[अर्थात् "वैकारिक अहङ्कारसे सात्त्विक अहङ्कार-रूप ग्यारह इन्द्रियाँ प्रकाशित होती हैं; तैजस अहङ्कारसे भूतादिकी तन्मात्राएँ और तामस अहङ्कार, दोनों ही प्रकाशित होते हैं॥ 276॥

अट्ठाईस तत्त्वोंसे युक्त अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि :—

सर्वतत्त्व मिलि' सृजिल ब्रह्माण्डेर गण।
अनन्त ब्रह्माण्ड, तार नाहिक गणन॥ 277॥

अनुवाद—सभी तत्त्वोंको मिलाकर भगवान्ने ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि की। इन ब्रह्माण्डोंकी संख्या अनन्त है, उनकी गिनती नहीं की जा सकती॥ 277॥

ये ही महत्तत्त्वकी सृष्टि करनेवाले महाविष्णु; इनके लोमकूपोंमें ही अनन्त चित्परमाणु-जीव :—

इँहो महत्स्रष्टा पुरुष—'महाविष्णु' नाम।
अनन्त ब्रह्माण्ड ताँर लोमकूपे धाम॥ 278॥

अनुवाद—ये महत्तत्त्वके (समस्त मायाशक्तिके) सृष्टा प्रथम पुरुषावतार हैं, इनका नाम 'महाविष्णु' है। अनन्त ब्रह्माण्ड उनके रोमकूपोंमें वास करते हैं॥ 278॥

अनुभाष्य—महत्तत्त्वके सृष्टिकर्त्ता आदिपुरुषावतारका नाम 'महाविष्णु है। महाविष्णुके रोमकूपोंमें अनन्त ब्रह्माण्ड आश्रित हैं॥ 278॥

उनके श्वास छोड़नेसे ब्रह्माण्डोंकी 'सृष्टि', सांस भीतर लेनेसे 'प्रलय' :—

गवाक्षे उड़िया यैछे रेणु आसे याय।
पुरुष-निश्वास-सह ब्रह्माण्ड बाहिराय॥ 279॥

पुनरपि निश्वास-सह याय अभ्यन्तर।
अनन्त ऐश्वर्य ताँर, सब—माया-पार॥ 280॥

अनुवाद—जिस प्रकार झरोखेमेंसे उड़कर धूलिकण आते-जाते हैं, उसी प्रकार महाविष्णुके श्वास छोड़नेके साथ ब्रह्माण्ड बाहर निकलते हैं और पुनः उनके श्वास भीतर लेनेके साथ भीतर चले जाते हैं। महाविष्णुका ऐश्वर्य अनन्त है और यह सब मायातीत है॥ 279-280॥

ब्रह्मसंहिता (5/48)में—

यस्यैक-निश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥281॥

अनुवाद—ब्रह्माण्डनाथ अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश, जिनके रोमकूपोंसे जन्म ग्रहण करते हैं और उनके निःश्वास-काल तक अवस्थित रहते हैं, वे महाविष्णु जिनकी कला हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥281॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/71 संख्या देखें॥281॥

समस्त जीवशक्ति और प्रकृतिके कारणरूपमें
वे ही अनन्तकोटि धामोंके मूलकर्त्ता :—

समस्त ब्रह्माण्डगणेर ईंहो अन्तर्यामी।
कारणाब्धिशायी—सब जगतेर स्वामी॥282॥

अनुवाद—महाविष्णु ही समस्त ब्रह्माण्डोंके अन्तर्यामी हैं। कारणसमुद्रमें शयन करनेवाले वे ही समस्त जगत्के स्वामी हैं॥282॥

(2) प्रद्युम्नरूपी द्वितीय-पुरुषावतार गर्भोदशायीका वर्णन :—

एइत कहिलुँ प्रथम पुरुषेर तत्त्व।
द्वितीय पुरुषेर एबे शुनह महत्त्व॥283॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने प्रथम पुरुष महाविष्णुके तत्त्वका वर्णन किया। अब तुम द्वितीय पुरुषकी महिमाको श्रवण करो॥283॥

कारणोदशायी ही ब्रह्माण्डोंमें स्थित गर्भोदशायी :—

सेइ पुरुष अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड सृजिया।
एकैक-मूर्त्ये प्रवेशिला बहुमूर्त्ति हञा॥284॥
प्रवेश करिया देखे सब—अन्धकार।
रहिते नाहिक स्थान, करिला विचार॥285॥

अनुवाद—असंख्य ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करके प्रथम पुरुष महाविष्णुने अनेक रूप धारण किये और एक-एक रूपमें (गर्भोदशायी रूपमें) समस्त ब्रह्माण्डोंमें प्रवेश किया। समस्त ब्रह्माण्डोंमें प्रवेश करके उन्होंने देखा कि वहाँ तो सब ओर अन्धकार है और रहनेका कोई स्थान नहीं है। तब वे विचार करने लगे॥284-285॥

गर्भसमुद्र-प्राकट्य, वहाँ वैकुण्ठमें शेषशय्यापर शयन :—

निजाङ्ग-स्वेदजले ब्रह्माण्डार्द्ध भरिल।
सेइ जले शेषशय्याय शयन करिल॥286॥

अनुवाद—तब उन गर्भोदशायीने अपने पसीनेके जलसे ब्रह्माण्डके आधे भागको भर दिया। फिर उस जलमें वे शेष-शय्यापर लेट गये॥286॥

अन्तर्यामी गर्भोदशायीसे ही गुणावतारोंका प्राकट्य,—
(क) जगत्स्रष्टा ब्रह्माकी उत्पत्ति :—

ताँर नाभिपद्म हैते उठिल एक पद्म।
सेइ पद्मे हइल ब्रह्मार जन्म-सद्म॥287॥
सेइ पद्मनाले हइल चौद्दभुवन।
तेँहो 'ब्रह्मा' हञा सृष्टि करिला सृजन॥288॥

अनुवाद—उन गर्भोदशायीके नाभिकमलसे एक कमल उत्पन्न हुआ और वह कमल ही ब्रह्माका जन्मस्थान बना। उसी कमलकी नालमें ही चौदह भुवन उत्पन्न हुए। तब उन गर्भोदशायीने ही 'ब्रह्मा' बनकर सृष्टिकी रचना की॥287-288॥

अनुभाष्य—*'सद्म'*—गृह, निकेतन, आवास॥287॥

(ख) जगत्पालक विष्णुका प्राकट्य; वे सत्त्वके अधिष्ठातृ
देवता होनेपर भी स्वयं गुणमायासे अतीत :—

'विष्णु'-रूप हञा करे जगत् पालने।
गुणातीत विष्णु—स्पर्श नाहि माया-सने॥289॥

अनुवाद—वे द्वितीय पुरुष ही विष्णुरूप होकर प्राकृत जगत्का पालन करते हैं। विष्णु मायाके गुणोंसे

परे हैं, इसलिये माया उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकती॥ 289॥

अनुभाष्य—ब्रह्मा और शिवकी भाँति विष्णुमाया विष्णुको आवृत नहीं कर सकती। विष्णु गुणातीत वस्तु हैं, इसलिये मायिक गुण उन्हें स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं हैं। गुणावतार ब्रह्मा और शिव—मायाके अधीन हैं, किन्तु विष्णु उनके जैसे नहीं हैं; क्योंकि "मायाधीश-मायावश ईश्वरे-जीवे भेद।" अर्थात् मायाधीश ईश्वर और मायावश्य जीवमें भेद है॥ 289॥

(ग) जगत्संहारक रुद्रकी उत्पत्ति :—

'रुद्र'-रूप धरि' करे जगत् संहार।
सृष्टि, स्थिति, प्रलय हय इच्छाय याँहार॥ 290॥

अनुवाद—वे द्वितीय पुरुष ही रुद्रका रूप धारण करके जगत्का संहार करते हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलय—ये तीनों ही उन द्वितीय पुरुषकी इच्छाके अनुसार होते हैं॥ 290॥

तीन गुणावतारोंमें तीन प्रकारके अधिकार-भाव देना :—

ब्रह्मा, विष्णु, शिव—ताँर गुण-अवतार।
सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर तिनेर अधिकार॥ 291॥

अनुवाद—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों द्वितीय पुरुषके गुणावतार हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयपर क्रमशः इन तीनोंका अधिकार है॥ 291॥

हिरण्यगर्भ अथवा समस्त जीवोंके अन्तर्यामी ये गर्भोदशायी ही ऋकसूक्तके द्वारा स्तवनीय :—

हिरण्यगर्भ-अन्तर्यामी—गर्भोदकशायी।
'सहस्रशीर्षादि' करि' वेदे याँरे गाइ॥ 292॥

अनुवाद—गर्भोदकशायी विष्णु इस ब्रह्माण्डमें हिरण्यगर्भके नामसे कहे जाते हैं और वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी हैं। वेद उनको 'सहस्रशीर्ष आदि' कहकर उनकी स्तुति करते हैं॥ 292॥

अनुभाष्य—ऋक्सूक्त—"सहस्रशीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" [अर्थात् "उन पुरुषके हजारों सिर, नेत्र, चरणादि हैं।"]॥ 292॥

वे भी स्वयं मायाधीश तत्त्व :—

एइ त' द्वितीय-पुरुष—ब्रह्माण्डेर ईश्वर।
मायार 'आश्रय' हय, तबु माया-पार॥ 293॥

अनुवाद—ये द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायी ही ब्रह्माण्डके ईश्वर हैं। यद्यपि ये मायाके आश्रय हैं, तथापि ये मायाके स्पर्शसे परे हैं॥ 293॥

(3) अनिरुद्धरूपी तृतीय-पुरुषावतार क्षीरोदशायी अथवा गुणावतार विष्णु :—

तृतीय-पुरुष विष्णु—'गुण-अवतार'।
दुइ अवतार-भितर गणना ताँहार॥ 294॥

अनुवाद—विष्णुके तृतीय पुरुषावतार क्षीरोदकशायी विष्णु हैं। ये जगत् पालनके लिये सत्त्वगुणके नियामकके रूपमें भी अवतीर्ण होते हैं, इसलिये इन्हें गुणावतार भी कहते हैं। इस प्रकार क्षीरोदकशायी विष्णु पुरुषावतार और गुणावतार—इन दोनों अवतारोंमें गिने जाते हैं॥ 294॥

वे ही सभी भूतोंमें अवस्थित अर्थात् विराट अथवा व्यष्टिजीवोंके अन्तर्यामी और पालक :—

विराट् व्यष्टि-जीवेर तेँहो अन्तर्यामी।
क्षीरोदकशायी, तेँहो—पालनकर्त्ता, स्वामी॥ 295॥

अनुवाद—क्षीरोदकशायी ही भगवान्के विराट रूपमें हैं और सभी जीवोंके अन्तर्यामी हैं। वे सभी जीवोंका पालन करनेवाले जगत्के स्वामी हैं॥ 295॥

(ख) लीलावतार-वर्णन :—

पुरुषावतारेर एइ कैलुँ निरूपण।
लीलावतार एबे शुन, सनातन॥ 296॥

अनुवाद—हे सनातन, अब तक मैंने पुरुषावतारोंका निरूपण किया है। अब तुम लीलावतारोंके विषयमें सुनो॥ 296॥

असंख्य लीलावतारोंमें पच्चीस मूर्तियाँ ही मुख्य :—

लीलावतार कृष्णेर ना याय गणन।
प्रधान करिया कहि दिग्दरशन॥ 297॥

मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन।
वराहादि—लेखा याँर ना याय गणन॥ 298॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके लीलावतारोंकी गणना नहीं की जा सकती। उनमेंसे प्रधान-प्रधानके विषयमें कहकर उनका दिग्दर्शन मात्र करूँगा। मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन, वराहादि अनेक लीलावतार हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती॥ 297-298॥

शास्त्र प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (10/2/40)में—

मत्स्याश्व-कच्छप-नृसिंह-वराह-हंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च तथाधुनेश
भारं भुवो हर यदुत्तम वन्दनं ते॥ 299॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 299॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आप मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, दाशरथि (राम), परशुराम, वामनादि रूपोंमें विविध अवतार लेकर हम लोगोंकी और तीनों लोकोंका पालन करते हैं; हे यदुत्तम! हम आपकी वन्दना करते हैं। हे ईश्वर! अब इस पृथ्वीका भार हरण कीजिये॥ 299॥

अनुभाष्य—देवताओं सहित ब्रह्मा असुरोंके संहारके लिये कंसके कारागारमें स्थित देवकीके गर्भमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं,—

हे ईश, त्वं मत्स्याश्वकच्छपवराहनृसिंह-हंसराजन्यविप्रविबुधेषु (मत्स्य-हयग्रीव-कूर्म-वराह-नृसिंह-हंस-दाशरथि-परशुराम-वामनादिषु) [कलारूपेण] कृतावतारः सन् (रूपाणि प्रकाश्य अवतारान् प्रकटयन्, अवतीर्णः सन्) नः (अस्मान् देवान्) त्रिभुवनं (भूर्भुवःस्वरिति स्वर्गमर्त्त्यपातालान् वा लोकत्रयान्) च (अन्यदा यथा) पासि (रक्षयसि), तथा अधुना [अपि] भुवः (पृथिव्याः) भारम् (अधर्मं) हर (नाशय, अस्मान् पाहीत्यर्थः); (अतः) हे यदुत्तम, (यदुकुलश्रेष्ठ,) ते (तुभ्यं) वन्दनं [कूर्मः इति वयं सर्वे त्वां शिरोभिः प्रणमामः]।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 299॥

(ग) तीन गुणावतारोंका वर्णन :—

लीलावतारेर कैलुँ दिग्दरशन।
गुणावतारेर एबे शुन विवरण॥ 300॥

अनुवाद—मैंने लीलावतारोंका दिग्दर्शन किया है। अब तुम गुणावतारोंका विवरण सुनो॥ 300॥

तीनजन—तीन कार्योंको करनेवाले :—

ब्रह्मा, विष्णु, शिव,—तिन गुण-अवतार।
त्रिगुण अङ्गीकरि' करे सृष्ट्यादि-व्यवहार॥ 301॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 301॥

अनुभाष्य—रजः, सत्त्व और तमोगुण—इन तीन गुणोंको अङ्गीकार करके अर्थात् स्वीकार करके जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयादि कार्यके उद्देश्यसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव,—ये तीन गुणावतार हैं॥ 301॥

(1) रजोगुणमें ब्रह्मा,—कभी तो महत्तम जीवका वैराज-ब्रह्मा होना, कभी तो उस भावमें गर्भोदकशायीका ही हिरण्यगर्भ-ब्रह्मा होना :—

भक्तिमिश्रकृतपुण्ये कोन जीवोत्तम।
रजोगुणे विभावित करि' ताँर मन॥ 302॥
गर्भोदकशायीद्वारा शक्ति सञ्चारि'।
व्यष्टि सृष्टि करे कृष्ण ब्रह्मा-रूप धरि'॥ 303॥

अनुवाद—भक्तिमिश्रित-पुण्यके फलसे किसी उत्तम जीवका मन रजोगुणसे विभावित होता है, तब उस भक्तमें गर्भोदकशायी विष्णु अपनी शक्ति सञ्चार करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णके एक अवतार ब्रह्मा होकर व्यष्टि सृष्टि करते हैं॥ 302-303॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वे गर्भोदकशायी पुरुषावतार विष्णु—सत्त्व, रजः और तमोगुणका आश्रय करके विष्णु, ब्रह्मा और शिव—ये तीन गुणावतार प्रकाशित करते हैं। उनमेंसे किसी उत्तम जीवको भक्तिमिश्रित-पुण्यके फलसे रजोगुणमें विभावित करके और उसमें अपनी शक्ति सञ्चार करके 'ब्रह्मारूप'में व्यष्टि-सृष्टि करते हैं॥ 302-303॥

ब्रह्मसंहिता (5/49)में :—

भास्वान् यथाश्मसकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्त्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 304॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 304॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सूर्य जिस प्रकार भिन्न-भिन्न पत्थरोंमें (सूर्यकान्त-मणियोंमें) अपने तेजको कुछ परिमाणमें प्रकट करते हैं, उसी प्रकार जो आदिपुरुष गोविन्द किसी जीवमें अपनी शक्ति स्थापित करके 'ब्रह्मा' होकर जगत्की व्यष्टि-सृष्टिका विधान करते हैं, उनका मैं भजन करता हूँ॥ 304॥

अनुभाष्य—

यथा भास्वान् (सूर्यः) निजेषु (नित्य-स्वीयत्वेन विख्यातेषु) अश्मसकलेषु अपि (सूर्यकान्ताख्येषु) स्वीयं कियत्तेजः (किञ्चित् प्रभावं) प्रकटयति, तद्वत् यः एषः पुरुषः (गर्भोदशायी) अत्र (ब्रह्माण्डे) ब्रह्मा (सन्) जगदण्डविधानकर्त्ता (ब्रह्माण्डस्य व्यष्टिसृष्टिकर्त्ता,) तं आदिपुरुषं गोविन्दम् अहं भजामि।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 304॥

कोन कल्पे यदि योग्य जीव नाहि पाय।
आपने ईश्वर तबे अंशे 'ब्रह्मा' हय॥ 305॥

अनुवाद—किसी कल्पमें यदि कोई ऐसा योग्य जीव नहीं मिलता, तब गर्भोदशायी विष्णु स्वयं अपने अंशसे 'ब्रह्मा' बन जाते हैं॥ 305॥

अनुभाष्य— *'कल्प'*—ब्रह्माकी आयुका काल अर्थात् ब्रह्माकी सौ वर्षकी स्थितिका काल। ब्रह्माके एक दिनमें अर्थात् हजार चतुर्युगोंमें 432 करोड़ सौरवर्षोंमें मनुष्यका एक 'कल्प' अर्थात् ब्रह्मदिन होता है। वैसे 360 दिनोंमें एक ब्रह्मवर्ष होता है, वैसे सौ वर्ष ही ब्रह्माकी आयुका काल है॥ 305॥

श्रीमद्भागवत (10/68/37)में :—

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालै-
र्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासित-तीर्थतीर्थम्।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व॥ 306॥

अनुवाद—(श्रीबलदेव प्रभुने कहा)—सभी लोकपाल समस्त तीर्थोंकी तीर्थस्वरूप जिन कृष्णकी चरणधूलिको अपने मस्तकपर धारण करते हैं और ब्रह्मा, शिव, मैं बलदेव एवं लक्ष्मी—हम कोई उनके अंश अथवा अंशके अंशरूपमें जिनकी चरणधूलिको चिरकालसे धारण कर रहे हैं, उनके लिये साधारण राजसिंहासनका क्या महत्व है?॥ 306॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/141 संख्या देखें॥ 306॥

(2) तमोगुणमें रुद्र; मायासङ्गिरूपमें
गर्भोदशायीका ही रुद्र बनना :—

निजांश-कलाय कृष्ण तमो-गुण अङ्गीकारे।
संहारार्थे माया-सङ्गे रुद्र-रूप धरे॥ 307॥

श्रीकृष्णके स्वांशरूपमें वस्तुतः अभिन्नांश
ईश्वर-कोटि होनेपर भी रुद्र—मायासङ्गके विकारसे
जगत्के संहारकके रूपमें विभिन्नांश जीव :—

मायासङ्ग-विकारे रुद्र—भिन्नाभिन्न रूप।
जीवतत्त्व-हय, नहे कृष्णेर 'स्वरूप'॥ 308॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 307-308॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्ण अपने अंशकी कलासे तमोगुण अङ्गीकार करके संहार करनेके उद्देश्यसे मायाके सङ्गमें 'रुद्र'रूप धारण करते हैं। मायासङ्गके विकारसे रुद्र-भेदाभेद प्रकाशरूप तत्त्व हैं; इसलिये वे जीवतत्त्वमें गिने जाते हैं, वे श्रीकृष्णके 'स्वरूप' नहीं हैं॥ 307-308॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण अपने सङ्कर्षणरूपके अंश कारणार्णवशायीकी कला गर्भोदकशायी महाविष्णु बनकर तमोगुणको ग्रहण करके जगत्के संहारके लिये गुणावतार

रुद्ररूपको धारण करते हैं। विष्णुमें सत्त्वगुणका अधिष्ठान स्वीकृत होनेपर भी उनकी मायाकी अधीनता सम्भवपर नहीं है। जहाँ विष्णुत्वका अभाव है, वहाँ शिवत्व अथवा ब्रह्मत्व है; उनमें मायाका संयोग है। शिवत्व और ब्रह्मत्व—विष्णुमायाके वशीभूत हैं॥ 307॥

रुद्रके भेदाभेद-प्रकाश होनेकी उपमा—
दूध और दहीका दृष्टान्त :—

दुग्ध येन अम्लयोगे दधिरूप धरे।
दुग्धान्तर वस्तु नहे, दुग्ध हैते नारे॥ 309॥

अनुवाद—दूध जैसे अम्लके संयोगसे दही बन जाता है और दही दूधसे पृथक् स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, परन्तु दही दूध भी नहीं है अर्थात् दूधके स्थानपर उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता॥ 309॥

अनुभाष्य—'रुद्र'—विष्णुके साथ भेदाभेदतत्त्व हैं; मायाके सङ्गसे विकार प्राप्त करनेसे विष्णुसे 'भिन्न' हैं और स्वयं वस्तुतः विष्णुके साथ अभिन्न हैं। *'विष्णु'*—विष्णुके साथ कभी भी भिन्न नहीं हैं, किन्तु मायाके वशके कारण शिव और ब्रह्मादि—विष्णुसे भिन्न हैं। विष्णु कभी भी विकारी नहीं है। जहाँ ईश्वरत्वमें मायिक विकार दिखलायी देता है, वहाँ विष्णुसे भिन्नरूप—गुणावतार कहलानेवाले शिव अथवा ब्रह्मा हैं। इसलिये रुद्र विकारयुक्त भेदाभेदप्रकाश जीवतत्त्व हैं, वे स्वरूपतः श्रीकृष्णस्वरूप विष्णुतत्त्व नहीं, परन्तु वैष्णवतत्त्व हैं। ईश्वररूपी दूध मायारूपी अम्लके संयोगसे दूधकी अवस्थासे दूधके विकार दहीके रूपमें परिवर्तित होनेपर यह दही दूधसे उत्पन्न होनेपर भी उसे कभी भी दूध नहीं कहा जा सकता॥ 308-309॥

ब्रह्मसंहिता (5/45)में :—

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्
संजायते न तु ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्-
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 310॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 310॥

अमृतप्रवाह भाष्य—विशेष विकारके (अम्लके) संयोगसे दूध जिस प्रकार दही बन जाता है, विकारके अतिरिक्त उसमें और कोई कारण नहीं है, उसी प्रकार जो आदिपुरुष गोविन्द कार्यवशतः शम्भुता ग्रहण करते हैं, मैं उनका भजन करता हूँ॥ 310॥

अनुभाष्य—

क्षीरं (दुग्धं) यथा विकारविशेषयोगात् (अम्लसंयोगेन) दधि संजायते (दधिरूपेण परिणमते), ततः हेतोः (क्षीरात् अपि तु) न पृथक् (भिन्नम्) अस्ति; तथा कार्यात् (प्राकृत-विश्वसंहारार्थं गुणमायासङ्गज-विकारात्) यः पुरुषः (गर्भोदकशायी विष्णुः) शम्भुतां (रुद्रत्वम्) अपि समुपैति (गृह्णाति) तम् आदिपुरुषं गोविन्दम् अहं भजे।

श्लोक-भावानुवाद—दूध जिस प्रकार अम्लके संयोगसे दही बन जाता है, तथापि दही दूधसे भिन्न भी नहीं है, उसी प्रकार प्राकृत विश्वके संहारके लिये मायाके सङ्गरूप विकारके द्वारा जो गर्भोदकशायी विष्णु शम्भुता (रुद्रत्व) ग्रहण करते हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्दका भजन करता हूँ॥ 310॥

रुद्र और विष्णुमें भेद :—

'शिव'—मायाशक्तिसङ्गी, तमोगुणावेश।
मायातीत, गुणातीत 'विष्णु'—परमेश॥ 311॥

अनुवाद—शिव मायाशक्तिके सङ्गी हैं और उनमें तमोगुणका आवेश होता है। किन्तु विष्णु मायातीत और गुणातीत होनेके कारण परमेश्वर हैं॥ 311॥

अनुभाष्य—*'भगवान् विष्णु'*—त्रिगुणातीत और अपनी मायाके द्वारा कभी भी परास्त न होनेवाले स्वतन्त्र परमेश्वर वस्तु हैं। शिव स्वरूपतः भागवत होनेपर भी त्रिगुणमेंसे एक तमोगुणके अधीश्वर होकर मायासे सम्बन्धयुक्त और मायाशक्तिके सङ्गबलसे उससे जुड़े हुए हैं। भगवान् विष्णुमें मायाका अस्तित्व नहीं है; मायाके अस्तित्वकी अनुभूतिमें ही शिवकी सत्ता है, इसलिये रुद्र विष्णुतत्त्व नहीं होकर मायासे घनिष्टरूपसे

सम्बन्धित विशेष तत्त्व हैं। अपनी भागवत-सत्तानुभूतिमें शिवकी मायापति अथवा मायाभोक्ता माननेवाली बुद्धिके दूर होनेपर ही उनका हरिजन होनेका गुण प्रकट होता है॥ 311॥

व्यवहारिक रूपसे रुद्र सदैव गुणमायासे मिलित :—
श्रीमद्भागवत (10/88/3, 5)में—

शिवः शक्तियुक्तः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा॥ 312॥

विष्णुका गुण-मायासे अतीत और अधोक्षज होना :—

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत्॥ 313॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 312-313॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वैकारिक, तैजस और तामस,—इन तीन प्रकारके अहङ्कारोंके द्वारा आच्छादित और सदा मायाशक्तियुक्त तत्त्व ही 'शिव' हैं। 'श्रीहरि'—प्रकृतिसे अतीत साक्षात् निर्गुण पुरुष हैं; वे सभी वस्तुओंको भीतर और बाहरसे देखनेवाले हैं, इसलिये वे सबके साक्षी हैं; उनका भजन करनेसे जीव निर्गुण होता है॥ 312-313॥

अनुभाष्य—रुद्र और विष्णुके उपासकोंकी विरुद्ध गतिके विषयमें जिज्ञासा करनेपर परीक्षितके प्रति श्रीशुकदेवकी निम्नलिखित दो उक्तियाँ—

शिवः शश्वत् (नित्यं) शक्तियुतः (स्वेच्छा-गृहीत्या गुणसाम्यावस्थया मायाशक्त्या समन्वितः) वैकारिकः (सात्त्विकः) तैजसः (राजसः) तामसः च इति अहं (अहङ्कार-तत्त्वं)—त्रिधा (अन्योऽन्योपमर्द्देन तमसस्त्रैविध्यात्) त्रिलिङ्गः (गुणत्रयोपाधिविशिष्टः) गुणसंवृतः (प्रकटैश्च सद्भिः तैः गुणैः दूरतः संवृतः तदधिष्ठाता)।

हरिः हि (खलु) प्रकृते परः (न तु ब्रह्माशिवादिवत् प्राकृतगुणमिश्रः, अधोक्षजत्वात्) साक्षात् (अनावृतः) निर्गुणः (सङ्कल्पेनैव सत्त्वस्य प्रवर्त्तनात्) पुरुषः (पुरुषोत्तमः); सः (हरिः) सर्वदृक् (सर्वेषां ब्रह्मशिवादीनां दृक् मोक्षहेतुर्ज्ञानं यस्मात् सः, सर्वं पश्यतीति वा, अतः) उपद्रष्टा (सन्निधौ मुक्तान् पश्यति, मुक्तगम्यः, आदिसाक्षी वा अतः) तं (हरिं) भजन् निर्गुणो (स्वरूपस्थः) भवेत्।

श्लोक-भावानुवाद—शिव नित्य ही अपनी इच्छासे ग्रहण की गयी गुणसाम्यावस्थावाली मायाशक्तिसे युक्त हैं, वे सात्त्विक, राजस और तामस, इन तीन प्रकारके अहं-तत्त्वोंसे युक्त हैं। यह तमोगुण अन्यान्य गुणोंको दबाते हुए तीन प्रकारका होता है, इस प्रकार शिव त्रिगुण उपाधिसे विशिष्ट हैं और प्रकटरूपमें दिखनेवाले (सद्भिः) इन गुणोंसे दूर रहते हुए उनके अधिष्ठाता हैं (संवृतः)।

किन्तु भगवान् श्रीहरि प्रकृतिसे परे हैं (वे शिव-ब्रह्मादिकी भाँति प्राकृत गुणोंसे मिश्रित नहीं होते हैं, क्योंकि वे अधोक्षज हैं)। वे तमोगुणसे आवृत नहीं होनेके कारण साक्षात् हैं तथा सत्वगुणका सङ्कल्पमात्रसे प्रवर्तन करनेके कारण निर्गुण भी हैं। वे पुरुषोत्तम (पुरुष) हैं तथा ब्रह्मा-शिवादि सभीको मोक्षरूप ज्ञान देनेके कारण सर्वदृक् हैं अथवा सब कुछ देखनेवाले हैं। अपने निकट मुक्तजनोंके ऊपर भी अनुग्रह करनेके कारण वे मुक्तगम्य अथवा साक्षी हैं, अतः उपद्रष्टा कहलाते हैं। उन हरिका भजन करते हुए साधक (भक्त) निर्गुण (अपने स्वरूपमें स्थित) हो जाता है॥ 312-313॥

(3) सत्त्वगुणमें विष्णु गर्भोदशायीके ही विलास,
श्रीकृष्णकी कला :—

पालनार्थ स्वांश विष्णुरूपे अवतार।
सत्त्वगुण दृष्टान्त, ताते गुणमाया-पार॥ 314॥
स्वरूप—ऐश्वर्यपूर्ण, कृष्णसम प्राय।
कृष्ण अंशी, तेँहो अंश, वेदे हेन गाय॥ 315॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 314-315॥

अमृतप्रवाह भाष्य—[ब्रह्मा शक्त्यावेश होनेपर भी गुणावतार हैं। रुद्र भेदाभेद होनेपर भी गुणावतार हैं।] किन्तु विष्णु स्वांशरूपमें गुणावतार होनेपर भी उनके

शुद्धसत्त्वरूपी गुणके दर्शनसे उन्हें मायाके गुणोंके अतीत कहना होगा। विष्णु अंश हैं और श्रीकृष्ण उनके अंशी है, इसलिये श्रीकृष्णके जैसे विष्णु स्वरूप-ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं—[वेद इस प्रकार वर्णन करते हैं]॥ 314-315॥

दीपकका दृष्टान्त :—
ब्रह्मसंहिता (5/46)में—

दीपार्च्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 316॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 316॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दीपककी किरण जिस प्रकार दूसरे आधारमें पृथक् दीपककी भाँति कार्य करती हैं अर्थात् पहलेवाले दीपककी भाँति समान धर्मसे युक्त होती है, उसी प्रकार जो आदिपुरुष गोविन्द 'विष्णु' होकर प्रकाशित हो रहे हैं, उनका मैं भजन करता हूँ॥ 316॥

अनुभाष्य—

[यतः] हि दीपार्च्चिः (प्रदीपशिखा) एव दशान्तरं (महादीपात् क्रमपरम्परया अन्यदीपम्) अभ्युपेत्य विवृतहेतुसमानधर्मा (प्राकट्य-कारण-मूलदीपेन सह समधर्मयुक्तः अर्थात् ज्योतीरूपत्वांशे यथा तेन सह समः) दीपायते (भाति), तादृक एव यः पुरुषः हि विष्णुतया (गर्भोदशायिनः विलासरूप-क्षीरोदशायित्वेन) च विभाति (दिव्यति) तम् आदिपुरुषं गोविन्दम् अहं भजामि।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 316॥

ब्रह्मा और शिव—वश्य-तत्त्व और श्रीकृष्णसे
भिन्न-आकृति; विष्णु—ईश-तत्त्व और
श्रीकृष्णके समान आकृतिवाले :—

ब्रह्मा, शिव—आज्ञाकारी भक्त-अवतार।
पालनार्थे विष्णु—कृष्णेर स्वरूप-आकार॥ 317॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 317॥

अनुभाष्य—पालनशक्तिसे युक्त विष्णु श्रीकृष्णसे भिन्न वस्तु नहीं हैं; वे श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं, परन्तु ब्रह्मा अथवा शिव उनके आज्ञाकारी भक्तावतार दास हैं॥ 317॥

श्रीमद्भागवत (2/6/32)में :—

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्॥ 318॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 318॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ब्रह्माने कहा—हरिके द्वारा नियुक्त होनेपर ही मैं सृष्टि करता हूँ, उनकी आज्ञासे ही शिव नाश करते हैं, (अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था) तीन शक्तियोंको धारण करनेवाले वे हरि ही पुरुषरूपमें विश्वका पालन करते हैं॥ 318॥

अनुभाष्य—देवर्षि नारदके द्वारा अपने गुरु ब्रह्मासे उनके भी आराध्य सर्वश्रेष्ठ-तत्त्व परमात्मा श्रीहरिके सम्बन्धमें जाननेकी इच्छा करनेपर, ब्रह्मा उनको भगवान्के विश्वरूपका वर्णन करनेके बाद अद्वयज्ञान विष्णुके परमेश्वर होनेका वर्णन कर रहे हैं—

अहं (ब्रह्मा) तन्नियुक्तः (तेन प्रयोजितः सन् तस्य हरेः अनुज्ञया विश्वं) सृजामि; हरः (शिवः) तद्वशः (तन्नियुक्तः सन् तस्य हरेरनुज्ञया विश्वं) हरति (विनाशयति); त्रिशक्तिधृक् (त्रिशक्तिः त्रिगुण-मायाशक्तिः, अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा, तटस्था-शक्तिः वा, तां धरति यः सः ईश्वरः स्वयम् एव) पुरुषरूपेण (क्षीरोदशायि-विष्णुरूपेण) परिपाति (पालयति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 318॥

(घ) मन्वन्तरावतार वर्णन :—

मन्वन्तरावतार एबे, शुन सनातन।
असंख्य गणन ताँर, शुनह कारण॥ 319॥

अनुवाद—हे सनातन, अब मन्वन्तरावतारके विवरणको सुनो। वे असंख्य हैं, कोई उनकी गणना नहीं कर सकता। उनके प्रकट होनेके विषयमें सुनो॥ 319॥

अनुभाष्य—*'मन्वन्तरावतार'*—आदिलीला 2/97 संख्याका

अमृतप्रवाह भाष्य और आदिलीला 3/7-9 संख्याका अनुभाष्य तथा मध्यलीला 20/167 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 319॥

मन्वन्तरावतारका काल :—

ब्रह्मार एकदिने हय चौद्द मन्वन्तर।
ए चौद्द अवतार ताँहा करेन ईश्वर॥ 320॥

अनुवाद—ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं अर्थात् क्रमशः चौदह मनुओंका अधिकार काल होता है। इन चौदह मन्वन्तरोंमें भगवान् चौदह अवतार ग्रहण करते हैं॥ 320॥

संख्या-निर्देश :—

चौद्द एक दिने, मासे चारिशत बिश।
ब्रह्मार वत्सरे पञ्चसहस्र चल्लिश॥ 321॥

शतेक वत्सर हय 'जीवन' ब्रह्मार।
पञ्चलक्ष चारिसहस्र मन्वन्तरावतार॥ 322॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 321-322॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'मन्वन्तरावतार'*—ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं और उनमें चौदह अवतार होते हैं। ब्रह्माके एक मासमें चार सौ बीस और एक वर्ष (तीन सौ साठ दिनों)में पाँच हजार चालीस अवतार तथा ब्रह्माके जीवनमें पाँच लाख चालीस हजार मन्वन्तरावतार होते हैं॥ 321-322॥

कारणाब्धिशायीके सांस छोड़नेसे लेकर सांस भीतर लेने तक ही ब्रह्माका जीवन :—

अनन्त ब्रह्माण्डे ऐछे करह गणन।
महाविष्णु एकश्वासे ब्रह्मार जीवन॥ 323॥

अनुवाद—यह तो मैंने एक ब्रह्माण्डमें मन्वन्तर अवतारोंकी गणना बतलायी, इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डोंमें होनेवाले ऐसे अवतारोंकी गणनाकी कल्पना करो। कारणब्धिशायी महाविष्णुके एक सांस छोड़नेसे सांस ग्रहण करनेके समय तक ही ये ब्रह्मा और ब्रह्माण्ड रहते हैं॥ 323॥

महाविष्णुर निश्वासेर नाहिक पर्यन्त।
एक मन्वन्तरावतारेर देख लेखा अन्त॥ 324॥

अनुवाद—महाविष्णुके निश्वासोंकी कोई सीमा नहीं है। देखो, मन्वन्तरावतारोंके विषयमें बतलाना ही कितना कठिन है॥ 324॥

चौदह मन्वन्तरावतारोंके नाम :—

स्वायम्भुवे 'यज्ञ', स्वारोचिषे 'विभु' नाम।
उत्तमे 'सत्यसेन', तामसे 'हरि' अभिधान॥ 325॥

रैवते 'वैकुण्ठ', चाक्षुषे 'अजित', वैवस्वते 'वामन'।
सावर्ण्ये 'सार्वभौम', दक्षसावर्ण्ये 'ऋषभ' गणन॥ 326॥

ब्रह्मसावर्ण्ये 'विष्वक्सेन', 'धर्मसेतु' धर्मसावर्ण्ये।
रुद्रसावर्ण्ये 'सुधामा', 'योगेश्वर' देवसावर्ण्ये॥ 327॥

इन्द्रसावर्ण्ये 'बृहद्भानु' अभिधान।
एक चौद्द मन्वन्तरे चौद्द 'अवतार' नाम॥ 328॥

अनुवाद—चौदह मन्वन्तरोंमें चौदह अवतारोंके ये नाम हैं—स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'यज्ञ', स्वरोचिष मन्वन्तरमें 'विभु', उत्तम मन्वन्तरमें 'सत्यसेन', तामस मन्वन्तरमें 'हरि', रैवत मन्वन्तरमें 'वैकुण्ठ', चाक्षुष मन्वन्तरमें 'अजित', वैवस्वत मन्वन्तरमें 'वामन', सावर्ण्य मन्वन्तरमें 'सार्वभौम', दक्षसावर्ण्यमें 'ऋषभ', ब्रह्मसावर्ण्यमें 'विष्वक्सेन', धर्मसावर्ण्यमें 'धर्मसेतु', रुद्रसावर्ण्यमें 'सुधामा', देवसावर्ण्यमें 'योगेश्वर' और इन्द्रसावर्ण्यमें 'बृहद्भानु'॥ 325-328॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'स्वायम्भुवमें'*—स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें 'यज्ञ'-अवतार, स्वरोचिष-मन्वन्तरमें 'विभु' आदि चौदह मन्वन्तरोंमें चौदह अवतार हैं॥ 325॥

अनुभाष्य—मनुगण—जैसे (1) स्वायम्भुव,—स्वयम्भु ब्रह्माके पुत्र; (2) स्वारोचिष,—स्वरोचिः अथवा अग्निके पुत्र; (3) उत्तम—प्रियव्रतके पुत्र; (4) तामस—उत्तमके

भ्राता; (5) रैवत—तामसके सहोदर; (6) चाक्षुष—चक्षुके पुत्र; (7) वैवस्वत—विवस्वान् सूर्यके पुत्र; (8) सावर्णि—सूर्यके औरससे छायाके गर्भसे उत्पन्न पुत्र; (9) दक्षसावर्णि—वरुणके पुत्र; (10) ब्रह्मसावर्णि—उपश्लोकके पुत्र; (11-14) रुद्रसावर्णि (रुद्रके पुत्र), धर्मसावर्णि (रुचिके पुत्र), देवसावर्णि (सत्यसाहाके पुत्र) और इन्द्रसावर्णि (भूतिके पुत्र) हैं॥ 325-328॥

(ङ) युगावतार-वर्णन :—

युगावतार एबे शुन, सनातन।
सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि-युगेर गणन॥ 329॥

अनुवाद—हे सनातन, अब युगावतारोंके विषयमें श्रवण करो। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग—ये चार युग हैं॥ 329॥

चारों युगोंमें चार वर्णोंके अवतार :—

शुक्ल-रक्त-कृष्ण-पीत-क्रमे चारि वर्ण।
चारिवर्ण धरि' कृष्ण करेन युगधर्म॥ 330॥

अनुवाद—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलिमें क्रमशः शुक्ल (श्वेत), रक्त (लाल), कृष्ण (काला) और पीत (पीला) वर्ण धारण करके श्रीकृष्ण युगधर्मकी स्थापना करते हैं॥ 330॥

अनुभाष्य—सत्ययुगमें—शुक्लवर्ण युगावतार, त्रेतायुगमें—रक्तवर्ण युगावतार, द्वापरयुगमें—कृष्णवर्ण युगावतार और कलियुगमें—पीतवर्ण युगावतार; इन चार प्रकारके वर्णोंको धारण करके श्रीकृष्ण युगावतार-धर्मकी रक्षा करते हैं॥ 330॥

श्रीमद्भागवत (10/8/13)में :—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥ 331॥

अनुवाद—[गर्गाचार्यने श्रीनन्द महाराजसे कहा—] तुम्हारा यह बालक अन्य तीन युगोंमें शुक्ल, रक्त और पीतवर्ण धारण करता है। अभी द्वापर युगमें इसने कृष्णवर्ण धारण किया है॥ 331॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/36 संख्या देखें॥ 331॥

सत्यमें ब्रह्मचारी वेशमें शुक्लवर्णके चतुर्भुज भगवान् और त्रेतामें रक्तवर्णवाले चतुर्भुज भगवान् :—

सत्ययुगे ध्यान-कर्म कराय 'शुक्ल'-मूर्त्ति धरि'।
कर्द्दमके वर दिला येँहो कृपा करि'॥ 332॥

कृष्ण-'ध्यान' करे लोक ज्ञान-अधिकारी।
त्रेतार धर्म 'यज्ञ' कराय 'रक्त'-वर्ण धरि'॥ 333॥

अनुवाद—सत्ययुगमें भगवान् 'शुक्ल'-वर्ण धारण करके ध्यान-कर्मको संस्थापित करते हैं। उन्होंने ही कृपा करके कर्द्दम ऋषिको वर प्रदान किया था। ज्ञानके अधिकारी व्यक्ति सत्ययुगमें श्रीकृष्णका 'ध्यान' करते हैं। त्रेतायुगमें भगवान् 'रक्त'-वर्ण धारण करके त्रेताके युगधर्म 'यज्ञ'को स्थापित करते हैं॥ 332-333॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'कर्द्दम'*—प्रजापति, जिन्होंने मनुकी कन्या देवहूतिसे विवाह किया और जिनके पुत्र कपिलदेव हैं। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने शुक्ल-मूर्तिमें उन्हें दर्शन दिया था॥ 332॥

अनुभाष्य—(भाः 11/5/21)—

"कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलोवल्कलाम्बरः।
कृष्णाजिनोपवीताक्षाम् विभ्रद्दण्डं कमण्डलुम्॥"

[अर्थात् "सत्ययुगमें भगवान्के श्रीविग्रहका रङ्ग श्वेत होता है। उनकी चार भुजाएँ और सिरपर जटा होती है तथा वे वल्कलका ही वस्त्र पहनते हैं। वे काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं। उनका ब्रह्मचारी वेश होता है।"] भाः 3/21/16, 35, 51, 3/22/19, 3/23/23, 5/10/16 देखें। (भाः 11/5/24)—

"त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः।
हिरण्यकेशस्त्रयात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः॥"

[अर्थात् "त्रेतायुगमें भगवान्‌का श्रीविग्रह लाल रङ्गका होता है। उनके चार भुजाएँ होती हैं और कटिभागमें वे तीन मेखला धारण करते हैं। उनके केश सुनहले होते हैं और वे वेदप्रतिपादित यज्ञके रूपमें रहकर स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञ-पात्रोंको धारण किया करते हैं।"] भाः 11/5/26 श्लोक देखें॥ 332-333॥

द्वापरमें श्यामवर्ण द्विभुज भगवान् :—

'कृष्णपदार्चन' हय द्वापरेर धर्म।
'कृष्ण'-वर्णे कराय लोके कृष्णार्च्चन-कर्म॥ 334॥

अनुवाद—द्वापरयुगका धर्म श्रीकृष्णके चरणोंका अर्चन करना है। भगवान् द्वापरमें श्रीकृष्ण कृष्णवर्ण धारण करके लोगोंसे अपना अर्चन करवाते हैं॥ 334॥

श्रीमद्भागवत (11/5/27, 29)में :—

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥ 335॥

अनुवाद—द्वापरयुगमें भगवान् श्यामवर्ण, पीताम्बर और वंशी आदि निज-आयुधधारी, श्रीवत्सादि चिह्नोंसे युक्त—इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त होते हैं॥ 335॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/39 संख्या देखें। *'श्याम'*—अतसी-कुसुम-सङ्काश वर्ण अर्थात् अतसी-पुष्पके समान वर्ण। सभी द्वापरयुगोंमें स्वयंरूप श्रीकृष्णमूर्तिका अवतार नहीं होता। श्रीविष्णुपुराणमें, श्रीहरिवंशमें और महाभारत आदिमें कहा गया है कि श्रीकृष्णावतारके पूर्ववर्ती अन्यान्य द्वापरयुगोंमें भगवान् शुकपत्र-वर्ण अर्थात् हरा-वर्ण आदि ग्रहण करके अंशरूपमें अवतीर्ण हुए थे॥ 335॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः॥ 336॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 336॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भगवान् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको नमस्कार है॥ 336॥

अनुभाष्य—'किस युगमें किस वर्णको धारण करके किस विधिके द्वारा भगवान् पूजित होते हैं?'—विदेहराज निमिके इस प्रकार जिज्ञासा करनेपर नवयोगेन्द्रोंमेंसे एक करभाजन-ऋषि द्वापरयुगके अवतारका प्रणाम मन्त्र बतला रहे हैं—

[चतुर्व्यूहात्मकस्य भगवतः नामान्याह—] भगवते वासुदेवाय ते (तुभ्यं) नमः; सङ्कर्षणाय नमः प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय च तुभ्यं नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 336॥

एइ मन्त्रे द्वापरे करे कृष्णार्च्चन।
'कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन'—कलियुगेर धर्म॥ 337॥

अनुवाद—उपरोक्त मन्त्रके द्वारा द्वापरमें लोग श्रीकृष्णका अर्चन करते हैं। कलियुगका धर्म श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन है॥ 337॥

कलियुगमें पीतवर्ण नाम-प्रेम-प्रचारक द्विभुज भगवान् :—

'पीत'-वर्ण धरि' तबे कैला प्रवर्त्तन।
प्रेमभक्ति दिला लोके लञा भक्तगण॥ 338॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 338॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णने पीतवर्ण धारण करके कलियुगके धर्म श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तनका प्रवर्तन एवं भक्तोंके साथ लेकर लोगोंको श्रीकृष्ण-प्रेमभक्ति प्रदान की॥ 338॥

कलिमें स्वयं श्रीकृष्ण ही अवतारीके रूपमें अवतीर्ण :—

धर्म प्रवर्त्तन करे व्रजेन्द्रनन्दन।
प्रेमे गाय, नाचे लोक, करे सङ्कीर्त्तन॥ 339॥

अनुवाद—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही कलियुगके धर्मका प्रवर्तन करते हैं। वे प्रेमसे गाते और नृत्य करते हैं तथा सभी उनके साथ गाते हुए सङ्कीर्तन करते हैं॥ 339॥

श्रीमद्भागवत (11/5/32)में :—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥ 340॥

अनुवाद—जिनके मुखमें सदा श्रीकृष्ण-वर्ण अर्थात् श्रीकृष्णनाम और जिनकी अङ्गकान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर है, उन्हीं अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र और पार्षदोंसे परिवेष्टित महापुरुषकी बुद्धिमान् व्यक्ति सङ्कीर्तनप्राय यज्ञके द्वारा पूजा करते हैं॥ **340**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/51 संख्या देखें॥ **340**॥

कलियुग-धर्म नामकीर्तनका माहात्म्य :—

आर तिनयुगे ध्यानादिते येइ फल हय।
कलियुगे कृष्णनामे सेइ फल पाय॥ 341॥

अनुवाद—अन्य तीन युगोंमें ध्यानादिके द्वारा लोग जो फल प्राप्त करते हैं, कलियुगमें लोग श्रीकृष्णनामका कीर्तन करनेसे वही फल प्राप्त कर लेते हैं॥ **341**॥

कलियुगकी प्रशंसा :—

श्रीमद्भागवत (12/3/51-52)में—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥ 342॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥ 343॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **342-343**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे राजन्, दोषोंकी निधि कलिका एक महान् गुण है; कलियुगमें श्रीकृष्ण-कीर्तनसे ही जीव प्रगाढ़ बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करता है। सत्ययुगमें विष्णुका ध्यान करके, त्रेतायुगमें यज्ञके द्वारा याजन करके और द्वापरयुगमें अर्चनादि करके जो फल प्राप्त होता है, कलिकालमें हरिकीर्तनसे वह सब फल प्राप्त होता है॥ **342-343**॥

अनुभाष्य—परीक्षितके द्वारा पापमय कलियुगमें मनुष्योंके धर्म और अनर्थोंके नाशके उपायकी जिज्ञासा करनेपर श्रीशुकदेवने सत्य, त्रेता और द्वापर युगके धर्मका वर्णन एवं कलियुगके असंख्य दोष बतलानेके बाद अध्यायके अन्तमें उसके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं—

हे राजन्, दोषनिधेः (दोषाणां आधारस्य अपि) कलेः (कलियुगस्य) एकः महान् गुणः अस्ति; हि (यतः) कृष्णस्य कीर्त्तनात् (श्रीहरेः तदीयानां च नामरूपगुणलीलानुवादात्) एव मुक्तसङ्गः (अन्याभिलाषवर्जितः ज्ञानकर्माद्यनावृतः च सन्) परं (पञ्चम्-पुरुषार्थं कृष्णप्रेम) व्रजेत (लभेत्)। कृते (सत्ययुगे) विष्णुं ध्यायतः (हरिध्यानपरस्य जनस्य), त्रेतायां मखैः (यज्ञादिभिः) यजतः (वैदिकविधानेन अनुष्ठानरतः जनस्य), द्वापरे परिचर्यायां (पाञ्चरात्रिक-विधानेन अर्चनायां) [यत् फलं लब्धं] तत् (सर्वं) कलौ हरिकीर्त्तनात् एव [प्राप्नोति]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **342-343**॥

विष्णुपुराण (6/2/17)में, पाद्मोत्तर-खण्ड (72/25)में, बृहन्नारदीय (38/97)में :—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्त्य केशवम्॥ 344॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ **344**॥

अनुभाष्य—

कृते (सत्ययुगे) ध्यायन् (ध्यानानुष्ठानेन), त्रेतायां यज्ञैः यजन् (यज्ञेश्वरं परितोषयन्), द्वापरे अर्चयन् (श्रीमूर्त्त्यादिकं पूजयन्) यत् (फलम्) अप्नोति (लभते) कलौ केशवं सङ्कीर्त्त्य (बहुभिर्मिलित्वा कीर्त्तयन्) तत् [सर्वम् एव भगवत्तोषणरूप-फलम्] आप्नोति।

श्लोक-भावानुवाद—सत्ययुगमें ध्यानके अनुष्ठानके द्वारा, त्रेतायुगमें यज्ञके द्वारा यज्ञेश्वरके सन्तोषके विधानके द्वारा और द्वापरयुगमें श्रीमूर्तिकी पूजाके द्वारा जो फल मिलता है, कलियुगमें केवल भगवान् श्रीकेशवके सङ्कीर्तन करनेसे वह सब फल अर्थात् भगवद्-सन्तोषरूपी फल प्राप्त हो जाता है॥ **344**॥

श्रीमद्भागवत (11/5/36)में :—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र सङ्कीर्त्तनेनैव सर्वस्वार्थोऽभिलभ्यते॥ 345॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **345**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सभी गुणज्ञ सारग्राही आर्यपुरुष कलिको इसलिये 'धन्य' कहते हैं, क्योंकि सङ्कीर्तनके द्वारा ही कलिकालमें सब प्रकारके स्वार्थोंकी (पुरुषार्थोंकी) प्राप्ति होती है॥ **345**॥

अनुभाष्य—विदेहराज निमिके द्वारा 'किस युगमें किस वर्णको धारण करके किस-किस विधिके द्वारा श्रीभगवान् पूजित होते हैं?'—इस विषयमें जिज्ञासा करनेपर नवयोगेन्द्रोंमेंसे एक करभाजन-ऋषि कलियुगमें भावी अवतारी श्रीगौरसुन्दरको प्रणाम करके कलियुगके गुण और माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं—

यत्र (कलौ) सङ्कीर्त्तनेन (कीर्त्तनाख्य-भक्त्यनुष्ठानेन) एव सर्वः स्वार्थः (सर्वपुरुषार्थः) अभिलभ्यते (सर्वतोभावेन प्राप्यते) [अतः इति] गुणज्ञाः (कलेर्गुणं जानन्ति ये ते) आर्याः (महात्मानः) सारभागिनः (गुणांशग्राहिणः) [तं] कलिं सभाजयन्ति (अर्चयन्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 345॥

पूर्ववत् लिखि यबे गुणावतारगण।
असंख्य संख्या ताँर, ना हय गणन॥ 346॥

अनुवाद—जैसा कि मैंने गुणावतारोंका वर्णन करते हुए कहा था, वैसे ही युगावतारोंको भी असंख्य मानना चाहिये, इनकी भी गणना नहीं की जा सकती॥ 346॥

श्रीगौरलीला-तत्त्वज्ञ, श्रीकृष्णभजनमें चतुर सनातन :—

चारियुगावतारे एइ त' गणन।"
शुनि' भङ्गि करि' ताँरे पुछे सनातन॥ 347॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने चारों युगोंके अवतारोंका वर्णन किया है।" महाप्रभुकी बातें सुनकर श्रीसनातन गोस्वामीने परोक्षरूपमें इङ्गित करते हुए उनसे पूछा॥ 347॥

स्वयं महाप्रभुके श्रीमुखसे महाप्रभुके अवतारके उद्देश्यकी निर्भीक जिज्ञासा :—

राजमन्त्री सनातन—बुद्ध्ये बृहस्पति।
प्रभुर कृपाते पुछे असङ्कोच-मति॥ 348॥
"अति क्षुद्र जीव मुञि नीच, नीचाचार।
केमने जानिब कलिते कोन् अवतार?"॥ 349॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामी राजमन्त्री थे, वे देवताओंके गुरु बृहस्पतिके समान बुद्धिमान थे। महाप्रभुकी कृपासे उन्होंने निःसङ्कोच होकर महाप्रभुसे पूछा,—"मैं अत्यन्त क्षुद्र जीव हूँ, नीच हूँ और नीच आचरण करनेवाला हूँ। मैं कैसे जानूँगा कि कलियुगमें कौन अवतार है?"॥ 348-349॥

महाप्रभुके द्वारा कलियुगके अवतारका परिचय देना :—

प्रभु कहे,—"अन्यावतार शास्त्रद्वारा जानि।
कलिते अवतार तैछे शास्त्रद्वारा मानि॥ 350॥

शास्त्रके आलोकमें ही भगवद्-ज्ञानकी प्राप्ति :—

सर्वज्ञ मुनिर वाक्य—शास्त्र-'प्रमाण'।
आमा-सबा जीवेर हय शास्त्रद्वारा 'ज्ञान'॥ 351॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"जिस प्रकार शास्त्रके द्वारा अन्य युगोंके अवतारोंके विषयमें जाना जाता है, उसी प्रकार कलियुगके अवतारके विषयमें भी शास्त्रके वचनोंके द्वारा ही जानना चाहिये। सर्वज्ञ मुनि (श्रीव्यासदेव) के द्वारा प्रकाशित शास्त्र ही प्रमाण हैं। शास्त्रोंके द्वारा ही सब जीवोंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है॥ 350-351॥

परोक्षवाद ही अवतारको प्रिय; लक्षणोंके द्वारा तत्त्वको जाननेवालोंके द्वारा वस्तु-निर्देश :—

अवतार नाहि कहे,—'आमि अवतार'।
मुनि सब जानि' करे लक्षण-विचार॥ 352॥

अनुवाद—अवतार स्वयं नहीं कहते,—'मैं अवतार हूँ।' श्रीव्यासमुनि सबकुछ जानते हैं, इसलिये उन्होंने अवतारोंके लक्षणोंका शास्त्रोंमें वर्णन किया है॥ 352॥

जीवके लिये दुःसाध्य; अतिशय वीर्यके द्वारा विष्णुतत्त्वकी उपलब्धि :—
श्रीमद्भागवत (10/10/34)में—

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरिष्वशरीरिणः।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः॥ 353॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 353॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्राकृत-शरीररहित अप्राकृत शरीरी परमेश्वरका अवतार-तत्त्व जीवोंके लिये दुःसाध्य है; अतुल, अतिशय और अलौकिक वीर्यके द्वारा ही उस

प्रकार आपके अवतारोंके विषयमें कुछ ज्ञान होता है॥ 353॥

अनुभाष्य—जब श्रीकृष्णने कृपा प्रकाशित करते हुए अर्जुनके युगल वृक्षोंको गिरा दिया, तब कुबेरके दो पुत्र नलकुबेर और मणिग्रीव श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं—

देहिषु (जीवेषु) असङ्गतैः (दुष्प्राप्यैः) अतुल्यातिशयैः (नास्ति तुल्यम् अतिशयम् आधिक्यं येभ्यः तैः) तैः तैः वीर्यैः (विभवैः) शरीरिषु (प्रपञ्चे देहिषु जीवेषु मध्ये) अशरीरिणः (प्राकृतशरीरवर्जितस्य अपि) यस्य (तव) अवताराः ज्ञायन्ते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 353॥

स्वरूप और तटस्थ लक्षणकी संज्ञा :—

'स्वरूप'-लक्षण, आर 'तटस्थ-लक्षण'।
एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' जाने मुनिगण॥ 354॥

आकृति, प्रकृति, स्वरूप,—स्वरूप-लक्षण।
कार्यद्वारा ज्ञान,—एइ तटस्थ-लक्षण॥ 355॥

अनुवाद—'स्वरूप'-लक्षण और 'तटस्थ'-लक्षण—इन दो लक्षणोंके द्वारा मुनिगण 'वस्तु'के विषयमें जानते हैं। आकृति, प्रकृति और स्वरूप—ये स्वरूप लक्षण हैं तथा कार्यके द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे तटस्थ-लक्षण कहते हैं॥ 354-355॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आकृति'*—आकार; *'प्रकृति'*—स्वभाव; *'स्वरूप'*—मूर्ति; *'स्वरूपलक्षण'*—उस विग्रहका व्यवहार; *'तटस्थ लक्षण'*—कार्यके द्वारा ज्ञान॥ 355॥

अनुभाष्य—आकृति, प्रकृति और स्वरूप,—ये तीन ही 'स्वरूप' अथवा 'मुख्य' लक्षण हैं। कार्यके द्वारा ज्ञान ही 'तटस्थ' अथवा 'गौण' लक्षण है॥ 355॥

श्रीमद्भागवतमें (1/1/1) श्लोकके मङ्गलाचरणके प्रारम्भमें स्वरूप और तटस्थ लक्षणसे परमेश्वर श्रीकृष्णका निरूपण :—

भागवतारम्भे व्यास मङ्गलाचरणे।
'परमेश्वर' निरूपिल एइ दुइ लक्षणे॥ 356॥

अनुवाद—श्रीमद्भागवतके आरम्भमें श्रीव्यासदेवने मङ्गलाचरणमें इन लक्षणोंके आधारपर ही 'परमेश्वर'का निरूपण किया है॥ 356॥

अनुभाष्य—भागवतके 'जन्माद्यस्य' श्लोकमें 'सत्यं' और 'परं' नामक दो शब्द स्वरूप-लक्षण एवं विश्व-सृष्टि-स्थिति-लय, ब्रह्माके हृदयमें वस्तुज्ञान प्रकट करना और अर्थाभिज्ञता आदि तटस्थ लक्षण व्यक्त करके परमेश्वरका निरूपण किया गया है॥ 356॥

श्रीमद्भागवत (1/1/1)में :—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥ 357॥

अनुवाद—इस विश्वका जन्म, स्थिति और लय जिससे होता है, ऐसा कहनेसे जो तत्त्व निश्चित हुआ है, अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा विचार करनेपर जो समस्त अर्थ अथवा कार्यमें एकमात्र परम 'ज्ञ-तत्त्व' अर्थात् 'स्वरूपतत्त्व' कहलाकर स्थिर होते हैं; जो दृश्यमान जगत्में एकमात्र स्वराट् अर्थात् स्वतन्त्र राजा हैं; जिन्होंने आदिकवि ब्रह्माको अन्तर्यामीके रूपमें ब्रह्मतत्त्वकी शिक्षा दी है; जिनके विषयमें समस्त बुद्धिमान पण्डितोंमें बारम्बार मोह उत्पन्न होता है; जिनसे अग्नि, जल और मिट्टी आदि भूतोंका विनिमय अर्थात् पृथक् रूपमें सत्ता है; जिनसे तीन प्रकारकी सृष्टि अर्थात् चिद्-उदयरूप सृष्टि, जीव-प्रकाट्यरूप सृष्टि और मायिक-ब्रह्माण्डरूप सृष्टि—सत्यरूपमें वर्तमान है; स्वरूपशक्तिके द्वारा नित्य-कपट-शून्य परमसत्य-तत्त्वरूप उन श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं॥ 357॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/266 संख्या देखें॥ 357॥

इस प्रथम श्लोकमें परमेश्वरका (1) स्वरूप लक्षण :—

एइ श्लोके 'परं'-शब्दे 'कृष्ण'-निरूपण।
'सत्यं' शब्दे कहे ताँर स्वरूप-लक्षण॥ 358॥

अनुवाद—इस श्लोकमें 'पर' शब्दके द्वारा श्रीकृष्णका निरूपण और 'सत्यं' शब्दके द्वारा उनके स्वरूप लक्षणको बतलाया गया है॥ 358॥

(2) तटस्थ लक्षण :—

विश्वसृष्ट्यादि कैल, वेद ब्रह्माके पड़ाइल।
अर्थाभिज्ञता, स्वरूपशक्त्ये माया दूर कैल॥ 359॥

एइसब कार्य—ताँर तटस्थ-लक्षण।
अन्य अवतार ऐछे जाने मुनिगण॥ 360॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण विश्वकी सृष्टि-स्थिति-प्रलयादि करते हैं, उन्होंने ब्रह्माको वेद पढ़ाया, उन्हें पूर्ण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान है तथा उन्होंने स्वरूपशक्तिके प्रभावसे मायाको दूर रखा है—ये सब कार्य उनके तटस्थ लक्षण हैं। मुनिगण इन्हीं स्वरूप और तटस्थ लक्षणोंके द्वारा श्रीकृष्ण और अन्यान्य सभी अवतारोंके विषयमें भी जान लेते हैं॥ 359-360॥

जाननेवालोंके द्वारा उक्त दो लक्षणोंके द्वारा ही सभी अवतारोंका निर्णय :—

अवतारकाले हय जगतेर गोचर।
एइ दुइ लक्षणे केह जानेन ईश्वर॥"361॥

अनुवाद—भगवान् जब अवतार लेते हैं तो वे जगत्में जीवोंके दृष्टिगोचर तो होते हैं, परन्तु उपरोक्त स्वरूप और तटस्थ, इन दो लक्षणोंके द्वारा कुछ भक्त ही उन्हें ईश्वरके रूपमें जान पाते हैं॥"361॥

भजनमें चतुर भक्तोंके निकट भगवान्का गुप्त स्वभाव व्यक्त :—

सनातन कहे,—"याते ईश्वर-लक्षण।
पीतवर्ण, कार्य—प्रेमदान-सङ्कीर्त्तन॥ 362॥

सनातनके द्वारा महाप्रभुकी लीलाकी व्याख्याको श्रवण करनेकी अभिलाषा :—

कलिकाले सेइ 'कृष्णावतार' निश्चय।
सुदृढ़ करिया कह, याउक संशय॥"363॥

अनुवाद—श्रीसनातनने कहा,—"जिनमें ईश्वरके लक्षण हैं, वे पीतवर्णके हैं और जो श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तनके द्वारा जीवोंमें श्रीकृष्णप्रेमका दान करते हैं, कलिकालमें वह श्रीकृष्णावतार अवश्य ही होगा। आप मुझे निश्चित रूपसे बतलाइये, जिससे मेरे सभी संशय दूर हो जाँय॥"362-363॥

अनुभाष्य—कलिकालमें युगावतारका स्वरूप-लक्षण—पीतवर्ण आकार है, तटस्थ-लक्षण—प्रेमदान और सङ्कीर्तनरूपी कार्य है॥ 362॥

भक्तकी जीत, भगवान्की पराजय :—

प्रभु कहे,—"चतुरालि छाड़, सनातन।
शक्त्यावेशावतारेर शुन विवरण॥ 364॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे सनातन, अपनी चतुरायी छोड़ो और अब शक्त्यावेशावतारोंका वर्णन सुनो॥ 364॥

अनुभाष्य—*'चतुरालि'*—कौशलसे मनोगत अभिप्रायको स्थापित करना, निपुणता-प्रदर्शित करना, बुद्धिमत्ता प्रकाशित करना॥ 364॥

श्रीकृष्णके छः प्रकारके विलास और तीन प्रकारके रूपोंमेंसे एक (ग) शक्त्यावेशावतारका वर्णन :—

शक्त्यावेशावतार कृष्णेर असंख्य गणन।
दिग्दरशन करि मुख्य मुख्य जन॥ 365॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके असंख्य शक्त्यावेशावतार हैं, मैं केवल मुख्य-मुख्य शक्त्यावेशावतारोंका वर्णन करके उनका दिग्दर्शन कराऊँगा॥ 365॥

दो प्रकारके शक्त्यावेश—साक्षात् शक्त्याविष्ट मुख्य-'अवतार' और शक्त्याभासाविष्ट गौण-'विभूति' संज्ञा :—

शक्त्यावेश दुइरूप—'मुख्य', 'गौण' देखि।
साक्षात्शक्त्ये 'अवतार', आभासे 'विभूति' लिखि॥ 366॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 366॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'शक्त्यावेश'*—ये गौण और मुख्यके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। जिनमें साक्षात् शक्तिका अवतार होता है,—वे मुख्यशक्त्यावेश-अवतार हैं। और जिनमें शक्तिका आभासमात्र विभूतिके रूपमें देखा जाता है, वे गौणशक्त्यावेश-अवतार हैं॥ 366॥

1) मुख्यावेशावतारोंके नाम :—

'सनकादि', 'नारद', 'पृथु', 'परशुराम'।
जीवरूप 'ब्रह्मार' आवेशावतार-नाम॥ 367॥

अनुवाद—सनकादि, नारद, पृथु, परशुराम और जीवरूप ब्रह्मा शक्त्यावेश-अवतार कहलाते हैं॥ 367॥

वैकुण्ठे 'शेष'—धरा धरये 'अनन्त'।
एइ मुख्यावेशावतार—विस्तारे नाहि अन्त॥ 368॥

अनुवाद—वैकुण्ठमें 'शेष' और अपने फणोंपर धरतीको धारण करनेवाले 'अनन्त'—ये मुख्य शक्त्यावेशावतार हैं। मुख्य शक्त्यावेशावतारोंकी भी संख्याका कोई अन्त नहीं है॥ 368॥

मुख्यशक्तिके भेदसे मुख्य-आवेशावतारगण :—

सनकाद्ये 'ज्ञान'-शक्ति, नारदे शक्ति 'भक्ति'।
ब्रह्माय 'सृष्टि'-शक्ति, अनन्ते 'भू-धारण'-शक्ति॥ 369॥
शेषे 'स्व-सेवन'-शक्ति, पृथुते 'पालन'।
परशुरामे 'दुष्टनाश-वीर्यसञ्चारण'॥ 370॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने सनकादि चतुःसनमें 'ज्ञान'-शक्तिका, नारदमें 'भक्ति'-शक्तिका, ब्रह्मामें 'सृष्टि'-शक्तिका, अनन्तमें 'भू-धारण'-शक्तिका, शेषमें 'अपनी-सेवा'-शक्तिका, पृथुमें पृथ्वीकी 'पालन'-शक्तिका और परशुराममें 'दुष्ट-विनाशक'-शक्तिका आवेश किया है॥ 369-370॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'शेषे 'स्व-सेवन'-शक्ति'*—शेषरूपी भगवदवतारमें अपनी सेवारूपी शक्ति अर्पित हुई है॥ 370॥

आवेशावतारकी संज्ञा :—
लघुभागवतामृत (1/1/18)के आवेशप्रकरणमें—

ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्दनः।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥ 371॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 371॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ज्ञानशक्ति आदि कलाके द्वारा जिनमें भगवद्-आवेश है, उन सभी महत्तम (महान व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ) जीवोंकी 'आवेश-अवतार'के रूपमें गणना की जाती है॥ 371॥

अनुभाष्य—

यत्र (महत्तमेषु जीवेषु) ज्ञानशक्त्यादिकलया (ज्ञान-भक्ति-सृष्टि-सेवन-पालन-धारण-विनाशनादि-भागेन) जनार्दनः आविष्टः, ते महत्तमाः जीवाः एव 'आवेशाः' (आवेशावताराः) निगद्यन्ते (कथ्यन्ते)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 371॥

(2) गीतामें विभूतिका वर्णन :—

'विभूति' कहिये यैछे गीता-एकादशे।
जगत् व्यापिल कृष्णशक्त्याभासावेशे॥ 372॥

अनुवाद—गीताके ग्यारहवें अध्यायमें वर्णित श्रीकृष्णके सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्तरूपमें भगवान्की जिन विभूतियोंका वर्णन किया गया है, उनको 'विभूति' कहते हैं। श्रीकृष्णके शक्त्याभासावेशसे ही जगत् व्याप्त है॥ 372॥

अनुभाष्य—भाः 2/7/39 श्लोकमें मायाकी विभूतियोंका परिचय देखें॥ 372॥

श्रीमद्भगवद्गीता (10/41-42)में :—

यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसम्भवम्॥ 373॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 373॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो सब जीव—विभूतिमान् और श्रीमान् हैं, उन्हें मेरे तेजके अंशसे उत्पन्न जानना॥ 373॥

अनुभाष्य—

विभूतिमत् (ऐश्वर्ययुक्तं) श्रीमत् (सम्पत्तियुक्तम्) ऊर्ज्जितं (बलप्रभावादिना गुणेनातिशयितं) यत् यत् सत्त्वं (प्राकृतं वस्तु) भवति, तत् तत् एव मम तेजोऽंशसम्भवं (प्रभावकलया सिद्धं प्रभावस्यांशेन सम्भूतम् इति) त्वम् अवगच्छ (जानीहि)।

श्लोक-भावानुवाद—ऐश्वर्ययुक्त, सम्पत्तियुक्त, बल-प्रभावादि अतिशय गुणोंसे युक्त जो-जो प्राकृत वस्तु है, तुम उसे-उसे ही मेरे तेजसे (प्रभावसे) उत्पन्न जानना॥ 373॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ 374॥

अनुवाद—अथवा हे अर्जुन! इस पृथक्-पृथक् उपदिष्ट ज्ञानसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम मात्र इतना ही जानो कि मैं अपने एकांशसे इस समस्त जगत्को धारणकर अवस्थित हूँ॥ 374॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/20 संख्या देखें॥ 374॥

श्रीकृष्णस्वरूपके छः प्रकारके विलासोंमेंसे बाकी दो प्रकारकी आयुवालेके रूपमें लीला :—

एइत' कहिलुँ शक्त्यावेश-अवतार।
बाल्य-पौगण्ड-धर्मेर शुनह विचार॥ 375॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने तुम्हें शक्त्यावेश अवतारोंके विषयमें बतलाया। अब तुम श्रीकृष्णके बाल्य-पौगण्ड अवस्था आदिके लक्षणोंको सुनो॥ 375॥

स्वयं श्रीकृष्णके द्वारा लीला-प्रकट करनेसे पहले गुरुवर्गके रूपमें सेवकगणोंको प्रकटित करना :—

किशोरशेखर-धर्मी व्रजेन्द्रनन्दन।
प्रकटलीला करिबारे यबे करे मन॥ 376॥
आदौ प्रकट कराय माता-पिता-भक्तगणे।
पाछे प्रकट हय जन्मादिक-लीलाक्रमे॥ 377॥

अनुवाद—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण किशोरशेखर हैं। जब उनकी लीलाओंको प्रकट करनेकी इच्छा होती है, तब वे पहले माता-पितादि भक्तोंको प्रकट करते हैं और बादमें क्रमशः स्वयं जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर आदि लीलाओंको प्रकट करते हैं॥ 376-377॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/63) :—

वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिरसाश्रयः।
धर्मी किशोर एवात्र नित्यलीला-विलासवान्॥ 378॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 378॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नित्यलीला-विलासवान् सर्वभक्तिरसाश्रय श्रीकृष्णकी अनेक वयस (अवस्थाएँ) रहनेपर भी किशोर अवस्था ही श्रेष्ठ है॥ 378॥

अनुभाष्य—

वयसः विविधत्वे (बाल्यपौगण्डकैशोरादिप्रकारभेदे) अपि अत्र सर्वभक्तिरसाश्रयः नित्यलीलाविलासवान् किशोरः एव धर्मी (सर्ववयो-धर्मविशिष्टः पूर्णतमः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 378॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें प्रतिक्षणमें वह विचित्र नवनवायमान चिन्मयी लीला :—

पूतना-वधादि यत लीला क्षणे क्षणे।
सब लीला नित्य प्रकट करे अनुक्रमे॥ 379॥

अनुवाद—पूतना-वधादि जितनी भी लीलाएँ हैं, वे क्षण-क्षणमें चलती रहती हैं। श्रीकृष्ण समस्त लीलाओंको क्रमशः नित्य प्रकट करते रहते हैं॥ 379॥

अनन्त ब्रह्माण्ड, तार नाहिक गणन।
कोन लीला कोन ब्रह्माण्डे हय प्रकटन॥ 380॥

अनुवाद—इस जगत्में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। कोई-न-कोई लीला किसी-न-किसी ब्रह्माण्डमें सदा प्रकटित होती ही रहती है॥ 380॥

श्रीकृष्णावतारकी लीलाका दृष्टान्त—जैसे निरन्तर गङ्गाकी धारा :—

एइमत सब लीला—येन गङ्गाधार।
से-से लीला प्रकट करे व्रजेन्द्रकुमार॥ 381॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीव्रजेन्द्रनन्दन समस्त लीलाओंको गङ्गाकी धाराकी भाँति निरन्तर प्रकट करते रहते हैं॥ 381 ॥

किशोर श्रीकृष्णकी ही व्रजलीला :—

क्रमे बाल्य-पौगण्ड-कैशोरता प्राप्ति।
रास-आदि लीला करे, कैशोरे नित्यस्थिति॥ 382 ॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण सर्वप्रथम बाल्य, उसके पश्चात् पौगण्ड और फिर किशोरावस्थाको प्राप्त करते हैं और उनके अनुरूप लीलाएँ करते हैं। कैशोरावस्था आनेपर श्रीकृष्ण सदा उसी अवस्थामें वर्तमान रहते हैं अर्थात् वे कभी भी यौवन, वृद्धावस्थाको प्राप्त नहीं करते। कैशोर अवस्थामें वे रास-लीलादि प्रकाशित करते हैं॥ 382 ॥

श्रीकृष्णलीलाके नित्य होनेकी व्याख्या :—

'नित्यलीला' कृष्णेर सर्वशास्त्रे कय।
बुझिते ना पारे लीला केमने 'नित्य' हय॥ 383 ॥

अनुवाद—सभी शास्त्र कहते हैं कि श्रीकृष्णकी समस्त लीलाएँ 'नित्यलीला' हैं। किन्तु लोग नहीं समझ पाते कि वे कैसे 'नित्य' चलती रहती हैं॥ 383 ॥

ज्योतिश्चक्र (प्रकाशके गोले)का उदाहरण :—

दृष्टान्त दिया कहि, तबे लोक सब जाने।
कृष्णलीला—नित्य, ज्योतिश्चक्र-प्रमाणे॥ 384 ॥

ज्योतिश्चक्रे सूर्य येन फिरे रात्रि-दिने।
सप्तद्वीपाम्बुधि लङ्घि' फिरे क्रमे क्रमे॥ 385 ॥

रात्रि-दिने हय षष्ठिदण्ड-परिमाण।
तिनसहस्र छयशत 'पल' तार मान॥ 386 ॥

अनुवाद—इसलिये मैं एक दृष्टान्त देता हूँ, जिससे लोग उसे जान पायेंगे। ज्योतिश्चक्रकी (राशिचक्रकी) भाँति श्रीकृष्णलीला नित्य है। ज्योतिश्चक्रमें सूर्य जिस प्रकार रात-दिन घूमता रहता है और सातों द्वीपोंके मध्य समुद्रोंको क्रमशः लाँघता हुआ चलता जाता है। रात और दिनमें कुल मिलाकर साठ दण्ड होते हैं तथा उसमें तीन हजार छः सौ 'पल' होते हैं॥ 384-386 ॥

सूर्योदय हैते षष्ठिपल-क्रमोदय।
सेइ एक दण्ड, अष्ट दण्डे 'प्रहर' हय॥ 387 ॥

अनुवाद—सूर्योदयसे लेकर सूर्य साठ पलके परिमाण समयमें क्रमशः ऊपर उठता जाता है। साठ पलका एक दण्ड होता है और आठ दण्डका एक 'प्रहर' होता है॥ 387 ॥

एक-दुइ-तिन-चारि प्रहरे अस्त हय।
चारिप्रहर रात्रि गेले पुनः सूर्योदय॥ 388 ॥

अनुवाद—एक-दो-तीन-चार प्रहर चलते हुए सूर्य अस्त होता है। चार प्रहर रातके बीत जानेपर पुनः सूर्योदय होता है॥ 388 ॥

चौदह मन्वन्तरोंमें समस्त ब्रह्माण्डोंमें अवतार-लीला :—

ऐछे कृष्णेर लीला-मण्डल चौद्द मन्वन्तरे।
ब्रह्माण्डमण्डल व्यापि' क्रमे क्रमे फिरे॥ 389 ॥

अनुवाद—सूर्यके एक मण्डलमें घूमनेके समान श्रीकृष्णकी लीलाका भी एक मण्डल है जिसमें श्रीकृष्णकी लीलाएँ क्रमशः प्रकट होती रहती हैं। चौदह मन्वन्तर-कालमें यह मण्डल सभी ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त होकर क्रमशः घूमता रहता है अर्थात् श्रीकृष्णकी लीलाएँ एकके बाद एक ब्रह्माण्डमें क्रमशः प्रकट होती रहती हैं॥ 389 ॥

श्रीकृष्णकी प्रकट-लीलाका समय :—

सओयाशत वत्सर कृष्णेर प्रकट-प्रकाश।
ताहा यैछे व्रज-पुरे करिला विलास॥ 390 ॥

अनुवाद—एक सौ पचीस वर्षों तक श्रीकृष्णकी लीलाका प्रकट-प्रकाश होता है। व्रज और पुर अर्थात् मथुरा एवं द्वारकामें वे प्रकट लीलाका आस्वादन करते हैं॥ 390 ॥

श्रीकृष्णावतार-लीलाकी उपमा—जैसे, अलातचक्र-भ्रमण :—

अलातचक्रप्राय सेइ लीलाचक्र फिरे।
सब लीला ब्रह्माण्डे क्रमे उदय करे॥ 391॥

अनुवाद—जलती हुई मशालको तेजीसे घुमानेपर जैसे एक अटूट अलातचक्र (अग्निका चक्र) दिखलायी देता है, उसी प्रकार ही श्रीकृष्णकी लीलाओंका चक्र चलता है। समस्त लीलाएँ समस्त ब्रह्माण्डोंमें क्रमशः उदित होती रहती हैं॥ 391॥

जन्मसे लेकर मूसल-लीला तककी लीलाएँ :—

जन्म, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर प्रकाश।
पूतना वधादि करि' मौषलान्त विलास॥ 392॥

असंख्य ब्रह्माण्डोंमें किसी-न-किसी ब्रह्माण्डमें नित्य ही एक-ना-एक लीला वर्तमान, इसलिये लीलाकी 'नित्यता' :—

कोन ब्रह्माण्डे कोन लीलार हय अवस्थान।
ताते लीला 'नित्य' कहे निगम-पुराण॥ 393॥

अनुवाद—जन्म, बाल्य, पौगण्ड और कैशोर-अवस्थाको प्रकाशित करते हुए क्रमशः पूतना-वधादि करनेसे लेकर मूसल-लीला (यदुवंशके विनाश) तक श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ हैं, किसी-न-किसी ब्रह्माण्डमें इनमेंसे कोई-न-कोई लीला चलती ही रहती है, इसलिये वेद और पुराण श्रीकृष्णलीलाको नित्य कहते हैं॥ 392-393॥

सङ्कर्षणके चिद्-वैभव समस्त विष्णुधाम ही विष्णुके समान और हरिके साथ प्रपञ्चमें अवतीर्ण :—

गोलोक, गोकुल-धाम—'विभु' कृष्णसम।
कृष्णेच्छाय ब्रह्माण्डगणे ताहार संक्रम॥ 394॥

अनुवाद—चिन्मय गोलोक और गोकुल-धाम भी श्रीकृष्णकी भाँति सर्वव्यापक और ऐश्वर्यशाली हैं। श्रीकृष्णकी इच्छासे चिन्मय गोलोक और गोकुल धाम ब्रह्माण्डोंमें श्रीकृष्णके साथ क्रमशः प्रकाशित होते रहते हैं॥ 394॥

ब्रह्माण्डसमूहोंमें अवतारीके साथ उनका गोलोकधाम भी अवतीर्ण :—

अतएव गोलोकस्थाने नित्य विहार।
ब्रह्माण्डगणेर क्रमे प्रकट ताहार॥ 395॥

अनुवाद—इसलिये श्रीकृष्णकी लीलाएँ नित्य चिन्मय गोलोक-धाममें होती हैं। वही लीलाएँ भौतिक ब्रह्माण्डोंमें क्रमशः प्रकट होती रहती हैं॥ 395॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णलीला नित्य प्रकट रहती है। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें समय-समयपर क्रमशः नित्यलीला प्रकट होती है। एक ब्रह्माण्डमें श्रीकृष्णजन्म-लीलासे आरम्भ करके 125 वर्षों तक मूसल-लीलाके अन्त तक प्रकट होकर उस ब्रह्माण्डमें लीला अप्रकट हो जाती है। श्रीकृष्णकी एक क्षणकी लीला जब एक ब्रह्माण्डमें समाप्त होती है, तब वही लीला एक अन्य ब्रह्माण्डमें आरम्भ होती है और इस ब्रह्माण्डमें दूसरे क्षणकी लीला आरम्भ हो जाती है। इसी प्रकार असंख्य अनन्त ब्रह्माण्डोंमें प्रतिक्षणसे सम्बन्धित लीला प्रकट होकर अन्य ब्रह्माण्डमें फिर उसी क्षणसे सम्बन्धित लीलाका उदय होता है। इसके उदाहरणमें सूर्यके भ्रमणमार्ग अर्थात् ज्योतिश्चक्रमें भ्रमण कहा गया है। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें श्रीकृष्णकी असंख्य लीलाएँ क्रमशः उदित होकर अप्रकट हो रही हैं। जीवके ज्ञानसे उस अनन्त लीलाकी उपलब्धि सम्भव नहीं है। गङ्गाकी धारा जिस प्रकार निरन्तर है, अलातचक्र-भ्रमण जिस प्रकार निरन्तर और व्यापक होता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णलीलाका भी निरन्तर प्रकट होना भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें उपलब्ध होता है। श्रीकृष्णकी जन्म, बाल्य और पौगण्ड-कैशोरादि लीलाएँ नित्यकाल ही संघटित हो रही हैं। किसी एक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जीवोंको श्रीकृष्णलीलाकी नित्य प्रकट होनेकी अनुभूति नहीं होनेपर भी उनकी लीलाकी नित्यता है। सभी लीलाओंके एक समयमें नित्य प्राकट्यका नाम ही 'नित्यलीला' है; किन्तु प्रपञ्चमें क्रमपूर्वक ही लीलाओंका प्राकट्य होता

है। उस समय अन्यान्य लीलाएँ अन्य ब्रह्माण्डोंमें प्रकट होती हैं, इसलिये किसी एक ब्रह्माण्डमें एक ही समयमें उसका नित्यत्व दिखलायी नहीं देता। वास्तवमें लीला नित्य है; चौदह मन्वन्तर अर्थात् कल्पके निर्दिष्ट कालमें किसी एक ब्रह्माण्डमें क्रमपूर्वक श्रीकृष्णलीला-मण्डल पुनः घूमता है; इसलिये लीला अनित्य नहीं है। अन्य किसी ब्रह्माण्डमें चल रही नित्यलीला हमें दिखलायी नहीं पड़ती, यह कहकर इस ब्रह्माण्डके लोग नित्यलीलाकी उपलब्धि करनेमें समर्थ नहीं होते। इसलिये वेद-पुराणादि नित्यलीलाकी बात ही कहते हैं। गोलोककी नित्य विहारस्थली क्रमशः ब्रह्माण्डोंमें प्रकट होती है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती-ठाकुरने स्वरचित 'रागवर्त्म-चन्द्रिका'के द्वितीय प्रकाशमें उज्ज्वलनीलमणिके 'तद्भावबद्धरागा ये जनास्ते' श्लोककी टीकामें लिखा है—

"अनुरागौघं रागानुगाभजनौत्कण्ठयं, न त्वनुरागस्थायिनं, साधकदेहेऽनुरागोत्पत्त्यसम्भवात्। व्रजेऽभवन्निति अवतारसमये नित्यप्रियाद्या यथा आविर्भवन्ति, तथैव गोपिकागर्भे साधनसिद्धा अपि आविर्भवन्ति। ततश्च गोपिकादेहे उत्पद्यन्ते, पूर्वजन्मनि साधकदेहे तेषां (स्नेहमानप्रणयरागानुरागमहाभावानाम्) उत्पत्त्य-सम्भवात्। xx साधक-देहभङ्गसमये एव तस्मै प्रेमवते भक्ताय xx चिदानन्दमयी गोपिकातनुश्च दीयते। सैव तनुर्योगमायया वृन्दावनीयप्रकटप्रकाशे कृष्णपरिवारप्रादुर्भावसमये गोपीगर्भादुद्भाव्यते। नात्र कालविलम्बगन्धोऽपि; प्रकटलीलाया अपि विच्छेदाभावात्। यस्मिन्नेव ब्रह्माण्डे तदानीं वृन्दावनीयलीलानां प्राकट्यं, तत्रैवास्यामेव व्रजभूमौ, अतः साधकप्रेमिभक्तदेहभङ्गसमकालेऽपि सपरिकर श्रीकृष्णप्रादुर्भावः सदैवास्ति, इति भो भो महानुरागिसोत्कण्ठभक्ताः, मा भैष्ट, सुस्थिरास्तिष्ठत, स्वस्त्येवास्ति भवद्भ्यः इति।"

[उज्ज्वलनीलमणि (3/49-50)—"तद्भावबद्धरागा ये जनास्ते साधने रताः। तद्योग्यमनुरागौघं प्राप्योत्कण्ठानुसारतः॥ ता एकशोऽथवा द्वित्राः काले काले व्रजेऽभवन्।" अर्थात् "जो व्रजवासियोंके विशेष भावमें अनुरक्त होकर साधनमें रत होते हैं, वे उत्कण्ठाके अनुरूप उसके योग्य अनुरागको प्राप्त करके अकेले अथवा दो-तीन जन एक साथ समय-समयपर व्रजभूमिमें आविर्भूत होते हैं।" यहाँपर 'अनुरागौघं' अर्थात् रागानुग-भजनोचित उत्कण्ठा—स्थायीभावगत अनुराग नहीं है, क्योंकि साधककी देहमें अनुरागकी उत्पत्ति असम्भव है। 'व्रजेऽभवन्'—व्रजमें आविर्भूत हुए थे, इसका अर्थ यह है कि श्रीकृष्णके अवतार-कालमें नित्यप्रियाएँ जिस प्रकारसे आविर्भूत होती हैं, उसी प्रकार साधनसिद्धगण भी गोपियोंके गर्भसे आविर्भूत होते हैं। उसके बाद (नित्यसिद्धाओंके सङ्गकी महिमासे) उक्त गोपीदेहमें स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, महाभाव समूह उत्पन्न होते हैं, क्योंकि पूर्वजन्ममें (उक्त साधकदेहमें) उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं होती। साधकदेहके नष्ट होनेके समय ही उस प्रेमवान् भक्तको चिदानन्दमय गोपी देह प्रदान की जाती है। उसी सिद्धदेहमें ही योगमाया वृन्दावनकी लीलाके 'प्रकट' प्रकाशके समय श्रीकृष्ण परिकरोंके आविर्भावके समय उस भक्तको गोपीके गर्भसे उत्पन्न कराती हैं। यहाँपर कालके विलम्बकी गन्धमात्र भी नहीं है, क्योंकि प्रकट-लीलाका भी विच्छेद नहीं है अर्थात् वह निरन्तर है। जिस किसी ब्रह्माण्डमें ही उनकी वृन्दावनकी लीलाका प्राकट्य हुआ करता है, उसी व्रजभूमिमें ही गोपीके गर्भसे साधनसिद्ध गणोंका आविर्भाव हुआ करता है। इसलिये साधक-प्रेमीभक्तके देहके नष्ट होनेके समयमें भी सपरिकर श्रीकृष्णका आविर्भाव सदा ही हुआ करता है। इसलिये, हे महानुरागी उत्कण्ठायुक्त भक्तगण! भयभीत मत होना, सुस्थिर होओ, आपका कल्याण निश्चित है।]॥ 379-395॥

व्रजमें श्रीकृष्ण—पूर्णतम, मथुरा और द्वारकामें पूर्णतर, तथा परव्योममें पूर्णविग्रह-रूपमें प्रकाशित :—

व्रजे कृष्ण—सर्वैश्वर्यप्रकाशे 'पूर्णतम'।
पुरीद्वये, परव्योमे—'पूर्णतर', 'पूर्ण'॥ 396॥

अनुवाद—व्रजमें श्रीकृष्णके समस्त ऐश्वर्यका 'पूर्णतम' प्रकाश है, मथुरा और द्वारकामें 'पूर्णतर' तथा परव्योम वैकुण्ठमें 'पूर्ण' प्रकाश है॥ 396॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण व्रजमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रकाशित करते हैं, इसलिये व्रजेन्द्रनन्दन 'पूर्णतम' हैं। द्वारका और मथुरा—इन दोनों पुरियोंमें श्रीकृष्ण व्रजकी अपेक्षा न्यूनरूपमें सभी ऐश्वर्योंको प्रकाशित करते हैं, इसलिये वहाँ वे—'पूर्णतर' हैं। परव्योम वैकुण्ठमें श्रीकृष्ण दोनों पुरियोंकी अपेक्षा भी न्यून (स्वल्परूपमें) सब प्रकारके ऐश्वर्योंको प्रकाश करते हैं, इसलिये वहाँ वे—'पूर्ण' हैं॥ 396॥

गोस्वामि-वचन :—

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/221-223)—

हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिधा।
श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैर्नाट्ये यः परिकीर्त्तितः॥ 397॥

प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः।
असर्वव्यञ्जकः पूर्णतरः पूर्णोऽल्पदर्शकः॥ 398॥

कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताभूद्गोकुलान्तरे।
पूर्णता पूर्णतरता द्वारका-मथुरादिषु॥ 399॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 397-399॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रेष्ठ-मध्यादि—शब्दके द्वारा नाट्य शास्त्रमें जिनका कीर्तन है, वही भगवान् हरि—पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम—इन तीन प्रकारके हैं। अल्पगुणोंके प्रकाशक हरि—पूर्ण हैं; सभी गुणोंके स्वल्पप्रकाशक हरि—पूर्णतर हैं; और जिनमें समस्त गुण प्रकाशित हैं, वे हरि—पूर्णतम हैं; पण्डितजन यही कहते हैं। गोकुलमें श्रीकृष्णकी पूर्णतमता, द्वारका-मथुरामें पूर्णतरता और वैकुण्ठमें पूर्णता व्यक्त होती है॥ 397-399॥

बीसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—

नाट्ये (नाट्यशास्त्रे) श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैः यः [कीर्त्तितः, सः] हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्णः इति त्रिधा परिकीर्त्तितः। प्रकाशिताखिलगुणः (प्रकाशिताः अखिलाः गुणाः यस्मिन् सः, प्रकटित-समग्रगुणः हरिः)—पूर्णतमः; सर्ववयञ्जकः (स्वल्प-प्रकटित-सर्वगुणः हरिः)—पूर्णतरः; अल्पदर्शकः (प्रकटित-स्वल्पगुणः हरिः) पूर्णः इति बुधैः स्मृतः। गोकुलान्तरे कृष्णस्य पूर्णतमता; द्वारका-मथुरादिषु पूर्णतरता; [परव्योमे] पूर्णता व्यक्ताभूत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 397-399॥

एइ कृष्ण—व्रजे 'पूर्णतम' भगवान्।
आर सब स्वरूप—'पूर्णतर', 'पूर्ण' नाम॥ 400॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण व्रजमें 'पूर्णतम' भगवान् हैं और उनके अन्य सभी स्वरूप 'पूर्णतर' तथा 'पूर्ण' नाम धारण करते हैं॥ 400॥

अनुभाष्य—भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन—'पूर्णतम' प्रकाश हैं, द्वारकानाथ-मथुरेश—पूर्णतर प्रकाश हैं और वैकुण्ठनाथ—'पूर्ण' प्रकाश हैं॥ 400॥

श्रीकृष्णके स्वरूपका विचार अति संक्षेपमें वर्णित; स्वयं शेषकी भी उसके सम्पूर्ण वर्णनमें असमर्थता :—

संक्षेपे कहिलुँ कृष्णेर स्वरूप-विचार।
'अनन्त' कहिते नारे इहार विस्तार॥ 401॥

अनुवाद—मैंने संक्षेपमें श्रीकृष्णके स्वरूप-विचारका वर्णन किया है, 'अनन्त' भी इसका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर सकते॥ 401॥

ग्रन्थकारका दैन्य; शाखा-चन्द्र-न्यायसे वर्णन :—

अनन्त स्वरूप कृष्णेर नाहिक गणन।
शाखा-चन्द्र-न्याये करि दिग्दरशन॥"402॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके अनन्त स्वरूपोंकी गणना नहीं की जा सकती। मैंने उसका शाखा-चन्द्र-न्यायसे दिग्दर्शन कराया है॥ 402॥

अनुभाष्य—*'शाखा-चन्द्र-न्याय'*—मध्यलीला 20/248 संख्या देखें॥ 402॥

बीसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रीकृष्णस्वरूप-कीर्तन-श्रवणसे तत्त्वज्ञान-स्फूर्त्ति-प्राप्ति :—

इहा येइ शुने, पड़े, सेइ भाग्यवान्।
कृष्णेर स्वरूपतत्त्वेर हय किछु ज्ञान॥ 403॥

अनुवाद—इसे जो भी सुनता है, पढ़ता है, वही भाग्यवान् है। उसे इससे श्रीकृष्णके स्वरूपतत्त्वका कुछ ज्ञान हो सकता है॥ 403॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 404॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे स्वरूपतत्त्वरूप-श्रीभगवत्-स्वरूपभेदविचारो नाम विंशतितमः परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 404॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें स्वरूपतत्त्वरूप-श्रीभगवत्-स्वरूपभेदविचार नामक बीसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

इक्कीसवाँ अध्याय

कथासार—इस अध्यायमें महाप्रभुने श्रीकृष्णलोक-तत्त्व, परव्योम-तत्त्व, कारणसमुद्र-तत्त्व और मायिक ब्रह्माण्ड-तत्त्व वर्णन करके द्वारकामें ब्रह्माके गर्वका हरण करनेवाली श्रीकृष्णकी एक लीलाका वर्णन किया है। उसके बाद ग्रन्थकारने महाप्रभुके वचन कहकर श्रीकृष्ण-रूपके सौन्दर्य-प्रकाशक कुछेक मधुर पद्य लिखे हैं। यहाँ तक सम्बन्ध-तत्त्व कहा गया है।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

ग्रन्थकारके द्वारा श्रीगौरकृष्णके माधुर्य-ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए मङ्गलाचरण :—

अगत्येकगतिं नत्वा हीनार्थाधिकसाधकम्।
श्रीचैतन्यं लिखाम्यस्य माधुर्यैश्वर्य-शीकरम्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गतिहीनकी गति और हीन व्यक्तियोंके प्रति अधिक अर्थ-प्रदाता अथवा उपकार करनेवाले श्रीचैतन्यको प्रणाम करके उनके माधुर्य-ऐश्वर्यके कणका वर्णन कर रहा हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

अगत्येकगतिं (गतिहीनानाम् एकावलम्बनं) हीनार्थाधिकसाधकं (हीनानां कृष्णप्रेम-दरिद्राणां ये अर्थाः प्रयोजनानि तेषाम् अधिकं यथा स्यात्तथा साधकं) श्रीचैतन्यं नत्वा (प्रणम्य) अस्य भगवतः (चैतन्यदेवस्य) माधुर्यैश्वर्यशीकरं (माधुर्ये यदैश्वर्यं, माधुर्यम् ऐश्वर्यञ्च वा, तयोः शीकरं कणं) लिखामि।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। हीन व्यक्ति अर्थात् श्रीकृष्णप्रेमरूपी धनहीन दरिद्र॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

परव्योममें सभी विष्णु-विग्रहोंके अनन्त वैकुण्ठ-धाम :—

"सर्वस्वरूपेर धाम—परव्योम-धामे।
पृथक् पृथक् वैकुण्ठ, नाहिक गणने॥3॥

शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, कोटि-योजन।
एक एक वैकुण्ठेर विस्तार वर्णन॥4॥

अनुवाद—भगवान् श्रीकृष्णके प्रकाश और विलासादि अनन्त स्वरूपोंका परव्योममें पृथक् पृथक् अपना वैकुण्ठ धाम है, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। एक-एक वैकुण्ठका परिमाण सौ, हजार, दस हजार, लाख, करोड़ योजन है [परन्तु प्राकृत जगत्के मापके अनुसार उनके परिमाणको मापा नहीं जा सकता]॥3-4॥

अनुभाष्य—वैकुण्ठका परिमाण मायिक ब्रह्माण्डके समान नहीं है। वैकुण्ठ—सैकड़ों, हजारों, दस हजारों, लाखों, करोड़ों अथवा असंख्य योजनवाला है। जिसमें किसी प्रकारके परिमाणसे युक्त कुण्ठाधर्म नहीं है, वही 'वैकुण्ठ' है॥4॥

परव्योममें आधार और विषय-वस्तु, धाम और विग्रह—अभिन्न शुद्धसत्त्वचिद्विलासमय भगवद्-विग्रह :—

सब वैकुण्ठ—व्यापक, आनन्द-चिन्मय।
पारिषद-षड़ैश्वर्य-पूर्ण सब हय॥5॥

अनन्त वैकुण्ठ एक एक देशे यार।
से परव्योमेर केबा गणये विस्तार॥6॥

अनुवाद—सभी वैकुण्ठ व्यापक हैं, चिन्मय-आनन्दसे बने हैं। वैकुण्ठवासी भगवान्के परिकर हैं और वे

भगवान्‌के समान षड़ैश्वर्योंसे परिपूर्ण हैं। परव्योमके एक प्रान्तमें ही असंख्य वैकुण्ठलोक स्थित हैं, इसलिये उस परव्योमके परिमाणको कौन माप सकता है?॥ 5-6॥

गोलोक ही सहस्रदल-कमलके समान
परव्योमकी कर्णिका :—

अनन्त-वैकुण्ठ-परव्योम यार दलश्रेणी।
सर्वोपरि कृष्णलोके 'कर्णिकार' गणि॥ 7॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 7॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चिन्मय-जगत् एक कमलके स्वरूपका है; उस कमलके ऊपरी (बीचवाले) भाग 'कर्णिका' रूपी श्रीकृष्णलोकके चारों ओर पंखुड़ियोंके रूपमें अनन्त वैकुण्ठ परव्योममें विराजमान हैं॥ 7॥

विष्णु और विष्णुधाम, दोनों ही अधोक्षज होनेके कारण
ब्रह्मादिके लिये भी अगोचर :—

एइमत षड़ैश्वर्य, स्थान, अवतार।
ब्रह्मा, शिव अन्त ना पाय—जीव कोन् छार॥ 8॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 8॥

अनुभाष्य—वैकुण्ठके षड़ैश्वर्यपूर्ण स्थान और षड़ैश्वर्ययुक्त अवतारोंकी सीमा मायिक राज्यके ईश्वर ब्रह्मा अथवा शिव आदिके भी गोचर नहीं हो सकती, माया वशीभूत जीवोंकी तो बात ही क्या है॥ 8॥

अप्राकृत अतीन्द्रिय अधोक्षज विष्णु—
मनोधर्मवालोंके लिये दुर्ज्ञेय :—
श्रीमद्भागवत (10/14/21)—

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीड़सि योगमायाम्॥ 9॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 9॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भूमन्, हे भगवन्, हे परात्मन्, हे योगेश्वर, इस त्रिभुवनमें आपकी लीला कहाँ, किस रूपमें, योगमायाका विस्तार करके आप कब क्रीड़ा करते हैं, यह कौन जान सकता है?॥ 9॥

अनुभाष्य—गैयाओं और बछड़ोंके हरणके फलस्वरूप ब्रह्माका अभिमान श्रीकृष्णके द्वारा चूर्ण होनेपर ब्रह्मा श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर निम्नलिखित दो श्लोकोंके द्वारा उनका स्तव कर रहे हैं—

हे भूमन् (विराट्), भगवन्, परात्मन्, योगेश्वर भवतः उतीः (लीलाः) क्व वा, कथं वा, कदा वा, कति वा, योगमायां विस्तारयन् क्रीड़सि, इति त्रिलोक्यां कः वेत्ति? [न कोऽपि जानात्यतोऽचिन्त्यं तव योगमायावैभवमिति भावः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [आपकी योगमायाके अचिन्त्य वैभवको कोई नहीं जान सकता—यह भाव है]॥ 9॥

एइमत कृष्णेर दिव्य सद्‌गुण अनन्त।
ब्रह्मा-शिव-सनकादि ना पाय याँर अन्त॥ 10॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीकृष्णके अनन्त दिव्य सद्‌गुण हैं, ब्रह्मा-शिव-सनकादि भी उनका पार नहीं पा सकते॥ 10॥

विश्वके सबसे अधिक सूक्ष्म गणना करनेवाले भी
विष्णुके गुणोंका परिमाण करनेमें असमर्थ :—
श्रीमद्भागवत (10/14/7)—

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।
कालेन येर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भू-पांशवः खे मिहिका द्युभासः॥ 11॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सभी पण्डितोंने भूमिके धूलिकणोंकी, आकाशके हिमकणोंकी और नक्षत्रों आदिके कालकी गणना की है; किन्तु क्या उनमेंसे कोई भी जगत्‌के हितके लिये अवतीर्ण और अनन्तगुणरूप जो आप हैं, आपके गुणोंकी गणना करनेमें समर्थ होता है?॥ 11॥

अनुभाष्य—

यैः सुकल्पैः (सुनिपुणैः जनैः बहुजन्मना) वा [वितर्के] कालेन भू-पांशवः (पृथ्वीपरमाणवः) खे (आकाशे) मिहिकाः (हिमकणाः) द्युभासः (दिवि ज्योतिष्काणां किरणपरमाणवः) अपि विमिताः (विशेषेण गणिताः) [तेषां] के (लोकाः) अस्य (विश्वस्य) हितावतीर्णस्य (मङ्गलाय प्रकटमानस्य, पालनाय बहुगुणाविष्कारेण अवतीर्णस्य वा) गुणात्मनः (त्रिगुणाधिष्ठातुः) ते (तव) गुणान् अपि [पुनः] विमातुं (एतावन्तः इति गणयितुम्) ईशिरे (समर्थाः बभूवुः, दूरतः तद्विशेषवार्त्ता इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्राह भाष्य देखें।

भाः 2/7/40 और 11/4/2 श्लोक देखें॥ 11॥

स्वयं शेष भी श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करके उसका अन्त नहीं पाते :—

ब्रह्मादि रहु—सहस्रवदने 'अनन्त'।
निरन्तर गाय मुखे, ना पाय गुणेर अन्त॥ 12॥

अनुवाद—ब्रह्मादिकी बात तो रहने ही दो—सहस्रवदन (हजार मुखवाले) अनन्त भी अपने मुखसे निरन्तर उनके गुणोंका गान करके श्रीकृष्णके गुणोंका अन्त नहीं पाते॥ 12॥

अनुभाष्य—चार मुखोंसे ब्रह्मा अथवा पाँच मुखोंसे शिवकी बात तो दूर, अनन्तदेव निरन्तर सहस्र मुखोंसे गान करके भी उनके गुणोंकी सीमा नहीं प्राप्त करते। पाठान्तरमें,—"ब्रह्मादि रहु, अनन्त सहस्रवदन। निरन्तर गाय मुखे, ना पाय गणन॥"12॥

श्रीमद्भागवत (2/7/41)में :—

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते
मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः
शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम्॥ 13॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं ब्रह्मा और तुम्हारे अग्रज (बड़े भाई) सनकादि सभी मुनि मायाधीश पुरुषका अन्त नहीं जान सकते, तब और लोग कैसे जान सकते हैं? सहस्र मुखवाले अनन्तदेव भी उनका गुणोंका गान करते-करते आज तक भी उनका पार नहीं पा पाये॥ 13॥

अनुभाष्य—ब्रह्मा अपने शिष्य नारदसे भगवान् विष्णुके लीलावतार-समूहकी चेष्टाएँ, प्रयोजन और विभूतियोंका वर्णन करके उनके दुर्ज्ञेय और अपरिमेय शक्तिवैभवके विषयमें बतला रहे हैं—

पुरुषस्य (भगवतः) विष्णोः मायाबलस्य (मायाविभूतेः) अन्तम् अहं (ब्रह्मा) न विदामि (वेद्मि, तथा) ते (तव) अग्रजाः (भ्रातरः) अमी मुनयः (सनकादयः) च न जानन्ति; दशशताननः (सहस्रवदनः) आदिदेवः शेषः (भूधारी अनन्तः) अपि अस्य (भगवतः) गुणान् गायन् (कीर्त्तयन्) अधुना (साम्प्रतम्) अपि पारं (सीमानं) न समवस्यति (निश्चिनोति प्राप्नोतीत्यर्थः, अतः) ये अपरे (लोकाः, ते) कुतः [विदन्तीति भावः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 13॥

साक्षात् श्रीकृष्णके लिये भी उनके गुण अपरिमेय :—

तेँहो रहु—सर्वज्ञ-शिरोमणि श्रीकृष्ण।
निज-गुणेर अन्त ना पाञा हयेन सतृष्ण॥ 14॥

अनुवाद—अनन्तदेवकी बातको तो रहने दो, सर्वज्ञ-शिरोमणि श्रीकृष्ण भी अपने ही गुणोंका अन्त नहीं पाकर उनको जाननेके लिये उत्कण्ठित रहते हैं॥ 14॥

अनुभाष्य—*'तेँहो रहु'*—अनन्तदेवकी बात तो दूर रहे, स्वयं श्रीकृष्ण भी अपने गुणोंकी सीमाको प्राप्त नहीं कर पानेके कारण उत्कण्ठित हैं॥ 14॥

आपके अतिरिक्त सभीका निषेध करते-करते निर्विशेष-वर्णनके बाद अन्तमें श्रुतियाँ आपके सविशेष विग्रहका ही वर्णन करती हैं :—

श्रीमद्भागवत (10/87/41)में—

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः।

ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः॥ 15॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आप—अनन्त हैं, इसलिये वे देवता भी आपका अन्त नहीं पा पाये। आप स्वयं भी अपने गुणोंका अन्त नहीं पाते। आकाशमें परमाणुओंकी भाँति आवरणसहित सभी ब्रह्माण्ड कालके साथ घूम रहे हैं। इस कारण हम श्रुतियाँ आपका अनुसन्धान करते हुए जिसे भी लक्ष्य करती हैं, वे आप नहीं हैं—ऐसा करते-करते [अन्तमें] सब कुछ ही आपमें पर्यवसित (समाप्त) होता है; इस प्रकार स्थिर करके आप ही सभीके आधार हैं,—ऐसा सिद्धान्त करती हैं॥ 15॥

अनुभाष्य—जनलोकमें ब्रह्मसत्रयज्ञमें श्रवणके इच्छुक ऋषियोंसे चतुःसनमेंसे एक ब्रह्मर्षि सनन्दनने श्रुतियोंके द्वारा की गयी इस भगवद्-स्तुतिका गान किया था, उसीका पुनः आदि ऋषि श्रीनारायणने देवर्षि नारदसे बादमें वर्णन किया था—

हे भगवन्, द्युपतयः (स्वर्गाधिपाः लोकपतयः ब्रह्मादयः) एव (अपि) ते (तव) अनन्ततया (अन्ताभावेन) अन्तं (गुणसीमां) न ययुः (प्रापुः—यत् अन्तवद्वस्तु, तत् किमपि त्वं न भवसीत्यर्थः); [आस्तां द्युपतयः,] यद् (यस्मात्) त्वमपि [स्वयम् आत्मनः अन्तम् अनन्ततया न यासि]; ननु (अहो) यद् (यस्य तव) अन्तरा (मध्ये) सावरणाः (उत्तरोत्तरं दशगुणसप्तावरणसमन्विताः) अण्डनिचयाः (ब्रह्माण्ड-गणाः) वयसा (कालचक्रेण) खे (आकाशे) रजांसि इव सह [एकदैव न तु पर्यायेण] वान्ति (परिभ्रमन्ति); यद् (यस्मात्) श्रुतयः अतन्निरसनेन (निरन्तरं जड़निषेधेन) भवन्निधनाः (भवति त्वयि निधनं समाप्तिः यासां ताः सत्यः) त्वयि (चिद्विलास-विशेषमये) हि फलन्ति (पर्यवसन्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—हे भगवन्! स्वर्गादिके लोकपाल ब्रह्मादि भी आपके गुणोंका अन्त नहीं पाते, और स्वयं अनन्त होनेपर आप भी अपना अन्त नहीं पा पाते। अहो! आकाशमें धूलिके कण जिस प्रकार घूमते रहते हैं, उसी प्रकार आपमें भी (आपके रोमकूपोंमें) आवरणसहित (उत्तरोत्तर दस गुणा बड़े सात आवरणयुक्त) ब्रह्माण्डसमूह कालचक्रके द्वारा परिभ्रमण कर रहे हैं। इसलिये श्रुतियाँ आपके अतिरिक्त अन्यान्य सभी वस्तुओंको निषेध करते-करते अन्तमें आपके विशेष चिद्-विलास विग्रहमें ही पर्यवसित होती हैं॥ 15॥

व्रजमें श्रीकृष्णकी अद्भुत गोचारण-लीलाका वर्णन :—

सेह रहु—व्रजे यबे कृष्ण-अवतार।
ताँर चरित्र विचारिते मन ना पाय पार॥ 16॥

अनुवाद—वैकुण्ठादिमें श्रीकृष्णके ऐश्वर्य और उनके अनन्त गुणोंकी बात तो एक ओर रहे, व्रजमें जब श्रीकृष्णने अवतार लेकर ब्रह्म-विमोहनादि जो अद्भुत लीलाएँ कीं, उनका विचार करके मन और बुद्धिसे उन सबका पार नहीं पाया जा सकता॥ 16॥

बछड़ोंको चुरानेके कारण अपने चिद्विलासको प्रकट करके ब्रह्माके अहङ्कारका नाश :—

प्राकृताप्राकृत सृष्टि कैला एकक्षणे।
अशेष वैकुण्ठजाण्ड स्व-स्व-नाथ-सने॥ 17॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 17॥

अनुभाष्य—एक क्षणमें ही श्रीकृष्णने परव्योमनाथके साथ असंख्य अप्राकृत वैकुण्ठ लोकोंकी और अनेक ब्रह्मादिके साथ असंख्य प्राकृत ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि की॥ 17॥

उस लीलाकी परम-चमत्कारिता :—

एमत अन्यत्र नाहि शुनिये अद्भुत।
याहार श्रवणे चित्त हय अवधूत॥ 18॥

अनुवाद—ऐसी अद्भुत लीलाके विषयमें अन्यत्र कहीं भी नहीं सुना जाता, जिसे सुनने मात्रसे चित्त अभिभूत और शुद्ध हो जाता है॥ 18॥

अनुभाष्य—*'अवधूत'*—कम्पित, आन्दोलित, उद्वेलित, अभिभूत, पराहत। पाठान्तरमें, "याँहार श्रवणे चित्त-मल हय धूत।" अर्थात् जिसके श्रवणमात्रसे चित्तका मल धुल जाता है॥ 18॥

श्रीकृष्णके द्वारा असंख्य गैयाओं और बछड़ोंको प्रकट करना :—

***"कृष्णवत्सैरसंख्यातैः"*—शुकदेव-वाणी।**
कृष्ण-सङ्गे कत गोप संख्या नाहि जानि॥ 19॥

अनुवाद—शुकदेव गोस्वामीने कहा है कि गोचारणमें जाते हुए श्रीकृष्णके साथ असंख्य बछड़े थे और उनके साथ कितने गोपबालक थे, उनकी भी गणना नहीं हो सकती अर्थात् वे भी असंख्य थे॥ 19॥

अनुभाष्य— *"कृष्णवत्सैरसंख्यातैः"*—भाः 10/12/3 श्लोकका प्रथम चरण॥ 19॥

एक एक गोप करे ये वत्स चारण।
कोटि, अर्बुद, शङ्ख, पद्म, ताहार गणन॥ 20॥

अनुवाद—एक-एक गोपबालक जितने बछड़ोंको चराते थे, उनकी संख्या भी करोड़, अरब, शङ्ख, पद्म आदि थी॥ 20॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णावतारमें ब्रह्माके द्वारा श्रीकृष्णकी महिमाकी परीक्षा करनेके लिये बछड़ों और गोपबालकोंको चुरानेपर श्रीकृष्णने अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे प्राकृत एवं अप्राकृत वस्तुएँ, सभीको प्रकट किया था। उन्होंने चिन्मय गैयाओं, गोपबालकों और सम्पूर्ण वैकुण्ठतत्त्वको प्रकट करके अप्राकृत सृष्टि की। अपने अपने ब्रह्माके साथ अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करके प्राकृत सृष्टि की। इस अद्भुत कथाका श्रवण करनेसे चित्तका मल धुल जाता है। 'असंख्य कृष्णवत्स' इस शब्दके द्वारा श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले सभी बछड़े एवं सभी गोपबालक असंख्य रूपमें प्रकट हुए॥ 17-20॥

अनुभाष्य—

एकं दशं शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा। लक्षञ्च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च॥ वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खपद्मौ च सागरः। अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्॥

[अर्थात् "दस-दस गुणा वृद्धिके द्वारा क्रमशः एक, दस, सौ, हजार, अयुत (दस-हजार), लाख, नियुत (दस लाख), करोड़, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य और परार्द्ध संख्याकी गणना होती है।"]॥ 20॥

वेत्र, वेणु, दल, शृङ्ग, वस्त्र, अलङ्कार।
गोपगणेर यत, तार नाहि लेखा-पार॥ 21॥

अनुवाद—गोप बालकोंके बेंत, वेणु, कमल-पुष्प, सींगा, वस्त्र और अलङ्कार आदि भी असंख्य थे॥ 21॥

श्रीकृष्णके द्वारा प्रकटित असंख्य वैकुण्ठनाथ और ब्रह्माण्डपतियोंके द्वारा श्रीकृष्ण-स्तुति :—

सबे हैला चतुर्भुज वैकुण्ठेर पति।
पृथक् पृथक् ब्रह्माण्डेर ब्रह्मा करे स्तुति॥ 22॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसे प्रकटित गोपबालक और बछड़े, सभी चतुर्भुज वैकुण्ठपति बन गये। अलग-अलग ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा श्रीकृष्णके साथ उन सब वैकुण्ठपतियोंकी स्तुति करने लगे॥ 22॥

श्रीकृष्णसे लीलाका प्रकाश, श्रीकृष्णमें ही सङ्गोपन :—

एक कृष्णदेह हैते सबार प्रकाशे।
क्षणेके सबाइ सेइ शरीरे प्रवेशे॥ 23॥

अनुवाद—वे सभी एक ही श्रीकृष्णकी देहसे प्रकाशित हुए और क्षणमात्रमें ही वे सभी उनके शरीरमें प्रवेश कर गये॥ 23॥

ब्रह्माका विस्मय और मूर्च्छा, मूर्च्छाके बाद श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीकृष्णके ऐश्वर्यसे अवगत होना :—

इहा देखि' ब्रह्मा हैला मोहित, विस्मित।
स्तुति करि' सेइ पाछे करिला निश्चित॥ 24॥

अधोक्षज श्रीकृष्णवैभव-निर्णयमें अपनी अक्षमता-ज्ञापन :—

"ये कहे,—'कृष्णेर वैभव मुञि सब जानों'।
से जानुक,—कायमने मुञि एइ मानों॥ 25॥
एइ ये तोमार अनन्त वैभवामृतसिन्धु।
मोर वाङ्मानसेर गम्य नहे एक बिन्दु॥ 26॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी इस लीलाको देखकर हमारे ब्रह्माण्डके ब्रह्मा मोहित तथा विस्मित हो गये। श्रीकृष्णकी स्तुति करनेके पश्चात् उन्होंने निश्चित किया,—"जो कहता है कि मैं श्रीकृष्णके वैभवके विषयमें सब कुछ जानता हूँ, वह जानता है तो जाने, किन्तु मैं तो अपने काय और मनसे यही मानता हूँ कि आपके अनन्त वैभव-अमृतके सिन्धुकी एक बूँदकी महिमा भी मेरे वाणी और मनके अगोचर है॥ 24-26॥

श्रीमद्भागवत (10/14/38)में :—

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः॥"27॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो कहते हैं,—'मैं श्रीकृष्णतत्त्व जानता हूँ', तो वे जानें, किन्तु मैं बहुत कुछ बोलना नहीं चाहता हूँ। प्रभो! मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि आपका समस्त वैभव—मेरे मन, शरीर और वाणीके अगोचर है॥"27॥

अनुभाष्य—बछड़ोंको हरण करनेके फलस्वरूप श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्माका अभिमान चूर्ण होनेपर ब्रह्मा श्रीकृष्णके भक्तवात्सल्य और उनके अधोक्षज होनेका वर्णन कर रहे हैं—

हे प्रभो, जानन्तः (विज्ञाः त्वदचिन्त्यानन्तगुणगण-ज्ञानाभिमानिनः) एव जानन्तु, बहूक्त्या (अति प्रजल्पेन) किम् (अधिक-वाग्वेगेन फलं नास्तीत्यर्थः)। तव वैभवं मे (मम ब्रह्मणः) वपुषः मनसः वाचः (कायमनोवाक्यानां) न गोचरः (न विषयः, न स्पर्शाधिकारः भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 27॥

श्रीकृष्णसे अभिन्न श्रीवृन्दावन-धाम :—

कृष्णेर महिमा रहु—केबा तार ज्ञाता।
वृन्दावन-स्थानेर देख आश्चर्य विभुता॥ 28॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी महिमाकी बात तो छोड़ो, उसे कौन जान सकता है? वृन्दावन धामकी ही आश्चर्यपूर्ण सर्वव्यापकताको देखो॥ 28॥

वृन्दावनके एक प्रान्तमें परव्योममें स्थित अनन्त करोड़ों वैकुण्ठ :—

षोलक्रोश वृन्दावन,—शास्त्रेर प्रकाशे।
तार एकदेशे वैकुण्ठजाण्डगण भासे॥ 29॥

अनुवाद—शास्त्रोंके अनुसार वृन्दावनका परिमाण मात्र सोलह कोस है, किन्तु उसी वृन्दावनके एक भागमें ही अनन्तकोटि वैकुण्ठ और अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं॥ 29॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजमण्डलमें जो बारह वन हैं—वे सब मिलाकर चौरासी कोस परिमाण होता है। उनमेंसे वृन्दावन-नामक वन वर्तमान समयमें वृन्दावन-नगरकी सीमासे नन्दग्राम-वृषभानुपुर (बरसाना) तक सोलह कोस है॥ 29॥

अनुभाष्य—शास्त्रोंमें वृन्दावन 'सोलह कोस'का कहा गया है। इसीके एक भागमें समस्त वैकुण्ठ और बहुत विस्तृत ब्रह्माण्ड प्रकाशित हैं॥ 29॥

असीम श्रीकृष्णवैभवसिन्धुकी एक बूँदका निर्देश :—

अपार ऐश्वर्य कृष्णेर—नाहिक गणन।
शाखा-चन्द्र-न्याये करि दिग्दरशन॥ 30॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अपार है—उसकी गणना नहीं की जा सकती। मैं तो केवल शाखा-चन्द्र-न्यायसे उसका दिग्दर्शन करा रहा हूँ॥ 30॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'शाखा-चन्द्र-न्याय'*—चन्द्रको एक शाखाके पीछे दिखलाकर जिस प्रकार चन्द्रका परिचय दिया जाता है, उसी प्रकार किसी तत्त्वके एक भागको दिखलाकर सब भागोंका कुछ ज्ञान दिया जाता है। इसी न्यायको 'शाखा-चन्द्र-न्याय' कहते हैं॥ 30॥

वाणी और मनसे अतीत श्रीकृष्णके ऐश्वर्यके वर्णनमें महाप्रभुकी विह्वलता :—

ऐश्वर्य कहिते स्फुरिल ऐश्वर्य-सागर।
मनेन्द्रिय डुबिला, प्रभु हइला फाँपर॥ 31॥

भागवतेर एइ श्लोक पड़िला आपने।
अर्थ आस्वादिते सुखे करेन व्याख्याने॥ 32॥

अनुवाद—ऐश्वर्यकी बात कहते हुए महाप्रभुके मनमें श्रीकृष्णका ऐश्वर्य-सागर स्फुरित हो उठा, उनके मन तथा इन्द्रियाँ उसीमें डूब गये और वे मुग्ध हो गये। तब महाप्रभुने भागवतका एक श्लोक पढ़ा और उस श्लोकके अर्थका आस्वादन करनेके लिये स्वयं आनन्दपूर्वक उसकी व्याख्या करने लगे॥ 31-32॥

तीनों सर्गोंके अधीश्वर अद्वितीय अविनश्वर
लोकपालोंके द्वारा पूजित विग्रह :—
श्रीमद्भागवत (3/2/21)में—

स्वयन्त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः
स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः
किरीटकोटीड़ितपादपीठः॥ 33॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और शिवके अधीश्वर हैं, इसलिये वे समान, हीन और अतिशयसे रहित हैं एवं स्वाराज्यलक्ष्मीके द्वारा उनकी समस्त कामनायें पूर्ण हुई हैं। चिरकालसे सभी लोकपाल उनकी पूजा करनेके लिये आकर उनकी पादपीठकी (चरणकमलोंकी) स्तुति करते हुए अपने मस्तकपर सुशोभित मुकुटोंको झुकाकर प्रार्थना किया करते हैं॥ 33॥

अनुभाष्य—लघुभागवतामृतके पूर्वखण्डमें 'श्रीकृष्ण—श्रीनारायणके विलास हैं' इस पूर्वपक्षका खण्डन करते हुए उत्तरपक्ष वर्णनमें 302-323 संख्यामें इस श्लोककी व्याख्या और कारिका देखें। श्रीकृष्णके अप्रकट होनेपर श्रील उद्धव उनके वियोगमें शोकाकुल होकर श्रीविदुरसे श्रीकृष्णके बालचरित और परम-ऐश्वर्यका वर्णन कर रहे हैं—

स्वयं [भगवान्] तु असाम्यातिशयः (न साम्यम् अतिशयश्च यस्मात् सः असमोर्ध्वः), त्र्यधीशः (गोलोकपरव्योमदेवीधाम्नां, गोकुल-मथुरा-द्वारकाधाम्नां वा, कारणं च समष्टिः हिरण्योगर्भो वा व्यष्टिः विराट् वेति सर्गत्रयाणां वा, सत्त्वरजस्तमोगुणाधिष्ठातृणां विष्णुब्रह्माशिवानां वा, चिज्जीवमायाशक्तीनां वा, भूर्भुवःस्वरिति व्याहृतित्रयाणां वा, स्वर्गमर्त्त्य-पाताल-लोकत्रयाणां वा ईशः अधिपतिः) स्वाराज्यलक्ष्मयाप्तसमस्तकामः (परमचिदानन्दस्वरूप-सम्पत्त्या एव लब्धनिखिलभोगः) बलिं (करम् अर्हणं वा) हरद्भिः (समर्पयद्भिः) चिरलोकपालैः (चिरकालीनैः ब्रह्मारुद्राद्यैः) किरीट-कोटीड़ित-पादपीठः (किरीटकोटिभिः कोटि मुकुटाग्रैः ईड़ितं वन्दितं पादपीठं पादसिंहासन यस्य सः—उग्रसेनं यत् न्यबोधयत्, तत् नः विग्लापयतीत्युत्तरेणान्वयः)।

श्लोक-भावानुवाद—जो स्वयं भगवान् हैं, जिनके समान अथवा जिनकी अपेक्षा कोई बड़ा नहीं है, जो तीनों लोकों (गोलोक, परव्योम, देवीधाम; अथवा गोकुल, मथुरा, द्वारका; अथवा कारणोदकशायी, गर्भोदकशायी, पयोब्धीशायी नामक तीन पुरुषोंके; अथवा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणके अधिष्ठातृ देवता क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, शिवके; अथवा भूर्भुवःस्वःके; अथवा स्वर्ग-मर्त्त्य-पातालके) अधीश्वर हैं, परम चिदानन्द स्वरूप सम्पत्तिके द्वारा जिन्होंने समस्त काम्य वस्तुओंको प्राप्त किया है, पूजोपहार समर्पण करके ब्रह्मादि चिरलोकपाल करोड़ों-करोड़ों मुकुटोंके अग्रभागके द्वारा जिनकी पादपीठकी पूजा करते हैं, वे ही श्रीकृष्ण उग्रसेनके अनुवर्ती होकर चलेंगे, यही उनके दास—हमारे लिये अत्यन्त दुःखका विषय है। (इसका अगले श्लोक '*तत् नः विग्लापयत्*' के साथ अन्वय करें।)॥ 33॥

अमृतानुकणा—श्रीश्रीमद् रूप गोस्वामी प्रभुने उनके श्रीलघुभागवतामृत-ग्रन्थमें आलोच्य 'स्वयन्त्वसाम्यातिशय-स्त्र्यधीशः' (भाः 3/2/21)-श्लोककी जो व्याख्या अपनी कारिकामें प्रदान की है, वह इस प्रकार है,—*'असाम्यातिशयः'*—जिनका अन्यके साथ साम्य नहीं है और जिनसे आधिक्य नहीं है, इन दो विशेषणोंके द्वारा सभी भगवद्-स्वरूपोंसे श्रीकृष्णका उत्कर्ष निरूपित हुआ है, इसलिये यहाँपर परव्योमनाथकी अपेक्षा भी श्रीकृष्णका आधिक्य प्रदर्शित हुआ है। *'स्वयं'*—इस

पदके द्वारा अन्य किसीकी भी अपेक्षा करके श्रीकृष्णका स्वरूपादि प्रकाशित नहीं हुआ है, यही यहाँ कहा गया है। श्रीमद्भागवतमें श्रीदशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्रके सम्बन्धमें भी कहा गया है,—*'अधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः'* (भाः 9/11/20)—उनका प्रभाव आधिक्य और साम्यरहित है। किन्तु ऐसा होनेपर भी 'स्वयं' यह पद प्रयोग नहीं हुआ है। इसलिये श्रीकृष्णके साथ श्रीरामका ऐक्य होनेके कारण ही उक्त 'अधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः' विशेषण प्रयोग हुआ है, ऐसा जानना होगा, क्योंकि श्रीकृष्ण और श्रीरामके बीचमें नरलीला, नराकार, नरस्वभावका साम्य है और उसी कारण ही श्रीकृष्णको श्रीरामरूप अतिशय प्रिय हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें श्रीकृष्णवाक्यमें भी यह व्यक्त हुआ है,—*"अन्तरङ्गास्वरूपा से मत्स्य-कूर्मादयस्त्वमी। सर्वात्मनायमत्रापि श्रीमद्दशरथात्मजः॥"* अर्थात् 'मत्स्य-कूर्मादि अवतारसमूह मेरे अन्तरङ्गस्वरूप हैं, इनमेंसे भी दशरथपुत्र श्रीराम-स्वरूप ही सभी प्रकारसे अर्थात् नरलीलादि-साम्यसे मेरे अतिशय प्रिय हैं।' *"स्वयन्त्वसाम्यातिशयः", "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"* (भाः 1/3/28)—इन दो श्लोकोंमें श्रीकृष्णके विशेष परमैश्वर्यके वर्णनमें जो 'स्वयं'-पद दो बार कहा गया है, यह श्रीकृष्णके अन्य स्वरूपके सहित समान धर्मके ऐक्यके कारण नहीं है, उनका आधिक्य स्वतःसिद्ध है।

"त्र्यधीशः"—गोलोक, मथुरा और द्वारका-नामक जो तीन धाम हैं, उनके अधिपति होनेसे श्रीकृष्ण अधीश्वर हैं; अथवा प्रकृतिपर ईक्षण करनेवाले (नियन्ता) कारणोदशायी, विराटके अन्तर्यामी गर्भोदशायी और क्षीरोदशायी—इन तीन पुरुषावतारोंके ऊपर स्थित ईश्वर होनेके कारण वे 'त्र्याधीश' हैं। *'स्वाराज्यलक्ष्म्या आप्तसमस्तकामः'*—स्वाराज्य-लक्ष्मीके कारण समस्त कामनायें जिनकी पूर्ण हुई हैं। वे 'स्व'-द्वारा अर्थात् आत्मके द्वारा अथवा आत्मभूता श्रेष्ठ शक्तिके द्वारा विराज करते हैं, इसलिये वे 'स्वराट्' हैं। वह स्वराट्जनित भाव (धर्म) ही 'स्वाराज्य'के नामसे कहा जाता है। वह स्वाराज्य ही लक्ष्मी अर्थात् सबसे भी बहुत अधिक सम्पत्ति है। इसी कारण उनकी समस्त कामनायें पूर्ण हुई हैं। *'समस्तकाम'*-शब्दसे अभीष्ट विषयोंकी सम्पूर्ण सिद्धिको समझना होगा।

'चिरलोकपाल'—अर्थात् चिरजीवी (दीर्घजीवी), लोकपाल—पद्मज ब्रह्मादि; उन लोकपालगणोंके करोड़ों मुकुटोंके द्वारा अर्थात् सैंकड़ों-सैंकड़ों अर्बुद मुकुटोंके द्वारा जिनकी दो पादपीठ (दो पादुकायें) पूजित अर्थात् संस्तुत हुई हैं, वे श्रीकृष्ण हैं। हीरे आदि रत्नमय मुकुटसमूहके द्वारा पादपीठके निकट एकत्रित लोकपालोंकी भीड़में प्रकटित जो शब्द-परम्परा होती है, वही 'स्तुति'-रूपमें प्रकाशित हुई है। *'बलिं हरद्भिः'*—अपने अपने कार्यमें अवस्थित ब्रह्मादि लोकपालोंके द्वारा भगवान्की आज्ञा पालनको ही यहाँपर 'बलिहरण' कहा गया है।

अनेक प्रकारके अनन्त विचित्र ब्रह्माण्ड भगवद्-शक्तिसे प्रकाशमान होते हैं। श्रीहरिकी शक्तिकी विचित्रताके कारण कुछ ब्रह्माण्डोंका परिमाण सौ करोड़ योजन, कुछ ब्रह्माण्डोंका परिमाण निखर्व योजन, कुछ ब्रह्माण्डोंका परिमाण पद्मायुत योजन, और कुछका परिमाण सौ परार्द्ध योजन होता है। उनमें किसी ब्रह्माण्डमें बीस भुवन, किसी ब्रह्माण्डमें पचास, किसी ब्रह्माण्डमें सौ, किसी ब्रह्माण्डमें हजार, किसी ब्रह्माण्डमें दस हजार और किसी ब्रह्माण्डमें एक लाख भुवन हैं। उन सब ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा-इन्द्रादि लोकपालगण अनेक रूपोंमें विराजमान हैं। उन्हें *'चिरलोकपाल'* कहा जाता है। उनके करोड़ों-करोड़ों मुकुटोंके द्वारा श्रीकृष्णकी इस पादपीठकी स्तुति होती है॥ 33॥

श्रीकृष्ण—(1) असमोर्ध्व :—

परम ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान्।
ताते बड़, ताँर सम केह नाहि आन॥ 34॥

अनुवाद—[महाप्रभु उपरोक्त श्लोककी व्याख्या करते हुए कह रहे हैं—] परम ईश्वर श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्

हैं। श्रीकृष्णसे बड़ा अथवा उनके समान अन्य कोई नहीं है॥ 34॥

ब्रह्मसंहिता (5/1)में :—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥ 35॥

अनुवाद—सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं; वे स्वयं अनादि और सभीके आदि एवं समस्त कारणोंके कारण हैं॥ 35॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/107 संख्या देखें॥ 35॥

श्रीकृष्ण—(2) त्र्यधीश;
(क) गुणावतारगत प्रथम (बाह्य) अर्थ :—

ब्रह्मा, विष्णु, हर,—एइ सृष्ट्यादि-ईश्वर।
तिने आज्ञाकारी कृष्णेर, कृष्ण—अधीश्वर॥ 36॥

अनुवाद—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों क्रमशः सृष्टि, स्थिति और प्रलयके ईश्वर हैं। ये तीनों भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं और श्रीकृष्ण इन तीनोंके नियन्ता होनेके कारण इनके अधीश्वर हैं॥ 36॥

अनुभाष्य—*'ब्रह्मा'*—जगत्की सृष्टि करनेवाले, *'विष्णु'*—जगत्का पालन करनेवाले, *'हर'*—जगत्का संहार करनेवाले, ये तीन कार्य करनेवाले श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करनेवाले दास हैं; श्रीकृष्ण ही एकमात्र सर्वेश्वर हैं॥ 36॥

श्रीमद्भागवत (2/6/32)में :—

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्॥ 37॥

अनुवाद—ब्रह्माने कहा—हरिके द्वारा नियुक्त होनेपर ही मैं सृष्टि करता हूँ, उनकी आज्ञासे ही शिव नाश करते हैं, (अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था) तीन शक्तियोंको धारण करनेवाले वे हरि ही पुरुषरूपमें विश्वका पालन करते हैं॥ 37॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 20/318 संख्या देखें॥ 37॥

(ख) पुरुषावतारगत दूसरा (बाह्य) अर्थ :—

ए सामान्य, त्र्यधीश्वरेर शुन अर्थ आर।
जगत्कारण तिन पुरुषावतार॥ 38॥

महाविष्णु, पद्मनाभ, क्षीरोदकस्वामी।
एइ तिन—स्थूल-सूक्ष्म-सर्व-अन्तर्यामी॥ 39॥

एइ तिन—सर्वाश्रय, जगत्-ईश्वर।
ईंहो—कला-अंश याँर, कृष्ण—अधीश्वर॥ 40॥

अनुवाद—मैंने त्र्यधीशका गुणावतारके सम्बन्धमें जो अर्थ पहले किया है, वह सामान्य अर्थ है। अब तुम त्र्यधीश्वरका अन्य अर्थ सुनो। तीनों पुरुषावतार जगत्के कारण हैं। महाविष्णु, पद्मनाभ और क्षीरोदकशायी विष्णु—ये तीनों ईश्वर क्रमशः सर्व-अन्तर्यामी, सूक्ष्म-अन्तर्यामी और स्थूल अन्तर्यामी हैं। ये तीनों सभीके आश्रय और जगत्के ईश्वर होनेपर भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके कला तथा अंश है—इसलिये श्रीकृष्ण इन तीनोंके अधीश्वर हैं॥ 38-40॥

अनुभाष्य—*'महाविष्णु'*—कारणोदशायी अर्थात् सर्वान्तर्यामी हैं; *'पद्मनाभ'*—ब्रह्माकी सृष्टि करनेवाले गर्भोदशायी अर्थात् हिरण्यगर्भ, समष्टि अथवा सूक्ष्मान्तर्यामी हैं; और *'क्षीरोदकस्वामी'*—विष्णु अर्थात् विराट, व्यष्टि स्थूलान्तर्यामी हैं॥ 39॥

ब्रह्मसंहिता (5/44)में :—

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 41॥

अनुवाद—ब्रह्माण्डनाथ अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश, जिनके रोमकूपोंसे जन्म ग्रहण करते हैं और उनके निःश्वास-काल तक अवस्थित रहते हैं, वे महाविष्णु जिनके कला हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ 41॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/71 संख्या देखें॥ **41** ॥

(ग) श्रीकृष्णाधीन धामगत तीसरा (गुह्य) अर्थ :—

एइ अर्थ—बाह्य, शुन 'गूढ़' अर्थ आर।
तिन आवास-स्थान कृष्णेर, शास्त्रे ख्याति यार॥ 42॥

अनुवाद—'त्र्यधीश'-शब्दका उपरोक्त अर्थ भी बाह्य है। अब तुम गूढ़ अर्थ सुनो। शास्त्रोंमें ऐसी प्रसिद्धि है कि श्रीकृष्णके तीन आवास-स्थान हैं॥ **42**॥

अनुभाष्य—*'तिन आवास-स्थान'*—(1) अन्तर-आवास गोलोक, (2) मध्यम-आवास परव्योम, (3) बाह्य-आवास देवीधाम॥ **42**॥

(1) अन्तर-आवास गोलोक-वृन्दावनका वर्णन :—

'अन्तःपुर'—गोलोक-श्रीवृन्दावन।
याँहा नित्यस्थिति मातापिता-बन्धुगण॥ 43॥

मधुर ऐश्वर्य-माधुर्य-कृपादि-भाण्डार।
योगमाया—दासी, याँहा रासादि लीला-सार॥ 44॥

अनुवाद—'अन्तःपुर'—गोलोक-श्रीवृन्दावन है। वहाँपर श्रीकृष्णके माता-पिता-बन्धु-बान्धवोंका नित्य वास है। वह श्रीकृष्णके ऐश्वर्य, माधुर्य और कृपा आदिका भण्डार है। वहाँ योगमाया श्रीकृष्णकी दासीके रूपमें कार्य करती है और श्रीकृष्णकी समस्त लीलाओंकी सार रासलीला उसी वृन्दावनमें ही प्रकाशित होती है॥ **44**॥

गोस्वामिपादोक्त-श्लोक :—

करुणानिकुरम्बकोमले
मधुरैश्वर्यविशेषशालिनि।
जयति व्रजराजनन्दने न हि
चिन्ताकणिकाभ्युदेति नः॥ 45॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **45**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—करुणासमूहके द्वारा कोमल, विशेष माधुर्य-ऐश्वर्यसे युक्त व्रजराजनन्दनके जययुक्त होनेसे हमारी चिन्ताकणिकाका अर्थात् लेशमात्र चिन्ताका भी उदय नहीं हो सकता॥ **45**॥

अनुभाष्य—

करुणानिकुरम्बकोमले (करुणासमूहेन कोमलः स्वभावः यस्य सः तस्मिन्) मधुरैश्वर्यविशेषशालिनि (माधुर्यैश्वर्य-विचित्र-सम्पत्तिसम्पन्ने) व्रजराजनन्दने (कृष्णे) जयति (सर्वोत्कर्षमाविष्कुर्वति) नः (अस्माकं) चिन्ताकणिका (चिन्तालवमात्रम् अपि) न अभ्युदेति (आविर्भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **45**॥

(2) मध्यम आवास विष्णुलोक वैकुण्ठ-वर्णन :—

तार तले परव्योम—'विष्णुलोक'-नाम।
नारायण-आदि अनन्त स्वरूपेर धाम॥ 46॥

'मध्यम-आवास' कृष्णेर—षड़ैश्वर्य-भाण्डार।
अनन्त स्वरूपे याँहा करेन विहार॥ 47॥

अनन्त वैकुण्ठ याँहा—भाण्डार-कोठरि।
पारिषदगणे षड़ैश्वर्ये आछे भरि'॥ 48॥

अनुवाद—गोलोक-वृन्दावनके नीचे परव्योम है जिसे विष्णुलोक कहा जाता है। वह श्रीनारायणादि अनन्त भगवत्-स्वरूपोंका धाम है। षड़ैश्वर्योंका भण्डार परव्योम श्रीकृष्णका मध्यम-आवास है। परव्योममें असंख्य वैकुण्ठ लोक उस भण्डारके एक एक कक्षके समान हैं और वे सभी समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त हैं। उन असंख्य वैकुण्ठ लोकोंमें भगवान्के अनन्त स्वरूपोंके नित्य पार्षद उनके साथ वास करते हैं और वे सभी षड़ैश्वर्योंसे परिपूर्ण हैं॥ **46-48**॥

ब्रह्मसंहिता (5/43)में :—

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवी-महेश-हरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 49॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ **49**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गोलोक-नामक निज-धामके नीचे देवी, महेश और हरिके धामसमूहमें जिन्होंने उन समस्त प्रभावोंको स्थापित किया है, मैं उन आदिपुरुष गोविन्दका भजन करता हूँ॥ 49॥

अनुभाष्य—

तस्य (कृष्णस्य) गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले (निम्नभागे) देवीमहेशहरिधामसु (पारम्पर्यक्रमेण वैकुण्ठ-शिवधाम-देवीधामसु) तेषु तेषु च येन (गोविन्देन) ते ते प्रभावनिचयाः (विक्रमसमूहाः) विहिताः (स्थापिताः) च, तम् आदिपुरुषं गोविन्दम् अहं भजामि।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णके निजधाम गोलोकके नीचे यथाक्रमसे हरिधाम (वैकुण्ठ), महेश (शिव) धाम और देवी धाममें जिन्होंने यथायोग्यरूपसे अपने समस्त विक्रमको स्थापित किया है, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ 49॥

विरजामें अवस्थानका वर्णन :—
पाद्मोत्तरखण्ड (255/57)में—

प्रधान-परमव्योम्नोरन्तरे विरजा नदी।
वेदाङ्गस्वेदजनितैस्तोयैः प्रस्राविता शुभा॥ 50॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रधान अर्थात् मायिकतत्त्व और परव्योम, इन दोनोंके बीचमें विरजा-नदी है; वह नदी मङ्गलजनक वेदाङ्ग अर्थात् पुरुषके पसीनेसे उत्पन्न जलसे युक्त है॥ 50॥

अनुभाष्य—

प्रधान-परमव्योम्नाः (देवीधाम-वैकुण्ठयोः) अन्तरे (मध्ये) वेदाङ्गस्वेदजनितैः (वेदाः अङ्गानि यस्य—"अस्य निश्वसितम्" इति श्रुतेः, तस्य भगवतः घर्मोद्भवैः) तोयैः (सलिलैः) प्रस्राविता (प्रवाहिता) शुभा (जड़क्रियाहीना नैष्कर्मरूपिणी चिन्मात्रमयी) विरजा नदी [वर्त्तते]।

श्लोक-भावानुवाद—देवीधाम और वैकुण्ठके बीचमें [श्रुतिओंके अनुसार वेद जिनके निःश्वास उत्पन्न होनेके कारण जिनके अङ्ग हैं] उन भगवान्‌के पसीनेसे उत्पन्न जलके प्रवाहसे बनी मङ्गलजनक (जड़क्रियाहीन नैष्कर्मरूपी चिन्मात्रमयी) विरजा नदी है॥ 50॥

परव्योम अथवा वैकुण्ठमें अवस्थानका वर्णन :—
पाद्मोत्तरखण्ड (255/58)में—

तस्याः पारे परव्योम त्रिपाद्भूतं सनातनम्।
अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्॥ 51॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 51॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उस विरजाके परे अमृत, नित्य, सनातन, अनन्त, परमपद-स्वरूप, त्रिपादभूत परव्योम है, तात्पर्य यह है कि परव्योम चिद्-जगत् है। इसलिये अशोक, अभय और अमृतरूप त्रिपाद-विभूति उसमें नित्य वर्तमान है। समस्त मायिक वस्तुएँ मिलकर श्रीकृष्णकी एकपाद विभूतिमात्र हैं॥ 51॥

अनुभाष्य—

तस्याः (विरजायाः नद्याः) पारे (तटे) त्रिपाद्भूतं (तुरीयं) सनातनम् (नित्यवर्त्तमानम्) अमृतम् (अक्षयं) शाश्वतं नित्यम् अनन्तं परमं पदं परव्योम।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 51॥

(3) बाह्य आवास देवीधाम ही जीवके
भोगका क्षेत्र मायाराज्य :—

तार तले 'बाह्यावास' विरजार पार।
अनन्त ब्रह्माण्ड याँहा कोठरि अपार॥ 52॥
'देवीधाम' नाम तार, जीव यार वासी।
जगल्लक्ष्मी राखे, याँहा रहे मायादासी॥ 53॥

अनुवाद—उस परव्योमके नीचे विरजाके इस पार श्रीकृष्णका बाह्य आवास है। अनन्त प्राकृत-ब्रह्माण्ड ही इस बाह्य-आवासके अनन्त कक्ष हैं। इसका नाम देवीधाम है। (श्रीकृष्णविमुख) बद्धजीव इस देवीधामके निवासी हैं। जगत्-लक्ष्मी इस जगत्‌के जीवोंकी रक्षा करती है और उनकी दासी माया ही इस जगत्‌की अधिष्ठात्री है॥ 52-53॥

अनुभाष्य— *'जीव'*—भोग परायण बद्धजीव देवीधाममें वास करते हैं; स्वराज्यलक्ष्मी श्रीकृष्ण सेविका होकर श्रीकृष्णकी अभिलाषाएँ पूर्ण करती हैं, जगत्-लक्ष्मी देवीधामवासी जीवोंकी रक्षा करती हैं। *'याँहा'*—इस देवीधाममें जगत्-लक्ष्मीकी दासी माया ही अधिष्ठात्री हैं॥ 53॥

एइ तिन धामेर हय कृष्ण अधीश्वर।
गोलोक-परव्योम—प्रकृतिर पर॥ 54॥

अनुवाद—[गोलोक, परव्योम और देवीधाम—] इन तीनों धामोंके श्रीकृष्ण ही अधीश्वर हैं। गोलोक और परव्योम प्रकृति अथवा मायासे अतीत चिन्मय धाम हैं॥ 54॥

अनुभाष्य— *'तीन धाम'*—सर्वोपरिधाम गोलोक, हरिधाम-परव्योम और देवीधाम हैं। देवीधामसे मुक्त जीव परव्योममें हरिसेवा प्राप्त नहीं करनेपर महेश-धाम प्राप्त करते हैं। देवीधामसे ऊपर होनेपर भी वह (महेश-धाम) हरिधाम-परव्योम नहीं है॥ 54॥

शुद्धसत्त्वमय चिद्-शक्ति विलास तद्-रूपवैभव—श्रीकृष्णकी तीन पाद विभूति, देवीधाम—एकपाद-विभूति :—

चिच्छक्तिविभूति-धाम—त्रिपादैश्वर्य-नाम।
मायिक विभूति—एकपाद अभिधान॥ 55॥

अनुवाद—भगवान्की चिद्-शक्तिकी विभूति चिन्मय-जगत्को त्रिपाद-ऐश्वर्यके नामसे जाना जाता है (इसमें भगवान्की तीन चौथाई शक्ति और ऐश्वर्य विराजमान हैं)। भगवान्की मायिक विभूति मायिक जगत्को एकपाद विभूति कहा जाता है (इसमें भगवान्की एक चौथाई शक्ति विराजमान है)॥ 55॥

अनुभाष्य—हरिधाम-परव्योम और गोलोक—अप्राकृत चिद्-शक्ति-विभूतिसे युक्त धाम हैं और उन्हें 'त्रिपाद-ऐश्वर्य'के नामसे कहा जाता है। मायिक-विभूतिसे युक्त देवीधाम, 'एकपाद'-नामसे प्रसिद्ध है॥ 55॥

त्रिपादविभूति—मायातीता और एकपादविभूति—मायिक :—
लघुभागवतामृत (1/563)में—

त्रिपाद्विभूतेर्धामत्वात् त्रिपाद्भूतं हि तत् पदम्।
विभूतिर्मायिकी सर्वा प्रोक्ता पादात्मिका यतः॥ 56॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 56॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'त्रिपादविभूति' धाम होनेके कारण उस पदको त्रिपादभूत कहते हैं, और समस्त मायिक विभूति—एकपादमात्र है॥ 56॥

अनुभाष्य—

तत्पदं त्रिपादविभूतेर्धामत्वात् त्रिपादभूतं हि (त्रिचरणात्मकम् एव उच्यते); यतः सर्वा मायिकी विभूतिः पादात्मिका (एकचरणा) प्रोक्ता (कथिता)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 56॥

एकपादविभूति देवीधामका वर्णन :—

त्रिपादविभूति कृष्णेर—वाक्य-अगोचर।
एकपाद विभूतिर शुनह विस्तार॥ 57॥

'चिरलोकपाल'-शब्दका अर्थ :—

अनन्त ब्रह्माण्डेर यत ब्रह्मा-रुद्रगण।
चिरलोकपाल-शब्दे ताँहार गणन॥ 58॥

अनुवाद—भगवान् श्रीकृष्णकी तीन पाद विभूति अनन्त होनेके कारण वर्णनसे परे है। हे सनातन! तुम एकपाद विभूतिके विस्तारके विषयमें श्रवण करो। अनन्त ब्रह्माण्डोंके जितने ब्रह्मा-रुद्रादि लोकपाल हैं, उन्हें 'चिरलोकपाल' कहा जाता है॥ 57-58॥

अनुभाष्य— *'चिरलोकपाल'*—ब्रह्माण्डके आधिकारिक चिरस्थायी-कार्यकारक ब्रह्मा-रुद्रादि हैं। लोकपाल शब्दसे साधारणतः आठ दिक्पाल—इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु, कुबेर और शिवको समझा जाता है॥ 58॥

श्रीकृष्णके ऐश्वर्यके दर्शनके लिये आये ब्रह्माके अहङ्कारके नाशके सम्बन्धमें एक पौराणिक-उपाख्यान :—

एकदिन द्वारकाते कृष्ण देखिबारे।
ब्रह्मा आइला,—द्वारपाल जानाइल कृष्णेरे॥ 59॥

कृष्ण कहेन,—"कोन् ब्रह्मा, कि नाम ताहार?"
द्वारी आसि' ब्रह्मारे पुछे आर बार॥ 60॥

विस्मित हञा ब्रह्मा द्वारीके कहिला।
'कह गिया सनक-पिता चतुर्मुख आइला॥'61॥

कृष्णे जानाञा द्वारी ब्रह्मारे लञा गेला।
कृष्णेर चरणे ब्रह्मा दण्डवत् कैला॥ 62॥

कृष्ण मान्य-पूजा करि' ताँरे प्रश्न कैल।
"कि लागि' तोमार इँहा आगमन हैल?"॥ 63॥

ब्रह्मा कहे,—"ताहा पाछे करिब निवेदन।
एक संशय मने हय, करह छेदन॥ 64॥

'कोन् ब्रह्मा?' पुछिले तुमि कोन् अभिप्राये?
आमा वइ जगते आर कोन् ब्रह्मा हये?"65॥

अनुवाद—एकदिन चतुर्मुख ब्रह्मा श्रीकृष्णके दर्शनके लिये भौम-द्वारकामें आये और द्वारपालने उनके आनेका संवाद जाकर श्रीकृष्णको दिया। श्रीकृष्णने पूछा,—"कौनसे ब्रह्मा आये हैं, उनका नाम क्या है?" द्वारपालने आकर ब्रह्मासे वही प्रश्न पूछा। विस्मित होकर ब्रह्माने द्वारपालसे कहा,—'जाओ, और जाकर कहो कि सनकके पिता चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं।' द्वारपालने श्रीकृष्णको उनका परिचय दिया और श्रीकृष्णकी आज्ञासे द्वारपाल ब्रह्माको भीतर श्रीकृष्णके पास ले गये। चतुर्मुख ब्रह्माने श्रीकृष्णके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। ब्रह्माके द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा करनेके बाद श्रीकृष्णने उनसे पूछा,—"किस उद्देश्यसे आपका यहाँपर आगमन हुआ है?" ब्रह्माने कहा,—"उसके विषयमें मैं बादमें निवेदन करूँगा। मेरे मनमें एक संशय है, आप कृपया पहले उसे दूर करें। 'कौन ब्रह्मा?'—आपने किस अभिप्रायसे ऐसा पूछा था? क्या मेरे अतिरिक्त जगत्में अन्य कोई और ब्रह्मा भी है?"॥ 59-65॥

शुनि' हासि' कृष्ण तबे करिलेन ध्याने।
असंख्य ब्रह्मार गण आइला ततक्षणे॥ 66॥

दश-बिश-शत-सहस्र-अयुत-लक्ष-वदन।
कोट्यर्बुद मुख कारो, ना याय गणन॥ 67॥

रुद्रगण आइला लक्ष-कोटि-वदन।
इन्द्रगण आइला लक्ष-कोटि-नयन॥ 68॥

देखि' चतुर्मुख ब्रह्मा फाँपर हइला।
हस्तिगण-मध्ये येन मशक रहिला॥ 69॥

आसि' सब ब्रह्मा कृष्णपादपीठ-आगे।
दण्डवत् करिते मुकुट पादपीठे लागे॥ 70॥

कृष्णेर अचिन्त्यशक्ति लिखिते केह नारे।
यत ब्रह्मा, तत मूर्त्ति एकइ शरीरे॥ 71॥

पादपीठ-मुकुटाग्र-संघट्टे उठे ध्वनि।
पादपीठे स्तुति करे मुकुट हेन जानि'॥ 72॥

योड़-हाते ब्रह्मा-रुद्रादि करये स्तवन।
"बड़ कृपा करिला प्रभु, देखाइला चरण॥ 73॥

भाग्य, मोरे बोलाइला 'दास' अङ्गीकरि'।
कोन् आज्ञा हय, ताहा करि' शिरे धरि'॥"74॥

कृष्ण कहे,—"तोमा-सबा देखिते चित्त हैल।
ताहा लागि' एक ठाञि सबा बोलाइल॥ 75॥

सुखी हओ सबे, किछु नाहि दैत्य-भय?"
तारा कहे,—"तोमार प्रसादे सर्वत्रइ जय॥ 76॥

सम्प्रति पृथिवीते येबा हैयाछिल भार।
अवतीर्ण हञा ताहा करिला संहार॥"77॥

अनुवाद—ब्रह्माकी बात सुनकर श्रीकृष्ण मुस्करा दिये और उन्होंने ध्यान किया। श्रीकृष्णके स्मरणमात्रसे ही असंख्य ब्रह्मा उसी समय वहाँपर आ गये। दस मुखवाले ब्रह्मा, बीस मुखवाले ब्रह्मा, इसी प्रकार सौ, हजार, दस हजार, एक लाख, एक करोड़, एक अरब मुखोंवाले ब्रह्मा जिनकी गणना नहीं की जा सकती, वहाँ उपस्थित हो गये। लाखों-करोड़ों मुखोंवाले रुद्र और लाखों-करोड़ों नेत्रोंवाले इन्द्र भी वहाँ आये। इन

सबको देखकर चतुर्मुख ब्रह्माकी बुद्धि स्तम्भित हो गयी। उनको ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वे हाथियोंके झुण्डमें एक मच्छरके समान हैं। समस्त ब्रह्मा आकर जब श्रीकृष्णके चरणकमलोंके आगे दण्डवत् करते, तब उनके मुकुट उनकी पादुकाको स्पर्श करते। श्रीकृष्णकी अचिन्त्य शक्तिको कोई नहीं जान सकता। जितने भी ब्रह्मा थे, श्रीकृष्णने एक ही शरीरसे उतनी ही मूर्तियाँ बनकर उन सबके साथ वार्तालाप किया था। जब वे सब श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणाम कर रहे थे, तब इतनी भीड़के कारण उनके मुकुट आपसमें टकराकर बड़े जोरसे ध्वनि कर रहे थे और ऐसा लग रहा था वे मुकुट उस ध्वनिके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं। हाथ जोड़कर ब्रह्मा-रुद्रादि श्रीकृष्णका स्तव करते हुए कहने लगे,—"हे प्रभो! आपने बहुत कृपा करके अपने चरणोंका दर्शन प्रदान किया है। मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे अपने 'दास'के रूपमें अङ्गीकार करके मुझे बुलाया है। यदि आपकी कोई आज्ञा हो तो मैं उसे शिरोधार्य करना चाहता हूँ।" श्रीकृष्णने कहा,—"तुम सबसे मिलनेकी इच्छा हुई थी, इसलिये मैंने तुम्हें एकसाथ बुलाया है। तुम लोग सुखी तो हो, दैत्योंका कोई भय तो नहीं है?" उन्होंने कहा,—"आपकी कृपासे सर्वत्र ही जय है॥"66-77॥

द्वारकादि विभूतिर एइ त' प्रमाण।
'आमारइ ब्रह्माण्डे कृष्ण' सबार हैल ज्ञान॥ 78॥

कृष्ण-सह द्वारका-वैभव अनुभव हैल।
एकत्र मिलने केह काहो ना देखिल॥ 79॥

तबे कृष्ण सर्व-ब्रह्मागणे विदाय दिला।
दण्डवत् हञा सबे निज घरे गेला॥ 80॥

अनुवाद—द्वारकादिकी विभूतिका यही तो प्रमाण है कि सभीको यही लगा कि श्रीकृष्ण मेरे ही ब्रह्माण्डमें हैं। इस प्रकार सभीको श्रीकृष्णके साथमें द्वारकाके वैभवका अनुभव हुआ। यद्यपि वे सब एक साथ ही थे, तथापि किसीने भी किसी अन्यको नहीं देखा। तब श्रीकृष्णने समस्त ब्रह्मा-रुद्रादिको विदायी दी। श्रीकृष्णको दण्डवत् करके वे सभी अपने-अपने घर लौट गये॥ 78-80॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण और द्वारका धामकी अलौकिक विभूतिको चतुर्मुख ब्रह्माने अनुभव किया। यद्यपि दस-सौ-हजार-दस हजार-लाख-करोड़ मुखोंवाले ब्रह्मा और रुद्र वहाँ एकत्रित हुए और इस मिलनको चतुर्मुख ब्रह्मा एवं श्रीकृष्णने ही देखा, तथापि श्रीकृष्णकी इच्छासे आये हुए बृहत् ब्रह्मा और बृहत् शिवोंका परस्परमें साक्षात्कार नहीं हुआ। अथवा, ब्रह्मा-शिवादिसमूहकी ऐसी भीड़ हुई कि उन्हें परस्पर देखने और बातचीत करनेका बिल्कुल भी अवसर ही नहीं मिला एवं किसीको भी किसीका आदर-सत्कार करनेका समय ही नहीं मिला॥ 79॥

देखि' चतुर्मुख ब्रह्मार हैल चमत्कार।
कृष्णेर चरणे आसि' कैला नमस्कार॥ 81॥

ब्रह्मा बले,—"पूर्वे आमि ये निश्चय करिलुँ।
तार उदाहरण आमि आजि त' देखिलुँ॥ 82॥

अनुवाद—यह सब देखकर चतुर्मुख ब्रह्माको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीकृष्णके चरणोंमें आकर प्रणाम किया। ब्रह्माने कहा,—"पहले मैंने अपने ज्ञानके विषयमें जो निश्चित किया था, उसका उदाहरण मैंने आज देखा है॥ 81-82॥

श्रीमद्भागवत (10/14/38)में :—

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो-वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः॥ 83॥

अनुवाद—जो कहते हैं,—'मैं श्रीकृष्णतत्त्व जानता हूँ', तो वे जानें, किन्तु मैं बहुत कुछ बोलना नहीं चाहता हूँ। प्रभो! मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि आपका समस्त वैभव—मेरे मन, शरीर और वाणीके अगोचर है॥ 83॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 21/27 संख्या देखें॥ **83**॥

कृष्ण कहे,—"एइ ब्रह्माण्ड पञ्चाशत् कोटि योजन।
अति क्षुद्र, ताते तोमार चारि वदन॥ 84॥
कोन ब्रह्माण्ड शतकोटि, कोन लक्षकोटि।
कोन नियुतकोटि, कोन कोटि-कोटि॥ 85॥
ब्रह्माण्डानुरूप ब्रह्मार शरीर-वदन।
एइरूपे पालि आमि ब्रह्माण्डेर-गण॥"86॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने कहा,—"यह ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजनका है। यह ब्रह्माण्ड बहुत ही छोटा है, इसलिये तुम्हारे केवल चार ही मुख हैं। कोई ब्रह्माण्ड सौ करोड़ योजनका, कोई एक लाख करोड़ योजनका, कोई पचास लाख कोटि योजनका, तो कोई करोड़-करोड़ों योजनका है। ब्रह्माण्डके अनुरूप ही ब्रह्माका शरीर और मुख हैं। इस प्रकार ही मैं समस्त ब्रह्माण्डोंका पालन करता हूँ॥"**84-86**॥

अनुभाष्य—ब्रह्माण्डको सौ करोड़ योजनका माननेपर उसका आधा पचास करोड़ योजन होता है। मनुने लिखा है—

"स्वयमेवात्मनो ध्यानात् तदण्डमकरोद्द्विधा।"

[अर्थात् "उन्होंने स्वयं अपने ध्यानसे उस ब्रह्माण्डको दो भागोंमें विभक्त किया।"]

सूर्यसिद्धान्तके 12/90 श्लोकमें—

"ख-व्योम-खत्रय-खसागर-षट्कनाग-व्योमाष्टशून्य-यमरूप-नगाष्टचन्द्राः। ब्रह्माण्डसम्पुट-परिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः॥"

[अर्थात् "ब्रह्माण्डकी कक्षा 18,71,20,80,86,40,00,000 योजन है। इसके बीचमें सूर्यकी किरणोंका विस्तार है।"]

सिद्धान्त-शिरोमणिमें ग्रहगणितमें मध्यमाधिकारमें कक्षा-प्रक्रममें और गोलाध्यायके भुवनकोशके 67 श्लोकमें—

"कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्क-नखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभिर्ज्योतिः शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः तद्-ब्रह्माण्ड-कटाहसम्पुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं केचित् प्रोचुरदृश्य-दृश्यकगिरिं पौराणिकां सुरयः॥"

[अर्थात् "ज्योतिर्विद्याके विद्वान कहते हैं कि आकाश-कक्षाका परिमाण 18,71,20,69,20,00,00,000 योजन है। इस परिमाणको कोई-कोई पौराणिक पण्डित ब्रह्माण्डरूप कड़ाहेकी परिधि कहते हैं। कोई कोई कहते हैं कि यह लोकालोक पर्वतका परिमाण है।"]॥ **84**॥

'एकपाद विभूति', इहार नाहि परिमाण।
'त्रिपाद विभूति'र केबा करे परिमाण॥ 87॥

अनुवाद—मेरी इस एकपाद विभूतिको कोई माप नहीं सकता, तब फिर मेरी त्रिपाद विभूतिको कौन माप सकता है?॥ **87**॥

पाद्मोत्तरखण्ड (255/58)में :—

तस्याः पारे परव्योम त्रिपाद्भूतं सनातनम्।
अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्॥ 88॥

अनुवाद—उस विरजाके परे अमृत, नित्य, सनातन, अनन्त, परमपद-स्वरूप, त्रिपादभूत परव्योम है, तात्पर्य यह है कि परव्योम चिद्-जगत् है। इसलिये अशोक, अभय और अमृतरूप त्रिपाद-विभूति उसमें नित्य वर्तमान है। समस्त मायिक वस्तुएँ मिलकर श्रीकृष्णकी एकपाद विभूतिमात्र हैं॥ **88**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 21/51 श्लोक देखें॥ **88**॥

श्रीकृष्णका वैभव—दुर्ज्ञेय :—

तबे कृष्ण ब्रह्मारे दिलेन विदाय।
कृष्णेर विभूति-स्वरूप जानन ना याय॥ 89॥

अनुवाद—तब श्रीकृष्णने चतुर्मुख ब्रह्माको विदायी दी। श्रीकृष्णके विभूति-स्वरूपको कोई जान नहीं सकता॥ **89**॥

अनुभाष्य—लघुभागवतामृतके पूर्वखण्डमें 'श्रीकृष्ण—श्रीनारायणके विलास हैं', इस पूर्वपक्षका खण्डन करते हुए श्रीरूपकृत-व्याख्या और कारिकामें 313-323 संख्यामें यह उपाख्यान वर्णित है॥ **59-89**॥

(घ) श्रीकृष्णके तद्रूपवैभव-धामगत चौथा (गूढ़) अर्थ :—

'त्र्यधीश्वर'-शब्देर अर्थ 'गूढ़' आर हय।
'त्रि'-शब्दे कृष्णेर तिन लोक कय॥ 90॥

अनुवाद—'त्र्यधीश्वर'-शब्दका अन्य और भी गूढ़ अर्थ है, 'त्रि'-शब्द श्रीकृष्णके तीन लोकोंके विषयमें बतलाता है॥ 90॥

श्रीकृष्णके तीन धाम :—

गोलोकाख्य गोकुल, मथुरा, द्वारावती।
एइ तिन लोके कृष्णेर सहजे नित्यस्थिति॥ 91॥

अनुवाद—गोलोक अर्थात् गोकुल, मथुरा और द्वारका—इन तीन लोकोंमें श्रीकृष्ण स्वाभाविक रूपसे नित्य ही वास करते हैं॥ 91॥

अनुभाष्य—गोलोकके तीन प्रकोष्ठ—(1) गोकुल, (2) मथुरा, (3) द्वारका। श्रीकृष्णलीलाके तीन प्रकोष्ठोंकी भाँति श्रीगौरलीलामें भी अन्तरङ्ग पूर्णैश्वर्यमय तीन प्रकोष्ठ हैं—(1) नवद्वीप-मण्डल, (2) श्रीक्षेत्रमण्डल, (दाक्षिणात्य?) और (3) व्रजमण्डल॥ 91॥

स्वयं श्रीकृष्ण ही तीनों धामोंके सम्राट् :—

अन्तरङ्ग-पूर्णैश्वर्यपूर्ण तिन धाम।
तिनेर अधीश्वर कृष्ण—स्वयं भगवान्॥ 92॥

अनुवाद—ये तीनों धाम अन्तरङ्ग-पूर्णैश्वर्योंसे परिपूर्ण हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इन तीनों धामोंके अधीश्वर हैं॥ 92॥

अनन्त वैकुण्ठ, ब्रह्माण्ड और दिशाओंके अधिपतियोंके द्वारा वन्दित-चरण श्रीकृष्ण :—

पूर्व-उक्त ब्रह्माण्डेर यत दिक्पाल।
अनन्त वैकुण्ठावरण, चिरलोकपाल॥ 93॥
ताँ-सबार मुकुट कृष्णपादपीठ-आगे।
दण्डवत्काले तार मणि पीठे लागे॥ 94॥
मणि-पीठे ठेकाठेकि, उठे झन्झनि।
पीठेर स्तुति करे मुकुट हेन जानि॥ 95॥

अनुवाद—पहले कहे गये ब्रह्माण्डोंके जितने भी दिक्पाल और अनन्त वैकुण्ठोंके आवरणोंमें रहनेवाले जितने चिरलोकपाल हैं, श्रीकृष्ण-पादपीठके आगे दण्डवत् करते समय उन सबके मुकुटोंकी मणियाँ श्रीकृष्णके सिंहासन और पादपीठको स्पर्श करती हैं। मणियोंके पादपीठसे टकरानेपर झनझनकी ध्वनि होती है और वह ध्वनि ऐसी लगती है मानो मुकुट पादपीठकी स्तुति कर रहे हों॥ 93-95॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 21/58 संख्या देखें॥ 93॥

स्वाराज्य-लक्ष्मीका अर्थ :—

निज-चिच्छक्त्ये कृष्ण नित्य विराजमान।
चिच्छक्ति-सम्पत्तिर 'षड़ैश्वर्य' नाम॥ 96॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 96॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण स्वाराज्यलक्ष्मीरूप अपनी चिद्-शक्तिसे युक्त होकर नित्य विराजमान हैं। भगवान्की चिद्-शक्ति-सम्पत्तिको ही 'षड़ैश्वर्य' कहते हैं। *'चिच्छक्ति'*—चिद्-शक्तिमद्-विग्रह श्रीकृष्णकी अपनी शक्ति और सेविका है॥ 96॥

वे—श्रीकृष्णकी सेविका :—

सेइ स्वाराज्यलक्ष्मी करे नित्य पूर्ण काम।
अतएव वेदे कहे 'स्वयं भगवान्'॥ 97॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी स्वाराज्यलक्ष्मी ही नित्य श्रीकृष्णकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करती है, इसलिये वेद श्रीकृष्णको 'स्वयं भगवान्' कहते हैं॥ 97॥

श्रीकृष्णका ऐश्वर्य—अगाध अमृतका समुद्र :—

कृष्णेर ऐश्वर्य—अपार अमृतेर सिन्धु।
अवगाहिते नारि, तार छुँइल एक बिन्दु॥"98॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अपार अमृतका सिन्धु है। मैं उसमें डुबकी लगाकर स्नान नहीं कर सकता हूँ, इसलिये मैंने केवल उसकी एक बूँदको ही स्पर्श किया है॥"98॥

ऐश्वर्य-माधुरीका वर्णन करते हुए महाप्रभुकी
श्रीकृष्णविग्रह-माधुरीकी स्फूर्ति :—

ऐश्वर्य कहिते प्रभुर कृष्णस्फूर्त्ति हैल।
माधुर्ये मजिल मन, एक श्लोक पड़िल॥99॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका वर्णन करते-करते महाप्रभुको श्रीकृष्णके माधुर्यकी स्फूर्ति हो आयी। उनका मन श्रीकृष्णके माधुर्यमें रम गया और उन्होंने एक श्लोक पढ़ा॥99॥

अपनी नरलीलाके उपयुक्त अलौकिक लीला-माधुर्यसे
श्रीकृष्ण स्वयं ही मुग्ध :—
श्रीमद्भागवत (3/2/12)में—

"यन्मर्त्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमाया-
बलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥100॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥100॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वही श्रीकृष्णमूर्ति अपनी चिद्-शक्तिका बल प्रदर्शित करानेकी इच्छासे मर्त्त्यलीलाके उपयोगी, स्वयंमें भी विस्मय उत्पन्न कर देनेवाली एवं समस्त सौभाग्य-ऋद्धिके परमपद (पराकाष्ठा) और समस्त भूषणोंको भूषित करनेमें समर्थ है॥100॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी अप्रकट अवस्थामें श्रील उद्धव उनके विरहमें शोकसे कातर होकर श्रीविदुरसे श्रीकृष्णके अतुल रूप-माधुर्यका वर्णन कर रहे हैं—

यत् (बिम्बं) मर्त्त्यलीलौपयिकं (मर्त्त्यलीलासु औपयिकं योग्यं नराकारं) स्वयोगमायाबलं (निजचिच्छक्तेः वीर्यं) दर्शयता (प्रकाशयता) [भगवता स्वयं] गृहीतं (स्वीकृतं) स्वस्य च (आत्मनः अपि) विस्मापनं (विस्मयजनकं) सौभगर्द्धेः (सौभाग्यातिशयस्य) परं पदं (पराकाष्ठा, प्रतिष्ठा) भूषणभूषणाङ्गं (भूषणानां भूषणानि अङ्गानि यस्मिन् तत् स्वबिम्बं) [प्रदर्श्य अन्तरधात् इति पूर्वेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। *'प्रदर्श्य अन्तरधात्'* पूर्व श्लोक (3/2/11)के साथ उसका अन्वय करें॥100॥

अमृतानुकणा—श्रीश्रीमद्रूप-गोस्वामी प्रभुपाद-कृत 'लघुभागवतामृत'में अपनी कारिकामें आलोच्य 'यन्मर्त्त्यलीलौपयिकं' इस श्रीमद्भागवतीय श्लोककी व्याख्या प्रदत्त हुई है। इसके पूर्वश्लोकमें कहे गये 'स्वबिम्बं'से यहाँपर 'यत्'-पदके द्वारा 'बिम्ब'-पदको कहा जा रहा है, अर्थात् जो बिम्ब (श्रीविग्रह) मर्त्त्यलीलासमूहके अतिशय उपयोगी है। अनेक प्रकार आश्चर्य, माधुर्य, वीर्य और ऐश्वर्यादिकी सम्पूर्ण प्रकाश होकर श्रीकृष्णकी मर्त्त्यलीला उनकी अन्यान्य देवलीलाओंकी अपेक्षा भी अतीव मनोहारिणी है। यहाँपर 'बिम्ब'-पदके द्वारा सद्गुणावलीसम्पन्न परव्योमनाथादि सभी स्व-स्वरूपगणोंके मूलतत्त्व जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही लक्षित हुए हैं। इसलिये, सम्पूर्ण रूप और गुणोंके आश्रय हेतु वह बिम्ब जो विचित्र नरलीलाके अतिशय योग्य है, वही कथित हुआ है। *'स्वयोगमायाबलं'*—स्वयोगमाया अर्थात् चिद्-शक्ति, उनका 'बल' अर्थात् सामर्थ्य। चिद्-शक्तिके सामर्थ्यको ही *'दर्शयता गृहीतम्'* अर्थात् साक्षात् करवानेके लिये (उन्होंने जो बिम्ब) प्रकट किया है। 'अहो! मेरी चिद्-शक्तिके अद्भुत प्रभावका दर्शन करो, जिसकी गन्धमात्र भी दिव्यातिदिव्य लोकसमूहमें सम्भवपर नहीं है'—इस प्रकारसे चिद्-शक्ति-प्रभाव दर्शन करवाते हुए श्रीकृष्णका इस प्रकार जगमोहन-रूप जो योगमायाके द्वारा आविष्कृत हुआ है, यही उस *'स्वयोगमाया'* आदि पदका अभिप्राय है। *'विस्मापनं स्वस्य च'*—वही बिम्ब 'स्वस्य' अर्थात् स्वयंको और परव्योमनाथादि आत्मदर्शीको 'विस्मापन' अर्थात् नवनवायमानरूपमें परम चमत्कृत

करनेवाला है। वह बिम्ब *'सौभगर्द्धेः परं पदं'*—'सौभगर्द्धि' अर्थात् महाश्चर्यमय सौन्दर्यकी पराकाष्ठाका 'परंपद' अर्थात् नित्य उत्कर्ष-सम्पत्तिका परमाश्रय है। *'भूषणभूषणाङ्गम्'*—कौस्तुभ, मकर-कुण्डलादि जो भूषण हैं, उनके भी भूषणस्वरूप अर्थात् उनकी भी शोभाको वर्द्धन करनेवाले जिनके अङ्गसमूह हैं, उन श्रीविग्रहका असमोर्ध्वत्व ही यहाँपर वर्णित हुआ है। यहाँपर 'श्रीकृष्णका जो बिम्ब (श्रीविग्रह) स्वयंमें भी अत्यन्त विस्मयका उत्पादन करनेवाला है'—इस प्रकार वाक्यमें जो देह-देहीका भेद प्रतीत होता है, वह औपचारिक (आरोपित) मात्र है, क्योंकि भगवान् और भगवद्-विग्रह दोनों ही अभिन्न और सच्चिदानन्दघन हैं। कूर्मपुराणमें भी उसी प्रकार कहा गया है—"देह-देहि-भिदा चात्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्"—परमेश्वरमें कभी भी देह-देहीका भेद नहीं होता॥ 100॥

द्विभुज चिरकिशोर मुरलीधर-विग्रह :—

[यथा रागः]

कृष्णेर यतेक खेला, सर्वोत्तम-नरलीला,
नरवपु ताहार स्वरूप।
गोपवेश, वेणुकर, नवकिशोर, नटवर,
नरलीलार हय अनुरूप॥ 101॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी जितनी भी लीलाएँ हैं, उनमें सबसे सर्वोत्तम नरवत् लीला ही है। श्रीकृष्णका अनादिसिद्ध निज-स्वरूप ही नराकृति है। उनका गोपवेश, हाथमें वेणु धारण करना, नवकिशोर अवस्था, नटवर रूप नरलीलाके अनुरूप ही होता है॥ 101॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी गोकुल-लीला, वासुदेव-सङ्कर्षणादि परव्योम-लीला, कारणार्णवशायी आदि पुरुषावतार-लीला, मत्स्य-कूर्म आदि नैमित्तिक अवतार-लीला, ब्रह्मा-शिवादि गुणावतार-लीला, पृथु-व्यासादि आवेशावतार-लीला, सविशेष परमात्मादि-लीला, निर्विशेष ब्रह्म आदि अनन्त क्रीड़ामय भगवान्की लीलाओंमेंसे तारतम्य (श्रेष्ठ और निम्न)के विचारसे श्रीकृष्णकी नरलीला ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्णका स्वरूप—नरवपु, गोपवेश, वेणुधारी, नवकिशोर और नटवर है। श्रीकृष्णका स्वरूप—नरलीलाके समान है, किन्तु वह तुच्छ, मरणशील, अनित्य, अमङ्गलकारी, सीमित, छितराया हुआ (खण्डोंमें) अथवा विभाजित आदि प्राकृत विशेषणोंके मलसे युक्त नहीं है॥ 101॥

श्रीकृष्णकी श्रीविग्रहमाधुरीका वर्णन;
श्रीकृष्णरूप—सभीको आकर्षित करनेवाला :—

कृष्णेर मधुर रूप, शुन, सनातन।
ये रूपेर एक कण, डुबाय ये त्रिभुवन,
सर्वप्राणी करे आकर्षण॥ 102॥ ध्रु॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 102॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके मधुररूपका एक कण गोकुल, मथुरा और द्वारका,—इन तीन भुवनोंको, अथवा अन्तःपुर गोलोक-वृन्दावन, मध्यम-आवास परव्योम और बाह्य-आवास देवीधाम,—इन तीन भुवनोंको डुबो देनेमें समर्थ है एवं उन तीनों भुवनोंके प्राणियोंको अपनी रूपमाधुरीसे आकर्षित करता है॥ 102॥

नित्यलीला प्रकट करनेमें योगमायाके प्रभावका प्रदर्शन :—

योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्धसत्त्व-परिणति,
तार शक्ति लोके देखाइते।
एइरूप रतन, भक्तगणेर गूढ़धन,
प्रकट कैला नित्यलीला हैते॥ 103॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 103॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णमूर्ति उनकी चिद्-शक्ति-नामक योगमायाके सन्धिनीगत विशुद्धसत्त्व-तत्त्वका परिणामस्वरूप है॥ 103॥

अनुभाष्य—परव्योमादिमें विशुद्धसत्त्वकी परिणतिरूपा

चिद्शक्ति योगमायाकी अवस्थिति नहीं है। उस योगमायाके अपूर्व असामान्य शक्तिके कार्यको दिखलानेके लिये ही श्रीकृष्णने भक्तोंके लिये अत्यन्त गोपनीय और आदरणीय रत्नस्वरूप नित्यलीला गोलोकसे प्रपञ्चमें प्रकट की॥ 103॥

अपने रूपके भोगकी स्वयंकी ही तीव्र आङ्काक्षा :—

रूप देखि' आपनार, कृष्णेर हैल चमत्कार,
आस्वादिते मने उठे काम।
'स्वसौभाग्य' याँर नाम, सौन्दर्यादि-गुणग्राम,
एइरूप नित्य तार धाम॥ 104॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 104॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सौन्दर्य आदि गुणसमूह जिस चिद्-तत्त्वका परम सौभाग्य है, वह इस श्रीकृष्णरूपमें नित्य अवस्थित है॥ 104॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णरूपकी असामान्य चमत्कारिता ऐसी है कि वह स्वयं श्रीकृष्णमें ही विस्मय उत्पन्न करती है एवं उसे आस्वादन करनेके लिये श्रीकृष्णकी भी उत्कण्ठा वर्द्धित होती है। समस्त सौन्दर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, यश और वैराग्यात्मक छः प्रकारके ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण निज अतिशय-सौभाग्य श्रीकृष्णमें ही नित्य अवस्थित है॥ 104॥

गोलोकके आश्रयवर्ग विषयके रूपसे
मुग्ध और आकृष्ट :—

भूषणेर भूषण अङ्ग, ताँहे ललित त्रिभङ्ग,
ताहार उपर भ्रूधनु-नर्त्तन।
तेरछे नेत्रान्ते बाण, तार दृढ़ सन्धान,
बिन्धे राधा-गोपीगण-मन॥ 105॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 105॥

अनुभाष्य—अलङ्कार अङ्गोंके भूषण होते हैं, किन्तु श्रीकृष्णके अङ्गोंकी शोभा इतनी अपूर्व और अद्भुत है कि श्रीकृष्णके अङ्ग मानो अलङ्कारोंके भी अलङ्कार हैं। वैसी अङ्गोंकी शोभा होनेपर भी ललित-त्रिभङ्ग मुद्रासे तो शोभा अधिक परिमाणमें वर्द्धित हो जाती है। उसपर भी नेत्रोंके ऊपरी भागमें धनुष जैसी भ्रू (भौंहे) नृत्य कर रही हैं। श्रीकृष्ण तिरछे भावसे अपाङ्ग-दृष्टिरूप बाण भ्रू-रूपी धनुषपर चढ़ाकर श्रीराधा एवं उनकी अनुगत गोपियोंके मनको बिद्ध (घायल) करनेके उद्देश्यसे दृढ़ रूपमें सन्धान कर रहे हैं॥ 105॥

श्रीकृष्णके रूपसे परव्योमके श्रीनारायण
और लक्ष्मियाँ भी आकृष्ट :—

ब्रह्माण्डोपरि परव्योम, ताँहा ये स्वरूपगण,
ताँ-सबार बले हरे मन।
पतिव्रता-शिरोमणि, याँरे कहे वेदवाणी,
आकर्षये सेइ लक्ष्मीगण॥ 106॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 106॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णका रूप इतना मनोरम है कि वह प्राकृत जगत्के सभी प्राणियों और देवताओंकी बात तो दूर, ब्रह्माण्डके ऊपर परव्योममें रहनेवाले श्रीनारायण आदि श्रीकृष्णस्वरूपोंके मनको भी बलपूर्वक हरण करता है। वेदोंमें जिन लक्ष्मियोंको एकमात्र 'पतिव्रता-शिरोमणि' कहा गया है, वे भी श्रीकृष्णके सौन्दर्यसे आकर्षित होकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी अभिलाषा करती हैं॥ 106॥

"राधाजीके साथ सुशोभित होनेपर ही मदनमोहन" :—

चड़ि' गोपी-मनोरथे, मन्मथेर मन मथे,
नाम धरे 'मदनमोहन'।
जिनि' पञ्चशर-दर्प, स्वयं नवकन्दर्प,
रास करे लञा गोपीगण॥ 107॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 107॥

अनुभाष्य—गोपियोंके अनुकूल चित्तवृत्तिरूप मनोरथ पर चढ़कर उनके द्वारा अपनी सेवा स्वीकार करके

कन्दर्पके मनको मथकर श्रीकृष्ण 'मदनमोहन'के नामसे जाने जाते हैं। रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्शात्मक पाँच बाणोंवाले मदनके 'अपने सौन्दर्यके द्वारा नारी-विमोहनरूप अहङ्कार'को पैरोंके नीचे रौंदकर श्रीकृष्ण स्वयं नवकन्दर्प (व्रजमें अप्राकृत नवीन मदन) बनकर गोपियोंके साथ रासमें क्रीड़ा करते हैं॥ 107॥

श्रीकृष्णकी वेणु-माधुरीका वर्णन :—

निज-सम सखा-सङ्गे, गोगण-चारण रङ्गे,
वृन्दावने स्वच्छन्दे विहार।
याँर वेणुध्वनि शुनि', स्थावर-जङ्गम प्राणी,
पुलक, कम्प, अश्रु बहे धार॥ 108॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण अपने समान सखाओंके साथ गैयाओंको आनन्दपूर्वक चराते हुए वृन्दावनमें स्वछन्दरूपसे विहार करते हैं। श्रीकृष्णकी वेणुकी ध्वनिको सुनकर स्थावर-जङ्गम (अचर-चर) सभी प्राणी पुलकित हो जाते हैं, उनके अङ्गोंमें कम्पन होने लगता है और उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगती है॥ 108॥

श्रीकृष्णके रूपका वर्णन :—

मुक्ताहार—वकपाँति, इन्द्रधनु-पिञ्छ तथि,
पीताम्बर—बिजली-सञ्चार।
कृष्ण नव-जलधर, जगत्-शस्य-उपर,
वरिषये लीलामृत-धार॥ 109॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 109॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके कण्ठमें जो मुक्तामालाका हार है, वह सफेद बगुलोंकी श्रेणीके समान है, श्रीकृष्णके सिरपर जो मोर पंख है, वह इन्द्रधनुषके समान है और श्रीकृष्णका पीताम्बर विद्युतके समान है। श्रीकृष्ण नव-जलधर (नये-नये वर्षाके जलसे पूर्ण मेघ)के समान हैं और गोपियाँ जगत्की फसलके समान हैं। उस फसलके ऊपर मेघोंके जल बरसनेकी भाँति श्रीकृष्ण अपनी लीलामृत-धाराका वर्षण करके उनमें जीवनका सञ्चार करते हैं। वर्षाकालमें बगुले उड़ते हैं, इन्द्रधनुष और विद्युत भी दिखलायी देती है॥ 109॥

श्रीकृष्णमाधुर्यरूपी सर्वोत्कृष्ट भगवत्ता
एकमात्र भागवतमें ही वर्णित :—

माधुर्य भगवत्ता-सार, व्रजे कैल परचार,
ताहा शुक—व्यासेर नन्दन।
स्थाने स्थाने भागवते, वर्णियाछे जानाइते,
ताहा शुनि' नाचे भक्तगण॥"110॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 110॥

अमृतप्रवाह भाष्य—माधुर्य भगवताका सार है,—समस्त ऐश्वर्य, समस्त वीर्य, समस्त यश, समस्त सौन्दर्य, समस्त ज्ञान, समस्त वैराग्य,—इन छः गुणोंको 'भगवत्ता' कहते हैं; उनमेंसे समस्त 'श्री'का नाम 'माधुर्य' है। वही छः प्रकारकी भगवताका सार है; उसीका दूसरा नाम 'माधुर्य' है। श्रीकृष्ण-मूर्तिमें माधुर्यप्रधान भगवत्ता और श्रीनारायण आदिमें ऐश्वर्यप्रधान भगवत्ता है॥ 110॥

अनुभाष्य—षड्ऐश्वर्यपूर्ण भगवान्की भगवत्ताका सार ही माधुर्य है; यह माधुर्य व्रजमें ही प्रचारित हुआ है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यासके पुत्र शुकदेवने भक्तोंके हृदयको उन्मादित कर देनेवाले उस माधुर्य-कणाका श्रीमद्भागवतके स्थान-स्थानपर वर्णन किया है। [उसके विषयमें सुनकर भक्तगण नृत्य करते हैं]॥ 110॥

श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करते हुए महाप्रभुके द्वारा
गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन :—

कहिते कृष्णेर रसे, श्लोक पड़े प्रेमावेशे,
प्रेमे सनातन-हात धरि'।
गोपी-भाग्य, कृष्ण-गुण, ये करिल वर्णन,
भावावेशे मथुरा-नागरी॥ 111॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 111॥

अनुभाष्य—मथुरावासिनी स्त्रियोंने गोपियोंके असामान्य सौभाग्य और श्रीकृष्णके अलौकिक गुणोंका भावपूर्ण

वर्णन जिस प्रकार किया है, श्रीगौरहरिने 'कृष्णरस'का वर्णन करते हुए प्रेमसे भरकर श्रीसनातनका हाथ पकड़कर प्रेमावेशमें उस श्लोकका उच्चारण किया॥ 111॥

श्रीमद्भागवत (10/44/14)में :—

"गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्द्धमनन्यसिद्धम्।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥ 112॥

अनुवाद—मथुरावासिनियाँ बोलीं,—"आहा! गोपियोंने ऐसी कौनसी तपस्या की! वे समस्त श्री, ऐश्वर्य और यशके एकान्त आश्रय, दुर्लभ, स्वतःसिद्ध, असमोर्ध्व, लावण्यके साररूप इन श्रीकृष्णके मुखामृतका नेत्रोंके द्वारा निरन्तर पान करती रहती हैं॥"112॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/156 संख्या देखें॥ 112॥

अमृतानुकणिका—इस श्लोकमें—यश, वीर्य और ऐश्वर्य—भगवान्के छः गुणोंमें-से ये तीन गुण ही वर्णित हुए हैं, परन्तु इन तीन गुणोंके द्वारा छहों गुणोंको ही समझना चाहिये। इसलिये माथुर रमणियाँ श्रीकृष्णको ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन सबके एकान्त धाम कह रही हैं। वे कैसे धाम है?

'ऐश्वर्य'—लौकिक, नरवत् भावको अतिक्रमण करके जो भाव है उसको ऐश्वर्य कहते हैं अर्थात् साधारण व्यक्ति जिसे नहीं कर सकते, उसे ऐश्वर्य कहते हैं। गोवर्धनको धारण करना यह किसी भी मनुष्यके लिये सम्भव नहीं है, इसलिये श्रीकृष्णका गोवर्धन धारण करना अलौकिक है। श्रीकृष्णने यशोदा माताको अपने मुखमें दो बार विराट रूप दिखाया, यशोदाजीने कृष्णके मुखमें असंख्य ब्रह्माण्ड देखे और स्वयंको उस मुखमें देखा। दुर्वासाजी और अर्जुनने भी ऐसा ही देखा। वृन्दावनकी प्रत्येक लीलामें श्रीकृष्णने बालक होकर भी बिना अस्त्र-शस्त्रके, बिना रूप बढ़ाये बड़े-बड़े असुरोंका संहार कर दिया। ये सब ऐश्वर्यकी लीलाएँ हैं। कुवलयापीड़ हाथीका वध करना भी अलौकिक है। कंस भी महाबलवान था। जरासन्ध कंसकी परीक्षा लेनेके लिये मथुरापर आक्रमण करने आया और उसने अपने सैनिकोंके साथ गोकुलमें डेरा जमाया। कंस मथुरासे ही हाथियोंके पैरोंको पकड़कर जरासन्धकी सेनाके ऊपर फेंकने लगा और उनके नीचे दबकर जरासन्धके अनेक सैनिक मर गये। इतने बलवान कंसको श्रीकृष्णने खेल-ही-खेलमें मार दिया। द्वारकामें श्रीकृष्णकी एक विशेष ऐश्वर्य लीलाका वर्णन एक पौराणिक उपख्यानमें देखा जाता है (इसी अध्यायकी पयार संख्या 59-89 देखें)। वैकुण्ठमें जितना ऐश्वर्य है उससे भी अधिक ऐश्वर्य श्रीकृष्णमें है। वैकुण्ठाधिपतिमें ऐश्वर्य है, किन्तु वे जन्म नहीं ले सकते—इस जगत्में किसीके पिता, पुत्र, पति नहीं हो सकते। श्रीकृष्णमें यह सब कुछ है।

'वीर्य'—श्रीकृष्णकी वीरताको समझनेके लिये कुछ प्रसङ्गोंका यहाँ वर्णन कर रहे हैं। भीष्म पितामह अद्वितीय वीर थे, उनके पास इच्छा-मृत्युका वरदान था। भगवान्के अवतार परशुराम भी उनको युद्धमें पराजित नहीं कर सके। श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा की थी कि वे कुरुक्षेत्र युद्धमें अस्त्र-शस्त्र नहीं धारण करेंगे, किन्तु भीष्म पितामहने प्रतिज्ञा की थी कि मैं कुरुक्षेत्रके युद्धमें श्रीकृष्णसे अस्त्र धारण करवाऊँगा। एक दिन श्रीकृष्ण अर्जुनके रथका सञ्चालन कर रहे थे। अर्जुनने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि वे भीष्म पितामहको किसी वीरको नहीं मारने देंगे। प्रातःकालसे अर्जुन भीष्ममें युद्ध करते रहे। सायंकाल तक युद्ध चलता रहा और अर्जुनने भीष्म पितामहको सारा दिन इतना व्यस्त रखा कि वे किसी वीरको मार नहीं पाये। अर्जुन पसीनेसे तर-बतर हो गये और युद्ध-विरामसे थोड़ी देर पहले एक क्षणके लिये अपने हाथोंसे पसीनेको थोड़ासा पौंछा, इतनेमें ही भीष्म पितामहने दस हजार महारथियोंको मार दिया। श्रीकृष्णने देखा कि भीष्म पितामह तो अर्जुनका भी वध कर देंगे। उन्हें क्रोध आ गया और रथके चक्केको

चक्रकी भाँति उठाकर भीष्म पितामहकी ओर तीव्र गतिसे दौड़े। ब्रह्मादि देवता जो आकाशसे युद्धक्षेत्रको देख रहे थे, वे बोले कि आज अवश्य ही भीष्मकी मृत्यु होगी। यदि श्रीकृष्ण चक्र चला देते तो भीष्म पितामहकी मृत्यु अवश्यम्भावी थी। दुर्योधन, कर्णादि सभी लोग स्तम्भित हो गये। यदि चाहते तो श्रीकृष्ण एक ही दिनमें सबका संहार कर देते। तभी अर्जुनने दौड़कर उनके चरणोंको पकड़ लिया और बोले,—"हे प्रभो! आप अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग मत कीजिये, मैं ही उनके लिये पर्याप्त हूँ।" और अर्जुनकी बहुत विनती सुनकर श्रीकृष्ण शान्त हुए।

रुक्मणी विवाहके समय वे कात्यायानी देवीकी पूजाके लिये गयीं और उनकी सुरक्षाके लिये अनेकों सैनिकोंने उन्हें घेर रखा था। शिशुपालको वर बनाया था और जरासन्ध, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासनादि सब लोग आये थे कि श्रीकृष्ण किसी प्रकारसे रुक्मणीका हरण न कर लें। परन्तु श्रीकृष्ण अचानक उन वीरों बीच प्रकट हो गये और रुक्मिणीजीके हाथको पकड़कर उन्हें रथपर बिठा लिया। उन्होंने रथकी बागडोर रुक्मिणीजीके हाथोंमें दे दी और अपना धनुष-बाण लेकर खड़े हो गये और देखते-ही-देखते सबको परास्त करके रुक्मिणीजीका हरण कर लिया जैसे गरुड़ सर्पोंके बीचमेंसे अपने भागको उठा लेता है।

राजा नग्नजितकी प्रतिज्ञा थी कि मैं अपनी पुत्री नाग्नजितीका विवाह उससे करूँगा जो एक साथमें मेरे इन सातों साँडोंको नथ दे। दस-बीस बड़े-बड़े वीर मिलकर भी जिनमें-से एक साँडको भी नहीं बाँध सकते थे, ऐसे सात बड़े-बड़े साँडोंको एक साथ वशीभूत करके इन सबकी नाकमें नकेल डालकर श्रीकृष्ण इनको पकड़कर ऐसे खींचने लगे जैसे कोई बालक काठके बैलोंको घसीटता है।

नरकासुर, इन्द्र, पौण्ड्र

अद्भुत वीरता दिखलायी देती है। महाभारत युद्धके समाप्त होनेके बाद अर्जुन और भीममें विवाद हो गया कि उनमें-से किसके द्वारा युद्ध जीता गया। दोनोंमें झगड़ा होने लगा और भीमने अपनी गदा तथा अर्जुनने अपना गाण्डीव उठा लिया। श्रीकृष्णने उन्हें लड़नेसे रोक दिया और उन्हें बर्बरीकके पास ले जाकर कहा,—"बर्बरीक! तुम सम्पूर्ण युद्धके साक्षी हो, बताओ इन दोनोंमें-से किसके द्वारा महाभारतका युद्ध जीता गया।" बर्बरीक बोला,—"यह व्यर्थका विवाद है। मैंने देखा कि आपने ही दोनों सेनाओंका संहार किया। आपके अतिरिक्त अन्य कोई वीर ही नहीं था।"

'यश'—अन्य भगवद्रूपोंका यश भी सर्वत्र देखा जाता है, किन्तु श्रीकृष्णके समान किसी औरका यश नहीं है।

'ज्ञान'—भगवद्गीतामें जो ज्ञान बताया है अथवा श्रीमद्भागवतम्‌के दशम और एकादश स्कन्धमें उद्धव-सन्देश या उद्धव-संवादमें जो उद्धवजीको जो ज्ञान दिया है, ऐसा ज्ञान कहीं भी नहीं है, यहाँ तक कि उपनिषदों, वेदोंमें भी नहीं है।

'वैराग्य'—शरद ऋतुमें पूर्णिमाकी रात्रि है और वृन्दावनकी प्राकृतिक सौन्दर्यके द्वारा यमुनाजीकी छटा निराली हो रही है। श्रीकृष्ण परम सुन्दरी, सर्वगुण-सम्पन्ना महाभाववती करोड़ों गोपियोंको रासमें अचानक छोड़कर अन्तर्धान हो गये। संसारमें ऐसा करना किसी भी पुरुषके लिये सम्भव नहीं है। मूसल लीलामें श्रीकृष्णके समस्त परिजन मारे गये और वे अविचलित, ग्लानिरहित होकर शान्त बैठकर सब देखते रहे।

त्याग, वैराग्य, रूप, गुण, लीलाएँ, उदारता आदि समस्त विषयोंमें श्रीकृष्ण निरूपम हैं, उनके समान कोई नहीं है। विशेषकर चार गुण—रूप-माधुरी, गुण-माधुरी, वेणु-माधुरी और प्रेम-माधुरी अन्य किसी भी भगवद्रूपमें भी नहीं है।

'रूप'—वह सभीको आकर्षित करके उन्मत्त बना देता है, विशेषकर स्त्रियोंको परम मनोहर लगता है। श्रीकृष्णके रूपको देखकर मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जिस योनिमें जो भी, जहाँ भी है, स्त्रीजाति अधिक

आकृष्ट होती है। श्रीरामका, श्रीनारायणका रूप भी बहुत सुन्दर है, किन्तु श्रीकृष्णके जैसा किसीका रूप नहीं है। श्रीरूपगोस्वामी विरचित श्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकम् श्लोक-3—

श्यामे! रमारमण-सुन्दरता-वरिष्ठ-
सौन्दर्य-मोहित-समस्त-जगज्जनस्य।
श्यामस्य वामभुज-बद्धतनुं कदाहं
त्वामिन्दिरा-विरल-रूपभरां भजामि?॥

अर्थात् "हे श्रीमती श्यामे! आपका श्रीविग्रह, नारायण भगवान्‌की सुन्दरतासे भी श्रेष्ठ, अपने सौन्दर्यके द्वारा समस्त जगत्‌जनोंको मोहित करनेवाले श्यामसुन्दरकी बायीं भुजासे निबद्ध है, अर्थात् आप श्रीकृष्णके वामाङ्गमें विराजमान हैं एवं आपके रूपकी समता प्राप्ति लक्ष्मीदेवीके लिये भी दुर्लभ है मैं तुम्हारी इस प्रकारकी छविका कब भजन किया करूँगा?"

माथुर रमणियाँ कह रही हैं—*'दृग्भिः पिबन्त्यनुसव'* गोपियोंने अपने नेत्रोंके द्वारा मदिरा (अमृत)का पान किया। वह अमृत क्या था? वह था श्रीकृष्णका रूप-प्रेमादि। *'दुराप-मेकान्तधाम'*—जो अन्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, अपने प्रेमके द्वारा गोपियोंने अपने नेत्रोंसे श्रीकृष्णकी असमोर्ध्व रूपमाधुरीका पान किया। *'लावण्यसारमसमोर्ध्वम्'*—लावण्य अर्थात् कान्ति। एक काला व्यक्ति भी लावण्यके कारण सुन्दर दिखता है और गोरा व्यक्ति भी यदि शरीरपर लावण्य न रहे तो उतना सुन्दर नहीं दिखता है। श्रीकृष्ण श्याम वर्ण होनेपर भी निराले लावण्यसे युक्त हैं। मोती श्वेत होता है और उसमेंसे ज्योति निकलती है, यही ज्योति ही लावण्य-सार है। उसी प्रकार श्रीकृष्णके शरीरसे भी ऐसी दीप्ति या लावण्य निकलता है जिसे देखते ही सभी लोग मुग्ध हो जाते हैं। श्रीकृष्णका लावण्य-सार असमोर्ध्व है। अर्थात् श्रीकृष्णके समान भी किसीके भी रूपका आकर्षण नहीं है, उससे अधिक होनेका तो किसीमें सामर्थ्य ही नहीं है। वह अतुलनीय है। यद्यपि श्रीकृष्णके मुखारविन्दकी कमलसे तुलना की गयी है, तो क्या कमलका सौन्दर्य श्रीकृष्णके मुखके सौन्दर्यके समान हो सकता है, यह कदापि सम्भव नहीं है। त्रिजगत्‌में ऐसा कोई नहीं है जिससे उनके मुखारविन्दकी तुलना की जाय, इसलिये उपमा-अलङ्कार ही दिया गया है। *'अनन्यसिद्धम्'*—किसी थोड़े कुरूप व्यक्तिको भी उबटन लगाकर स्नानके बाद शृङ्गारकर अनेक प्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत किया जाय, तो वह भी सुन्दर दिखने लगता है। उबटन-अलङ्कारोंकी सहायतासे वह व्यक्ति कुछ सुन्दर प्रतीत होता है। किन्तु श्रीकृष्णका सौन्दर्य कैसा है? सायंकालमें गोचारणसे लौटते हुए उनके शरीरपर लाखों गायोंके खुरोंसे उड़ी धूल पड़ी है, परन्तु धूल-धूसरित श्रीकृष्णका सौन्दर्य और भी वर्द्धित हो रहा है। पाठशालासे लौटकर आ रहे महाप्रभुजीके गालोंपर स्याही लगी है और वे परम सुन्दर अथवा सुन्दरसे भी सुन्दर बन गये। यदि श्रीकृष्ण निवस्त्र चल रहे हों, तो भी बड़े सुन्दर लगते हैं। यशोदा माता श्रीकृष्णका शृङ्गार करना चाहती हैं, उनकी आँखोंमें काजल लगाना चाहती हैं, उनकी कमरमें सोनेकी करधनी लगाना चाहती हैं। श्रीकृष्ण मचलकर भागे और यशोदाजी पीछे-पीछे दौड़ी। वे उनको कोई भी अलङ्कार धारण नहीं करा सकीं। श्रीकृष्ण भागते जा रहे हैं और उनको देखकर ऋषि-महर्षि लोग और गोपियाँ एक दम मुग्ध हो गये। ऐसा किसीका रूप नहीं है। बिना अलङ्कारके वे ऐसे सुन्दर लगते हैं। उनके द्वारा अलङ्कार धारण करनेपर अलङ्कारोंकी शोभा होती है। श्रीमद्भागवत (3/2/12)में उद्धव-वचन *'परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्'* अर्थात् "वह श्रीमूर्ति समस्त लौकिक दृश्योंमें भी परम अलौकिक तथा समस्त भूषणोंकी भी भूषणस्वरूप थी।"

अहो! गोपियोंने ऐसा कौन सा तप किया? *'गोप्यस्तपः किमचरन्'*—मथुरा रमणियाँ विचार रही हैं,—"ओह! क्या किसी भी प्रकारके तपसे ऐसी रूप-माधुरीका पान किया जा सकता है?"

किन्तु किसी भी तपस्याके द्वारा श्रीकृष्णकी ऐसी

रूप-माधुरीका पूर्ण रूपसे आस्वादन नहीं किया जा सकता। सौभरि ऋषिने भी बड़ी कठोर तपस्या की थी, किन्तु उन्हें श्रीकृष्णके परम मधुर रूपके दर्शन नहीं हुए। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भकर्ण आदिने भी बड़ी कठोर तपस्या की थी, किन्तु उस तपस्यासे उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन नहीं प्राप्त हुए। यहाँ तक कि लक्ष्मीजीने भी कठोर तपस्या की, परन्तु उन्हें भी श्रीकृष्णके असमोर्ध्व लावण्यसार रूप मुखामृत पान करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये तपके द्वारा तो यह असम्भव है? यदि तप नहीं किया तो क्या किया? क्या गङ्गाजल या तीर्थोके स्नानसे श्रीकृष्णकी ऐसी दुर्लभ और अनुपम रूप-राशिका पान किया जा सकता है? यह कभी भी सम्भव नहीं है?

इसलिये श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा है कि गोपियोंके आनुगत्यमें भजन किये बिना किसी भी तपस्या, भजनके द्वारा यह सम्भव नहीं है। श्रुतियाँ जब इस बातसे अवगत हुईं, तब उन्होंने गोपियोंके आनुगत्यमें भजन करके अपने मनोभीष्टको प्राप्त किया।

माथुर रमणियाँ कह रही हैं कि यह गोपियोंका परम सौभाग्य है कि वे श्रीकृष्णके ऐसे असमोर्ध्व परम मनोहर रूपका दर्शन करती हैं। और हम कैसी अभागी है कि हम यहाँ श्रीकृष्णका जो रूप देख रही हैं वह किशोरस्वरूप रहनेपर भी क्रोधमें आविष्ट है और यह असुर उनको मारनेके लिये तत्पर है। इसलिये हम परम दुर्भागिनी हैं।—"श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज"॥ 112॥

श्रीकृष्णके तारुण्यामृत-सिन्धुकी लावण्यामृत-तरङ्गोंमें
गोपियोंका नित्य अवगाहन करना :—

तारुण्यामृत—पारापार, तरङ्ग—लावण्यसार,
ताते से आवर्त्त भावोद्गम।
वंशीध्वनि—चक्रवात, नारीर मन—तृणपात,
ताहा डुबाय, ना हय उद्गम॥ 113॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नित्य तरुणतारूप महासमुद्रकी तरङ्गकी भाँति लावण्यका सार श्रीकृष्णके शरीरमें लक्षित होता है। उसमें भावोंका उदय आवर्त्त अर्थात् भँवर है और वंशीध्वनि बवण्डर है; ऐसी अवस्थामें स्त्रियोंका चित्त तिनकोंकी भाँति उसमें फंसकर उसके चक्रसे निकल नहीं पाता॥ 113॥

अनुभाष्य—*'चक्रवात'*—गोलाकार चक्र जैसी घूमती हुई वायु (बवण्डर)॥ 113॥

श्रीकृष्णरूपके अमृतपानसे गोपियाँ कृतकृतार्थ :—

सखि हे, कोन् तप कैल गोपीगण।
कृष्णरूप-सुमाधुरी, पिबि' पिबि' नेत्र भरि',
श्लाघ्य करे जन्म-तनु-मन॥ 114॥ ध्रु॥

अनुवाद—हे सखि, गोपियोंने कौन सी तपस्या की है जिसके फलस्वरूप वे श्रीकृष्णके रूपकी सुमाधुरीको नेत्रोंके द्वारा छक-छककर पान करके अपने जन्म, तन और मनको सफल बनाती हैं॥ 114॥

श्रीकृष्णरूप-माधुर्य—असमोर्ध्व,
श्रीनारायणमें भी उसका अभाव :—

ये माधुरीर ऊर्द्ध आन, नाहि यार समान,
परव्योमे स्वरूपेर गणे।
यिँहो सर्व-अवतारी, परव्योम-अधिकारी,
ए माधुर्य नाहि नारायणे॥ 115॥

अनुवाद—जिस माधुरीसे श्रेष्ठ और जिस माधुरीके समान परव्योमके अन्यान्य भगवद्-स्वरूपोंका तो कहना ही क्या, जो उन सबके अवतारी तथा परव्योमके अधिपति श्रीनारायण हैं—यह माधुरी उनमें भी नहीं है॥ 115॥

प्रमाण,—नारायणी लक्ष्मीमें भी श्रीकृष्णके
माधुर्यके प्रति लोभ :—

ताते साक्षी सेइ रमा, नारायणेर प्रियतमा,
पतिव्रतागणेर उपास्या।
तिँहो ये माधुर्यलोभे, छाड़ि' सब कामभोगे,
व्रत करि' करिला तपस्या॥ 116॥

अनुवाद—पतिव्रता स्त्रियोंकी उपास्य और श्रीनारायणकी अत्यन्त प्रियतमा लक्ष्मी ही इस विषयमें साक्षी हैं। उन लक्ष्मीने श्रीकृष्णके इसी माधुर्यके लोभसे सब प्रकारके काम-भोगोंको छोड़कर व्रत धारण करके तपस्या की थी॥ 116॥

अन्यान्य प्रकाश-विग्रहोंमें स्वेच्छाके अनुरूप प्रयोजनके अनुसार अपने स्वतःसिद्ध माधुर्यके अंशका प्रकाश :—

सेइ त' माधुर्य-सार, अन्य-सिद्धि नाहि तार,
तिँहो—माधुर्यादि-गुणखनि।
आर सब प्रकाशे, ताँर दत्त गुण भासे,
याँहा यत प्रकाशे कार्य जानि॥ 117॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 117॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वह श्रीकृष्णमाधुर्य अनन्यसिद्ध अर्थात् स्वयं सिद्ध है, वह और किसी गुणके द्वारा सिद्ध नहीं होता। वह श्रीकृष्णमूर्ति अपने अन्य-अन्य प्रकाशमें अर्थात् श्रीनारायणादि मूर्तियोंमें अपने प्रकाशके द्वारा जो-जो कार्य होगा, उसके अनुरूप ऐश्वर्य-वीर्य आदि गुण प्रकट कराती है॥ 117॥

श्रीकृष्णमाधुर्य और गोपीप्रेम,
दोनों ही नित्य-नवनवायमान :—

गोपीभाव-दरपण, नव नव क्षणे क्षण,
तार आगे कृष्णेर माधुर्य।
दोँहे करे हुड़ाहुड़ि, बाड़े मुख नाहि मुड़ि,
नव नव दोँहार प्राचुर्य॥ 118॥

अनुवाद—गोपियोंका भाव उस दर्पणके समान है, जिसके आगे श्रीकृष्णका माधुर्य क्षण-क्षणमें नव-नवायमान रूप धारण करता है। गोपियोंके भाव और श्रीकृष्णके माधुर्य—दोनोंमें होड़ सी लग जाती है, दोनों ही बढ़ते जाते हैं, कोई भी हार नहीं मानता, बल्कि दोनों ही नव-नवायमान होकर बढ़ते ही जाते हैं॥ 118॥

रागानुगा भक्तिके बिना श्रीकृष्णमाधुर्य सुदुर्लभ :—

कर्म, तप, योग, ज्ञान, विधि-भक्ति, जप, ध्यान,
इँहा हैते माधुर्य दुर्लभ।
केवल ये रागमार्गे, भजे कृष्णे अनुरागे,
तारे कृष्ण-माधुर्य सुलभ॥ 119॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 119॥

अनुभाष्य—कर्म, तप, योग, ज्ञान, वैधीभक्ति, जप, ध्यानादि साधनोंके द्वारा माधुर्यकी प्राप्ति नहीं होती; श्रीकृष्ण-माधुर्य केवलमात्र रागमार्गसे श्रीकृष्ण-नाम भजनमें अनुरागयुक्त व्यक्तिके लिये ही सुलभ है॥ 119॥

स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनसे ही अन्यान्य भगवत्ता :—

सेइरूप व्रजाश्रय, ऐश्वर्य-माधुर्यमय,
दिव्यगुणगण-रत्नालय।
आनेर वैभव-सत्ता, कृष्णदत्त भगवत्ता,
कृष्ण—सर्व-अंशी, सर्वाश्रय॥ 120॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका सर्वाकर्षक रूप केवल व्रजमें ही विद्यमान है। वह रूप ऐश्वर्य-माधुर्यमय और दिव्य गुणरूपी रत्नोंका भण्डार है। अन्यान्य भगवदावतारोंकी वैभव-सत्ता और भगवत्ता श्रीकृष्णके द्वारा ही प्रदत्त है। श्रीकृष्ण सबके अंशी और सबके आश्रय हैं॥ 120॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनारायणादिकी जो वैभवसत्ता है, उसे श्रीकृष्णके द्वारा प्रदत्त भगवत्ता ही जानना होगा॥ 120॥

श्रीकृष्ण—समस्त चिन्मय सद्गुणोंके समाश्रय :—

श्री, लज्जा, दया, कीर्त्ति, धैर्य, वैशारदी मति,
एइ सब कृष्णे प्रतिष्ठित।
सुशील, मृदु, वदान्य, कृष्ण बिना नाहि अन्य,
कृष्ण करे जगतेर हित॥ 121॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 121॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनारायणमें श्री, लज्जा, दया, कीर्ति, धैर्य, वैशारदी (निपुण) मतिरूपी जो सब

उज्ज्वल गुण समूह दिखलायी देते हैं, वे सब श्रीकृष्णके द्वारा उनमें प्रतिष्ठित हुए हैं। किन्तु सुशीलता, मृदुता और वदान्यता—श्रीकृष्णके अतिरिक्त और किसी भी प्रकाशमें दिखलायी नहीं पड़ती। [श्रीकृष्ण ही जगत्का हित करते हैं।]॥ 121॥

श्रीकृष्णके रूप-माधुर्यका पान करनेके लिये पलकरहित चक्षुओंकी आकाङ्क्षा :—

कृष्ण देखि' यत जन, कैल निमिषे निन्दन,
व्रजे विधि निन्दे गोपीगण।"
सेइ सब श्लोक पड़ि', महाप्रभु अर्थ करि',
सुखे माधुर्य करे आस्वादन॥ 122॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके रूप माधुर्यको देखकर अनेक लोगोंने अपनी पलकोंके झपकनेकी निन्दा की है। व्रजमें गोपियोंने तो पलकोंको बनानेवाले विधाता (ब्रह्मा)की भी निन्दा की है।" महाप्रभु श्रीमद्भागवतके ऐसे और भी श्लोकोंको पढ़कर और उनके अर्थोंको प्रकाशित करके आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णके माधुर्यका आस्वादन करने लगे॥ 122॥

अनुभाष्य—*'निमिषे निन्दन'*—नेत्रको ढकनेवाले अङ्गको 'पलक' कहते हैं, नेत्रके ऊपर लगी होनेके कारण वह देखनेमें बाधा देती है, इसलिये वह निन्दनीय है॥ 122॥

श्रीकृष्णके मुखकमलका मधुपान करनेसे जड़सुलभ तृप्ति नहीं; प्रतिक्षण गोपियोंके आनन्दरूपी समुद्रकी वृद्धि :—
श्रीमद्भागवत (9/24/65)में—

"यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च॥ 123॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 123॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनके मुखचन्द्र, मकरकुण्डलसे सुशोभित कर्ण (कान), शोभायमान कपोल (गाल), सौन्दर्य, विलासपूर्ण मुस्कराहट—इन समस्त नित्य उत्सवोंको नेत्रोंके द्वारा पान करके नर-नारी परम आनन्दित होते हैं और दर्शनमें बाधा देनेवाली नेत्रोंकी पलकोंके प्रति क्रोधित होते हैं॥ 123॥

अनुभाष्य—श्रील शुकदेव महाराज परीक्षितको यदुवंशका वर्णन करते-करते श्रीकृष्णके अवतारोंके उद्देश्य और उनके सर्वलोक-मनोहर अतुल सुन्दर रूप-माधुर्यका वर्णन कर रहे हैं—

यस्य (कृष्णस्य) मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं (मकरकुण्डलाभ्यां चारू शोभितौ कर्णौ ताभ्यां भ्राजन्तौ समुज्ज्वलौ यौ कपोलौ गण्डदेशौ, ताभ्यां सुभगं कमनीयं) सविलासहासं (सविलासः सलीलः हासः यस्मिन् तत्) नित्योत्सवं (नित्यम् उत्सवः आनन्दः यस्मिन् तत्) आननं (मुखपद्मं) नार्यः नराः दृशिभिः (नेत्रैः) पिबन्त्यः [अपि] न तु ततृपुः (तृप्ताः) [निमेषोन्मेषमात्रव्यवधानमप्यसहमानास्तत्कर्त्तुः] निमेः (विधातुः) कुपिताः (क्रुधाः च बभूवुः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। पलक झपकनेके समय दर्शनमें जो बाधा होती है, वह उनके लिये असहनीय होती है॥ 123॥

श्रीमद्भागवत (10/31/15)में :—

अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते
जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम्॥ 124॥

अनुवाद—गोपियाँ बोलीं,—"हे कृष्ण! दिनके समयमें जब तुम वनमें चले जाते हो, तब तुम्हारे घुँघराले केशोंसे सुशोभित श्रीमुखको न देखकर हमारा एक-एक त्रुटिकाल भी युगके समान प्रतीत होता है। तुम्हारे मुखारविन्दका दर्शन करानेवाले हमारे नेत्रोंपर जिस विधाताने पलकोंकी सृष्टि की है, उसे हम मूर्ख मानती हैं॥"124॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/153 संख्या देखें॥ 124॥

कामगायत्री—साक्षात् श्रीकृष्ण विग्रह, एक एक अक्षर—एक-एक अङ्ग-प्रत्यङ्ग :—

[यथा रागः]

कामगायत्री-मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्द्ध चब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्ण करि' उदय,
त्रिजगत् कैला काममय॥ 125॥

अनुवाद—कामगायत्री मन्त्र श्रीकृष्णका स्वरूप है। इस मन्त्रराजमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं और इस मन्त्रका प्रत्येक अक्षर पूर्ण चन्द्र है। ये चन्द्रसमूह श्रीकृष्णको उदित कराकर त्रिजगत्को प्रेममय बना देते हैं॥ 125॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कामगायत्री मन्त्र श्रीकृष्णस्वरूप है। कामबीजको अर्द्ध (आधा) अक्षर माननेसे उसमें साढ़े चौबीस अक्षर होते हैं॥ 125॥

अनुभाष्य—*'कामगायत्री'*—मध्यलीला 8/137 संख्या देखें। कामगायत्रीके साढ़े चौबीस अक्षर ही श्रीकृष्णके अङ्गोंमें साढ़े चौबीस चन्द्र जैसे हैं और वे श्रीकृष्णस्वरूप हैं, क्योंकि वे—सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन नामक तीन तत्त्वोंसे युक्त हैं॥ 125॥

अमृतानुकणा—"पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें ऐसा लिखा है कि वेदमाता गायत्रीने भी गोपी जन्म लेकर श्रीकृष्णका सङ्ग प्राप्त किया था। उसी समयसे उन्होंने कामगायत्रीका रूप धारण कर लिया है। ×× कामगायत्री निश्चय ही अनादि हैं। वे अनादि गायत्री पहले वेदमाता गायत्रीके रूपमें प्रकट थीं। बादमें साधनके प्रभावसे और अन्यान्य उपनिषदोंका सौभाग्य देखकर गोपालोपनिषद्के साथ व्रजमें जन्म लिया। कामगायत्रीके रूपमें नित्य होकर भी वे वेदमाता गायत्रीके रूपमें नित्य पृथक् विराजमान हैं।" (जैवधर्म, 32वाँ अः)

श्रीश्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने 'मन्त्रार्थ-दीपिका'-ग्रन्थमें साढ़े-चौबीस-अक्षरात्मक कामगायत्री-मन्त्रकी व्याख्यासे सम्बन्धित एक विशेष घटनाका वर्णन किया है, वह इस प्रकार है,—

"हे वैष्णवों! मेरे इस 'कामगायत्री'की व्याख्याके लिखनेका वृत्तान्त आप लोग श्रवण करो। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने प्राकृत वर्ण अनुसार कामगायत्रीकी वर्ण-संख्या साढ़े चौबीस कहकर जो लिखा है, उस मतानुसार मैंने भी वही लिखा है। वह जैसे,—

"कामगायत्री-मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्द्ध-चब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्ण करि' उदय,
त्रिजगत् कैला काममय॥"

इस प्रमाणका अवलम्बन करके पूर्वमतके अनुसार अनुक्रम संस्थापित हुआ है। किन्तु श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने कामगायत्रीकी अक्षर संख्या 'पचीस' छोड़कर किस प्रमाण अथवा किस अभिप्रायसे साढ़े चौबीस कही है, वह मैं समझ नहीं पाया। अनेक शास्त्रोंको पढ़कर अथवा श्रवण करके मैंने यह जाना कि शास्त्रोंके विचारसे अर्द्ध-अक्षरकी सम्भावना नहीं है, इसलिये मैं महा-सन्देहके सागरमें निमग्न हो गया था। यदि कोई कहे कि मात्राहीन 'त'-कार (त्)—अर्द्ध-अक्षर है, तो ऐसा होनेपर मात्राहीन अक्षर यहाँपर और भी हैं, इसलिये ऐसा भी नहीं हो सकता। व्याकरण, पुराण, आगम, नाट्य-अलङ्कारादि शास्त्रोंमें स्वरवर्ण-व्यञ्जनवर्णके भेदसे पचास वर्णोंका ही उल्लेख है, किन्तु कहीं भी अर्द्धाक्षरका कोई प्रमाण नहीं है। श्रीजीव गोस्वामीके द्वारा रचित श्रीहरिनामामृत-व्याकरणमें *"नारायणाद्भुद्भुतोऽयं वर्णक्रमः"*—संज्ञापादमें स्वर-व्यञ्जनके प्रसङ्गमें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख है, इसी प्रकार अन्य व्याकरणोंमें भी वही विचार है। और वृहन्नारदीय पुराणमें श्रीराधिका-सहस्रनाम-स्तोत्रमें वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाको पचास-वर्णरूपिणी कहा गया है। इस प्रकार अन्य शास्त्रोंमें भी और मातृकान्यास आदिमें भी मातृकादि-प्रकरणमें कहीं भी मैंने अर्द्धाक्षरके साथ पचास वर्णक्रम

नहीं देखा। ऐसा होनेपर क्या इन सब शास्त्रोंको श्रील कविराज गोस्वामी नहीं जानते थे? यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि वे भ्रम-प्रमादादि दोषोंसे सर्वथा रहित हैं, यह सब जानते हैं।

पुनः यदि उक्त मन्त्रमें मात्राहीन 'त'-कार (अर्थात् सबसे अन्तमें 'प्रचोदयात्'के 'त्') को अर्द्धाक्षर माना जाय, तो क्या श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने क्रमभङ्ग करके (अर्द्धचन्द्र) लिखा है? क्योंकि उक्त वर्णक्रमानुसार श्रीकृष्णके मुख-कपोल-चरणान्त इस क्रमसे सबसे अन्तमें जो श्रीचरण हैं, उसको परित्याग करके उन्होंने उन्होंने ललाटमें अर्द्धचन्द्र स्थापित किया है। वह जैसे—श्रीचैतन्यचरितामृतमें मध्यलीलामें इक्कीसवें अध्यायमें श्रीसनातन-शिक्षाके प्रसङ्गमें सम्बन्धतत्त्व विचारमें—

"सखि हे, कृष्णमुख—द्विजराज-राज।
कृष्णवपु-सिंहासने, वसि' राज्यशासने,
करे सङ्गे चन्द्रेर समाज॥
दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि' मणि-सुदर्पण,
सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि।
xx सब लोक करे आप्यायित॥"

इस रूपमें दो प्रकार अनुवादके द्वारा बहुत विचार करनेपर भी मुझे कोई समाधान नहीं मिला। तब सब उपाय छोड़कर, अन्न-जलादि त्यागकर, मैं मनमें दुःखी होकर देहत्यागके अभिप्रायसे राधाकुण्डके तटपर आ गया। जब मन्त्राक्षर नहीं जानता हूँ, तब मन्त्रदेवता कैसे गोचर होंगे, इसलिये देह-त्याग करना ही कर्त्तव्य है (मैंने यह निश्चय किया)।

उसके बाद रात्रिका द्वितीय प्रहर होनेपर तन्द्रा आनेपर मैंने देखा कि श्रीवृषभानुनन्दिनी आकर कह रही हैं,—'हे विश्वनाथ! हे हरिवल्लभ! तुम उठो। श्रीकृष्णदास कविराजने जो कुछ लिखा है, वही सत्य है। वह मेरी नर्मसखी है। मेरे अनुग्रहसे मेरे अन्तःकरणकी सभी भावनाओंको जानते हैं। इसलिये उनके वचनोंमें तनिक भी सन्देह मत करना। काम-गायत्री मेरी और मेरे प्राणवल्लभकी उपासनाका मन्त्र है। हमलोग मन्त्राक्षरके द्वारा भक्तोंके निकट प्रकाशित होते हैं। मेरे अनुग्रहके बिना हम दोनोंको कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है। 'वर्णागम-भास्वत्' नामक ग्रन्थमें अर्द्धाक्षरका निरूपण किया गया है, उसे देखकर ही श्रीकृष्णदास कविराजने लिखा है, वह सुनो। उसके बाद तुम इस ग्रन्थको देखकर सबके उपकारके लिये प्रमाण संग्रह करो।" यह सुनकर मैं शीघ्रतासे उठ गया। जाग्रत होकर सन्देह दूर होनेपर "हा राधे!" कहकर बार-बार विलाप करने लगा। फिर उनके आदेशको हृदयमें धारण करके उनकी आज्ञा पालनमें तत्पर हो गया। श्रीमती राधिकाने अर्द्धाक्षर निर्णय करनेके विषयमें जो इङ्गित दिया था—*"व्यन्त-यकारोऽर्द्धाक्षरं ललाटेऽर्द्धचन्द्रबिम्बः तदितरं पूर्णाक्षरं पूर्णचन्द्रः।"* उसके अनुसार उक्त मन्त्रमें 'वि'के पूर्व जो 'य' है, वही अर्द्धाक्षर है (अर्थात् 'कामदेवाय'-पदके 'य'-कारके बाद 'विद्महे'-पदका 'वि'-अक्षर है, इसलिये उक्त 'य'-कार अर्द्धाक्षर है)। वही ललाटमें अर्द्धचन्द्र-स्वरूप है। उसके अतिरिक्त अन्य सभी अक्षर पूर्णाक्षर या पूर्णचन्द्र हैं।

xx'वर्णागम-भास्वत्'-का प्रमाण इस प्रकार है—*"विकारान्त-यकारेण अर्द्धाक्षरं प्रकीर्त्तितम्॥"*125॥

श्रीकृष्णके साढ़े चौबीस अङ्ग-चन्द्रके
ऊपर श्रीमुखचन्द्रका राजत्व :—

सखि हे, कृष्ण मुख—द्विजराज-राज।
कृष्णवपु-सिंहासने, बसि' राज्य-शासने,
करे सङ्गे चन्द्रेर समाज॥126॥ध्रु॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥126॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'द्विजराज-राज'*—चन्द्रोंका राजा। [हे सखि,] वह श्रीकृष्णमुखचन्द्र राजा होकर, श्रीकृष्णशरीररूप सिंहासनपर बैठकर, (अङ्ग-प्रत्यङ्गादि) चन्द्रोंका समाज लेकर माधुर्य-राज्यपर शासन कर रहा है। कहाँ कौन सा चन्द्र है, वह बादमें बतलाया जा रहा है॥126॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णमुखमण्डल-चन्द्र ही चन्द्रराज है;

(1) मुखचन्द्र, (2) बायाँ कपोलचन्द्र, (3) दायाँ कपोलचन्द्र, (4) चन्दनबिन्दुचन्द्र, (5-14) हाथोंके नखचन्द्र, (15-24) पाँवोंके नखचन्द्र, (24 $^1/_2$) ललाटका अर्द्धचन्द्र;—इन साढ़े चौबीस चन्द्रोंके समाजको लेकर श्रीकृष्णमुख-चन्द्रराजा श्रीकृष्ण देहरूप सिंहासनपर बैठकर राजत्व कर रहा है॥ 126॥

दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि' मणि-सुदर्पण,
सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि।
ललाटे अष्टमी-इन्दु, ताहाते चन्दन-बिन्दु,
सेह एक पूर्णचन्द्र मानि॥ 127॥

करनख—चान्देर ठाट, वंशी-उपर करे नाट,
तार गीत मुरलीर तान।
पदनख-चन्द्रगण, तले करे नर्त्तन,
नूपुरेर ध्वनि यार गान॥ 128॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके दो अत्यन्त उज्ज्वल कपोल दो पूर्ण चन्द्र हैं, ये चमकती मणियोंकी शोभाको भी तिरस्कृत कर देनेवाले हैं। उनके ललाटपर अष्टमीका चन्द्र अर्द्धचन्द्र और उसमें चन्दनका बिन्दु एक पूर्णचन्द्र है। श्रीकृष्णके हाथोंके नख एक-एक पूर्ण चन्द्र हैं और उनके हाथोंमें धारण की हुई वंशीके ऊपर वे नृत्य करते हैं, उनका गीत ही मुरलीकी तान है। उनके चरणोंके नख भी पूर्ण चन्द्र हैं और वे पृथ्वीपर नृत्य करते हैं, तब नुपूरकी ध्वनि ही उनका गान है॥ 127-128॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अष्टमी-इन्दु'*—अर्द्धचन्द्र॥ 127॥

अनुभाष्य—*'ठाट'*—स्थिति; *'नाट'*—नाट्य॥ 128॥

विलासमें मत्त क्षत्रियकी भाँति श्रीकृष्णमुखकमल—
गोपियोंके चित्तको बींध देनेवाला :—

नाचे मकर-कुण्डल, नेत्र—लीला-कमल,
विलासी राजा सतत नाचाय।
भ्रू—धनु, नेत्र—बाण, धनुर्गुण—दुई काण,
नारीमन-लक्ष्य बिन्धे ताय॥ 129॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 129॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णमुखचन्द्र विलासी राजा है; वह मुखचन्द्र मकर-कुण्डलों और नेत्रकमलोंको सदा नृत्य कराता है। भौंहे—धनुषके समान हैं, नेत्र उसके बाण हैं; दोनों कान—धनुषकी रस्सीसे बँधे हुए हैं; कानों तक विस्तृत नेत्ररूपी बाणोंके द्वारा श्रीकृष्ण गोपनारियोंके मनरूपी लक्ष्य-वस्तुको बींधते हैं॥ 129॥

महावदान्यरूपमें सबको अङ्ग-चन्द्रसमूहसे
अमृत-वितरण :—

एइ चान्देर बड़ नाट, पसारि' चान्देर हाट,
बिनिमूले बिलाय निजामृत।
काँहो स्मित-ज्योत्स्नामृते, काँहारे अधरामृते,
सब लोक करे आप्यायित॥ 130॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 130॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण मुखचन्द्रका नाट्य (नृत्य) सभीका ही अतिक्रम करता है और अन्य साढ़े तेईस चन्द्ररूपी बिक्री किये जानेवाले द्रव्योंके द्वारा हाटका विस्तार करके अपने अमृतको बिना मूल्यके वितरण करता है। किसी ग्राहकको मधुर हास्यरूप ज्योत्स्नामृतके द्वारा, किसी ग्राहकको अधरामृतके द्वारा और अन्यान्य सभीको किसी अन्य प्रकारसे प्रसन्न करता है॥ 130॥

कामक्रीड़ामत्त मुखचन्द्र-राजाके मन्त्री और
प्रमोदविलास-भवन आदिका वर्णन :—

विपुलायतारुण, मदन-मद-घूर्णन,
मन्त्री यार ए दुइ नयन।
लावण्य—केलि-सदन, जन-नेत्र-रसायन,
सुखमय गोविन्द-वदन॥ 131॥

अनुवाद—लालिमायुक्त दो नयन जिनके कोर कानों तक प्राय विस्तृत हैं, उस श्रीकृष्णमुखरूप राजाके मन्त्री हैं और वे मदनके मदको नष्ट करते हैं। गोविन्दका मुखकमल जो आनन्दसे परिपूर्ण है, वह लावण्यकी

लीलाका वासस्थान है और वह सभीके नेत्रोंके लिये रसायन स्वरूप है॥ 131॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अति विस्तृत लालिमायुक्त दो नयन—उन श्रीकृष्णमुखरूप राजाके मन्त्री हैं, वे मदनके मदको नष्ट करते हैं॥ 131॥

श्रीकृष्णमुखचन्द्रके दर्शनसे गोपियोंकी नवनवायमान, नित्य वर्द्धित होनेवाली, परम-चमत्कारमयी चिन्मयी अतृप्ति, उसके लिये विधिकी निन्दा :—

याँर पुण्यपुञ्ज-फले, से मुख दर्शन मिले,
दुइ आँखि कि करिबे पाने?
द्विगुण बाड़े तृष्णा-लोभ, पिते नारे—मनःक्षोभ,
दुःखे करे विधिर निन्दने॥ 132॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 132॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दुइ आँखि कि करिबे पाने'*—दर्शकके दो नेत्र किस प्रकार उस अमृतसमुद्रका पान कर सकते हैं?॥ 132॥

अनुभाष्य—भक्तिजनित अनुष्ठानसे ही भक्ति-उन्मुखी 'सुकृति' उत्पन्न होती है। देखनेवाले व्यक्तिके दो नेत्रोंके द्वारा ऐसे श्रीकृष्णमुखका कितना पान करना सम्भव है? उसकी तृष्णा और लोभ दो गुणा वर्द्धित होनेपर भी अभिलषित परिमाणके अनुसार पान नहीं कर पानेपर अपनी अयोग्यता और अभावके कारण उसका मन विशेषरूपसे क्षुब्ध होता है; द्रष्टा तब दुःखी चित्तसे अपने सृष्टिकर्त्ताको दोष देता है॥ 132॥

विधि—श्रीकृष्णमाधुरी-रससे अनभिज्ञ :—

ना दिलेक लक्ष कोटि, सबे दिला आँखि दुटि,
ताते दिला निमिष-आच्छादन।
विधि—जड़ तपोधन, रसशून्य तार मन,
नाहि जाने योग्य सृजन॥ 133॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 133॥

अनुभाष्य—अतृप्त द्रष्टा तब खेदपूर्वक कहता है,—मेरे लाख-करोड़ नेत्र नहीं है, केवलमात्र दो ही हैं और वे भी पलकोंसे ढके हुए हैं। बीच-बीचमें जब अति अल्प समयके लिये भी पलकें गिरती है, उस समयमें भी पुनः श्रीकृष्ण-दर्शनमें बाधा होती है। इसलिये शरीरका निर्माण-कर्त्ता ब्रह्मा अत्यन्त अज्ञानी है और श्रीकृष्णदर्शनकी सेवाको छोड़कर तुच्छ तपस्यामें रत होनेके कारण बिल्कुल भी 'रसज्ञ' नहीं है, सृष्टि आदि शुष्क कार्योंको ही करनेवाला है—कहाँ किस प्रकारका विधान करना उचित है, इस विषयमें वह सम्पूर्ण रूपसे अनभिज्ञ है॥ 133॥

विधिको परामर्श और उपदेश-प्रदान :—

ये देखिबे कृष्णानन, तार करे द्वि-नयन,
विधि हञा हेन अविचार।
मोर यदि बोल धरे, कोटी आँखि तार करे,
तबे जानि योग्य सृष्टि तार॥ 134॥

अनुवाद—विधाताने विचारहीन होकर श्रीकृष्णमुखके दर्शनके लिये भी सभीको केवल दो ही नेत्र दिये हैं। आगे अनुभाष्य देखें॥ 134॥

अनुभाष्य—मेरे परामर्शको स्वीकार करके विधाता यदि श्रीकृष्णमुखके दर्शन करनेवालेको करोड़ों नेत्र प्रदान करे, तभी मैं उसको सृष्टि रचनाके विषयमें योग्य समझूँगा॥ 134॥

श्रीकृष्णकी अङ्ग-माधुरी, मुख-माधुरी और हास्य-माधुरीमें गोपीभावयुक्त महाप्रभुका लोभ :—

कृष्णाङ्ग-माधुर्य—सिन्धु, सुमधुर मुख—इन्दु,
अति-मधु स्मित—सुकिरण।
ए तिने लागिल मन, लोभे करे आस्वादन,
श्लोक पड़े, स्वहस्त-चालन॥ 135॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 135॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'ए तिने लागिल मन'*—श्रीकृष्णके अङ्गोंका माधुर्य मानो समुद्र है, उनका सुमधुर मुख

मानो समुद्रमेंसे उठा चन्द्र है और उनकी अति मधुर मुस्कान मानो उस चन्द्रकी किरण है—इन तीनोंमें मन लग गया॥ 135॥

अनुभाष्य—साधारणतः प्रथम दृष्टिमें ही श्रीकृष्णके अङ्गरूपी माधुर्य-समुद्रका दर्शन, विशेष द्वितीय-दृष्टिमें अङ्ग-सिन्धुमें स्थित सुमधुर मुखचन्द्र और विशेषतः तृतीय दर्शनमें मधुरसे भी अति मधुर मृदुहास्यरूपी मुखचन्द्रकी किरण—इन तीनोंका माधुर्य महाप्रभुके श्लोकके पाठ करनेके समय क्रमशः उदित होने लगा एवं महाप्रभुके द्वारा अपने हाथोंको हिलाने रूपी विकार दिखलायी दिया॥ 135॥

गोपियोंके लिये श्रीकृष्णके अङ्ग, श्रीकृष्णका मुख और श्रीकृष्णकी हास्य-माधुरीका तारतम्य :—
श्रीकृष्णकर्णामृत (92)में बिल्वमङ्गलवाक्य—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-
र्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि-मृदुस्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥ 136॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 136॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इन श्रीकृष्णका शरीर मधुर है, इनका मुख भी मधुर है और इनका मधु-सुगन्धयुक्त मृदुहास्य और भी मधुर है; अहो! इनका सब कुछ ही मधुर है॥ 136॥

अनुभाष्य—

अस्य विभोः (कृष्णस्य) वपुः (मूर्त्तिः अङ्गं वा) मधुरं मधुरं (तादृश-स्वयंरूपेतर-सर्वविग्रहाणां रूपतारतम्येन अतिमधुरम्); [कृष्णस्य] वदनं (च) मधुरं मधुरं मधुरं (कृष्णाङ्ग-तारतम्येन अतितरं मधुरम्); अहो, एतत् मधुगन्धि (मधुसुरभियुक्तं) मृदु-स्मितं (मन्दहास्यं च) मधुरं मधुरं मधुरं मधुरं (कृष्णदेह-कृष्णमुख-तारतम्येन अतितमं मधुरम्)।

श्लोक-भावानुवाद—इन श्रीकृष्णका शरीर और उसके अङ्ग मधुरसे मधुर हैं अर्थात् अपनेसे अतिरिक्त सभी विग्रहोंसे रूपके तारतम्यसे अति मधुर हैं। इनका मुख मधुरसे मधुरसे भी मधुर है अर्थात् श्रीकृष्णके समस्त अङ्गोंके तारतम्यसे अतितर मधुर है। और अहो! इनका मधु-सुगन्धयुक्त मृदुहास्य मधुरसे मधुरसे मधुरसे भी मधुर है अर्थात् श्रीकृष्णके देह और श्रीकृष्णके मुखके तारतम्यसे भी अतितम मधुर है। अहो! इनका सब कुछ ही मधुर है॥ 136॥

गोपीभावमें निमग्न महाप्रभुकी श्रीकृष्णके माधुर्यके आस्वादनमें नित्य बढ़नेवाली अतृप्ति :—

सनातन, कृष्णमाधुर्य—अमृतेर सिन्धु।
मोर मन—सन्निपाति, सब पिते करे मति,
दुर्दैव, वैद्य ना देय एक बिन्दु॥ 137॥ ध्रु॥

अनुवाद—हे सनातन! श्रीकृष्णका माधुर्य अमृतका सिन्धु है। मेरा मन सन्निपात रोगसे ग्रस्त होनेके कारण उस सिन्धुका पूर्णरूपसे पान करनेकी इच्छा करता है। किन्तु मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि वैद्य मुझे उसकी एक बूँद भी पान नहीं करने देता॥ 137॥

अमृतप्रवाह भाष्य—धातु (कफ, वात और पित्त)में त्रिदोषके उत्पन्न होनेपर उसे 'सन्निपात' कहते हैं। मेरा मन जबसे श्रीकृष्णके अङ्गके माधुर्य, श्रीकृष्णके मुखके माधुर्य और श्रीकृष्णकी मुस्कानके माधुर्य—इन तीनोंका आघात खाकर पीड़ित हो गया है, तबसे मेरा मन सन्निपात-रोगसे ही पीड़ित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। वह उस-उस सौन्दर्य रससमुद्रके प्रति पिपासु होकर दौड़ रहा है। साधारण सन्निपात-रोगका वैद्य जिस प्रकार रोगीको एक बूँद भी जलका पान नहीं करने देता, उसी प्रकार मेरे इस रोगके वैद्य श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई नहीं होनेपर भी वे अपने सौन्दर्यामृत-समुद्रकी एक बूँदको भी मुझे पान नहीं करने देते—यही दुःख (दुर्भाग्य) है॥ 137॥

अनुभाष्य—विप्रलम्भ-रसमें गोपीभावमें विभावित महाप्रभुकी श्रीकृष्ण-माधुर्य-आस्वादनकी प्यास इतनी तीव्र है कि वे अपार श्रीकृष्ण माधुर्यका आस्वादन करके भी अप्राकृत परम-चमत्कारमय उत्तरोत्तर वर्द्धनशील

अतृप्तिके कारण प्रबल आवेग और उत्कण्ठावशतः सामान्य परिमाणमें भी श्रीकृष्णके माधुर्यका आस्वादन नहीं कर पा रहे हैं, ऐसा कहकर खेद और आक्षेप कर रहे हैं॥ 137॥

श्रीकृष्णके अङ्ग—मधुर, श्रीकृष्णका मुख—मधुरतर, श्रीकृष्णका हास्य—मधुरतम :—

कृष्णाङ्ग—लावण्यपूर, मधुर हैते सुमधुर,
ताते सेइ मुख सुधाकर।
मधुर हैते सुमधुर, ताहा हइते सुमधुर,
ताँर येइ स्मित ज्योत्स्ना-भर॥ 138॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका कलेवर तो लावण्यका धाम है और वह मधुरसे भी सुमधुर है। उनका मुखचन्द्र तो उससे भी अधिक मधुरसे भी सुमधुर है। और उनके मुखचन्द्रपर उससे भी अति सुमधुर उनकी मन्द-मुस्कान है जो चाँदनीके समान है॥ 138॥

अनुभाष्य—*'ताँर'*—श्रीकृष्णमुखचन्द्रका; *'स्मित ज्योत्स्ना-भर'*—श्रीकृष्णके मुखपर मन्द-मुस्कान जैसे गोपियोंको आह्लाद प्रदान करनेवाली चन्द्रिकाका पूर्ण आलोक (प्रकाश) है॥ 138॥

समस्त त्रिभुवन ही—उस हास्यचन्द्रिकाके आलोकमें स्नान किया हुआ :—

मधुर हैते सुमधुर, ताहा हैते सुमधुर,
ताहा हैते अति सुमधुर।
आपनार एककणे, व्यापे सब त्रिभुवने,
दशदिक् व्यापे यार पूर॥ 139॥

अनुवाद—वह मन्द-मुस्कान मधुरसे भी सुमधुर, उससे भी सुमधुर, उससे भी अति सुमधुर है। अपने केवलमात्र एक ही कणसे सम्पूर्ण त्रिभुवनोंमें व्याप्त होकर दसों-दिशाओंको अपने आलोकसे प्रकाशित कर देती है॥ 139॥

अनुभाष्य—यद्यपि श्रीमुखके एक ओर वह मुस्कान दिखलायी देती है, तथापि गोलोक, परव्योम और देवीधाम उससे व्याप्त होकर दसों दिशाओंमें प्रकाश भर जाता है॥ 139॥

श्रीकृष्णके क्रीड़ाविग्रहकी वेणु-माधुरीसे त्रिभुवन उन्मत्त :—

स्मित-किरण-सुकर्पूरे, पैशे अधर-मधुरे,
सेइ मधु माताय त्रिभुवने।
वंशीछिद्र आकाशे, तार गुण शब्दे पैशे,
ध्वनिरूपे पाञा परिणामे॥ 140॥

अनुवाद—वह मन्द-हास्य-किरण उत्तम कर्पूरकी भाँति है जो अधरोंकी मधुरतामें प्रवेश कर जाती है। फिर वह मधुरता वंशीके छिद्रोंसे ध्वनिके रूपमें परिणत होकर आकाशके व्याप्त हो जाती है॥ 140॥

अनुभाष्य—*'स्मितकिरण-सुकर्पूरे'*—मन्द हास्य-किरण रूपी कर्पूरसे। *'पैशे'*—प्रवेश करती है॥ 140॥

श्रीकृष्णकी वंशी—ब्रह्माण्ड, परव्योम और गोलोकके समस्त शुद्धसत्त्वकी, विशेषतः शृङ्गार-रसके आश्रित जनोंकी उन्मादिनी :—

से ध्वनि चौदिके धाय, अण्ड भेदि' वैकुण्ठे याय,
बले पैशे जगतेर काणे।
सबा मातोयाल करि', बलात्कारे आने धरि',
विशेषतः युवतीर गणे॥ 141॥

अनुवाद—वह वंशीध्वनि चारों दिशाओंमें प्रसारित होने लगती है। यद्यपि श्रीकृष्ण इस ब्रह्माण्डमें वंशीवादन कर रहे होते हैं, तथापि उनकी वंशीध्वनि ब्रह्माण्डको भेद करके वैकुण्ठमें प्रवेश करके बलपूर्वक सभी लोगोंके कानोंमें प्रवेश कर जाती है और उन्हें मत्त कर देती है। विशेषतः वह ध्वनि गोलोक-वृन्दावनमें प्रवेश करके व्रजाङ्गनाओंके मनको आकर्षित करके उन्हें जबरदस्ती वहाँ ले जाती है जहाँ श्रीकृष्ण वंशीवादन कर रहे हैं॥ 141॥

अनुभाष्य—*'अण्ड भेदि'*—ब्रह्माण्डरूपी प्राकृत-राज्यको भेद करके अप्राकृत वैकुण्ठमें जाती है और बलपूर्वक गोपीजन-जगत्के अर्थात् गोपियोंके कानोंमें प्रवेश करती है॥ 141॥

वेणु-माधुरीका प्रभाव :—

ध्वनि—बड़ उद्धत, पतिव्रतार भाङ्गे व्रत,
पति-कोल हैते टानि' आने।
वैकुण्ठेर लक्ष्मीगणे, येइ करे आकर्षणे,
तार आगे केबा गोपीगणे॥ 142॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी वेणुकी ध्वनि बहुत अभिमानी है, वह पतिव्रता-स्त्रियों तकके व्रतको भङ्ग करा देती है। वह ध्वनि उन्हें पतियोंकी गोदसे भी खींचकर ले आती है। उसमें इतना सामर्थ्य है कि वह वैकुण्ठकी लक्ष्मियों तकको भी आकर्षित कर लेती है, तब गोपियोंके विषयमें क्या कहें?॥ 142॥

नीवि खसाय पति-आगे, गृहधर्म कराय त्यागे,
बले धरि' आने कृष्णस्थाने।
लोकधर्म, लज्जा, भय, सब ज्ञान लुप्त हय,
ऐछे नाचाय सब नारीगणे॥ 143॥

अनुवाद—वंशीकी ध्वनि पतियोंके सामने ही गोपियोंके नाड़ेको ढीला कर देती है, गोपियोंके गृह-धर्मका त्याग कराकर उन्हें बलपूर्वक पकड़कर उस स्थानपर ले आती है, जहाँपर श्रीकृष्ण विराजमान होते हैं। उन गोपियोंका लोकधर्म, लज्जा, भयादिका सब ज्ञान लुप्त हो जाता है। श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि समस्त नारियोंको अपने इशारोंपर नचाती है॥ 143॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'नीवि'*—लहँगेको कमरसे बाँधने वाली डोरी॥ 143॥

श्रीकृष्णके अतिरिक्त सभी शब्दोंको
स्तम्भित करनेवाली :—

काणेर भितर वासा करे, आपने ताँहा सदा स्फुरे,
अन्य शब्द ना देय प्रवेशिते।
आन कथा ना शुने काण, आन बुझिते बोलय आन,
एइ कृष्णेर वंशीर चरिते॥ 144॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 144॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'काणेर भितर वासा करे'*—'हम गोपियाँ हैं, हमारे कानके भीतर वंशीध्वनि वास करती है अर्थात् सदा कानमें लगी ही रहती है॥'144॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि गोपियोंके कानोंमें आवास बनाकर स्वयं ही ध्वनिकी स्फूर्त्तिसे गोपियोंको उन्मत्त प्राय बनाकर रखती है, तब गोपियोंके कानमें अन्य कोई शब्द प्रवेश नहीं कर पाता और उनका मन कहीं और होनेके कारण वे ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पातीं। श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिका ऐसा प्रभाव है कि वह गोपियोंके मनको सम्पूर्ण रूपसे श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य विषयोंसे दूर कर देती है॥ 144॥

इक्कीसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

महाप्रभुका बाह्य दशामें आना,
अमानी और मानद-धर्म :—

पुनः कहे बाह्यज्ञाने, आन कहिते कहिलुँ आने,
कृष्ण-कृपा तोमार उपरे।
मोर चित्त-भ्रम करि', निजैश्वर्य-माधुरी,
मोर मुखे शुनाय तोमारे॥ 145॥

अनुवाद—कुछ बाह्यज्ञान होनेपर महाप्रभु पुनः कहने लगे—मैं क्या कहते-कहते क्या कह गया? हे सनातन! तुमपर श्रीकृष्णकी कृपा है, इसलिये उन्होंने ही मेरे चित्तको भ्रमित कराके, अपने ऐश्वर्य और माधुर्यकी कथाको मेरे मुखके माध्यमसे तुम्हें सुनाया है॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस प्रेमके आवेशमें श्रीकृष्णतत्त्व बोलते-बोलते बाह्यज्ञान शून्य होकर महाप्रभुने जिस रससन्दर्भको प्रकाशित किया, यह स्थान उसका वर्णन-स्थल नहीं है। इसलिये वे कह रहे हैं,—"मैं एक विषयमें बोलते हुए अन्य विषयको बोलने लगा, श्रीकृष्णने कृपा करके मेरे चित्तमें भ्रम उत्पन्न कराके अपनी ऐश्वर्य-माधुरी तुम्हें श्रवण करायी है॥ 145॥

इक्कीसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

गोपीभावमें आविष्ट महाप्रभुकी श्रीकृष्णमाधुर्यमें ग्रस्त अपने चित्तकी वश्यता और सौभाग्यको बतलाना :—

आमि त' बाउल, आन कहिते आन कहि।
कृष्णेर माधुर्यस्रोते आमि याइ बहि'॥"146॥

अनुवाद—मैं तो पागल (उन्मत्त) हूँ, एक प्रसङ्ग कहते-कहते अन्य प्रसङ्ग कहने लग गया हूँ। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि मैं तो श्रीकृष्णके माधुर्य-स्त्रोतमें बहता जा रहा हूँ॥"146॥

महाप्रभुका क्षणकालके लिये मौनभाव :—

तबे महाप्रभु क्षणेक मौन करि' रहे।
मने एक करि' पुनः सनातने कहे॥ 147॥

अनुवाद—तब महाप्रभु एक क्षण तक मौन रहे। मनको स्थिर करके पुनः वे श्रीसनातन गोस्वामीसे कहने लगे॥ 147॥

श्रीकृष्णमाधुर्य-श्रवण करनेवालेका श्रीकृष्णप्रेमरूपी सुखमें निमज्जित होना :—

कृष्णेर माधुरी आर महाप्रभुर मुखे।
इहा येइ शुने, सेइ भासे प्रेमसुखे॥ 148॥

अनुवाद—इस अध्यायमें वर्णित श्रीकृष्णकी माधुरी, और उसपर वह महाप्रभुके श्रीमुखसे निःसृत हुई है, इसलिये इसे जो भी श्रवण करता है, वह प्रेमानन्दमें निमज्जित हो जाता है॥ 148॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 149॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे सम्बन्धतत्त्वविचारे श्रीकृष्णैश्वर्यमाधुर्यवर्णनं नाम एकविंशः परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 149॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें सम्बन्धतत्त्वविचारमें श्रीकृष्णैश्वर्यमाधुर्यवर्णन-नामक इक्कीसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

बाइसवाँ अध्याय

कथासार—इस बाइसवें अध्यायमें श्रीमहाप्रभुने अभिधेय-तत्त्वका वर्णन किया है। महाप्रभुने सर्वप्रथम जीवका तत्त्व, बादमें भक्तिकी श्रेष्ठता और केवल-ज्ञानयोगादिकी अकर्मण्यता एवं भक्ति ही समस्त जीवोंका कर्त्तव्य है, इन सबकी व्याख्या की तथा ज्ञानियोंका मुक्त होनेका अभिमान वृथा है, उसे भी दिखलाया। भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकी कामनाओंका परित्याग करके शुद्ध भक्तियोगसे अभीष्ट अथवा प्रयोजनादि सब कुछ सिद्ध होता है। यद्यपि किसी व्यक्तिके भजनकालमें वे सब कामनाएँ अज्ञानतावशतः कुछ जुड़ी रहती हैं, तथापि श्रीकृष्ण उन्हें दूर करके उस व्यक्तिको शुद्धभक्ति प्रदान करते हैं। महाजनोंकी कृपाके बिना भक्तिका उदय नहीं होता, इसलिये साधुसङ्ग ही आवश्यक कर्त्तव्य है। श्रद्धा ही अनन्यभक्तिमें अधिकार प्रदान करती है। इसके बाद महाप्रभुने उसका और अनन्यभक्तोंके वर्गोंके भेद एवं वैष्णवोंके सभी स्वभावोंका वर्णन किया। स्त्रीसङ्ग और अभक्त-सङ्ग ही असत्सङ्ग है। इन दोनोंका परित्याग करके, वर्णाश्रमकी आसक्तिको छोड़कर श्रीकृष्णके शरणागत होना चाहिये। शरणागतिके छः लक्षणोंकी भी व्याख्या हुई है। साधनभक्ति—वैधी और रागानुगाके भेदसे दो प्रकारकी है। वैधीभक्तिके चौंसठ अङ्ग ही प्रधान हैं; उनमेंसे अन्तिम पाँच अङ्ग ही अत्यन्त बलवान हैं। भक्तिके एक अङ्ग अथवा अनेक अङ्गोंके साधनसे भी फल प्राप्त होता है। ज्ञान-वैराग्य-योगादि कभी भी भक्तिके अङ्ग नहीं है; अहिंसा, यम, नियमादिके लिये कोई पृथक् चेष्टा नहीं करनी पड़ती; वे भक्तिके साथ-साथ ही रहते हैं। रागानुगा भक्ति—रागात्मिका-भक्तिकी ही अनुगामिनी है। व्रजवासियोंकी रागात्मिका भक्ति ही मुख्य है। रागात्मिका भक्तिके लक्षण बतलाकर महाप्रभुने उसके बाद रागानुगा-भक्तिके साधन-लक्षणोंको बतलाया।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

कलियुग पावनावतारी प्रेमदाता महाप्रभुको प्रणाम :—

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यदेवं तं करुणार्णवम्।
कलावप्यतिगूढ़ेयं भक्तिर्येन प्रकाशिता॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनके द्वारा कलिकालमें भी अतिगूढ़ भक्ति प्रकाशित हुई है, उन करुणाके सागर श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

कलौ (धर्मरहिते तर्काश्रितविवादमये युगे) अपि येन (महाप्रभुणा) अतिगूढ़ा (धर्मबहुले सत्यत्रेताद्वापरयुगे सद्धर्मज्ञैरप्यज्ञाता) इयं भक्तिः (हेतुरहिता कृष्णसेवा) प्रकाशिता (साधारण्ये प्रचारिता), तं करुणार्णवं (जीवदयासागरं) श्रीकृष्णचैतन्यदेवम् अहं वन्दे।

श्लोक-भावानुवाद—धर्मरहित तर्कप्रधान विवादमय कलियुगमें भी जिन्होंने अतिगूढ़ अर्थात् जो धर्मप्रधान सत्य-त्रेता-द्वापर युगमें केवल सद्धर्मको जाननेवालोंको ही ज्ञात थी, ऐसी अहैतुकी श्रीकृष्णसेवा लक्षणमयी भक्तिका साधारण जीवोंमें प्रचार किया, उन जीवोंके प्रति दयाके सागर श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द

प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

समस्त वेदशास्त्रोंमें श्रीकृष्ण ही 'सम्बन्ध'रूपमें निरूपित :—

"एइ त' कहिलुँ सम्बन्ध-तत्त्वेर विचार।
वेदशास्त्रे उपदेशे, कृष्ण—एक सार॥3॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अब तक मैंने तुम्हें सम्बन्ध-तत्त्वके विचारको बतलाया है। वेदशास्त्रोंका यही उपदेश है कि श्रीकृष्ण ही एकमात्र सार हैं॥3॥

श्रीसनातन-शिक्षा—(2) अभिधेय (श्रीकृष्णभक्ति)-वर्णन;

अभिधेय ही सम्बन्ध और प्रयोजन-प्रदाता :—

एबे कहि, शुन, अभिधेय-लक्षण।
याहा हैते पाइ—कृष्ण, कृष्णप्रेमधन॥4॥

अनुवाद—हे सनातन, अब मैं उस अभिधेय-लक्षणके विषयमें बतलाता हूँ, जिससे श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णप्रेमधनकी प्राप्ति होती है॥4॥

श्रीकृष्णभक्ति ही अभिधेय :—

कृष्णभक्ति—अभिधेय, सर्वशास्त्रे कय।
अतएव मुनिगण करियाछे निश्चय॥5॥

अनुवाद—सभी शास्त्र श्रीकृष्णभक्तिको ही अभिधेय (लक्ष्य प्राप्तिका उपाय) बतलाते हैं। इसलिये सभी मुनियोंने भी यही निर्धारित किया है॥5॥

श्रुति-स्मृति-पुराण-पञ्चरात्रमें श्रीकृष्णभक्तिको ही विधिके अनुरूप 'अभिधेय' कहा है :—

मुनिवाक्य—

श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति भवदाराधनविधिं
यथा मातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी।
पुराणाद्या ये वा सहजनिवहास्ते तदनुगा
अतः सत्यं ज्ञातं मुरहर भवानेव शरणम्॥6॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—माता-स्वरूप श्रुतिसे जिज्ञासा करनेपर वे आपकी आराधनाकी विधिका उपदेश देती हैं, स्मृति भी बहन-स्वरूप होकर उसी प्रकार उपदेश देती हैं; पुराणादि भी भाईके रूपमें श्रुतिमाताके अनुगत होकर वही कहते हैं। इसलिये हे मुरहर (मुरारि)! आप ही एकमात्र शरण हैं, इसे मैंने सत्यरूपमें जान लिया है॥6॥

अनुभाष्य—

माता (मातृवत् हिताभिलाषिणी जीवपालयित्री) श्रुतिः पृष्टा (जिज्ञासिता सती) भवदाराधनविधिं (कृष्णसेवां) दिशति (आज्ञापयति); यथा मातुः (श्रुतेः) वाणी (कथा), तथा भगिनी (श्रुतिमातृ-लाल्या) स्मृतिः अपि वक्ति (प्रकाशयति, कृष्णभक्तिं कथयति); पुराणाद्याः (पुराणागमादयः) ये वा सहजनिवहाः (सहोदराः), ते (अपि) तदनुगाः (मातृभगिन्योः अनुगामिनः सन्तः कृष्णभक्त्युपदेशपराः); अतः हे मुरहर (मुरारे,) भवान् एव [मम] शरणम् [इति] सत्यं [मया] ज्ञातम्।

श्लोक-भावानुवाद—हिताभिलाषिणी माताके समान जीवोंका पालन करनेवाली श्रुति जिज्ञासा करनेपर श्रीकृष्णसेवाकी ही आज्ञा देती हैं। श्रुति-माताके द्वारा लालित स्मृतिरूपी बहन भी माताकी वाणीकी भाँति श्रीकृष्णभक्तिकी बात कहती हैं। पुराण-आगमादि भी भ्राताकी भाँति माता और बहनके अनुगामी होकर श्रीकृष्णभक्तिका ही उपदेश देते हैं। इसलिये हे मुरारि! आप ही मेरी शरण हैं, इसे मैंने सत्यरूपमें जान लिया है॥6॥

श्रीकृष्ण और स्वरूपशक्ति एकात्मा होनेपर भी विलासके लिये परस्पर आलिङ्गित :—

अद्वयज्ञान-तत्त्व कृष्ण—स्वयं भगवान्।
'स्वरूप-शक्ति'-रूपे ताँर हय अवस्थान॥7॥

अनुवाद—अद्वयज्ञान-तत्त्व श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। अद्वय अर्थात् श्रीकृष्ण और उनकी शक्तिमें भेद नहीं होनेके कारण श्रीकृष्ण अपनेसे अभिन्न स्वरूप-शक्तिके रूपमें भी अवस्थान करते हैं॥7॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्ण-अद्वयज्ञान-तत्त्व हैं। शक्ति और

शक्तिमान्—अभेद-तत्त्व हैं। 'शक्ति'-शब्दसे भूलकर भी किसीको जीवके स्वरूपका आवृत करनेवाली मायाशक्तिको नहीं समझना चाहिये। जो शक्ति श्रीकृष्ण-स्वरूपकी सेवामें ही केवलमात्र नियुक्त है, वह स्वरूपशक्ति उस मायाशक्तिसे पृथक् है। स्वरूपशक्ति और स्वरूपशक्तिमान् श्रीकृष्ण अभिन्न रूपमें अवस्थित हैं॥ 7॥

असंख्य वैकुण्ठोंमें स्वांश विष्णुरूपमें और ब्रह्माण्डोंमें जीवरूपमें लीला-विलास :—

स्वांश-विभिन्नांश-रूपे हञा विस्तार।
अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्डे करेन विहार॥ 8॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण स्वांश और विभिन्नांश रूपमें अपना विस्तार करके असंख्य वैकुण्ठों एवं ब्रह्माण्डोंमें विहार करते हैं॥ 8॥

स्वांश-विलास चतुर्व्यूह और अवतारगण—श्रीकृष्णस्वरूप या शक्तिमान् हैं; जीव—विभिन्नांश या शक्तितत्त्व हैं :—

स्वांश-विस्तार—चतुर्व्यूह, अवतारगण।
विभिन्नांश जीव—ताँर शक्तिते गणन॥ 9॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण स्वांशका विस्तार चतुर्व्यूह और अवतारोंके रूपमें करते हैं। विभिन्नांश जीवोंकी गणना श्रीकृष्णकी शक्तिके रूपमें होती है॥ 9॥

दो प्रकारके जीव :—

सेइ विभिन्नांश जीव—दुइ त' प्रकार।
एक—'नित्यमुक्त', एक—'नित्य-संसार'॥ 10॥

अनुवाद—वे विभिन्नांश जीव दो प्रकारके हैं। एक—'नित्यमुक्त' और दूसरे 'नित्य-संसार' अर्थात् नित्यबद्ध हैं॥ 10॥

(1) नित्यमुक्तका चरित्र :—

'नित्यमुक्त'—नित्य कृष्णचरणे उन्मुख।
'कृष्ण-पारिषद' नाम, भुञ्जे सेवा-सुख॥ 11॥

अनुवाद—'नित्यमुक्त' जीव सदा श्रीकृष्णके उन्मुख रहकर उनके श्रीचरणोंकी सेवा करते हैं, वे श्रीकृष्णके परिकर कहलाते हैं और वे सेवारूपी सुखका आस्वादन करते हैं॥ 11॥

(2) नित्यबद्ध जीवका चरित्र :—

'नित्यबद्ध'—कृष्ण हैते नित्य-बहिर्मुख।
'नित्यसंसार', भुञ्जे नरकादि-दुःख॥ 12॥

अनुवाद—'नित्यबद्ध' जीव श्रीकृष्णसे अनादिकालसे बहिर्मुख हैं। इसलिये वे 'नित्यसंसार' अर्थात् भोक्ताभिमानसे सदा संसारमें ही बद्ध हैं और अपने कर्मोंके फलस्वरूप नरकादि दुःखोंका भोग करते हैं॥ 12॥

श्रीकृष्ण-विमुखताका फल अथवा दण्ड :—

सेइ दोषे माया-पिशाची दण्ड करे तारे।
आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे जारि' मारे॥ 13॥

काम-क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु-वैद्य पाय॥ 14॥

उद्धारका उपाय :—

ताँर उपदेश-मन्त्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय, तबे कृष्ण-निकट याय॥ 15॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसे बहिर्मुखतारूपी दोषके कारण माया-पिशाची बद्धजीवोंको दण्डित करती है। वह उन्हें आध्यात्मिकादि (देह और मनके द्वारा प्रदत्त, दूसरे प्राणियोंके द्वारा प्रदत्त और दैविक प्रकोपके द्वारा प्रदत्त) तीन प्रकारके तापोंमें झुलसाकर कष्ट प्रदान करती है। बद्धजीव कामका दास बनकर और जब काम पूर्तिमें बाधा आती है, तब उससे उत्पन्न क्रोधका दास बनकर मायाकी ठोकरें खाता है। इस प्रकार ठोकरें खाते-खाते यदि उसे साधुरूपी वैद्यकी प्राप्ति होती है, तब साधुके उपदेशरूपी मन्त्रके द्वारा माया-पिशाची दूर भाग जाती है और वह जीव श्रीकृष्णभक्तिको प्राप्त करता है। भक्तिके प्रभावसे तब वह श्रीकृष्णके निकट पहुँच जाता है॥ 13-15॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'स्वांश-रूपे'*—अर्थात् चतुर्व्यूह और उनके अवतारोंके रूपमें। स्वांश-अवस्थामें श्रीकृष्णका स्व-स्वरूपत्व सर्वत्र लक्षित होता है। जीव—उनके विभिन्नांश रूप हैं। जीव भी श्रीकृष्णकी शक्तिरूपमें गिने जाते हैं। जीव दो प्रकारके हैं—नित्यमुक्त और नित्यसंसार (बद्ध)। नित्यमुक्त जीवोंने कभी भी मायाके सम्बन्धका आस्वादन नहीं किया। वे श्रीकृष्णके चिन्मय धाममें श्रीकृष्णचरणोंके उन्मुख रहकर 'श्रीकृष्ण-पार्षद'-नामसे जाने जाते हैं और श्रीकृष्णसेवा-सुख ही उनका भोग है। नित्यबद्ध सभी जीव श्रीकृष्णसे नित्य बहिर्मुख रहकर संसारमें स्वर्ग-नरकादि सुख-दुःखका भोग करते हैं। श्रीकृष्ण-बहिर्मुखता दोषके लिये माया-पिशाची उन्हें स्थूल और सूक्ष्म आवरणमें बाँधकर दण्ड प्रदान करती है अर्थात् आध्यात्मिकादि तीन प्रकारके ताप उन्हें बहुत ही जर्जरित करते हैं। वे काम-क्रोधादि छः तरङ्गोंके वशीभूत होकर मायारूपी पिशाचीकी लातें खाते रहते हैं—यही जीवोंका रोग है। संसारमें इस प्रकार ऊपर-नीचे (स्वर्ग-नरकमें) भ्रमण करते-करते जीव यदि कभी साधुरूपी वैद्यको प्राप्त करता है, तब उनके उपदेशरूपी मन्त्रसे माया-पिशाची भाग जाती है और जीव भी श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त करके श्रीकृष्णके निकट पहुँच जाता है॥ 8-15॥

शरणागतकी प्रार्थना :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (3/2/25)—

कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशा-
स्तेषां जाता मयि न करुणा न त्रपा नोपशान्तिः।
उत्सृज्यैतानथ यदुपते साम्प्रतं लब्धबुद्धि-
स्त्वामायातः शरणमभयं मां नियुङ्क्ष्वात्मदास्ये॥ 16॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 16॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भगवन्, कामादिके कितने ही प्रकारके दुष्ट आदेशोंका ही मैंने (कितनी प्रकारसे) पालन किया है। तथापि मेरे प्रति उनकी करुणा (नहीं हुई) और मेरी लज्जाकी भी उपशान्ति नहीं हुई। हे यदुपते! अन्तमें मैं उन्हें परित्याग करके सद्बुद्धि प्राप्त करके आपके अभयचरणोंमें शरणागत हुआ हूँ, आप अब मुझे अपने दासके रूपमें नियुक्त करो॥ 16॥

अनुभाष्य—

कामादीनां (कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यादीनां) दुर्निदेशाः (दुष्टाः आदेशाः) कतिधा (प्रकाराः) मया कति न पालिताः (अपि तु पालिता एव); तेषां (कामादिरिपूणां) मयि करुणा (दया) न, त्रपा (ममापि लज्जा) न, उपशान्तिः (मम तद्विसर्जनेच्छापि) न च जाता। अथ (अनन्तरं) हे यदुपते, साम्प्रतम् (इदानीं) तान् (कामादीन्) उत्सृज्य (रिपु-पारवश्यं त्यक्त्वा) लब्धबुद्धिः (अभिज्ञः सन्) अभयम् (अकुतोभयं) त्वां शरणम् आयातः (प्राप्तः); माम् आत्मदास्ये (निजकैङ्कर्ये) नियुङ्क्ष्व (नियोजय)।

श्लोक-भावानुवाद—काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य आदिके कितने दुष्ट आदेशोंका मैंने कितनी प्रकारसे पालन किया है, तो भी वे मेरे प्रति दया नहीं करते और [निर्लज्जकी भाँति उनकी सेवा करते हुए] न ही मेरी लज्जा त्याग करनेकी इच्छा होती है। हे यदुपते! अन्तमें अब मैं उन कामादि शत्रुओंकी वश्यताको त्यागकर सद्बुद्धि प्राप्त करके आपके अभयचरणोंकी शरणमें आया हूँ, कृपा मुझे अपने दासके रूपमें नियुक्त कीजिये॥ 16॥

भक्ति ही निरपेक्ष अभिधेय और
कर्मज्ञानयोगादि भक्ति-सापेक्ष :—

कृष्णभक्ति हय अभिधेय-प्रधान।
भक्तिमुख-निरीक्षक कर्म-योग-ज्ञान॥ 17॥

भक्तिके आश्रयके बिना कर्मज्ञानयोगादिकी निष्फलता :—

एइ सब साधनेर अति तुच्छ बल।
कृष्णभक्ति बिना ताहा दिते नारे फल॥ 18॥

अनुवाद—श्रीकृष्णभक्ति ही प्रधान अभिधेय है। कर्म-योग-ज्ञान संसारसे मुक्तिके उपाय हैं, परन्तु फल देनेमें ये सब भक्तिपर निर्भर करते हैं। इस सब साधनोंका बल अति तुच्छ है और भक्तिके बिना ये

स्वतन्त्ररूपसे फल देनेमें असमर्थ हैं॥ 17–18॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंपर कर्मको, अनेक स्थानोंपर योगको और अनेक स्थानोंपर ज्ञानको 'अभिधेय' कहकर वर्णन किया गया है; तथापि सर्वत्र भक्तिको ही सर्वप्रधान 'नित्य अभिधेय' कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णभक्ति ही परमपुरुषार्थ (प्रेम)को प्राप्त करनेका एकमात्र प्रधान अर्थात् 'साक्षात्' अभिधेय है; कर्म, योग और ज्ञानको जो अभिधेय रूपमें कहा है, वह—'गौण' है; क्योंकि, भक्तिके मुखकी अपेक्षा करके ही वे जो कुछ भी फलादि प्रदान कर सकते हैं। भक्तिके आश्रयके बिना कर्म, योग और ज्ञान कोई भी फल नहीं दे सकते। भक्तिका आश्रय प्राप्त करनेपर ही कर्म और हठ-योग भुक्ति-फल एवं ज्ञान और राजयोग मुक्ति और सिद्धि-फल दे सकते हैं॥ 17–18॥

भक्तिविहीन शुष्कज्ञान या निष्काम कर्म भी व्यर्थ :—
श्रीमद्भागवत (1/5/12)में—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव-वर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
ना चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥ 19॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नैष्कर्म्यरूपी निर्मलज्ञान ही जब अच्युत भक्तिसे वर्जित होनेपर शोभा नहीं पाता, तब सदैव अभद्र (अशुभ) स्वभाववाले कर्म ईश्वरमें अर्पित नहीं होनेपर निष्काम होनेपर भी किस प्रकार शोभा पा सकते हैं?॥ 19॥

अनुभाष्य—श्रीव्यासदेवके द्वारा बहुत तप-अनुष्ठान और सभी शास्त्रोंका प्रणयन आदि करनेपर भी उनका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ और वे सरस्वती नदीके तटपर अप्रसन्न चित्तसे मन-ही-मनमें अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क और खेद कर रहे थे, तब उनके अन्तर्यामी गुरुदेव श्रीनारद गोस्वामी वहाँ आकर उपस्थित हुए। व्यासदेवने उनसे अपनी आत्माकी प्रसन्नताके अभावके कारणकी जिज्ञासा की, तब श्रीनारद कर्म और ज्ञान आदि सभी मार्गोंकी अपेक्षा शुद्ध हरिभक्तिके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं—

अच्युतभाववर्जितम् (अच्युते कृष्णे भाववर्जितम् अनुकूलानुशीलनविहीनं चेत्) निरञ्जनं (निरुपाधिकं निर्मलमिति यावत्) नैष्कर्म्यं (फलभोगराहित्यम् अपि) ज्ञानम् अलम् (अत्यर्थं) न शोभते (सम्यक् मोक्षाय न कल्पते); पुनः तथा शश्वत् (सर्वसमये साधनकाले प्राप्तिकाले च अतएव) अभद्रं (दुःखात्मकं) यत् च अकारणं कर्म (प्रवृत्तिपरं काम्य यद्यपि निवृत्तिपरम् अकाम्यं तच्चापि कर्म) ईश्वरे (विष्णौ) न अर्पितं (नोद्दिष्टं सत्) कुतः [शोभते? नैव हीति भावः]।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णके अनुकूल अनुशीलनसे विहीन फलभोगरहित निर्मलज्ञान ही जब शोभा नहीं पाता, तब जो सदैव (अर्थात् साधनकाल और फलप्राप्तिकाल, दोनोंमें) दुःख प्रदान करनेवाला है, वह कर्म विष्णुमें अर्पित नहीं होनेपर निष्काम होनेपर भी किस प्रकार शोभा पा सकता है? अर्थात् नहीं पा सकता—यह भाव है॥ ॥ 19॥

श्रीकृष्णको अर्पित किये बिना समस्त प्रकारके
कर्मकाण्ड—संसारजनक :—
श्रीमद्भागवत (2/4/17)में—

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति बिना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥ 20॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 20॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सभी तपस्वी, सभी दान-परायण व्यक्ति, सभी यशस्वी व्यक्ति, मनस्वी व्यक्ति, वेदोंके मन्त्रोंको जाननेवाले सभी व्यक्ति, उनके द्वारा किये गये वे कर्म सुमङ्गल होनेपर भी, जिन्हें अर्पण नहीं करनेसे कुछ भी मङ्गल प्राप्त नहीं कर सकते, उन सुभद्रश्रवा

(मङ्गलकीर्तिवाले) भगवान्‌को पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ॥ 20॥

अनुभाष्य—परीक्षितके द्वारा मायाधीश श्रीहरिकी सृष्टि आदि लीलाके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनेपर, श्रीशुकदेव श्रीहरि और उनकी सेवाके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं—

तपस्विनः (तपोनिरताः ज्ञानिनः) दानपराः (वदान्याः) यशस्विनः (कीर्त्तिमन्तः) मनस्विनः (योगिनः) मन्त्रविदः (निगमागमविदः) सुमङ्गलाः (सदाचाराः) यदर्पणं (यस्मिन् श्रीहरौ पूर्वोक्त-तपादिना स्व-स्व-प्राप्यफलसमर्पणं) बिना (ऋते) क्षेमं (कल्याणं) न विन्दन्ति (न प्राप्नुवन्ति), तस्मै सुभद्रश्रवसे (मङ्गलकीर्त्तिविग्रहाय भगवते श्रीहरये) नमो नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 20॥

भक्तिविहीन ज्ञान मुक्तिप्रद नहीं; मुक्ति—भक्तिकी दासी :—

केवल ज्ञान 'मुक्ति' दिते नारे भक्ति बिना।
कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय ज्ञान बिना॥ 21॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 21॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"ज्ञानतः सुलभा मुक्तिः"—इस शास्त्रवचनसे जाना जाता है कि ज्ञान ही मुक्ति दे सकता है, किन्तु उसमें एक गूढ़ बात यह है कि भक्तिके आश्रयसे ही ज्ञान मुक्ति दिया करता है। पक्षान्तरमें, श्रीकृष्णोन्मुखी भक्तिके उदित होनेपर किसी भी प्रकारकी ज्ञानकी चेष्टा नहीं करनेपर भी मुक्ति स्वयं ही उपस्थित होती है॥ 21॥

अनुभाष्य—केवल-ज्ञान अर्थात् भक्तिरहित सम्विद् वृत्तिका अनुभव जीवको जड़-बन्धनसे मुक्त नहीं करा सकता। ब्रह्मको जाननेके लिये जीव कितना ही (संसारकी सभी वस्तुओंको नकारते हुए) यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है क्यों न करे, उसमें श्रीकृष्ण-स्वरूपकी अज्ञानताके कारण अहंग्रहोपासना (जिसकी मैं उपासना कर रहा हूँ, मैं वही हूँ, यह बुद्धि) ही प्रबल हो जाती है और वह अधःपतित हो जाता है। ज्ञानानुशीलन नहीं करनेपर भी श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर होनेपर वह जीव ज्ञानके फल जड़-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करके श्रीकृष्णके स्वरूपके अनुभवको प्राप्त करता है। श्रीकृष्णकर्णामृतमें—

"भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि
स्याद्देवेन न फलति दिव्य-किशोरमूर्त्तिः।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलिः सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समय-प्रतीक्षाः॥"

[अर्थात् "हे भगवन्! आपमें यदि हमारी अचला भक्ति रहे, तब आपकी अप्राकृत किशोरमूर्ति स्वतः ही हमारे हृदयमें उदित होती है। उस समय मुक्ति स्वयं हाथ जोड़कर हमारी सेवामें रत होती है और धर्म, अर्थ और काम भी सेवाके लिये आदेशके समयकी प्रतीक्षा करते हैं।"]॥ 21॥

भक्तिमार्गमें ही एकमात्र नित्य कल्याण, उसके अतिरिक्त शुष्क ज्ञानसे वृथा परिश्रम ही सार (फल) :—
श्रीमद्भागवत (10/14/4)में—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्ध्ये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥ 22॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 22॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे विभो! आपमें भक्ति ही कल्याणका पथ है, उसे परित्याग करके जो सब व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्तिके लिये अर्थात् 'मैं ब्रह्म' हूँ, इसको ही स्थिर रूपमें जाननेके लिये अनेक प्रकारके कष्ट स्वीकार करते हैं, खाली भूसीको पीसनेवालोंको जिस प्रकार चावल नहीं मिलते, उसी प्रकार, उन्हें अन्तमें क्लेशमात्र ही प्राप्त होता है॥ 22॥

अनुभाष्य—बछड़ोंको हरण करनेके फलस्वरूप श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्माके अभिमानके चूर्ण होनेपर ब्रह्मा श्रीकृष्णके एकान्त शरणागत होकर स्तव कर रहे हैं—

हे विभो (भगवन्), ये (जनाः आरोहवादि-तर्कपन्थिनः) श्रेयःसृतिं (श्रेयसां अभ्युदयापवर्गलक्षणानां सृतिं सरणं मार्गभूतां) ते (तव) भक्तिं (शुद्धभजनम्) उदस्य (त्यक्त्वा) केवलबोधलब्ध्ये

(भक्तिरहितज्ञानमात्र-प्राप्तये) क्लिशयन्ति (वैराग्यतपः-क्लेशादिकं स्वीकुर्वन्ति), तेषां (निर्भेद-ब्रह्मवादि-शुष्क-ज्ञानिनां) यथा स्थूलतुषावघातिनां (शस्यान्तःकणहीनान् स्थूल-धान्याभासान् तुषान् अवघ्नतां यथा व्यर्थश्रमः एव भवति, तथा) असौ (शास्त्राभ्यास-षट्क-साधनादिजनितः) क्लेशलः (क्लेशः व्यर्थश्रमः) एव शिष्यते (अवशिष्यते) न अन्यत् (तेषां न किञ्चित् तदितरं फलम्—तेषां ज्ञानप्राप्तिरपि दुर्लभा एवेत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 22॥

भगवान्‌के शरणागतकी ही मायासे मुक्ति :—
श्रीमद्भगवद्गीता (7/14)में—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ 23॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 23॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह माया मेरी ही शक्ति है, इसलिये दुर्बल जीवके लिये स्वभावतः ही इसका अतिक्रम करना अति कठिन है। जो मेरे भगवत्-स्वरूपकी शरणागति स्वीकार करते हैं, केवल वे ही इस माया समुद्रसे पार हो सकते हैं॥ 23॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 20/121 संख्या देखें॥ 23॥

जीवके संसार-बन्धनका कारण :—

'कृष्ण-नित्यदास'—जीव, ताहा भुलि' गेल।
एइ दोषे माया तार गलाय बान्धिल॥ 24॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 24॥

अनुभाष्य—'जीव श्रीकृष्णका नित्यदास है'—इस सत्यको भूलनेके कारण ही मायाने जीवको अनेक प्रकारसे लुब्ध और विमोहित करके तीन गुणोंकी बेड़ीसे उसके गलेको बाँध रखा है। इस कारण बद्धजीवका भोगवासनारूपी मायिक-बेड़ीके बन्धनसे छूट पाना कठिन है॥ 24॥

उद्धार और प्रयोजनकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय :—

ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥ 25॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 25॥

अनुभाष्य—गुरुसेवा और श्रीकृष्णभजनके बलसे ही बद्धजीव मायाजालसे मुक्त होकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंको प्राप्त करता है॥ 25॥

भक्तिविहीन वर्णाश्रमधर्मके पालनसे नरककी प्राप्ति :—

चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वकर्म करिते से रौरवे पड़ि' मजे॥ 26॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 26॥

अनुभाष्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने वर्ण धर्मका भली-भाँति पालन करनेपर भी, अथवा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी अपने-अपने आश्रमधर्मका भली-भाँति पालन करनेपर भी यदि वे श्रीकृष्णभजन नहीं करते, तब वे लौकिक अभिमानके कारण उच्च अवस्था प्राप्त करनेपर भी अन्तमें पुण्यके क्षय होनेपर रौरव नामक नरकमें अवश्य ही पतित होते हैं। अप्राकृत भक्तिके अनुशीलनके अतिरिक्त विषयी वर्णाश्रमीका कोई भी मङ्गल नहीं हो सकता॥ 26॥

दैववर्णाश्रम-धर्मकी उत्पत्ति :—
श्रीमद्भागवत (11/5/2-3)में—

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥ 27॥

भक्तिके प्रतिकूल आसुरी-वर्णाश्रमीको नरककी प्राप्ति :—

य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥ 28॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 27-28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ब्रह्माके मुखसे 'ब्राह्मण', भुजासे 'क्षत्रिय', जङ्घासे 'वैश्य' और पैरोंसे 'शूद्र'—ये चार वर्ण पृथक् पृथक् आश्रमोंके साथ और अपने वर्णगत गुणोंके साथ उत्पन्न हुए थे। इन चारों वर्णाश्रमियोंमेंसे जो अपने प्रभु भगवान् विष्णुका साक्षात् भजन नहीं करके, अपने-अपने वर्णाश्रमके अहङ्कारके कारण उनके भजनमें

अवज्ञा करते हैं, वे अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर अधःपतित हो जाते हैं॥ 27-28॥

अनुभाष्य—श्रीनारद श्रीवसुदेवको श्रीभागवत धर्मका वर्णन करते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्र-संवादका वर्णन कर रहे हैं; 'हरिभजन विमुख गोदास (इन्द्रियोंके दास)की क्या गति होती है?'—महाराज निमिके इस प्रश्नके उत्तरमें नवयोगेन्द्रोंमेंसे एक चमस ऋषि निम्नलिखित दो श्लोकोंमें भक्तिके अनुकूल दैव-वर्णाश्रम-सृष्टि और उसके व्यभिचारीकी दुरावस्थाका वर्णन कर रहे हैं—

पुरुषस्य (भगवतः वैराजस्य ब्रह्मणः) मुखबाहूरुपादेभ्यः गुणैः (सत्त्वरजस्तमोगुणैः) आश्रमैः (ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थ-भिक्षुकाश्रमचतुष्टयैः) सह पृथक् विप्रादयः (ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः) चत्वारः वर्णाः जज्ञिरे।

एषां (विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्राणां ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थयतीनां मध्ये) ये (जनाः) साक्षात् आत्मप्रभवम् (आत्मनः प्रभवः जन्म प्राकट्यं वा, यस्मात् तम्) ईश्वरम् [अज्ञात्वा कृतघ्नाः सन्तः] न भजन्ति, अवजानन्ति (ज्ञात्वापि वर्णाश्रम-मर्यादा-मदभरेण कृष्णभजनस्यावश्यकता नास्तीति मन्यमानाः द्विषन्ति), [ते हरि-गुरु-वैष्णव-सेवा-विहीनाः] स्थानात् (स्व-स्व-वर्णाश्रमात्) भ्रष्टाः (सन्तः) अधःपतन्ति (निरयं यान्ति); [यतः प्राकृतवर्णाश्रमधर्मः अनित्यः कालक्षुब्धश्च तात्कालिक-फलोपयोगी असच्छब्द-वाच्यश्च]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [जो प्राकृतवर्णाश्रमधर्म है, वह केवल अनित्य और क्षणिक-फलकी प्राप्तिके लिये उपयोगी है, अतः उसे असत्-धर्म ही कहा जायेगा।]॥ 27-28॥

भक्ति-रहित मुक्ताभिमानी ज्ञानी भी अशुद्ध-मनोधर्मी,
शुद्धभक्त ही निर्मल आत्मधर्मी :—

ज्ञानी जीवन्मुक्तदशा पाइनु करि' माने।
वस्तुतः बुद्धि 'शुद्ध' नहे कृष्णभक्ति बिने॥ 29॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 29॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मायावादादि मतावलम्बी व्यक्ति आपने आपको 'ज्ञानी' कहते हैं, किन्तु वास्तवमें श्रीकृष्णभक्तिके बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती॥ 29॥

अनुभाष्य—यद्यपि ज्ञानी मान सकते हैं,—'मैं जीवनकालमें ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो गया हूँ', तथापि श्रीकृष्णभक्तिके अतिरिक्त अहंग्रहोपासनासे बुद्धि शुद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि मुक्तिकामी व्यक्ति जीवित अवस्थामें अपने आपको बद्ध जानकर उससे मुक्त और मुक्त-अवस्था जानकर उसके अतिरिक्त दृश्य वस्तुओंमें बद्ध मानता है, इसलिये वह ऐसे अनित्य भावसमूहके हाथोंसे मुक्त नहीं हो पाता॥ 29॥

श्रीकृष्णभक्तिरहित शुष्कज्ञानीको अधोगतिकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (10/2/32)में—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्य-
स्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रे
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ 30॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 30॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे कमलनयन, जो 'मैं विमुक्त हो गया हूँ', ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होनेके कारण अशुद्ध बुद्धिवाले हैं। वे बहुत कष्ट करके मायासे अतीत परमपद ब्रह्म तक आरोहण करके भी भगवद्भक्तिके अनादरके कारण अधःपतित होते हैं॥ 30॥

अनुभाष्य—कंसके कारागारमें बद्ध देवकीके गर्भमें आविर्भूत होनेपर ब्रह्मादि देवता 'गर्भस्तोत्र'-नामसे प्रसिद्ध स्तवसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं—

हे अरविन्दाक्ष, (पद्मपलाशलोचन,) अन्ये (अभक्ताः जनाः) ये विमुक्तमानिनः (विमुक्ताः—ज्ञानिनः वयमिति मन्यमानाः) त्वयि (भगवति) अस्तभावात् (अस्तः निरस्तः अतएव असन् यः भावः तस्मात्, भक्तेरभावात् तदनुशीलनराहित्यात्) अविशुद्धबुद्धयः (न विशुद्धा बुद्धिः येषां ते तथा, मुक्तिपिशाचीं बहुमन्यमानाः ज्ञानजनित-कैतव-कल्मषकषाय-दुष्टमतयः इत्यर्थः) कृच्छ्रे
स्वामिचरणाः, मोक्षपीठादव्यवहितप्रदेशम्) आरुह्य (अधिरुह्य) अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः (न आदृतौ युष्मदङ्घ्री यैः ते, तव पादपद्मनित्यसेवयाः अनादरेण अपराधवशात् कृष्णकृपारज्जुविच्छिन्नाः

सन्तः) ततः (परमोच्चज्ञानाख्य-पीठाप्रान्तात्) अधः पतन्ति (अज्ञानान्धकारे संसार-तमिस्रे निमज्जन्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 30॥

श्रीकृष्ण-दर्शनमें मायाका दर्शन नहीं, माया-दर्शनमें श्रीकृष्णका दर्शन नहीं :—

कृष्ण—सूर्यसम, माया हय अन्धकार।
याँहा कृष्ण, ताँहा नाहि मायार अधिकार॥ 31॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण सूर्यके समान हैं और माया अन्धकार सदृश है। जहाँपर श्रीकृष्ण हैं, वहाँ मायाका अधिकार नहीं हो सकता॥ 31॥

अनुभाष्य—भागवतमें चतुःश्लोकीमें लिखा हुआ है—

"ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासः यथा तमः॥"

[अर्थात् "वास्तव प्रयोजन तत्त्वके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है अथवा सत्तायुक्त होनेपर भी मेरे अधिष्ठानमें जिसकी प्रतीति नहीं है, उसे ही मेरी माया समझो।"]

प्रकाशके रहनेपर जिस प्रकार अन्धकार नहीं रहता, उसी प्रकार जीव श्रीकृष्णोन्मुख होनेपर मायिक वासनाओंके हाथसे मुक्त हो जाता है। श्रीकृष्णभक्तके अतिरिक्त ज्ञानी, कर्मी और अन्याभिलाषी व्यक्तिको माया ग्रास करती है॥ 31॥

दासी मायाको अपने प्रभुके सामने खड़े होनेमें लज्जा, दूसरी ओर, प्रभुसे विमुख लोगोंको विपरीत बुद्धि देकर कारागारमें बन्द करनेवाली :—

श्रीमद्भागवत (2/5/13)में—

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥ 32॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णके सामने आनेपर माया लज्जित होती है। उस मायाके द्वारा विमोहित होकर दुर्बुद्धि व्यक्ति 'मैं', 'मेरा' इस प्रकारकी बहुतसी बातोंके जालको प्रकाशित करते हैं॥ 32॥

अनुभाष्य—यहाँपर पाठान्तरमें (भाः 2/7/47) श्लोक उद्धृत हुआ है—

"शश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं
शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम्।
शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थो
माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना।
तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो
ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम्॥"

अर्थात् "मुनिगण जिस वस्तुको 'बृहत् निर्विकल्प-ब्रह्म' कहकर जानते हैं, वही परम-पुरुष भगवान्का प्रथम प्रतीति-स्वरूप है। यह ब्रह्म निरन्तर-सुख-युक्त, शोकरहित, नित्य-प्रशान्त, भेदशून्य, अभय, ज्ञानैकरस, शुद्ध, विषयकरण-सङ्गशून्य, परमात्म-तत्त्व, उत्पत्ति आदि चार प्रकारके क्रियाफलोंका प्रकाशक है। कर्मकाण्डीय-शब्द-कार्य उनका बोध करानेवाला नहीं हो सकता और माया उनके सामने जानेमें लज्जा अनुभव करती है और उनसे दूर भाग जाती है।"

देवर्षि नारदके द्वारा लोकपितामह ब्रह्माको तपस्यामें प्रवृत्त देखकर उनके अतिरिक्त भी जो एक स्वतन्त्र सर्वेश्वरेश्वर नियन्त्रण करनेवाला है, उसके विषयमें जिज्ञासा करनेपर ब्रह्मा उन परमात्मा श्रीहरिकी लीला और मायाके द्वारा सृष्टि आदिका वर्णन कर रहे हैं—

यस्य (भगवतः) ईक्षापथे (नेत्रगोचरे) स्थातुं विलज्जमानया (मत्कपटोऽसौ प्रभुर्जानातीति लज्जायुक्तया) अमुया (मायया) विमोहिताः (मुग्धाः) दुर्द्धियः (अविद्यावृतज्ञानाः असद्धियः जीवाः एव केवलं) 'मम' 'अहम्' इति [एतत्] विकत्थन्ते (आत्मानं श्लाघ्यन्ते) [तस्मै नमः इति पूर्वेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णके सामने आनेपर माया यह सोचकर कि मेरे प्रभु मेरी कपटता जानते हैं, इसलिये लज्जित होती है। उस मायाके द्वारा विमोहित होकर विपरीत बुद्धिग्रस्त व्यक्ति 'मैं', 'मेरा' इस प्रकार कहकर अपनी प्रशंसा करते हैं॥ 32॥

आत्मनिवेदनकारी सम्बन्धज्ञान-प्राप्त
साधककी अनर्थ-निवृत्ति :—

'कृष्ण, तोमार हङ' यदि बले एकबार।
मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार॥ 33॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो सब समय केवल मुखसे अभ्यासवशतः "कृष्ण मैं तुम्हारा हूँ"—यह बात बार-बार बोलते हैं, उनकी यह बात सहृदय (सरल) नहीं हैं; किन्तु जो एकबार भी सहृदय (काय-मन और वचनसे) "हे कृष्ण, मैं—आपका दास हूँ"—यह बात कहते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण मायाके बन्धनसे पार करते हैं॥ 33॥

परमदयालु श्रीकृष्णकी आश्वासन देनेवाली वाणी :—
हरिभक्तिविलास (11/337)में उद्धृत श्लोक, रामायणके
लङ्काकाण्ड (18/33)में विभीषणके साथ मिलनके सम्बन्धमें
श्रीरामचन्द्रने सुग्रीवसे कहा—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतद्व्रतं मम॥ 34॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 34॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरा यह व्रत है कि यदि कोई वास्तवमें शरणागत होकर एकबार भी "मैं तुम्हारा हूँ" यह कहकर मुझसे अभयकी याचना करता है, तब मैं उसे सदैव अभय प्रदान करता हूँ॥ 34॥

अनुभाष्य—

यः (जनः) प्रपन्नः (शरणागतः सन्) तवास्मि (त्वया सह नित्यदास्यसूत्रे आबद्धः भवामि) इति सकृदेव (बारमेकं) च याचते (काकुयुक्तं प्रार्थयते), अहं (दाशरथिः भगवान्) तस्मै सर्वदा अभयं ददामि,—एतत् (एव) मम व्रतं (प्रतिज्ञातम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 34॥

सकाम अशान्त पुरुषोंको निरन्तर भजनके
फलसे शान्तिकी प्राप्ति :—

मुक्ति-भुक्ति-सिद्धिकामी 'सुबुद्धि' यदि हय।
गाढ़-भक्तियोगे तबे कृष्णेरे भजय॥ 35॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 35॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दुर्वासना और दुःसङ्गके कारण जीवकी मुक्ति, भुक्ति और सिद्धि-कामनाएँ उदित होती हैं। यदि किसी सत्सङ्गसे सुबुद्धि उदित होती है, तब वह जीव मुक्ति-भुक्ति-सिद्धिके लोभका परित्याग करके गाढ़ शुद्धभक्तियोगके द्वारा श्रीकृष्णका भजन करता है॥ 35॥

बुद्धिमान् व्यक्तिके लिये श्रीकृष्णभजन
करना ही उचित :—
श्रीमद्भागवत (2/3/10)में—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥ 36॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 36॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पहले कोई 'अकाम' अर्थात् सर्वकामनाओंसे रहित हो अथवा 'सर्वकाम' अर्थात् सब प्रकारकी कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्षकी कामना करनेवाला ही क्यों न हो, उदार-बुद्धि होने मात्रसे ही मनुष्य तीव्र शुद्धभक्तियोगसे परमपुरुष श्रीकृष्णका भजन करेंगे॥ 36॥

अनुभाष्य—"जो अल्प समयमें ही मरनेवाला है, ऐसे मनुष्यका क्या कर्त्तव्य है?"—परीक्षितके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेव जीवके लिये अहैतुकी शुद्धकृष्णभक्तिको ही एकमात्र नित्यधर्म कहकर दुर्बलचित्त कामी व्यक्तियोंके लिये भी श्रीहरिका भजन करना ही कर्त्तव्य है, यह कह रहे हैं—

सर्वकामः (उक्तानुक्तसर्वकामना-युक्तः) मोक्षकामः (मुमुक्षुः) अकामः (एकान्त शुद्धभक्तः) वा, उदारधीः (सुधीः पुरुषः) तीव्रेण (दृढ़ेन स्वभावतः एव अप्रतिहतेन) भक्तियोगेन परं (मायाधीशं) पुरुषं (पुरुषोत्तमं) यजेत (सेवेत)।

श्लोक-भावानुवाद—कही गयी अथवा न कही गयी सभी प्रकारकी कामनाओंसे युक्त अथवा मोक्षकामी अथवा अकाम अर्थात् एकान्त शुद्धभक्त, इनमेंसे कोई भी क्यों न हो, बुद्धिमान व्यक्तिको दृढ़तापूर्वक निरन्तर

भक्तियोगके द्वारा मायाधीश पुरुषोत्तमकी सेवा करनी चाहिये॥ 36॥

श्रीकृष्णकी अहैतुकी दयाका परिचय :—

अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन।
ना मागिलेह कृष्ण तारे देन स्व-चरण॥ 37॥
कृष्ण कहे,—"आमा भजे, मागे विषय-सुख।
अमृत छाड़ि' विष मागे,—एइ बड़ मूर्ख॥ 38॥
आमि—विज्ञ, एइ मूर्खे 'विषय' केने दिब?
स्वचरणामृत दिया 'विषय' भुलाइब॥"39॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 37-39॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुक्ति, भुक्ति और सिद्धिकी कामना करनेवाले शुद्धभक्तिकी कामना करनेवाले नहीं हैं। किसी सौभाग्यसे यदि वे शुद्ध श्रीकृष्णभजनमें लग जाँय, तो साधनभक्तिका फल जो श्रीकृष्णप्रेम है, यद्यपि तब उनका उद्देश्य नहीं भी हो, तथापि श्रीकृष्ण कृपा करके उन्हें वह प्रदान करते हैं। श्रीकृष्ण यह बात कह रहे हैं,—"इस समय भजनमें लगे हुए इस व्यक्तिके हृदयमें विषय-सुखकी कामना थी और बादमें वह कुछ स्वभावगत हो गई है। अब इसमें प्रेमरूपी अमृतको छोड़कर विषयरूपी विषकी वासना है, इसलिये यह व्यक्ति बड़ा ही मूर्ख है। यद्यपि यह व्यक्ति अज्ञानतावश सद्-विषयकी प्रार्थना नहीं कर पा रहा है, किन्तु मैं—विद्वान और सब कुछ जाननेवाला हूँ, इसके लिये जो सत् और असत् है, उसे जानता हूँ, इसलिये मैं अपना चरणामृत देकर इसकी विषयरूपी विषकी प्यासको भुलवा दूँगा॥"37-39॥

सकाम उपासककी भी श्रीकृष्ण-कृपासे शुद्धभक्तिकी कामना अथवा निष्कामता :—

श्रीमद्भागवत (5/19/26)में—

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥ 40॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 40॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्ण प्रार्थना किये जानेपर मनुष्योंकी प्रार्थनाको पूर्ण करते हैं, यह बात सत्य है। किन्तु जिस अर्थसे (भोगकी वस्तुसे) बार-बार भोगके लिये प्रार्थना उदित होती है, श्रीकृष्ण उस अर्थको नहीं देते। अन्यकामी होकर जो एकमात्र उनके पादपल्लवको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करनेपर भी उनका भजन करते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें स्वयं ही अन्य-कामनाओंको शान्त कर देनेवाले अपने चरणकमलोंको दिया करते हैं॥ 40॥

अनुभाष्य—देवता भी मानव-जन्मकी सभी जन्मोंकी अपेक्षा श्रेष्ठता और प्रयोजनीयता एवं मनुष्योंमें अवतरित श्रीहरि और अहैतुकी शुद्ध हरिभक्तिके माहात्म्यका गान करते हैं, उसीको श्रीशुकदेव महाराज परीक्षितको बतला रहे हैं—

[सः हरिः कामिभिः] अर्थितः (प्रार्थितः सन्) नृणां (कामिनां पुंसाम्) अर्थितं (प्रार्थितम् अभीष्टं द्रव्यं) दिशति (ददाति इति) सत्यम्, [तथापि सः प्रभुः प्रायशः तेषाम्] अर्थदः (परमार्थप्रदः) न [भवत्येव]; यत् (यस्मात्) यतः (दत्तादनन्तरं सकामैः पुरुषैः) पुनः अपि अर्थिता (कामपूरण-प्रार्थना) भवति। [तु] अनिच्छतां (निष्कामानां) भजतां (सेवकानाम्) इच्छापिधानं (इच्छानां वासनानां पिधानम् आच्छादकं सर्वकामपरिपूरकं) स्वयम् एव विधत्ते (सम्पादयति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 40॥

किसी-किसी सकाम उपासककी शुद्धभक्तिके अतिरिक्त असत् कामनाके रहनेपर भी निरन्तर सेवानन्दके प्रभावसे ऐसे अशुभका नाश होता है, तो भी सकामभाव निष्कामभावका कारण नहीं :—

काम लागि' कृष्णे भजे, पाय कृष्ण-रसे।
काम छाड़ि' 'दास' हैते हय अभिलाषे॥ 41॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 41॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सामान्य कामनाओंके उद्देश्यसे यदि कोई श्रीकृष्णभजनके मार्गको खोजते हुए साधुसङ्गमें शुद्ध श्रीकृष्णभजनको अपना ले, तब उसकी पहले

चाही गयी कामनाएँ दूर हो जाती हैं और उसे श्रीकृष्णरस प्राप्त होता है। श्रीकृष्णभजन ऐसी एक पवित्र वस्तु है कि श्रीकृष्णभजनमें प्रवृत्त व्यक्ति पहले चाही गयी कामनाओंको त्याग करके श्रीकृष्णदास बननेकी अभिलाषा करता है॥ 41॥

सकाम ध्रुवकी श्रीहरिके दर्शन होनेपर प्रार्थना :—
हरिभक्तिसुधोदयमें ध्रुव-चरित्र (7/28)में—

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं
त्वां प्राप्तवान् देवमुनीन्द्रगुह्यम्।
काचं विचिन्वन्नपि दिव्यरत्नं स्वामिन्
कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे॥ 42॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 42॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ध्रुवको जब श्रीकृष्णने वर देनेकी इच्छा की, तब ध्रुवने कहा,—हे स्वामी, मैं (विश्वके स्वामी) पदकी अभिलाषासे आपकी तपस्यामें रत हुआ था, किन्तु अब देवताओं और मुनियोंके लिये भी दुर्लभ आपको प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो गया हूँ। सामान्य काँचको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे दिव्यरत्न मिल गया है। मैं कृतार्थ हो गया हूँ, अब किसी अन्य वरकी याचना नहीं करता हूँ॥ 42॥

अनुभाष्य—

स्थानाभिलाषी (स्थानं पदम् अभिलषितुं शीलमस्य तथाभूतः) अहं तपसि स्थितः; हे प्रभो, काचं विचिन्वन् (अन्वेषणं कुर्वन्) दिव्यरत्नम् (इव) देवमुनीन्द्रगुह्यं (देवानां मुनीन्द्राणामपि गुह्यं दुर्लभं) त्वां प्राप्तवान्; हे स्वामिन्, अहं कृतार्थः अस्मि, [अतः अन्यं] वरं न याचे (ना प्रार्थये)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 42॥

सुकृतिमान् जीवका वर्णन :—

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये केह तरे।
नदीर प्रवाहे येन काष्ठ लागे तीरे॥ 43॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 43॥

अनुभाष्य—अनन्त श्रीकृष्णविमुख जीव उपायरहित होकर संसारमें उच्च-नीच योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। उनमेंसे किसीकी कोई सुकृति उदित होनेपर, वह व्यक्ति महत् व्यक्तिके चरणोंकी सेवाके प्रभावसे संसारसे पार हो जाता है। नदीमें लकड़ीके बहुतसे टुकड़े तैरते हुए जाते हैं; प्रवाहकी ठोकरोंसे कोई एक लकड़ीका टुकड़ा तटपर आकर लगता है, अन्य लकड़ीके टुकड़े जलके प्रवाहमें आगे बढ़ते ही जाते हैं॥ 43॥

श्रीमद्भागवत (10/38/5)—

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम्।
ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन॥ 44॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 44॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मैं अत्यन्त अधम होनेके कारण भगवान्‌का दर्शन प्राप्त नहीं कर पाऊँगा'—मेरी ऐसी आशङ्का झूठी है। कालरूपी नदीके वेगमें बहते-बहते कदाचित् कोई-कोई नदीके पार भी लग जाता है॥ 44॥

अनुभाष्य—देवर्षि नारदके द्वारा कंसवधादि कार्योंके विषयमें बतलानेके बाद प्रस्थान करनेपर, महात्मा अक्रूर राम-कृष्णको लानेके लिये गोकुल-यात्रा करते हुए मार्गमें अपने श्रीकृष्णदर्शनके सौभाग्यका विचार कर रहे हैं—

[एतदुत्तमश्लोकदर्शनं मम दुर्लभम् एवं मन्ये; यद्वा,] मैवम्; अधमस्य (नीचस्यापि) मम अच्युतदर्शनं स्यात् एव; (यतः) कालनद्या ह्रियमाणः कश्चन क्वचित् तरति। अयं भावः—यथा नद्यां ह्रियमाणानां तृणादीनां किञ्चित् कदाचित् तरति, तथा कर्मवशेन कालेन ह्रियमाणानां क्वचित् जीवानामपि मध्ये कश्चित् तरेदिति सम्भवतीत्यर्थः।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें। इसका भाव यह है—जिस प्रकार नदीमें बहते तिनकोंमेंसे कोई तिनका किनारे लग जाता है, उसी प्रकार कर्मके वशीभूत कालके प्रवाहमें बहते हुए जीवोंमेंसे कोई कभी तर जाता है, ऐसा सम्भव है॥ 44॥

भक्ति उन्मुखी सुकृतिके फलसे
बद्धजीवको सिद्धिकी प्राप्ति :—

कोन भाग्ये कारो संसार क्षयोन्मुख हय।
साधुसङ्गे तरे, कृष्णे रति उपजय॥ 45॥

अनुवाद—किसी सौभाग्यसे जब जीवका संसारसे तरनेका समय आता है, तब उसका संसार क्षय होने लगता है और उसे साधुसङ्ग प्राप्त होता है। साधुसङ्गसे उसकी श्रीकृष्णमें रति उत्पन्न हो जाती है॥ 45॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यहाँपर 'भाग्य'-शब्दका अर्थ क्या केवल घटनामात्र है अथवा और कुछ है? भक्तिशास्त्र 'सुकृति'को ही 'भाग्य' कहते हैं। सुकृति तीन प्रकारकी है—भक्ति-उन्मुखी सुकृति, भोग-उन्मुखी सुकृति और मोक्ष-उन्मुखी सुकृति। जो सब कार्य संसारमें शुद्धभक्तिको उत्पन्न करनेवालेके रूपमें स्थिर किये गये हैं, वे सब कार्य भक्ति-उन्मुखी सुकृतिको उत्पन्न करते हैं। जिन सब कार्योंका फल—विषयभोग है, वे सब कार्य ही भोग-उन्मुखी सुकृति प्रदान करनेवाले हैं। जिन सब कार्योंका फल मोक्ष है, वे सब कार्य ही मोक्ष-उन्मुखी सुकृति उत्पन्न करनेवाले हैं। संसारके क्षय होनेपर स्वरूपधर्म श्रीकृष्णभक्तिका उद्घाटन करनेवाली सुकृति जब पुष्ट होकर फलोन्मुखी होती है, तभी भक्त साधुसङ्गमें संसारसे उद्धार प्राप्त करता है और श्रीकृष्णमें उसकी रति उत्पन्न होती है॥ 45॥

सुकृतिके फलसे साधुसङ्ग, उसके फलसे भजनमें
प्रवृत्ति और अनर्थनिवृत्तिके क्रमसे साधनकी
सिद्धि अथवा साध्य श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (10/51/53)में—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥ 46॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 46॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे अच्युत, संसारमें भ्रमण करते-करते जब भवसागरसे पार होनेका फल उपस्थित होता है, तब यदि जीवको सत्सङ्गकी प्राप्ति होती है, तभी उसकी सद्गति और परमेश्वर-स्वरूप आपमें रति उत्पन्न होती है॥ 46॥

अनुभाष्य—कालयवन-दैत्यके पदके आघातसे निद्रासे उठे मुचुकुन्दके दृष्टिपातसे उनको देवताओंसे पूर्वमें प्राप्त वरके प्रभावसे कालयवनके भस्म होनेपर श्रीकृष्ण मुचुकुन्दको वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब मुचुकुन्द श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं—

हे अच्युत, भ्रमतः (संसरतः) जनस्य यदा (भगवदनुकम्पया) भवापवर्गः (भवस्य संसारस्य अपवर्गः अन्तः नाशः) भवेत्, (प्रातःकालः स्यादित्यर्थः), [तदा] सत्समागमः (साधुसङ्गः) भवेत्, यर्हि (यदा) सत्सङ्गमः हि भवेत्, [तदा] एव सद्गतौ (सर्वोत्तम-जनप्राप्ये नित्यपरमपदे) परावरेशे (भगवति कृष्णे) त्वयि रतिः (भक्तिः) जायते [ततो संसारात् मुच्यते इति भावः]।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 46॥

श्रीकृष्णकी कृपासे ही गुरुकी कृपाकी प्राप्ति :—

कृष्ण यदि कृपा करे कोन भाग्यवाने।
गुरु-अन्तर्यामि-रूपे शिखाय आपने॥ 47॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 47॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पूर्वोक्त भक्ति-उन्मुखी-सुकृतिशाली व्यक्तिके निकट यदि कोई महात्मा पुरुष उपस्थित भी न हों, तथापि श्रीकृष्ण अन्तर्यामी-गुरुके रूपमें उसे शुद्धभक्तिकी शिक्षा प्रदान करते हैं॥ 47॥

श्रीमद्भागवत (11/29/6)में :—

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश
ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्व-
न्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥ 48॥

अनुवाद—हे ईश (भगवन्)! ब्रह्माके समान आयु-प्राप्त

कवि (विद्वान) भी आपकी स्मृतिजनित आनन्दके द्वारा आपके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करनेमें समर्थ नहीं हो पाते, क्योंकि आप अपार कृपावशतः देहधारी जीवके समस्त अशुभोंके नाश और स्वगति प्रकाश करनेके लिये बाहरसे आचार्यरूपमें एवं भीतरसे अन्तर्यामीरूपमें अवस्थित हैं॥ 48॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/48 संख्या देखें॥ 48॥

दीक्षाके बाद सम्बन्धज्ञान और अभिधेयके फलसे अनर्थनिवृत्ति, रुचि, आसक्ति और प्राप्य-प्रयोजनकी प्राप्ति :—

साधुसङ्गे कृष्णभक्त्ये श्रद्धा यदि हय।
भक्तिफल 'प्रेम' हय, संसार याय क्षय॥ 49॥

अनुवाद—साधुसङ्गके प्रभावसे जब श्रीकृष्णभक्तिमें श्रद्धा होती है, तभी भक्तिके फल 'प्रेम'की प्राप्ति होती है और संसार क्षय हो जाता है॥ 49॥

श्रद्धावान् भक्तियोगी अतिभोगी अथवा अतित्यागी नहीं :—
श्रीमद्भागवत (11/20/8)—

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥ 50॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसी भाग्यके उदित होनेपर जो पुरुष मेरी कथाके प्रति श्रद्धावान् होता है और वह अत्यन्त वैरागी अथवा फल्गुवैरागी भी नहीं होता एवं संसारमें अति आसक्त भी नहीं होता, उसीको ही भक्तियोग प्रेमभक्तिरूपी सिद्धि प्रदान किया करता है॥ 50॥

अनुभाष्य—श्रीउद्धवको तीन प्रकारके योगोंकी बात बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण भक्तियोगके अधिकारीका निर्णय कर रहे हैं—

यदृच्छया (केनापि भाग्योदयेन) यः पुमान् मत्कथादौ (भगवत्कथा-श्रवण-कीर्त्तनादौ) तु जातश्रद्धः, [अथच] निर्विण्णः (अतिविरक्तः फल्गुवैराग्याश्रितः) न, अतिसक्तः (संसारे अत्यभिनिविष्टः) च न, अस्य (श्रद्धालोर्जनस्य एव) भक्तियोगः सिद्धिदः (अभीष्टप्रदः भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 50॥

गुरु और वैष्णव अथवा साधुकी कृपासे ही अनर्थनिवृत्ति और शुद्धभक्तिकी प्राप्ति :—

महत्-कृपा बिना कोन कर्मे 'भक्ति' नय।
कृष्णभक्ति दूरे रहु, संसार नहे क्षय॥ 51॥

अनुवाद—महत् अर्थात् शुद्ध श्रीकृष्णभक्तकी कृपाके बिना किसी भी प्रकारका कोई भी कार्य करनेपर किसीमें 'भक्ति' उत्पन्न नहीं हो सकती, श्रीकृष्ण भक्तिकी बातको तो छोड़ो, किसीके संसारका भी क्षय नहीं हो सकता॥ 51॥

अनुभाष्य—कर्मकाण्डीय किसी प्राकृत सुकृतिके द्वारा अप्राकृत श्रीकृष्णभक्ति नहीं होती। एकमात्र श्रीकृष्णभक्तकी कृपाके अतिरिक्त अप्राकृत श्रीकृष्णभक्तिके उदित होनेकी सम्भावना नहीं है। श्रीकृष्णभक्तिकी बात तो दूर है, प्राकृतबुद्धिरूपी संसार तक भी नष्ट नहीं होता। श्रीकृष्णभक्तके अतिरिक्त अन्य किसी भी जीवमें महानताकी सम्भावना नहीं होती। श्रीकृष्णभक्त ही एकमात्र अप्राकृत हैं। प्राकृत-दर्शनसे कोई-कोई उन्हें 'प्राकृत' समझते हैं। परन्तु वास्तवमें समस्त प्राकृत वस्तुओंको परित्याग करनेवाले श्रीकृष्णभक्तको ही अतुलनीय श्रेष्ठ और जीवोंके एकमात्र प्रार्थनीय हितैषी जानना चाहिये। उनकी कृपाका भिक्षु बननेसे ही जीवके प्राकृत भोग दूर हो जाते हैं और अप्राकृत श्रीकृष्ण सेवाधिकार प्राप्त होता है॥ 51॥

शुद्धभक्तके आनुगत्यके बिना श्रीकृष्णप्राप्ति सुदुर्लभ :—
श्रीमद्भागवत (5/12/12)में—

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्बिना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥ 52॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 52॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे रहूगण, महाजनोंके चरणोंकी

रजमें अभिषिक्त हुए बिना भगवान्‌की भक्ति तपस्याके द्वारा, वैदिक अर्चनादिके द्वारा, संन्यास-पालनके द्वारा, गृहस्थ-धर्मके पालनके द्वारा, वेदपाठके द्वारा अथवा जल-अग्नि-सूर्य [आदिकी उपासना] के द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं होती॥ 52॥

अनुभाष्य—सिन्धुसौवीरके राजा रहूगणके द्वारा ब्राह्मणकुलमें जन्में अवधूत भरतके मुखसे तत्त्वज्ञानका श्रवण करते समय उन्हें प्रणाम करके दुर्बोध अध्यात्म-योगकी सुबोधरूपमें व्याख्या करनेकी प्रार्थना करनेपर, ब्राह्मणवेषी महाभागवत परमहंस भरत रहूगणको पहले अविद्या और उसके विनाशक शुद्धज्ञानमयविग्रह भगवान् वासुदेवकी कथा सुनाकर बादमें भगवद्-प्राप्तिके उपायका वर्णन कर रहे हैं—

हे रहूगण, महत्पादरजोऽभिषेकं (शुद्धकृष्णभक्तपदरेणुना अभिषेचनं) बिना (ऋते) एतत् (अप्राकृतं वासुदेवात्मक-भगवत्तत्त्वं) तपसा (वानप्रस्थधर्मेण) न, इज्यया (वैदिककर्मणा देवार्चनेनेत्यर्थः) च न, निर्वपणात् (योषित्सङ्गराहित्यात् संन्यासात् इत्यर्थः) न, गृहात् (योषित्सङ्गमूलकगृहमेध-यज्ञ-चालनात्) वा न, छन्दसा (वेदाभ्यासेन) न, जलाग्निसूर्यैः (तत्तदुपासितैः) न याति (न प्राप्नोति) एव।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 52॥

महत् अथवा शुद्ध वैष्णवकी कृपासे ही अनर्थनाश और उसके फलस्वरूप विष्णुपदकी प्राप्ति :—

श्रीमद्भागवत (7/5/32)में—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥ 53॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 53॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जब तक मनुष्योंकी मति निष्किञ्चन भगवद्भक्तोंकी पदधूलिके द्वारा अभिषिक्त नहीं होती, तब तक वह अनर्थनाशक श्रीकृष्णचरणकमलोंका स्पर्श नहीं कर पाती॥ 53॥

अनुभाष्य—देवर्षि नारद धर्मराज युधिष्ठिरको प्रह्लादके उपाख्यानका वर्णन कर रहे हैं। हिरण्यकशिपुके प्रश्नके उत्तरमें महाभागवत प्रह्लादने विष्णुकी नवधा भक्तिको ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ पाण्डित्य और शिक्षारूपमें वर्णन किया। इस बातसे क्रु
षण्ड-अमर्ककी तीव्र भर्त्सना की। तब षण्ड-अमर्कने प्रह्लादकी स्वाभाविकी मतिको ही उनकी विष्णुभक्तिका कारण बतलाकर अपने ऊपर लगाये दोषका निवारण किया। तब हिरण्यकशिपुने प्रह्लादसे उनकी ऐसी वैष्णवी मतिका कारण बतलानेके लिये कहा। किन्तु प्रह्लाद उसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहकर विष्णुभक्ति-विरोधी गृहव्रती लोगोंके बन्धन और मोक्षका उपाय बतला रहे हैं—

निष्किञ्चनानां (निरस्तसकलविषयाभिमानानां) महीयसां (महत्तमानां वैष्णवानां) पादरजोऽभिषेकं (पदरजसा अभिषेचनं लेपनं) यावत् न वृणीत (कुर्वीत), तावत् [श्रुतिवाक्यतो ज्ञातोऽपि] एषां (गृहव्रतानां) मतिः (प्रवृत्तिः) उरुक्रमाङ्घ्रिम् (उरुक्रमस्य पदं) न स्पृशति (न प्राप्नोति असम्भावनादिभिर्विहन्यते इत्यर्थः); अनर्थापगमः (अनर्थस्य असदवग्रहस्य, तत्पदस्पर्शविघ्नस्य संसारस्येत्यर्थः अपगमः विनाशः) यदर्थः (यस्याः अङ्घ्रिस्पर्शिन्याः मतेः अर्थं फलं, महदनुग्रहाभावान्न तत्त्वनिश्चयः नापि मोक्षस्तेषामित्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 53॥

साधुके आधे क्षणके सङ्गके फलसे ही जीवकी चिद्-वृत्ति श्रीकृष्ण-सेवाका प्रबोध और साध्यकी प्राप्ति :—

'साधुसङ्ग' 'साधुसङ्ग'—सर्वशास्त्रे कय।
लवमात्र साधुसङ्गे सर्वसिद्धि हय॥ 54॥

अनुवाद—इसलिये सभी शास्त्र 'साधुसङ्ग', 'साधुसङ्ग' करनेके लिये कहते हैं, क्योंकि लवमात्रके (पलक झपकनेके समयके) साधुसङ्गसे सर्वसिद्धिकी प्राप्ति होती है॥ 54॥

अनुभाष्य—*'लव'*—निमेषकाल, सवा ग्यारह 'लव'का एक सैकेण्ड होता है॥ 54॥

साधुसङ्गकी महिमा :—
श्रीमद्भागवत (1/18/13)में—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥ 55॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 55॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भगवान्‌के सङ्गीके सङ्गके द्वारा जीवका जो असीम मङ्गल होता है, उसके साथ स्वर्ग अथवा मोक्षकी बिल्कुल भी तुलना नहीं की जा सकती (अति तुच्छ धन-वैभवादिके सम्बन्धमें तो क्या कहना?)॥ 55॥

अनुभाष्य—शौनकादि ऋषि यज्ञानुष्ठान आदि तुच्छ कर्मकाण्डमें स्वयंके व्यर्थके परिश्रमका उल्लेख करके महाभागवत हरिकथा-कीर्तनकारी श्रीसूतके सङ्गके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं—

(हे सूत,) भगवत्सङ्गिसङ्गस्य (भगवत्सङ्गी हरिजनः तस्य सङ्गस्य) लवेन (अत्यल्पक्षणेन) अपि स्वर्गम् (आदर्शसुख-भोगस्थानं) न तुलयाम (तुल्यं न पश्याम), अपुनर्भवं (मोक्षं वा) न [तुलयाम]; मर्त्यानां (प्राकृतदेवविप्रराजन्यादीनाम्) आशिषः (अतितुच्छाः वित्त-वैभवाद्याः) किमुत (किं वक्तव्यं, नैव तुलयामेत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 55॥

गीताकी शिक्षा :—

कृष्ण कृपालु अर्जुनेरे लक्ष्य करिया।
जगतेरे राखियाछेन उपदेश दिया॥ 56॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण इतने कृपालु हैं कि उन्होंने अर्जुनको लक्ष्य करके अपने उपदेशोंको प्रदान करके जगत्‌की रक्षा की है॥ 56॥

श्रीकृष्णप्राप्तिके उद्देश्यसे ही सभी
क्रियाएँ करना कर्त्तव्य :—
श्रीमद्भगवद्गीता (18/64-65)—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ 57॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ 58॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 57-58॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(हे अर्जुन,) तुम मेरे अत्यन्त आत्मीय (प्रिय) हो, इसलिये तुम्हें तुम्हारे हितके लिये सर्वगुह्यतम (सबसे गोपनीय) सर्वश्रेष्ठ उपदेश दे रहा हूँ,—तुम अपना मन पूर्णरूपसे मुझमें लगा दो, मेरे भक्त बनो और मेरा ही अर्चन करो और मेरे शरणागत होवो, तब तुम मुझे निश्चय ही प्राप्त करोगे। तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसलिये मैंने अपनी इस प्रतिज्ञा-वाक्यको तुमसे कहा है॥ 57-58॥

अनुभाष्य—

हे अर्जुन, मे (मम) सर्वगुह्यतमम् (अत्यन्तगोप्यं) परमं वचः (वाक्यं) भूयः (पुनः) शृणु; (यतः) मे (मम) दृढ़म् (अत्यन्तम्) इष्टः (प्रियतमः) असि, ततः (तस्माद्धेतोः) ते (तव) हितं (मङ्गलं) वक्ष्यामि (कथयामि)—[त्वं] मन्मना (मच्चित्तः) मद्भक्तः (मद्भजनशीलः) मद्याजी (मदर्चनशीलः) भव, माम् (अन्यप्राकृतदेवादीन् परित्यज्य अप्राकृतं मां कृष्णरूपम् एव) नमस्कुरु [एवं वर्त्तमानस्त्वं मत्प्रसादात् शुद्धभक्त्या] माम् एव ऐष्यसि (प्राप्स्यसि) [अत्र च संशयं मा कार्षीः]; त्वं हि मे प्रियः असि, (अतः) सत्यं (यथा भवति एवं) ते (तुभ्यम्) अहं प्रतिजाने (प्रतिज्ञां करोमि)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 57-58॥

पहले कर्मज्ञानयोगादिको अभिधेय कहनेपर भी,
सबसे अन्तिम आज्ञा श्रीकृष्णभक्ति ही
एकमात्र अभिधेय और विधि :—

पूर्व आज्ञा,—वेद-धर्म, कर्म, योग, ज्ञान।
सब साधि' अवशेषे एइ आज्ञा—बलवान्॥ 59॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने भगवद्-गीतामें पहले वेद-धर्म, कर्म, योग और ज्ञान आदिके भली-भाँति पालन करनेका उपदेश प्रदान किया है, किन्तु उनके द्वारा दिया गया उपरोक्त अन्तिम उपदेश सबसे बलवान है और अन्य सभी उपदेशोंसे ऊपर है॥ 59॥

सभी धर्मोंको छोड़कर श्रीकृष्ण भजनकी चेष्टा :—

एइ आज्ञाबले भक्तेर 'श्रद्धा' यदि हय।
सर्वकर्म त्याग करि' से कृष्णेरे भजय॥ 60॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके इस उपदेशके बलमें यदि किसी भक्तकी 'श्रद्धा' होती है, तब वह भक्त सब प्रकारके कर्मोंका त्याग करके श्रीकृष्णका ही भजन करता है॥ 60॥

श्रीमद्भागवत (11/20/9) :—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥ 61॥

अनुवाद—जब तक कर्ममार्गमें निर्वेद (वैराग्य) उदित न हो, अथवा मेरी कथा-श्रवणादिमें श्रद्धा उत्पन्न न हो, तब तक नित्य-नैमित्तिकादि कर्म करने चाहिये॥ 61॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 9/266 संख्या देखें॥ 61॥

श्रद्धाकी संज्ञा :—

'श्रद्धा'-शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णे भक्ति कैले सर्वकर्म कृत हय॥ 62॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 62॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'श्रीकृष्ण भक्ति करनेसे सब कार्य करना हो जाता है'—ऐसे सुदृढ़ निश्चयात्मक विश्वासको भक्तिका अधिकार प्रदान करनेवाली 'श्रद्धा' कहते हैं॥ 62॥

अनुभाष्य—सुदृढ़ निश्चयात्मक विश्वासको 'श्रद्धा' कहते हैं; श्रीकृष्णकी सेवा करनेसे संसारके समस्त पितरों-प्राणियों-देवोंके ऋणको चुकानेके लिये कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। बद्धजीव भोगोंकी सामग्री जुटानेके लिये कर्म करता है। भगवद्भक्तिके उदित होनेपर कर्मफलके लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ती। कर्मफलकी सबसे उत्तम प्राप्य वस्तु 'वैराग्य' सदैव भक्तोंमें आनुषङ्गिक रूपमें रहता है॥ 62॥

श्रीकृष्णके पूजनसे ही सभीकी पूजा :—

श्रीमद्भागवत (4/31/14)—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥ 63॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 63॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस प्रकार वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे, उस वृक्षके स्कन्ध, भुजाएँ, उपशाखाएँ आदि सभी तृप्त हो जाते हैं अथवा प्राणोंकी तृप्तिसे ही जिस प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी पूजा करनेसे ही समस्त देवताओंकी पूजा हो जाती है॥ 63॥

अनुभाष्य—प्रजापति दक्षके पुत्र प्रचेतागणोंके द्वारा अपने गुरुदेव देवर्षि श्रीनारदके दर्शन करके उनसे पुनः आत्मतत्त्व अर्थात् श्रीहरिकी कथाका कीर्तन करनेका अनुरोध करनेपर श्रीनारद सर्वभूतात्मा श्रीहरिके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं—

यथा तरोः (वृक्षस्य) मूलनिषेचनेन (पाददेशे जलप्रक्षेपेण) तत्स्कन्धभुजोपशाखाः (स्कन्धादिपत्रपुष्पाद्यन्तानि सर्वाणि वृक्षाङ्गानि) तृप्यन्ति [न तु मूलसेकं बिना ताः स्वस्वनिषेचनेन], यथा प्राणोपहारात् (प्राणस्य उपहारः भोजनं तस्मात्) इन्द्रियाणां च तृप्तिः [न तु तत्तदिन्द्रियेषु पृथक् पृथगन्नलेपनेन], तथा अच्युतेज्या (भगवतः विष्णोः अर्चनम्) एव सर्वार्हणं (सकल-देवताराधानं, न हि पृथगुपासनायामावश्यकतास्तीत्यर्थः)।

*श्लोक-भावानुवाद—*जिस प्रकार वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे, उस वृक्षके स्कन्ध, भुजाएँ, उपशाखाएँ आदि सभी तृप्त हो जाते हैं [न कि जड़को सींचनेके बदले स्कन्ध, शाखाओं आदिको सींचनेपर] अथवा प्राणोंकी तृप्तिसे ही जिस प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है [न कि इन्द्रियोंको पृथक् पृथक् रूपसे आहार देनेपर], उसी प्रकार श्रीकृष्णकी पूजा करनेसे ही समस्त देवताओंकी पूजा हो जाती है अर्थात् उनकी पृथक्

रूपसे उपासना करनेकी आवश्यकता नहीं है—यह अर्थ है॥ 63॥

भक्तिके अधिकारी (तीन प्रकारके भक्तिके अधिकारियोंका) निर्णय और भेद :—

श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।
'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'—श्रद्धा-अनुसारी॥ 64॥

अनुवाद—श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं। श्रद्धाके अनुसार ही वे 'उत्तम', 'मध्यम' और 'कनिष्ठ' अधिकारके भक्त होते हैं॥ 64॥

अनुभाष्य—श्रद्धावान् अर्थात् जो श्रीकृष्णको केवल वास्तव-वस्तु, नित्यसत्य और परमार्थ जानता है। जिसका श्रीकृष्णमें ऐसा सुदृढ़-निश्चयात्मक विश्वास है, वही भक्तिका अधिकारी होता है। भक्तके विश्वासकी निश्चयात्मक दृढ़ताके तारतम्यसे ही उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ अधिकारका निर्णय होता है॥ 64॥

(1) उत्तम-अधिकारीकी संज्ञा :—

शास्त्रयुक्त्ये सुनिपुण, दृढ़श्रद्धा याँर।
'उत्तम-अधिकारी' सेइ तारय संसार॥ 65॥

अनुवाद—जो भक्त शास्त्रों और शास्त्रोंकी युक्तियोंमें अत्यन्त निपुण है और जिसकी श्रीकृष्णमें दृढ़ श्रद्धा है, वह 'उत्तम-अधिकारी' है। वह सारे संसारका उद्धार कर सकता है॥ 65॥

अनुभाष्य—(भ:र:सि: पू:वि: द्वितीय लहरी वैधीभक्तिके वर्णनमें श्लोक 11)में श्रीरूपगोस्वामिपादने लिखा है—

"शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढ़ निश्चयः।
प्रौढ़ाश्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः॥"

अर्थात् "भक्ति-शास्त्रोंमें दक्ष और उसके अतिरिक्त अन्यान्य मार्गोंके खण्डनमें दृढ़ युक्तिमें प्रवीण,—ऐसे प्रौढ़ श्रद्धावाले व्यक्ति ही भक्तोंमें 'उत्तम-अधिकारी' हैं॥"65॥

(2) मध्यम-अधिकारीकी संज्ञा :—

शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान्।
'मध्यम-अधिकारी' सेइ महाभाग्यवान्॥ 66॥

अनुवाद—जो शास्त्रोंकी युक्तियोंको भली-भाँति नहीं जानता, किन्तु दृढ़ श्रद्धावान् है, वह महाभाग्यवान् व्यक्ति 'मध्यम-अधिकारी' है॥ 66॥

(3) कनिष्ठ-अधिकारीकी संज्ञा :—

याहार कोमल श्रद्धा, से 'कनिष्ठ' जन।
क्रमे क्रमे तेँहो भक्त हइबे 'उत्तम'॥ 67॥

अनुवाद—जिसकी श्रद्धा कोमल और आसानीसे बदलनेवाली है, वह कनिष्ठ-अधिकारी है। परन्तु भक्तिकी प्रक्रियाका पालन करनेपर क्रमशः वह भी 'उत्तम' भक्तके स्तरपर पहुँच जाता है॥ 67॥

भक्तके तारतम्यका कथन :—

रति-प्रेम-तारतम्ये भक्त—तर-तम।
एकादश स्कन्धे तार करियाछे लक्षण॥ 68॥

अनुवाद—रति और प्रेमके तारतम्यसे भक्तोंमें भी तारतम्य होता है। श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें इसके लक्षण बतलाये गये हैं॥ 68॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पहले कहे गये मतानुसार जिनके हृदयमें श्रद्धा हुई है, वे ही भक्तिके अधिकारी हैं। वे श्रद्धावान् व्यक्ति—'उत्तम', 'मध्यम' और 'कनिष्ठ'के भेदसे तीन प्रकारके हैं। जो शास्त्र और युक्तिमें दक्ष होकर दृढ़ श्रद्धावान् हुए हैं, वे—'उत्तमाधिकारी' हैं। जो दृढ़ शास्त्रयुक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान् हैं, वे—'मध्यमाधिकारी' हैं। जिनकी श्रद्धा दृढ़ नहीं हुई, वे 'कनिष्ठाधिकारी' हैं। इन तीन प्रकारके विभागके द्वारा भक्तोंका विभाग हुआ है, केवल ऐसा नहीं है, शुद्धभक्तिके अधिकारी व्यक्तिका भी विभाग हुआ है। 'कनिष्ठ-श्रद्धावान्' केवल 'श्रीकृष्ण भक्ति करना अच्छा है'—इतना ही विश्वास करता है, किन्तु शुद्धभक्ति क्या है और भक्तिके तटस्थ लक्षणोंके द्वारा सिद्ध प्रक्रिया क्या है, वह उसे नहीं जानता। इसलिये कोमल श्रद्धावालोंके हृदयमें ज्ञान-कर्मका मिश्रित भाव पाया जाता है। उसके दूर होनेपर साधक 'मध्यमाधिकारी' बन जाता है। पुनः वह मध्यमाधिकारवाली श्रद्धा शास्त्रयुक्तिके

द्वारा जब दृढ़ होती है, तब वह 'उत्तमाधिकारी' बन जायेगा। यहाँ तक भक्तिका अधिकारका निर्णय हुआ है, अब भक्तोंका विभाग कर रहे हैं। रति और प्रेमके तारतम्यसे 'भक्त', 'भक्ततर' और 'भक्ततम',—ये तीन प्रकारके विभाग हैं॥ 64–68॥

अनुभाष्य—(भः रः सिः पूः विः द्वितीय लहरीके 12 श्लोकमें) श्रीरूपगोस्वामिपादने लिखा है,—

"यः शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान् स तु मध्यमः।
यो भवेत् कोमलश्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते॥"

मध्यमभक्त श्रद्धावान् होनेपर भी शास्त्रादिके तात्पर्यमें उतना कुशल नहीं होता और जो कोमल श्रद्धावाला है, वही कनिष्ठ है। कनिष्ठाधिकारी अभक्तोंके सङ्गसे श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें कोमल श्रद्धासे भी विच्युत हो सकता है। मध्यमाधिकारी शास्त्रादिके तात्पर्यके द्वारा अभक्त-सङ्गके कुफलसे तत्क्षणात् मुक्त नहीं हो पानेपर भी शास्त्रादि और भक्त-सङ्गके प्रभावसे दृढ़ता प्राप्त करता है। अभक्त-सङ्ग किसी भी प्रकारसे उत्तमाधिकारीकी श्रद्धाकी हानि नहीं कर सकता। श्रद्धाकी वृद्धिके साथ-साथ भक्तका अधिकार उन्नत होता है।

अजात-रुचि (जिनकी रुचि अभी उत्पन्न नहीं हुई है, ऐसे) वैध-भक्तकी श्रद्धाके परिमाणानुसार रतिका (जातरुचि-भक्तकी श्रद्धाको ही 'रति' कहते हैं) तारतम्य होता है। रतिके तारतम्यके भेदसे प्रेमभक्तिरसका तारतम्य होता है। ग्यारहवें स्कन्धमें श्रीभगवान् और उद्धवके संवादमें भक्तोंका अधिकार लिखा गया है॥ 66–68॥

उत्तमाधिकारी अथवा महाभागवतका लक्षण :—
श्रीमद्भागवत (11/2/45-47)में—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ 69॥

अनुवाद—जो उत्तम भागवत होते हैं, वे सभी प्राणियोंमें आत्माके भी आत्मरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ही देखते हैं और आत्माके आत्मस्वरूप श्रीकृष्णमें समस्त जीवोंको देख पाते हैं॥ 69॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/274 संख्या देखें॥ 69॥

मध्यमाधिकारीके लक्षण :—

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेम-मैत्री-कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥ 70॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 70॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो भक्त ईश्वरमें प्रेम, भक्तोंसे मैत्री, मूर्ख व्यक्तियोंके प्रति कृपा और विद्वेषी लोगोंके प्रति उपेक्षा करता है, वह—'मध्यम भक्त' है॥ 70॥

अनुभाष्य—श्रीनारद वसुदेवको भागवतधर्मके विषयमें बतलाते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्रके संवादका वर्णन कर रहे हैं। निमिके द्वारा तीन प्रकारके भक्तों अथवा भागवतोंके लक्षण और आचरणके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनेपर उसके उत्तरमें नवयोगेन्द्रोंमेंसे एक हवि-ऋषिने कहा—

यः ईश्वरे (भगवति कृष्णे) प्रेमाणं करोति, तदधीनेषु (उत्तम-मध्यम-कनिष्ठाधिकारिषु भगवद्भक्तेषु) मैत्रीं (शुश्रूषाप्रणति-समादरादि-यथोचितसख्यतां) करोति, बालिशेषु (भक्त्यनभिज्ञेषु) कृपां करोति, द्विषत्सु (भगवद्भागवतविरोधिजनेषु) उपेक्षां करोति (वीतरागं प्रदर्शयति, तेषां सङ्गं सर्वथा वर्ज्जयतीत्यर्थः), सः (भागवतः) 'मध्यमः' (मध्यमसंज्ञकः एवम्भूतस्य भेदस्य दर्शनात्)।

श्लोक-भावानुवाद—जो भगवान् श्रीकृष्णसे प्रेम करता है, भगवद्भक्तोंसे यथोचित मैत्री अर्थात् उत्तम भक्तोंकी सेवा और उनके प्रति प्रणति, मध्यम और कनिष्ठ भक्तोंका समादर और प्रीति करता है, भक्तिसे अनभिज्ञ लोगोंपर कृपा करता है, भगवान् और भागवतोंके विरोधी लोगोंकी उपेक्षा करता है अर्थात् उनके प्रति कोई राग न दिखलाकर उनके सङ्गका सर्वथा वर्जन करता है, वह भक्त 'मध्यम' स्तरका कहलाता है (वह इस प्रकार भेद-दर्शन करता है)।॥ 70॥

कनिष्ठाधिकारीके लक्षण :—

अर्च्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥ 71॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 71 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो लौकिक और पारिवारिक प्रथाके अनुसार परम्परागत श्रद्धाके साथ अर्चा-मूर्तिमें श्रीहरिकी पूजा करते हैं, परन्तु शास्त्र-अनुशीलनके द्वारा शुद्धभक्तितत्त्वको नहीं जाननेके कारण हरिभक्तोंकी पूजा नहीं करते, वे—'प्राकृत भक्त' हैं अर्थात् उन्होंने अभी भक्तिपर्व आरम्भ मात्र ही किया है। उन्हें 'भक्तप्राय' अथवा 'वैष्णवाभास' शब्दोंके द्वारा सम्बोधित किया जाता है॥ 71 ॥

तात्पर्य यह है कि जब कोई ईश्वरके प्रति 'प्रेम', भक्तोंके प्रति 'मैत्री', मूर्ख लोगोंके प्रति 'कृपा' और भगवद्-विद्वेषी और भगवद्भक्त-विद्वेषीकी 'उपेक्षा' कर सकता है, तभी वह शुद्धभक्तरूपमें 'मध्यमभक्त'में गिना जाता है। बादमें भजन करते-करते जब वह सभी प्राणियोंमें अपने सम्बन्धसे भगवद्भाव और आत्मस्वरूप भगवद्-पदार्थमें समस्त प्राणियोंकी विद्यमानता देखता है, तब उसका ईश्वर, उनके अधीन व्यक्ति (भक्त), मूर्ख और विद्वेषीके प्रति भेदभाव नहीं रहता; उस अवस्थामें वह 'भागवतोत्तम' कहलाता है॥ 69-71 ॥

अनुभाष्य—

यः हरये (भगवते गुरवे आत्मानं निवेद्य) अर्च्चायां (श्रीविग्रहे) श्रद्धया (दीक्षितः सन् मिश्रत्वेन भक्त्याभासेन पाञ्चरात्रिकविधानेन) पूजाम् ईहते (करोति), तद्भक्तेषु (हरिजनेषु) पूजां न [ईहते भक्ततारतम्यज्ञानाभावात्] अन्येषु च (हरिविमुखसङ्गं च वर्ज्जयतीत्यर्थः), स भक्तः प्राकृतः (कनिष्ठः वैष्णवप्रायः, न तु शुद्ध इत्यर्थः) स्मृतः (कथितः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 71 ॥

शुद्धभक्त श्रीकृष्णके सभी गुणोंसे विभूषित :—

सर्व महागुणगण वैष्णव-शरीरे।
कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे॥ 72 ॥

अनुवाद—वैष्णवोंमें समस्त महान गुण विराज करते हैं। श्रीकृष्णके भक्तोंमें श्रीकृष्णके समस्त गुण स्वतः ही सञ्चारित होते हैं॥ 72 ॥

अनुभाष्य—श्रीभगवान् विष्णु ही भक्तोंकी एकमात्र उपास्य-वस्तु हैं; भगवद्-गुणसमूह भक्तोंकी ही सम्पत्ति हैं। भगवान्की समस्त गुणराशि शुद्धभक्तमें सञ्चारित होती है॥ 72 ॥

शुद्धवैष्णव—सर्वमहागुणोंसे गुणी,
अवैष्णव—सर्वथा गुणहीन :—
(श्रीमद्भागवत 5/18/12)—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥ 73 ॥

अनुवाद—श्रीकृष्णमें जिनकी केवला भक्ति है, उन व्यक्तियोंमें समस्त गुणोंके सहित देवता वास करते हैं। हरिभक्तिविहीन व्यक्तियोंका मन सदा असत् बाह्य विषयोंमें दौड़ता रहता है, इसलिये उनमें महद्गुणोंका होना असम्भव है॥ 73 ॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेव परीक्षितसे 'भद्रश्रवा' नामक वर्षपति और उनके सेवकोंके द्वारा किये गये भगवान् श्रीनृसिंह और उनके शुद्धभक्तोंके स्तवगानका वर्णन कर रहे हैं। आदिलीला 8/58 संख्या देखें॥ 73 ॥

वैष्णवोंके छब्बीस गुण अथवा लक्षणोंका वर्णन :—

सेइ सब गुण हय वैष्णव-लक्षण।
सब कहा ना याय, करि दिग्दरशन॥ 74 ॥

अनुवाद—वे सब गुण ही वैष्णवके लक्षण हैं। वैष्णवके समस्त गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता, इसलिये मैं उनका केवल दिग्दर्शन ही करा रहा हूँ॥ 74 ॥

उनमेंसे श्रीकृष्णके प्रति शरणागति ही 'स्वरूप' लक्षण,
अन्य सभी 'तटस्थ' लक्षण :—

कृपालु, अकृतद्रोह, सत्यसार, सम।
निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिञ्चन॥ 75 ॥

सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैकशरण।
अकाम, निरीह, स्थिर, विजित-षड्गुण॥ 76॥
मितभुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी।
गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी॥ 77॥

अनुवाद—श्रीकृष्णभक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसीसे भी वैर भाव नहीं रखता और उसके जीवनका सार है सत्य। वह समदर्शी, निर्दोष, दानी, मधुरस्वभाव और पवित्र होता है। वह धनादिके संग्रहसे सर्वथा दूर रहता है। वह सभीका उपकार करनेवाला, शान्त (निष्काम) और श्रीकृष्णमें पूर्ण शरणागत होता है। वह समस्त जागतिक कामनाओंसे रहित, किसी भी जागतिक वस्तुके लिये चेष्टारहित और भक्तिमें स्थिर रहता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—ये छहों उसके वशमें रहते हैं। वह परिमित भोग स्वीकार करता है और प्रमादरहित (सावधान) होता है। वह दूसरोंको सम्मान देनेवाला और अपने सम्मानकी अभिलाषासे रहित होता है। वह गम्भीर स्वभावका होता है और उसके हृदयमें करुणा भरी होती है। वह सभीके साथ मित्रताका व्यवहार करता है, मेरे तत्त्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है और वह मेरे सम्बन्धकी बातें दूसरोंको समझानेमें बड़ा निपुण होता है। वह मौनी अर्थात् सदा श्रीकृष्णकथा ही कहता और सांसारिक विषयोंमें सदा मौन होता है॥ 75–77॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'कृपालु'से लेकर 'मौनी' तक गुणसमूह—वैष्णवोंके विशेष लक्षण हैं॥ 75–77॥

प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (3/25/21)में—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥ 78॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 78॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समस्त साधुओंमें सहनशीलता, जीवोंके दुःखमें दयार्द्र होना, प्राणिमात्रका ही नित्य मङ्गलविधान करना, सबको ही भगवान्‌के सेवक जानकर किसीको भी शत्रु नहीं मानना, निष्काम इसलिये शान्त होना—इन गुणोंसे युक्त होते हैं और ये गुण ही साधुओंके भूषण होते हैं॥ 78॥

अनुभाष्य—शौनक आदि ऋषियोंके द्वारा भगवान् कपिलदेवकी लीलाकथाकी जिज्ञासा करनेपर महाभागवत सूत उन्हें व्यास-सखा भगवान् मैत्रेयके द्वारा पूर्वकालमें विदुरके समक्ष वर्णित इस आत्मतत्त्व और भगवान् कपिल और देवहूतिके संवादका प्रसङ्ग वर्णन कर रहे हैं, कपिलदेव असद् वस्तुमें आसक्तिको ही जीवके बन्धनका कारण और सद्-वस्तुमें आसक्तिको ही मोक्षके द्वारके रूपमें वर्णन करके सद्वस्तु साधुओंके पहले 'तटस्थ', बादमें 'स्वरूप'-लक्षण बतला रहे हैं—

(साधूनां लक्षणमाह—) तितिक्षवः (सहिष्णवः) कारुणिकाः (दयार्द्रचित्ताः) सर्वदेहिनां (सर्वजीवानां) सुहृदः (बान्धवाः) अजातशत्रवः (निर्वैराः) शान्ताः (निष्कामाः) साधुभूषणाः (साधु सुशीलं, तदेव भूषणं येषां ते) साधवः (शास्त्रानुवर्त्तिनः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 78॥

महत् या वैष्णवोंकी सेवासे ही मायासे छुटकारा; स्त्री-सङ्गीकी सेवासे संसार-बन्धन और नरककी प्राप्ति :—
(श्रीमद्भागवत 5/5/2)में—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥ 79॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 79॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पण्डित लोग महत्-सेवाको ही वास्तविक मुक्तिका द्वार-स्वरूप और स्त्रियोंके प्रति जिनकी आसक्ति है, उनके सङ्गको ही तमोगुणका द्वार कहते हैं। जो साधु हैं, वे भगवान्‌में निष्ठायुक्त, समदर्शी, प्रशान्त, क्रोधरहित और सभीका मङ्गल करनेवाले हैं॥ 79॥

अनुभाष्य—किसी समय राजर्षि भरतके पिता भगवान् ऋषभदेवने ब्रह्मावर्त्तमें उपस्थित होकर ऋषियोंके निकट उपदेश श्रवणमें रत पुत्रोंको मोक्षधर्म और पारमहंस्य-धर्मका वर्णन किया था—

[तत्त्वकोविदाः] महत्सेवां (वैष्णवपरिचर्यां) विमुक्तेः (संसारबन्धनस्य) द्वारं (मोचनहेतुम्) आहुः (कथयन्ति) योषितां सङ्गिसङ्गं (स्त्रीसङ्गिविषयिणां भोक्तृणां सङ्गं) तमोद्वारं (संसारस्य नरकस्य वा, द्वारं हेतुम् आहुः); [तत्र] ये समचित्ताः (समदर्शिनः पण्डिताः) प्रशान्ताः (शुद्धचित्ताः) विमन्यवः (क्रोधरहिताः) सुहृदः (बान्धवाः) साधवः (परदोषादर्शिनः), ते महान्तः [ज्ञेयाः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 79॥

साधुसङ्गके माहात्म्यका वर्णन; साधुसङ्गके फलसे ही श्रीकृष्णसेवाकी प्राप्ति :—

कृष्णभक्ति-जन्ममूल हय 'साधुसङ्ग'।
कृष्णप्रेम जन्मे, तेँहो पुनः मुख्य अङ्ग॥ 80॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 80॥

अमृतप्रवाह भाष्य—साधुसङ्ग यद्यपि प्रथमावस्थामें श्रीकृष्णभक्तिके उत्पन्न होनेका मूल कारण है, तथापि श्रीकृष्णप्रेम उत्पन्न होनेपर भी वही साधुसङ्ग ही पुनः प्रेमके मुख्य अङ्गमें गिना जाता है॥ 80॥

अमृतानुकणा—साधुसङ्ग ही भक्तिराज्यमें प्रवेशका एकमात्र उपायस्वरूप है—'भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते।' (वृहन्नारदीय पुराण)। "जिसका अपना स्वभाव अत्यन्त लुप्तप्राय है, उसको कौन जाग्रत करेगा? कर्म, ज्ञान और वैराग्यकी चेष्टासे वह जाग्रत नहीं होगा, इसलिये जिसका किसी सौभाग्यसे निज-स्वभाव जाग्रत होता है, उनके (अर्थात् भगवद्भक्तोंके) सङ्गबलसे ही जीवका गुप्तप्राय निज-स्वभाव जाग्रत हो सकता है। इस विषयमें दो घटनाओंका होना आवश्यक है। जो निज-स्वभावको जाग्रत करनेकी इच्छा करते हैं, वे पूर्व भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके द्वारा कुछ परिमाणमें शरणागति लक्षणवाली श्रद्धा प्राप्त करते हैं—यह एक घटना है। उस सुकृतिके बलसे उनको किसी उपयुक्त साधुका सङ्ग होता है—यह दूसरी घटना है।" (दशमूल-निर्यास)। उसके बाद साधुसङ्गसे ही श्रवण-कीर्तनादि समस्त भजनक्रिया आरम्भ होती है, अन्यथा यह सम्भव नहीं है। इसलिये श्रद्धाको श्रीकृष्णभक्ति-लताका अङ्कुर कहनेपर साधुसङ्गको उसका मूल कहना होगा—

"आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥"

[अर्थात् "सर्वप्रथम श्रद्धा, तदनन्तर साधुसङ्ग, उसके पश्चात् भजनक्रिया, तदनन्तर अनर्थनिवृत्ति, उसके पश्चात् निष्ठा, तदनन्तर रुचि और उसके बाद आसक्ति, तत्पश्चात् भाव और भावके बादमें प्रेमका उदय होता है। साधकोंके हृदयमें प्रेम उत्पन्न होनेका यह क्रम निरूपित हुआ है।"]

साधुसङ्गके बिना कोई जब भी अपनी कपोल-कल्पनासे उत्पन्न उपायका सहारा लेगा, तभी माया श्रीकृष्णभक्तिका छल करके उसको भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करा देगी और फलभोगवादी-कर्मी, अथवा अभेद-ब्रह्मानुसन्धानपरक ज्ञानी, अथवा सहजिया, सखीभेकी, कर्मजड़-स्मार्त्तबुद्धिपर गोसाईं, आउल, बाउल आदि श्रीकृष्ण बहिर्मुख दलमें शामिल करा देगी। साधुसङ्ग ही भक्तिप्रतिकूल मार्गके अनुसरणकी प्रवृत्तिके मूलको काटनेवाला है। साधुओंके प्रकृष्ट सङ्गमें ही श्रीभगवान्‌की हृदय और कानोंको रसायन लगनेवाली कथाओंकी चर्चा होती है। उन कथाओंको सुनते-सुनते अविद्यानिवृत्ति मार्गस्वरूप भगवान्‌के चरणकमलोंमें क्रमशः साधनभक्ति, भावभक्ति और अन्तमें प्रेमभक्ति प्राप्त होती है।

प्रेमभक्ति प्राप्त होनेके बाद भी साधुसङ्ग पुनः प्रेमके मुख्य अङ्गके रूपमें ही निर्णित हुआ है, इसलिये साधुसङ्गके नित्य होनेकी घोषणा की गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि भक्तिकल्पलताके आश्रित साधकभक्त साधुसङ्गके द्वारा परम प्राप्य प्रेमफल प्राप्त करनेके बाद

भी उक्त कल्पलताकी क्रमशः ऊपरवाली शाखाओंमें और-भी सब उत्तरोत्तर आस्वादन और वैशिष्ट्यसे युक्त 'स्नेह', 'मान', 'प्रणय', 'राग', 'अनुराग', 'महाभाव'-नामक विराजमान फलोंको प्राप्त नहीं करते। इसका कारण यह है उनके आस्वादनजनित ऊष्णता, शीतलता और सम्मर्दनको सहनेकी योग्यता साधककी देहमें नहीं है। बादमें स्वरूपानुबन्धी सिद्धदेह प्राप्त करके नित्यसिद्ध रागात्मिक भगवत्पार्षद गुरुवर्गोंके सङ्गके द्वारा ही साधनसिद्ध भक्तोंमें क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव सभी उदित होते हैं॥ 80॥

सुकृति-फलसे साधुसङ्ग,
उसके फलस्वरूप श्रीकृष्णभक्ति :—
श्रीमद्भागवत (10/51/53)में—

भवापवर्गो भ्रमते यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥ 81॥

अनुवाद—हे अच्युत, संसारमें भ्रमण करते-करते जब भवसागरसे पार होनेका फल उपस्थित होता है, तब यदि जीवको सत्सङ्गकी प्राप्ति होती है, तभी उसकी सद्गति और परमेश्वर-स्वरूप आपमें रति उत्पन्न होती है॥ 81॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/46 संख्या देखें॥ 81॥

सत्सङ्ग ही परमधन :—
श्रीमद्भागवत (11/2/30)में—

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गः सेवधिर्नृणाम्॥ 82॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 82॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे निष्पाप ऋषियों, मैं आपसे जीवोंके आत्यान्तिक (सर्वोत्तम) मङ्गलके विषयमें जिज्ञासा कर रहा हूँ, क्योंकि संसारमें आधे क्षणके परिमाणका साधुसङ्ग भी जीवोंके लिये अमूल्य रत्ननिधि है॥ 82॥

अनुभाष्य—श्रीवसुदेवको श्रीनारद भागवतधर्मके विषयमें सुनाते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्रके संवादका वर्णन कर रहे हैं। महाराज निमि यज्ञ कर रहे हैं, ऐसे समयमें महाभागवत नवयोगेन्द्र दैववश वहाँ उपस्थित हुए, उन्हें देख निमि उनकी यथाविधि पूजा करके कह रहे हैं—

(हे) अनघाः, (निष्पापाः, निरवद्याः ऋषयः), अतः (भगवद्-भागवत-दर्शनदुर्लभत्वात्) भवतः (युष्मान्) आत्यन्तिकं (निरतिशयं) क्षेमं (कल्याणं) पृच्छामः ; [यतः] अस्मिन् संसारे (भवे) क्षणार्द्धः (अत्यल्पकालम्) अपि [स्थायी] सत्सङ्गः नृणां (पुंसां) सेवधिः (सर्वफलप्रदः निधिः—निधिलाभे यथानन्दो भवति, तथा परमानन्दः इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 82॥

श्रीमद्भागवत (3/25/25)—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥ 83॥

अनुवाद—साधुसङ्गमें हृदय और कानोंको रसपूर्ण लगनेवाली मेरी बलवती कथाओंकी आलोचना होती है। उन-उन कथाओंको श्रवण करते-करते अतिशीघ्र अपवर्ग पथस्वरूप मुझमें पहले श्रद्धा, तत्पश्चात् रति और अन्तमें प्रेमभक्ति उदित होती है॥ 83॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/60 संख्या देखें॥ 83॥

वैष्णवका आचार और अवैष्णवका निर्देश :—

असत्सङ्गत्याग,—एइ वैष्णव-आचार।
'स्त्री-सङ्गी'—एक असाधु, 'कृष्णाभक्त' आर॥ 84॥

अनुवाद—वैष्णवोंको सदा ही असत्सङ्गका त्याग करना चाहिये, यही वैष्णव-आचार है। असत्सङ्ग दो प्रकारका है—'स्त्री-सङ्गी' अर्थात् स्त्रीके प्रति आसक्त व्यक्ति—एक प्रकारका असाधु है और 'श्रीकृष्ण-अभक्त' व्यक्ति—दूसरे प्रकारका असाधु है॥ 84॥

अमृतप्रवाह भाष्य—साधुसङ्ग जिस प्रकारसे 'अन्वय' अर्थात् प्रत्यक्षरूपमें वैष्णव-आचार है, असत्-सङ्गत्याग भी 'व्यतिरेक' अर्थात् अप्रत्यक्षरूपमें वैष्णव-आचार है। 'असत्'—दो प्रकारका है; स्त्रीसङ्गी अर्थात् स्त्रीके प्रति आसक्त व्यक्ति एक प्रकारका 'असाधु' और 'श्रीकृष्ण-अभक्त' व्यक्ति—दूसरे प्रकारका 'असाधु' है। शुद्धभक्त इन दो प्रकारके असत्सङ्ग-त्यागमें विशेष रूपसे प्रयत्न करेंगे॥ **84**॥

अनुभाष्य—अवैष्णवसङ्गका परित्याग ही वैष्णवोंका एकमात्र सदाचार है। 'अवैष्णव' कहनेसे 'स्त्रीसङ्गी' और 'श्रीकृष्ण-अभक्त',—इन दो श्रेणियोंके लोगोंको ही समझना चाहिये। स्त्रीसङ्ग दो प्रकारका है—'वैधधर्मपर' स्त्रीसङ्ग, जिसपर वर्णाश्रम-धर्म प्रतिष्ठित है और 'अवैध' स्त्रीसङ्ग, जो—अधर्मपर है और जिसके फलस्वरूप वर्णाश्रमधर्मके नियम भङ्ग होनेके कारण कर्मफल हेतु नरकादिकी प्राप्ति होती है। संसारमें पापपरायण व्यक्ति कदापि 'वैष्णव' नहीं कहे जा सकते। 'धर्म' 'अर्थ' और 'काम'-नामक त्रिवर्ग स्त्रीसङ्गरूपी अवैष्णवाचारमें आबद्ध है। 'मोक्ष'-नामक चतुर्थवर्ग स्त्रीसङ्गसे उत्पन्न नहीं होनेपर भी श्रीकृष्ण-विमुखताके कारण मोक्षाभिलाषी होनेपर स्त्रीसङ्गीकी अपेक्षा अधिक अवैष्णव और तुच्छ है। मायावादी और मायाविलासी,—दोनोंका सङ्ग ही वैष्णवता अथवा भक्तिनाशका कारण है। मायावादी मुक्तिकामी हैं अर्थात् वे मोक्षफलभोगकी कामनासे आत्माके उत्कर्षके लिये जड़भोगोंका त्याग करते हैं। और स्त्रीसङ्गी भोगी हैं। दोनों ही अपनी-अपनी जड़ेन्द्रियोंकी तुष्टिके लिये प्रयास करते हैं। वे श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्यान्य फलोंका अन्वेषण करनेवाले कपटतायुक्त होनेके कारण 'श्रीकृष्णदास' नहीं हैं॥ **84**॥

अमृतानुकणा—"साधुसङ्गके प्रति कितना आदर उत्पन्न हुआ है, उसको जाननेका एकमात्र उपाय है, असत्सङ्ग-त्यागके प्रति हमारी कितना औदासीन्य (उदासीनता) या अनादर है। इसलिये असत्सङ्ग-त्यागको भी एक वैष्णव-सदाचारके मध्यमें गिना गया है, क्योंकि अवैष्णवोंका सम्पूर्णरूपसे अनादर या अनात्मबुद्धि नहीं आने तक वैष्णवमें आत्मीय-ज्ञान होनेकी आशा नहीं है। जिस परिमाणमें अवैष्णवमें परायेकी बुद्धि होगी, उसी परिमाणमें वैष्णवमें अपना माननेकी बुद्धि आयेगी। वास्तवमें यदि वैष्णवके साथ सम्बन्धयुक्त होनेकी इच्छा है, तब अवैष्णवके प्रति ममताको सबसे पहले त्याग करना होगा।"—"ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।" (भाः 11/26/26)

'दुःसङ्ग'—स्त्रीसङ्ग और अभक्तसङ्ग, इन दो प्रकारका है। "इन्द्रियोंके द्वारा भोगकी जानेवाली वस्तुमात्र ही स्त्री है। उसके प्रति सम्पूर्णरूपसे प्रीति अथवा अभिनिवेश या ध्यान अथवा चित्तमें उसका सम्पूर्णरूपसे आधिपत्य करवा देनेका नाम ही 'सङ्ग' है। जीवकी इन्द्रियभोग्य सभी वस्तुएँ ही जड़ और अचेतन हैं। स्त्रीदेहधारी ही हो अथवा पुरुषदेहधारी ही हो, सभीकी देह जड़ है—इसलिये वह स्त्री ही है। स्त्रीदेहधारी अथवा पुरुषदेहधारी जीव जब भोगबुद्धि लेकर जड़देहमें अभिनिविष्ट होता है, तब वह स्त्रीसङ्गी होता है। अपनेमें श्रीकृष्ण-स्त्री (श्रीकृष्णशक्ति) या दृश्य (श्रीकृष्णके द्वारा दिखनेवाली वस्तु) होनेका अभिमान जहाँपर है, वहाँ स्त्रीसङ्ग नहीं है। पुरुष-अभिमान तथा दृष्टा-अभिमान (मैं देखनेवाला हूँ, ऐसा अभिमान) रहनेपर ही स्त्रीसङ्ग होता है। भोक्ता-अभिमानके द्वारा भोग्य-ज्ञानसे दर्शन ही स्त्री-दर्शन है। जहाँ गुरु-दर्शन है, वहाँ स्त्री-दर्शन नहीं है। श्रीकृष्णवस्तुका (अर्थात् सभी वस्तुओंके भोक्ता एकमात्र श्रीकृष्ण हैं, ऐसा) दर्शन होनेपर फिर स्त्रीका (सभी वस्तुओंमें भोग्य होनेका) दर्शन नहीं रहता। जीवमात्र ही श्रीकृष्णशक्ति या श्रीकृष्णस्त्री है, इसलिये वह भोग्य नहीं है और त्याज्य भी नहीं है, परन्तु सेव्य है। श्रीपुरुषोत्तमके साथ सम्बन्धयुक्त होनेपर तुच्छ अधम-पुरुषत्व अभिमान दूर होकर स्त्री-दर्शनसे मुक्ति प्राप्त होती है।"

"स्त्री-जातिको घृणा करके कोई कभी भी स्त्रीसङ्गसे

अपनी रक्षा नहीं कर सकता। उसमें केवल द्वेष अथवा तुच्छ-ज्ञान करनेसे आसक्ति और भी अधिक बढ़ जाती है। घृणा आसक्तिकी ही एक दिशा है। आसक्तिकी अपेक्षा घृणासे और भी अधिक अभिनिवेश होता है। आकार अर्थात् रूप दर्शन करते ही यह आसक्ति अथवा घृणा आ जाती है। भोग्य-ज्ञान करके बादमें घृणा या उपेक्षा करनेपर विपरीत चिन्ताके द्वारा प्रबल स्त्रीसङ्गी अवश्य ही होना होगा। कृत्रिम उपायसे स्त्रीसङ्ग या स्त्री-दर्शनसे मुक्ति नहीं हो सकती। शरणागत होकर ही श्रीकृष्णदास अभिमान जाग्रत होनेपर यह स्त्री-दर्शन दूर होगा। भोगनेत्रोंसे दर्शन करनेपर भोग्यका ही दर्शन होता है। इसलिये साधु-शास्त्र कानोंके द्वारा दर्शन करनेके लिये कहते हैं। 'श्रुति'के अनुगत होकर दर्शन करनेपर सेवोन्मुख शरणागत कानोंके द्वारा दर्शन करनेसे ही ठीक दर्शन होगा। ('स्त्रीसङ्ग घृणित'—दैनिक नदिया प्रकाश)।

असत्सङ्गको अवश्य ही त्याग करना चाहिये। अभक्त कौन हैं? जो भगवान्‌के अनुगत नहीं हैं, वे ही अभक्त हैं। ज्ञानवादी पुरुष कभी भी भगवान्‌के अनुगत नहीं हैं। वे मनमें विचार करते हैं,—'मैं भी ज्ञानके बलसे भगवान्‌के समान हो जाऊँगा। ज्ञानके बलसे ही भगवान्‌की ब्रह्मता है और ज्ञानके बलसे मैं भी ब्रह्म हो जाऊँगा।' इसलिये ज्ञानवादियोंकी समस्त चेष्टाएँ ही भगवान्‌से स्वाधीन होती हैं। आत्मज्ञानी और प्राकृत-ज्ञानी लोग भी श्रीभगवान्‌की कृपाकी अपेक्षा नहीं करते। इसलिये ज्ञानीमात्र ही अभक्त हैं। यद्यपि कुछ ज्ञानी लोग साधनकालमें भक्तिको स्वीकार करते हैं, किन्तु वे सिद्धिकालमें भक्तिको विसर्जन कर देते हैं। इसलिये जो ज्ञानवादमें आसक्त हैं, उनकी अभक्तोंमें ही गणना की गयी है। कर्मवादी पुरुष भी भक्त नहीं हैं, इसलिये वे भी अभक्त हैं। श्रीकृष्णकृपा पानेके लिये यदि कोई कर्म करता है, तब उस कर्मका नाम 'भक्ति' है। जो कर्म, प्राकृत-फल या बहिर्मुख ज्ञान प्रदान करते हैं, वे कर्म भगवद्विमुख हैं। अपने स्वार्थके लिये किये गये कर्मोंको ही कर्म कहते हैं। इसलिये कर्मी व्यक्तियोंको भी अभक्त कहा जाता है।"

"योगीगण भी कहींपर ज्ञानके फल कैवल्य-मोक्ष और कहींपर कर्मके फल विभूति (ऐश्वर्य)का अनुसन्धान करते हैं। इसलिये उनको भी अभक्त ही कहा गया है। अनेक देवोंके पूजकोंकी भी अनन्य शरणागति नहीं होनेसे उनको भी अभक्त कहा गया है। जो केवल शुष्क न्यायादिके विचारमें आसक्त हैं, वे भी भगवद्-बर्हिमुख हैं। जो इस प्रकार सिद्धान्त करते हैं कि, 'भगवान् एक काल्पनिक तत्त्वमात्र हैं, उनकी तो बात कहने योग्य नहीं है।' जिनको विषयोंमें आसक्त होकर भगवान्‌को स्मरण करनेके लिये समय नहीं मिलता, वे भी अभक्तोंके मध्यमें गिने जाते हैं। इन सब अभक्तोंका सङ्ग करनेसे अति अल्प समयमें बुद्धिनाश हो जाता है और उनके समान-प्रवृत्ति आकर हृदयमें बैठ जाती है। यदि किसीमें शुद्धभक्ति पानेकी वासना है, तो उसे विशेष रूपसे सतर्क रहते हुए अभक्त-सङ्ग परित्याग करना चाहिये।' ('सङ्गत्याग'—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)॥ **84**॥

स्त्री-सङ्ग और स्त्री-सङ्गीके सङ्गका भयानक परिणाम :—
श्रीमद्भागवत (3/31/33-35)में—

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्‌याति संक्षयम्॥ 85॥

तेष्वशान्तेषु मूढ़ेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीड़ामृगेषु च॥ 86॥

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद्‌यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥ 87॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **85-87**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, लज्जा, श्री, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य आदि सब कुछ ही जिनके सङ्गसे क्षय हो जाता है, उन शोचनीय आत्मविनाशकारी अशान्त मूर्ख स्त्री-क्रीड़ा-

मृग (स्त्रीके हाथके खिलौने) असाधुओंका सङ्ग कभी भी मत करना। अन्य किसी भी वस्तुसे जीवका ऐसा मोहका बन्धन नहीं होता, जैसा स्त्रीसङ्गसे और स्त्रीसङ्गीके सङ्गसे होता है॥ 85-87॥

अनुभाष्य—भगवान् कपिलदेव देवहूतिको पाप-पुण्यके कारण श्रीकृष्णविमुख स्वरूप-विस्मृत जीवके जन्मसे पूर्व योनि-भ्रमण और गर्भवास-यन्त्रणाका वर्णन करके जन्म होनेके बाद बाल्य, पौगण्ड और यौवन अवस्थामें अनेक प्रकारके इन्द्रियभोगों अथवा स्त्रीसङ्गकी स्पृहा, उसके प्रभाव और कुफलकी बात तीन श्लोकोंमें बतला रहे हैं—

यत्सङ्गात् (येषां असतां सङ्गवशात्) सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः (पारमार्थिकीत्यर्थः) ह्रीः श्रीः (भक्तिसम्पत्) यशः क्षमा शमः दमः भगः (ऐश्वर्यं वैभवं वा) इति संक्षयं (सम्यक् विनाशं) याति (प्राप्नोति), तेषु अशान्तेषु (जड़विषयभोग-लम्पटेषु) मूढ़ेषु असाधुषु खण्डितात्मसु (प्राकृतदेहादौ अप्राकृतात्मबुद्धिषु) योषित्क्रीड़ा-मृगेषु (स्त्रीणां क्रीड़ामृगाः एकान्त-वशीभूताः तेषु स्त्रैणेषु) शोच्येषु (दुःखाश्रयेषु) असाधुषु (अवैष्णवेषु) सङ्गं न कुर्यात्। अस्य (पुंसः) यथा योषित्सङ्गात् (जड़भोक्तृबुद्धया भोग्य-सहवासेन), यथा [च] तत्सङ्गिसङ्गतः (योषिद्भोक्तृणां रक्त-शुक्रमय-देहादौ आत्मबुद्धीनां वा सहवासेन), मोहः (बुद्धिनाशः) बन्धः (भवबन्धः) च भवेत्, तथा अन्यप्रसङ्गतः न भवेत्।

श्लोक-भावानुवाद—जिन असत् लोगोंके सङ्गसे सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि (पारमार्थिक), लज्जा, श्री (भक्तिरूपी सम्पत्ति), यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य आदि सब कुछ ही सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जाता है, उन जड़विषयभोग-लम्पट मूर्ख देहात्मबुद्धिवाले स्त्री-क्रीड़ा-मृग (स्त्रीके सम्पूर्ण वशीभूत) असाधुओंका सङ्ग कभी भी मत करना। अन्य किसी भी वस्तुसे जीवका ऐसा मोहका बन्धन नहीं होता, जैसा स्त्रीसङ्गसे (जड़भोगबुद्धिसे स्त्रीके भोग और सहवाससे) और स्त्रीसङ्गीके (स्त्रीभोगकामी जिसकी रक्त-शुक्रमय देहमें आत्मबुद्धि है, ऐसे व्यक्तिके सङ्गीके) सङ्गसे होता है॥ 85-87॥

हरिविमुख-सङ्गके प्रति भक्तका मनोभाव :—
कात्यायनसंहिता-वचन—

वरं हुतवहज्वाला-पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरिचिन्ताविमुख-जनसंवासवैशसम्॥ 88॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 88॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अग्निकी ज्वालामें और पिञ्जरेमें बन्द होनेसे जो कष्ट होता है, उसे सहन करना तब भी उचित है, किन्तु श्रीकृष्णके चिन्तनसे बहिर्मुख व्यक्तियोंका कष्ट प्रदान करनेवाला सङ्ग कभी भी मत करना। तात्पर्य यह है कि यदि कभी भी आगमें जलकर मरने अथवा कारागारमें बन्द होना पड़े, उसे भी स्वीकार करना, किन्तु श्रीकृष्ण बहिर्मुख लोगोंके साथ सङ्ग मत करना॥ 88॥

अनुभाष्य—

हुतवहज्वाला-पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः (प्रज्वलितवह्निशिखायां पिञ्जरमध्यनिवासः अपि) वरं [प्रार्थनीयः तथापि] शौरिचिन्ताविमुख-जनसंवास-वैशसं (शौरेः कृष्णस्य चिन्तायाः विमुखः जनः तेन सह सम्यक् वासः, स एव वैशसं विपत्पातः) न।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 88॥

विष्णुभक्तिरहित व्यक्तिके प्रति व्यवहारकी विधि :—
गोस्वामिपादोक्ति—

मा द्राक्षीः क्षीणपुण्यान् क्वचिदपि
भगवद्भक्तिहीनान् मनुष्यान्॥ 89॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 89॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भगवद्भक्तिविहीन मन्द-भाग्य मनुष्योंको कभी भी मत देखना॥ 89॥

अनुभाष्य—

भगवद्भक्तिहीनान् (कृष्णसेवाविहीनान्) क्षीणपुण्यान् (मन्दभाग्यान्) मनुष्यान् क्वचित् (लौकिक-मर्यादौ) अपि मा (न) अद्राक्षीः (पश्येत्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 89॥

परमहंस अथवा निष्किञ्चन वैष्णवका आचरण :—

एत सब छाड़ि' आर वर्णाश्रम धर्म।
अकिञ्चन हञा लय कृष्णैक-शरण॥ 90॥

अनुवाद—असत्सङ्गका पूर्ण त्याग और वर्णाश्रम धर्मकी उपेक्षा करके अकिञ्चन (सांसारिक आसक्तिरहित) होकर श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण करनी चाहिये॥ 90॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इन दो प्रकारके असाधुसङ्ग और वर्णाश्रमधर्मकी आसक्तिका परित्याग करके अकिञ्चनभावसे एकमात्र श्रीकृष्णके शरणागत होओ॥ 90॥

अमृतानुकणा—श्रीमन्महाप्रभुके इस वाक्यसे कोई-कोई ऐसा सोचते हैं कि महाप्रभुने वर्णाश्रम विचारको त्याग करनेके लिये कहा है। वे इस प्रसङ्गमें साध्य-साधन विचारके निर्णयके समय श्रीरामानन्द प्रभुके द्वारा कहे गये 'वर्णाश्रम-धर्म'के सम्बन्धमें महाप्रभुकी उक्ति 'एहो बाह्य' और महाप्रभुके द्वारा कहे गये "नाहं विप्रः"—श्लोकको वे उक्त विचारोंको पुष्ट करनेवाला मानते हैं। किन्तु वास्तवमें उसे कभी भी 'सिद्धान्त' नहीं कहा जा सकता।

"महाप्रभुकी उक्ति ('एहो बाह्य')का तात्पर्य यह था,—हे रामानन्द! स्थूल-लिङ्गदेहको नियमित करनेके लिये वर्णाश्रम-धर्म है। यदि कोई केवल उसीसे ही सन्तुष्ट होकर हरिभजन न करे, तब उसको क्या लाभ होगा? इसलिये वर्णाश्रम-विधि बद्धजीवके एकमात्र शुद्ध-जीवनका उपाय होनेपर भी वह 'बाह्य' है। इसके द्वारा ऐसा सिद्धान्त नहीं करना होगा कि महाप्रभुने वर्णाश्रम-धर्मको दूरसे ही छोड़ देनेकी आज्ञा दी है। यदि ऐसा होता, तब अपनी जीवन-लीलामें गृहस्थ-अवस्थामें गृहस्थ-धर्म और संन्यास-अवस्थामें संन्यास-धर्म सम्पूर्णरूपसे पालन करके वे सभी जीवोंको शिक्षा नहीं देते। जब तक देह है, तब तक वर्णाश्रम-धर्मका आश्रय ग्रहण करना होगा, किन्तु वह सदा भक्तिके सम्पूर्ण अधिकारमें और अधीन रहेगा। वर्णाश्रम-धर्म 'परमधर्म'की नींवस्वरूप है। 'परमधर्म'की (भक्तिकी) परिपक्वता होनेपर उपेयकी (श्रीकृष्णप्रेमकी) प्राप्ति होनेके साथ-साथ उपायका (वर्णाश्रम-धर्मका) क्रमशः अनादर होता है। और देहत्यागके साथ ही उसका त्याग हो जाता है।"

"श्रीरामानन्दके द्वारा उद्धृत श्लोकके आखिरमें यह कहा गया है कि 'विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोष-कारणम्।' उससे यह जानना होगा कि वर्णाश्रम-धर्मके आश्रयके अतिरिक्त संसारी जीवका श्रीहरिभजनके अनुकूल जीवन उपायका और कोई मार्ग नहीं है। इसको भक्तजीवन प्राप्त करनेका एकमात्र मार्ग कहा जाता है।" ('साधुवृत्ति'-श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)।

'नाहं विप्रः' श्लोक कहनेवाले श्रीमन्महाप्रभुने पुनः स्वयं ही "आमि त' संन्यासी, आमार समदृष्टि धर्म" (अन्त्यलीला 4/179), "आमि त' संन्यासी, आपनारे विरक्त करि मानि" (अन्त्यलीला 5/35), "भिक्षुक संन्यासी आमि निर्जनवासी" (अन्त्यलीला 9/64)—आदिरूपमें पुनः पुनः अपनेको वर्णाश्रमके अन्तर्गत संन्यासी कहकर उन्होंने घोषणा की है। इसलिये यहाँपर महाप्रभुके निज आचरणमें वर्णाश्रम परित्यागका कोई भी दृष्टान्त लक्षित नहीं होता। "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं" (गीता 4/13)—वर्णाश्रम-व्यवस्थाके जो सृष्टा हैं, वे स्वयं ही अवतीर्ण होकर फिर उक्त व्यवस्थाके उल्लङ्घनके उपदेशके द्वारा समस्त लोगोंको भ्रमित नहीं कर सकते। "उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।" (गीता 3/24)—'यदि मैं यथाविधि कर्म न करूँ, तब मेरे दृष्टान्तसे ये समस्त लोग भ्रष्ट हो जायेंगे।' "वर्णाश्रम दूर होनेपर मानवका वैज्ञानिक समाज विनष्ट होगा और 'पुनर्मूषिको भव' यह अभिशाप प्राप्त होकर स्वेच्छाचारी म्लेच्छोंके जैसे अवैध जीवनकी सुविधा प्राप्त करेंगे। जहाँ वर्णाश्रम-धर्म नहीं है, वहाँ निष्काम कर्मयोग और उसका साध्य ज्ञानयोग और चरमफलरूप भक्तियोग सुन्दररूपसे आचरित नहीं हो सकता।" (सज्जनतोषणी)। इसलिये श्रीमन्महाप्रभुने आदर्श दिखानेके लिये यथार्थ वर्णाश्रम-धर्मका स्वयं सुन्दररूपसे आचरण करके

वर्णाश्रम-व्यवस्थाके वास्तविक तात्पर्यका प्रदर्शन किया है—"चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे। स्वकर्म करिते से रौरवे पड़ि' मजे॥"(चै.च. मध्यलीला 22/26)

यहाँपर महाप्रभुके "एत सब छाड़ि' आर वर्णाश्रम-धर्म। अकिञ्चन हैया लय कृष्णैकशरण॥" वाक्यमें उनके द्वारा पहले दिये गये उपदेश 'नाहं विप्रः' श्लोककी ही प्रतिध्वनि हुई है। वर्णाश्रमके अन्तर्गत अभिमान या उसके प्रति आसक्ति परमपुरुषार्थ-साधनके क्षेत्रमें नितान्त ही अनावश्यक है। वहाँ स्थूल-लिङ्गदेहगत वर्णाश्रमका परिचय कोई भी कार्य नहीं करता, इसलिये उस-उस अभिमान और उसके प्रति आसक्ति छोड़कर, यहाँ तक कि रूप-धन-विद्याके अभिमानका परित्याग करके अकिञ्चन होकर केवल अपने स्वरूपगत "गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः" परिचयको ही ग्रहण करना होगा॥ **90**॥

श्रीमद्भगवद्गीता (18/66)में :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ 91॥

अनुवाद—समस्त धर्मोंका परित्याग करके एकमात्र, मैं जो भगवान् हूँ, मेरे शरणागत होओ। ऐसा करनेपर मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त करूँगा। तुम शोक मत करो॥ **91**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/63 संख्या देखें॥ **91**॥

श्रीकृष्ण ही एकमात्र भजनीय वस्तु :—

भक्तवत्सल, कृतज्ञ, समर्थ, वदान्य।
हेन कृष्ण छाड़ि' पण्डित नाहि भजे अन्य॥ 92॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण भक्तवत्सल हैं। वे कृतज्ञ, सर्वसमर्थ और परम उदार हैं। पण्डित व्यक्ति ऐसे श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य किसीका भजन नहीं करते॥ **92**॥

अनुभाष्य—भक्तवत्सल, कृतज्ञ, उदार और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णको छोड़ करके कोई भी पण्डित श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्यान्य तुच्छ वस्तुओंका भजन नहीं करते। जो श्रीकृष्णभजन छोड़कर जड़विषयोंके प्रति मुग्ध होते हैं, उनके समान मूर्ख आत्मघाती व्यक्ति अत्यन्त विरले होते हैं अर्थात् वे महामूर्ख होते हैं॥ **92**॥

स्वयं तकको प्रदान कर देनेवाले सर्वात्मा श्रीकृष्ण :—
श्रीमद्भागवत (10/48/26)में—

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीया-
द्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात्।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य॥ 93॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **93**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रिय, सत्यवादी, सुहृत् और कृतज्ञरूपी [भक्तप्रेमका प्रतिदान करनेवाले] आपको छोड़कर कौन पण्डित दूसरोंके शरणागत होते हैं? आप भजनशील सुहृद् व्यक्तियोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करते हैं और स्वयं तकको भी दिया करते हैं, परन्तु आपमें ह्रास (कमी) और वृद्धि नहीं होती॥ **93**॥

अनुभाष्य—भगवान् श्रीकृष्णके कुब्जाकी अभीष्ट-वाञ्छाको पूर्ण करके अक्रूरको हस्तिनापुरमें भेजनेकी इच्छासे बलरामजीके साथ उनके घरपर उपस्थित होनेपर, अक्रूर उनकी वन्दना करते-करते स्तव कर रहे हैं,—

[यतो भवान्] भजतः (भजनशीलान्) सर्वान् सुहृदः (मित्रान्) अभिकामान् (सर्वतोभावेन कामान्), यस्य (च) उपचयापचयौ (ह्रासवृद्धी) न स्तः, (तादृशम्) आत्मानं (निजविग्रहम्) अपि ददाति, [अतः] भक्तप्रियात् (भक्तवत्सलात्) ऋतगिरः (सत्यवाचः) सुहृदः (बान्धवात्) कृतज्ञात् (भक्तप्रेमप्रतिदानकारिणः) त्वत्तः (त्वां बिना) अपरं शरणं (आश्रयं) कः पण्डितः समीयात् (गच्छेत्)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **93**॥

उद्धव ही अनन्य-श्रीकृष्ण भजनके प्रमाण :—

विज्ञ-जनेर हय यदि कृष्णगुण-ज्ञान।
अन्य त्यजि' भजे, ताते उद्धव—प्रमाण॥ 94॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ **94**॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके गुणोंका ज्ञान होने मात्रसे ही अभिज्ञ (बुद्धिमान) व्यक्ति दूसरोंकी उपासनाको त्याग करके श्रीकृष्णका ही भजन करता है; इस विषयमें उद्धवजी ही प्रमाण हैं॥ **94**॥

श्रीकृष्ण—दयाके सागर :—
श्रीमद्भागवत (3/2/23)में—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाधवी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥ 95॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **95**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अहो, जिन श्रीकृष्णका वध करनेके लिये इस बकासुरकी बहन पूतनाने दुष्ट-वृत्तियुक्त होकर उन्हें स्तनपर लगाये कालकूट (विष)का पान कराया था और ऐसा करनेपर भी उसने माताके योग्य गतिको प्राप्त किया था, उनके (उन श्रीकृष्णके) अतिरिक्त अन्य किस दयालुके शरणागत हो सकता हूँ?॥ **95**॥

अनुभाष्य—महाभागवत श्रील उद्धव श्रीकृष्णके वियोगके कारण शोकाकुल होकर विदुरजीसे श्रीकृष्णकी बाल्यलीला आदिका वर्णन कर रहे हैं,—

अहो (आश्चर्य), बकी (पूतना) जिघांसया (हन्तुम् इच्छया अपि) स्तनकालकूटं (स्तनयोः गृहीतं कालकूटं विषं) यं (कृष्णम्) अपाययत्, असाध्वी (कृष्णविरोधिनी दुष्टा दानवी) अपि धात्र्युचितां (पालयित्र्याः स्तनदातृकायाः योग्यां) गतिम् (उत्तमां गतिं) लेभे, ततः (श्रीकृष्णात्) अन्यं (अपरं) कं वा दयालुं (वदान्यं) शरणं व्रजेम (भजेमेत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **95**॥

परमहंस या वैष्णव ही श्रीकृष्णके प्रति समर्पितात्मा :—

शरणागतेर, अकिञ्चनेर—एकइ लक्षण।
तार मध्ये प्रवेशये 'आत्मसमर्पण'॥ 96॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **96**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'अकिञ्चन भक्त' और 'शरणागत भक्त'—इन दोनोंके एक ही लक्षण हैं। इन दोनोंमेंसे शरणागतका 'आत्म-समर्पण'-रूप एक लक्षण अधिक होता है॥ **96**॥

छः प्रकारकी शरणागति :—
हरिभक्तिविलास (11/417)में उद्धृत वैष्णवतन्त्रवाक्य—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्य-विवर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेप-कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥ 97॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **97**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शरणागतिके छः प्रकारके लक्षण—(1) आनुकूल्य-सङ्कल्प अर्थात् 'श्रीकृष्णभक्तिके जो अनुकूल है, उसे मैं अवश्य ही स्वीकार करूँगा'—ऐसा सङ्कल्प; (2) प्रातिकूल्य-विवर्जन अर्थात् 'श्रीकृष्णभक्तिके जो प्रतिकूल है, उसका मैं अवश्य ही वर्जन (त्याग) करूँगा', इस भावनासे त्याग; (3) 'वे मेरी रक्षा करेंगे' अर्थात् 'श्रीकृष्णके अतिरिक्त मेरा और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है', यह विश्वास—'अभेद ब्रह्मज्ञानके द्वारा मैं मृत्युसे बच सकता हूँ',—ऐसा विश्वास नहीं, 'श्रीकृष्ण कृपा करके मेरी रक्षा करेंगे',—ऐसा विश्वास; (4) श्रीकृष्णको 'गोप्ता' अथवा 'पालन करनेवाले'के रूपमें वरण करना अर्थात् 'समस्त कर्म करके मैं (कर्मोंके) उन-उन अधिष्ठातृ-देवताके द्वारा पालित होऊँगा',—ऐसे विश्वासको पूर्णरूपसे त्याग करके 'श्रीकृष्ण ही मेरे एकमात्र पालनकर्त्ता हैं और देवताओं तथा मनुष्योंमेंसे कोई भी मेरा पालनकर्त्ता नहीं है',—ऐसा अचल विश्वास; (5) आत्मनिक्षेप अर्थात् 'मेरी इच्छा स्वतन्त्र नहीं है, वह—श्रीकृष्णकी इच्छाके परतन्त्र है' ऐसी बुद्धि ही आत्मसमर्पण है, और (6) कार्पण्य अर्थात् स्वयंको दीन-हीन मानना॥ **97**॥

अनुभाष्य—

आनुकूल्यस्य (कृष्णभजनसहायस्य) सङ्कल्पः (सम्यक् निर्णयः, ग्रहणं वा), प्रातिकूल्यविवर्जनं (कृष्णभजनविरोधिवस्तु-सङ्गत्यागः),

मां रक्षिष्यति इति विश्वासः (दृढ़श्रद्धा,—"क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशः" इत्यादि प्रकारः), गोप्तृत्वे (प्रभुत्वे, पालयितृत्वे, पतित्वे वा) वरणं (प्रार्थनम् अङ्गीकरणं वा—"त्वां प्रपन्नोऽस्मि शरणं देवदेवं जनार्द्दनम्। इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराम्यहम्॥" इति नारसिंहोक्तप्रकारम्), आत्मनिक्षेपकार्पण्ये (आत्मसमर्पणं "केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि, तथा करोमि" इति गौतमीयतन्त्रोक्तप्रकारं च, स्वीयदैन्यज्ञापकं कार्पण्यं "परमकारुणिको न भवत्परः परमशोच्यतमो न च मत्परः" इत्यादिप्रकारं च—काकुभाषणश्चेत्यर्थः)—इति षड्विधा शरणागतिः (शरणापत्तिः)।

श्लोक-भावानुवाद—[*"आनुकूल्यस्य संकल्पः"*—जो श्रीकृष्ण भजनमें सहायक है, उसको सम्पूर्ण रूपसे ग्रहण या वैसा सम्पूर्ण निर्णय करना। *"प्रातिकूल्य-विवर्जनम्"*—श्रीकृष्णभजन-विरोधी वस्तुका सङ्गत्याग। *"रक्षिष्यतीति विश्वासः"*—'त्रिलोकके अधीश वे भगवान् मेरा मङ्गल विधान करेंगे', इस प्रकारसे दृढ़ श्रद्धा होना। *"गोप्तृत्वे वरणम्"*—प्रभुरूपमें, पालकरूपमें या पतिरूपमें वरण, अथवा प्रार्थना करना, जैसे नारसिंह-पुराणमें कहा गया है,—'हे भगवन्! देवदेव जनार्दन! मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ'—इस रूपमें यदि मेरे शरणागत होता है, तो मैं उसके समस्त क्लेशोंसे उसका उद्धार करता हूँ। *"आत्मनिक्षेप-कार्पण्ये"*—आत्मसमर्पण, जैसा गौतमीय-तन्त्रमें कहा गया है, 'हृदयमें स्थित किसी देवके द्वारा मैं जिस प्रकार नियुक्त हुआ हूँ, उस रूपमें कर रहा हूँ'—आदि प्रकार; *'कार्पण्य'* अर्थात् जो अपने दैन्यका ज्ञापक है, जैसे 'हे भगवन्! आपकी अपेक्षा अधिक करुणाशील और कोई नहीं है और मेरी अपेक्षा भी अधिक अधम और कोई नहीं है', आदि प्रकारके काकुवाक्य; यह छः प्रकारकी शरणागति अर्थात् शरणापत्ति है।]

भक्ति सन्दर्भमें 236 संख्यामें श्रीजीवप्रभु—

"अङ्गाङ्गिभेदेन षड्विधा; तत्र 'गोपतृत्वे वरणम्' एवाङ्गि, शरणागतिशब्देनैकार्थ्यात्; अन्यानि त्वङ्गानि, तत्परिकरत्वात्। तदेवं यस्य सर्वाङ्ग सम्पन्ना शरणापत्तिस्तस्य झटित्येव सम्पूर्णफला; अन्येषां तु यथासम्पत्ति यथाक्रमञ्चेति ज्ञेयम्। तामेतां शरणापत्तिं श्लाघ्यते (भाः 11/19/9 पद्येन)— शरणागतानां सर्वदुःखदूरीकरणं निज-माधुरीणां सर्वतो वर्षञ्चात्राभिहितम्।"

[अर्थात् "छः प्रकारकी शरणागतिके मध्य अङ्ग-अङ्गी भावको जानना होगा। उसमें 'गोप्तृत्वे वरण' ही अङ्गीस्वरूप है, क्योंकि उसका 'शरणागति'-शब्दके साथ एक ही अर्थका वैशिष्ट्य है और अन्य पाँचको उसका परिकर कहकर अङ्गरूपमें जानना होगा। इस प्रकारसे जिनकी सर्वांगरूपसे शरणागति होती है, उनकी शरणागति शीघ्र ही सम्पूर्ण फलको देनेवाली होती है। अन्य लोगोंकी क्षेत्रमें सम्पत्तिके अनुसारसे (अर्थात् जिस परिमाणमें शरणागति है, उस अनुपातसे) और क्रमानुसारसे उनकी सिद्धि जाननी होगी। इस शरणागतिकी प्रशंसा, जैसे (भाः 11/19/9 श्लोकमें)—'हे भगवन्! इस घोर संसारमें त्रितापके द्वारा अक्रान्त सन्तप्त चित्तसे मानवोंके लिये आपकी अमृतराशि-वर्षण करनेवाले चरणकमलयुगल-रूप छत्रके अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं दिखायी देता।' यहाँपर शरणागतके सब दुखोंको दूर करने और सर्वत्र अपनी माधुरीका वर्षण करना वर्णित हुआ है।"]॥ **97**॥

शरणागतका आचरण :—

हरिभक्तिविलास (11/418)में उद्धृत वैष्णवतन्त्रवाक्य—

तवास्मीति वदन् वाचा तथैव मनसा विदन्।
तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते शरणागतः॥ 98॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **98**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शरणागत व्यक्ति भगवान्की लीला-स्थलीका शरीरके द्वारा आश्रय ग्रहण करके 'हे भगवन्, मैं आपका हूँ', ऐसा मुखसे बोलकर और मनमें जानकर आनन्द प्राप्त किया करता है॥ **98**॥

अनुभाष्य—

शरणागतः (प्रपन्नः) '[अहं] तव [एव] अस्मि' इति वाचा वदन्, तथा एव मनसा विदन् (आत्मानं सेवापरं जानन्) तन्वा (शरीरेण) तत्स्थानं (भगवन्तः भक्तस्य च स्थानम्) आश्रितः (सन्) मोदते (हृष्यति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 98 ॥

वैष्णव—श्रीकृष्णसे अभिन्न :—

शरण लञा करे कृष्णे आत्मसमर्पण।
कृष्ण ताँरे करे तत्काले आत्मसम॥ 99 ॥

अनुवाद—जब भक्त श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें पूर्ण शरणागत होकर आत्मसमर्पण करता है, श्रीकृष्ण तुरन्त ही उसे अपने भक्तके रूपमें स्वीकार कर लेते हैं॥ 99 ॥

श्रीकृष्णकी भाँति वैष्णव भी सच्चिदानन्दमय :—
श्रीमद्भागवत (11/29/34)में—

मर्त्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥ 100 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 100 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मरणशील जीव जब समस्त कर्मोंका परित्याग करके स्वयंको मेरे (भगवान्‌के) प्रति सम्पूर्णरूपसे निवेदन करके मेरी इच्छासे क्रिया करता है, तब वह अमृतत्वको (मोक्षको) प्राप्त करता है। इस प्रकार वह मेरे साथ मेरे समान चित्स्वरूप रस-भोग करनेके योग्य होता है॥ 100 ॥

अनुभाष्य—भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय भक्तोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीको सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनतत्त्वका वर्णन करके अन्तमें एकान्त समर्पित आत्मा शुद्धभक्तकी गतिका वर्णन कर रहे हैं,—

यदा मर्त्त्यः (मनुष्यः) त्यक्तसमस्तकर्मा (विरतभोगमोक्षः सन्) मे (मह्यं) निवेदितात्मा (भवति, आत्मसमर्पणं करोतीत्यर्थः), तदा [असौ] मया विचिकीर्षितः (प्रेरितः सन् विशेषेण कर्त्तुमभिलषितो भवति; ततश्च) अमृतत्वं (मोक्षं) प्रतिपद्यमानः, मया (सह) आत्मभूयाय (मादृशसच्चिदानन्दमयत्वाय) कल्पते (योग्यो भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 100 ॥

(1) साधन भक्तिके लक्षणका वर्णन :—

एबे साधनभक्ति-लक्षण शुन, सनातन।
याहा हैते पाइ कृष्णप्रेम-महाधन॥ 101 ॥

अनुवाद—हे सनातन, अब तुम उस साधनभक्तिके लक्षण सुनो, जिसके द्वारा श्रीकृष्णप्रेमरूपी महाधनकी प्राप्ति होती है॥ 101 ॥

साधनकी संज्ञा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/2)—

कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥ 102 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 102 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"साध्य (साधनीय) भावभक्ति जब इन्द्रियोंके द्वारा साधित होती है, तब उसे 'साधन-भक्ति' कहते हैं। भक्ति ही जीवका नित्यसिद्ध भाव है, उसे हृदयमें प्रकट अवस्थामें लानेका नाम ही 'साध्यता' (साधनयोग्यता) है।"

तात्पर्य यह है कि चित्कण-जीवमें स्वाभाविक रूपमें चित्-सूर्यरूप श्रीकृष्णका जो आनन्दकण है, मायाबद्ध होकर वह इस समय प्राय लुप्त है। वह नित्यसिद्ध भाव ही हृदयमें प्रकट करानेके योग्य है। इस (बद्ध) अवस्थामें 'नित्यसिद्ध'-वस्तु ही 'साध्य' हुई है। वही साध्यभावरूपी भक्ति जब बद्धजीवकी इन्द्रियोंके द्वारा साधित होती है, तब उसका ही नाम 'साधन-भक्ति' है॥ 102 ॥

अनुभाष्य—

कृतिसाध्या (कृत्या इन्द्रिय-प्रेरणया साधनीया या) साध्यभावा (साधनीयः भावः यया) सा साधनाभिधा (साधनभक्तिनाम्नी) भवेत्; हृदि (जीवात्म-हृदये) नित्यसिद्धस्य (नित्यवर्त्तमानस्य स्वतःप्रकाशस्य) भावस्य (कृष्णप्रेमभावस्य) प्राकट्यम् (आविष्करणम् एव) साध्यता (साधनयोग्यता)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 102 ॥

साधन भक्तिका स्वरूप और तटस्थ लक्षण :—

श्रवणादि-क्रिया—तार 'स्वरूप' लक्षण।
'तटस्थ'-लक्षणे उपजय प्रेमधन॥ 103॥

नित्यसिद्ध निरपेक्ष शुद्ध (अनन्य, केवल अथवा अनुकूल) अभिधेयके द्वारा ही नित्यसिद्ध स्वप्रकाशित शुद्धप्रयोजनकी प्राप्ति :—

नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम 'साध्य' कभु नय।
श्रवणादि-शुद्धचित्ते करये उदय॥ 104॥

साधनभक्तिके भेद—(1) वैधी और (2) रागानुगा :—

एइ त' साधनभक्ति—दुइ त' प्रकार।
एक 'वैधी भक्ति', 'रागानुगा भक्ति' आर॥ 105॥

(क) वैधीभक्तिका वर्णन और संज्ञा-निर्देश :—

रागहीन जन भजे शास्त्रेर आज्ञाय।
'वैधी-भक्ति' बलि' तारे सर्वशास्त्रे गाय॥ 106॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 103-106॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अनुकूलभावके साथ श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही उस भक्तिका 'स्वरूप'-लक्षण है। अन्याभिलाषका त्याग और ज्ञानकर्मके साथ सम्बन्ध-विच्छेद [तटस्थ लक्षण]के द्वारा वह स्वरूप लक्षण 'प्रेमधन' उत्पन्न करता है। श्रीकृष्णप्रेम—नित्यसिद्ध वस्तु है, वह कभी भी (शुद्धभक्तिके अतिरिक्त अन्य किसी अभिधेय से) साध्य नहीं है; केवलमात्र श्रवणादिके द्वारा भली-भाँति शोधित चित्तमें ही उसका उदित होना सम्भव है। इसलिये शुद्ध श्रवण-कीर्तनादि क्रिया ही प्रधानतः साधन-भक्ति है। वह दो प्रकारकी है,—'वैधी' और 'रागानुगा'। जिनके हृदयमें रागका उदय नहीं हुआ, उनकी शास्त्रोंकी आज्ञानुसार जो भजनप्रवृत्ति होती है, वही 'वैधीभक्ति' है॥ 103-106॥

अमृतानुकणा—ईश्वरके प्रति जीवका जो प्रेम है, वह जीवका स्वाभाविक नित्य धर्म है। जीव वास्तवमें शुद्ध चिद्-वस्तु और चिद्-धर्मसे गठित है। 'चिद्-स्वरूप जीवका अपना एक विशेष शुद्ध अभिमान था कि 'मैं भगवान्‌का अमुक लक्षणवाला दास हूँ।' उस अभिमानने जीवके चिद्‌गत शुद्ध अहङ्काररूपमें चिद्-स्वरूपका आश्रय किया हुआ था। चिद्-स्वरूपको आश्रय करके आनन्दकी उपलब्धिके स्थानरूप शुद्धबुद्धि भी थी। अन्य पदार्थों और अन्य जीवों एवं परमपुरुष भगवान्‌के विषयमें जानकर उसका ज्ञान और ध्यानके उपयोगी मन भी था। जड़बद्ध होनेपर वे चिद्‌गत वृत्तियाँ जड़सङ्गके प्रभावसे लिङ्ग और स्थूलरूपमें परिणत होकर उन-उन सबके विषयरूप जड़ीय और अशुद्ध वृत्तियाँ प्रकाशित हुई हैं। इसलिये जो-रस चिदाश्रयमें भाव था, वह (जड़ाश्रयमें) विकृत भाव हो गया है। रस एक ही वस्तु है, नित्यावस्थामें नित्यानन्द स्वरूप है और जड़बद्धावस्थामें जड़ानन्द या जड़-दुःखस्वरूपमें प्रकाशमान है।" (चैतन्यशिक्षामृत 7/1)

इसलिये, अग्निका ताप देनेका धर्म जिस प्रकार स्वतःसिद्ध है, उसे किसी प्रकारके साधनके द्वारा प्राप्त करनेका कोई प्रयोजन नहीं है—उसी प्रकार विभुके प्रति अणुका आकर्षण तथा श्रीकृष्णके प्रति जीवका प्रेम भी नित्यसिद्ध है, उसकी साध्यरूपमें प्राप्तिका कोई अवकाश नहीं है। श्रीकृष्णविमुखताके कारण ही जीवकी बद्धदशा है, इसलिये श्रीकृष्णोन्मुखता होनेपर ही जीवके श्रीकृष्णदास्यरूप स्वधर्मका उदय होता है। कर्म, ज्ञान, योगादि साधनोंके द्वारा श्रीकृष्णोन्मुखता प्राप्त नहीं होती। केवल भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके द्वारा ही प्राप्त शुद्धभक्तके सङ्गसे श्रीहरिके नाम-रूप-गुण-लीलाके निरन्तर श्रवण-कीर्तन-स्मरणके द्वारा ही श्रीकृष्णोन्मुखता प्राप्त करके जीवका सुप्त स्वधर्म जाग्रत होता है। श्रीहरि और श्रीहरिनामादि सब प्रकारसे अभिन्न हैं। इसलिये अनुकूल भावके सहित अर्थात् केवल श्रीकृष्णप्रीतिके उद्देश्यसे साधित हरिनामादि श्रवण-कीर्तन प्रक्रिया ही भक्तिके स्वरूप-लक्षणरूपमें वर्णित हुआ है। उसके द्वारा ही जीवके नित्यधर्मगत भगवत्प्रेम तथा अपने स्वरूपगत 'मैं अमुक लक्षणका भगवद्-दास हूँ'—ऐसा शुद्ध अभिमान जाग्रत होता है। किन्तु इसके मध्य एक विशेष बात यह है कि उक्त श्रवण-कीर्तनादिरूपा

भक्तियाजन करते समय युगपत् अर्थात् उसके साथ ही अन्यभिलाष-त्याग और ज्ञान-कर्म-योगादिके सहित सम्बन्धको काटना आदि तटस्थ-लक्षणवाली साधन भक्तिका आश्रय करनेपर ही उक्त स्वरूप-लक्षणवाली भक्ति जीवके निर्मल चित्तमें 'प्रेमधन'को उदय कराती है॥ 103-104॥

श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही विधि :—
श्रीमद्भागवत (2/1/5)में—

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यश्चेच्छताभयम्॥ 107॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 107॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भारत (परीक्षित), सर्वात्मा भगवान् ईश्वर हरि अभय प्राप्त करनेके इच्छुक व्यक्तियोंके लिये सर्वदा ही श्रवणीय, कीर्तनीय और स्मरणीय हैं॥ 107॥

अनुभाष्य—'मरणासन्न व्यक्तिके लिये क्या करना कर्त्तव्य है?'—राजा परीक्षितके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रील शुकदेव गोस्वामी इस प्रश्नकी विशेषरूपसे प्रशंसा करके पहले गृहमें आसक्त व्यक्तियोंकी बद्धदशाका वर्णन करके उससे मुक्त होनेका उपाय बतला रहे हैं,—

हे भारत (भरतवंश्य), तस्मात् (कृष्णविमुखो जीवः स्वनिधनं पश्यन्नपि न पश्यति, अतः कारणात्) अभयं (स्वपराभवाभावं मोक्षम्, आत्मत्राणं वा) इच्छता (द्वितीयाभिनिवेशत्यागमभिलषता जनेन इत्यर्थः) सर्वात्मा (सर्वान्तर्यामी) भगवान् ईश्वरः हरिः (एव) श्रोतव्यः (श्रवणीयः) कीर्त्तितव्यः (कीर्त्तनीयः) स्मर्त्तव्यः च (स्मरणीयश्च)।

श्लोक-भावानुवाद—हे भरतवंशी! कृष्णविमुख जीव अपनी मृत्युको आता देखकर भी देख नहीं पाता, इसलिये अभय अर्थात् अपने पराभवके अभावके अथवा आत्माके त्राणके इच्छाकारीको (द्वितीयाभिनिवेशके त्यागकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको) सर्वान्तर्यामी भगवान् हरिकी कथाका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना उचित है॥ 107॥

अमृतानुकणिका—इस श्लोककी टीकामें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने इस प्रकार कहा है—

सर्वात्मा, भगवान् और ईश्वर—इन तीन विशेषणोंके द्वारा मोक्षाभिसन्धिनी, रागानुगा और वैधी भक्तिको कहा गया है। मोक्षाभिसन्धिनी भक्तिके पक्षमें अभय कहनेसे मोक्ष इच्छाकारी व्यक्तिके पक्षमें सर्वात्मा अर्थात् परमात्मा हरि ही श्रवणीय हैं। रागानुगा भक्तिके पक्षमें अभय अर्थात् निष्कम्प, सर्वप्रकारसे भयशून्य जिस प्रकार हो, उस प्रकारसे अभिलाषी अर्थात् लोभयुक्त पुरुषके पक्षमें भगवान् नन्दनन्दन (श्रीकृष्ण) ही श्रवणीय हैं। वैधी भक्तिके पक्षमें अभय कहनेसे जिनसे कोई भी भय नहीं है, वे ही अभय अर्थात् श्रीहरि ही हैं। आत्माके त्राणके इच्छाकारी व्यक्तिके पक्षमें अभय कहनेसे सबके नियामकरूपसे ईश्वर हरि ही श्रवणीय, कीर्तनीय और स्मरणीय हैं। *'कीर्त्तितव्यश्च एवं स्मर्त्तव्यश्च'*—यहाँ दो 'च-कार'के प्रयोगके द्वारा यह कहा गया है कि श्रवण, कीर्तन और स्मरण एक कालमें ही करना उचित है॥ 107॥

वैधीभक्तिके प्रारम्भमें परमहंसावस्थाको प्राप्त करनेसे पहले दैववर्णाश्रमधर्मका पालन; उसकी उत्पत्ति :—
श्रीमद्भागवत (11/5/2-3)में—

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥ 108॥
य एषां पुरुषं साक्षादात्म-प्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥ 109॥

अनुवाद—ब्रह्माके मुखसे 'ब्राह्मण', भुजासे 'क्षत्रिय', जङ्घासे 'वैश्य' और पैरोंसे 'शूद्र'—ये चार वर्ण पृथक् पृथक् आश्रमोंके साथ और अपने वर्णगत गुणोंके साथ उत्पन्न हुए थे। इन चारों वर्णाश्रमियोंमेंसे जो अपने प्रभु भगवान् विष्णुका साक्षात् भजन नहीं करके, अपने-अपने वर्णाश्रमके अहङ्कारके कारण उनके भजनमें अवज्ञा करते हैं, वे अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर अधःपतित हो जाते हैं॥ 108-109॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/27-28 संख्या देखें॥ 108-109॥

विष्णुस्मृति-उद्दीपक प्रत्येक क्रिया ही 'विधि',
विष्णुस्मृतिविनाशक प्रत्येक क्रिया ही 'निषेध' :—
पद्मपुराण-वाक्य (72/100)—

स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥ 110॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 110॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'विष्णु सदा ही स्मरणीय हैं, कभी भी विस्मरणीय नहीं हैं'—समस्त प्रकारके विधि और निषेध इन्हीं दो बातोंके अनुगत हैं। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोंमें जितनी प्रकारकी 'विधियाँ' उत्पन्न हुई हैं और 'निषेध' बतलाये गये हैं, वे सभी उक्त दोनों बातोंके आधारपर ही कहे गये हैं। जिसका अवलम्बन करनेसे भगवान् स्मरणपथपर आते हैं, वही कर्त्तव्यके रूपमें 'विधि' है; जिस कार्यके द्वारा भगवान्का विस्मरण होता है, वही कार्य ही 'निषेध' है॥ 110॥

अनुभाष्य—

विष्णुः सततं स्मर्त्तव्यः, न जातुचित् (कदाचित्) विस्मर्त्तव्यः—सर्वे विधिनिषेधाः एतयोः (विष्णुस्मरणास्मरणरुपयोः विधिनिषेधयोः द्वयोः) एव किङ्कराः (अनुगताः भृत्याः) स्युः (भवेयुः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 110॥

असंख्य वैधी-भक्तिमेंसे चौंसठ भक्तिके अङ्गोंका वर्णन :—

विविधाङ्ग साधनभक्तिर बहुत विस्तार।
संक्षेपे कहिये किछु साधनाङ्ग-सार॥ 111॥

अनुवाद—अनेक अङ्गोंवाली साधनभक्तिका बहुत विस्तृत वर्णन है। मैं संक्षेपमें साधनके अङ्गोंका सार बतला रहा हूँ॥ 111॥

गुरुपादाश्रय, दीक्षा, गुरुर सेवन।
सद्धर्म-शिक्षा-पृच्छा, साधुमार्गानुगमन॥ 112॥

कृष्णप्रीत्ये भोगत्याग, कृष्णतीर्थे वास।
यावत् निर्वाह-प्रतिग्रह, एकादश्युपवास॥ 113॥

धात्र्यश्वत्थ-गो-विप्र-वैष्णव-पूजन।
सेवा-नामापराधादि दूरे विसर्जन॥ 114॥

अवैष्णव-सङ्ग-त्याग, बहुशिष्य ना करिब।
बहुग्रन्थ-कलाभ्यास-व्याख्यान वर्जिब॥ 115॥

हानि-लाभे सम, शोकादिर वश ना हइब।
अन्यदेव, अन्यशास्त्र निन्दा ना करिब॥ 116॥

विष्णुवैष्णव-निन्दा, ग्राम्यवार्त्ता ना शुनिब।
प्राणीमात्रे मनोवाक्ये उद्वेग ना दिब॥ 117॥

श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन।
परिचर्या, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन॥ 118॥

अग्रे नृत्य, गीत, विज्ञप्ति, दण्डवत्नति।
अभ्युत्थान, अनुव्रज्या, तीर्थगृहे गति॥ 119॥

परिक्रमा, स्तवपाठ, जप, सङ्कीर्त्तन।
धूप-माल्य-गन्ध-महाप्रसाद-भोजन॥ 120॥

आरात्रिक-महोत्सव-श्रीमूर्त्तिदर्शन।
निजप्रिय-दान, ध्यान, तदीय-सेवन॥ 121॥

'तदीय'—तुलसी, वैष्णव, मथुरा, भागवत।
एइ चारिर सेवा हय कृष्णेर अभिमत॥ 122॥

कृष्णार्थे अखिलचेष्टा, तत्कृपावलोकन।
जन्म-दिनादि-महोत्सव लञा भक्तगण॥ 123॥

सर्वथा शरणापत्ति, कार्त्तिकादि-व्रत।
'चतुःषष्ठि अङ्ग' एइ परम-महत्त्व॥ 124॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 112-124॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(1) गुरुपादाश्रय, (2) दीक्षा अर्थात् मन्त्रदीक्षा, (3) गुरुसेवा, (4) सद्धर्म-शिक्षा और जिज्ञासा, (5) साधुओंके पथका अनुगमन,

(6) श्रीकृष्णप्रीतिके लिये अपना भोगत्याग, (7) श्रीकृष्ण-तीर्थमें वास, (8) जितना मात्र प्राप्त होनेपर जीवनका निर्वाह होता है, उसी परिमाणमें ग्रहण करना, (9) एकादशीका उपवास और (10) आँवला, पीपल, गो, ब्राह्मण, वैष्णवका सम्मान,—ये दस अङ्ग ही भजनके प्रारम्भिक रूप हैं; एवं (11) सेवापराध और नामापराधका दूरसे ही त्याग, (12) अवैष्णव-सङ्गत्याग, (13) बहुतसे शिष्य नहीं बनाना, (14) बहुतसे ग्रन्थोंमें कला अर्थात् आंशिक अभ्यास और व्याख्यावादका त्याग, (15) हानि और लाभमें समबुद्धि, (16) शोकादिके वशीभूत नहीं होना, (17) अन्य देवता अथवा शास्त्रोंकी अवज्ञा नहीं करना, (18) विष्णु और वैष्णवोंकी निन्दा नहीं सुनना, (19) ग्राम्यवार्त्ता अर्थात् स्त्री-पुरुषकी इन्द्रियतुष्टिमूलक गृहवार्त्ताको नहीं सुनना, (20) प्राणीमात्रके मनमें उद्वेग उत्पन्न नहीं करना,—इन बाकी दस निषेद्य-लक्षण अङ्गोंका व्यतिरेक-भावसे (वर्जनके रूपसे) अनुष्ठान करना। 'व्यवहारे अकार्पण्य' और 'महारम्भेर अनुद्यम'—इन दोनोंको भक्तिरसामृतसिन्धुमें इन दस अङ्गोंमें रखा गया है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें इस ग्रन्थमें लिखित 'ग्राम्यवार्त्ता मत सुनना'—यह अङ्ग पूर्वोक्त दस अङ्गोंमें उद्धृत नहीं किया गया है।

ये बीस अङ्ग ही भजनमन्दिरमें प्रवेश-द्वारस्वरूप हैं। इनमेंसे 'गुरु-पादाश्रय', 'दीक्षा' और 'गुरुसेवा'—ये तीन अङ्ग प्रधान अङ्गोंमें गिने जाते हैं। (1) श्रवण, (2) कीर्तन, (3) स्मरण, (4) पूजन, (5) वन्दन, (6) परिचर्या, (7) दास्य, (8) सख्य, (9) आत्म-निवेदन, (10) श्रीविग्रहके आगे नृत्य, (11) गीत-गान, (12) विज्ञप्ति (अपनी प्रार्थना भगवान्‌के सामने रखना), (13) दण्डवत् प्रणाम, (14) अभ्युत्थान अर्थात् भगवान् अथवा भक्तको आते देखकर उठना, (15) अनुव्रज्या अर्थात् भक्त अथवा भगवान्‌के यात्रा करनेपर उनके पीछे-पीछे जाना, (16) तीर्थ और भगवद्-गृहमें (धाममें) जाना, (17) परिक्रमा; (18) स्तवपाठ, (19) जप, (20) सङ्कीर्तन, (21) भगवान्‌की प्रसादी धूप और मालाकी गन्धको ग्रहण करना, (22) महाप्रसादका सेवन, (23) आरति आदि महोत्सवोंका दर्शन, (24) श्रीमूर्तिका दर्शन, (25) अपनी प्रियवस्तु भगवान्‌को समर्पित करना, (26) ध्यान।

तदीय अर्थात् भगवान्‌से अभिन्न वस्तुओंकी सेवा—(27) तुलसी आदिकी सेवा, (28) वैष्णव-सेवा, (29) मथुरा-वास और (30) भागवतका आस्वादन, (31) श्रीकृष्णके लिये समस्त चेष्टाएँ, (32) उनकी कृपाकी प्रतीक्षा, (33) भक्तोंके साथ जन्मदिन (जन्माष्टमी) आदि महोत्सवका पालन, (34) सब प्रकारसे शरणागति, (35) कार्तिकादि व्रत,—इन पैंतीस अङ्गोंमें और चार अङ्गोंका योग करना होगा अर्थात् देहमें (1) वैष्णवचिह्न धारण, (2) हरिनामाक्षरधारण, (3) निर्माल्यधारण और (4) चरणामृत पान;—इन चार अङ्गोंको श्रीकविराज गोस्वामीने अर्चनादिके अन्तर्गत स्वीकार किया है। इन चार अङ्गोंके योगसे उनतालीस (39) अङ्ग होते हैं, उनमें (1) साधुसङ्ग (2) नामकीर्तन, (3) भागवत-श्रवण, (4) मथुरावास, (5) श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्तिसेवारूपी अन्य पाँच अङ्गोंका पुनः योग करना होगा। श्रीरूपगोस्वामीने (भ:र:सि: पूर्व विभाग, द्वितीय लहरीमें चौंसठ वैधीभक्तिके अङ्गोंके वर्णनके अन्तमें लिखा है,—"अङ्गानां पञ्चकस्यास्य पूर्वविलिखितस्य च। निखिलश्रेष्ठ्यबोधाय पुनरप्यत्र शंसनम्॥", इन पाँच अङ्गोंका योग करनेसे चौवालीस अङ्ग होते हैं। इन चौवालीसको पहले बतलाये गये बीसके साथ योग करनेपर कुल मिलाकर चौंसठ अङ्ग होते हैं। ये भक्तिके चौंसठ-अङ्ग ही शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणके द्वारा पृथक् पृथक् यजन अथवा उपासना है। इनमेंसे कुछ बिल्कुल ही पृथक् हैं, और कुछ मिश्रित-भाववाले हैं॥ **112-126**॥

उनमेंसे साधुसङ्गादि पाँच भक्तिके अङ्गोंकी सर्वश्रेष्ठता :—

साधुसङ्ग, नामकीर्त्तन, भागवतश्रवण।
मथुरावास, श्रीमूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन॥ 125॥

उनके आंशिक अनुष्ठानके प्रभावसे ही
श्रीकृष्ण-प्रेमका उदय :—

सकलसाधन-श्रेष्ठ एइ पञ्च अङ्ग।
कृष्णप्रेम जन्माय एइ पाँचेर अल्प सङ्ग॥ 126॥

अनुवाद—साधुसङ्ग, नाम-कीर्तन, भागवत-श्रवण, मथुरावास और श्रीमूर्तिकी श्रद्धापूर्वक सेवा, समस्त प्रकारके साधन-अङ्गोंमें ये पाँच अङ्ग सबसे श्रेष्ठ हैं। इन पाँचोंके अल्प सङ्गसे ही श्रीकृष्णप्रेम उत्पन्न हो जाता है॥ 125-126॥

साधुसङ्ग और भागवत-श्रवण-कीर्तनकी विधि :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/90-91)—

सजातीयाशये स्निग्धे साधौ सङ्गः स्वतो वरे।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह॥ 127॥

विशेषतः श्रीविग्रहपूजा, श्रीनामसङ्कीर्तन और श्रीधामवासका माहात्म्य :—

श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः श्रीमूर्त्तेरङ्घ्रिसेवने।
नामसङ्कीर्त्तनं श्रीमन्मथुरामण्डले स्थितिः॥ 128॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 127-128॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समजातीय वासनाके द्वारा स्निग्ध, किन्तु अपनेसे श्रेष्ठ साधुका सङ्ग करना। ऐसे रसिक साधुओंके साथ श्रीमद्भागवतके अर्थोंका आस्वादन करना। श्रद्धासे श्रीमूर्तिकी पदसेवामें प्रीति, नामसङ्कीर्तन और मथुरामण्डलमें वास करना॥ 127-128॥

अनुभाष्य—

सजातीयाशये (समजातीयवासनाविशिष्टे) स्निग्धे (गाढ़-विश्रम्भात्मक-स्नेहपरे) स्वतः वरे (श्रेष्ठे) साधौ सङ्गः [कार्यः]। रसिकैः (कृष्णभजनविज्ञैः) सह श्रीमद्भागवतार्थानाम् आस्वादः (कार्यः, तात्पर्यं ग्रहणीयमित्यर्थः—श्रौतमार्ग-भक्तियोगत्यागी वैयाकरणस्य शाब्दिकस्य योषित्सङ्गिगृहव्रतस्य विष्णुवैष्णवविरोधिनः मायावादिनः नामापराधिनः वेषोपजीविनः मन्त्रजीविनः भागवतजीविनः इन्द्रियतर्पणरत-विषयिणश्च "यस्य देवे पराः भक्तिः" इति "भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया" इति श्रुति-स्मृतिवचनात् तेषां पारमहंस्यशास्त्रार्थ-बोधासम्भवात् ग्रन्थतात्पर्यार्थग्रहणे अनधिकारत्वाच्च)।

श्रीमूर्त्तेरङ्घ्रिसेवने श्रद्धा विशेषतः (विशेषेण) प्रीतिः (बहिःपूजायाम् अर्चने सामान्यतः, व्रजदम्पत्योः मानससेवायां विशेषतः सार्वकालिकभजनानुरागः), नामसङ्कीर्त्तनं (नामभजनं), श्रीमन्मथुरामण्डले स्थितिः (कृष्णवसतिस्थले अवस्थानम्;—श्रीगौरमण्डलभूमौ चिन्तामणिज्ञानं, तदेव मथुरावासः इति श्रीमन्नरोत्तमप्रभुचरणैः प्रेमभक्तिचन्द्रिकायां निर्णीतम्। श्रीगौरविलासभूमि-श्रीमायापुरादिधामवासः श्रीक्षेत्र-दाक्षिणात्य-व्रजमण्डलादिधामवासश्च मथुरावासेन सह अभिन्नो ज्ञेयः। तद्भेदवादिनां तथाकथित-मथुरावासोऽपि प्राकृत-भोगमयः अधोगतिप्रदश्चेति)।

श्लोक-भावानुवाद—समजातीयवासनायुक्त गाढ़-विश्रम्भात्मक-स्नेहपर अपनेसे श्रेष्ठ साधुका सङ्ग करना। श्रीकृष्णभजनविज्ञके साथ श्रीमद्भागवतके तात्पर्यको ग्रहण करना। (*"यस्य देवे पराः भक्तिः"* और *"भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया"*,—श्रुति-स्मृति वचनोंके अनुसार श्रौतमार्ग-भक्तियोगत्यागी वैयाकरण-पण्डित, श्रुतियोंके विद्वान, स्त्रीसङ्गी गृहव्रतधारी, विष्णु-वैष्णवविरोधी मायावादी, नामापराधी, वेष-मन्त्र-भागवतादिको जीविका बनानेवाले और इन्द्रियभोगमें रत विषयी लोगोंको पारमहंस्य-शास्त्रका अर्थ बोध होना सम्भव नहीं है, उनका ग्रन्थके तात्पर्यार्थको ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है।)।

श्रद्धासे श्रीमूर्तिकी पदसेवामें विशेष प्रीति (अर्थात् बाहरसे अर्चन सामान्य प्रीति है, सब समय भजनमें अनुरागके साथ व्रजदम्पत्तिकी मानससेवा विशेष प्रीति है), नामभजन और श्रीमथुरामण्डलमें वास करना (श्रीगौरमण्डलभूमिको चिन्तामणि जानकर वहाँ भी वास मथुरावास ही है—ऐसा श्रीमन्नरोत्तमप्रभुने प्रेमभक्तिचन्द्रिकामें निर्णीत किया है। श्रीगौरविलासभूमि अर्थात् श्रीमायापुरादि-धामवास, श्रीक्षेत्र-दक्षिणभारत-व्रजमण्डलादिधामवासको मथुरावासके साथ अभिन्न जानना चाहिये। उनमें भेद माननेवालेका तथाकथित मथुरावास भी प्राकृत-भोगमय है और वह अधोगतिको प्रदान करता है।)।॥ 127-128॥

भक्तिरसामृत सिन्धु (1/2/238) :—

दुरूहाद्भुतवीर्येऽस्मिन् श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भावजन्मने॥ 129॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 129॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सहसा दुर्बोध और अद्भुत शक्तिसम्पन्न अन्तिम पाँच अङ्गोंमें श्रद्धाकी बात तो दूर रहे, अति अल्प सम्बन्ध उत्पन्न होनेपर भी वह निरापराधी व्यक्तिकी भावोत्पत्तिका कारण बन जाता है॥ 129॥

अनुभाष्य—

अस्मिन् दुरूहाद्भुतवीर्ये (दुःसाध्ये अपूर्वे च प्रभावमये) पञ्चसु (साधुसङ्गाद्यङ्गेषु पञ्चसु) श्रद्धा दूरे अस्तु, यत्र (साधनश्रेष्ठाङ्गपञ्चके) स्वल्पः सम्बन्धः अपि सद्धियां (सद्बुद्धिमतां सुचतुराणां वैष्णवाणां) भावजन्मने (भावस्य अभिव्यक्तये समर्थः भवतीति शेषः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 129॥

इनमेंसे प्रत्येकके निरन्तर अनुशीलनसे
श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति :—

'एक' अङ्ग साधे, केह साधे 'बहु' अङ्ग।
'निष्ठा' हैते उपजय प्रेमेर तरङ्ग॥ 130॥

अनुवाद—यदि कोई (नवधा) भक्तिके केवल किसी एक ही अङ्गका पालन करता है अथवा अनेक अङ्गोंका पालन करता है, उसके द्वारा अनर्थ निवृत्ति होकर निष्ठा उदित होती है और निष्ठासे प्रेम उत्पन्न होता है॥ 130॥

अनुभाष्य—भजनानुष्ठानके फलसे जीवकी अनर्थ निवृति होनेसे ही निष्ठा उदित होती है; निष्ठासे प्रेम उत्पन्न होता है॥ 130॥

नवधा भक्तिमेंसे किसीके द्वारा एक अङ्गके और
किसीके द्वारा सभी अङ्गोंके अनुशीलनसे
सिद्धि या भगवद्प्रेमकी प्राप्ति :—

'एक' अङ्गे सिद्धि पाइल बहु भक्तगण।
अम्बरीषादि भक्तेर 'बहु' अङ्ग-साधन॥ 131॥

अनुवाद—नवधा भक्तिके किसी एक अङ्गका पालन करनेसे बहुतसे भक्तोंको सिद्धिकी प्राप्ति हुई है। अम्बरीषादि भक्तोंने बहुतसे अङ्गोंका साधन किया था और उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी॥ 131॥

नवधा भक्तिके एक-एक अङ्गके अनुशीलनमें
रत भक्तोंके नाम :—
पद्यावली (53) और भः रः सिः (1/2/263)में—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्त्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥ 132॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 132॥

अमृतप्रवाह भाष्य—राजा परीक्षितने श्रीविष्णुकी कथा-श्रवणसे, शुकदेवने उसके कीर्तनसे, प्रह्लादने उसके स्मरणसे, लक्ष्मीने उनके चरणकमलोंकी सेवासे, पृथु राजाने उनके पूजनसे, अक्रूरने उनकी वन्दनासे, कपिपति हनुमानने उनके दास्यसे, अर्जुनने उनके सख्यसे और बलिने उन्हें सर्वस्व और आत्मनिवेदनसे श्रेष्ठरूपमें श्रीकृष्णको प्राप्त किया था॥ 132॥

अनुभाष्य—

परीक्षित् (विष्णुरातः) श्रीविष्णोः श्रवणे (श्रीमद्भागवतोक्त-कृष्णनामरूपगुणलीला-श्रवणे), वैयासकिः (ब्रह्मरातः शुकदेवः) कीर्त्तने (श्रीहरिकथात्मक श्रीमद्भागवत-कीर्त्तने), प्रह्लादः [विष्णोः] स्मरणे [शुद्धान्तःकरणत्वात्], लक्ष्मीः तदङ्घ्रिभजने (नारायण-पादपद्मसेवने), पृथुः [विष्णोः] पूजने (अर्चने), अक्रूरः तु [यादवस्य] अभिवन्दने, कपिपतिः (हनुमान्) दास्ये (रामकैङ्कर्ये), अर्जुनः [कृष्णेन सह] सख्ये, बलिः (प्रह्लाद-पौत्रः) सर्वस्वात्मनिवेदने (आत्मसर्मपणे) परं (केवलं निष्ठितः) अभूत्; एषां (हरिजनानाम्) [एकैकाङ्गनिष्ठया एव] कृष्णाप्तिः (कृष्णलाभः अभूत्)।

श्लोक-भावानुवाद—परीक्षित्ने श्रीमद्भागवतमें उक्त श्रीकृष्णनामरूपगुणलीलाके श्रवणसे, शुकदेवने श्रीहरि-कथात्मक श्रीमद्भागवतके कीर्तनसे, प्रह्लादने शुद्धान्तःकरणसे विष्णु-स्मरणसे, लक्ष्मीने श्रीनारायण-चरणकमलोंके सेवनसे, पृथुने विष्णुके अर्चनसे, अक्रूरने यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्णके अभिवन्दनसे, कपिपति हनुमान्ने श्रीरामके कैङ्कर्यसे,

अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ सख्यभावसे, प्रह्लाद-पौत्र बलिने आत्मसमर्पणसे श्रीकृष्णकी परम प्राप्ति की है। इन भक्तोंने एक-एक अङ्गमें निष्ठासे ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति की है॥ 132॥

श्रीअम्बरीषका सभी इन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णानुशीलन :—
श्रीमद्भागवत (9/4/18-20)में—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिञ्चकाराच्युत-सत्कथोदये॥ 133॥

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम्।
घ्राणञ्च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥ 134॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेश-पदाभिवन्दने।
कामञ्च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमःश्लोकजनाश्रया रतिः॥ 135॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 133-135॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अम्बरीष राजाने अपने मनको श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें, अपनी वाणीको वैकुण्ठ-गुणानुवर्णनमें, अपने दोनों हाथोंको हरिमन्दिर मार्जनादिमें और अपने कानोंको श्रीकृष्णकथा श्रवणमें और श्रीकृष्णकी श्रीमूर्ति दर्शनमें अपने दोनों नेत्रोंको, श्रीकृष्ण दासोंके शरीरके स्पर्शमें अपने अङ्गोंको, श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सुगन्धको सूँघनेमें अपनी नासिकाको, श्रीकृष्णको अर्पित तुलसीके आस्वादनमें अपनी जिह्वाको, श्रीकृष्णक्षेत्रमें अनुगमनमें अपने दोनों चरणोंको, हृषीकेशके चरणोंमें प्रणतिके लिये अपने मस्तकको, कामरहित दास्यमें अपने 'काम'को इस प्रकार नियुक्त किया था कि उससे श्रीकृष्णभक्तोंमें आश्रययोग्य रति उदित होती है॥ 133-135॥

अनुभाष्य—

विष्णुरात परीक्षितके द्वारा महाभागवत ब्राह्मण-गुरु अम्बरीषके अप्राकृत श्रीकृष्णसेवामय चरित्रके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनेपर श्रील शुकदेव गोस्वामी अम्बरीषकी सभी इन्द्रियोंके द्वारा हृषीकेशकी सेवा-वृत्तिका वर्णन कर रहे हैं,—

उत्तमःश्लोकजनाश्रया (हरिजनानुगता) रतिः (अभिरुचिः) यथा [भवेत्, तथा] सः अम्बरीषः कृष्णपदारविन्दयोः (कृष्णपादपद्मयोः) मनः, वैकुण्ठगुणानुवर्णने (हरिगुणमहिमकथने) वर्चांसि (वाक्यानि), हरेः मन्दिरमार्जनादिषु (भगवदालय-वैष्णवचरण-नीराजन-धौति-लेपनादिकर्मणि शङ्खचक्राद्युर्ध्वपुण्ड्र वा) करौ (भुजौ), अच्युतसत्कथोदये (अच्युतस्य विष्णोः सत्कथानाम् उदये) श्रुतिं (कर्णद्वयं), मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने (कृष्णस्य लिङ्गानाम् अर्चानाम् आलयानि मन्दिराणि तेषां दर्शने) दृशौ (नेत्रे), तद्भृत्यगात्रस्पर्शे (हरिजनशरीरस्पर्शने) अङ्गसङ्गमम् (त्वचा उत्तमाङ्गस्पर्शनं), श्रीमत्तुलस्याः (श्रीमत्याः तुलस्याः) तत्पादसरोजसौरभे (भगवच्चरणपद्मेन यत् सौरभं तस्मिन् गन्धे) घ्राणं (नासिकां), तदर्पिते (तस्मै कृष्णाय निवेदिते महाप्रसादादौ) रसनां (जिह्वां), हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे (धामपरिक्रमणादौ) पादौ, हृषीकेशपदाभिवन्दने (गोविन्दचरणप्रणमनादौ) शिरः (मस्तकं), दास्ये (भगवदुपयुक्तस्रगन्धवासोऽलङ्कारादीनां महाप्रसादत्वेन स्वीकारे) कामं च न तु कामकाम्यया (भोगेच्छया), चकार (नियुक्तवान्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 133-135॥

ऐकान्तिक शरणागत भक्त श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसीके भी द्वारा बाध्य नहीं :—

काम-त्यजि' कृष्ण भजे शास्त्र-आज्ञा मानि'।
देव-ऋषि-पितृदिगेर कभु नहे ऋणी॥ 136॥

अनुवाद—जो समस्त प्रकारकी कामनाओंको छोड़कर शास्त्रकी आज्ञा मानकर केवल श्रीकृष्णका भजन करता है, वह देवताओं, ऋषियों, पितरों आदिका कभी भी ऋणी नहीं होता॥ 136॥

अनुभाष्य—देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, भूतऋण और मनुष्यऋण,—ये पाँच ऋण पाँच प्रकारके यज्ञोंके द्वारा चुकाये जाते हैं। *"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु*

तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥" होमके द्वारा देवयज्ञ, अध्यापनके द्वारा ब्रह्मयज्ञ अथवा ऋषि-यज्ञ, तर्पणके द्वारा पितृयज्ञ, बलिके द्वारा भूतयज्ञ और अतिथि पूजाके द्वारा नृयज्ञ (मनुष्ययज्ञ) सम्पन्न होता है॥ 136॥

वैधी भक्तिके अधिकारीके लिये पाँच प्रकारके यज्ञादि कर्मकाण्डकी अनावश्यकता :—
श्रीमद्भागवत (11/5/41)में—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न
किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम्॥ 137॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 137॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो सांसारिक कर्त्तव्योंको पूर्णरूपसे त्याग करके सम्पूर्णरूपमें शरण लेने योग्य श्रीमुकुन्दके शरणागत हुए हैं, हे राजन्, वे देवताओं, ऋषियों, अन्य प्राणियों, आत्मीयजनों, मनुष्यों, पितरोंके ऋणी नहीं रह जाते। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्म लेनेके साथ ही इन सबके ऋणोंसे ऋणी बन जाता है और शास्त्रोंके मतानुसार बहुत प्रकारके कर्त्तव्यानुष्ठानके द्वारा इन सब ऋणोंको चुकाता है। किन्तु जो समस्त प्रकारकी कामनाओंका परित्याग करके श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत होता है, उसके ये सब ऋण उपयुक्त कर्मानुष्ठान नहीं करनेपर भी चुक जाते हैं॥ 137॥

अनुभाष्य—श्रीनारदने श्रीवसुदेवसे भागवतधर्मका वर्णन करते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्रके संवादका वर्णन किया था। पहले आठ योगेन्द्रोंके द्वारा क्रमशः राजा निमिके प्रश्नोंका उत्तर देनेके करभाजन ऋषि निमिको भगवान् विष्णुके चार युगावतारोंके वर्ण-भेद और उपासना-भेद तथा भारतके विभिन्न स्थानोंपर भविष्यमें वैष्णवोंके आविर्भावका वर्णन करके अन्तमें श्रीकृष्णके एकान्त शरणागतोंकी महिमाको निम्नलिखित दो श्लोकोंमें बतला रहे हैं,—

हे राजन् यः (जनः) कर्त्तं (भेदं, कृत्यं स्वधर्मं वा) परिहृत्य (परित्यज्य) सर्वात्मना (कायेन मनसा वाचा) शरण्यं (सर्वाश्रयं) मुकुन्दं शरणं गतः, (सः) अयं देवर्षिभूताप्तनृणां (देवानाम् ऋषीणां भूतानाम् आप्तानां पोष्य-कुटुम्बिनां नृणां) पितृणां न किङ्करः (बाध्यः) न ऋणी च [अतः भक्तिमार्गाश्रितस्य फलकामि-कर्मिवत् पञ्चयज्ञाद्यनुष्ठानस्यावश्यकता नास्त्येवेत्यर्थः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [इसलिये भक्तिमार्गके आश्रितको फलकामी कर्मियोंकी भाँति पञ्च-यज्ञोंके अनुष्ठानकी आवश्यकता नहीं है—यह अर्थ है]॥ 137॥

वैष्णव कभी भी पापी नहीं होता अथवा पापी कभी भी वैष्णव नहीं हो सकता :—

विधि-धर्म छाड़ि' भजे कृष्णेर चरण।
निषिद्ध पापाचारे तार कभु नहे मन॥ 138॥

दैववश साधकसे पाप होनेपर भी श्रीकृष्णकी कृपासे उसकी सम्पूर्ण पाप-निवृति :—

अज्ञाने वा हय यदि 'पाप' उपस्थित।
कृष्ण ताँरे शुद्ध करे, ना कराय प्रायश्चित॥ 139॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 138-139॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो वैदिक विधिके अन्तर्गत सभी प्रकारके धर्मोंका पूर्ण त्याग करके निष्किञ्चन होकर भजन करता है, उसकी स्वाभाविक रूपसे किसी निषिद्ध पापाचारमें मति नहीं होती, यदि किसी कारणसे पाप उपस्थित भी होता है अर्थात् पाप कार्य हो जाता है, श्रीकृष्ण उससे कोई प्रायश्चित कराये बिना ही शुद्ध कर देते हैं॥ 138-139॥

अन्तर्यामी-चैत्त्यगुरुरूपमें पाप-शोधन :—
श्रीमद्भागवत (11/5/42)में—

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः॥ 140॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो अन्यभावको पूर्णरूपसे त्याग करके स्वयं श्रीहरिके चरणकमलोंका भजन करते हैं, श्रीकृष्णके प्रिय उन व्यक्तियोंके द्वारा यदि कभी पापका आचरण होता है, तो परमेश्वर श्रीहरि उनके हृदयमें वास करते हुए उनके उस पापको विनष्ट कर देते हैं॥ 140॥

अनुभाष्य—

स्वपादमूलं (निजपादपल्लवं) भजतः (सेवनकारिणः) प्रियस्य (प्रेमवतः) त्यक्तान्यभावस्य (त्यक्तः भगवतः हरेः शुद्धनिष्कामसेवनात् अन्यस्मिन् देहादौ देवतान्तरे वा भावः येन तस्य, अनन्यभक्तिपरायणस्य तस्य) कथञ्चित् (प्रमादिना) विकर्म (निषिद्धं कर्म) उत्पतितं (दुर्दैवात् अनुष्ठितं भवेत्) [तत् अपि] सर्वं परेशः हरिः हृदि सन्निविष्टः (अन्तर्यामिरूपेण स्थितः) धुनोति (विनाशयति)।

श्लोक-भावानुवाद—भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले प्रिय भक्त जो उनकी शुद्ध निष्कामसेवाके अतिरिक्त अन्य देहादि और देवताओंके प्रति भावोंको त्यागकर अनन्यभक्तिपरायण हैं, उनसे कभी प्रमादवश दुर्भाग्यसे कोई निषिद्ध कर्म हो जाता है, तो परमेश्वर श्रीहरि अन्तर्यामी रूपमें स्थित रहकर उनके उस पापका विनाश कर देते हैं॥ 140॥

मनोधर्म ज्ञान और वैराग्य कभी भी आत्मधर्म भक्तिके अङ्ग नहीं, भक्तिके अनुगामी दो पुत्र मात्र :—

ज्ञान-वैराग्यादि—भक्तिर कभु नहे 'अङ्ग'।
अहिंस-यम-नियमादि बुले कृष्णभक्त-सङ्ग॥ 141॥

अनुवाद—ज्ञान-वैराग्यादि कभी भी 'भक्ति'के अङ्ग नहीं हैं। अहिंसा-यम-नियमादि सद्गुण स्वयं ही श्रीकृष्ण-भक्तके साथ चलते हैं॥ 141॥

अनुभाष्य—अनेक लोग भ्रान्तिवशतः सोचते हैं कि ज्ञान और कर्मके लिये वैराग्य ही शुद्धभक्तिका सोपान (सीढ़ी) है, वास्तवमें ऐसा निश्चित रूपमें नहीं है। ज्ञान अथवा कर्मसे उत्पन्न वैराग्य निज-स्वरूपको लक्ष्य नहीं करता और यह अनित्य-अवस्थाका परिणामशील एक धर्म है, इसलिये वह नित्य श्रीकृष्णदास्यका अङ्ग नहीं है। कर्म और ज्ञानका फल परिणामशील अनित्य-अनुभूतिका एक विकार है एवं भोग और मोक्ष ही उसकी परिणति हैं, इसलिये नित्यभक्तिके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान अथवा वैराग्य परित्यक्त होनेपर (छोड़नेपर) ही शुद्धभक्ति हो सकती है। श्रीकृष्णभक्त स्वभावसे ही हिंसाशून्य, संयमशाली और नियमोंमें रत रहते हैं। उन्हें इन सब गुणोंको अर्जित नहीं करना पड़ता॥ 141॥

भक्तिके बिना ज्ञान-वैराग्यसे श्रेयलाभ नहीं होता :—
श्रीमद्भागवत (11/20/31)—

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥ 142॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरे प्रति भक्तियुक्त, मुझमें ऐकान्तिक चित्तवाले प्रिय योगीके लिये ज्ञानचेष्टा और वैराग्यचेष्टा प्रायः ही श्रेयस्कर नहीं होती। तात्पर्य यह है कि भक्ति स्वाभावतः स्वतन्त्र है; ज्ञान-वैराग्य-योगादि प्राथमिक अवस्थामें उसके लिये किञ्चित् उपयोगी होनेपर भी भक्तिके अङ्गोंमें नहीं गिने जाते॥ 142॥

अनुभाष्य—श्रीमद् उद्धवने श्रीकृष्णसे विधि और निषेधात्मक भगवद्-आज्ञारूप वेदवाक्योंसे जीवोंकी भोग-बुद्धिकी उत्पत्ति, पुनः उन्हीं वेदवाक्योंके द्वारा ही भोगबुद्धिके विनाशके विषयमें श्रवण करके उनसे जीवकी बुद्धि-भ्रान्ति अथवा मोहको दूर करनेके उपायकी जिज्ञासा की। भगवान्ने सर्वप्रथम कर्म, ज्ञान और भक्तिमार्गके तारतम्य (छोटे-बड़े होनेका) वर्णन करनेके बाद भक्तिकी सर्वश्रेष्ठताका वर्णन किया,—

तस्मात् (भक्तेः सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तत्वात्) वै (निश्चितं) मद्भक्तियुक्तस्य मदात्मनः (मयि कृष्णे आत्मा मनः यस्य तस्य) योगिनः (भक्तियोगयुक्तस्य जनस्य) इह न ज्ञानं, न च वैराग्यं प्रायः श्रेयः (निःश्रेयसकारणं) भवेत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 142॥

शुद्धभक्त दूसरोंको उद्वेग नहीं देते :—
स्कन्दपुराणके वचन—

एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः।
हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः परतापिनः॥ 143॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 143॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे व्याध, तुममें जो अंहिसादि गुण उत्पन्न हुए हैं, वह अद्भुत नहीं है, क्योंकि, जो हरिभक्तिमें प्रवृत्त होता है, वह दूसरोंको कष्ट देनेवाला नहीं होता॥ 143॥

अनुभाष्य—

हे व्याध, तव एते अहिंसादयः गुणाः अद्भुताः (असाधारणाः) न; हि (यतः) ये (जनाः) हरिभक्तौ (कृष्णभजने) प्रवृत्ताः (अनुरताः), ते (भक्ताः) परतापिनः (अपरद्रोहपराः) न स्युः (भवन्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 143॥

(ख) रागानुगा-भक्तिका वर्णन :—

वैधीभक्ति-साधनेर कहिलुँ विवरण।
रागानुगा-भक्तिर लक्षण शुन, सनातन॥ 144॥

अनुवाद—हे सनातन, यहाँ तक मैंने वैधीभक्तिके साधनके विषयमें बतलाया। अब तुम रागानुगा-भक्तिके लक्षण सुनो॥ 144॥

रागात्मिका और रागानुगा-भक्तिका परिचय :—

रागात्मिका-भक्ति—'मुख्या' व्रजवासि-जने।
तार अनुगत भक्तिर 'रागानुगा'-नामे॥ 145॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजवासी भक्तोंकी जो रागस्वरूपा (रागात्मिका) भक्ति है, वही मुख्य है अर्थात् वैसी भक्ति और कहीं भी नहीं है। व्रजवासियोंके अनुगत होकर जो भक्ति विद्यमान रहती है, उसका नाम ही रागानुगा भक्ति है॥ 145॥

रागात्मिका-भक्तिकी संज्ञा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/272)—

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता॥ 146॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 146॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इष्टवस्तुमें स्वाभाविकी और परमाविष्टतामयी जो सेवनवृत्ति है, उसका नाम 'राग' है; श्रीकृष्णभक्ति तन्मयी (वैसी रागमयी) होनेपर 'रागात्मिका' नामसे कही जाती है॥ 146॥

अनुभाष्य—

इष्टे (अभीष्टवस्तुनि या) स्वारसिकी (स्वीय-सिद्धरसोपयोगिनी स्वाभाविकी गाढ़तृष्णामयीत्यर्थः) परमाविष्टता (तदभिनिवेशमयी सेवनप्रवृत्तिः सा,) रागः भवेत्। तन्मयी (एवम्विध रागमयी) या भक्तिः भवेत्, अत्र (शुद्धभक्तिसाहित्ये) सा 'रागात्मिका' उदिता (कथिता)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 146॥

रागात्मिका-भक्तिके 'स्वरूप' और 'तटस्थ' लक्षण—
'गाढ़तृष्णा' और 'आविष्टता' :—

इष्टे 'गाढ़-तृष्णा'—रागेर स्वरूप-लक्षण।
इष्टे 'आविष्टता'—तटस्थ-लक्षण कथन॥ 147॥
रागमयी भक्तिर हय 'रागात्मिका' नाम।
ताहा शुनि' लुब्ध हय कोन भाग्यवान्॥ 148॥

अनुवाद—इष्ट-वस्तुमें 'गाढ़-तृष्णा'—रागका स्वरूप-लक्षण है और इष्ट-वस्तुमें 'आविष्टता'को तटस्थ लक्षण कहा जाता है। रागमयी भक्तिका नाम ही 'रागात्मिका' भक्ति है। उसके विषयमें सुनकर किसी भाग्यवान्को ही लोभ होता है॥ 147-148॥

अनुभाष्य—अपने आनुकूल्य-विषय अर्थात् अभीष्ट वस्तुमें गाढ़-तृष्णारूपी राग ही मुख्य अर्थात् स्वरूप-लक्षण है। कार्यके द्वारा जिसका ज्ञान होता है, उसे तटस्थ-लक्षण कहते हैं, वही यहाँपर अभीष्ट वस्तुमें आविष्टता है॥ 147-148॥

रागानुगा-भक्तकी प्रकृति अथवा लक्षण :—

लोभे व्रजवासीर भावे करे अनुगति।
शास्त्रयुक्ति नाहि माने—रागानुगार प्रकृति॥ 149॥

अनुवाद—व्रजवासियोंके भावोंके प्रति लुब्ध होकर जो उनके भावोंका अनुगमन करता है, वह रागानुग भक्त शास्त्र-वचनों और युक्तियोंकी अपेक्षा नहीं करता, यही रागानुग भक्तका स्वभाव है॥ 149॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'अनुगति'*—अनुगमन॥ 149॥

अनुभाष्य—व्रजवासियोंके भावोंके प्रति लुब्ध होकर उनके भावों और इच्छाओंका अनुगमन करना ही रागानुग भक्तोंकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति होती है। जातरुचि भक्त स्वाभाविक रूपमें ही शास्त्रकी युक्तियोंमें सुनिपुण होते हैं, उनकी नित्यसिद्ध रुचिके विरुद्धमें अन्य व्यक्तिके द्वारा शास्त्रयुक्तिको प्रदर्शित करनेपर भी वे उसे स्वीकार नहीं करते। जानने योग्य बात यह है कि प्राकृत-सहजिया आदि कुपथ-आश्रित सम्प्रदायके लोग वास्तवमें अजातरुचि होनेपर भी रागानुगाभिमानमें भक्तिग्रन्थोंकी चर्चा और श्रीरूपानुग पथका परित्याग करके अवैध-स्त्रीलम्पट और मूर्खजनोंके योग्य सांसारिक रुचिको ही बढ़ाकर अपना सर्वनाश किया करते हैं। वे वञ्चित और दुर्भागे हैं॥ 149॥

अमृतानुकणा—"प्रीति या आनन्दके वशीभूत होकर ही जीव अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं। पण्डितगण इस प्रीतिको चित्त और विषयका बन्धनसूत्र बतलाते हैं। प्रीतिरूप बन्धनसूत्र विषयके जिस अंशका आश्रय करके रहता है, उसका नाम 'रञ्जकता धर्म' है और चित्तके जिस अंशको आश्रय करके रहता है, उसका नाम 'राग' है। विषयके नाम, रूप, गुण और क्रियागत जो सौन्दर्य या चमत्कारिता है, उसको 'रञ्जकता धर्म' कहते हैं। विचार करनेसे पूर्व ही विषयके सौन्दर्यको देखते ही चित्त जिस प्रवृत्तिके द्वारा उस पदार्थकी ओर दौड़ता है, वही 'राग' है। रागकार्यमें विचारकी आवश्यकता नहीं रहनेपर पण्डितगण उसको 'सिद्धवृत्तिस्वरूप' कहते हैं। राग जिस वस्तुके प्रति धावित होता है, उसको उसका 'इष्टविषय' कहते हैं। नित्य और अनित्य भेदसे रागके इष्टविषय दो प्रकारके हैं। नित्य इष्टविषयके प्रति राग जब धावित होता है, तब उसको 'वैकुण्ठराग' और अनित्य इष्टविषयके प्रति जब धावित होता है, तब उसको 'जड़राग' कहा जाता है। जीवके चित्तमें स्थित राग एक ही तत्त्व होनेके कारण वैकुण्ठराग और जड़रागमें विषयकी भिन्नता है, रागकी भिन्नता नहीं है।" ('रागरहस्य'—साप्ताहिक 'गौड़ीय' 3रा वर्ष 38 संख्या)

जड़राग विद्यमान होनेपर कर्त्तव्य बुद्धिके द्वारा अर्थात् शास्त्रविधि और युक्तिसे प्रेरित होकर जो इष्टसाधन प्रणाली है, उसका नाम 'वैधीभक्ति' है। जबतक 'रति'का उदय नहीं होता है, तबतक वैधी भक्तिमें अधिकार है। रतिके उदय होनेपर वह 'वैकुण्ठराग'में पर्यवसित होता है। वैकुण्ठराग उसके इष्टविषयके वैशिष्ट्यके अनुसार ऐश्वर्यपर और माधुर्यपर भेदसे दो प्रकारका होता है। व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो राग है, वह केवल माधुर्यपर और ऐश्वर्यगन्धविहीन है। श्रीकृष्णके प्रति उनके उस रागमें आत्मसुखकी इच्छाकी गन्धमात्र भी नहीं रहती और तारतम्यके अनुसारसे वह सर्वश्रेष्ठ है। इसलिये व्रजवासियोंके परम, विशुद्ध वैकुण्ठरागको ही मुख्यतः 'रागात्मिका भक्ति' कहा जाता है। उस विषयमें शास्त्रके वर्णनको श्रवणकर उनके रागके प्रति जो लोभ उत्पन्न होता है (अर्थात् किसी विशेष रागमें लोभमात्र उत्पन्न होता है, परन्तु स्वयं वह विशेष राग उत्पन्न नहीं होता), उसके द्वारा जो भक्ति होती है, उसको 'रागानुगा भक्ति' कहते हैं। वहाँपर शास्त्रविधि और युक्तिके विषयमें उपयुक्त ज्ञान रहनेपर भी वह उक्त भक्तिका उत्तेजक नहीं है, परन्तु यथार्थ विषयमें लोभ ही उसका उत्तेजक है।

"ततश्च तादृशलोभवतो भक्तस्य लोभनीय-तद्भाव-प्राप्त्युपाय-जिज्ञासायां सत्यां शास्त्रयुक्त्यपेक्षा स्यात्। यथा दुग्धादिषु लोभे सति कथं मे दुग्धादिकं भवेदिति तदुपायजिज्ञासायां तदभिज्ञाप्तजन-कृतोपदेशवाक्यापेक्षा

स्यात्।" (रागवर्त्म-चन्द्रिका)—बादमें इस प्रकार लोभसे युक्त भक्त जब श्रीकृष्ण परिकरोंके भावप्राप्तिके उपायोंके जिज्ञासु होते हैं, तब उस अवस्थामें शास्त्र और उसके अनुकूल युक्तिकी व्यवस्था देखी जाती है। जैसे, किसी व्यक्तिको यदि दूध पीनेके लिये लोभ हुआ है, तब किस प्रकारसे दूध प्राप्त होगा, इस उपायको जाननेके लिये उसमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है और उस समय उस व्यक्तिके लिये एक विश्वसनीय जानकार व्यक्तिके द्वारा उपदेश-वाक्यकी अपेक्षा देखी जाती है। उसी प्रकार भावके लिये लोभी व्यक्तियोंके लिये भी शास्त्रमें कहे गये उपदेशोंकी अपेक्षा दिखलायी देती है। इसलिये लोभ उत्पत्तिके लिये यद्यपि शास्त्रादिकी कोई अपेक्षा नहीं है, तथापि अभीष्ट भावके पानेके लिये शास्त्रोंके उपदेशकी अवश्य ही अपेक्षा है, ऐसा जानना होगा। इसलिये वैधी साधनभक्तिके जो समस्त अङ्ग हैं, रागानुगा भक्ति उन सभी अङ्गोंको स्वीकार करती है। *"वस्तुतस्तु लोभ-प्रवर्त्तितं विधिमार्गेण सेवनमेव रागमार्ग उच्यते, विधिप्रवर्त्तितं विधिमार्गेण सेवनञ्च विधिमार्ग इति। विधिविनाभूतं सेवनं तु श्रुतिस्मृत्यादिवाक्यादुत्पातप्रापकमेव।"* (रागवर्त्म चन्द्रिका)—वस्तुतः लोभके द्वारा प्रवृत्त होनेपर विधिमार्गके अनुसार सेवा ही 'रागमार्ग'रूपमें कही गयी है और शास्त्रविधि-हेतु अर्थात् कर्त्तव्यबुद्धिसे प्रवृत्त होनेपर विधिमार्गमें जो सेवा है, उसे 'विधिमार्ग' कहा गया है। किन्तु शास्त्रविधिके बिना सेवा भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें उल्लिखित *"श्रुति-स्मृति-पुराणादि-पञ्चरात्र-विधिं बिना। ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते।"*—इस वाक्यके अनुसार वह उत्पातका कारण होती है।

"रागभक्तगण जातरुचि हैं—उनकी स्वभावतः ही शास्त्रयुक्तिमें सुनिपुणता होती है। अजातरुचि व्यक्तिका शास्त्रसिद्धान्तमें सम्पूर्ण अनिपुण और उच्छृङ्खल होकर रागानुगका अभिमान करना कपटतामात्र है। इस कपटमयी प्राकृत-अभिनिवेशमयी रुचिको रागमयी भक्तिमें लोभ नहीं समझना चाहिये, क्योंकि वह वास्तवमें सम्भोग-स्पृहासे दोषयुक्त है। वैधीभक्तिके द्वारा चित्त निर्मल होनेपर यदि अहैतुक हरि-गुरु-वैष्णव-कृपासे किसी सौभाग्यवानमें रागमय लोभ स्वतः प्रकाशित होता है, तभी उसका रागानुगा भक्तिमें अधिकार उत्पन्न होता है। कोई कृत्रिमरूपसे इच्छा करनेपर या गानके बलसे रागानुगा भक्त नहीं हो सकता। मूर्खता, उच्छृ कल्पना, निषिद्धाचार, शास्त्र-उल्लङ्घन या व्यभिचार—रागानुगा भक्ति या लोभमयी श्रद्धा नहीं है। पुरुषाभिमानी व्यक्ति रागभजन नहीं कर सकता। महत् व्यक्तिकी कृपा होनेपर ही यह पुरुषाभिमान दूर होता है और श्रीपुरुषोत्तमकी प्रकृति होनेका अभिमान जाग्रत होता है। अनर्थ सङ्कुचित होनेपर निर्मल आत्मा या शुद्धजीवस्वरूपमें जो स्वतःसिद्ध रागमय सेवा-भाव प्रकाशित होता है, उसमें अपने-अपने शुद्धस्वरूपके रसभेदसे रागात्मिक व्रजवासियोंके नित्यसिद्ध-भावके प्रति रागानुगा निष्ठा प्रकट होती है। तब श्रीगुरुकृपाके बलसे परम सौभाग्यवान् साधकोंका अपना-अपना स्वरूप प्रकाशित होता है। इसमें कल्पनाका, कृत्रिमताका या अन्य किसी प्रकारके उद्देश्यका स्थान नहीं है। जिनका हृदय निर्गुण है, उन्हींकी निर्गुण व्रजजनोंके आनुगत्यमें रुचि उत्पन्न होती है।" ('विधि और राग'—दैनिक नदिया प्रकाश)॥ **148-149**॥

रागानुगा-भक्तिकी संज्ञा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/268)—

विराजन्तीमभिव्यक्तां व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥ 150॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **150**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजवासिजनोंमें अभिव्यक्तरूपमें रागात्मिका-भक्ति विराजमान है। उस भक्तिकी अनुसृता (अनुगता) जो भक्ति है, वही 'रागानुगा' भक्ति है॥ **150**॥

अनुभाष्य—

या व्रजवासिजनादिषु अभिव्यक्तां (सुप्रकाशितां यथा स्यात् तथा) विराजन्तीं (शोभमानां) रागात्मिकां (नित्यसिद्ध-व्रजजन-स्वभावगतां) भक्तिम् अनुसृता (अनुगता), सा 'रागानुगा" उच्यते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 150॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/292) :—

तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिश्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम्॥ 151॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 151॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजवासियोंके भावादिके माधुर्यको श्रवण करनेमें बुद्धि जिस लोभकी अपेक्षा करती है, वही रागानुगा-भक्तिका अधिकार प्रदान करता है। शास्त्र अथवा युक्ति उस लोभकी उत्पत्तिका लक्षण नहीं है॥ 151॥

अनुभाष्य—

[जातरुचिमहाभागवतगुरुमुखात् श्रीमद्भागवत-पद्मपुराणादि-सिद्धशास्त्राद्वा] तत्तद्भावादिमाधुर्ये (व्रजवासिनां शान्तदास्य-सख्यवात्सल्यमधुर-रसाश्रितभावादीनां माधुर्ये) श्रुते (श्रवणेन अनुभूते सति) यत् (यस्य) धीः (बुद्धिः) अत्र (इह) शास्त्रं (विधि-वाक्यं) न, युक्तिं (विचारणं) च न अपेक्षते (परन्तु स्वतः स्वभावतः एव प्रवर्त्तते), तदेव लोभोत्पत्तिलक्षणं (रागोदयलक्षणम्)।

श्लोक-भावानुवाद—जातरुचि महाभागवत गुरुके मुखसे श्रीमद्भागवत-पद्मपुराणादि सिद्धशास्त्रोंमें वर्णित व्रजवासियोंके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर-रसाश्रित भावोंके माधुर्यके विषयमें श्रवण और अनुभव करके जिसकी बुद्धि शास्त्र-वाक्यों और विचारोंकी अपेक्षा नहीं करती, अपितु स्वभावतः ही उसमें प्रवर्तित होती है, वही राग उदय होनेका लक्षण है॥ 151॥

अनर्थ-निवृत्ति होनेपर साधकदेहमें और सिद्धदेहमें रागानुगा-भक्तिका दो प्रकारका अनुशीलन :—

बाह्य, अन्तर,—इहार दुइ त' साधन।
'बाह्ये' साधकदेहे करे श्रवण-कीर्त्तन॥ 152॥

'मने' निज-सिद्धदेह करिया भावन।
रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥ 153॥

अनुवाद—'बाह्य' और 'आन्तरिक'—इन दो प्रकारसे रागानुगा भक्तिका अनुशीलन होता है। निज-सिद्धदेहकी अनुभूति होनेपर भी रागानुगा भक्त साधकदेहसे 'बाहरसे' श्रवण और कीर्तन करता है और 'मनमें' अपनी सिद्धदेहकी भावना करके रात-दिन व्रजमें श्रीकृष्णकी सेवा करता है॥ 152-153॥

अमृतानुकणा—"श्रीकृष्णसेवा—अप्राकृत कामदेवकी सेवा है—शुद्धचेतनकी अस्मिताके द्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंकी नित्या अहैतुकी अप्रतिहता (नैरन्तर्यमयी) सेवा है। श्रीकृष्णसेवा अप्राकृत देहका कार्य है। आरोपके द्वारा या अन्तश्चिन्तित काल्पनिक मनोमय देहके द्वारा श्रीकृष्णसेवाकी बात हमारे गोस्वामियोंने कभी नहीं कही है। इस जगत्‌में स्थूल और लिङ्गदेहके द्वारा अप्राकृत वस्तुकी सेवा नहीं होती। जब हमारी अप्राकृत देहके द्वारा अप्राकृत वस्तुकी सेवा होती है, तभी बाह्य देहसे उसकी स्पन्दन क्रिया देखी जा सकती है। *"अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेत् ग्राह्यमिन्द्रियैः। सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥"*—इसके द्वारा हम अपने दुर्भाग्यकी पराकाष्ठाकी अधिक उपलब्धि कर सकते हैं। सम्बन्धज्ञानयुक्त अप्राकृत देहके द्वारा जब हम श्रीकृष्णसेवा करनेके लिये लोभी होते हैं, तब हमारी बाहरकी देह भी मायाकी पूजा न करके सदा वैकुण्ठ-नाम ग्रहणमें उत्कण्ठित होती है। किन्तु बाह्य जगत्‌की प्रतीति प्रबल रहनेपर हम जो याजन करनेका अभिमान करते हैं, वह निरर्थक है। इसके द्वारा यह नहीं कहा गया है कि भजनकी क्रियाको छोड़ देना होगा। अपितु यह कहा गया है कि अधिकारके अनुयायी होकर क्रमानुसार अग्रसर होना होगा। सद्गुरुके श्रीचरणाश्रयके बिना हमारी भजनक्रिया या अनर्थनिवृत्तिकी सम्भावना नहीं है। अनर्थनिवृत्ति न होनेपर श्रीकृष्णसेवामें नैरन्तर्य और रुचि आदि उपस्थित नहीं हो सकती। जिस दिन हम सेवक-विग्रह श्रीगुरुदेवको श्रीचैतन्यदेवसे अभिन्न जाननेकी उपलब्धि कर सकेंगे, उस दिन हम श्रीराधागोविन्दकी निभृतसेवा अपनी विभिन्न आत्मरतिसे

कर सकेंगे।"—(श्रील प्रभुपादकी वक्तृता, साप्ताहिक 'गौड़ीय' 3रा वर्ष 40 संख्या)

"मने निज सिद्धदेह करिया भावन"—यहाँपर 'भावना'-शब्दसे मानवके सङ्कल्प-विकल्पात्मक धर्मयुक्त प्राकृत मनके द्वारा स्वतन्त्र चिन्ताप्रणालीको नहीं समझना चाहिये। क्योंकि, श्रीरूपगोस्वामीने कहा है,—*'व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कारकारभूः। हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढ़ं स्वदते स रसो मतः॥"* (भ:र:सि:)—भावनाके पथका अतिक्रम करके अतिशय चमत्कारिकताके आधारस्वरूप जो स्थायीभाव शुद्धसत्त्वसे परिमार्जित उज्ज्वल-हृदयमें आस्वादित होता है, उसे ही 'रस' कहा जाता है। इसलिये विशुद्धसत्त्व-वृत्तिके द्वारा ही अधोक्षज श्रीराधाकृष्णका ध्यान सम्भव है। अधोक्षज-वस्तु—प्राणी-जगत्के भोगोन्मुख जड़ेन्द्रियोंसे अतीत है—*'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।'* (गीता 7/25)। वह केवल सेवोन्मुख निर्मल चित्तमें ही प्रकाशित होती है। *"भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले। अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाञ्च तदपाश्रयाम्॥"* (भाः 1/7/4) शुद्धभक्तियोगके प्रभावसे शुद्ध हुए मनके समाहित होनेपर श्रीव्यासदेवने स्वरूपशक्तियुक्त पूर्णपुरुष श्रीकृष्णके दर्शन किये थे। इसलिये ही गौरपार्षद ठाकुर श्रीनरोत्तमदासने कहा है,—*"विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन। कबे हाम हेरिब श्रीवृन्दावन॥"* जड़विषयोंमें आविष्ट अशुद्ध मनमें कभी भी पूर्णपुरुषकी उपलब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि (बद्धजीवकी) चिन्ता जड़को अतिक्रम नहीं कर सकती। उपासनाको चिन्ता कहनेपर, केवल जड़से ही उत्पन्न कल्पनाको उपासना कहना होगा। सामान्य मानवसत्तामें जड़ और चिन्ताके अतिरिक्त और कुछ लक्षित नहीं होता। जड़, जड़चिन्ता और अजड़चिन्तारूप निर्विशेषभाव—इन तीनों सामान्यतः लक्षित तत्त्वोंको पार करके जीवकी सिद्धसत्ताका अनुसन्धान करो। तभी चिन्मय उपासना लक्षित होगी। उस चिन्मय उपासनाका नाम 'रस' है। (श्रीचैतन्य-शिक्षामृत 7/2)

"दिव्यज्ञान या दीक्षाकी सिद्धिमें अप्राकृत देह या चिदानन्दमय सिद्धदेह श्रीगुरुपादपद्मकी कृपासे प्रकाशित होती है। *"दीक्षाकाले भक्त करे आत्मसमर्पण। सेइकाले कृष्ण तारे करे आत्मसम॥ सेइ देह करे तार चिदानन्दमय। आप्रकृत देहे ताँर चरण भजय॥"* तभी साधक उस सिद्धदेहकी भावनाकी योग्यता प्राप्त करता है और बाहरसे निरन्तर श्रवण-कीर्तनादि करता है। **सिद्धदेह पूर्ण सेवोन्मुखताके साथ साथ ही प्रकाशित होती है** और वह श्रीवार्षभानवीके अभिन्न तनु श्रीगुरुपादपद्मकी कृपाके बलसे ही प्राप्त होती है। गुरुवर्गकी वाणीमें देखा जाता है—अन्य सब भाव दूर होनेपर नित्यसिद्ध व्रजगोपीभावका स्वभावरूपमें प्रकट होना ही 'गोपीगर्भसे जन्मलाभ' है। अर्चनमार्गमें जिस प्रकार भूतशुद्धि होनेके बाद ही अर्चनका अधिकार होता है, अप्राकृत भावमार्गमें भी उसी प्रकार अन्य भावोंका परित्याग करके व्रजगोपीभाव प्राप्त करने तक या गोपीगृहमें जन्मलाभ न करने तक श्रीराधागोविन्दकी भावसेवामें अधिकार प्राप्त नहीं होता है। 'गुप्'-धातुका अर्थ होता है, रक्षा करना। श्रीकृष्ण निर्मल चेतनकी नित्यसिद्ध वृत्तिका सरंक्षण करते हैं अर्थात् चेतनकी नित्यसेवाप्रवृत्तिके विषय होकर वे 'गोपीनाथ' और निर्मल चेतनकी सेवावृत्तिका विग्रहसमूह ही 'गोपी' है। उस गोपीके गर्भसे अर्थात् श्रीकृष्णकी एकमात्र संरक्षित-सत्त्वस्वरूप सेवावृत्तिके अन्दरमें जीवकी चेतनवृत्ति अवस्थित न होनेपर कोई श्रीराधामाधवकी सेवाका अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। ('सिद्ध'—दैनिक नदिया प्रकाश)

"इस जड़जगत्में 'नित्य साधक' जड़ देहमें वास करनेपर भी भावनामार्गमें श्रीगुरुकी कृपासे नित्यसिद्धदेहकी भावना करेंगे। उस देहमें अष्टकालीय मानसी सेवा चिन्ता करते-करते स्वरूपसिद्धि होनेसे उनमें अभिमान उत्पन्न होगा।" (श्रीचैतन्य-शिक्षामृत 6/5)। यहाँपर 'नित्य साधक' किसको कहा गया है? "साधक दो प्रकारके

हैं—प्राथमिक और नित्य। 'प्राथमिक' साधकगण नाम संख्याकी वृद्धि करते-करते (क्रमशः) नामकीर्तनमें नैरन्तर्य प्राप्त करते हैं। नैरन्तर्य प्राप्त करके वे 'नित्य साधक' हो जाते हैं। 'प्राथमिक' साधकोंकी अविद्यारूपी पित्तरोगसे तप्त-रसनाकी नाममें 'रुचि' नहीं होती। तुलसीमालापर संख्यापूर्वक निरन्तर नाम करते-करते (अन्तमें) नैरन्तर्य-सिद्धि या 'नित्य'-अवस्थामें नाममें आदर होता है। इस अवस्थामें नामोच्चारण-रहित होनेपर अच्छा नहीं लगता। आदरके सहित निरन्तर नाम करते-करते नाममें परमास्वाद उत्पन्न होता है। उस समय पाप, पापबीज और इस सबका मूल जो अविद्या-अभिनिवेश है, वह स्वयं दूर हो जाता है और नरस्वभावके जो समस्त अनर्थ हैं, वे क्रमशः दूर हो जाते हैं और नामका परमानन्दमय स्वरूप-साक्षात्कार होता है।"—(श्रीचैतन्य-शिक्षामृत 6/4)। इसलिये नाममें रुचिप्राप्त, नामानुशीलनके प्रभावसे अविद्या-अभिनिवेशसे मुक्त और निवृत्त-अनर्थ एवं श्रीनामके स्वरूप-अनुभवकारी 'नित्य साधक' रागानुगा भक्तिमें अधिकारी होते हैं। वे श्रीगुरुकी कृपासे युगपत् (एक साथ) बाह्य साधकदेहसे अनुक्षण श्रवण-कीर्तन और भीतरमें अपनी सिद्धदेहसे श्रीराधाकृष्णकी सेवा करनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु श्रीनाममें अजातरुचि (जिनकी रुचि जाग्रत नहीं हुई), प्राकृत-अभिनिवेशयुक्त और अनर्थयुक्त 'प्राथमिक' साधकोंके लिये उस प्रकारकी चेष्टा नितान्त ही अनिधिकार-चर्चा है और कष्टकल्पना मात्र है॥ 152-153॥

शास्त्र-प्रमाण :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/295)—

सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥ 154॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 154॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रागात्मिका-भक्तिमें जिनका लोभ होता है, वे व्रजवासियोंके कार्योंके अनुसार साधकरूपमें बाहरसे और सिद्धरूपमें भीतरमें सेवा करते हैं॥ 154॥

अनुभाष्य—

अत्र (रागानुगा-भक्तिसाधने) तद्भावलिप्सुना (तत् तस्य व्रजस्थितस्य निजाभीष्टस्य कृष्णप्रेष्ठस्य गुरोः यः भावः तस्य लिप्सुना तदनुगमनेन निजायत्तीकर्त्तुमिच्छुना) साधकरूपेण (साधकशरीरे कीर्त्तनाख्यभक्त्याश्रितेन) सिद्धरूपेण (स्वरूपसिद्धौ नित्यसेवनोपयोगि-मानसदेहेन) च व्रजलोकानुसारतः (तदनुरागि-व्रजजनानुगत्येन) सेवा हि कार्या (करणीया)।

श्लोक-भावानुवाद—रागानुगा-भक्तिसाधनमें व्रजमें स्थित निजाभीष्ट श्रीकृष्णके अति प्रिय गुरुका जो भाव है, उसके लोभसे उनके आनुगत्यमें स्वयं वैसी सेवा करनेके इच्छुक साधक शरीरसे कीर्तनाख्य भक्तिका आश्रय और सिद्ध-स्वरूपसे नित्यसेवोपयोगी मानस-देहसे व्रजवासियोंके अनुसार सेवा कार्य करेंगे।॥ 154॥

रागानुग-भक्तकी सब समय गुरुके आनुगत्यमें
अपनी अभीष्ट सिद्धसेवा :—

निजाभीष्ट कृष्णप्रेष्ठ पाछे त' लागिया।
निरन्तर सेवा करे अन्तर्मना हञा॥ 155॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 155॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजवासी भक्तगण ही श्रीकृष्णके प्रियतम हैं; उनमेंसे जो जिस व्रजभक्तके माधुर्यके कारण लोभपूर्वक उसके अनुगमन (आनुगत्य)में अभीष्ट सेवाकी कामना करते हैं, वे उनके पीछे-पीछे रहकर अन्तर्मना होकर निरन्तर श्रीकृष्णसेवा करते हैं॥ 155॥

अनर्थ-निवृत्ति प्राप्त रागानुग-भक्तका
निर्जनमें अभीष्टका स्मरणादि :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/294)—

कृष्णं स्मरन् जनश्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथा-रतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥ 156॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 156॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्ण और उनके निज-निर्वाचित प्रियतमजनोंको सदा स्मरण करते हुए उन-उन कथाओंमें रत होकर सर्वदा व्रजमें वास करेंगे। शरीरसे व्रजवास

करनेमें असमर्थ होनेपर, मन-ही-मनमें ही व्रजवास करेंगे॥ 156॥

अनुभाष्य—

कृष्णं च अस्य (कृष्णस्य) प्रेष्ठं (प्रियतमं) निजसमीहितं (निजाभीष्टं जनं) च स्मरन् असौ (साधकः) तत्तत्कथारतः (तत्तद्रसोचित-कथानुरक्तः सन्) सदा (नित्यकालं) व्रजे (नन्दनन्दन-सेवामय-वृन्दावने) वासं कुर्यात् (स्थूलशरीरे मनसापि वा नित्यनिवासं स्थापयेत्—कृष्णभजनविहीनस्य धामवासः प्राकृत-विषय-भोग-विमूढ़स्य कदापि न भवति, परन्तु नित्यभजनशीलस्य लौकिकदृष्ट्या अन्यत्रावस्थानेऽपि अहरहः नित्यधामवास एव स्यादिति भावार्थः)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें। (श्रीकृष्ण-भजनविहीन प्राकृत विषयभोगी विमूढ़ व्यक्तिका धाममें रहनेपर भी धामवास नहीं होता, परन्तु नित्य भजनशील भक्तका लौकिक दृष्टिसे धामसे बाहर अन्यत्र रहनेपर भी दिन-रात नित्यधामवास होता है।)॥ 156॥

रागानुग-भक्तोंकी चार रसोंमें श्रीकृष्णसेवा,
शान्तरसमें विद्यमानता नहीं :—

दास-सखा-पित्रादि-प्रेयसीर गण।
रागमार्गे निज-निज-भावेर गणन॥ 157॥

अनुवाद—श्रीनन्दनन्दनके भक्तोंमें कोई दास भावसे, तो कोई सखा भावसे, तो कोई वात्सल्य (पिता-मातादि) भावसे और कोई प्रेयसीके भावसे उन्हें प्रेम करते हैं। रागमार्गमें वे अपने-अपने भावके अनुरूप प्रवृत्त होते हैं॥ 157॥

रागानुग-भक्त श्रीकृष्णके साथ चार रसोंमें सम्बन्धयुक्त और अनन्यभक्त हैं तथा काल और प्रकृतिसे अतीत हैं :—
श्रीमद्भागवत (3/25/38)में—

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे
नङ्क्ष्यन्ति नो मेहनिमिषो लेढ़ि हेतिः।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्॥ 158॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 158॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं ही जिनका प्रिय, आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, सुहृत्, देव और इष्ट हूँ, वे सदैव मेरे परायण रहते हैं। हे शान्तरूपे माता, मेरा कालचक्र उनका कभी भी नाश नहीं करता॥ 158॥

अनुभाष्य—भगवान् मैत्रेय-ऋषि विदुरको कपिल-देवहूतिके संवादका वर्णन कर रहे हैं। देवहूतिके द्वारा भगवान् कपिलदेवसे भगवद्भक्तियोग और आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेपर, उन्होंने सांख्ययोग-नामसे प्रसिद्ध शुद्धभक्तियोगका वर्णन करते हुए सर्वप्रथम भक्तिको सर्वश्रेष्ठ अभिधेय बतलाकर शुद्धभक्त हरिजनोंका माहात्म्य बतला रहे हैं,—

[हे मातः,] शान्तरूपे (मन्निष्ठामयि, शान्तं विकाररहितं शुद्धसत्त्वं रूपं यस्मिन् तद्रूपे नित्यधाम्नि वैकुण्ठे वा) येषां (भक्तानाम्) अहं प्रियः (प्रेमपात्रं), सुतः (स्नेहविषयः), आत्मा (प्रेष्ठः), सखा (विश्वासास्पदं), गुरुः (उपदेष्टा), सुहृदः (हितकारी), इष्टं देवं (पूज्यः) [ते एव मद्भक्ताः, अतः मया रक्षमाणाः] कर्हिचित् (कदाचिदपि) न नङ्क्ष्यति (निर्विशेषाः, भोग्यहीना न भवन्ति यतः) अनिमिषः (कालः) मे (मदीयः) हेतिः (कालचक्रं) न लेढ़ि (तान् न ग्रसते)।

श्लोक-भावानुवाद—[हे माते!] मुझमें निष्ठायुक्त शुद्धसत्त्वमय नित्यधाम वैकुण्ठमें जो भक्त हैं, मैं उनका प्रेमका पात्र, पुत्र (स्नेहका विषय), आत्मा (प्रियतम), सखा (विश्वासास्पद), गुरु (उपदेष्टा), सुहृत् (हितकारी) और इष्टदेव (पूज्य) हूँ। [वे मेरे भक्त मेरे द्वारा रक्षित हैं, इसलिये] वे कदापि भोग्यहीन नहीं होते [प्राकृत स्वर्गादि नाशवान् हैं, परन्तु वैकुण्ठमें भोग्यवस्तुके नष्ट होनेकी कोई आशङ्का नहीं है]। मेरा कालचक्र भी उनको ग्रास करनेमें असमर्थ है॥ 158॥

रागानुग भक्तोंको प्रणाम :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/308)—

पतिपुत्रसुहृद्भ्रातृपितृवन्मित्रवद्धरिम्।
ये ध्यायन्ति सदोद्युक्तास्तेभ्योऽपीह नमो नमः॥ 159॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 159॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पति, पुत्र, सुहृत्, भाई, पिता, मित्रादिके रूपमें श्रीहरिका जो सदा उत्साहपूर्वक ध्यान करते हैं, उन्हें बारम्बार नमस्कार है॥ 159॥

अनुभाष्य—

इह (अस्मिन् जगति) ये (भक्ताः जनाः) सदा उद्युक्ताः (उत्साहयुक्ताः सन्तः) हरिं (भगवन्तं) पतिपुत्रसुहृद्भ्रातृपितृवत् मित्रवत् च ध्यायन्ति, तेभ्यः अपि नमः नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 159॥

प्रतिक्षण गुरुके आनुगत्यमें निर्दिष्ट अभीष्टसेवासे ही रागानुग-साधककी सिद्धि अथवा भावभक्तिकी प्राप्ति :—

एइमत करे येबा रागानुगा-भक्ति।
कृष्णेर चरणे ताँर उपजय 'प्रीति'॥ 160॥

अनुवाद—जो इस प्रकार रागानुगा-भक्तिका पालन करता है, उसकी श्रीकृष्णके चरणोंमें 'प्रीति' उत्पन्न होती है॥ 160॥

अनुभाष्य—जो 'इस प्रकार' अर्थात् बाहरसे साधकदेहमें सुनी हुई हरिकथाकी कीर्तनके द्वारा सेवा और मनमें श्रीकृष्ण-सेवोपयोगी अपने रसके अनुकूल सिद्धदेहसे सदा व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी सेवा करते हैं, वे शास्त्र अथवा गुरुके शासनके बलसे वैधीभक्तिके बदले अपनी स्वाभाविक जातरुचिके प्रभावसे रागानुग-पथपर चलते-चलते श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रगाढ़ प्रीति प्राप्त करते हैं। रागानुग-मार्गमें ही रति अथवा भावके प्रभावसे श्रीकृष्ण वशीभूत होते हैं और तभी श्रीकृष्णप्रेमसेवाकी प्राप्ति होती है॥ 159-160॥

बाइसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

(2) 'साध्य' भावभक्ति अथवा रतिका वर्णन :—

श्रीकृष्णप्रेमकी अस्फुट अवस्था ही श्रीकृष्णको आकर्षित करनेवाली 'भावभक्ति' अथवा 'रति'—

प्रीत्यङ्कुरे 'रति', 'भाव'—हय दुइ नाम।
याहा हैते वश हन श्रीभगवान्॥ 161॥

अनुवाद—प्रीतिके अङ्कुरके रति और भाव—ये दो नाम हैं। इनके द्वारा श्रीभगवान् वशीभूत हो जाते हैं॥ 161॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'प्रीत्यङ्कुरे 'रति', 'भाव'—हय दुइ नाम'*—प्रेमके अथवा प्रीतिके अङ्कुरके दो नाम हैं अर्थात् 'रति' और 'भाव'॥ 160-161॥

बाइसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

भाव अथवा रतिके उदित होने तक ही 'साधन'रूप 'अभिधेय'; उसीसे 'प्रयोजन'की प्राप्ति :—

याहा हैते पाइ कृष्णेर प्रेमेर सेवन।
एइत' कहिलुँ 'अभिधेय' विवरण॥ 162॥

अनुवाद—जिससे श्रीकृष्णकी प्रेम-सेवाकी प्राप्ति होती है, मैंने तुम्हें उसी 'अभिधेय'के विषयमें बतलाया है॥ 162॥

अभिधेय साधनभक्ति संक्षेपमें वर्णित :—

अभिधेय, साधन-भक्ति एबे कहिलुँ सनातन।
संक्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन॥"163॥

अनुवाद—हे सनातन, मैंने अभिधेय साधन-भक्तिका संक्षेपमें वर्णन किया है, क्योंकि विस्तारसे इसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 163॥

साधनभक्तिके श्रवणसे श्रीकृष्णप्रेमका उदय :—

अभिधेय साधनभक्ति शुने येइ जन।
अचिरात् पाय सेइ कृष्णप्रेमधन॥ 164॥

अनुवाद—जो भी व्यक्ति इस अभिधेय साधनभक्तिके विषयमें सुनता है, उसे अतिशीघ्र श्रीकृष्णप्रेमधनकी प्राप्ति होती है॥ 164॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 165॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे अभिधेय-भक्तितत्त्वविचारो नाम द्वाविंशः परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 165॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें अभिधेयभक्तितत्त्वविचार-नामक बाइसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

तेइसवाँ अध्याय

कथासार—महाप्रभुने इसके बाद श्रीसनातनसे भावके लक्षण, प्रेमके और प्रेमके उत्पन्न होनेके लक्षण और उदित-भाव (जिनमें भाव उदित हो गया है, ऐसे) व्यक्तियोंके व्यवहार-लक्षण वर्णन करके प्रेम जिस क्रमसे 'महाभाव' होता है, उसका तथा पाँच प्रकारकी रतिकी व्याख्यासे उस-उस रसकी व्याख्या, रसकी स्थिति और शृङ्गार रसका सर्वोत्कर्ष संस्थापन एवं उसके स्वकीय-पारकीय-भेदसे विविध होनेका वर्णन किया। महाप्रभुने श्रीकृष्णके चौंसठ गुणोंकी व्याख्या, राधिकाके पच्चीस गुणोंकी व्याख्या और श्रीकृष्णभक्तिरसके अधिकारीका स्वरूप और अष्टाङ्ग-लक्षणोंका वर्णन किया। महाप्रभुने श्रीसनातनको भागवतके गूढ़ सिद्धान्त, हरिवंशमें लिखित गोलोककी नित्यलीला, केशावतारकी विरुद्ध-व्याख्या और शुद्ध व्याख्या—इन समस्त शिक्षाओंको प्रदान करके श्रीसनातनके मस्तकपर हस्त अर्पण करके उनमें शक्तिका सञ्चार किया।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

अनर्पितचर-नामप्रेमप्रदाता महावदान्य श्रीगौरको प्रणाम :—

चिराददत्तं निज-गुप्तवित्तं
स्वप्रेम-नामामृतमत्युदारः।
आपामरं यो विततार गौरः
कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अपने प्रेमनामामृतरूपी गुप्त धन,—जिसे इससे पूर्व और किसीको भी नहीं दिया गया था, उसे ही—अति उदार स्वभाववाले जिन श्रीगौरकृष्णने आ-पामर (पवित्रसे लेकर पतित तक, सभी) व्यक्तियोंको वितरण किया था, उनके प्रति मैं शरणागत होता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

अत्युदारः (महावदान्यः) यः गौरः कृष्णः चिरात् अदत्तम् (अनर्पितचरं) निजगुप्तवित्तं (स्वीय-गूढ़रहस्यात्मकधनं) स्वप्रेमनामामृतम् आपामरं (साध्वसाध्वधिकार-निर्विशेषेण) जनेभ्यः विततार (अर्पयामास), तं (गौरकृष्णम्) अहं प्रपद्ये (शरणं यामि)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्रकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौर-भक्तोंकी जय हो॥2॥

श्रीसनातन-शिक्षा—(3) प्रयोजन (श्रीकृष्णप्रेम)-वर्णन :—
अभिधेय 'साधनभक्ति'के फलसे प्रयोजनरूप 'साध्य'-प्रेमभक्ति :—

"एबे शुन भक्तिफल 'प्रेम' प्रयोजन।
याहार श्रवणे हय भक्तिरस-ज्ञान॥3॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे सनातन, अब तुम भक्तिके फल 'प्रेम'रूपी प्रयोजनके विषयमें सुनो। जिसे सुननेसे भक्तिरसका ज्ञान होता है॥3॥

भाव अथवा रति—प्रेमकी तरल अथवा अङ्कुरावस्था; गाढ़ अथवा पक्व अवस्थामें वही 'प्रेम' :—

कृष्णे रति गाढ़ हैले 'प्रेम'-अभिधान।
कृष्णभक्ति-रसेर सेइ 'स्थायिभाव'-नाम॥4॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके प्रति रतिके गाढ़ होनेपर वह

'प्रेम' कहलाती है। उस प्रेमको श्रीकृष्णभक्ति रसका 'स्थायीभाव' कहते हैं॥4॥

भावकी संज्ञा; स्वरूप और तटस्थ-लक्षण :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/3/1)—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेम-सूर्यांशु-साम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥5॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥5॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रेमसूर्यका (जो) किरण-स्थानीय विशुद्धसत्त्वस्वरूप है, (और) रुचिके द्वारा चित्तको जो तत्त्व द्रवीभूत करता है, उसको ही 'भाव' कहते हैं॥5॥

अनुभाष्य—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा (भगवतः कृष्णस्य सर्वप्रकाशक-संविदाख्य-स्वरूपशक्तिवृत्तिरूपः शुद्धसत्त्वविशेषः, स एव आत्मा तन्नित्यप्रियजनाधिष्ठानतया नित्यसिद्धं स्वरूपं यस्य सः) प्रेमसूर्यांशु-साम्यभाक् (प्रेमरूप-सूर्यकिरणसादृश्ययुक्तः—प्रेम्णः अत्र प्रथमच्छविरूपः) रुचिभिः (प्राप्त्यभिलाष-सकर्त्तृकानुकूल्याभिलाष-सौहार्द्याभिलाषैः) चित्तमासृण्यकृत् (चित्तार्द्रता-सम्पादकः) असौ भावः (प्रेमाङ्कुररूपः) उच्यते।

श्लोक-भावानुवाद—भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वप्रकाशक सम्वित् नामक जो स्वरूपकी वृत्ति है, वह शुद्धसत्त्वविशेष ही प्रेमाभक्तिका आश्रय या आत्मा है। यह प्रेम श्रीकृष्णके नित्य प्रियजनोंमें स्थित रहता है, अतः प्रेमका स्वरूप नित्यसिद्ध है। ऐसे प्रेमरूप सूर्यकी किरणोंके समान भाव माना गया है। निष्कर्षतः भाव प्रेमकी प्रथम छविरूप है। वह प्रियकी प्राप्तिकी अभिलाषा, उस प्राप्ति हो जानेपर प्राप्तिसे उत्पन्न (सकर्त्तृक) आनुकूल्यकी अभिलाषा और सौहार्दकी अभिलाषा, इन तीन रुचियोंसे सामाजिकके चित्तमें आर्द्रता सम्पादित कर देता है, इसी प्रेमाङ्कुरको भाव कहते हैं॥5॥

प्रेमके लक्षणका वर्णन :—

एइ दुइ,—भावेर 'स्वरूप', 'तटस्थ' लक्षण।
प्रेमेर लक्षण एबे शुन, सनातन॥6॥

अनुवाद—भावके ये दो 'स्वरूप' और 'तटस्थ' लक्षण हैं। हे सनातन, अब तुम प्रेमके लक्षण सुनो॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शुद्धसत्त्वस्वरूप ही भावका 'स्वरूप'-लक्षण है; रुचिके द्वारा चित्तको जो द्रवीभूत करता है,—यह भावका 'तटस्थ'-लक्षण है॥6॥

अनुभाष्य— *'एइ दुइ'*—श्लोकमें लिखित (1) शुद्धसत्त्वविशेषात्मादि—भावका स्वरूप-लक्षण है, (2) रुचिके द्वारा चित्तका द्रवीभूत होना—भावका तटस्थ-लक्षण है।

'दुइ भावेर'—[भः रः सिः 1/3/6]—

'साधनाभिनिवेशेन कृष्ण-तद्भक्तयोस्तथा।
प्रसादेनातिधन्यानां भावो द्वेधाभिजायते॥"

[अर्थात् "महासौभाग्यशाली व्यक्तियोंमें दो प्रकारसे भाव उत्पन्न होता है—] (1) साधनमें अभिनिवेशसे उत्पन्न भाव, (2) श्रीकृष्ण और उनके भक्तोंकी कृपासे उत्पन्न भाव।"]

और कोई-कोई उक्त दो भावोंके 'केवला' और 'मिश्रा' अर्थ करते हैं; किन्तु यह अर्थ यहाँ सङ्गत नहीं है, पहले कहा गया अर्थ ही सङ्गत है॥6॥

प्रेमकी संज्ञा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/4/1)—

सम्यक्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥7॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥7॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जब वह भाव चित्तको सम्पूर्ण रूपसे द्रवीभूत करके अत्यन्त ममताके द्वारा जाना जाता है और स्वयं गाढ़स्वरूप होता है, तब उसको पण्डितगण 'प्रेम' कहकर बुलाते हैं॥7॥

अनुभाष्य—

सम्यक् मसृणितस्वान्तः (मसृणितः आर्द्रीकृतं स्वान्तं यस्मात्) सः ममत्वातिशयाङ्कितः (ममत्वातिशययुक्तः—इति तटस्थ-

लक्षणद्वय-विशिष्टः यः) सान्द्रात्मा (इति स्वरूपलक्षणयुक्त) भावः स एव बुधैः 'प्रेमा' निगद्यते (कथ्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—चित्तको सम्पूर्ण रूपसे द्रवीभूत करके अत्यन्त ममतायुक्त—इन दो तटस्थ लक्षणोंसे युक्त और स्वयं गाढ़स्वरूप—इस स्वरूप लक्षणयुक्त होता है, तब उस भावको पण्डितगण 'प्रेम' कहते हैं॥7॥

पञ्चरात्रके मतानुसार प्रेमकी संज्ञा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/4/2)में उद्धृत नारदपञ्चरात्र-वचन :—

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः॥8॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥8॥

अमृतप्रवाह भाष्य—विष्णुमें अनन्य-ममता अर्थात् विष्णु ही एकमात्र ममताके पात्र हैं, और कोई भी नहीं है, ऐसी प्रेमसङ्गत ममताको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदि वैष्णवगण (प्रेम) 'भक्ति' कहते हैं॥8॥

अनुभाष्य—

विष्णौ (भगवति) [या] प्रेमसङ्गता (प्रेमयुक्ता) अनन्य-ममता (ऐकान्तिकी सम्बन्धमयी) भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः (भक्तैः) [सा] भक्तिः (भावः) उच्यते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥8॥

प्रेमभक्ति-प्राप्तिका क्रम; सर्वप्रथम 'श्रद्धा'से 'आसक्ति' तक अभिधेय 'साधनभक्ति' और बादमें रति अथवा 'भावभक्ति'का उदय; रतिके घनीभूत होनेपर प्रयोजन 'प्रेमभक्ति' :—

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग' करय॥9॥
साधुसङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्त्तन'।
साधनभक्त्ये हय 'सर्वानर्थनिवर्त्तन'॥10॥
अनर्थनिवृत्ति हैले भक्ति 'निष्ठा' हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय॥11॥
रुचि हैते भक्ति हय 'आसक्ति' प्रचुर।
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यङ्कुर॥12॥
सेइ 'रति' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम।
सेइ प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द-धाम॥13॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥9-13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसी भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके बलसे किसी जीवकी यदि अनन्य-भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वह जीव शुद्धभक्तरूपी साधुका सङ्ग करता है। उस साधुसङ्गसे ही श्रवण-कीर्तन होता है। श्रवण और कीर्तन जितने परिमाणमें होता है, साधनभक्तिमें उसी परिमाणमें सब अनर्थ दूर होते रहते हैं। श्रद्धाके उदयकालसे ही श्रवण और कीर्तनके द्वारा स्थूल-स्थूल अनर्थोंके दूर होनेपर श्रद्धा ही अनन्यभक्तिके प्रति 'निष्ठा'रूपमें उदित होती है; निष्ठा ही क्रमशः 'रुचि' हो जाती है। उस रुचिसे बादमें 'आसक्ति' उत्पन्न होती है। आसक्तिके निर्मल होनेपर श्रीकृष्ण प्रीतिका अङ्कुर-स्वरूप 'भाव' अथवा 'रति' होती है। वही रति गाढ़ होनेपर ही 'प्रेम'-नाम प्राप्त करती है। वही प्रेम ही सर्वानन्दधामस्वरूप 'प्रयोजन'-तत्त्व है॥9-13॥

अनुभाष्य—*'साधनभक्ति'*—सर्वप्रथम साधककी श्रद्धा, उसके फलसे साधुसङ्ग अथवा गुरुपादाश्रय, उसके साथ-साथ भजनक्रिया, उसके फलसे अनर्थ-निवृत्ति, उसके फलसे निष्ठा अथवा स्थिर-चित्तसे निरन्तर भजन, उसके फलस्वरूप रुचि, उसके फलस्वरूप आसक्ति अथवा स्वारसिकी रुचि। साधन-भक्तिसे आसक्तिके फलस्वरूप जिस 'साध्य' रतिका उदय होता है, वही 'भाव' कहलाती है।

'भावभक्ति'—प्रेमसूर्यकिरणसदृश और रुचिके द्वारा चित्तको द्रवीभूत कर देनेवाली प्रेमकी प्रथम अङ्कुरावस्थाको ही 'भावभक्ति' कहते हैं। प्रेमसे पूर्व 'भाव' कहलाती है और बादमें उत्कृष्ट पक्व (पक जानेपर) अथवा परिणत होनेपर 'प्रेमभक्ति' कहलाती है। इसलिये 'प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्'-शब्दमें 'भाव' और 'प्रेम' भक्तिका तारतम्य लिखा है। जिसमें रति उत्पन्न हो गयी है, ऐसा जातरति भक्त उत्कृष्ट होकर क्रमशः प्रेमभक्ति प्राप्त

करता है। रतिके गाढ़ होनेपर उसे 'प्रेम' कहते हैं। यह प्रेम ही भक्तिका फल, प्रयोजन और परमानन्दमय है॥ 9-13॥

शास्त्र प्रमाण :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/4/15-16)—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥ 14॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥ 15॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 14-15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सर्वप्रथम श्रद्धा, उससे साधुसङ्ग, उससे भजनक्रिया, उससे अनर्थनिवृत्ति, उसके बाद निष्ठा, उससे रुचि और आसक्ति,—यहाँ तक साधन भक्ति होती है; उससे क्रमशः 'भाव' और अन्तमें 'प्रेम' उदित होता है। साधकोंके प्रेमोदयका यही क्रम जानना चाहिये॥ 14-15॥

अनुभाष्य—

आदौ श्रद्धा (असति परिणामशीले वस्तुनि शिथिलानुरागः सन् अप्राकृते सच्चिदानन्दविग्रहे विष्णौ दृढ़विश्वासः), ततः (लब्धविश्वासात्) साधुसङ्गः (अप्राकृतबुद्धया गुरुवैष्णवचरणाश्रयः ततः कृष्णदीक्षादि-भजनरीतिशिक्षणं च), अथ (अतः श्रौतवर्त्मना तेषामानुगत्येन गुरुचरणान्तिके) भजनक्रिया (कृष्ण-भजनानुष्ठानं), ततः (भजनानुष्ठानात्) अनर्थ-निवृत्तिः (परमार्थे प्रवृत्तौ तु तदितरविषयभोगनिवृत्तिः) स्यात् (भवति); ततः (विषयसङ्गत्यागादनन्तरं) निष्ठा ('शमो मन्निष्ठता बुद्धेः' इति भगवद्वचनात् अविक्षेपेण सातत्यं), ततः रुचिः (रागः), अथ (तदनन्तरं) आसक्तिः (स्वारसिकी रुचिः), ततः भावः (आदौ प्रेमाङ्कुरः), ततः प्रेमा (चरम-प्रयोजनम्) अभ्युदञ्चति (उदेति)—साधकानां प्रेम्णः प्रादुर्भावे (उदये) अयं क्रमः भवेत्।

श्लोक-भावानुवाद—सर्वप्रथम श्रद्धा (अर्थात् असत् परिणामशील वस्तुओंमें अनुरागकी शिथिलता और अप्राकृत सच्चिदानन्दविग्रह विष्णुमें दृढ़ विश्वास), ऐसे विश्वासके साथ साधुसङ्ग (अर्थात् गुरुवैष्णवमें अप्राकृत बुद्धिसे उनका चरणाश्रय और फिर श्रीकृष्णदीक्षादि एवं भजनरीतिकी शिक्षा), तब श्रौतपन्थके आनुगत्यमें गुरुचरणोंमें रहकर भजनक्रिया (अर्थात् श्रीकृष्ण-भजनानुष्ठान), तब उस भजनानुष्ठानसे अनर्थ-निवृत्ति (अर्थात् परमार्थमें प्रवृत्ति और विषयभोगसे निवृत्ति) होती है। तब विषयसङ्गत्यागसे निष्ठा (अर्थात् 'शमो मन्निष्ठता बुद्धेः' इस भगवद्-वचनके अनुसार स्थिर-चित्तसे निरन्तर भजन), तब रुचि और उसके बाद आसक्ति (स्वारसिकी रुचि), तब भाव (प्रेमाङ्कुर), तब प्रेम (चरम-प्रयोजन)का उदय होता है। साधकोंमें प्रेमके उदय होनेका यह क्रम होता है॥ 14-15॥

श्रीभागवत-प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (3/25/25)में—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥ 16॥

अनुवाद—साधुसङ्गमें हृदय और कानोंको रसपूर्ण लगनेवाली मेरी बलवती कथाओंकी आलोचना होती है। उन-उन कथाओंको श्रवण करते-करते अतिशीघ्र अपवर्ग पथस्वरूप मुझमें पहले श्रद्धा, तत्पश्चात् रति और अन्तमें प्रेमभक्ति उदित होती है॥ 16॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/60 श्लोक देखें॥ 16॥

पूर्व अध्यायमें (1) साधन भक्तिके लक्षण वर्णित हुए; अब (2) भावभक्तिके लक्षणोंका वर्णन :—

याँहार हृदये एइ भावाङ्कुर हय।
ताँहाते एतेक चिह्न सर्वशास्त्रे कय॥ 17॥

अनुवाद—सभी शास्त्र ऐसा कहते हैं कि जिनके हृदयमें यह भाव अङ्कुरित होता है, उनमें निम्नलिखित लक्षण दिखलायी देते हैं॥ 17॥

अनुभाष्य—भावके अङ्कुरित होनेपर अर्थात् रतिके उदित होनेपर नौ लक्षण साधकोंमें देखे जाते हैं॥ 17॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/3/25-26)—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः॥ 18॥

आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने॥ 19॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 18-19॥

अमृतप्रवाह भाष्य—क्षान्ति अर्थात् क्षमा, अव्यर्थ-कालत्व अर्थात् काल वृथा न जाय—ऐसा प्रयत्न, विरक्ति अर्थात् श्रीकृष्ण सम्बन्धविहीन अन्य वस्तुओंके प्रति वैराग्य, मानशून्यता अर्थात् सम्मान पाने योग्य होनेपर भी सम्मानकी इच्छा नहीं करना, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, श्रीकृष्णनाम-गानमें सदा रुचि, श्रीकृष्णके गुणोंके वर्णनमें आसक्ति, श्रीकृष्णके वासस्थानमें प्रीति,—इस प्रकार ये सभी अनुभाव भावाङ्कुरके उत्पन्न होनेपर मनुष्यके स्वभावमें लक्षित होते हैं॥ 18-19॥

अनुभाष्य—

जातभावाङ्कुरे जने (जातरुचौ भक्ते) क्षान्तिः (क्षोभहेतौ प्राप्ते सति अक्षुभितात्मता), अव्यर्थकालत्वं (कृष्ण-सम्बन्धवस्तुनि एव केवलकालक्षेपः) विरक्तिः (कृष्णेतरवस्तुनि वीतस्पृहा), मानशून्यता (उत्कृष्टत्वेऽपि अमानित्वम्), आशाबन्धः (भगवतः दृढ़प्राप्ति-सम्भावना), समुत्कण्ठा (निजाभीष्टलाभाय गुरुलुब्धता), नामगाने सदा रुचिः, तद्गुणाख्याने आसक्तिः, तद्वसतिस्थले प्रीतिः—इत्यादयः 'अनुभावाः' स्युः (वर्त्तन्ते)।

श्लोक-भावानुवाद—जात-भावाङ्कुर भक्तमें क्षान्ति अर्थात् क्षोभ उत्पन्न होनेका कारण होनेपर भी क्षुभित नहीं होना, श्रीकृष्ण-सम्बन्धी वस्तुओंके लिये समस्त काल व्यतीत करना, श्रीकृष्णसे इतर वस्तुओंकी स्पृहासे विहीन, उत्कृष्ट होनेपर भी अमानी होना, भगवद्-प्राप्तिकी दृढ़ आशा, निज-अभीष्ट प्राप्तिमें भारी लोभ, श्रीकृष्णनाम-गानमें सदा रुचि, उनके गुणोंके वर्णनमें आसक्ति, उनकी वास-स्थलीमें प्रीति आदि 'अनुभाव' लक्षित होते हैं॥ 18-19॥

श्लोककी व्याख्या—(1) क्षान्ति अथवा क्षोभराहित्य :—

एइ नव प्रीत्यङ्कुर याँर चित्ते हय।
प्राकृत-क्षोभे ताँर क्षोभ नाहि हय॥ 20॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 20॥

अनुभाष्य—पूर्वलिखित नौ प्रकारका प्रीतिका अङ्कुर भाव जिसके चित्तमें उदित होता है, इस भौतिक संसारमें उसके लिये किसी प्रकारकी असुविधाका विषय उपस्थित होनेपर भी उसको वह कुछ भी मानता नहीं है॥ 20॥

श्रीमद्भागवत (1/19/15)—

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको
वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः॥ 21॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 21॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे ब्राह्मणों! अब मैंने अपने चित्तको भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर दिया है। आपलोग और गङ्गादेवी शरणागत जानकर मुझपर कृपा करें। अब ब्राह्मणकुमारके शापसे प्रेरित तक्षक ही हो अथवा कोई दूसरा भी कपटसे तक्षकका रूप धारणकर अपनी इच्छासे मुझे डस ले, इसकी मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। आपलोग भगवान् श्रीहरिकी रसमयी कथाका गान कीजिये॥ 21॥

अनुभाष्य—शमीक-ऋषिके पुत्र शृङ्गीके शापको सुनकर गङ्गाके तटपर आमरण अनशनका सङ्कल्प लेकर महाराज परीक्षित श्रीकृष्ण चिन्तामें रत हुए थे। उस समय उनके निकट बहुतसे ऋषि आकर उपस्थित हुए। महाराज परीक्षित उनका विधि-अनुसार सत्कार करके, ब्राह्मणके शापको हरिकथाके श्रवणका सुयोग प्रदान करनेवाले मङ्गलमय वरके रूपमें वर्णन करके ऋषियोंसे सर्वक्षण हरिकथाका वर्णन करनेका अनुरोध कर रहे हैं,—

हे विप्राः [भवन्तः] देवी (देवतारूपा) गङ्गा च ईशे धृतचित्तम् (ईश्वरार्पितचित्तं) तं (तथाभूतं) मा (माम्) उपयातं (शरणागतं) प्रतियन्तु (जानन्तु); द्विजोपसृष्टः (द्विज-प्रेरितः) कुहकः तक्षकः वा अलं दशतु, विष्णुगाथा (विष्णुकथाः) गायत (यूयं कीर्त्तयत)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 21॥

(2) अव्यर्थकालत्व और (3) इन्द्रियतर्पण-विरक्ति :—

कृष्णसम्बन्ध बिना काल व्यर्थ नाहि याय।
भुक्ति, सिद्धि, इन्द्रियार्थ ताँरे नाहि भाय॥ 22॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसे सम्बन्धित क्रियाओंके अतिरिक्त जातरति भक्तोंका समय बिल्कुल भी व्यर्थ नहीं जाता। भोग, सिद्धि और इन्द्रियोंके सुखकी कोई भी वस्तु उन्हें अच्छी नहीं लगती॥ 22॥

अनुभाष्य—जातरति भक्तके लिये ऐहिक अर्थात् इस भौम-जगत्के और पारलौकिक भोग अर्थात् स्वर्गसे लेकर सत्यलोक तकके भोग, अणिमादि सिद्धियाँ और इन्द्रियतृप्ति आदि कोई आकर्षण नहीं रखते और उन्हें इन सबसे कोई प्रयोजन भी नहीं है॥ 22॥

समस्त इन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णसेवा करनेपर भी भावभक्तोंकी चिन्मयी चमत्कारमयी अतृप्ति :—
हरिभक्तिसुधोदय (12/38)में—

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्तन्वा
नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः।
भक्ताः स्रवन्नेत्रजलाः
समग्रमायुर्हरेरेव समर्पयन्ति॥ 23॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 23॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्तगण नेत्रोंमें अश्रुजलधाराके साथ-साथ वचनोंके द्वारा स्तव, मनके द्वारा स्मरण और शरीरके द्वारा नमस्कार करके भी तृप्त नहीं हो पाते। इस प्रकारकी क्रियाके द्वारा वे अपनी सम्पूर्ण आयु श्रीहरिमें समर्पण (अर्थात् उनके उद्देश्यसे व्यतीत) करते हैं॥ 23॥

अनुभाष्य—

भक्ताः अनिशं (सर्वकालं) वाग्भिः स्तुवन्तः, मनसा स्मरन्तः, तन्वा नमन्तः अपि, न तृप्ताः [भवन्ति]; स्रवन्नेत्रजलाः (वाष्पविगलित-नयनाः सन्तः) समग्रम् आयुः हरेः (हरये) एव समर्पयन्ति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 23॥

श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य विषय-भोगोंसे विरक्त भरतका दृष्टान्त :—
श्रीमद्भागवत (5/14/43)में—

यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।
जहौ युवैव मलवदुत्तमःश्लोकलालसः॥ 24॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 24॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भरत महाराजने उत्तमःश्लोक श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी लालसासे युवावस्थामें ही हृदयग्राहिणी पत्नी, पुत्र, सुहृत् और राज्यादिका मलकी भाँति परित्याग किया था;—यही जातभाव व्यक्तिकी विरक्तिका लक्षण है॥ 24॥

अनुभाष्य—श्रील शुकदेव परीक्षितसे महाभागवत भरतके शुद्धहरिभजनके आचरणरूपी गुण-महिमाका वर्णन कर रहे हैं,—

यः (भरतः) उत्तमःश्लोकलालसः (उत्तमःश्लोके लालसा लम्पटत्वं यस्य सः कृष्णोत्कण्ठः सन्) हृदिस्पृशः (मनोज्ञान्) दुस्त्यजान् (दुष्परिहरान्) सुहृद्राज्यं (उभयोर्द्वन्द्वैक्यं) दारसुतान् युवैव मलवत् जहौ (परित्यक्तवान्) [तस्य आर्ष्यभस्य अनुवर्त्म अन्यो नृपः नार्हतीति पूर्वेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [पूर्व श्लोक (भाः 5/14/42)में वर्णित 'कोई भी राजा आज तक अपने मनके द्वारा भी ऋषभनन्दन राजर्षि भरतके मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हुआ है।' वाक्यका इस श्लोकके साथ अन्वय करें।]॥ 24॥

(4) मानशून्यता और (5) आशाबन्ध :—

'सर्वोत्तम' आपनाके 'हीन' करि' माने।
'कृष्ण कृपा करिबेन'—दृढ़ करि' माने॥ 25॥

अनुवाद—जातरति भक्त 'सर्वोत्तम' होनेपर भी स्वयंको सबसे 'हीन' मानता है। 'श्रीकृष्ण अवश्य ही कृपा करेंगे'—उसका यह दृढ़ विश्वास है॥ 25॥

अमानी होनेका दृष्टान्त :—

पद्मपुराण-वाक्य—

हरौ रतिं वहन्नेषो नरेन्द्राणां शिखामणिः।
भिक्षामटन्नरिपुरे श्वपाकमपि वन्दते॥ 26॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 26॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हरिमें रतियुक्त होकर ये राजशिरोमणि (सम्राट) शत्रुके राज्यमें भिक्षा करते हुए चण्डालकी भी वन्दना कर रहे हैं॥ 26॥

अनुभाष्य—

नरेन्द्राणां शिखामणिः (नृपकुलचूड़ामणिः) एषः हरौ रतिं वहन् (पोषयन्) अरिपुरे (शत्रुनिवासे) भिक्षां अटन् (तदर्थं परिभ्रमन्) श्वपाकं (सुनीचम्) अपि वन्दते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 26॥

आशाबन्धयुक्तकी उक्ति :—

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/3/35)—

श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा उद्धृत श्रीसनातन-प्रभुका वाक्य—

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वैष्णवो
ज्ञानं वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति वा।
हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती
हे गोपीजनवल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम्॥ 27॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुझमें प्रेम, श्रवणादि भक्ति, विष्णु-भक्तियोग, ज्ञान अथवा शुभकर्म अथवा सद्जाति कुछ भी नहीं है। हे गोपीजनवल्लभ, आप अकिञ्चनके ऊपर कृपा करनेवाले हैं, इसलिये मेरे हृदयमें सदा आपके प्रति जो अटूट श्रद्धा आशा है, वह मुझे निरन्तर व्यथित करती रहती है॥ 27॥

अनुभाष्य—

[मम] प्रेमा वा, श्रवणादिभक्तिः अपि, अथवा वैष्णवः (विष्णुध्यानमयः) योगः (शुद्धभक्तियोगः), ज्ञानं (ब्रह्मनिष्ठं) वा, शुभकर्म (दैववर्णाश्रमादिरूपं) वा, अहो (खेदे) कियत् सज्जातिः (सद्वंशजातसम्मानम्) अपि वा न अस्ति, हे गोपीजनवल्लभ, हीनार्थाधिकसाधके (हीनजने योग्यतापरिमाणाधिकफलदातरि) त्वयि अच्छेद्यमूला (सर्वथैव अविच्छेद्या) सती (शुद्धा) हा हा मत् आशा (मम आशा) मां व्यथयते एव।

श्लोक-भावानुवाद—मुझमें प्रेम अथवा श्रवणादि भक्ति अथवा विष्णुध्यानमय शुद्धभक्तियोग, या ब्रह्मनिष्ठ ज्ञान अथवा दैववर्णाश्रमादिरूप शुभकर्म अथवा अहो! सद्-वंशजात सम्मान भी नहीं है। हे गोपीजनवल्लभ! हीनजनोंको उनकी योग्यताके परिमाणसे भी अधिक फल देनेवाले आपमें मेरी अटूट आशा है। हा! हा! मेरी आशा मुझे व्यथित कर रही है॥ 27॥

(6) समुत्कण्ठा और (7) नामगानमें सदा रुचि :—

समुत्कण्ठा हय सदा लालसा-प्रधान।
नाम-गाने सदा रुचि, लय कृष्णनाम॥ 28॥

अनुवाद—जातरति भक्तकी श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा उसकी समुत्कण्ठाका लक्षण है। नाम-गानमें सदा रुचि रहनेके कारण वह सदैव श्रीकृष्णनामका कीर्तन करता है॥ 28॥

समुत्कण्ठामें भक्तकी उक्ति :—

श्रीकृष्णकर्णामृत (32)में उद्धृत बिल्वमङ्गलवाक्य—

त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवेहि
मच्चापलञ्च तव वा मम वाधिगम्यम्।
तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि
मुग्धः मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम्॥ 29॥

अनुवाद—हे वंशीविलासी कृष्ण! तुम्हारा शैशव (कैशोर) माधुर्य त्रिभुवनमें अद्भुत है। मेरे चापल्यको तुम जानते हो और मैं जानती हूँ, इसे और कोई नहीं जानता है। इन दो नेत्रोंके द्वारा निर्जन स्थानमें तुम्हारे मुखकमलके दर्शन करनेके लिये अब मैं क्या करूँ?॥ 29॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 2/61 संख्या देखें॥ 29॥

नामगानका दृष्टान्त :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/3/38)—

रोदनबिन्दुमकरन्दस्यन्दि-दृगिन्दीवराद्य गोविन्द।
तव मधुरस्वरकण्ठी गायति नामावलीं बाला॥ 30॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 30॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे गोविन्द, यह अति अल्प आयुवाली राधिका (या चन्द्रावली) आज अपने नयनकमलोंमें अश्रु भरकर मधुरकण्ठसे आपकी नामावलीका गान कर रही है॥ 30॥

अनुभाष्य—

हे गोविन्द, अद्य रोदनबिन्दुमकरन्द-स्यन्दि-दृगिन्दीवरा (रोदनबिन्दवः एव मकरन्दाः पुष्परसाः ते स्यन्दन्ति दृशौ इव इन्दीवरौ नीलपद्मनेत्राभ्रां यस्याः सा) मधुरस्वरकण्ठि (सौस्वर्यवती) बाला (राधिका) तव नामावलीं गायति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 30॥

(8) श्रीकृष्णके गुणोंके वर्णनमें आसक्ति और (9) श्रीकृष्णके वासस्थानमें प्रीति :—

कृष्णगुणाख्याने करे सर्वदा आसक्ति।
कृष्णलीला-स्थाने करे सर्वदा वसति॥ 31॥

अनुवाद—भावदशामें भक्त आसक्त होकर श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करता रहता है और वह सदा श्रीकृष्णकी लीला-स्थलियोंमें वास करता है॥ 31॥

श्रीकृष्णके माधुर्यका वर्णन :—
श्रीकृष्णकर्णामृत (92)में बिल्वमङ्गलवाक्य—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-
र्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥ 32॥

अनुवाद—इन श्रीकृष्णका शरीर मधुर है, इनका मुख भी मधुर है और इनका मधु-सुगन्धयुक्त मृदुहास्य और भी मधुर है; अहो! इनका सब कुछ ही मधुर है॥ 32॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 21/136 संख्या देखें॥ 32॥

श्रीकृष्णके प्रिय वास-स्थानमें प्रीतिका दृष्टान्त :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/156)—

कदाहं यमुनातीरे नामानि तव कीर्त्तयन्।
उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष रचयिष्यामि ताण्डवम्॥ 33॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे पुण्डरीकाक्ष, मैं कब आपके नामका कीर्तन करते-करते अश्रुपूर्णनेत्रोंसे युक्त होकर यमुनाके तटपर नृत्य करूँगा॥ 33॥

अनुभाष्य—

हे पुण्डरीकाक्ष, कदा अहं यमुनातीरे (कालिन्दीतटे) तव नामानि कीर्त्तयन्, उद्बाष्पः (अश्रुपूर्णनेत्रः सन्) ताण्डवं [नृत्यं] रचयिष्यामि (करिष्यामि)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 33॥

अब (3) प्रेमभक्तिके लक्षणोंका वर्णन :—

कृष्णेर रतिर चिह्न एइ कैलुँ विवरण।
कृष्णप्रेमेर चिह्न एबे शुन, सनातन॥ 34॥

अनुवाद—हे सनातन, मैंने श्रीकृष्णके प्रति होनेवाली रतिके लक्षणोंके विषयमें बतलाया, अब तुम श्रीकृष्णप्रेमके लक्षणोंके विषयमें श्रवण करो॥ 34॥

श्रीकृष्णप्रेमिक वैष्णव अथवा शुद्धभक्त—प्राकृत सर्वश्रेष्ठ सूक्ष्मदर्शी समालोचकोंके लिये भी दुर्बोध्य :—

याँर चित्ते कृष्णप्रेमा करये उदय।
ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा विज्ञेह ना बुझय॥ 35॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 35॥

अनुभाष्य—जातप्रेम भक्तके वचन, क्रिया और मुद्रा (भावभङ्गिमा)को विचक्षण (दक्ष) पण्डित भी समझनेमें समर्थ नहीं होते॥ 35॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/4/17) :—

धन्यस्यायं नवप्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि।
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा॥ 36॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 36॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस धन्य व्यक्तिके चित्तमें नवप्रेम उदित होता है, उसकी समस्त क्रियाएँ और भावभङ्गिमा अर्थात् समस्त लक्षण शास्त्रज्ञ पुरुष भी नहीं समझ सकते॥ 36॥

अनुभाष्य—

यस्य धन्यस्य (सफलार्थस्य भक्तजनस्य) चेतसि (चित्ते) नवप्रेमा उन्मीलति (प्रकटो भवति) [तस्य] अस्य मुद्रा (चेष्टा) अन्तर्वाणिभिः (शास्त्रविद्भिः) अपि सुष्ठु सुदुर्गमा (बोद्धुम् अतीव अशक्या)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 36॥

प्रेमी भक्तोंके लक्षण और क्रिया-चेष्टा :—
श्रीमद्भागवत (11/2/40)में—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति
गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥ 37॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसेवा-व्रतधारी पुरुष अवशचित्त होकर अर्थात् अब उसका चित्त उसके वशमें नहीं है, प्रियतम श्रीकृष्णके नामकीर्तनमें राग उत्पन्न होनेके कारण शिथिल-हृदय हो जाता है। वह लोक-व्यवहारकी अपेक्षासे रहित होकर उन्मत्तकी भाँति कभी हँसता, कभी रोता, कभी चीत्कार करता और कभी गान-नृत्य करता है॥ 37॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/94 संख्या देखें॥ 37॥

प्रेमकी गाढ़ताके तारतम्यका वैशिष्ट्य;
सबसे अन्तमें 'महाभाव' :—

प्रेमा क्रमे बाड़ि' हय स्नेह, मान, प्रणय।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥ 38॥

अनुवाद—प्रेम क्रमशः बढ़ते-बढ़ते स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव हो जाता है॥ 38॥

उपमा :—

यैछे इक्षुरस-बीज—गुड़, खण्ड-सार।
शर्करा, सिता-मिछरि, शुद्धमिछरि आर॥ 39॥

बीजरूपी रति और प्रेमकी गाढ़-अवस्थाके समूहके तारतम्यसे रसके आस्वादनकी अधिकताका तारतम्य :—

ईंहा यैछे क्रमे क्रमे बाड़े निर्मल स्वाद।
रति-प्रेमादिर तैछे बाड़ये आस्वाद॥ 40॥

अनुवाद—जिस प्रकार गन्नेका बीज, गन्ना, रस, गुड़, खाँड़, चीनी, सफेद मिश्री और शुद्ध-मिश्री एक ही वस्तु होनेपर भी क्रमशः शुद्ध होनेपर उसका क्रमशः स्वाद भी बढ़ता जाता है, उसी प्रकार रतिसे (जिसे प्रेमका बीज कहा गया है, उससे) बढ़ते हुए प्रेमादिका भी क्रमशः आस्वादन बढ़ता ही जाता है॥ 39-40॥

पाँच प्रकारकी रति :—

अधिकारी-भेदे रति—पञ्चप्रकार।
शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर आर॥ 41॥

अनुवाद—जीवके अधिकारके भेदसे रति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारकी होती है॥ 41॥

अनुभाष्य— *'रति'*—(भः रः सिः पूः विः तृतीय लहरी)—

"व्यक्तं मसृणितेवान्तर्लक्षते रतिलक्षणम्।
मुमुक्षुप्रभृतीनाञ्चेद्भवेदेषा रतिर्न हि।
किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिह्नवीक्षया।
अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभास प्रकीर्त्तितः॥"

अर्थात् "आन्तरिक द्रवीभूतता जहाँ प्रकाशित होती है, वही रतिका लक्षण है, किन्तु मुक्तिकामी अथवा भोगकामीमें दिखनेपर उसे कभी भी 'रति' नहीं कहा जाता है। श्रीकृष्णसेवासे अतिरिक्त अन्य अभिलाषासे युक्त इस रतिके लक्षणोंको देखकर अज्ञानी सरल

व्यक्ति ही चमत्कृत होते हैं। किन्तु भक्ति-सिद्धान्तको जाननेवाले व्यक्ति उसे 'रतिका आभास' कहते हैं॥ 41॥

पाँच रसोंसे ही श्रीकृष्ण वशीभूत :—

एइ पञ्च स्थायिभावे हय पञ्च 'रस'।
ये-रसे भक्त 'सुखी', कृष्ण हय 'वश'॥ 42॥

अनुवाद—इन पाँच स्थायी भावोंमें पाँच रस होते हैं। जिस रसमें भक्त सुखी होता है, श्रीकृष्ण भी उसी रसमें ही उसके वशीभूत हो जाते हैं॥ 42॥

अनुभाष्य—'स्थायी भाव'—(भ:र:सि: द:वि: 5म ल: प्रथम श्लोक)—

"अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन्।
सु-राजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते॥
स्थायी भावोऽत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्णविषया रतिः।"

अर्थात् "हास्यादि अविरुद्ध भाव और क्रोधादि विरुद्ध भावसमूहको जो भाव वशीभूत करके उत्तम राजाकी भाँति विराजित होता है, वही स्थायी भाव है। इस स्थानपर श्रीकृष्ण-विषयक रतिको ही 'स्थायी भाव' कहा जाता है॥"42॥

स्थायीभाव अथवा रतिके साथ सामग्रीके मिलनसे रसकी उत्पत्ति; रति ही रसका 'मूल' :—

प्रेमादिक स्थायिभाव सामग्री-मिलने।
कृष्णभक्तिरसरूपे पाय परिणामे॥ 43॥

अनुवाद—प्रेमादि स्थायी-भावके साथ सामग्रीके मिलनसे श्रीकृष्णभक्ति रसरूपमें परिणत हो जाती है॥ 43॥

चार प्रकारकी सामग्री :—

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी।
स्थायिभाव 'रस' हय एइ चारि मिलि'॥ 44॥

उपमा :—

दधि येन खण्ड-मरिच-कर्पूर-मिलने।
'रसालाख्य' रस हय अपूर्वास्वादने॥ 45॥

अनुवाद—दही जिस प्रकार चीनी, काली मिर्च और कर्पूरके मिलानेपर अपूर्व आस्वादनीय 'रसाला' रूपी रस बन जाती है, स्थायीभाव भी उसी प्रकार विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—इन चारोंसे मिलकर 'रस' बन जाता है॥ 44-45॥

अनुभाष्य—(भ:र:सि: द:वि: प्रथम ल: श्लोक)—

"अथास्याः केशवरतेर्लक्षिताया निगद्यते।
सामग्रीपरिपोषेण परमा रसरूपता॥
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत्॥"

[अर्थात् "बादमें इस कृष्णरतिकी विभावादि सामग्रीके द्वारा परिपोषणके कारण जो परम रसरूपता प्राप्त होती है, उसे ही यहाँ कहा गया है। श्रवणादि साधनभक्तिके अङ्गोंके द्वारा भक्तोंके हृदयमें यह श्रीकृष्णरति-रूप स्थायी भाव—विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावोंके द्वारा आस्वादनीय होनेपर भक्तिरसमें परिणत होता है।"]॥ 43-44॥

रसके 'हेतु' विभावके दो प्रकार—
(1) आलम्बन और (2) उद्दीपन :—

द्विविध 'विभाव',—आलम्बन, उद्दीपन।
वंशीस्वरादि—उद्दीपन, कृष्णादि—आलम्बन॥ 46॥

अनुवाद—विभाव दो प्रकारके होते हैं—आलम्बन और उद्दीपन। श्रीकृष्णादि आलम्बन और वंशीध्वनि आदि उद्दीपन कहलाते हैं॥ 46॥

अनुभाष्य—(भ:र:सि: द:वि: प्रथम ल: श्लोक)—

"तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादन-हेतवः।
ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे॥"

इस विषयमें अग्निपुराणमें—

"विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते।
विभावो नाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः॥"

अर्थात् "श्रीकृष्णरतिके आस्वादनके कारणको 'विभाव' कहते हैं; वह दो प्रकारका होता है—आलम्बन और

उद्दीपन। जिससे और जिसके द्वारा रति आदि विभावित होती है, वही अग्निपुराणादिमें 'विभाव' (आलम्बनमय और उद्दीपनमय)के नामसे कहा गया है।"

'आलम्बन'—(भ:र:सि: द:वि: प्रथम ल: श्लोक)—

"कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः।
रत्यादेर्विषयत्वेन तथाधारतयापि च॥"

अर्थात् "रति आदिके (अर्थात् गौण हास्यादि रसके) विषयरूपमें 'श्रीकृष्ण' और आधार-स्वरूपमें 'श्रीकृष्णभक्त'—इन दोनोंको पण्डितगण 'आलम्बन' कहते हैं।"

'उद्दीपन'—(भ:र:सि: द:वि: प्रथम ल: श्लोक)—

"उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये।
ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टाः प्रसाधनम्॥
स्मिताङ्गसौरभे वंशशृङ्गनूपुरकम्बरः।
पदाङ्क-क्षेत्र-तुलसी-भक्त-तद्वासरादयः॥"

अर्थात् "जो भाव प्रकाशित करते हैं, वे ही उद्दीपन हैं। जैसे—श्रीकृष्णके गुण, चेष्टा और प्रसाधन (कंघे आदिके द्वारा केश-सँवारना आदि देहकी सज्जाके उपकरण) और स्मित (मृदुहास्य), अङ्गगन्ध, वंशी, शृङ्ग, नूपुर, शङ्ख, पदचिह्न, क्षेत्र, तुलसी, भक्त, हरिवासरादि एकादशी-व्रत॥"**46**॥

रसके 'कार्य' अनुभावके 13 प्रकारके भेद; आठ प्रकारके सात्त्विक भी रसके 'कार्य' :—

'अनुभाव'—स्मित, नृत्य, गीतादि उद्भास्वर।
स्तम्भादि—'सात्त्विक' अनुभावेर भितर॥ 47॥

अनुवाद—मन्दहास्य, नृत्य, गीतादि उद्भास्वर (देहके विविध अङ्गोंमें प्रकट होनेवाले)—ये 'अनुभाव' हैं। और स्तम्भादि 'सात्त्विक' भाव अनुभावके अन्तर्भुक्त ही हैं॥ **47**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'उद्भास्वर'*—विशेष आङ्गिक अनुभाव हैं, (वे) पाँच प्रकारके हैं—वेशभूषाका ढीला होना, शरीरको मोड़ना, जम्भाई, सांसका फूँलना, सांस छोड़ना और सांस भीतर लेना॥ **47**॥

अनुभाष्य—*'अनुभाव'*—(भ:र:सि: द:वि: द्वितीय लहरी प्रथम श्लोक)—

"अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकः।
ते बहिर्विक्रियाप्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्या॥
नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम्।
हुङ्कारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता।
लालास्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा-हिक्कादयोऽपि च॥
ते शीताः क्षेपणाश्चेति यथार्थाख्या द्विधोधिताः।
शीताः स्युर्गीतजृम्भाद्या नृत्याद्याः क्षेपणाभिधाः॥"

अर्थात् "चित्तमें स्थित भावसमूहके प्रकाशक प्राय बाह्य-विकार होकर जो 'उद्भास्वर'-नामसे प्रसिद्ध हैं, वे ही 'अनुभाव' हैं। नृत्य, भूमिपर लोट-पोट, गान, चिल्लाना, शरीरको मरोड़ना, हुङ्कार, जम्भाई लेना, लम्बी सांसे लेना, लोगोंकी परवाह नहीं करना, लारका बहना, अट्टहास, घूर्णा और हिचकी आदि। ये 'शीत' और 'क्षेपण'—इन दो नामोंसे जाने जाते हैं; इनमेंसे गीत और जम्भाई आदिको 'शीत' और नृत्यादिको 'क्षेपण' कहते हैं।"

'उद्भास्वर'—

"उद्भासन्ते स्वधाम्नीति प्रोक्ता उद्भास्वरा बुधैः।
नीव्युत्तरीयधम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनम्।
जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याश्च ते मताः॥"

अर्थात् "भावयुक्त व्यक्तिके शरीरमें जो-जो प्रकाशित होता है, पण्डितगण उसे 'उद्भास्वर' कहते हैं। ये नाड़े, उत्तरीय-वस्त्र और जूड़ेका खुलना या ढीला होना, शरीरको मोड़ना, जम्भाई, नाकको फुलाना, श्वास छोड़ना, लोट-पोट खाना और हिचकी आदि पूर्वलिखित बाह्य विकारसमूह हैं।"

'स्तम्भादि'—मध्यलीला 14/167 संख्या देखें॥ **47**॥

रसके 'सहायक' व्यभिचारी भाव—तैंतीस :—

निर्वेद-हर्षादि—तेत्रिश 'व्यभिचारी'।
सब मिलि' 'रस' हय चमत्कारकारी॥ 48॥

अनुवाद—निर्वेद-हर्षादि तैंतीस व्यभिचारी भाव हैं।

इन सबके मिलनेपर अत्यन्त चमत्कारी 'रस' बनता है॥ 48 ॥

अनुभाष्य—*'निर्वेद-हर्षादि'*—मध्यलीला 14/167 संख्या देखें।

'व्यभिचारी'—(भ:र:सि: द:वि: चतुर्थ लहरी प्रथम श्लोक)—

"त्रयस्त्रिंशद्भावाः ये व्यभिचारिणः।
विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति।
वागङ्गसत्त्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः॥
सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्थायिन्यमृतवारिधौ।
ऊर्मिवद्वर्द्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपताञ्च ते॥"

अर्थात् "व्यभिचारी भावसमूह तैंतीस होते हैं। वे विशेषतः प्रधानरूपमें स्थायी-भावोंके प्रति विचरण करते हैं। वाक्य, अङ्ग (भ्रू-नेत्रादि) और सत्त्वसे उत्पन्न अनुभावके द्वारा व्यभिचारी भावसमूह भावकी गतिका सञ्चार करते हैं, इसलिये उन्हें 'सञ्चारी' कहा जाता है। ये स्थायी-भावरूपी अमृत-सागरमें निमग्न होकर तरङ्गकी भाँति उसे वर्द्धित कराके स्थायी-भावरूपताको प्राप्त करते हैं॥"48 ॥

पाँच प्रकारके रसोंका वर्णन :—

पञ्चविध रस—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य।
मधुर-रस शृङ्गार-भावेते प्राबल्य॥ 49 ॥

अनुवाद—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच प्रकारके रस हैं। इन सबमेंसे शृङ्गारभाव ही प्रबल है॥ 49 ॥

'प्रेम' तक शान्तरसके और 'राग' तक दास्यरसकी सीमा :—

शान्तरसे शान्ति-रति 'प्रेम' पर्यन्त हय।
दास्य-रति 'राग' पर्यन्त क्रमेते बाड़य॥ 50 ॥

'अनुराग' तक सख्य और वात्सल्यकी सीमा; उनमेंसे सुबलादि प्रियनर्म सखाओंकी भी 'भाव' तक सीमा :—

सख्य-वात्सल्य-रति पाय 'अनुराग'-सीमा।
सुबलाद्येर 'भाव' पर्यन्त प्रेमेर महिमा॥ 51 ॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 50-51 ॥

अनुभाष्य—शान्तरसमें 'रति'की बढ़ते हुए 'प्रेम' तक सीमा है। दास्यरसमें 'दास्यरति' स्नेह, मान, प्रणय और राग तक वर्द्धित होती है। सख्यरसमें 'सख्यरति' स्नेह, मान, प्रणय, राग और अनुराग तक बढ़ती है। वात्सल्यरसमें 'वात्सल्यरति' स्नेह, मान, प्रणय, राग और अनुराग तक वर्द्धित होती है। विशेषता यह है कि सख्यरसाश्रित होनेपर भी सुबलादिकी सख्यरति स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव तक वर्द्धित होती है॥ 50-51 ॥

शान्तादि पाँच रसोंके भेदकी विचित्रता :—

शान्तादि रसेर 'योग', 'वियोग'—दुइ भेद।
सख्य-वात्सल्ये योगादिर अनेक विभेद॥ 52 ॥

अनुवाद—शान्तादि रसोंके दो भेद हैं—'योग' और 'वियोग'। सख्य और वात्सल्य रसमें योग-वियोगके अनेक भेद हैं॥ 52 ॥

अनुभाष्य—(भ:र:सि: प:वि: द्वितीय लहरी 41 श्लोक)—

"अयोगयोगावेतस्य प्रभेदौ कथिताबुभौ"

अर्थात् "इस प्रीतिभक्तिरसके 'अयोग और योग'—ये दो भेद कहे गये हैं।"

'अयोग'—

"सङ्गाभावो हरेधीरैरयोग इति कथ्यते।
अयोगे त्वन्मनस्कत्वं तद्गुणाद्यनुसन्ध्यः।
तत्प्राप्त्युपायचिन्ताद्याः सर्वेषां कथिताः क्रियाः॥"

अर्थात् "पण्डितगण भगवान्‌के साथ सङ्गके अभावको 'अयोग' कहते हैं। अयोगमें हरिमनस्कता अर्थात् हरिमें मनका समर्पण और हरिके गुणों आदिका अनुसन्धान किया जाता है। श्रीकृष्ण प्राप्तिके उपायका चिन्तनादि दासादि सभी भक्तोंकी क्रिया कही जाती है।"

'योग'—

"कृष्णेन सङ्गमो यस्तु स योग इति कीर्त्यते"

अर्थात् "श्रीकृष्णके साथ मिलनको 'योग' कहते हैं।"

'शान्तादि रसेर'—शान्त और दास्यमें 'योग और वियोग', ये दो प्रकारके भेद हैं; उनमें योग और अयोगके अनेक भेद नहीं हैं। यद्यपि पाँच प्रकारके रसोंमें ही योग और अयोगका भेद है, किन्तु सख्य और वात्सल्यमें बहुतसे विभेद हैं।

'योगविभेद'—

"योगोऽपि कथितः सिद्धिस्तुष्टिस्थितिरति त्रिधा"

अर्थात् "योगके तीन प्रकारके भेद हैं—सिद्धि, तुष्टि और स्थिति।"

'अयोगविभेद'—

"उत्कण्ठत्वं वियोगश्चेत्ययोगोऽपि द्विधोच्यते"

अर्थात् "'अयोग' दो प्रकारका होता है—'उत्कण्ठित' और 'वियोग'॥"52॥

द्वारकामें ऐश्वर्यमयी स्वकीया मधुर-रतिमें 'रूढ़-महाभाव' और वृन्दावनमें माधुर्यमयी केवला पारकीया मधुर-रतिमें 'अधिरूढ़-महाभाव' :—

'रूढ़', 'अधिरूढ़' भाव—केवल 'मधुरे'।
महिषीगणेर 'रूढ़', 'अधिरूढ़' गोपिका-निकरे॥ 53॥

अनुवाद—रूढ़ और अधिरूढ़ महाभाव तो केवल मधुररसमें हैं। महिषियोंमें 'रूढ़' महाभाव और व्रजगोपियोंमें 'अधिरूढ़' महाभाव रहता है॥ 53॥

अनुभाष्य—*'अधिरूढ़'*—(उःनीः स्थायिभाव-प्रः 170)—

"रूढ़ोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टताम्।
यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढ़ो निगद्यते॥"

[अर्थात् "जिस समय उक्त अनुभावसमूह रूढ़भावमें कहे गये अनुभावोंसे भी उत्तरोतर किसी विशेष दशाको प्राप्त होते हैं, उसे अधिरूढ़ महाभाव कहते हैं।"]

मधुररसमें मधुर-रति स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव तक वर्धित होती है। रूढ़ और अधिरूढ़-महाभाव केवलमात्र मधुर-रसमें ही विद्यमान हैं। द्वारकामें 'रूढ़' और गोकुलमें ही केवल 'अधिरूढ़'-भाव देखा जाता है॥ 53॥

अधिरूढ़-महाभाव भी दो प्रकार का—(1) सम्भोगमें 'मादन'-संज्ञा, (2) विप्रलम्भमें 'मोहन'-संज्ञा :—

अधिरूढ़-महाभाव—दुइ त' प्रकार।
सम्भोगे 'मादन', विरहे 'मोहन' नाम तार॥ 54॥

अनुवाद—अधिरूढ़ महाभाव दो प्रकारका होता है—सम्भोगमें उसका नाम 'मादन' और विरहमें उसका नाम 'मोहन' होता है॥ 54॥

सम्भोगमय 'मादन' और विप्रलम्भमय 'मोहन'में अनेक प्रकारके भाव-भेदका वैचित्र्य :—

'मादने'—चुम्बनादि हय अनन्त विभेद।
'उद्घूर्णा', 'चित्रजल्प'—'मोहने' दुइ भेद॥ 55॥

अनुवाद—'मादन'में चुम्बनादि अनन्त भेद हैं। 'मोहन'में 'उद्घूर्णा' और 'चित्रजल्प'—ये दो भेद होते हैं॥ 55॥

भाः 10/47 अध्याय—भ्रमर-गीतमें विप्रलम्भमें श्रीराधिकादि गोपियोंका दिव्योन्माद :—

चित्रजल्पेर दश अङ्ग—प्रजल्पादि-नाम।
'भ्रमर-गीता'र दश श्लोक ताहाते प्रमाण॥ 56॥

अनुवाद—प्रजल्पादि चित्रजल्पके दस अङ्ग हैं। भ्रमर-गीताके दस श्लोक इसके प्रमाण हैं॥ 56॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चित्रजल्प दस प्रकारका है—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प। *'भ्रमर-गीता'*—श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके 47वें अध्यायमें है॥ 56॥

विप्रलम्भमें दिव्योन्मादकी चरम अवस्था—अप्राकृत-श्रीकृष्णसेवामयी परम-चमत्कारिणी सर्वोत्तमावस्था :—

उद्घूर्णा, विरह-चेष्टा—दिव्योन्माद-नाम।
विरहे कृष्णस्फूर्त्ति, आपनाके 'कृष्ण' ज्ञान॥ 57॥

अनुवाद—उद्घूर्णा और विरहमें भ्रममय चेष्टाओंका

नाम दिव्योन्माद है। इसमें विरहमें श्रीकृष्णकी स्फूर्त्ति होती है और भक्त स्वयंको ही 'कृष्ण' मानने लगता है॥ **57**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/87 संख्या देखें॥ **54-57**॥

दो प्रकारके शृङ्गार-रस—(1) सम्भोग और (2) विप्रलम्भ; सम्भोग असंख्य प्रकारका :—

'सम्भोग'-'विप्रलम्भ'-भेदे द्विविध शृङ्गार।
'सम्भोगे'र अनन्त अङ्ग, नाहि अन्त तार॥ 58॥

अनुवाद—'सम्भोग' और 'विप्रलम्भ'के भेदसे शृङ्गार रस दो प्रकारका होता है। 'सम्भोग'के अनन्त अङ्ग हैं, उनका अन्त नहीं है॥ **58**॥

अनुभाष्य—*'विप्रलम्भ'*—(उ:नी: विप्रलम्भ-प्रकरणमें 2-3 श्लोक)—

"यूनोरयुक्तयोर्भावो युक्तयोर्वाथ यो मिथः।
अभीष्टालिङ्गनादीनामनवाप्तौ प्रकृष्यते।
स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोगोन्नतिकारकः॥"
"न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।"

अर्थात् "नायक-नायिकाके प्रथम मिलनसे पहले अयुक्त, मिलन होनेके बाद युक्त—इन दोनों समयमें परस्पर अभीष्ट आलिङ्गनादिकी अप्राप्तिसे जो भाव होता है, उसे 'विप्रलम्भ' कहते हैं; वह सम्भोगका पुष्टिकारक है।"

'सम्भोग'—

"दर्शनालिङ्गनादीनामानुकूल्यान्निषेवया।
यूनोरुल्लासमारोहन् भावः सम्भोग ईर्यते॥"

अर्थात् "दर्शन और आलिङ्गनादिके परस्पर सुख-तात्पर्यमूलक व्यवहारके द्वारा नायक और नायिकाके उल्लास-प्राप्त भावको 'सम्भोग' कहते हैं।"

इस श्लोककी (1) श्रीजीव-प्रभुकृत-टीका—

'आनुकूल्यादिति काममयः सम्भोगो व्यावृत्तः।'

अर्थात् "आनुकूल्य कहनेसे काममय अथवा यथेच्छाचारको पृथक् किया है।"

(2) श्रीचक्रवर्त्ति-टीका—

'पशुवच्छृङ्गारो व्यावृत्तः।'

अर्थात् "यहाँपर शास्त्रोक्त रीतिसे आचरण-दर्शनादिका सेवन कहकर पशुवत् शृङ्गारका स्थान नहीं है।"

जाग्रत-अवस्थामें मुख्य-सम्भोग चार प्रकारका है (1) पूर्वरागके बाद 'संक्षिप्त', (2) मानके बाद 'सङ्कीर्ण', (3) अल्प दूर प्रवासके बाद 'सम्पन्न' और (4) सुदूर प्रवासके बाद 'समृद्धिमान्'। स्वप्नावस्थामें गौण-सम्भोग भी पहलेकी भाँति चार प्रकारका है॥ **58**॥

चार प्रकारका विप्रलम्भ :—

'विप्रलम्भ' चतुर्विध—पूर्वराग, मान।
प्रवासाख्य, आर प्रेमवैचित्त्य-आख्यान॥ 59॥

अनुवाद—'विप्रलम्भ' पूर्वराग, मान, प्रवास और प्रेम-वैचित्त्यके भेदसे चार प्रकारका है॥ **59**॥

अनुभाष्य—*'पूर्वराग'*—(उ:नी: विप्रलम्भ-प्रकरण पाँचवाँ श्लोक)—

"रतिर्या सङ्गमात् पूर्वं दर्शनश्रवणादिजा॥
तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते॥"

अर्थात् "जो रति सङ्गमसे पहले दर्शन-श्रवणादिसे उत्पन्न होकर दोनोंके विभावादिके मिश्रणसे आस्वादमयी होती है, वही 'पूर्वराग' है।"

'मान'—

"दम्पत्योर्भाव एकत्र सतोरप्यनुरक्तयोः।
स्वाभीष्टाश्लेषवीक्षादिनिरोधी मान उच्यते॥"

अर्थात् "परस्पर अनुरक्त एकत्र अवस्थित अथवा भिन्न स्थानपर स्थित नायक और नायिकाके अपने अभीष्टके दर्शन और आलिङ्गनादिका निरोध करनेवाले भावको 'मान' कहते हैं।"

'प्रवास'—

"पूर्वसङ्गतयोर्यूनोर्भवेद्देशान्तरादिभिः।
व्यवधानस्तु यत्प्राज्ञैः स प्रवास इतीर्यते॥"

अर्थात् "पूर्व-सङ्गमसे युक्त दम्पत्तिकी देशान्तरमें

(दूसरे स्थानमें) गमनादिके कारण उत्पन्न हुई बाधाको बुद्धिमान् जन 'प्रवास' कहते हैं।"

'प्रेमवैचित्त्य'—

"प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।
या विश्लेषधियार्त्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते॥"

अर्थात् "प्रेमोत्कर्ष-स्वभावसे प्रियके सङ्गमें रहनेपर भी उसके साथ विरहके भयसे जो आर्त्ति उपस्थित होती है, वही 'प्रेमवैचित्त्य' है॥"59॥

व्रजमें राधिकादि गोपियों और द्वारकाकी महिषियोंके विप्रलम्भ भावकी विचित्रता :—

राधिकाद्ये 'पूर्वराग' प्रसिद्ध 'प्रवास', 'माने'।
'प्रेमवैचित्त्य' श्रीदशमे महिषीगणे॥ 60॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 60॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चार प्रकारके विप्रलम्भमेंसे राधिकादि गोपियोंके 'पूर्वराग', 'प्रवास' और 'मान'—ये तीन प्रसिद्ध हैं; [भागवत दशम स्कन्धमें] द्वारकामें महिषियोंमें 'प्रेमवैचित्त्य' प्रसिद्ध है॥ 60॥

महिषियोंको श्रीकृष्णवियोगकी आशङ्का :—
श्रीमद्भागवत (10/90/15)—

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि कच्चिद्गाढ़निर्विद्धचेता
नलिन-नयन-हासोदार-लीलेक्षितेन॥ 61॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 61॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सखि, कुररि, देखो! इस रात्रिकालमें सुप्तचेतनके जैसे ईश्वर श्रीकृष्ण सो रहे हैं और तुम्हें निद्रा नहीं आनेके कारण तुम सो नहीं रही हो, केवल विलाप [करके निद्रा भङ्ग] कर रही हो [यह अनुचित है]। अथवा [तुम्हारा भी अपराध नहीं है] कमलनयन श्रीकृष्णके हास्य और उदारलीलाके दर्शनसे हमारी भाँति क्या तुम्हारा चित्त भी अतिशय आकृष्ट होनेसे ऐसा कर रही हो?॥ 61॥

अनुभाष्य—द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण लीलाविलासके द्वारा महिषियोंके चित्तका हरण करनेपर वे उनमें आविष्ट होनेके कारण अति निकट होनेपर भी सदैव 'अभी खो बैठेंगी' 'अभी खो बैंठेगी' भावसे युक्त होकर उन्मत्तकी भाँति इस प्रकार कहती थीं,—

हे कुररि, ईश्वरः (कृष्णः) रात्र्यां गुप्तबोधः (सुप्तचेतनः इव) स्वपिति (शेते); त्वं तु जगति [एका] वीतनिद्रा [सती] न शेषे (न स्वपिषि, शयनेच्छामपि न कुरुषे, परन्तु निद्राभङ्गं कुर्वती) विलपसि (तदनुचितमित्यर्थः)। हे सखि, [अथवा नापराधस्तव, यतः] वयं इव त्वं नलिन-नयनहासोदारलीलेक्षितेन (पद्मलोचनस्य भगवतः हासेन सहितम् उदारं यत् लीलेक्षितं तेन अकुण्ठितस्मितकटाक्षेण) कच्चित् गाढ़-निर्विद्धचेता (अतिशयेन आकृष्टचित्ता)?

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 61॥

श्रीकृष्ण—नायक-शिरोमणि, श्रीराधा—नायिका-शिरोमणि :—

व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण—नायक-शिरोमणि।
नायिकार शिरोमणि—राधा-ठाकुराणी॥ 62॥

अनुवाद—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण नायक शिरोमणि और श्रीमती राधा ठाकुरानी नायिकाओंमें शिरोमणि हैं॥ 62॥

प्रमाण :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/17)—

नायकानां शिरोरत्नं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महागुणाः॥ 63॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 63॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही नायकोंके चूड़ामणि हैं; उन श्रीकृष्णमें सभी महान् गुण नित्यरूपमें विराजमान हैं॥ 63॥

अनुभाष्य—

नायकानां मध्ये स्वयं भगवान् कृष्णस्तु शिरोरत्नं (चूड़ामणिः); यत्र (कृष्णे) सर्वे महागुणाः नित्यतया विराजन्ते (शोभन्ते)।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 63॥

श्रीराधिकाके आठ विशेषण :—
बृहद्-गौतमीय तन्त्र-वाक्य—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥ 64॥

अनुवाद—श्रीराधा 'देवी', 'साक्षात्कृष्णमयी', 'राधिका', 'परदेवता', 'सर्वलक्ष्मीमयी', 'सर्वकान्ति', 'कृष्णसम्मोहिनी' और 'पराशक्ति' नामसे कही गयी हैं॥ **64**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/83 संख्या देखें॥ **64**॥

श्रीकृष्णके असंख्य सद्गुणोंमेंसे चौंसठ प्रधान गुण :—

अनन्त कृष्णेर गुण, चौषट्टि—प्रधान।
एक एक गुण शुनि' जुड़ाय भक्त-काण॥ 65॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके अनन्त गुणोंमेंसे उनके चौंसठ प्रधान गुण हैं। उन असंख्य गुणोंमेंसे एक-एक गुणके विषयमें सुनकर भक्तोंके कान तृप्त होते हैं॥ **65**॥

चौंसठ गुणोंकी तालिका; पहले पचास गुणोंका वर्णन :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/23-29)—

अयं नेता सुरम्याङ्गः सर्वसल्लक्षणान्वितः।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः॥ 66॥

विविधाद्भुतभाषावित् सत्यवाक्यः प्रियंवदः।
वावदूकः सुपाण्डित्यो बुद्धिमान् प्रतिभान्वितः॥ 67॥

विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढ़व्रतः।
देशकाल-सुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः शुचिर्वशी॥ 68॥

स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गम्भीरो धृतिमान् समः।
वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्यमानकृत्॥ 69॥

दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागतपालकः।
सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः॥ 70॥

प्रतापी कीर्त्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः।
नारीगण-मनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान्॥ 71॥

वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्त्तिताः॥
समुद्रा इव पञ्चाशद्दुर्विगाहा हरेरमी॥ 72॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **66-72**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये नायकरूपी श्रीकृष्ण—1) परम रमणीय अङ्गोंसे युक्त, 2) सब प्रकारके सुलक्षणोंसे युक्त, 3) सुन्दर, 4) महातेजवान्, 5) बलवान्, 6) किशोर अवस्थासे युक्त, 7) विविध अद्भुत भाषाओंको जाननेवाले, 8) सत्यवचन, 9) प्रियवचनोंसे युक्त, 10) वाक्पटु (बात करनेमें निपुण), 11) सुपण्डित, 12) बुद्धिमान्, 13) प्रतिभायुक्त, 14) विदग्ध (निपुण), 15) चतुर, 16) दक्ष, 17) कृतज्ञ, 18) सुदृढ़व्रत, 19) देश-काल और पात्रको जाननेवाले, 20) शास्त्र दृष्टियुक्त, 21) शुचि (पवित्र), 22) स्वयंको वशमें रखनेवाले, 23) स्थिर, 24) दमनशील, 25) क्षमाशील, 26) गम्भीर, 27) धृतिमान्, 28) समसौम्यचरित्र, 29) वदान्य, 30) धार्मिक, 31) शूर, 32) करुण, 33) मान देनेवाले, 34) दक्षिण, 35) विनयी, 36) लज्जायुक्त, 37) शरणागतपालक, 38) सुखी, 39) भक्तबन्धु, 40) प्रेमवश्य, 41) सर्वशुभकारी, 42) प्रतापी, 43) कीर्त्तिमान्, 44) लोकानुरक्त, 45) साधुओंके समाश्रय, 46) नारीके मनका हरण करनेवाले, 47) सर्वाराध्य, 48) समृद्धिमान्, 49) श्रेष्ठ और 50) ऐश्वर्ययुक्त—इन पचास गुणोंसे युक्त हैं॥ **66-72**॥

अनुभाष्य—

अयं नेता (नायकः कृष्णः) सुरम्याङ्गः (परम-रमणीयाङ्ग-सन्निवेशयुक्तः) सर्वसल्लक्षणान्वितः (सामुद्रिक-शास्त्रोक्त-गुणोत्थद्वात्रिंशच्छुभचिह्नयुक्तः अङ्गोत्थषोड़शरेखासमन्वितश्च) रुचिरः (लोचनानन्दिसौन्दर्यविशिष्टः) तेजसायुक्तः (तेजस्वी,) बलीयान् (बली), वयसान्वितः (नित्यकिशोरवयः) विविधाद्भुतभाषावित् (नानापूर्व-भावभाषाकुशलः) सत्यवाक्यः (ऋतगीः), प्रियम्वदः, वावदूकः (श्रुतिमधुररसालङ्कारादियुक्तवचन-प्रयोगक्षमः), सुपाण्डित्यः (अप्राकृतविद्यानिपुणः) प्रतिभान्वितः (नवनवप्रकाश-शालिनीबुद्धियुक्तः), विदग्धः (कलाविलासकुशलः), चतुरः (धीमान्), दक्षः (निपुणः), कृतज्ञः (भक्तप्रेमप्रतिदानकारी), सुदृढ़व्रतः (सत्यसन्धः), देशकालसुपात्रज्ञः (देशकालपात्रवित्), शास्त्रचक्षुः (वेददृक्), शुचिः, वशी (आत्मवशः), स्थिरः (अचलः आफलोदयकर्मकृत्), दान्तः (क्लेशसहिष्णुः), क्षमाशीलः

(परापराधसहिष्णुः), गम्भीरः, धृतिमान् (अवरुद्धसौरतः, जितेन्द्रियः), समः (रागद्वेषविहीनः), वदान्यः (उदारः), धार्मिकः, शूरः (समरे उत्साहान्वितः), करुणः (दयालु), मान्यमानकृत् (माननीयजनेषु पूजकः), दक्षिणः (सरलोदारः), विनयी (अमानी), ह्रीमान् (आत्मप्रशंसायां लज्जाशीलः), शरणागतपालकः (प्रपन्नरक्षकः), सुखी (नित्यामोदी), भक्तसुहृत् (सेवकबन्धुः), प्रेमवश्यः (प्रेमबाध्यः), सर्वशुभङ्करः (सर्वेषां हितकारी), प्रतापी (प्रभावशाली), कीर्त्तिमान् (सुभद्रश्रवाः), लोक-रक्तः (लोकानुरागभाक्), साधुसमाश्रयः (जगति सज्जनपक्षाश्रितः), नारीगणमनोहारी (भुवनमनोमोहनः), सर्वाराध्यः (सर्वेश्वरः), समृद्धिमान् (वैभवशाली), वरीयान् (श्रेष्ठः), ईश्वरः (प्रभुः) च—इति अमी पञ्चाशत् गुणाः समुद्राः (पाररहिताः सिन्धवः) इव दुर्विगाहाः (सम्यक् ज्ञातुम अशक्याः अगाधाः इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—ये नायकरूपी श्रीकृष्ण—परमरमणीय अङ्गोंसे युक्त, सामुद्रिक-शास्त्रमें कहे गये गुणोंसे उत्पन्न बत्तीस शुभ चिह्नोंसे और अङ्कोंसे उत्पन्न सोलह रेखाओंसे युक्त, नेत्रोंको आनन्द देनेवाले सौन्दर्यसे युक्त, तेजस्वी, बलवान्, नित्यकिशोर अवस्थाके, नाना अपूर्व भाव-भाषामें कुशल, सत्यवचन, प्रिय वचन कहनेवाले, सुननेमें मधुर रस-अलङ्कारादियुक्त वचनोंके प्रयोग करनेमें सक्षम, अप्राकृतविद्यामें निपुण, नव-नव प्रकाशशालिनी बुद्धिसे युक्त, कलाविलासमें कुशल, चतुर, निपुण, भक्तके प्रेमके प्रतिदानकारी, सुदृढ़व्रत, देश-काल-पात्रको जाननेवाले, वेद-शास्त्रोंके पूर्ण ज्ञाता, पवित्र, आत्मवशकारी, फलोदय होने तक कर्म करनेमें अटल, क्लेश सहनेमें सहिष्णु, दूसरोंके अपराधके प्रति सहनशील, गम्भीर, जितेन्द्रिय, रागद्वेषविहीन, उदार, धार्मिक, युद्धमें उत्साहयुक्त, दयालु, माननीयजनोंके पूजक, सरल और उदार, अपने मानकी इच्छा नहीं करनेवाले, आत्मप्रशंसामें लज्जाशील, शरणागतपालक, नित्य-आमोदी, सेवकबन्धु, प्रेमके वशीभूत, सबके हितकारी, प्रभावशाली, कीर्तिमान्, लोगोंके अनुरागके पात्र, साधुजनोंके आश्रय, त्रिभुवनके मनको मोहन करनेवाले, सर्वेश्वर, वैभवशाली, श्रेष्ठ, और प्रभु हैं। उनके ये पचास गुण अपार सिन्धुके समान हैं जिन्हें सम्पूर्ण रूपसे जाननेमें कोई भी सक्षम नहीं है—यह अर्थ है॥ 66–72॥

पचास गुण बूँद-बूँदरूपमें सभी जीवोंमें विद्यमान :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/30)—

जीवष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दुबिन्दुतया क्वचित्।
परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे॥ 73॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 73॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये पचास गुण बिन्दु-बिन्दुरूपमें सभी जीवोंमें हैं, किन्तु परिपूर्ण-समुद्ररूपमें पुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें विद्यमान हैं॥ 73॥

अनुभाष्य—

एते गुणाः बिन्दुबिन्दुतया क्वचित् जीवेषु वसन्तः अपि तत्रैव पुरुषोत्तमे परिपूर्णतया भान्ति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 73॥

और भी पाँच अधिक गुणोंका वर्णन;
रुद्रादि श्रेष्ठ-जीवोंमें ये पचपन गुण आंशिकरूपमें
और विष्णुमें पूर्णरूपमें नित्य विद्यमान :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/37-38)—

अथ पञ्चगुणा ये स्युरंशेन गिरिशादिषु।
सदा स्वरूपसंप्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः॥ 74॥
सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गश्चिदानन्दघनाकृतिः।
स्ववशाखिलसिद्धिः स्यात् सर्वसिद्धिनिषेवितः॥ 75॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 74–75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उपरोक्त पचास गुणोंके ऊपर और भी पाँच महागुण परिपूर्ण मात्रामें श्रीकृष्णमें (विष्णुमें) और आंशिक रूपमें शिवादि-देवताओंमें विद्यमान हैं—(1) सदैव स्वरूपमें स्थित, (2) सर्वज्ञ, (3) नित्य-नवीन, (4) सच्चिदानन्दघनीभूतस्वरूप, (5) समस्त प्रकारकी सिद्धियोंको वशमें रखनेवाले, इसलिये सभी सिद्धियोंके द्वारा भलीभाँति सेवित॥ 74–75॥

अनुभाष्य—

अथ गिरिशादिषु (शिवादिषु) ये पञ्चगुणाः अंशेन (अपूर्णभावेन) स्युः (वर्त्तन्ते, ते उच्यन्ते);—सदास्वरूप-संप्राप्तः (मायया अनभिभाव्यानुभूतिविशिष्टः), सर्वज्ञः (अभिज्ञः, भूतभविष्यद्वर्त्तमानेति

त्रिकालज्ञः), नित्यनूतनः (स्वमाधुरीभिः अननुभूतः इव नवनवायमानः), सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गश्चिदानन्दघनाकृतिः (घन-सच्चिदानन्दविग्रहाकारः) सर्वसिद्धिनिषेवितः (सर्वैः प्राप्यफलैरर्चित-चरणः) स्ववशाखिलसिद्धिः स्यात् [पाठान्तरे, स्ववशेत्यादि-शेषद्विचरणयोरभावः]।

श्लोक-भावानुवाद—[श्रीकृष्णमें (विष्णुमें) परिपूर्ण मात्रामें] अन्य पाँच महागुण आंशिक रूपमें शिवादि-देवताओंमें विद्यमान हैं—(1) मायाकार्यके वशीभूत नहीं हैं, (2) सर्वज्ञ अर्थात् भूत-वर्तमान-भविष्य—तीनों कालोंको जाननेवाले, (3) नित्य-नवीन अर्थात् जो अननुभूतके समान अपनी माधुरीके द्वारा चमत्कारिता सम्पादन करते हैं, (4) सच्चिदानन्दघनीभूतस्वरूप, (5) समस्त प्रकारकी सिद्धियाँ जिनकी सदा सेवा करती हैं, इसलिये वे समस्त सिद्धियोंको वशमें रखनेवाले हैं। [पाठान्तरमें—श्लोकमें स्ववशादि दो चरण नहीं हैं]॥ **74-75**॥

श्रीनारायणमें और भी पाँच अधिक गुण अर्थात्
साठ गुण परिपूर्ण रूपमें अवस्थित :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/39-40)—

अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशादि-वर्त्तिनः।
अविचिन्त्यमहाशक्तिः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः॥ 76॥
अवतारावलीबीजं हतारिगतिदायकः।
आत्मारामगणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः॥ 77॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **76-77**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—परव्योमनाथ श्रीनारायणादिमें और भी पाँच गुण विद्यमान हैं। वे श्रीकृष्णमें भी परिपूर्ण मात्रामें रहते हैं, किन्तु शिवादि देवताओं अथवा जीवोंमें नहीं हैं। (1) असीम महाशक्तिशाली, (2) करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त विग्रहवाले, (3) सब अवतारोंके बीज स्वरूप, (4) मारे गये शत्रुओंको भी सुगति प्रदान करनेवाले, (5) आत्मारामजनोंको (ब्रह्मभूत मुक्त परमहंसजनोंको) भी आकर्षित करनेवाले—ये पाँच गुण श्रीनारायणादिमें होनेपर भी श्रीकृष्णमें अद्भुतरूपमें विराजमान हैं॥ **76-77**॥

अनुभाष्य—

अथ लक्ष्मीशादिवर्त्तिनः (लक्ष्मीपति-नारायणादि-विग्रहे वर्त्तमानाः) ये पञ्चगुणाः, ते उच्यन्ते—अविचिन्त्य-महाशक्तिः (अपरिमेय-महाशक्तिशाली), कोटिब्रह्माण्डविग्रहः (कोटिब्रह्माण्ड-व्यापी विग्रहो यस्य सः), अवतारावलीबीजं (निखिलावतार-कारणं), हतारिगतिदायकः (निहतशत्रुणामपि मुक्तिदाता), आत्मारामगणाकर्षी (ब्रह्मभूतमुक्तपरमहंसानामपि आकर्षकः) इति अमी (गुणाः) कृष्णे अद्भुताः किल।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **76-77**॥

स्वयं श्रीकृष्णमें श्रीनारायणकी अपेक्षा और भी
चार निजी अधिक गुण अर्थात् कुल चौंसठ
गुण परिपूर्णमात्रामें नित्य-विद्यमान :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/41-44)—

सर्वाद्भुतचमत्कार-लीलाकल्लोलवारिधिः।
अतुल्यमधुरप्रेम-मण्डितप्रियमण्डलः॥ 78॥
त्रिजगन्मानसाकर्षि-मुरलीकलकूजितः।
असमानोर्ध्वरूपश्री-विस्मापितचराचरः॥ 79॥
लीला-प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्यं वेणुरूपयोः।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम्।
एवं गुणाश्चतुर्भेदाश्चतुःषष्टिरुदाहृताः॥ 80॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **78-80**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इन साठ गुणोंके अतिरिक्त और भी चार गुण श्रीकृष्णमें प्रकाशित है; वे श्रीनारायणमें भी प्रकाशित नहीं हैं—(1) सभी लोगोंको चमत्कृत कर देनेवाली लीलाओंका कल्लोल-समुद्र, (2) शृङ्गाररसके अतुलनीय प्रेमकी शोभासे युक्त प्रियाओंके द्वारा सदा परिवेष्टित, (3) [गोलोक, परव्योम और देवीधाम, इन] तीनों लोकोंके चित्तको आकर्षित करनेवाली मुरलीके गीतका गान करनेवाले, (4) जिनके समान और जिनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है और जो चराचरको अपने सौन्दर्यसे विस्मित करते हैं। इस प्रकारकी (प्रेममयी) लीला, अति उत्कृष्ट प्रियाका सङ्ग (अर्थात् प्रेमिक-प्रियजनोंके प्रति वात्सल्य), रूपमाधुर्य और वेणुमाधुर्य—ये चार श्रीकृष्णके

असाधारण गुण हैं। चार प्रकारके भेदसे अर्थात् साधारण-जीव, शिवादि देवता, श्रीनारायणादि परमेश्वर-स्वरूप और साक्षात् (स्वयंरूप) श्रीगोविन्दके भेदसे, कुल मिलाकर चौंसठ गुण बतलाये गये हैं॥ 78-80॥

अनुभाष्य—

सर्वाद्भुतचमत्कार-लीला-कल्लोल-वारिधिः (सर्वेषाम् अद्भुतानां चमत्कारः विस्मयोत्पादकः यतः एवम्भूता या लीलाकल्लोलानां तरङ्गाणां वारिधिः, सकलविचित्रविस्मयकारिणी-लीलाश्रयः) अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलः (अतुल्येन मधुर-प्रेम्णा मण्डितः प्रियजनसमूहः येन सः, अनुपम-मधुरप्रेमालङ्कृत निजप्रेष्ठजनः) त्रिजगन्मानसाकर्षिमुरलीकल-कूजितः (गोलोक-परव्योम-देवीधामेति त्रयाणां त्रिजगतां मानसानि आकृष्टुं शीलमस्य तथाभूतं मुरल्याः वंश्याः कलं मधुरास्फुटं कूजितं ध्वनिः यस्य सः), असमानोर्ध्वरूपश्रीविस्मापित-चराचरः (येन सह समं यतः ऊर्ध्वं रूपम् अन्येषां नास्ति, तादृशाद्वितीय-सौन्दर्य-श्रिया विस्मापितं कौतुहलोत्पादितं चराचरं स्थिर-जङ्गमं येन सः)। लीलाप्रेम्णा प्रियाधिक्यं वेणुरूपयोः माधुर्यम् इति गोविन्दस्य असाधारणं चतुष्टयं [लक्षणं] प्रोक्तम्—एवं चतुर्भेदाः गुणाः [सर्वसाकल्येन] चतुःषष्टिः उदाहृताः।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 78-80॥

श्रीराधिकाके श्रीकृष्णको आकर्षित करनेवाले पचीस गुणोंका वर्णन :—

अनन्त गुण श्रीराधिकार, पँचिश—प्रधान।
येइ गुणेर 'वश' हय कृष्ण भगवान्॥ 81॥

अनुवाद—श्रीमती राधिकाके भी अनन्त गुण हैं, जिनमेंसे पचीस प्रधान गुण हैं। श्रीमती राधिकाके इन गुणोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण भी वशीभूत हो जाते हैं॥ 81॥

उज्ज्वलनीलमणिमें श्रीराधाप्रकरण (11-15)में :—

अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः।
मधुरेयं नववयाश्चलापाङ्गोज्ज्वलस्मिता॥ 82॥

चारु-सौभाग्यरेखाढ्या गन्धोन्मादितमाधवा।
सङ्गीतप्रसराभिज्ञा रम्यवाक् नर्मपण्डिता॥ 83॥

विनीता करुणापूर्णा विदग्धा पाटवान्विता।
लज्जाशीला सुमर्यादा धैर्या गाम्भीर्यशालिनी॥ 84॥

सुविलासा महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी।
गोकुलप्रेमवसतिर्जगच्छ्र

गुर्वर्पितगुरुस्नेहा सखीप्रणयितावशा।
कृष्णप्रियावलीमुख्या सन्तताश्रव-केशवा॥ 86॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 82-86॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अब वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाके प्रधान-प्रधान गुणोंका वर्णन किया जा रहा है,—(1) माधुर्यवती, (2) नवीनवयसयुक्ता अर्थात् किशोरी, (3) चञ्चल-नेत्रोंवाली, (4) उज्ज्वल-हास्यसे युक्त, (5) सुन्दर-सौभाग्य रेखाओंसे युक्त, (6) अपनी सुगन्धसे श्रीकृष्णको उन्मादित करनेवाली, (7) सङ्गीतके विस्तारमें पारदर्शी, (8) रमणीय वाणीसे युक्त, (9) नर्म-परिहासादि गुणोंमें पण्डिता, (10) विनीता, (11) करुणा-पूर्णा, (12) चतुरा, (13) कर्त्तव्य-कुशला, (14) लज्जाशीला, (15) सुमर्यादा पालनकारिनी, (16) धैर्ययुक्ता, (17) गाम्भीर्यमयी, (18) सुविलासयुक्ता, (19) परमोत्कर्षमें महाभावमयी, (20) गोकुलवासियोंके प्रेमकी आश्रय, (21) अखिल ब्रह्माण्डमें यश-युक्ता, (22) गुरुजनोंमें समर्पित गुरुस्नेहवती, (23) सखियोंके प्रणयके वशीभूत रहनेवाली, (24) श्रीकृष्णप्रिया रमणियोंमें मुख्या, (25) सदा श्रीकेशवको अपने अधीन करनेवाली॥ 82-86॥

अनुभाष्य—

अथ वृन्दावनेश्वर्याः (श्रीराधिकायाः) प्रवराः (प्रधानाः) गुणाः कीर्त्तयन्ते,—इयं (श्रीराधिका) मधुरा (माधुर्यवती), नववयाः (नवं वयः यस्याः सा, किशोरी), चलपाङ्गा (चलः चञ्चलः अपाङ्गः यस्याः सा), चारुसौभाग्यरेखाढ्या (चारवः सौभाग्यरेखाः ताभिः आढ्या युक्ता), गन्धोन्मादितमाधवा (गन्धेन स्वीयाङ्गसुरभिणा उन्मादितः माधवो यया), सङ्गीत-प्रसराभिज्ञा (सङ्गीतस्य प्रसरे विस्तारे अभिज्ञा पारदर्शिनी), रम्यवाक् (रम्या श्रुतिमनोज्ञा वाक् यस्याः सा), नर्मपण्डिता (नर्मणि परिहासकर्मणि पण्डिता

अभिज्ञा), विनीता (नम्रा), करुणापूर्णा (स्वाश्रित गोपी-दुःखसहने असमर्था, परम-दयामयी), विदग्धा (रतिकलाभिज्ञा) पाटवान्विता (कर्त्तव्य-कुशला), लज्जाशीला (स्वप्रशंसायां वीतस्पृहा), सुमर्यादा (कृष्ण-गौरविणी), धैर्या (धीरा) गाम्भीर्यशालिनी (अचञ्चला), सुविलासा (लीलामयी), महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी (महाभावस्य परमोत्कर्षविषये तृष्णान्विता), गोकुलप्रेमवसतिः (गोकुलवासिनां प्रेमास्पदं), जगच्छ्र
लसन्ति यशांसि यस्याः सा), गुर्वर्पित-गुरुस्नेहा (गुरुजनानामधिक-स्नेह पात्री), सखीप्रणयितावशा (सखीनां प्रणयितस्य प्रणयभावस्य वशा वशीभूता), कृष्णप्रियावली-मुख्या (कृष्णप्रेष्ठा), सन्ततास्रवकेशवा (सन्ततं अविरतम् आश्रवः वशम्वदः केशवः यस्याः सा)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 82-86॥

दो प्रकारके आलम्बन—(1) एकमात्र 'विषय' श्रीकृष्ण और (2) बहुत प्रकारके 'आश्रय', उनमेंसे श्रीराधाकी सर्वश्रेष्ठता :—

नायक-नायिका,—दुइ रसेर 'आलम्बन'।
सेइ दुइ श्रेष्ठ,—राधा, व्रजेन्द्रनन्दन॥ 87॥

अनुवाद—नायक और नायिका,—ये दोनों रसके आलम्बन हैं। श्रीराधा और श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ नायिका और नायक हैं॥ 87॥

शान्तके अतिरिक्त अन्य सेवकोंकी चार प्रकारके रसोंमें श्रीकृष्णसेवाका वर्णन :—

एइमत दास्ये दास, सख्ये सखागण।
वात्सल्ये माता पिता आश्रयालम्बन॥ 88॥

एइ रस अनुभावे यैछे भक्त-गण।
यैछे रस हय, शुन ताहार लक्षण॥ 89॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 88-89॥

अनुभाष्य—जिस प्रकार व्रजेन्द्रनन्दन और वृषभानु-कुमारी मधुर-रसमें दो श्रेष्ठ आलम्बन हैं, उसी प्रकार दास्यरसमें व्रजेन्द्रनन्दन और चित्रक, रक्तक, पत्रक आदि एवं सख्यरसमें व्रजेन्द्रनन्दन और श्रीदाम, सुदाम, सुबलादि सखा और वात्सल्यरसमें व्रजेन्द्रनन्दन और नन्द-यशोदादि ही श्रेष्ठ 'आलम्बन' हैं॥ 88-89॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/7-10)—

भक्तिनिर्धूत-दोषाणां प्रसन्नोज्ज्वलचेतसाम्।
श्रीभागवतरक्तानां रसिकासङ्गरङ्गिणाम्॥ 90॥

जीवनीभूत-गोविन्दपादभक्तिसुखाश्रियाम्।
प्रेमान्तरङ्गभूतानि कृत्यान्येवानतिष्ठताम्॥ 91॥

भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कारयुगलोज्ज्वला।
रतिरानन्दरूपैव नीयमाना तु रस्यताम्॥ 92॥

कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि।
प्रौढ़ानन्दश्चमत्कारकाष्ठामापद्यते पराम्॥ 93॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 90-93॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो भक्तिके द्वारा सम्पूर्णरूपसे धोये गये दोषोंसे मुक्त, प्रसन्न और उज्ज्वलचित्त, श्रीभागवतमें अनुरक्त, रसिकोंके सङ्गमें रङ्गयुक्त (आनन्दित), श्रीगोविन्दचरणोंकी भक्तिसुखश्री ही जिनका जीवनस्वरूप है, प्रेमके अन्तरङ्ग सभी कार्योंका अनुष्ठान करनेवाले उन भक्तोंके हृदयमें प्राचीन और आधुनिक संस्कारोंके द्वारा उज्ज्वला आनन्दरूपी रति रसता प्राप्त करके विराजमान होती है। वह श्रीकृष्णादि विभावादिके द्वारा अनुभवके पथपर प्रौढ़ानन्द-चमत्काररूपी पराकाष्ठाको प्राप्त होती है॥ 90-93॥

अनुभाष्य—

भक्तिनिर्धूतदोषाणां (भक्त्या निर्धूताः क्षालिताः दोषाः येषां) प्रसन्नोज्ज्वलचेतसां (प्रसन्नम् उज्ज्वलं चेतः येषां) श्रीभागवतरक्तानां (श्रीभागवतार्थानां आस्वादने अनुरक्तानां) रसिकासङ्गरङ्गिणां (रसिकैः सह रसास्वादन-तत्पराणां) जीवनीभूत-गोविन्दपादभक्तिसुखश्रियां (जीवनीभूता गोविन्दपाद-भक्तिसुखश्रीः कृष्णसेवासुखसम्पत्तिः येषां) प्रेमान्तरङ्गभूतानि (प्रेम्णः अन्तरङ्ग-भूतानि) कृत्यानि (अनुष्ठानादीनि) अनुतिष्ठतां भक्तानां हृदि संस्कारयुगलोज्ज्वला आनन्दरूपा रतिः एव राजन्ती। तु

अनुभवाध्वनि (अनुभव-मार्गे) कृष्णादिभिः विभावाद्यैः गतैः रस्यतां (रसत्वं) नीयमाना परां प्रौढ़ानन्दचमत्कारकाष्ठां (सान्द्रानन्दपराकाष्ठाम्) आपद्यते (प्राप्नोति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **90-93**॥

यह चिन्मय अप्राकृत रसास्वादन—अद्वयज्ञान-श्रीकृष्णसे युक्त मुक्त श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये ही सम्भव, जड़ीय कुरसिकोंके पक्षमें असम्भव :—

एइ रस आस्वाद नाहि अभक्तेर गणे।
कृष्णभक्तगण करे रस आस्वादने॥ 94॥

अनुवाद—इन रसोंका आस्वादन अभक्तगण नहीं कर सकते, केवल श्रीकृष्णके शुद्धभक्त ही इन रसोंका आस्वादन करते हैं॥ **94**॥

शास्त्रप्रमाण :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/5/131)—

सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः।
तत्पादाम्बुजसर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते॥ 95॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **95**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अभक्तोंके लिये यह भगवद्-रस सब प्रकारसे दुर्लभ है, श्रीकृष्ण-चरणकमल ही जिनके सर्वस्व हैं, भक्तिरस—उन्हींको ही प्राप्त होता है॥ **95**॥

अनुभाष्य—

अभक्तैः (भुक्तिमुक्तिपिपासुभिः हरिविमुखैः जनैः) अयं भगवद्रसः सर्वथा एव दुरूहः (दुर्लभः), किन्तु तत्पादाम्बुजसर्वस्वैः (ऐकान्तिकभक्तैः) एव अनुरस्यते (आस्वाद्यः स्यात्)।

श्लोक-भावानुवाद—भुक्ति-मुक्ति-पिपासु हरिविमुख-जनोंके लिये यह भगवद्-रस सर्वथा दुर्लभ है, किन्तु श्रीकृष्णके ऐकान्तिक भक्त ही उसका आस्वादन करते हैं॥ **95**॥

प्रयोजन-तत्त्व-विचार संक्षेपमें वर्णित :—

संक्षेपे कहिलुँ एइ 'प्रयोजन'-विवरण।
पञ्चम-पुरुषार्थ—एइ 'कृष्णप्रेम' महाधन॥ 96॥

अनुवाद—मैंने 'प्रयोजन' तत्त्वका संक्षेपमें वर्णन किया है। श्रीकृष्ण प्रेमरूपी महाधन ही पञ्चम-पुरुषार्थ है॥ **96**॥

पहले प्रयागमें दशाश्वमेध घाटपर श्रीरूपको श्रीकृष्णरसकी शिक्षा-प्रदान :—

पूर्वे प्रयागे आमि रसेर विचारे।
तोमार भाइ रूपे कैलुँ शक्तिसञ्चारे॥ 97॥

अनुवाद—मैंने कुछ समय पूर्व प्रयागमें तुम्हारे भाई रूपमें शक्तिका सञ्चार करके उसे रस-तत्त्वके विचारका श्रवण कराया था॥ **97**॥

महाप्रभुके द्वारा वैष्णवाचार्य श्रीसनातनको आचार्योचित चार साम्प्रदायिक सेवाओंका दायित्व देना :—

तुमिह करिह भक्तिशास्त्रेर प्रचार।
मथुराय लुप्ततीर्थेर करिह उद्धार॥ 98॥
वृन्दावने कृष्णसेवा, वैष्णव-आचार।
भक्तिस्मृतिशास्त्र करि' करिह प्रचार॥"99॥

अनुवाद—तुम भी भक्ति-शास्त्रोंका प्रचार करना और मथुरामें लुप्त-तीर्थोंका उद्धार करना। वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी सेवाको प्रकाशित करना और वैष्णव-आचार और भक्तिमूलक स्मृतिशास्त्रोंके द्वारा वैष्णवोंके लिये उचित आचरणका प्रचार करना॥ "**98-99**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भक्ति-स्मृतिशास्त्र'*—'हरिभक्तिविलास'-ग्रन्थ॥ **99**॥

अनुभाष्य—*'भक्तिशास्त्रेर प्रचार'*—श्रीदशम-स्कन्धकी टिप्पणी 'बृहद्-वैष्णवतोषणी' और बृहद्भागवतामृतादि ग्रन्थ प्रकाश करके (1) शुद्धभक्तिके सिद्धान्तका संस्थापन, (2) लुप्त तीर्थोंका उद्धार—वृन्दावनके कुण्डादि और अन्यान्य स्थानोंका निरूपण, (3) वृन्दावनमें श्रीकृष्णसेवा—श्रीमूर्तिको प्रकट करके सेवाका प्रकाश, (4) वैष्णव-आचार—वैष्णव-स्मृतिग्रन्थका सङ्कलन करके वैष्णव-सदाचारका प्रवर्तन और प्रचार एवं वैष्णव-समाजमें

संस्थापन,—महाप्रभुने इन चार साम्प्रदायिक सेवाओंका भार श्रीसनातन गोस्वामीको प्रदान किया॥ 99॥

युक्त-वैराग्य ही जीवका काम्य और साध्य एवं फल्गु-वैराग्य—सब प्रकारसे त्यागने योग्य :—

युक्तवैराग्य स्थिति सब शिखाइल।
शुष्कवैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल॥ 100॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको युक्त-वैराग्यमें स्थित रहनेकी सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान की और जिस ज्ञानसे शुष्क-वैराग्य होता है, उसका निषेध किया॥ 100॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्ण-सम्बन्धसे जगत्को व्यवहार करनेसे ही 'युक्त-वैराग्य' होता है, जगत्को 'तुच्छ' मानकर संन्यास ग्रहण करनेसे ही 'शुष्क-वैराग्य' होता है॥ 100॥

अनुभाष्य—यहाँ पाठान्तरमें भक्तिरसामृतसिन्धुके पूर्वविभागकी द्वितीय लहरीसे ये दो श्लोक उद्धृत हुए हैं,—

"अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥"
"प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धि-वस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥"

[अर्थात् "कृष्णेतर विषयोंमें आसक्तिरहित होकर और श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध स्थापितकर, उनके सेवानुकूल विषयमात्र ग्रहण करनेको ही युक्त वैराग्य कहते हैं।" "मुमुक्षुगण शास्त्र, श्रीमूर्ति, नाम, महाप्रसाद, गुरु आदि हरि सम्बन्धी वस्तुको भी प्राकृत समझकर उनका परित्याग कर देते हैं, इसीको फल्गु वैराग्य कहते हैं।"]॥ 100॥

गीतामें श्रीकृष्णप्रिय भक्तोंके तटस्थ-लक्षणोंका निर्देश :—
श्रीमद्भगवद्गीता (12/13-20)में—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥ 101॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यार्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ 102॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 101-102॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो भक्त सभी प्राणियोंसे द्वेष-रहित, मित्रतासे युक्त, करुण, ममता-रहित (उदासीन), अहङ्कारशून्य, सुख और दुःखके प्रति समान बुद्धि रखनेवाला, क्षमाशील, सदैव सन्तुष्ट, संयत स्वभाववाला, दृढ़-निश्चयकारी, भक्ति-योगी और मुझमें मन और बुद्धिको अर्पित करनेवाला होता है—वह मेरा प्रिय है॥ 101-102॥

अनुभाष्य—

सर्वभूतानां (सकलजीवानाम्) अद्वेष्टा (हिंसारहितः), मैत्रः (उत्तमेषु द्वेषशून्यः समेषु मित्रतया वर्त्तते यः सः), करुणः (हीनेषु कृपालुः), निर्ममः (ममतारहितः, उदासीनः), निरहङ्कारः, समदुःखसुख (सुखदुःखे तुल्यभावविशिष्टः), क्षमी (अपराधसहनशीलः), सततं (लाभेऽलाभे च) सन्तुष्टः (सुप्रसन्न-चित्तः), योगी (अप्रमत्तः), यतात्मा (संयतस्वभावः), दृढ़निश्चयः (मद्विषये निश्चयः यस्य सः), मयि अर्पितमनोबुद्धि (अर्पिते मनोबुद्धी येन, एवम्भूतः) यः मद्भक्तः, सः मे प्रियः।

*श्लोक-भावानुवाद—*सभी जीवोंके प्रति हिंसारहित, उत्तमसे द्वेषशून्य, समानसे मित्रता, हीनके प्रति कृपालु, उदासीन, निरहङ्कार, सुख-दुःखमें समभावयुक्त, क्षमाशील अर्थात् अपराधसहनशील, सदा लाभ-हानिमें सुप्रसन्न-चित्त, अप्रमत्त, संयतस्वभाव, मेरे विषयमें दृढ़ निश्चयकारी, मुझमें अर्पित मनोबुद्धि जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है॥ 101-102॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ 103॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 103॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिससे किसीको उद्वेग नहीं मिलता, जो किसीसे उद्वेगको नहीं प्राप्त होता और हर्ष-क्रोध-भयरूप उद्वेगसे मुक्त है, वही मेरा प्रिय है॥ 103॥

अनुभाष्य—

यस्मात् (सकाशात्) लोकः न उद्विजते (भयशङ्कया संक्षोभं ना प्राप्नोति), यः च लोकान् न उद्विजते, यः च हर्षामर्षभयोद्वेगैः (हर्षः स्वस्य इष्टार्थलाभे उत्साहः, अमर्षः परस्य लाभे असहनं, भयं त्रासः, उद्वेगः भयादिनिमित्तचित्तक्षोभः, एतैः) यः मुक्तः स च मे प्रियः।

श्लोक-भावानुवाद—जिससे किसीको भय, शङ्का अथवा क्षोभ नहीं होता, जो लोगोंसे उद्वेगको नहीं प्राप्त करता, जो हर्ष (अर्थात् अपने वाञ्छित लाभमें उत्साह), अमर्ष (अर्थात् दूसरोंके लाभमें असहनशील) और भयादिसे चित्तमें क्षोभसे मुक्त है, वह मुझे प्रिय है॥ 103॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ 104॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 104॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरा जो भक्त—अपेक्षाशून्य, पवित्र, दक्ष, उदासीन, व्यथारहित, सर्वारम्भत्यागी है, वह—मेरा प्रिय है॥ 104॥

अनुभाष्य—

यः अनपेक्षः (अन्यापेक्षारहितः यदृच्छयोपस्थितेऽप्यर्थे निस्पृहः), शुचिः (बाह्याभ्यन्तर-शौचसम्पन्नः), दक्षः (अनलसः), उदासीनः (पक्षपातरहितः), गतव्यथः (आधिशून्यः), सर्वारम्भपरित्यागी (सर्वान् दृष्टादृष्टार्थान् आरम्भानुद्यमान् परित्यक्तु एवम्भूतः भक्तः), स मे प्रियः।

श्लोक-भावानुवाद—जो अपेक्षाशून्य अर्थात् वञ्छित वस्तु उपलब्ध होनेपर भी उसमें स्पृहाहीन, बाहर और भीतरसे पवित्र, आलस्यशून्य, पक्षपातरहित, व्यथाशून्य, सभी दृष्ट और अदृष्ट कार्यके आरम्भको त्यागनेका स्वभाववाला है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है॥ 104॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥ 105॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 105॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो—हर्ष, द्वेष, शोक और आकाङ्क्षारहित है और जो शुभ-अशुभ फलत्यागी और भक्तिमान् है, वह—मेरा प्रिय है॥ 105॥

अनुभाष्य—

यः [प्रियं प्राप्य] न हृष्यति, [अप्रियं प्राप्य] न द्वेष्टि, [इष्टार्थनाशे सति यः] न शोचति, [अप्राप्तमर्थं यः] न काङ्क्षति, शुभाशुभपरित्यागी (शुभाशुभे पुण्यपापे परित्यक्तु यस्य सः) [एवम्भूतः भूत्वा यः मयि] भक्तिमान् स मे प्रियः।

श्लोक-भावानुवाद—जो प्रिय वस्तुको प्राप्त करके हर्षित नहीं होता, अप्रियकी प्राप्तिसे द्वेष नहीं करता, इष्ट वस्तुके नाश होनेपर शोक नहीं करता, अप्राप्त वस्तुके लिये कामना नहीं करता, पुण्य और पाप—दोनोंको त्याग करनेवाला है, ऐसा वह भक्तिमान् मेरा प्रिय है॥ 105॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥ 106॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥ 107॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 106-107॥

अमृतप्रवाह भाष्य—शत्रु-मित्र और मान-अपमानमें समबुद्धि, सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखमें समबुद्धि, आसक्तिरहित, निन्दा और स्तुतिमें एक जैसा विचार रखनेवाला, मौनी (संयत वाणी), जैसे-तैसे जो प्राप्त हो उसमें ही सन्तुष्ट, गृहरहित, स्थिरमतिवाला भक्तिमान् व्यक्ति मेरा प्रिय है॥ 106-107॥

अनुभाष्य—

शत्रौ मित्रे च तथा मानापमानयोः (सम्मानासम्मानेषु) अपि समः (एकः तुल्यव्यवहारः इत्यर्थः), शीतोष्ण-सुखदुःखेषु (शीतोष्णयोः सुखदुःखयोः च), समः (तुल्यः), सङ्गविवर्जितः (क्वचिदप्यनासक्तः, अपरसहायहीनः वा), तुल्यनिन्दास्तुतिः (तुल्या निन्दा स्तुतिश्च यस्य सः, प्रशंसा-निन्दा-सम-बुद्धिः इत्यर्थः) मौनी (संयतवाक्), येन केनचित् (यथालब्धेन) सन्तुष्टः, अनिकेतः (नियतवासशून्यः गृहवर्जितः इत्यर्थ), स्थिरमतिः

(व्यवस्थितचित्तः, एवम्भूतः यः मयि) भक्तिमान् नरः, सः मे प्रियः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 106-107॥

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥ 108॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 108॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो इस (गीताके बारहवें अध्यायके श्लोक 2 से 19 तक वर्णित) धर्मामृतमें श्रद्धायुक्त और मेरे परायण होकर उपासना करते हैं, वे मेरे भक्त हैं और मुझे अतिशय प्रिय हैं॥ 108॥

अनुभाष्य—

ये (भक्ताः) यथोक्तं (उक्तप्रकारम्) इदं धर्मामृतं (धर्ममेवामृतम् अमृतसाधनत्वात्) पर्युपासते (अनुतिष्ठन्ति), श्रद्दधानाः (श्रद्धां कुर्वन्तः) मत्परमाः च (मन्निरताः सन्तः) मद्भक्ताः ते मे अतीव प्रियाः [भवन्ति]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 108॥

भक्तिके अनुगामी शुद्ध-वैराग्य-मूलक-वाक्य :—
श्रीमद्भागवत (2/2/5)में—

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान्॥ 109॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 109॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अहो, क्या मार्गमें फटे-पुराने वस्त्र नहीं पड़े रहते, सभी वृक्ष क्या भिक्षा दान नहीं करते, क्या सब नदियाँ आदि सूख गयी हैं? गुफाएँ क्या बन्द हो गयी हैं? ईश्वर क्या शरणागत व्यक्तियोंका पालन नहीं करते? यदि ऐसा ही है, तो पण्डित लोग धनके दुर्मदमें अन्धे (नष्ट-विवेक) व्यक्तियोंका क्यों भजन करते हैं?॥ 109॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेव परीक्षितको स्थूल-जगत्के धारणामय भोगके प्रति स्पृहाशून्य होकर अनासक्त भावसे जितनेमें निर्वाह हो जाय, उतनी ही वस्तुओंको ग्रहण करनेके युक्त-वैराग्यकी बात बतला रहे हैं,—

पथि चीराणि (छिन्नवस्त्रखण्डानि) किं न सन्ति (त्यक्तानि, न वर्त्तते)? परभृतः (परान् बिभ्रति फलादिभिः पुष्णन्ति ये तथाभूताः) अङ्घ्रिपाः (वृक्षाः) भिक्षां न एव दिशन्ति (न दास्यन्ति किम्)? सरितः (सरांसि नद्यः) अपि अशुष्यन् (शुष्काः किम्)? गुहाः (गिरिदर्यः) रुद्धाः किम्? अजितः (विष्णुः) उपसन्नान् (शरणागतान्) किं न अवति (रक्षति)? [यद्येवं, तदा] कवयः (हरिरसविदः पण्डिताः) कस्मात् (केन हेतुना) धनदुर्मदान्धान् (धनेन यः दुर्मदः तेन अन्धान् नष्ट-विवेकान्) भजन्ति (अनुगच्छन्ति)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 109॥

श्रीसनातनके परिप्रश्नके उत्तरमें महाप्रभुके द्वारा
भागवतके गूढ़ सिद्धान्तका वर्णन :—

तबे सनातन सब सिद्धान्त पुछिला।
भागवत-गूढ़सिद्धान्त प्रभु सकलि कहिला॥ 110॥
हरिवंशे कहियाछे गोलोके नित्यस्थिति।
इन्द्र आसि' करिल यबे श्रीकृष्णेर स्तुति॥ 111॥

अनुवाद—महाप्रभुके मुखसे इन सब विचारोंको श्रवण करनेके बाद श्रीसनातन गोस्वामीने बहुतसे सिद्धान्तोंके विषयमें प्रश्न किये। महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको श्रीमद्भागवतके समस्त गूढ़-सिद्धान्तोंका श्रवण कराया। महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको हरिवंश नामक ग्रन्थमें इन्द्रके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति करते समय वर्णित गोलोककी नित्य स्थितिके विषयमें भी समझाया॥ 110-111॥

अनुभाष्य—हरिवंशमें विष्णुपर्वके 19वें अध्यायमें—

"मनुष्यलोकादूर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते।
आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान्॥
स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगण-सेवितः।
तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषाश्च महात्मनाम्॥
तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि।
स हि सर्वगतः कृष्णः महाकाशगतो महान्।

उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी।
यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम्॥
ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः।
गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः॥
सः तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना।
धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम्॥"

अर्थात् गोवर्धन-धारणके बाद इन्द्रने श्रीकृष्णका इस प्रकारसे स्तव किया था,—"मनुष्यलोकके उच्च भागमें पक्षियोंकी गति है। आकाशके ऊपर स्वर्गका प्रकाशमान सूर्यद्वार और स्वर्गके ऊपरी भागमें ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित ब्रह्मलोक है। देवीधामके ऊपरमें स्थित उस धाममें उमाके साथ शिव वर्तमान हैं; वह तेजःसम्पन्न ब्रह्मादि मुक्तपुरुषोंका आवास-स्थान है। वैकुण्ठके ऊपर गोलोक, वहाँ श्रीमती राधिकादि और नन्द-यशोदादि साध्यगण पालन करते हैं। वैकुण्ठादि धाम—गोलोककी तुलनामें स्वल्प-आकाश मात्र हैं; गोलोक ही महा-आकाश है। हम ब्रह्मासे जिज्ञासा करके भी आपकी तपोमयी गतिरूपा सर्वोपरि गोलोकपतिकी उपलब्धि नहीं कर पाये। श्रीनारायणके दास्यसे ही वैकुण्ठ-प्राप्ति होती है; किन्तु गो-गणोंके लोक उस गोलोक तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। हे कृष्ण, उसी गोलोकके साथ आप यहाँ अवतीर्ण हुए हो और मैंने जो उपद्रव किया है, वह मेरी मूर्खताका ही परिणाम है, उसीको मैं स्तवके द्वारा बतला रहा हूँ।"

इस स्थानपर नीलकण्ठने अपनी टीकामें लिखा है,—

"तथा च मन्त्रवर्णः (ऋक् सं 1/21/154/6)—
"ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि" इति।
तानि वां युवयोः रामकृष्णयोर्वास्तूनि रम्यस्थानानि गमध्यै गन्तुम् उश्मसि उश्मः कामयामहे, न तु तत्र गन्तुं प्रभवामः, यत्र येषु वास्तुषु भूरिशृङ्गाः महाशृङ्गवत्यो गावः आयासः सञ्चरन्ति। अत्र भूलोके अह निश्चितं तत् गोलोकाख्यं परमं पदं भूरि अत्यन्तं मुख्यादपि विशिष्टम् अवभाति अत्यन्तं शोभते। वृष्णः आनन्दवर्षुकस्य उरुगायस्य महाकीर्त्तेरित्यर्थः।

[अर्थात् "उस विषयमें वैदिक मन्त्रवर्ण प्रमाण हैं, जैसे ऋक्संहितामें *"ता वां"* आदि। आप दोनोंके अर्थात् श्रीराम-कृष्णके उस रम्य स्थानसमूहमें गमन करनेकी कामना की, किन्तु वहाँ जानेमें समर्थ नहीं हूँ। वहाँ अर्थात् जिस भूमिसमूहमें बड़े-बड़े सींगोंवाली गायें विचरण करती हैं। इस भूलोकमें निश्चितरूपसे वही गोलोक-नामक परमपद मूलधामसे भी अत्यन्त विशिष्ट रूपमें शोभित है। यह आनन्दवर्षण करनेवाले महाकीर्ति श्रीकृष्णका परम पद है—यह अर्थ है।"]॥ 111॥

कुछ असुरमोहिनी अनित्य प्राकृत घटनाएँ :—

मौषल-लीला, आर कृष्ण-अन्तर्धान।
केशावतार, आर विरुद्ध व्याख्यान॥ 112॥

महाप्रभुके द्वारा कही गयी मूसल-लीलादिके सम्बन्धमें वास्तविक सिद्धान्त-व्याख्या :—

महिषी-हरण आदि, सब—मायामय।
व्याख्या शिखाइल यैछे सुसिद्धान्त हय॥ 113॥

अनुवाद—मूसल-लीला, श्रीकृष्णका अन्तर्धान होना, केशावतार और अन्यान्य विरुद्ध व्याख्यान, महिषी-हरणादि, ये सब मायामय हैं, इन सबकी महाप्रभुने व्याख्या करके श्रीसनातन गोस्वामीको सुसिद्धान्तकी शिक्षा प्रदान की॥ 112-113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'काककृष्णकेश'-रूपी श्रीकृष्ण-अवतार—यह जो विरुद्ध व्याख्यान हैं, उसे धिक्कार देकर 'क+ईश=केश' अर्थात् श्रीकृष्ण—'ब्रह्माके ईश्वर' इस प्रकार शुद्ध व्याख्याकी शिक्षा दी॥ 112॥

तेइसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—महाभारतकी मूसल-लीला, श्रीकृष्णके अन्तर्धानकी लीला, केशावतार और महिषी-हरण आदि आख्यान,—सभी मिथ्या हैं, नित्य अप्राकृतलीला नहीं हैं। मूढ़मति प्रापञ्चिक विष्णुविद्वेषी असुर लोगोंके मोह और भ्रमको उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे ही इन सबका वर्णन हुआ है।

'केशावतार'—(भाः 2/7/26 देखें); विष्णुपुराणमें—
"उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महाबल"
महाभारतमें—

"स चापि केशौ हरिरुच्चकर्त्त एकं शुक्लमपरञ्चापि कृष्णम्। तौ चापि केशवाविशतां यदूनां कुले स्त्रियो रोहिणीं देवकीञ्च॥ तयोरेको बलभद्रो बभूवः योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः। कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशः योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्त इति॥"

अर्थात् भागवत, विष्णुपुराण और महाभारतमें केशावतारका इस प्रकार उल्लेख है,—"श्रीहरिने अपने मस्तकसे शुक्लवर्ण (सफेद) और कृष्णवर्ण (काले)—दो केशोंको तोड़ा था। दो केश यदुकुलकी स्त्रियों रोहिणी और देवकीमें प्रविष्ट होनेपर पहले सफेद केशसे वर्णके अनुसार 'बलदेव' और दूसरे काले-केशसे 'श्रीकृष्ण' उत्पन्न हुए, ऐसा कहा जाता है। असुरोंके द्वारा रौंदी हुई पृथ्वीके क्लेश नाशके लिये जो अंशके द्वारा श्वेतकृष्ण हुए, वे हरि अवतीर्ण होकर अपनी महिमा दिखलानेवाले कार्य करेंगे॥" इस स्थानपर लघुभागवतामृतमें कृष्णामृत-नामक पूर्वखण्डकी 156-164 संख्यामें "श्रीकृष्ण—क्षीरोदशायीके केशके अवतार' इस पूर्वपक्षके खण्डनके लिये श्रीरूपप्रभुके और लघुभागवतामृतके टीकाकार श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके विचार और षट्-सन्दर्भके अन्तर्गत कृष्णसन्दर्भकी 29 संख्या और सर्वसम्वादिनीमें श्रीजीवप्रभुके विचार आलोच्य हैं॥ **112-113**॥

तेइसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

अमृतानुकणा— *"मौषललीला, आर कृष्ण-अन्तर्धान"*—मूसललीला और श्रीकृष्णके देह-त्यागादिकी लीला जो इन्द्रजालके समान भगवद्-मायाबलसे रचित है, यह बात भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं ही अपने सारथी दारुकको बतलायी, (भाः 11/30/49)—

"त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः।
मन्मायारचितामेतां विज्ञायोपशमं व्रज॥"

अर्थात् "अभी लोगोंके प्राकृत-नेत्रोंके सामने प्रकाशित 'मूसल' और 'देहत्यागादि' समस्त लीलाएँ ही जो इन्द्रजालके समान मेरी मायाके द्वारा रचित हैं, इसे विशेषरूपसे जानकर तुम उसके प्रति उपेक्षाशील होवो।"

'तु'-शब्दसे यह कहा गया है कि मेरे विरोधी अन्य प्राकृत लोग उससे मुग्ध होते हों, तो हों, किन्तु तुम्हारा मोहित होना युक्तिसङ्गत नहीं है।'—(क्रमसन्दर्भ)। बादमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने भी महाराज परीक्षितको यह रहस्य बतलाया। (भाः 11/31/11)—

"राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा,
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य।"

अर्थात् "हे राजन्! नट अर्थात् ऐन्द्रजालिक जिस प्रकार रङ्गमञ्चपर सबके सामने काटने, जलाने, मूर्च्छा आदिके द्वारा अपने शरीरको त्याग करना दिखाकर सबका विश्वास उत्पन्न करता है, परन्तु नटका अपना देह धारण ही जैसे सत्य है और उसका अपना देहत्याग ही मिथ्या है, उसी प्रकार परतत्त्व श्रीकृष्णकी आविर्भाव-तिरोभाव-लीलाको भी मायाका अभिनय मात्र जानना होगा। अन्यथा वे यमलोकसे गुरुपुत्रको सशरीर लेकर आये थे, ब्रह्मास्त्रसे तुम्हारी भी रक्षा की थी, मृत्युञ्जय शङ्करको संग्राममें पराजित किया था और व्याधको सशरीर स्वर्गमें भेजा था, तो वे श्रीकृष्ण क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं?"

मूसललीला और उसके बाद श्रीकृष्ण-अन्तर्धानादि लीलाएँ किस प्रकार मायासे रचित हैं, उसे "एते घोराः" (भाः 11/30/5)—श्लोककी टीकामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने बतलाया है,—"कुरुक्षेत्र यात्रामें मुझसे (श्रीकृष्णसे) मिलनेके लिये अनेक दिशाओंमें स्थित देशोंसे आये हुए लोगोंके बीचमें अलक्षित रूपसे 'कलि' भी आया था और उसने मुझसे कहा था,—'प्रभो! पृथ्वीपर मेरा अधिकार कब होगा?' उसके उत्तरमें मैंने कहा था,—'मेरी लीला-समाप्तिके बाद ही मेरे द्वारा दिये गये अधिकारको प्राप्त करके तुम (कलि) पृथ्वीपर अधिकार करोगे।' किन्तु मेरे अवतारमें अभी इस धर्म चार-पैररूपमें ही है, यहाँ तक कि सत्ययुगकी अपेक्षा भी अधिकतर

उसकी वृद्धि हुई है। धर्मका ऐसी प्रबलता रहनेपर कलि किस प्रकारसे अधिकार प्राप्त कर सकेगा? क्योंकि धर्मका एक पैर मात्र बचनेपर ही कलिकी अधिकार प्राप्त करनेकी योग्यता होती है,—ऐसा नियम है। (यदि कहें,) 'कारणका नाश होनेपर कार्यका भी नाश होता है, इस न्यायके अनुसार जगत्में मेरे अप्रकट होनेपर वह चार पैरवाला धर्म भी लुप्त हो जायेगा'—ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मेरी सर्वजगत्-पावनी महाकीर्ति सब समयके लिये जागरूक होकर वर्तमान रहती है। और मेरे अनुकूल, प्रतिकूल और तटस्थ लोगोंमें-से प्रतिकूल लोगोंका मेरे द्वारा संहार हुआ है। अब श्रीरामावतारके जैसे ही सभी लोगोंके समक्ष अपने धामवासियोंके साथ वैकुण्ठमें आरोहण करनेपर अनुकूल लोग दोगुना भक्त होंगे, अति-अनुकूल लोग परम उत्कण्ठायुक्त होकर सौगुना प्रेमवान् होंगे और तटस्थ लोग परम-आश्चर्यके दर्शनसे भक्त होंगे—इसके द्वारा धर्म अपितु और भी वृद्धि प्राप्त करेगा। ऐसा होनेपर किस प्रकारसे कलिका लेषमात्र भी प्रभुत्व सम्भव होगा? इसलिये धर्मको सङ्कुचित करनेके लिये अधर्म-मतको किसी प्रकारसे ऊपर उठाऊँगा। यहाँपर यही उपाय है,—मैं अपने निजलीला-परिकरों यदुगणोंके साथ द्वारकामें पहलेके जैसे विराजमान होऊँगा, किन्तु सब प्रापञ्चिक लोगोंके नेत्रोंके लिये अदृश्य रहूँगा। इधर प्रद्युम्न, साम्बादि मेरे नित्य परिकरोंमें उनके-उनके विभूति-स्वरूप कन्दर्प (कामदेव), कार्त्तिकेयादि जो देवतागण प्रविष्ट हुए हैं, उनको योगबलके प्रभावसे उन-उन देहोंसे अलक्षितरूपसे पृथक् करूँगा। तभी प्रद्युम्नादि रूपमें अभिमानकारी उन देवताओंको उस समय सभी लोगोंके सामने ही उन रूपोंमें ही प्रकाशित करके अन्य द्वारकावासियोंके साथ प्रभासमें भेजकर दान-ध्यान-मधुपानादि कराऊँगा। बादमें उन-उन अधिकारिक देवताओंको स्वर्गमें उनके-उनके अधिकारमें स्थापित करूँगा और मैं अपने नित्य परिकरोंके साथ श्रीदशरथनन्द श्रीरामचन्द्रकी भाँति वैकुण्ठमें प्रस्थान करूँगा। किन्तु लोगोंके नेत्रोंमें मायाका दोष प्रवेश होनेके कारण वे इस प्रकार सोचेंगे,—ब्राह्मणके शापसे ग्रस्त यदुवंशियोंने प्रभासमें जाकर मधुपान करके मत्त होकर एक-दूसरेपर प्रहार करके देह-त्याग किया है और परमेश्वर श्रीकृष्णने भी श्रीबलदेवके साथ मनुष्य देह त्याग करके निजधाममें आरोहण किया है। इस कारणसे कोई-कोई मुझको अनित्य और मायिक मनुष्य शरीरवाला कहकर व्याख्या करेंगे। इस प्रकारसे अवज्ञा करनेपर महा अपराध होगा, क्योंकि मैंने कहा है, (गीता 9/11)—

"अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्"

["मेरे चिन्मय विग्रहको देखकर भी मूर्ख व्यक्ति सोचते हैं कि मैंने यह प्राकृत मनुष्य शरीर धारण किया है।"] अन्य कुछ लोग कहेंगे कि जिस प्रकार कुरुवंशका विनाश हुआ है, उसी प्रकारसे श्रीकृष्ण वंशसहित प्रभासमें विनाशको प्राप्त हुए हैं,—इस प्रकार अधम, ज्ञानके अभिमानी दुर्जन लोगोंके कुमत सुनने, बोलने, अनुमोदन करने और प्रचारके द्वारा धर्म तुरन्त ही एक पैरका रह जायेगा। पित्तादि दोषयुक्त नेत्र जिस प्रकार उज्ज्वल श्वेत शङ्खको भी पीला और मलिनरूपमें देखते हैं, उसी प्रकार मायादोषसे दूषित मानव मेरी सच्चिदानन्दमयी निर्याणलीलाको भी दुर्गति और प्राकृत-रूपमें ही दर्शन करेंगे और मेरी भक्तिसे दूर होंगे। केवल प्राकृत लोग ही नहीं, किन्तु मेरे अंशसे प्रकटित अर्जुनादि भी और उसी प्रकारसे वैशम्पायन, पराशरादि मुनिगण भी मेरी मायासे मोहित होकर अपनी-अपनी संहितामें (यथाक्रमसे महाभारत, विष्णुपुराणमें) उसको वर्णन करेंगे।' इत्यादि।

इसलिये देखा जाता है, (ब्रह्मपुराण)—

"अजात-जातवद्विष्णुरमृत-मृतवत् तथा।
मायया दर्शयेन्नित्यमज्ञानां मोहनाय च॥"

"भगवान् विष्णु मायाबलसे अज्ञानी व्यक्तियोंको मोहित करनेके लिये अजन्मा होनेपर भी जन्म लिये

हुए जीवके जैसे और अमर होनेपर भी मृत जीवके जैसे अपनेको प्रदर्शन करते हैं और ऋषिगणोंको भी उसी प्रकार तात्कालिक भावोंसे मोहित करके उनके द्वारा शास्त्रोंमें मोहजनक वाक्यजालका विस्तार करके अपने आपको शुद्धभक्तिरहित जीवोंसे गोपन रखते हैं।" (भाः 11/22/4)—

"युक्तश्च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम्॥"

"ऋषियोंने जिसको जिस रूपमें वर्णन किया है, वह उस रूपमें सत्य है, क्योंकि मेरी (श्रीकृष्णकी) मायासे मोहित होकर व्याख्या करनेवालोंके कोई भी वाक्य असम्भव नहीं हैं।" किन्तु सुमेधागण (अति बुद्धिमान व्यक्ति) उस प्रकारके वाक्योंसे भ्रमित नहीं होते हैं, जैसा श्रीउद्धवने श्रीविदुरसे कहा, (भाः 3/2/10)—

"देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः।
भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनौ हरौ॥"

"जो भगवान्‌की मायासे मुग्ध हैं और अन्य जो असत्-मतावलम्बी हैं, उनके वाक्योंसे परमात्मा श्रीहरिमें जिनका चित्त निविष्ट है, ऐसे मानवोंकी बुद्धि भ्रान्त नहीं होती है।" क्योंकि वे शास्त्रयुक्तिमें सुनिपुण हैं। शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर शुद्ध सिद्धान्त भी प्रकाशित हैं, जैसे स्कन्दपुराणमें कहा गया है,—

"पृथिवीलोकसंत्यागो देहत्यागो हरेः स्मृतः।
नित्यानन्दस्वरूपत्वादन्यत्रैवोपलभ्यते॥"

"श्रीहरिके 'देहत्याग'-शब्दसे उनके पृथ्वीलोकके त्यागको ही कहा गया है ('यस्य पृथिवी शरीरम्'—इस श्रुतिमें ही उसका प्रमाण है), क्योंकि वे नित्यानन्दस्वरूप हैं, इसलिये उनकी अन्य प्रकारके अर्थके द्वारा उपलब्धि नहीं होती।" इस प्रसङ्गमें श्रीचैतन्यभागवतमें आदिखण्डमें १४ अध्यायमें १०४ संख्यामें श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-कृत 'गौड़ीय-भाष्य' भी देखें।

'केशावतार'—(भाः 1/2/28 में)—*"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"*—इस प्रकारसे श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ता प्रमाणित हुई है। तथापि (भाः 2/7/26)—*"भूमः सुरेतरवरूथ"* श्लोकमें *"क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः"* अर्थात् श्वेत और कृष्णवर्ण केशवाले श्रीक्षीरोदशायी विष्णु अंशरूपमें पृथ्वीके क्लेश नाश करनेके लिये आविर्भूत होंगे, इस रूपसे इस ब्रह्मा-वाक्यमें जो आपातरूपसे श्रीकृष्णका श्रीविष्णुके केशावतार होना दिखायी देता है, वह मायाके द्वारा भ्रान्ति उत्पादन करके श्रीकृष्णकी असमोर्ध्व-महिमाको सङ्गोपन करनेके लिये ही है। किन्तु जैसा कृष्णसन्दर्भमें कहा है,—*"यैस्तु यथाश्रुतमेवेदं व्याख्यातं ते न सम्यक् परामृष्टवन्तः* अर्थात् जो श्लोकको जैसे सुना है, वैसे अर्थकी व्याख्या करते हैं, वे सम्पूर्ण रूपसे विचारपरायण नहीं हैं।" जैसे, विष्णुपुराणमें कहा गया है,—'हे महामुने! भगवान् परमेश्वरने अपने श्वेत और कृष्ण दो केशोंको तोड़ा और देवताओंको कहा,—मेरे ये दो केश पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर पृथ्वीका भार हरण करेंगे।' और महाभारतमें भी उसी प्रकार कहा गया है,—'उन श्रीविष्णुने दो केशोंको तोड़ा, उनमेंसे एक श्वेत और दूसरा कृष्णवर्णका था; वे दो केश ही यदुगणके कुलमें देवकी और रोहिणी—दो स्त्रियोंमें प्रविष्ट हुए थे। उनमेंसे एक जो श्वेतवर्ण-केश हैं, वे बलदेव हुए थे और दूसरे जो श्रीकृष्णवर्ण-केश हैं, वे श्रीकेशव—'श्रीकृष्ण'-नामसे कहे गये थे।'

उस-उस स्थानपर जो अर्थ आपात प्रकट हुए, उनपर विचार करनेपर उनमें कोई सङ्गति दिखायी नहीं देती। क्योंकि, इनके द्वारा त्रिगुणातीत, अविकारी, चिदानन्दघन-विग्रह श्रीविष्णुकी आयुके परिणामरूप सफेद और काले केश होना समझना होगा। परन्तु शास्त्रमें (भाः 3/28/17)—*'सन्तं वयसि कैशोरे'* इस रूपमें उनकी नित्य किशोर अवस्था ही दिखायी देती है। और फिर (भाः 1/3/28)—*"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"*—इस रूपसे श्रीकृष्णमें स्वयं भगवत्ता ही वर्णित है। इसलिये विद्वान लोग उसकी इस प्रकारसे व्याख्या करते हैं, जैसे, श्रीधरस्वामीपाद-कृत व्याख्या,—*'सितकृष्णकेशत्व'*—

सफेद-काले केशोंका होना यह विष्णुकी शोभास्वरूप ही है, आयुका कोई परिणाम नहीं है। 'भारहरण-रूप कार्यकी बात ही क्या, वह तो मेरे दो केश भी करनेमें समर्थ हैं'—इस बातको प्रकाश करते हुए और उसके साथ श्रीबलरामके और श्रीकृष्णके वर्णकी सूचना करते हुए उन्होंने उक्त केशोंको तोड़ा था, ऐसा जानना होगा। अन्यथा शास्त्रमें कहे गये पूर्व और बादके वाक्योंका परस्परमें विरोध उपस्थित होता है एवं *'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'*—इस वाक्यसे भी विरोध होता है। इसलिये *'सितकृष्णकेश'* (अर्थात् उज्ज्वलकृष्णकेश)—स्वयं भगवान् ही हैं, वे अपने अंश श्रीबलरामके साथ जन्म ग्रहण करते हैं। श्रीलघुभागवतामृतमें श्रीरूपगोस्वामि-कृत व्याख्या,—*'कलया सितकृष्णकेशः'* (भाः 2/7/26) *'कलया'* अर्थात् शिल्पमें विशेष निपुणताके द्वारा *'सित'*—बद्ध जो *'कृष्णकेश'* हैं अर्थात् अति सुन्दर श्यामवर्ण केशयुक्त जो विग्रह वे ही श्रीकृष्ण हैं,—उनकी विशेष वैदग्धीके कारण इस प्रकारसे कहा गया है। अथवा जो *'कलया'* अर्थात् एक अंश रूपमें *'सितकृष्णकेशः'* अर्थात् श्वेतकृष्णकेश युक्त क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, वे लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही यदुवंशमें आविर्भूत हुए हैं। सन्दर्भमें श्रील जीवगोस्वामि-कृत व्याख्या,—

"अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिता।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्मनिसत्तम॥"

अर्थात् "हे मुनिश्रेष्ठतम! मेरा जो अंशसमूह (ज्योतिसमूह) प्रकाशित हो रहा है उसको 'केश'-नामसे कहते हैं। इसलिये सर्वज्ञगण मुझको 'केशव' कहते हैं—इस महाभारत-वाक्यके अनुसार मेरे (अर्थात् क्षीरोकशायी विष्णुके) सिरपर धारण किये श्वेत और कृष्णवर्णकी दो ज्योतिरूप दो प्रभु अवतरित होंगे', इसकी सूचना देनेके लिये ही (विष्णुपुराणमें) दो केशोंकी बात कही गयी है।" और भी विष्णुपुराण, महाभारतमें सब जगह 'केश'-शब्दका ही मात्र प्रयोग दिखायी देता है, किन्तु उसके समानार्थक 'चिकुर', 'कुन्तल' आदि किसी शब्दका प्रयोग नहीं देखा जाता। इसलिये (भाः 11/21/35)—*"परोक्षवादा ऋषयः परोक्षञ्च मम प्रियः"* अर्थात् "ऋषिगण परोक्षवादी हैं और परोक्ष ही मुझे (श्रीकृष्णको) प्रिय है"—इस प्रकारसे भगवान्की इच्छानुसार परोक्षवादी ऋषियोंके मनोभावको ही उन-उन वाक्योंमें समझना होगा, उनके वाक्योंका बाह्य अर्थ नहीं लेने होंगे आदि।'—(श्रीविश्वनाथ)

'महिषीहरण'—(भाः 1/15/20)—

"अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि॥"

श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेके बाद द्वारकापुरीसे वापिस लौटे श्रीअर्जुन महाराज श्रीयुधिष्ठिरको श्रीकृष्णके विरहमें अनेक प्रकारसे विलाप करते करते कहने लगे,—"श्रीकृष्णविहीन होकर मैं इस प्रकार बलहीन हो गया हूँ कि उनकी (आठ प्रधान महीषियोंके अतिरिक्त अन्य) सोलह हजार स्त्रियोंकी रक्षा करते हुए जब मैं आ रहा था, तब मार्गमें कुछ नीच गोपोंके द्वारा मैं अबलाकी भाँति पराजित हो गया।" श्रीभगवान्के जो सखा हैं, उन प्रबल-पराक्रमशाली श्रीअर्जुनके निकटसे उनके सखाकी पत्नियोंका हरण नितान्त असम्भव है। वहाँपर रहस्य यह है कि,—'उन अपनी प्रेयसियोंको (व्रजमें) अप्रकट-प्रकाशमें प्रवेश करानेके लिये उस-उस रूपमें भगवान्ने उनका आकर्षण किया, क्योंकि उनकी इस प्रकारसे अभिलाषा थी। जैसे (महीषियोंने द्रौपदीसे कहा था), (भाः 10/83/43)—

"व्रजस्त्रियो यद् वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः।
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः॥"

"जिस प्रकार गोचारणशील श्रीकृष्णकी चरणरजको व्रजरमणियोंने, गोपगणोंने और यहाँतक कि तृण-लतासे संलग्न उस चरणरजको उठाकर पुलिन्द-रमणियोंने भी प्राप्त किया था, हमें भी उसकी चाह है।"

महीषियोंके इस प्रकारके वाक्योंमें व्रजस्त्रियोंके द्वारा वाञ्छित भगवद्-स्वरूप ही (अर्थात् श्रीकृष्णका गोपस्वरूप ही) है। उनके मनोरथको जानकर भगवान्ने गोपरूपमें उनका आकर्षण किया था, अन्यथा वे

साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा महीषियाँ नीच व्यक्तिके स्पर्शके पहले ही अन्तर्धान हो जातीं। इसलिये दूसरे शब्दोंमें महीषियोंके द्वारा व्रजस्त्री रूपकी प्राप्ति ही जानना होगा। विष्णपुराणमें और ब्रह्मपुराणमें भी इस प्रकारके तात्पर्यसे अवगत हुआ जाता है। जैसे, श्रीअर्जुनसे श्रीव्यासदेवने कहा,—

"एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य केशवम्।
भर्त्तारं प्राप्य ता याता दस्युहन्ताः वराङ्गनाः॥"

"इस प्रकारसे उन अष्टावक्र मुनिके अभिशापसे वे वराङ्गनाएँ (सुन्दर अङ्गोंवाली) केशवको पतिरूपमें प्राप्त करके बादमें डाकुओंके हाथोंमें पड़ी थीं।"

पूर्वकालमें देवियोंने एक समय अष्टावक्र-मुनिका स्तव करके उन्हें सन्तुष्ट किया और उन्होंने मुनिसे यह वर प्राप्त किया कि विष्णु उनके पति होंगे। बादमें मुनिवर जब उठे, तब उनके अङ्गोंको टेढ़ा देखकर वे देवियाँ हँसने लगीं, उससे रुष्ट होकर मुनिने शाप भी दिया कि 'तुम डाकुओंके द्वारा अपहृत होवोगी।' पुनः उन्होंने मुनिको प्रसन्न करके उक्त शापसे मुक्ति प्राप्त की थी। ऋषिवाक्य व्यर्थ नहीं होता, इसलिये उन्होंने विष्णुको पतिरूपमें प्राप्त किया और बादमें वे डाकुओंके द्वारा अपहृत हुई थीं। उनका डाकुओंके द्वारा अपहरण होना और (पुनः) पतिको प्राप्त करना सिद्धान्तके अनुसार ही हुआ था, क्योंकि उनके निजपति श्रीकृष्ण ही डाकूरूपमें आये थे। इस बातको श्रीव्यासने पुनः अन्य वाक्यके द्वारा बतलाया,—

"तत् त्वया न हि कर्त्तव्यः शोकोऽल्पोपि हि पाण्डव।
तेनाप्यखिलनाथेन सर्वं तदुपसंहृतम्॥"

"हे पाण्डव! इसलिये तुम्हारे लिये सामान्य शोक करना भी कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि उन अखिलनाथके द्वारा ही (डाकूरूपमें) महीषियोंका अपहरण हुआ था।"—यह व्याख्या जाननी होगी।'—(श्रीविश्वनाथ) अर्थात् श्रीकृष्ण स्वयं ही गोप-डाकूके रूपमें उन महीषियोंका हरण करके युगपत् (एक साथ ही) महीषियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये व्रजमें आकर्षण, ऋषिवाक्यकी रक्षा और लोगोंकी आँखोंके सामने मायाजाल फैलाकर अपनी लीलाकी महिमाके सर्वोत्कर्षको सङ्गोपन करना—सबका एकसाथ उन्होंने साधन किया था। गोप-डाकूरूपमें स्वयं श्रीकृष्ण ही आये थे, इसलिये अमित बलशाली गाण्डीव धनुर्धारी श्रीअर्जुन निष्प्रभ (निस्तेज) हो गये थे, अन्यथा उनकी बलहीनता कल्पनासे परे है॥ 111-112॥

महाप्रभुके चरणोंमें श्रीसनातनका दैन्य और प्रार्थना :—

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।
निवेदन करे दन्ते तृण-गुच्छ लञा॥ 114॥

"नीचजाति, नीचसेवी, मुञि—सुपामर।
सिद्धान्त शिखाइला,—येइ ब्रह्मार अगोचर॥ 115॥

तुमि ये कहिला, एइ सिद्धान्तामृत-सिन्धु।
मोर मन छुँइते नारे इहार एक बिन्दु॥ 116॥

अनुवाद—तब श्रीसनातन गोस्वामी महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर दाँतोंमें तृणका गुच्छा लेकर उनसे निवेदन करने लगे,—"हे प्रभो! मैं नीच जातिका हूँ, मैंने नीच लोगोंकी ही सेवा की है और मैं अत्यन्त अधम हूँ, किन्तु तब भी आपने मुझे उन सब सिद्धान्तोंकी शिक्षा प्रदान की है, जो ब्रह्माके लिये भी अगोचर हैं। आपने जो कुछ वर्णन किया है, वह तो सिद्धान्तरूपी अमृतका सिन्धु है। मेरा मन तो इसके एक बिन्दुको भी नहीं छू सकता॥ 114-116॥

पङ्गु नाचाइते यदि हय तोमार मन।
वर देह' मोर माथे धरिया चरण॥ 117॥

उल्लिखित भक्तिसिद्धान्तवाणीकी स्फूर्तिकी प्राप्तिके लिये महाप्रभुके निकट वरकी याचना :—

'मुञि ये शिखाइ तोरे स्फुरुक सकल।'
एइ तोमार वर हैते हबे मोर बल॥"118॥

अनुवाद—यदि इस पङ्गुको (लँगड़ेको) नचानेकी

आपके मनमें इच्छा हो, तब आप मेरे सिरपर अपने चरण रखकर मुझे यह वर प्रदान कीजिये कि 'मैंने तुम्हें जो भी सिखाया है, वह सब तुम्हारे हृदयमें स्फुरित हो।' आपके द्वारा दिये गये इस वरदानसे ही मुझे बलकी प्राप्ति होगी जिससे मैं इसका वर्णन कर सकूँगा॥"117–118॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसनातनको वरदान :—

तबे महाप्रभु ताँर शिरे धरि' करे।
वर दिला—'एइ सब स्फुरुक तोमारे॥'119॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीके सिरपर अपना हाथ रखकर वर दिया—'ये सब शिक्षाएँ तुममें स्फुरित हों॥'119॥

श्रीकृष्णप्रेमरूपी प्रयोजनतत्त्व और महाप्रभुकी कृपाका आख्यान संक्षेपमें वर्णित :—

संक्षेपे कहिलुँ—'प्रेम' प्रयोजन-संवाद।
विस्तारि' कहन ना याय प्रभुर प्रसाद॥120॥

अनुवाद—श्रील कविराज गोस्वामी कह रहे हैं कि मैंने महाप्रभु और श्रीसनातन गोस्वामीके बीच हुए 'प्रेम' रूपी प्रयोजनके संवादका संक्षेपमें ही वर्णन किया है, क्योंकि महाप्रभुकी कृपाका विस्तारसे वर्णन करना मेरे लिये सम्भवपर नहीं है॥120॥

महाप्रभुके उपदेशामृतके श्रवणसे आत्माकी चिद्वृत्ति श्रीकृष्णसेवाका ज्ञानोदय और प्रेमकी प्राप्ति :—

प्रभुर उपदेशामृत शुने येइ जन।
अचिरात् मिलये ताँरे कृष्णप्रेमधन॥121॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीको दिये गये महाप्रभुके इस उपदेशामृतका जो कोई भी श्रवण करता है, उसे बहुत शीघ्र ही श्रीकृष्णप्रेमरूपी धनकी प्राप्ति होती है॥121॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥122॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे प्रेमप्रयोजन-विचारो नाम त्रयोविंशः परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥122॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें प्रेमप्रयोजन-विचार नामक तेइसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चौबीसवाँ अध्याय

कथासार—श्रीसनातनकी प्रार्थनाके अनुसार महाप्रभुने "आत्मारामश्च मुनयः" इस श्लोकके 61 प्रकारके अर्थ किये। पृथक्-पृथक् पदोंकी व्याख्या करते हुए 'च' और 'अपि'—इन दो शब्दोंके अर्थोंके संयोगसे ये सब अर्थ निष्पन्न किये। अन्तमें महाप्रभुने इस श्लोककी व्याख्यामें इस निश्चित अर्थको स्थिर कर दिया कि ज्ञानी, कर्मी और योगी, सभी अपने-अपने दोषोंका परित्याग करके साधुसङ्गमें श्रीकृष्णभजन करते हैं। व्याख्याके बीचमें श्रीनारद और व्याधके एक संवादमें साधुसङ्गके माहात्म्यका वर्णन किया। श्रीनारदने श्रीपर्वत मुनिको लाकर व्याधकी हरिभक्ति दिखलायी। इसके बाद महाप्रभुने श्रीसनातनका स्तव सुनकर श्रीमद्भागवतका तात्पर्य और माहात्म्य प्रकाशित किया। अन्तमें श्रीसनातनकी इच्छानुसार महाप्रभुने हरिभक्तिविलासके सूत्रोंको बतला दिया।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

"आत्मारामाश्च"—श्लोकमें कुतर्कका हरण करनेवाले श्रीगौरके आशीर्वादकी याचना :—

आत्मारामेति पद्यार्कस्यार्थांशून् यः प्रकाशयन्।
जगत्तमो जहाराव्यात् स चैतन्योदयाचलः॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिन्होंने *"आत्मारामेति"* पद्यरूपी सूर्यकी अर्थरूपी समस्त किरणोंको प्रकाशित करके जगत्के अन्धकारका हरण किया था, वे उदयाचल-श्रीचैतन्य जगत्का पालन करें॥1॥

अनुभाष्य—

यः (श्रीचैतन्यदेवः) आत्मारामेति ('आत्मारामश्च' इति भागवतस्य) पद्यार्कस्य (श्लोकसूर्यस्य) अर्थांशून् (अर्थाः एव अंशवः किरणास्तान्) प्रकाशयन् (प्रकटयन्) जगत्तमः (कुसिद्धान्तान्धकारं) जहार (नाशयामास), स चैतन्योदयाचलः (श्रीकृष्णचैतन्य एव उदयाचलः, अर्कस्य उदयस्थलत्वात्) अव्यात् (अवतु)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

श्रीसनातनकी महाप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रार्थना :—

तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।
पुनरपि कहे किछु विनय करिया॥3॥

पहले सार्वभौमको सुनायी *"आत्मारामाश्च"* श्लोककी अठारह प्रकारकी व्याख्या सुननेकी अभिलाषा :—

"पूर्वे शुनियाछोँ, तुमि सार्वभौम-स्थाने।
एक श्लोकेर आठार अर्थ कैराछ व्याख्याने॥4॥

अनुवाद—तब श्रीसनातन गोस्वामीने महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर पुनः विनयपूर्वक कहा,—"मैंने सुना है कि आपने पहले श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको आत्माराम श्लोकके अठारह प्रकारके अर्थोंकी व्याख्या करके सुनायी थी॥3-4॥

श्रीमद्भागवत (1/7/10)—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥5॥

अनुवाद—आत्मामें ही जिनकी रति है, ऐसे वासना-ग्रन्थियोंसे शून्य सभी मुनि भी बृहत्कर्मा श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि, जगत्के चित्तहारी हरिका एक ऐसा ही एक गुण है॥5॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/186 संख्या देखें॥5॥

आश्चर्य शुनिया मोर उत्कण्ठित मन।
कृपा करि' कह यदि, जुड़ाय श्रवण॥"6॥

अनुवाद—यह सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ था और उन अर्थोंको सुननेके लिये मेरा मन भी उत्कण्ठित हो रहा है। यदि आप कृपा करके मुझे उस श्लोककी व्याख्या सुनायें तो मेरे कानोंको आनन्द मिलेगा॥"6॥

महाप्रभुके द्वारा स्वयंकी अप्राकृत पागल-कहकर दैन्यके आवरणमें आत्मगोपनकी चेष्टा :—

प्रभु कहे,—"आमि वातुल, आमार वचने।
सार्वभौम वातुलता सत्य करि' माने॥7॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं एक पागल हूँ और सार्वभौम भट्टाचार्य दूसरे पागल हैं, इसलिये वे मेरी बातोंको सत्य मानते हैं॥7॥

कीर्तनकारी महाप्रभुका उपयुक्त श्रोता श्रीसनातनको आदर देते हुए पहलेवाले अठारह प्रकारके अर्थोंको छोड़कर नयी व्याख्या करना :—

किवा प्रलापिलाङ, तार नाहि किछु मने।
तोमार सङ्ग-बले यदि किछु हय मने॥8॥

सहजे आमार किछु अर्थ नाहि भासे।
तोमा-सबार सङ्ग-बले ये किछु प्रकाशे॥9॥

अनुवाद—मैंने तब क्या कहा था, मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है, किन्तु यदि तुम्हारे सङ्गके प्रभावसे मुझे कुछ स्मरण आयेगा, तो मैं वह कहूँगा। प्रायः मैं अपने आपसे कोई व्याख्या नहीं कर पाता, किन्तु आप लोगोंके सङ्गके प्रभावसे मेरे मनमें कुछ प्रकाशित हो सकता है॥8-9॥

"आत्मारामाश्च" श्लोकमें कुल ग्यारह पद :—

एकादश पद एइ श्लोके सुनिर्मल।
पृथक् पृथक् नाना अर्थ पदे करे झलमल॥10॥

अनुवाद—इस श्लोकमें ग्यारह पद तो स्पष्ट हैं, किन्तु अलग-अलग विचार करनेपर सभी पदोंके अनेक अर्थ जगमगाते हैं॥10॥

अनुभाष्य—*'एकादश पद'*—(1) आत्मारामाः, (2) च, (3) मुनयः, 4) निर्ग्रन्थाः, (5) अपि, (6) उरुक्रमे, (7) कुर्वन्ति, (8) अहैतुकीं, (9) भक्तिं, (10) इत्थम्भूतगुणः, (11) हरिः॥10॥

(1) 'आत्मा'-शब्दके सात अर्थ :—

'आत्मा'-शब्दे ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति।
बुद्धि, स्वभाव,—एइ सात अर्थ-प्राप्ति॥11॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दके—ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति, बुद्धि और स्वभाव—ये सात अर्थ प्राप्त होते हैं॥11॥

प्रमाण :—
विश्वप्रकाश-कोशमें—

"आत्मा देहमनोब्रह्मस्वभावधृतिबुद्धिषु।
प्रयत्ने च" इति॥12॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥12॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'आत्म'-शब्दसे—देह, मन, ब्रह्म, स्वभाव, धृति, बुद्धि और यत्नको समझना चाहिये॥12॥

'आत्मा'-शब्दके अर्थको लेकर सात प्रकारके आत्माराम :—

एइ साते रमे येइ, सेइ आत्मारामगण।
आत्मारामगणेर आगे करिये गणन॥13॥

अनुवाद—इन सातोंमें जो रमण करते हैं, वे आत्मारामगण हैं। आत्मारामोंकी बादमें गणना करूँगा॥13॥

(2) 'मुनि'—शब्दके सात अर्थ :—

'मुनि'-आदि शब्देर अर्थ शुन, सनातन।
पृथक् पृथक् अर्थ करि, पाछे करिब मिलन॥14॥

'मुनि'-शब्दे मननशील, आर कहे मौनी।
तपस्वी, व्रती, यति, आर ऋषि, मुनि॥15॥

अनुवाद—हे सनातन, अब तुम 'मुनि'-आदि शब्दोंके अर्थ सुनो। पहले मैं इन सबके पृथक्-पृथक् अर्थ बतला रहा हूँ, बादमें इनको मिलाकर अर्थ बतलाऊँगा। मुनि शब्दके मननशील, मौनी, तपस्वी, व्रती, यति (संन्यासी), ऋषि और मुनि—ये सात अर्थ होते हैं॥ 14-15॥

(3) 'निर्ग्रन्थ'-शब्दके अर्थ :—

'निर्ग्रन्थ'-शब्दे कहे, अविद्या-ग्रन्थि-हीन।
विधि-निषेध-वेदशास्त्र-ज्ञानादि-विहीन॥ 16॥
मूर्ख, नीच, म्लेच्छ आदि शास्त्ररिक्तगण।
धनसञ्चयी—निर्ग्रन्थ, आर ये निर्धन॥ 17॥

अनुवाद—'निर्ग्रन्थ'-शब्दका एक तात्पर्य उस व्यक्तिसे है जो अविद्याकी ग्रन्थियोंसे मुक्त है। निर्ग्रन्थका दूसरा तात्पर्य उस व्यक्तिसे है जो वेदशास्त्रोंके नियम अर्थात् विधि-निषेधको नहीं मानता है। जो ज्ञान-विहीन है, उसे भी निर्ग्रन्थ कहा जाता है। इनके अतिरिक्त निर्ग्रन्थ-शब्दसे मूर्ख, नीच, म्लेच्छादि शास्त्र-ज्ञानरहित, धनका सञ्चय करनेवाले और निर्धनको समझना चाहिये॥ 16-17॥

'निर्' उपसर्ग और *'ग्रन्थ'*-शब्दके अर्थोंका प्रमाण :—
विश्वप्रकाश-कोशमें—

निर्निश्चये निष्क्रमार्थे निनिर्माण-निषेधयोः।
ग्रन्थो धनेऽथ सन्दर्भे वर्णसंग्रहणेऽपि च॥ 18॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 18॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'निर'* उपसर्गका निश्चयमें, क्रम-अर्थमें, निर्माणमें, निषेधमें व्यवहार होता है। *'ग्रन्थ'*-शब्दके अर्थ धन-सम्पत्ति, सन्दर्भ, वर्ण-संग्रह (अक्षर-योजन) हैं॥ 18॥

(4) *'उरुक्रम'* (उरु+क्रम) शब्दका अर्थ :—

'उरुक्रम'-शब्दे कहे, बड़ याँर क्रम।
'क्रम'-शब्दे कहे, एइ पादविक्षेपण॥ 19॥
शक्ति कम्पयुक्त परिपाट्ये आक्रमण।
चरण-चालने काँपाइल त्रिभुवन॥ 20॥

अनुवाद—*'उरुक्रम'*-शब्दसे उसे लक्ष्य करते हैं जिसका क्रम बड़ा है। 'क्रम'-शब्दके अर्थ—एक पगका माप, शक्ति, कम्पनयुक्त, परिपाटी (पद्धति) और आक्रमण हैं। इसलिये *'उरुक्रम'*-शब्दका मुख्य अर्थ है—श्रीवामन भगवान् जिन्होंने अपने चरणोंको बढ़ाकर त्रिभुवनको कँपा दिया था॥ 19-20॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'उरुक्रम'—शब्दके 'उरु'—शब्दसे बड़े-बड़े और 'क्रम'-शब्दसे—पग धरना एवं (शक्ति आदिके कारण-भूत) कम्पनादि। इसलिये उरुक्रम-शब्दसे वामन-आकारके विष्णुको समझना है, क्योंकि बड़े-बड़े चरणोंके पगके द्वारा उन्होंने ही जगतको कँपा दिया था॥ 19-20॥

प्राकृत सर्वश्रेष्ठ सूक्ष्मतम परमाणुको गिननेवालेके लिये भी श्रीवामनके वीर्यको मापना असम्भव :—
श्रीमद्भागवत (2/7/40)में—

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह
यः प्रार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि।
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं
यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम्॥ 21॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 21॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पृथ्वीके धूलिकणोंकी गणना करना सम्भव हो सकता है, किन्तु विष्णुके पराक्रमोंकी कौन गणना कर सकता है? उन्होंने वामनरूपमें अपने चरणोंके प्रबल वेगसे त्रिगुणमयी प्रकृतिके मूलसे सत्यलोक तकको कम्पित करके धारण किया था॥ 21॥

अनुभाष्य—ब्रह्मा अपने शिष्य देवर्षि नारदको भगवान् विष्णुके लीलावतार-समूहकी चेष्टा, प्रयोजन और विभूतिकी कथाका वर्णन करके भगवान् वामनदेवके अपरिमेय (असीम) पराक्रमकी महिमाका वर्णन कर रहे हैं,—

इह (अस्मिन् संसारे) यः कविः (पण्डितः) पार्थिवानि रजांसि (पृथिव्यां परमाणून् अपि) विममे (विगणितवान्, तादृशः अपि) कतमः नु (प्रश्ने) विष्णोः वीर्यगणनां [कर्त्तुम्] अर्हति (समर्थो भवति?—न कोऽपीत्यर्थः), यः (विष्णुः)

यस्मात् [कारणात् त्रिविक्रमावतारे] अस्खलता (प्रतिघातशून्येन) स्वरंहसा (स्वपादवेगेन) त्रिसाम्यसदनात् (त्रिगुणसाम्यरूपं सदनम् अधिष्ठानं प्रधानं तस्मात् आरभ्य) उरुकम्पयानम् (अधिककम्पमानं) त्रिपृष्ठं (सत्यलोकं) चस्कम्भ (धृतवान्)।—मन्त्रः (ऋग्वेदे प्रथम मः 154 सूः प्रथम श्लोक)—"ॐ विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। योऽस्कम्भयदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः" इति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। (ऋग्वेद मन्त्र)—जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकको बनानेवाले हैं, जो देवताओंके निवास स्थान द्युलोकको स्थिर कर देते हैं, जो तीन पगोंसे तीनों लोकोंमें विचरण करनेवाले हैं (अथवा उन्हें मापनेवाले हैं), उन विष्णुके वीरतापूर्ण कार्योंका कहाँ तक वर्णन करें? ॥ 21 ॥

स्वरूप और माया-शक्तिवैभव-तीनों धामोंमें शक्ति अथवा पराक्रमका विभिन्न परिचय :—

विभुरूपे व्यापे, शक्त्ये धारण-पोषण।
माधुर्यशक्त्ये गोलोक, ऐश्वर्ये परव्योम ॥ 22 ॥
मायाशक्त्ये ब्रह्माण्डादि-परिपाटी-सृजन।
'उरुक्रम'-शब्देर एइ अर्थ निरूपण ॥ 23 ॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें। भगवान् 'उरुक्रम'-शब्दका यही अर्थ है ॥ 22-23 ॥

अनुभाष्य—भगवान् विभुरूपमें त्रिभुवनमें व्याप्त रहते हैं और शक्तिके द्वारा उन्हें धारण तथा उनका पोषण करते हैं। वे माधुर्यशक्तिके द्वारा गोलोकको धारण और पोषण करते हैं। ऐश्वर्यशक्तिके द्वारा परव्योमको धारण और पोषण करते हैं। और मायाशक्तिके द्वारा ब्रह्माण्डादिका परिपाटीरूपसे सृजन करते हैं ॥ 22-23 ॥

क्रमशब्दका समानार्थक शब्द :—
विश्वप्रकाशमें—

"क्रमः शक्तौ परिपाट्यां क्रमचालनकम्पयोः ॥"24 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 24 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—क्रम-शब्दका अर्थ—शक्ति, परिपाटी, चालन और कम्पन है ॥ 24 ॥

(5) 'कुर्वन्ति'-क्रियाके परस्मैपदका कारण :—

'कुर्वन्ति'-पद—एइ परस्मैपद हय।
कृष्णसुखनिमित्त भजने तात्पर्य कहय ॥ 25 ॥

अनुवाद—*'कुर्वन्ति'*-पद परस्मैपदरूपमें व्यवहार किया गया है। वे श्रीकृष्णके सुखके लिये ही भजन करते हैं, इसलिये परस्मैपद व्यवहार करनेका यही तात्पर्य है ॥ 25 ॥

अनुभाष्य—*'कुर्वन्ति'-पद*—परस्मैपद रूपमें प्रयोग किया गया है; (फलकी प्राप्ति) कर्त्ताका अभिप्राय होनेपर 'आत्मनेपद'का प्रयोग होता है। किन्तु यहाँपर श्रीकृष्णके सुखके लिये वे भजन करते हैं, ऐसा तात्पर्य व्यवहार हुआ है, इसलिये यहाँपर *'कुर्वन्ति'*का परस्मैपदीय प्रयोग है ॥ 25 ॥

प्रमाण :—
पाणिनिमें 1/3/72; सिद्धान्त-कौमुदीमें भ्वादि-प्रकरणमें—

"स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥"26 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 26 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उभयपदी (दो पदवाली) धातुका उच्चरित स्वर और ञ 'इत' होता है। क्रियाका फल यदि कर्त्ताका अभिप्राय होता है, तब वहाँ 'आत्मनेपद' होता है। इस स्थानपर ऐसा नहीं होनेके कारण 'परस्मैपद'का प्रयोग हुआ है ॥ 26 ॥

(6) 'अहैतुकी'-शब्दके अन्तर्गत 'हेतु'-शब्दके तीन प्रकारके दार्शनिक अर्थ :—

'हेतु'-शब्दे कहे—भुक्ति-आदि वाञ्छान्तरे।
भुक्ति, सिद्धि, मुक्ति—मुख्य एइ तिन प्रकारे ॥ 27 ॥

भुक्ति, सिद्धि और मुक्तिमें अन्तर :—

एक भुक्ति कहे, भोग—अनन्त प्रकार।
सिद्धि—अष्टादश, मुक्ति—पञ्चविधाकार ॥ 28 ॥

अनुवाद—'हेतु'-शब्दसे भुक्ति आदिकी इच्छाओंको कहा जाता है। मुख्य रूपसे ये इच्छाएँ भुक्ति, सिद्धि

और मुक्ति—इन तीन प्रकारकी होती हैं। पहली है भुक्ति जो अनन्त प्रकारकी है। सांसारिक भोगोंको ही भुक्ति कहते हैं। सिद्धि—ये अठारह प्रकारकी और मुक्ति—पाँच प्रकारकी होती है॥ 27–28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सिद्धि'*—अणिमादि अठारह प्रकारकी सिद्धियाँ (भाः 11/15 अध्याय देखें)॥ 28॥

'अहैतुकी'-शब्दका अर्थ :—

एइ याँहा नाहि, सेइ भक्ति—'अहैतुकी'।
याहा हैते वश हय श्रीकृष्ण कौतुकी॥ 29॥

अनुवाद—भुक्ति, सिद्धि और मुक्ति—इन तीनोंकी कामना जहाँपर नहीं है, उस भक्तिको 'अहैतुकी' कहते हैं, जिसके द्वारा लीलामय श्रीकृष्ण वशीभूत हो जाते हैं॥ 29॥

(7) 'भक्ति'-शब्दका अर्थ; दस प्रकारके भेद :—

'भक्ति'-शब्देर अर्थ हय दशविधाकार।
एक—'साधन', 'प्रेमभक्ति'—नव प्रकार॥ 30॥

'रति'-लक्षणा, 'प्रेम'-लक्षणा, इत्यादि प्रचार।
भावरूपा, महाभाव-लक्षणरूपा आर॥ 31॥

अनुवाद—'भक्ति'-शब्दका अर्थ दस प्रकारका होता है। साधनभक्ति एक प्रकारकी और प्रेमभक्ति नौ प्रकारकी होती है। नौ प्रकारकी प्रेमभक्ति 'रति'-लक्षणासे आरम्भ करके 'प्रेम'-लक्षणा आदिसे बढ़ती हुई भावरूपा और महाभाव-लक्षणरूपा भक्ति तक बढ़ती है॥ 30–31॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'प्रेमभक्ति—नव प्रकार'*—रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव—ये नौ प्रकारकी प्रेमभक्ति है॥ 30॥

अनुभाष्य—साधन भक्तिका एक प्रकारका लक्षण और प्रेम-भक्तिके नौ प्रकारके लक्षण हैं, जैसे रति (भावभक्ति)-लक्षणा, प्रेम-लक्षणा, स्नेह-लक्षणा, मान-लक्षणा, प्रणय-लक्षणा, राग-लक्षणा, अनुराग-लक्षणा, भाव-लक्षणा और महाभाव-लक्षणा॥ 30–31॥

शान्त और दास्यरसमें भक्तिकी सीमा :—

शान्त-भक्तेर रति बाड़े 'प्रेम' पर्यन्त।
दास्य-भक्तेर रति हय 'राग'दशा-अन्त॥ 32॥

सख्य और वात्सल्य-रसमें भक्तिकी सीमा :—

सखागणेर रति हय 'अनुराग' पर्यन्त।
पितृ-मातृ-स्नेह आदि 'अनुराग'-अन्त॥ 33॥

मधुररसमें भक्तिकी सीमा :—

कान्तागणेर रति पाय 'महाभाव'-सीमा।
'भक्ति'-शब्दे कहिलुँ एइ अर्थेर महिमा॥ 34॥

अनुवाद—शान्तरसके भक्तोंकी रति 'प्रेम' तक ही बढ़ती है। दास्यरसके भक्तोंकी रति 'राग'-दशा तक बढ़ती है। सखाओंकी रति 'अनुराग' तक बढ़ती है। पिता-माताका स्नेहादि 'अनुराग'की अन्तिम सीमा तक बढ़ता है। व्रजगोपियोंकी रति 'महाभाव' तक बढ़ती है। ये कुछ 'भक्ति'-शब्दके महिमामय अर्थ हैं॥ 32–34॥

(8) 'इत्थम्भूतगुण' (इथम्भूत + गुण) शब्दके अर्थकी व्याख्या :—

'इत्थम्भूतगुणः'-शब्देर शुनह व्याख्यान।
'इत्थम्भूत'-शब्देर भिन्न अर्थ, 'गुण'-शब्देर आन॥ 35॥

'इत्थम्भूत'-शब्दका अर्थ :—

'इत्थम्भूत'-शब्देर अर्थ—पूर्णानन्दमय।
याँर आगे ब्रह्मानन्द तृणप्राय हय॥ 36॥

अनुवाद—अब *'इत्थम्भूतगुणः'* शब्दकी व्याख्या श्रवण करो। इसमेंसे 'इत्थम्भूत'-शब्दके अर्थ 'गुण'-शब्दके अर्थसे भिन्न हैं। 'इत्थम्भूत'-शब्दका अर्थ पूर्णानन्दमय है, जिसके आगे ब्रह्मानन्द तृणकी भाँति प्रतीत होता है॥ 35–36॥

हरिभक्तिसुधोदय (14/36)में—

त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्मण्यपि जगद्गुरो॥ 37॥

अनुवाद—हे जगद्गुरो! मैं आपके स्वरूपका साक्षात्कार

पाकर आनन्दरूप विशुद्धसमुद्रमें अवस्थान कर रहा हूँ और अन्य सभी सुख मुझे गोष्पदके समान लग रहे हैं। ब्रह्ममें लीन होनेपर जीवको जो सुख मिलता है, वह भी गोष्पदके समान है। गोष्पद अर्थात् गायके खुरसे जो गड्ढा बनता है, उसमें जितना जल आ सकता है, वह समुद्रकी तुलनामें अत्यन्त क्षुद्र है॥ 37॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/98 संख्या देखें॥ 37॥

अपने रूपमाधुर्यके द्वारा सभीको बलपूर्वक वशमें करनेवाले :—

सर्वाकर्षक, सर्वाह्लादक, महारसायन।
आपनार बले करे सर्वविस्मारण॥ 38॥

अनुवाद—पूर्णानन्दमय भगवान् सभीको आकर्षित करनेवाले, सभीको आनन्दित करनेवाले, महारसायन अर्थात् समस्त चिन्मय रसोंके आश्रय हैं। वे अपने बलसे सबके अन्य सभी सुखोंको भुला देनेवाले हैं॥ 38॥

श्रीकृष्णकृपाके प्रभावसे कैतव-नाश :—

भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-सुख छाड़य यार गन्धे।
अलौकिक शक्ति-गुणे कृष्णकृपाय बान्धे॥ 39॥

शास्त्रयुक्ति नाहि इँहा सिद्धान्त-विचार।
एइ स्वभाव-गुणे, याते माधुर्येर सार॥ 40॥

अनुवाद—शुद्धभक्तिकी गन्धमात्रके प्रभावसे भुक्ति, मुक्ति और सिद्धिके सुखोंकी वासना दूर हो जाती है। शुद्धभक्त श्रीकृष्णकी अलौकिक शक्ति, गुणों और कृपासे बँध जाते हैं। शुद्धभक्तको शास्त्रयुक्ति और सिद्धान्तके विचारकी अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि श्रीकृष्णका स्वाभाविक गुण ही माधुर्यका सार है॥ 39-40॥

'गुण' शब्दके अर्थ; श्रीकृष्णके अनन्तगुणोंका अतुलनीय अमोघ प्रभाव :—

'गुण'-शब्देर अर्थ—कृष्णेर गुण अनन्त।
सच्चिद्रूप-गुण सर्व-पूर्णानन्द॥ 41॥

ऐश्वर्य-माधुर्य-कारुण्ये स्वरूप-पूर्णता।
भक्तवात्सल्य, आत्मा पर्यन्त वदान्यता॥ 42॥

अनुवाद—'गुण'-शब्दका तात्पर्य श्रीकृष्णके अनन्त गुणोंसे है। श्रीकृष्णके गुण नित्य और चिन्मय हैं और सभी गुण पूर्णानन्द-स्वरूप हैं। श्रीकृष्णके ऐश्वर्य, माधुर्य, कारुण्यादि चिन्मय गुण स्वरूपतः पूर्ण हैं। श्रीकृष्णका भक्त-वात्सल्य ऐसा है कि वे स्वयं तकको भी भक्तको दान करनेवाले दयालु हैं॥ 41-42॥

एक-एक गुण एक-एक विशेष भक्तको वशीभूत करनेवाला :—

अलौकिक रूप, रस, सौरभादि गुण।
कारो मन कोन गुणे करे आकर्षण॥ 43॥

चरणकमलोंकी सुगन्धसे चतुःसनको और लीला-माधुर्यसे शुकदेवको आकर्षित करना :—

सनकादिर मन हरिल सौरभादि गुणे।
शुकदेवेर मन हरिल लीला-श्रवणे॥ 44॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण अपने अलौकिक रूप, रस, सुगन्धादि गुणोंसे भक्तोंके मनको आकर्षित करते हैं। वे भक्त भिन्न-भिन्न रसोंमें स्थित होते हैं, इसलिये श्रीकृष्ण सर्वाकर्षक हैं। श्रीकृष्णने अपने श्रीचरणोंमें अर्पित तुलसीकी सुगन्धसे चतुःसनके (सनक, सनन्दन, सनातन ओर सनत्के) मनका हरण किया था। अपनी लीलाका श्रवण कराके उन्होंने शुकदेव गोस्वामीके मनका हरण किया था॥ 43-44॥

श्रीमद्भागवत (3/15/43)में—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥ 45॥

अनुवाद—उन कमल-नेत्र-भगवान्के पदकमलोंकी पराग-मिश्रित तुलसीकी मधुरगन्धयुक्त वायुने सनकादि

चार कुमारोंकी नासिकाके छिद्रके माध्यमसे अन्दर जाकर निर्विशेष-ब्रह्मपरायण उनके चित्त और देहमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया था॥ **45**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 17/142 संख्या देखें॥ **45**॥

श्रीमद्भागवत (2/1/9)में—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥ 46॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **46**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे राजर्षे! निर्गुण ब्रह्ममें प्रतिष्ठित होनेपर भी श्रीकृष्णलीलाके प्रति आकर्षित होकर मैंने श्रीमद्भागवतका पाठ किया था॥ **46**॥

अनुभाष्य—'मुमूर्षु (मरणासन्न) व्यक्तिके लिये क्या करना उचित है?' परीक्षितके इस प्रश्नका आदर करते हुए श्रील शुकदेव श्रीहरिकीर्तन और हरिकथा कीर्तनमय श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीहरिके गुणोंके प्रभावका वर्णन कर रहे हैं—

हे राजर्षे, नैर्गुण्ये (निर्गुणे ब्रह्मणि) परिनिष्ठितः (स्थितधीः) अपि [अहं वैयासकिः] उत्तमःश्लोकलीलया (कृष्णमाधुर्येण) गृहीतचेताः (आकृष्टचित्तः सन्) यत् आख्यानं (भागवताख्यम्) अधीतवान्, [तदहं तेऽभिधास्यामीति परेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें, [इसका अगले श्लोकके *'तदहं तेऽभिधास्यामि'*के साथ अन्वय करें।]॥ **46**॥

अङ्गमाधुर्यके द्वारा गोपियोंका और रूप-गुण-माधुर्यसे रुक्मिणीके मनका हरण :—

श्रीअङ्ग-रूपे हरे गोपिकार मन।
रूप-गुण-श्रवणे रुक्मिण्यादिर आकर्षण॥ 47॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण अपने अङ्गोंके रूप-सौन्दर्यसे गोपियोंके मनको हरण करते हैं। श्रीकृष्णके रूप और गुणोंके विषयमें सुनकर रुक्मिणी आदि द्वारकाकी महिषियोंका मन उनके प्रति आकर्षित हो गया॥ **47**॥

श्रीकृष्णके अङ्ग, मुख और हास्यके माधुर्यसे मुग्ध गोपियोंके द्वारा आत्मनिवेदन :—

श्रीमद्भागवत (10/29/39)में—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रि
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणञ्च भवाम दास्यः॥ 48॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **48**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे कृष्ण! आपका अलकाओंसे आवृत मुख, कपोलोंपर कुण्डलोंकी शोभा, अमृतयुक्त अधरपर मन्द हास्यके साथमें देखना, अभय प्रदान करनेवाली दो भुजाएँ और एकमात्र श्रीके द्वारा शोभित वक्षको देखकर ही हम आपकी दासी बनी हैं॥ **48**॥

अनुभाष्य—पूर्णिमाकी चाँदनीमें स्नान की हुई शारदीय रात्रिमें श्रीकृष्णकी वंशी-ध्वनिसे पूर्ण आकृष्ट होकर गोपवधुएँ मोहित होकर श्रीकृष्णके समीप उपस्थित हुईं, श्रीकृष्णने उनके अनुरागको और भी अधिक वर्धित करनेके लिये उन्हें घर लौट जानेके लिये कहा, तब अपने प्राणोंको श्रीकृष्णमें समर्पित कर देनेवाली गोपियाँ दुःखित होकर रुद्धकण्ठसे गद्गद वचनोंसे श्रीकृष्णसे कह रही हैं,—

[हे पुरुषभूषण,] तव अलकावृतमुखं (केशदामैः आवृतमुखं) कुण्डलश्रिगण्डस्थलाधरसुधं (कुण्डलयोः श्रीर्ययो ते गण्डस्थले यस्मिन् अधरे सुधा यस्मिन् तच्च मुखं) हसितावलोकं (हसितेन सह अवलोकं यस्मिन् तच्च मुखं) वीक्ष्य (दृष्ट्वा) दत्ताभयं (दत्तम् अभयं येन तत्) भुजदण्डयुगं (बाहुद्वयं) श्रियैकरमणं (श्रियाः लक्ष्मयाः एकं मुख्यं एव रमणं रतिजनकं तत्) वक्षः च विलोक्य वयं दास्यः एव भवाम।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **48**॥

श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट रुक्मिणीका आत्मनिवेदन :—

श्रीमद्भागवत (10/52/37)में—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वयच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥ 49॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 49॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भुवनसुन्दर! तुम्हारे गुणसमूह श्रवण करनेवाले व्यक्तियोंके कानोंके छिद्रोंमें प्रविष्ट होकर उनके अङ्गोंके तापका नाश करते हैं। नेत्रधारी व्यक्तिको तुम्हारे रूपके दर्शनसे समस्त पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। हे अच्युत, तुम्हारे उन्हीं समस्त गुणोंको श्रवण करके मेरा चित्त निर्लज्ज होकर आपमें प्रवेश कर रहा है॥ 49॥

अनुभाष्य—परीक्षितके प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुक भगवान् श्रीकृष्ण और भीष्मक-कन्या महालक्ष्मी-स्वरूपिणी श्रीमती रुक्मिणीके परिणयके वृत्तान्तका वर्णन कर रहे हैं। लोगोंके मुखसे श्रीकृष्णके सद्गुणोंका श्रवण करके मन-ही-मनमें उन्हें अपने पतिरूपमें वरण करनेपर भी श्रीकृष्णद्वेषी ज्येष्ठ भ्राता रुक्मी चेदि-नरेश शिशुपालको उनका वर बनाना चाहता है, ऐसा सुनकर रुक्मिणीने निर्जनमें एक प्रेमपत्र लिखकर उसे एक विश्वसनीय ब्राह्मणको देकर तुरन्त श्रीकृष्णके पास भेजा। ब्राह्मणके द्वारकामें उपस्थित होनेपर श्रीकृष्णने उनका यथाविधि सत्कार किया। उसके बाद श्रीकृष्णसे अनुमति लेकर वे ब्राह्मण रुक्मिणीके उस प्रेमपत्रको पढ़ने लगे—

हे अच्युत, हे भुवनसुन्दर, शृण्वतां (श्रोतृवर्गाणां) कर्णविवरैः (अन्तः प्रविश्य) अङ्गतापं हरतः ते (तव) गुणान्, दृशिमतां (चक्षुष्मतां) दृशां (चक्षुषाम्) अखिलार्थलाभं (सर्वसारार्थप्रदं) रूपं च श्रुत्वा मे (मम) चित्तम् अपत्रपं (अपगता त्रपा यस्मात् तत्, लज्जाविहीनं सत्) त्वयि आविशति (आसज्जते, अनुसन्धान-राहित्येन मग्नं भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 49॥

वंशीगानसे श्रीनारायणी लक्ष्मीको और वेणु और विग्रहके माधुर्यसे समस्त कान्ताओंको आकर्षित करना :—

वंशी-गीते हरे कृष्ण लक्ष्म्यादिर मन।
योग्यभावे जगतेर यत युवतीर गण॥ 50॥

अनुवाद—अपनी वंशीके गानसे श्रीकृष्ण लक्ष्मी आदिके मनको हरण करते हैं। श्रीकृष्ण न केवल गोपियों और लक्ष्मियोंके चित्तको हरण करते हैं, अपितु त्रिभुवनकी समस्त कान्ताओंको आकर्षित करते हैं॥ 50॥

श्रीमद्भागवत (10/16/36)में—

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽचरत्तपो विहाय
कामान् सुचिरं धृतव्रता॥ 51॥

अनुवाद—हे देव! जिनकी चरणरजको प्राप्त करनेकी वासनासे लक्ष्मीने बहुत समय तक समस्त प्रकारके विषय-भोगोंका परित्याग करके दृढ़व्रत धारण करके तपस्या की थी, उस चरणरजको इस कालिय-नागने किस सुकृतिके द्वारा लाभ करनेका अधिकार प्राप्त किया, उसे हम नहीं जानतीं॥ 51॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/146 संख्या देखें॥ 51॥

श्रीमद्भागवत (10/29/40)—

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदामृतवेणुगीत-
सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदञ्च निरीक्ष्य रूपं
यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥ 52॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 52॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे कृष्ण! तुम्हारे अमृतमय वेणुगीतके द्वारा सम्मोहित होकर त्रिभुवनमें कौन-सी स्त्री आर्यचरितसे (धर्मसे) विचलित नहीं होती? त्रिभुवनके सौभाग्य-स्वरूप तुम्हारे इस रूपको देखकर समस्त गैयाएँ, पक्षी, वृक्ष और हिरण भी पुलक-धारण किया करते हैं॥ 52॥

अनुभाष्य—चाँदनीसे आप्लावित शारदीय-रात्रिमें श्रीकृष्णकी मुरलीकी ध्वनिसे आकृष्ट गोपियोंके मोहित होकर श्रीकृष्णके निकट उपस्थित होनेपर श्रीकृष्णने उनके अनुरागको और भी वर्धित करनेके अभिप्रायसे उन्हें अपने-अपने घर लौट जानेके लिये कहा, तब

श्रीकृष्णमें समर्पित चित्तवाली गोपियाँ दुःखित होकर रुद्धकण्ठसे गद्‌गद वाक्योंसे श्रीकृष्णसे कह रही हैं,—

हे अङ्ग (कृष्ण), त्रिलोक्यां (त्रिभुवनमध्ये) का सा स्त्री (नारी गोपीत्यर्थः),—या ते (तव) कलपदामृतवेणुगीत-सम्मोहिता (कलानि मधुराणि पदानि यस्मिन् तत् च अमृतं तन्मयम् एव वेणुगीतं तेन, कलपदायतमूर्च्छितेनेति पाठे—कलानि पदानि यस्मिन् तत् आयतं दीर्घं मूर्च्छितं स्वरालापभेदः तेन सम्मोहिता आकृष्टहृदया सती) त्रैलोक्यसौभगं (त्रैलोक्यस्य ऊर्ध्वाधोमध्यवर्त्तमानस्य यावल्लोकस्य सौभगं मनोहरं तव सुन्दरम्) इदं रूपञ्च—यत् गोद्विज-द्रुममृगाः (सर्वे स्थावर-जङ्गमजीवाः) पुलकानि अविभ्रन् (अविभरुः), तत्—निरीक्ष्य (दृष्ट्वा) आर्यचरितात् (निज-निजविधिधर्मात्) न चलेत् (भ्रश्येत्)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। *'कलपदामृत'*—इस पाठके स्थानपर *'कलपदायत'* पाठ भी देखा जाता है। हे प्रिय श्रीकृष्ण! इन तीनों लोकोंमें ऐसी कौन-सी स्त्री है जो तुम्हारी कलपद और आयत अर्थात् मधुर वंशीध्वनिको सुनकर मोहित न हो जाय? इस अर्थमें *कलपदायत*। आयत अर्थात् दीर्घमूर्च्छना (स्वरालापका भेद)॥ 52॥

वात्सल्यरसमें मातृगणको और सख्य-दास्यादि-रसमें पुरुषरूपी सखाओं और दासोंको आकर्षित करना :—

गुरुतुल्य स्त्रीगणेर वात्सल्ये आकर्षण।
दास्य-सख्यादि-भावे पुरुषादि गण॥ 53॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण मातृ-तुल्य स्त्रियोंको वात्सल्यके द्वारा आकर्षित करते हैं और दास्य-सख्यादि-भावसे पुरुषोंको आकर्षित करते हैं॥ 53॥

शान्तरसमें धाममें स्थित समस्त स्थावर-जङ्गमको आकर्षित करना :—

पक्षी, मृग, वृक्ष, लता, चेतनाचेतन।
प्रेमे मत्त करि' आकर्षये कृष्णगुण॥ 54॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके गुण पक्षियों, हिरणों, वृक्षों, लताओं और चेतन-अचेतन सभी जीवोंको प्रेममें मत्त करके आकर्षित कर लेते हैं॥ 54॥

(9) 'हरि'-शब्दके अर्थ; दो प्रकारका हरण—
(क) गौण और (ख) मुख्य लक्षण :—

'हरिः'-शब्दे नानार्थ, दुइ मुख्यतम।
सर्व अमङ्गल हरे, प्रेम दिया हरे मन॥ 55॥

अनुवाद—यद्यपि 'हरि'-शब्दके अनेक अर्थ हैं, तथापि उनमेंसे दो मुख्यतम हैं—(1) जो सभीके अमङ्गलका हरण करनेवाले हैं और (2) जो प्रेम-प्रदान करके मनका हरण करनेवाले हैं॥ 55॥

(1) जीवके आवरण-रूपी अनर्थको हरनेका गुण—
(क) समस्त प्रकारके तापोंका विनाश :—

यैछे तैछे योहि कोहि करये स्मरण।
चारिविध ताप तार करे संहरण॥ 56॥

अनुवाद—जिस किसी प्रकारसे जो कोई भी श्रीहरिका स्मरण करता है, श्रीहरि उसके चार प्रकारके तापोंको सम्पूर्ण रूपसे हरण कर लेते हैं॥ 56॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चारिविध ताप'*—चार प्रकारके पातकोंके (पापोंके) ताप—(1) पातक (पाप), (2) उरुपातक (बहुत बड़ा पाप), (3) महापातक (उरुपातकसे भी बड़ा पाप), (4) अतिपातक (सबसे बड़ा पाप)॥ 56॥

श्रीकृष्णभक्ति—पाप, पापबीज और अविद्या, इन तीन प्रकारके क्लेशोंका अन्त करनेवाली :—
श्रीमद्भागवत (11/14/19)में—

यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥ 57॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 57॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे उद्धव! प्रज्ज्वलित अग्नि जैसे लकड़ीके ढेरको जलाकर भस्म बना देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी जीवोंके सब प्रकारके [प्रारब्ध-अप्रारब्ध] पापोंको सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर देती है॥ 57॥

अनुभाष्य—सब प्रकारके कल्याणके साधनोंमें श्रेष्ठ भक्तियोगके सम्बन्धमें और भी अधिक जाननेकी इच्छा

करनेपर भगवान् श्रीउद्धवसे कह रहे हैं,—

हे उद्धव, यथा सुसमृद्धार्च्चिः (सुसमृद्धा अर्च्चिः यस्य सः) अग्निः एधांसि (काष्ठानि) भस्मसात् करोति (विनाशयति), तथा मद्विषया भक्तिः कृत्स्नशः (सर्वाणि) एनांसि (पापानि-प्रारब्धाप्रारब्धानि च विधुनोति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 57॥

(ख) अज्ञान और अविद्याका विनाश; तब श्रीकृष्णकी प्रसन्नताकी कामनासे श्रवण-कीर्तनादि शुद्ध-चित्तमें स्वयं प्रकाशित नित्यसिद्ध श्रीकृष्णप्रेमका उदय :—

तबे करे भक्तिबाधक कर्म-अविद्या-नाश।
श्रवणाद्येर फल 'प्रेमा' करये प्रकाश॥ 58॥

अनुवाद—तब श्रीकृष्ण भक्तिमें बाधा देनेवाले कर्मों और अविद्याका नाश करते हैं तथा श्रवणादिके फल 'प्रेम'को प्रकाशित कर देते हैं॥ 58॥

(2) अनावृत शुद्ध जीवके स्वरूपको प्रेमसे आकर्षण :—

निज-गुणे तबे हरे देहेन्द्रिय मन।
ऐछे कृपालु कृष्ण, ऐछे ताँर गुण॥ 59॥

अनुवाद—तब श्रीकृष्ण अपने गुणोंके द्वारा भक्तके देह, इन्द्रियों और मनका हरण कर लेते हैं। श्रीकृष्ण ऐसे कृपामय हैं, ऐसे उनके अद्भुत गुण हैं॥ 59॥

हरि अथवा हरिप्रेम चतुर्वर्ग-धिक्कारी और सभीके चित्तको हरण करनेवाला :—

चारि पुरुषार्थ छाड़ाय, हरे सबार मन।
'हरि'-शब्देर एइ मुख्य कहिलुँ लक्षण॥ 60॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थोंको छुड़ाकर सबके मनका हरण करते हैं। इस प्रकार मैंने तुम्हें 'हरि'-शब्दके मुख्य लक्षणको बतलाया॥ 60॥

अनुभाष्य—भगवान् श्रीहरि जीवोंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षात्मक चार पुरुषार्थोंको प्राप्त करनेकी पिपासाको छुड़ा देते हैं और सभीके मनका हरण करके अपने प्रेमके प्रति आकृष्ट करते हैं॥ 60॥

(10) च-शब्द और (11) अपि-शब्दके अर्थ :—

'अपि' 'च', दुइ शब्द ताते 'अव्यय' हय।
येइ अर्थ लागाइये, सेइ अर्थ हय॥ 61॥

च-शब्दके सात और अपि-शब्दके सात अर्थ :—

तथापि च-कारेर कहे मुख्य अर्थ सात।
अपि-शब्दे मुख्य अर्थ सात विख्यात॥ 62॥

अनुवाद—'च' और 'अपि'—इस श्लोकमें ये दो शब्द 'अव्यय' हैं। यद्यपि इन दोनोंके द्वारा श्लोकका जो जैसा अर्थ करना चाहता है, श्लोकका वैसा अर्थ हो जाता है। तथापि च-कार (शब्द)के सात मुख्य अर्थ हैं और 'अपि'-शब्दके भी सात प्रसिद्ध मुख्य अर्थ हैं॥ 61-62॥

च-शब्दका प्रयोगस्थल; प्रमाण :—
विश्वप्रकाशमें—

चान्वाचये समाहारेऽन्योऽन्यार्थे च समुच्चये।
यत्नान्तरे तथा पादपूरणेऽप्यवधारणे॥ 63॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 63॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अन्वाचयमें अर्थात् अनुगम्य-समूहके (पीछे चलनेवालेके) अर्थमें, समाहारमें (समूहमें), अन्य-अन्य अर्थमें, समुच्चयमें (सामूहिकमें), यत्नान्तरमें (दूसरे यत्नमें), पादपूर्णमें (श्लोकको पूर्ण करनेमें) और अवधारणमें अर्थात् निश्चयके अर्थमें 'च'-शब्दका प्रयोग होता है॥ 63॥

अपि-शब्दका प्रयोगस्थल, प्रमाण :—
विश्वप्रकाशमें—

अपि सम्भावना-प्रश्न-शङ्का-गर्हा समुच्चये।
तथा युक्तपदार्थेषु कामचारक्रियासु च॥ 64॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 64॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'अपि' शब्द सम्भावना, प्रश्न, शङ्का, गर्हा (निन्दा या दुर्वचन कहना), समुच्चय (सामूहिक), युक्त-पदार्थ (यथोचित प्रयोग), कामचार (उच्छृङ्खलता)-क्रियामें व्यवहार होता है॥ 64॥

यहाँ तक पदोंके अर्थ निर्णीत; अब उनके द्वारा श्लोकके अर्थोंका निर्णय :—

एइ त' एकादश पदेर अर्थ-निर्णय।
एबे श्लोकार्थ करि, यथा ये लागय॥ 65॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने इस श्लोकके ग्यारह पदोंके अर्थ बतलाये हैं। अब पदोंके यथायोग्य अर्थोंका प्रयोग करके मैं सम्पूर्ण श्लोकके अर्थका वर्णन करता हूँ॥ 65॥

सर्वप्रथम 'आत्माराम'-पदके अन्तर्गत 'आत्मा'-शब्दकी (1) 'ब्रह्म'-अर्थके द्वारा व्याख्या :—

'ब्रह्म'-शब्देर अर्थ—तत्त्व सर्व-बृहत्तम।
स्वरूप-ऐश्वर्य करि' नाहि याँर सम॥ 66॥

अनुवाद—'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ—जो 'सबसे बृहत्तम (बड़ा) तत्त्व' है। जिनके स्वरूप और ऐश्वर्यके समान किसी अन्यका स्वरूप और ऐश्वर्य नहीं है॥ 66॥

ब्रह्मकी संज्ञा; शास्त्र-प्रमाण :—
विष्णुपुराण (1/12/57)में—

बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म परमं विदुः।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् योगिचिन्ताविकारी यत्॥ 67॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बृहत्त्व (सर्वव्यापकता) होनेके कारण, बृंहणत्व अर्थात् वृद्धिकारकत्व (सम्वर्धक और पोषक) होनेके कारण उस तत्त्वको 'परमब्रह्म' कहते हैं। हे सर्वात्मन्, योगिचिन्ताविकारी (विद्वानोंको मोहित करनेवाले) जो आप हैं, आपको प्रणाम है॥ 67॥

अनुभाष्य—

[बुधाः] बृहत्त्वाद् (सर्वव्यापकत्वात्) बृंहणत्वाच्च (सम्वर्द्धकत्वात्, पोषकत्वात् वा) तत् परमं ब्रह्म विदुः (जानन्ति); हे सर्वात्मन्, ते (तव) यत् योगिचिन्ताविकारी (सूरिजनमोहनं स्वरूपं) तस्मैः नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 67॥

आत्मा-शब्दका सर्वव्यापक-तत्त्व ही ब्रह्मत्व :—
श्रीमद्भागवत (11/2/45) श्लोककी व्याख्यामें
श्रीधरस्वामि-उद्धृत तन्त्र-वाक्य—

आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः॥ 68॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 68॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सर्वव्यापक और सबकी सृष्टि करनेवाले होनेके कारण हरि ही परमात्मा हैं॥ 68॥

अनुभाष्य—

आततत्वात् (सर्वव्यापकत्वात्) मातृत्वात् (सर्वप्रसवितृत्वात्) च हरिः हिः परमः आत्मा।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 68॥

'ब्रह्म'-शब्दकी अभिधा-वृत्तिसे पूर्ण-प्रतीतिमय भगवान् :—

सेइ 'ब्रह्म'-शब्दे कहे स्वयं भगवान्।
अद्वितीय-ज्ञान, याँहा बिना नाहि आन॥ 69॥

अनुवाद—उस 'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण है। उनके अतिरिक्त अद्वितीय-ज्ञान [अर्थात् सजातीय-विजातीय-स्वगत भेदरहित अद्वय-ज्ञान; आदिलीला 2/11की अमृतानुकणिका टीका देखें] अन्य किसीमें भी नहीं है॥ 69॥

शास्त्र-प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (1/2/11)में—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ 70॥

अनुवाद—तत्त्वको जाननेवाले विज्ञगण अद्वयज्ञानको तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञानकी प्रथम प्रतीति ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति परमात्मा और तृतीय प्रतीति भगवान् हैं॥ 70॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/11 संख्या देखें॥ **70**॥

श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् और त्रिकालसत्य वस्तु :—

सेइ अद्वयतत्त्व कृष्ण—स्वयं भगवान्।
तिनकाले सत्य तिँहो—शास्त्र-प्रमाण॥ 71॥

अनुवाद—वे अद्वय-तत्त्व श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। वे भूत, भविष्य और वर्तमान—इन तीनों कालोंमें सत्य हैं, इस विषयमें शास्त्र ही प्रमाण है॥ **71**॥

सृष्टिसे पहले और बादमें
श्रीकृष्णका नित्य अधिष्ठान :—
श्रीमद्भागवत (2/9/32)में—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत् सोऽस्म्यहम्॥ 72॥

अनुवाद—इस जगत्की सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। सत्, असत् और अनिर्वचनीय निर्विशेष ब्रह्म तक कुछ भी मुझसे पृथक् रूपसे नहीं था। सृष्टि होनेके बाद इस सम्पूर्ण-स्वरूपमें मैं ही हूँ और सृष्टिकी प्रलय होनेके बाद भी एकमात्र मैं ही अवशिष्ट रहूँगा॥ **72**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/53 संख्या देखें॥ **72**॥

आत्मा-शब्दका अर्थ विभु श्रीकृष्ण :—

'आत्मा'-शब्दे कहे कृष्ण बृहत्त्वस्वरूप।
सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, परमस्वरूप॥ 73॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दसे श्रीकृष्णका बृहत्त्-स्वरूप कहा गया है। वे सर्वव्यापक, सबके साक्षी और परम स्वरूपसे युक्त हैं॥ **73**॥

श्रीमद्भागवत (11/2/45) श्लोककी व्याख्यामें
श्रीधरस्वामि-उद्धृत तन्त्र-वचन :—

आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः॥ 74॥

अनुवाद—सर्वव्यापक और सबकी सृष्टि करनेवाले होनेके कारण हरि ही परमात्मा हैं॥ **74**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/68 संख्या देखें॥ **74**॥

तीन प्रकारके अभिधेयमें श्रीकृष्णकी तीन प्रकारकी प्रतीति—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् :—

सेइ कृष्णप्राप्ति-हेतु त्रिविध 'साधन'।
ज्ञान, योग, भक्ति,—तिनेर पृथक् लक्षण॥ 75॥
तिन साधने भगवान् तिन स्वरूपे भासे।
ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्—त्रिविध-प्रकाशे॥ 76॥

अनुवाद—ज्ञान, योग और भक्ति—ये तीन प्रकारके 'साधन' उन श्रीकृष्णकी प्राप्तिके कारण स्वरूप हैं और तीनोंके अलग-अलग लक्षण हैं। भगवान् इन तीन प्रकारके साधनोंके अनुरूप ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन रूपोंमें प्रकाशित होते हैं॥ **75-76**॥

श्रीमद्भागवत (1/2/11)में—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ 77॥

अनुवाद—तत्त्वको जाननेवाले विज्ञगण अद्वयज्ञानको तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञानकी प्रथम प्रतीति ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति परमात्मा और तृतीय प्रतीति भगवान् हैं॥ **77**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/11 संख्या देखें॥ **77**॥

'ब्रह्म-आत्मा'-शब्दे यदि कृष्णेरे कहय।
'रूढ़ि-वृत्त्ये' निर्विशेष अन्तर्यामी कय॥ 78॥

अनुवाद—यद्यपि 'ब्रह्म' और 'आत्मा'-शब्द श्रीकृष्णको ही सूचित करते हैं, तथापि रूढ़िवृत्तिसे (प्रत्यक्षरूपसे) इन शब्दोंका अर्थ क्रमशः निर्विशेष ब्रह्म और अन्तर्यामी (परमात्मा) सूचित होता है॥ **78**॥

ज्ञानमार्गमें चिन्मात्र ब्रह्म, योगमार्गमें
सचिन्मय परमात्म-प्रतीति :—

ज्ञानमार्गे—निर्विशेष-ब्रह्म प्रकाशे।
योगमार्गे—अन्तर्यामि-स्वरूपेते भासे॥ 79॥

अनुवाद—अद्वयज्ञान श्रीकृष्ण ज्ञानमार्गके साधकोंके

लिये निर्विशेष-ब्रह्मके रूपमें और योगमार्गके साधकोंके समक्ष अन्तर्यामी-परमात्माके स्वरूपमें ही प्रकाशित होते हैं॥ 79॥

दो प्रकारकी भक्ति (रागमयी और वैधी)के द्वारा
दो प्रकारके भगवद्-स्वरूप (स्वयं श्रीकृष्ण
और उनके प्रकाश)की प्राप्ति :—

रागभक्ति, विधिभक्ति हय दुइरूप।
'स्वयं-भगवत्ता', 'प्रकाश'—दुइत' स्वरूप॥ 80॥

रागानुगा-भक्तिकी सिद्धि होनेपर व्रजमें
व्रजेन्द्रनन्दन, वैधीभक्तिकी सिद्धि होनेपर
वैकुण्ठमें श्रीनारायणका दास्य :—

रागभक्त्ये व्रजे स्वयं-भगवाने पाय।
विधिभक्त्ये पार्षददेहे वैकुण्ठके याय॥ 81॥

अनुवाद—भक्ति दो प्रकारकी होती है—रागभक्ति और वैधीभक्ति। रागभक्तिके द्वारा साधक 'स्वयं-भगवान्' और वैधीभक्तिके द्वारा साधक 'भगवद्-प्रकाश'—इन दो स्वरूपोंको प्राप्त करते हैं। रागभक्तिके पालनसे साधकको व्रजमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है। वैधीभक्तिके पालनसे साधक पार्षद-देह प्राप्त करके वैकुण्ठमें जाता है॥ 80-81॥

श्रीमद्भागवत (10/9/21)में—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥ 82॥

अनुवाद—यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिमान् देहधारियोंके लिये जिस प्रकार सुलभ हैं, आत्मभूत ज्ञानियोंके लिये वैसे नहीं हैं॥ 82॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/227 संख्या देखें॥ 82॥

श्रीमद्भागवत (3/15/25)में—

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरे-यमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः।
भर्त्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग-
वैक्लव्यवाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः॥ 83॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 83॥

अमृतप्रवाह भाष्य—परस्पर श्रीकृष्णकथाके वर्णनमें जिनके अनुरागसे विवश होकर अश्रु बहते हैं और अङ्ग पुलकित हो जाते हैं, वे देवादिदेव (देवोंके भी आदि देव) श्रीकृष्णका अनुसरण करते हुए यम-नियमादिको दूर फैंककर स्पृहाशील होकर हमारे (सत्यलोकके) ऊपर स्थित वैकुण्ठमें गमन करते हैं॥ 83॥

अनुभाष्य—व्यास-सखा श्रीमैत्रेय ऋषि श्रीविदुरको दितिके गर्भसे भयभीत देवताओंके निकट ब्रह्माके द्वारा दितिके गर्भमें स्थित दो असुरोंके पूर्व-वृत्तान्तको बतलाते हुए चतुःसनादिके वैकुण्ठ-गमनके उपाख्यानके वर्णनके प्रसङ्गमें वैकुण्ठके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं,—

अनिमिषां (कालानधीनानां देवानाम्) ऋषभानुवृत्त्या (ऋषभस्य श्रेष्ठस्य श्रीहरेः अनुवृत्त्या अनुसरणेन) दूरे-यमाः (दूरे यमः येषां ते, यद्वा, दूरीकृतयमनियमाः) स्पृहणीयशीलाः (स्पृहणीयं कारुण्यादि शीलं येषां ते) भर्त्तुः (हरेः) सुयशसः (सुमङ्गल-लीलागुणस्य) मिथः (परस्परं) कथानुरागवैक्लव्यवाष्पकलया (कथने वर्णने यः अनुरागः, तेन वैक्लव्य वैवश्यः तेन वाष्पकला अश्रुबिन्दुः तया सह) पुलकीकृताङ्गाः (पुलकीकृतं रोमाञ्चितम् अङ्गं येषां ते तथाभूताः) च नः (अस्माकम्) उपरि (उपरिस्थितं) यत् च [वैकुण्ठं] व्रजन्ति (गच्छन्ति) [तत् विकुण्ठमुपेत्य मुनयः परां मुदमापुरिति परेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [इस श्लोकका अगले श्लोकके तीसरे और चौथे चरणके साथ अन्वय करें।]॥ 83॥

तीन प्रकारके उपासक :—

सेइ उपासक हय त्रिविध प्रकार।
अकाम, मोक्षकाम, सर्वकाम आर॥ 84॥

अनुवाद—वे उपासक (साधक) भी तीन प्रकारके होते हैं—अकाम (सभी प्रकारकी स्वसुख कामनाओंसे रहित), मोक्षकाम (मोक्षकी कामनासे युक्त) और सर्वकाम (सब प्रकारकी कामनाओंसे युक्त)॥ 84॥

श्रीमद्भागवत (2/3/10)में—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥ 85॥

अनुवाद—पहले कोई 'अकाम' अर्थात् सर्वकामनाओंसे रहित हो अथवा 'सर्वकाम' अर्थात् सब प्रकारकी कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्षकी कामना करनेवाला ही क्यों न हो, उदार-बुद्धि होने मात्रसे ही मनुष्य तीव्र शुद्धभक्तियोगसे परमपुरुष श्रीकृष्णका भजन करेंगे॥ 85॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/36 संख्या देखें॥ 85॥

'उदारधी' शब्दका अर्थ :—

बुद्धिमान्-अर्थे—यदि विचारज्ञ हय।
निज-काम लागिह तबे कृष्णेरे भजय॥ 86॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 86॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस श्लोकमें यदि कोई उदारधी अर्थात् बुद्धिमान् अर्थात् विचारवान् हो, तो वह कामना-वासनाके रहनेपर भी श्रीकृष्णका ही भजन करेगा॥ 86॥

सब प्रकारके साधन ही भक्ति-सापेक्ष,
भक्ति ही केवल निरपेक्ष :—

भक्ति बिना कोन साधन दिते नारे फल।
सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल॥ 87॥

अनुवाद—भक्तिके बिना कोई भी साधन फल प्रदान नहीं कर सकता, किन्तु भक्ति अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षासे रहित स्वतन्त्र और बहुत अधिक बलशाली है॥ 87॥

भक्तिके आश्रयके बिना अन्य साधन, सभी निष्फल :—

अजागलस्तन-न्याय अन्य साधन।
अतएव हरि भजे बुद्धिमान् जन॥ 88॥

अनुवाद—जिस प्रकार बकरेके गलेके पास लटकते स्तन (मांसके पिण्ड) दूध देनेमें असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार भक्तिके अतिरिक्त अन्य समस्त साधन भी किसी फलको प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हैं। इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति भगवान् श्रीहरिका ही भजन करते हैं॥ 88॥

अनुभाष्य—भक्तिके अतिरिक्त अन्य प्रकारके साधन पूर्णतया निष्फल हैं, वे कभी भी फल प्रदान नहीं कर सकते। क्योंकि बकरेके गलेमें लटके हुए स्तन जिस प्रकार दूध नहीं दे सकते, केवलमात्र अनभिज्ञ लोगोंके झूठे भ्रमका ही विषय होते हैं, उसी प्रकार भक्तिके अतिरिक्त ज्ञान और कर्मके साधनका कोई फल नहीं होता॥ 88॥

भोगकामी और मोक्षकामीके भेदसे चार प्रकारके अनर्थयुक्त सुकृतिवान् लोग; वैसा होनेपर भी ये चार प्रकारकी कामनाएँ निष्काम भक्तिका कारण नहीं :—
श्रीमद्भगवदगीता (7/16)में—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ 89॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 89॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे अर्जुन! आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके लोग भक्ति-उन्मुखी सुकृतिवान् होनेपर, उन-उन कामनाओंका परित्याग करके मेरा भजन करते हैं॥ 89॥

अनुभाष्य—

हे अर्जुन, हे भरतर्षभ, सुकृतिनः (वर्णाश्रमाचारलक्षण-धर्मपराः) जनाः मां भजन्ते; ते च चतुर्विधाः—आर्त्तः (क्लिष्टः आपद्ग्रस्तः—गजेन्द्रादिः), जिज्ञासुः (आत्मस्वरूपज्ञानेच्छुः—शौनकादिः), अर्थार्थी (सुखसम्पदिच्छुः ध्रुवादि,—एते सकामाः), ज्ञानी (लब्ध-बोधः—शुकादिः, अयं तु निष्कामः) च।

श्लोक-भावानुवाद—हे अर्जुन, हे भरतर्षभ, सुकृतिवान् अर्थात् वर्णाश्रम-धर्मपरायण लोग मेरा भजन करते हैं; वे चार प्रकारके होते हैं—आर्त्ति (दुःखी या विपदाग्रस्त—गजेन्द्रादि), जिज्ञासु (आत्मस्वरूपको जाननेके इच्छुक—शौनकादि), अर्थार्थी (सुख-सम्पत्तिके इच्छुक—ध्रुवादि) और ज्ञानी (ज्ञान-प्राप्त—शुकदेवादि, ये निष्काम होते हैं)॥ 89॥

आर्त्त और अर्थार्थी—भोगकामी;
जिज्ञासु और ज्ञानी—मुक्तिकामी :—

आर्त्त, अर्थार्थी,—दुइ सकाम-भितरे गणि।
जिज्ञासु, ज्ञानी,—दुइ मोक्षकामी मानि॥ 90॥

अनुवाद—मैं आर्त्त और अर्थार्थी—इन दोनोंको सकाम भक्त तथा जिज्ञासु और ज्ञानी—इन दोनोंको मोक्षकी कामना करनेवाला मानता हूँ॥ 90॥

चार प्रकारकी कामनाओंको छोड़नेसे ही
शुद्धभक्तिको प्राप्त करनेकी योग्यता :—

एइ चारि सुकृति हय महाभाग्यवान्।
तत्तत्कामादि छाड़ि' हय शुद्धभक्तिमान्॥ 91॥

अनुवाद—ये चारों प्रकारके सुकृतिशाली व्यक्ति महाभाग्यशाली होते हैं। सुकृतिके प्रभावसे वे धीरे-धीरे अपनी-अपनी कामनाओंको छोड़कर शुद्धभक्त बन जाते हैं॥ 91॥

चार प्रकारकी कामनाएँ ही दुःसङ्ग, साधुगुरु-श्रीकृष्णकी
कृपासे दुःसङ्गका दूर होना :—

साधुसङ्ग-कृपा किम्वा कृष्णेर कृपाय।
कामादि 'दुःसङ्ग' छाड़ि' शुद्धभक्ति पाय॥ 92॥

अनुवाद—साधुसङ्ग-कृपा अथवा श्रीकृष्णकी कृपासे वे कामनाओंरूपी 'दुःसङ्ग'को छोड़कर शुद्धभक्ति प्राप्त करते हैं॥ 92॥

सत्सङ्गका प्रभाव :—
श्रीमद्भागवत (1/10/11)में—

सत्सङ्गान्मुक्त-दुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम्॥ 93॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 93॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सत्सङ्ग करते हुए दुःसङ्गका परित्याग करके पण्डित-व्यक्ति भगवान्के कीर्तन करने योग्य और रुचिकर यशको एकबार सुनकर उन्हें कभी भी परित्याग नहीं कर सकते॥ 93॥

अनुभाष्य—धर्मराज युधिष्ठिरका राज्य-अभिषेक करनेके बाद कुछ मास हस्तिनापुरमें रहनेके बाद श्रीकृष्ण द्वारका जानेकी अभिलाषा करके कुरु-पाण्डव कुलके स्त्री-पुरुष सभीका यथाविधि यथायोग्य अभिवादन करके उनसे विदायी लेकर रथपर चढ़े, शौनकादि ऋषियोंको श्रीसूत हस्तिनापुरवासियोंके श्रीकृष्ण-विरहमें अधीर होनेके प्रसङ्गमें साधुसङ्गके माधुर्यके विषयमें बतला रहे हैं,—

सत्सङ्गात् (कृष्णभक्तसङ्गात् हेतोः) मुक्तदुःसङ्गः (मुक्तः ज्ञानकर्मान्याभिलाषविषयः पुत्रादिविषयो वा दुःसङ्गो येन सः) बुधः (सुधीः) कीर्त्यमानम् (उच्चार्यमाणं) यस्य (श्रीकृष्णस्य) रोचनं (रुचिकरं) यशं सकृत् आकर्ण्य (श्रुत्वा) हातुं (सत्सङ्गं त्यक्तुं) न उत्सहते, [तस्य विरहं पार्थाः कथं सहेरन्निति परेणान्वयः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। [अगले श्लोकके प्रथम और द्वितीय चरणके साथ इसका अन्वय करें।]॥ 93॥

दुःसङ्गका अर्थ :—

'दुःसङ्ग' कहिये—'कैतव', 'आत्मवञ्चना'।
कृष्ण, कृष्णभक्ति बिना अन्य कामना॥ 94॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण भक्तिके अतिरिक्त अन्य कामनाओंको हृदयमें रखना ही 'कैतव' (कपटता) तथा 'आत्मवञ्चना' (अपनेको ही ठगना) है। इसीको 'दुःसङ्ग' कहते हैं॥ 94॥

अनुभाष्य—छल-कपटके द्वारा अपनी वञ्चना करना ही 'दुःसङ्ग' है। श्रीकृष्णकाम और श्रीकृष्णभक्तिकी कामनाके अतिरिक्त अन्य समस्त कामनाएँ ही 'दुःसङ्ग' हैं॥ 94॥

श्रीमद्भागवत (1/1/2)में—

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥ 95॥

अनुवाद—यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ सर्वप्रथम महामुनि श्रीनारायणके द्वारा चतुःश्लोकी (अर्थात् चार श्लोकों)के रूपमें निर्मित है। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सब जीवोंके प्रति दयालु व्यक्तियोंके लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक कैतवसे शून्य अर्थात् छलरहित परमधर्मकी व्याख्या हुई है। यह धर्म जीवके त्रितापका नाश करनेवाला, शिवद अर्थात् मङ्गल प्रदान करनेवाला और वास्तव-वस्तुके तत्त्व-ज्ञानको प्रदान करनेवाला है। इसको श्रवण करनेके इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार ईश्वरको अपने हृदयमें अवरुद्ध करनेमें समर्थ होते हैं। इसलिये श्रीमद्भागवतके अतिरिक्त अन्य किसी शास्त्रकी क्या आवश्यकता है? ॥ 95 ॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/91 संख्या देखें ॥ 95 ॥

'प्र'-शब्दे—मोक्षवाञ्छा कैतवप्रधान।
एइ श्लोके श्रीधरस्वामी करियाछेन व्याख्यान ॥ 96 ॥

अनुवाद—उपरोक्त श्लोकके 'प्र'-शब्दसे समझना चाहिये कि मोक्षकी कामना ही प्रधान कैतव (कपटता) है। इस श्लोककी टीकामें श्रीधरस्वामीने ऐसी व्याख्या की है ॥ 96 ॥

सकाम-भक्ते 'अज्ञ' जानि' दयालु भगवान्।
स्व-चरण दिया करे इच्छार पिधान ॥ 97 ॥

अनुवाद—सकाम भक्तको 'अज्ञ' (मूर्ख) जानकर दयालु भगवान् उसे अपने श्रीचरणका आश्रय प्रदान करके उसकी अनुचित कामनाओंको आच्छादित कर देते हैं ॥ 97 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'इच्छार पिधान'*—इच्छाका आच्छादन (परिपूरण) ॥ 97 ॥

श्रीमद्भागवत (5/19/26)में—

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ 98 ॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण प्रार्थना किये जानेपर मनुष्योंकी प्रार्थनाको पूर्ण करते हैं, यह बात सत्य है। किन्तु जिस अर्थसे (भोगकी वस्तुसे) बार-बार भोगके लिये प्रार्थना उदित होती है, श्रीकृष्ण उस अर्थको नहीं देते। अन्यकामी होकर जो एकमात्र उनके पादपल्लवको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करनेपर भी उनका भजन करते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें स्वयं ही अन्य-कामनाओंको शान्त कर देनेवाले अपने चरणकमलोंको दिया करते हैं ॥ 98 ॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/40 संख्या देखें ॥ 98 ॥

शुद्धभक्तके सङ्ग, सेवा और श्रीकृष्णकृपासे ही अनर्थ-निवृत्ति और सिद्धिकी प्राप्ति :—

साधुसङ्ग, कृष्णकृपा, भक्तिर स्वभाव।
ए तिने सब छाड़ाय, करे कृष्णे 'भाव' ॥ 99 ॥

अनुवाद—साधुसङ्ग, श्रीकृष्ण-कृपा और श्रीकृष्ण-भक्तिका स्वभाव ही ऐसा है कि ये तीनों अन्य सब वस्तुओंको छुड़ाकर धीरे-धीरे श्रीकृष्णके प्रति भावको उत्पन्न करा देते हैं ॥ 99 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अकाम, सर्वकाम, और मोक्षकाम,—ये तीन प्रकारके व्यक्ति उन-उन कामनाओंके दोषोंको छोड़कर श्रीकृष्णकी शुद्धभक्ति करते हैं ॥ 99 ॥

अनुभाष्य—*'एइ तिने'*—श्रीकृष्णभक्तोंका सङ्ग, श्रीकृष्णकृपा और श्रीकृष्णभक्ति। ये श्रीकृष्णके अभक्तोंका सङ्ग, मायाके द्वारा प्रदान किये गये समस्त सौभाग्य और अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान और योग-प्रवृत्ति आदि सबकुछ छुड़ाकर श्रीकृष्णके प्रति 'भाव' उत्पन्न करते हैं ॥ 99 ॥

बादकी सभी व्याख्याओंमें यही जानने योग्य :—

आगे यत यत अर्थ व्याख्यान करिब।
कृष्णगुणास्वादेर एइ हेतु जानिब ॥ 100 ॥
श्लोकव्याख्या लागि' एइ करिलुँ आभास।
एबे करि श्लोकेर मूलार्थ प्रकाश ॥ 101 ॥

अनुवाद—आगे मैं (आत्मारामश्च) श्लोकके शब्दोंकी क्रमशः व्याख्या करूँगा, हे सनातन, तुम उन्हें श्रीकृष्णके गुणोंका आस्वादन करनेका कारण समझना। मैंने अब तक उसकी भूमिका बनायी है, अब मैं उसके मुख्य अर्थको प्रकाशित कर रहा हूँ॥ 100-101॥

ज्ञानियोंके दो प्रकारके विभेद :—

ज्ञानमार्गे उपासक—दुइत' प्रकार।
केवल ब्रह्मोपासक, मोक्षाकाङ्क्षी आर॥ 102॥

(1) केवल-ब्रह्मज्ञानी तीन प्रकारके :—

केवल ब्रह्मोपासक तिन भेद हय।
साधक, ब्रह्ममय, आर प्राप्त-ब्रह्मलय॥ 103॥

भक्ति-आश्रित ज्ञानके साधनसे ही साधकका ब्रह्मभूत होना :—

भक्ति बिना केवल ज्ञाने 'मुक्ति' नाहि हय।
भक्ति साधन करे येइ 'प्राप्त-ब्रह्मलय'॥ 104॥

वास्तव-वस्तुके आनुगत्यमें अथवा भक्तिफलसे ही 'ब्राह्मणत्व' और सेवाके संयोगसे ही 'वैष्णवत्व' :—

भक्तिर स्वभाव,—ब्रह्म हैते करे आकर्षण।
दिव्य देह दिया कराय कृष्णेर भजन॥ 105॥

वैष्णव होनेपर ही श्रीकृष्णसेवाका अनुष्ठान :—

भक्तदेह पाइले हय गुणेर स्मरण।
गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन॥ 106॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 102-106॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ज्ञानमार्गके उपासक केवल-ब्रह्मोपासक और मोक्ष-आकाङ्क्षीके भेदसे दो प्रकारके हैं। कैवल्य-वासनासे ब्रह्मकी उपासना करनेवाले 'केवल-ब्रह्मोपासक' होते हैं। उनकी तीन अवस्थाएँ—साधक, (नित्यसिद्ध) ब्रह्ममय और ब्रह्मलय-प्राप्त (अर्थात् ब्रह्मभूत) हैं। भक्तिके बिना ज्ञान मुक्ति नहीं दे सकता। जो व्यक्ति ब्रह्मलयप्राप्त (अर्थात् ब्रह्मभूत हो गया है), वही भक्तिसाधन कर सकता है। भक्तिसाधनके उपस्थित होनेपर भक्तिका स्वभाव उपस्थित होता है। उस स्वभावके प्रभावसे भक्ति (उन्हें) ब्रह्मसे आकर्षण करके दिव्य देह देकर श्रीकृष्णभजन कराती है। भक्तको अप्राकृत देह प्राप्त होनेपर श्रीकृष्णके सभी गुणोंका स्मरण होता है और भक्त उन गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर निर्मल भजन करता है॥ 102-106॥

मुक्तगणोंकी भी अप्राकृत सिद्धदेहमें भगवत्-सेवा :—
श्रीमद्भागवत (10/87/21) श्लोकमें श्रीधर-उद्धृत सर्वज्ञ भाष्यकार व्याख्या और नृसिंहतापनी (2/5/16)में—

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं
कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥ 107॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 107॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुक्तगण भी लीलासे आकर्षित होकर विग्रह स्थापित करके भगवान्का भजन करते हैं॥ 107॥

ब्रह्ममय शुक और चतुःसनादि भी श्रीकृष्णके प्रति आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण भजनमें रत :—

जन्म हैते शुक-सनकादि 'ब्रह्ममय'।
कृष्णगुणाकृष्ट हञा कृष्णेरे भजय॥ 108॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीशुकदेव गोस्वामी और सनकादि चार कुमार जन्मसे ही 'ब्रह्ममय' थे, किन्तु बादमें श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर उन्होंने श्रीकृष्णका भजन किया॥ 108॥

चतुःसनादि श्रीकृष्णचरणकी गन्धसे आकृष्ट होकर शुद्धभक्तिमें रत :—

सनकाद्येर कृष्णकृपाय सौरभे हरे मन।
गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन॥ 109॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीसनकादिके मनको श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें समर्पित तुलसी आदिकी सुगन्धने हरण कर लिया था। इस प्रकार उन्होंने श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर उनका शुद्ध भजन किया था॥ 109॥

श्रीमद्भागवत (3/15/43)में—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥ 110॥

अनुवाद—उन कमल-नेत्र-भगवान्‌के पदकमलकी पराग-मिश्रित तुलसीकी मधुरगन्धयुक्त वायुने सनकादि चार कुमारोंकी नासिकाके छिद्रके माध्यमसे अन्दर जाकर निर्विशेष-ब्रह्मपरायण उनके चित्त और देहमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया था॥ 110॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 17/142 संख्या देखें॥ 110॥

व्यासदेवकी कृपासे उनके शिष्य शुक श्रीकृष्णलीलाके प्रति आकृष्ट होकर शुद्धभक्तिमें रत :—

व्यासकृपाय शुकदेवेर लीलादि-स्मरण।
कृष्णगुणाकृष्ट हञा करेन भजन॥ 111॥

अनुवाद—श्रीव्यासदेवकी कृपासे श्रीशुकदेवको श्रीकृष्णकी लीलादिका स्मरण हुआ था। श्रीशुकदेवने भी श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर उनका भजन किया था॥ 111॥

श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर श्रौतपन्थी शुकका व्यासदेवसे भागवत-अध्ययन :—

श्रीमद्भागवत (1/7/11)में—

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः॥ 112॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 112॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मति हरिके गुणोंसे आकृष्ट होनेपर वैष्णवप्रिय भगवान् शुकदेवने इस महद्-आख्यानका (महापुराण श्रीमद्भागवतका) अध्ययन किया था॥ 112॥

अनुभाष्य—'निवृत्तिमें पूर्णरत, सर्वत्र-उपेक्षाशील, आत्माराम ब्रह्मज्ञानी श्रीशुकदेवने किस कारण इस श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया था?'—शौनकके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीसूत उसके कारणका वर्णन कर रहे हैं,—

नित्यं विष्णुजनप्रियः (विष्णुजनाः प्रियाः यस्य सः) भगवान् बादरायणिः (वैयासकिः श्रीशुकः) हरेः गुणाक्षिप्तमतिः (गुणेन आक्षिप्ता मतिः यस्य सः हरिगुणानुवादाकृष्टचित्तः सन्) महादाख्यानम् (इदं श्रीभागवतं महापुराणम्) अध्यगात् (अधीतवान्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 112॥

श्रौतपन्थी ब्रह्मज्ञानी नव-योगेन्द्रोंका श्रीकृष्णगुणके श्रवणसे श्रीकृष्णभजन :—

नव-योगीश्वर जन्म हैते 'साधक'-ज्ञानी।
विधि-शिव-नारद-मुखे कृष्णगुण शुनि'॥ 113॥
गुणाकृष्ट हञा करे कृष्णेर भजन।
एकादश-स्कन्धे ताँर भक्ति-विवरण॥ 114॥

अनुवाद—(ऋषभदेवके नौ योगी पुत्र) नव-योगीश्वर (नवयोगेन्द्र) जन्मसे ही 'साधक' ब्रह्मज्ञानी थे। किन्तु ब्रह्मा, शिव, नारदके मुखसे श्रीकृष्णके गुणोंके विषयमें श्रवण करके वे श्रीकृष्णके गुणोंके प्रति आकर्षित हुए और तब उन्होंने श्रीकृष्णका भजन किया। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें उनकी भक्तिका विवरण प्राप्त होता है॥ 113-114॥

शास्त्र-प्रमाण :—

भक्तिरसामृतसिन्धु (3/1/20)में उद्धृत महोपनिषद्-वाक्य—

अक्लेशां कमलभुवः प्रविश्य गोष्ठीं
कुर्वन्तः श्रुतिशिरसां श्रुतिं श्रुतज्ञाः।
उत्तुङ्गं यदुपुरसङ्गमाय रङ्गं
योगीन्द्राः पुलकभृतो नवाप्यवापुः॥ 115॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 115॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वेदोंमें कुशल नवयोगेन्द्र जहाँ क्लेशका कोई स्थान नहीं है, ऐसी ब्रह्माजीकी सभामें प्रविष्ट हुए। वहाँ ब्रह्माजीसे उपनिषदोंके वास्तविक अर्थोंका (श्रीकृष्णकी महिमाका) श्रवण करके वे पुलकित देहसे यदुपुरी द्वारकामें जानेके इच्छुक हुए।

इस प्रकार अन्तमें उन्हें अति उच्च 'रङ्गक्षेत्र' प्राप्त हुआ था॥ 115॥

अनुभाष्य—

श्रुतज्ञाः (वेदकुशलाः) नवयोगीन्द्राः (जायन्तेयाः) कमलभुवः (पद्मयोनेः) अक्लेशां (क्लेशवर्जितां) गोष्ठीं (सभां) प्रविश्य, श्रुतिशिरसाम् (उपनिषदां) श्रुतिं (श्रवणं) कुर्वन्तः अपि यदुपुरसङ्गमाय (द्वारकां गन्तुमित्यर्थः) पुलकभृतः (रोमाञ्चितदेहाः सन्तः) उत्तुङ्गम् (अत्युच्चं) रङ्गं (रङ्गक्षेत्रम्) अवापुः (प्राप्तवन्तः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 115॥

(2) मोक्षाकाङ्क्षीके तीन प्रकारके भेद :—

मोक्षाकाङ्क्षी ज्ञानी हय तिनप्रकार।
मुमुक्षु, जीवन्मुक्त, प्राप्तस्वरूप आर॥ 116॥

अनुवाद—मोक्षकी (ब्रह्ममें लीन होनेकी) आकाङ्क्षा करनेवाले ज्ञानी तीन प्रकारके होते हैं—(1) मुमुक्षु (मुक्तिकामी), (2) जीवन्मुक्त (प्राकृत देह रहते हुए भी मुक्त) और (3) प्राप्त-स्वरूप (जिन्हें अपने नित्य स्वरूपकी प्राप्ति हो गयी है)॥ 116॥

(क) मुक्तिकामी विषयी व्यक्तियोंका भक्तिके आश्रयमें श्रीकृष्णभजन :—

'मुमुक्षु' अनेक जगते संसारी जन।
'मुक्ति' लागि' भक्त्ये करे कृष्णेर भजन॥ 117॥

अनुवाद—जगत्‌में अनेक संसारी व्यक्ति 'मुक्तिकामी' हैं। 'मुक्ति'के लिये वे भक्तिके द्वारा श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 117॥

श्रीमद्भागवत (1/2/26)में—

मुमुक्षवो घोररूपान हित्वा भूतपतीनथ।
नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥ 118॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 118॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुक्तिकामी व्यक्ति घोररूपी भूतपतियोंका परित्यागकर, किन्तु उनके प्रति असूया-रहित (ईर्ष्या-द्वेष-रहित) होकर श्रीनारायणकी सभी कलाओंका भजन करते हैं॥ 118॥

अनुभाष्य—कल्याण चाहनेवाले बुद्धिमान व्यक्ति अधोक्षज विष्णुकी अथवा उनके अवतारोंकी और सकाम अशान्त स्वभाववाले उपासक व्यक्ति विष्णुके अतिरिक्त अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, यही श्रीसूत गोस्वामी शौनकादि ऋषियोंको बतला रहे हैं,—

[ननु अन्यानपि केचिद्भजन्तो दृश्यन्ते? सत्यं, मुमुक्षवस्तु अन्यान् न भजन्ति, किन्तु सकामा एवेत्याह]—अथ (अतएव) घोररूपान् (भीषणाकृतीन्) भूतपतीन् (पितृभूतप्रजेशादीन्) हित्वा (त्यक्त्वा) मुमुक्षवः (निःश्रेयसार्थिनः ज्ञानिनः) अनसूयवः (अहिंस्रव्रताः देवतान्तरानिन्दकाः) शान्ताः (निष्कामाः सन्तः) नारायणकलाः (नारायणस्य अंशावतारान्) हि भजन्ति।

श्लोक-भावानुवाद—[निश्चय ही कई लोग विष्णुके अतिरिक्त अन्योंका क्यों भजन करते दिखायी देते हैं? यह सत्य है, यद्यपि मुक्तिकामी अन्योंका भजन नहीं करते हैं, तथापि सकाम व्यक्ति ही ऐसा करते हैं, इसलिये कह रहे हैं—] आगे अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 118॥

साधुसङ्गसे मुक्तिकी कामना-त्याग :—

सेइ सबेर साधुसङ्गे गुण स्फुराय।
कृष्णभजन कराय, 'मुमुक्षा' छाड़ाय॥ 119॥

अनुवाद—वे सब मुक्तिकामी लोग यदि साधुसङ्ग (शुद्धभक्तोंका सङ्ग) करते हैं, तब वे श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर 'मुक्तिकी कामना' छोड़कर श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चतुःसन और शुकदेवकी ब्रह्ममयता और नवयोगेन्द्रोंका साधक होना दिखलाकर, 'मुमुक्षु', 'जीवन्मुक्त' और 'प्राप्त-स्वरूप'—इस प्रकारके तीन प्रकारके मोक्षाङ्काक्षी ज्ञानियोंकी बातका विचार करते हुए सर्वप्रथम मुक्तिकामियोंकी बात कह रहे हैं। उन मुक्तिकामियोंको साधुसङ्गमें जब भगवान्‌के गुणोंकी स्फूर्ति होती है, तब वे मुक्तिकी कामनाको छोड़कर श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 119॥

सत्सङ्गके गुण और महिमा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (3/2/27)में उद्धृत हरिभक्तिसुधोदय-वचन—

अहो महात्मन् बहुदोषदुष्टोऽप्येकेन
भात्येष भवो गुणेन।
सत्सङ्गमाख्येन सुखावहेन
कृताद्य नो येन कृशा मुमुक्षा॥ 120॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 120॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे महात्मन्! इस भवसंसारमें बहुत दोष रहनेपर भी साधुसङ्गरूपी एक महान् गुण है। उसी एक नित्यकल्याणप्रद गुणके द्वारा अब हमारी मुक्तिकी इच्छा दुर्बल हो गयी है॥ 120॥

अनुभाष्य—

हे महात्मन्, अहो एष भवः (मानवजन्म) बहुदोषदुष्टः (अशेषदोषाकरभूतः) अपि सुखावहेन (अर्थदेन, नित्यकल्याण-प्रदेन) सत्सङ्गमाख्येन (साधुसङ्गनाम्ना) एकेन गुणेन भाति (दीप्यति), येन (गुणेन) अद्यः नः (अस्माकं) मुमुक्षा (मोक्षवाञ्छा) कृशा कृता (क्षयीभूता भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 120॥

जिज्ञासु मुक्तिकामी शौनकादिका शुद्धभक्तके सङ्गसे मुक्तिकी कामनाका त्याग :—

नारदेर सङ्गे शौनकादि मुनिगण।
मुमुक्षा छाड़िया कैला कृष्णेर भजन॥ 121॥

कभी तो श्रीकृष्णदर्शनसे, कभी श्रीकृष्णकृपासे मुक्तिकी कामनाका त्याग और शुद्धभक्तिकी प्राप्ति :—

कृष्णेर दर्शने, कारो कृष्णेर कृपाय।
मुमुक्षा छाड़िया गुणे भजे ताँर पा'य॥ 122॥

अनुवाद—श्रीनारदके सङ्गसे शौनकादि मुनियोंने मुक्तिकी वाञ्छाको त्याग करके श्रीकृष्णका भजन किया। किसीने श्रीकृष्णके दर्शन करके और किसीने श्रीकृष्णकी कृपासे मोक्षकी वाञ्छाको छोड़कर उनके गुणोंके प्रति आकर्षित होकर उनके श्रीचरणकमलोंका भजन किया॥ 121-122॥

शुद्ध श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त करनेपर पहले आचरित ज्ञानके प्रयासमें खेद :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (3/1/34)—

अस्मिन् सुखघनमूर्त्तौ परमात्मनि
वृष्णिपत्तने स्फुरति।
आत्मारामतया मे वृथा गतो
बत चिरं कालः॥ 123॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 123॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस वृष्णिपत्तन द्वारकामें चित्सुख-घनमूर्ति श्रीकृष्णके स्फुरित होनेपर मेरे सुखका उदित हुआ है। हाय, आत्मारामताका आश्रय (निर्विशेष-ब्रह्मका अनुशीलन) करते हुए मेरे अनेक दिन वृथा (बेकार) चले गये हैं॥ 123॥

अनुभाष्य—

बत (खेदे) वृष्णिपत्तने (द्वारकानगर्यां) सुखघनमूर्त्तौ (चित्सुखघनविग्रहे) परमात्मनि अस्मिन् (श्रीकृष्णे) स्फुरति [सति] आत्मारामतया (निर्विशेषब्रह्मानुशीलनेन) चिरं मे (मम) कालः वृथा गतः (हतः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 123॥

(ख) दो प्रकारके जीवन्मुक्त :—

'जीवन्मुक्त' अनेक सेइ, दुइ भेद जानि।
'भक्त्ये जीवन्मुक्त', 'ज्ञाने जीवन्मुक्त' मानि॥ 124॥

भक्तिके फलसे जीवन्मुक्त अवरोहपन्थी भक्तको श्रीकृष्णसेवानन्दकी प्राप्ति, ज्ञानके फलसे आरोहपन्थी मुक्ताभिमानीकी अधोगति :—

'भक्त्ये जीवन्मुक्त' गुणाकृष्ट हञा कृष्ण भजे।
'शुष्कज्ञाने जीवन्मुक्त' अपराधे अधो मजे॥ 125॥

अनुवाद—'जीवन्मुक्त' (इसी जीवनमें मुक्त) अनेक हैं, उनमें दो श्रेणियाँ हैं। एक प्रकारके जीवन्मुक्त तो भक्तिका आश्रय करके जीवन्मुक्त होते हैं और दूसरी प्रकारके वे हैं जो केवल ज्ञानका आश्रय करके स्वयंको जीवन्मुक्त मानते हैं, किन्तु वास्तवमें मुक्त होते

नहीं हैं। जो भक्तिकी सहायतासे जीवन्मुक्त होते हैं, वे श्रीकृष्णके गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर उनका भजन करते हैं। और केवल शुष्कज्ञानसे स्वयंको जीवन्मुक्त माननेवाले अपराधके कारण अधोःपतित होते हैं॥ 124-125॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अपराधे अधो मजे'*—शुष्कज्ञान-जनित जीवन्मुक्त (अभिमानी)-लोग अपराधवशतः अधःपतित होकर मजे अर्थात् नष्ट हो जाते हैं॥ 125॥

श्रीमद्भागवत (10/2/32)में—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वयस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रे
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ 126॥

अनुवाद—हे कमलनयन, जो 'मैं विमुक्त हो गया हूँ', ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होनेके कारण अशुद्ध बुद्धिवाले हैं। वे बहुत कष्ट करके मायासे अतीत परमपद ब्रह्म तक आरोहण करके भी भगवद्भक्तिके अनादरके कारण अधःपतित होते हैं॥ 126॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/30 संख्या देखें॥ 126॥

श्रीमद्भगवद्गीता (18/54)में—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ 127॥

अनुवाद—गीतामें कहा गया है,—अभेद ब्रह्मवादरूपी ज्ञानचर्चाके द्वारा स्वयं प्रसन्नात्माका शोक और कामनारहित होनेपर तथा सभी जीवोंमें समभावयुक्त ब्रह्मता प्राप्त करनेके बाद उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि पहले कर्ममिश्रा-भक्तिका उल्लेख हुआ था, उसकी अपेक्षा ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है॥ 127॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/65 संख्या देखें॥ 127॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (3/1/44)में उद्धृत बिल्वमङ्गल वाक्य :—

अद्वैतवीथिपथिकैरुपास्याः
स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥ 128॥

अनुवाद—अद्वैतमार्गके पथिकोंके द्वारा उपास्य और आत्मानन्द-सिंहासनसे दीक्षा प्राप्त करनेपर भी मैं किसी गोपवधू-लम्पट शठके द्वारा हठतापूर्वक दासीके रूपमें परिणत हो गया हूँ॥ 128॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 10/178 संख्या देखें॥ 128॥

(ग) स्वरूप-प्राप्त भक्तोंका चिदानन्ददेहसे श्रीकृष्णभजन :—

भक्तिबले 'प्राप्तस्वरूप' दिव्यदेह पाय।
कृष्णगुणाकृष्ट हञा भजे कृष्ण-पा'य॥ 129॥

अनुवाद—'प्राप्तस्वरूप' (स्वरूपकी उपलब्धि करनेवाला) जीव भक्तिके बलसे दिव्यदेहको प्राप्त करता है और श्रीकृष्णके गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर श्रीकृष्णके चरणोंका भजन करता है॥ 129॥

दस प्रकारके लक्षणोंमेंसे निरोध और मुक्तिके लक्षण :—
श्रीमद्भागवत (2/10/6)में—

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः।
मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः॥ 130॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 130॥

अमृतप्रवाह भाष्य—[श्रीहरिकी योगनिद्राके बाद] शक्तिगणोंके अर्थात् उपाधियोंके साथ आत्माके शयनको जीवका 'निरोध' कहा जाता है। अन्य प्रकारके रूपका (मायिक स्थूल-सूक्ष्म रूपका) परित्यागकर स्व-स्वरूपमें विशेषरूपसे अवस्थानका नाम 'मुक्ति' है॥ 130॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेव परीक्षितसे सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय,—महापुराणके इन दस लक्षणोंको दशम-पदार्थ

आश्रयस्वरूप भगवान्‌के विशुद्धतत्त्वज्ञानके उद्देश्यसे वर्णन करते हुए इस श्लोकमें उसके अन्तर्गत निरोध और मुक्तिके स्वरूप अथवा लक्षण बतला रहे हैं,—

[श्रीहरेः योगनिद्राम] अनु (पश्चात्) अस्य आत्मनः (जीवस्य) शक्तिभिः (स्वोपाधिभिः) शयनं (लयः) निरोधः (इति स्मृतः); तथा अन्यथा रूपं (अविद्यया अध्यस्तं कर्तृत्वादि) हित्वा (त्यक्त्वा) स्वरूपेण (भगवद्दास्ये शुद्धजीवस्वरूपेण) व्यवस्थितिः (विशेषेण अवस्थानं स्वरूपसाक्षात्कार इत्यर्थ एव) 'मुक्तिः'।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 130॥

मायारूपी भोगवाञ्छामें श्रीकृष्ण-विमुखता, श्रीकृष्णसेवासे अथवा श्रीकृष्ण-उन्मुखतासे मायासे मुक्ति :—

कृष्ण-बहिर्मुख-दोष माया हैते हय।
कृष्णोन्मुखी भक्ति हैते माया-मुक्ति हय॥ 131॥

अनुवाद—मायासे ही श्रीकृष्ण-बहिर्मुखतारूपी दोष उत्पन्न होता है और श्रीकृष्ण-उन्मुखी भक्तिसे ही मायासे मुक्ति होती है॥ 131॥

श्रीमद्भागवत (11/2/37)में—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशा-
दपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥ 132॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसे इतर (अन्य) जो माया है, उसमें अभिनिविष्ट जीवमें 'भय' उपस्थित होता है और उन ईश्वरसे बहिर्मुख होनेके कारण मायाजनित विपरीत स्मृति होती है; इसी कारण पण्डित व्यक्ति गुरुको 'देवता' और 'आत्म'-स्वरूप मानकर अनन्य-भक्तिके साथ उन परमेश्वरका भजन करेंगे॥ 132॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 20/119 संख्या देखें॥ 132॥

श्रीमद्भगवद्गीता (7/14)में—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ 133॥

अनुवाद—इस त्रिगुणमयी मेरी मायासे अत्यन्त कष्टसे पार हुआ जाता है; जो मेरे शरणागत होते हैं, वे ही केवल इस मायासे पार हो सकते हैं॥ 133॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 20/121 संख्या देखें॥ 133॥

भक्तिबलसे ही मुक्ति और मुक्त होनेपर श्रीकृष्णभक्ति :—

भक्ति बिना मुक्ति नाहि, भक्त्ये मुक्ति हय।
तबे मुक्ति पाइले अवश्य कृष्ण भजय॥ 134॥

अनुवाद—भक्तिके बिना मुक्ति नहीं हो सकती, भक्तिसे ही मुक्ति प्राप्त होती है। जो भक्तिके बलपर मुक्ति प्राप्त करते हैं, वे सदा ही श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 134॥

श्रीमद्भागवत (10/14/4)में—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोधलब्ध्ये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥ 135॥

अनुवाद—हे विभो! आपमें भक्ति ही कल्याणका पथ है, उसे परित्याग करके जो सब व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्तिके लिये अर्थात् 'मैं ब्रह्म' हूँ, इसीको ही स्थिर रूपमें जाननेके लिये अनेक प्रकारके कष्ट स्वीकार करते हैं, खाली भूसीको पीसनेवालोंको जिस प्रकार चावल नहीं मिलते, उसी प्रकार, उन्हें अन्तमें क्लेशमात्र ही प्राप्त होता है॥ 135॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/22 संख्या देखें॥ 135॥

श्रीमद्भागवत (10/2/32)में—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्य-
स्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रे
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ 136॥

अनुवाद—हे कमलनयन, जो 'मैं विमुक्त हो गया

हूँ', ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होनेके कारण अशुद्ध बुद्धिवाले हैं। वे बहुत कष्ट करके मायासे अतीत परमपद ब्रह्म तक आरोहण करके भी भगवद्भक्तिके अनादरके कारण अधःपतित होते हैं॥ 136॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/30 संख्या देखें॥ 136॥

श्रीमद्भागवत (11/5/3)में—

य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥ 137॥

अनुवाद—इन चारों वर्णाश्रमियोंमेंसे जो अपने प्रभु भगवान् विष्णुका साक्षात् भजन नहीं करके, अपने-अपने वर्णाश्रमके अहङ्कारके कारण उनके भजनमें अवज्ञा करते हैं, वे अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर अधःपतित हो जाते हैं॥ 137॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/28 संख्या देखें॥ 137॥

श्रीमद्भागवत (10/87/21) श्लोकमें श्रीधर-उद्धृत सर्वज्ञ भाष्यकार व्याख्या और नृसिंहतापनी (2/5/16)में—

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं
कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥ 138॥

अनुवाद—मुक्तगण भी लीलासे आकर्षित होकर विग्रह स्थापित करके भगवान्‌का भजन करते हैं॥ 138॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/107 संख्या देखें॥ 138॥

पूर्वोक्त छः प्रकारके आत्मारामोंका श्रीकृष्णभजन :—

एइ छह आत्माराम कृष्णेरे भजय।
पृथक् पृथक् च-कारे इहा 'अपि'र अर्थ कय॥ 139॥

अनुवाद—आत्माराम शब्दके छः प्रकारके अर्थोंमें च-कारका ('तथा'का) अर्थ यहाँ 'अपि' ('भी') ही ग्रहण किया गया है। इसलिये 'ये छः प्रकारके आत्माराम श्रीकृष्णका भजन करते हैं'—इसका अर्थ होगा कि साधक-आत्माराम भी श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर श्रीकृष्णभजन करते हैं, ब्रह्ममय-आत्माराम भी भजन करते हैं, इसी प्रकार अन्य चारोंके लिये भी ऐसा ही जानना होगा॥ 139॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'छय आत्माराम'*—साधक, ब्रह्ममय और प्राप्त-ब्रह्मलय एवं मुमुक्षु, जीवन्मुक्त और प्राप्त-स्वरूप,—ये छय प्रकारके 'आत्माराम' हैं॥ 139॥

आत्माराम, मुनि और निर्ग्रन्थ
व्यक्तियोंका श्रीकृष्णभजन :—

"आत्मारामाश्च अपि" करे कृष्णे अहैतुकी भक्ति।
"मुनयः सन्तः" इति कृष्णमनने आसक्ति॥ 140॥

अनुवाद—छः प्रकारके आत्माराम भी श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं। *'मुनयः सन्तः'*का तात्पर्य यह है कि वे मुनि होकर श्रीकृष्ण-मननमें आसक्त होते हैं॥ 140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'"मुनयः सन्तः" इति श्रीकृष्णमनने आसक्ति'*—आत्मारामगण 'मुनि' बनकर श्रीकृष्णमननमें आसक्त होते हैं॥ 140॥

"निर्ग्रन्थाः"—अविद्याहीन, केह—विधिहीन।
याँहा येइ युक्त, सेइ अर्थेर अधीन॥ 141॥

अनुवाद—'निर्ग्रन्थ'-शब्दके दो अर्थ हैं—अविद्याहीन और विधिहीन। इन दोनोंमेंसे जहाँ जो अर्थ उपयुक्त है, वही प्रयोग किया जाना चाहिये॥ 141॥

अमृतानुकणा—*'एइ छह आत्माराम'*—अर्थात् 'ब्रह्मसाधक', 'ब्रह्ममय' और 'प्राप्तब्रह्मलय'—ये तीन ब्रह्मोपासक (103 संख्या) और 'मुमुक्षु', 'जीवन्मुक्त' ('भक्तिसे ही जीवन्मुक्त', 'ज्ञानसे जीवन्मुक्त' नहीं-125 संख्या) और 'प्राप्तस्वरूप' (116 संख्या)—ये तीन प्रकारके मोक्षकी आाकाङ्क्षा करनेवाले—इस प्रकार कुल छः प्रकारके आत्माराम हैं। उनके साथ पृथक् पृथक्-रूपमें 'च'-कारके योगसे 'अपि'का अर्थ व्यक्त हुआ है। जैसे, ब्रह्मसाधक-आत्माराम भी 'मुनि' (मननशील) होकर अर्थात् श्रीकृष्णमननमें आसक्त होकर अहैतुकी भक्ति तथा भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकी इच्छाओंसे शून्य होकर भक्ति

करते हैं। इस प्रकारसे पृथक् पृथक् रूपसे कहे गये छः प्रकारके आत्मारामगणोंके क्षेत्रमें अर्थको समझना होगा। 'निर्ग्रन्थ अपि' (निर्ग्रन्थ होकर भी)—उनके विशेषणके रूपमें कहा गया है। निर्ग्रन्थ-शब्दके अर्थ अविद्या-ग्रन्थिहीन और विधिहीन हैं। यहाँपर विधिहीन कहनेसे रागमार्ग अन्तर्गत विधिहीनता नहीं है, क्योंकि पहले कहा गया है,—"निर्ग्रन्थ-शब्दे कहे,—(क) अविद्या-ग्रन्थिहीन। (ख) विधिनिषेध-वेदशास्त्र-ज्ञानादिविहीन॥" (16 संख्या)। ये दो अर्थ यहाँपर 'आत्माराम'—शब्दके अर्थके अनुसार युक्त होंगे॥ 139-141॥

अन्य एक प्रकारका अर्थ :—

च-शब्दे करि यदि 'इतरेतर' अर्थ।
आर एक अर्थ कहे परम समर्थ॥ 142॥

"आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च" **करि बार छय।**
पञ्च आत्माराम, छये च-कारे लुप्त हय॥ 143॥

एक 'आत्माराम'-**शब्दे अवशेष रहे।**
एक 'आत्माराम'-**शब्दे छयजन कहे॥ 144॥**

अनुवाद—'च' शब्दका 'इतरेतर' समासके अनुसार अर्थ करनेसे आत्माराम श्लोकका अन्य एक परम उपयुक्त अर्थ निकलता है। यद्यपि छः प्रकारके आत्मारामोंके लिये 'आत्माराम'-शब्द छः बार दोहराना होगा, तथापि (संस्कृत व्याकरणके इस नियमके अनुसार) च-शब्दका 'इतरेतर' समासमें योग करनेपर पाँच आत्माराम लोप हो (समा) जाते हैं और अन्तमें एक 'आत्माराम'-शब्द ही रहता है। वही 'आत्माराम'-शब्द ही छहों आत्मारामोंको बतलाता है। (पयार 147 के बाद अमृतानुकणा टीका देखें)॥ 143-144॥

दृष्टान्त—(विश्वप्रकाशमें और पाणिनिमें 1/2/64 और सिद्धान्त-कौमुदीमें अजन्त पुल्लिङ्ग-शब्दके प्रकरणमें) :—

"स्वरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ।" उक्तार्थानामप्रयोगः।
रामश्च रामश्च रामश्च रामा इतिवत्॥ 145॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वरूपसे एक जैसे और एक विभक्तिमें जिनका अर्थ कहा जाता है, वहाँ एक स्वरूपको रखकर अन्य सब स्वरूपोंका प्रयोग नहीं होता है, जैसे,—'रामश्च, रामश्च, रामश्च',—इनके स्थानपर एक 'रामाः' शब्दका प्रयोग होता है॥ 145॥

तबे ये च-कार, सेइ 'समुच्चय' कय।
"आत्मारामाश्च मुनयश्च" **कृष्णेरे भजय॥ 146॥**

अनुवाद—'च'-कारका 'समुच्चय'के (सभीको एकत्रित करके) अर्थमें प्रयोग करनेपर इस पदका अर्थ होगा—*"आत्मारामाश्च मुनयश्च"* अर्थात् सभी आत्मारामगण और सभी मुनिगण श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 146॥

सात प्रकारके अर्थ :—

"निर्ग्रन्था अपि"**र एइ अपि'—सम्भावने।**
एइ सात अर्थ प्रथमे करिलुँ व्याख्याने॥ 147॥

अनुवाद—अमृतानुकणा देखें॥ 147॥

अमृतानुकणा—'इतरेतर अर्थ'-योगसे 'च'-शब्दसे एक अन्य व्याख्या दी गई है। जहाँपर प्रत्येक पदकी प्रधानता रहनेपर सभी पदोंका अन्वय होता है, उस प्रकारके द्वन्द्व-समासको ही 'इतरेतर-योग' कहा जाता है। जिस स्थानपर ये सब पद एक ही विभक्ति और एक ही वचनवाले होते हैं—इतरेतर-योगसे तब उनका एक पद मात्र ही बाकी रहता है। जैसे, 'रामश्च रामश्च रामश्च'—ये तीन 'राम'-पदोंमेंसे दो पद लोप हो जानेपर अन्तमें समासबद्ध पद 'रामाः' होता है। उसी प्रकार 'आत्मारामाश्च', 'आत्मारामाश्च' इस रूपमें छः 'आत्मारामाश्च'-पद 'इतरेतर'-समाससे युक्त होनेपर उनमेंसे पाँच 'आत्मारामाश्च'-पद लुप्त हो जाते हैं और छठे 'आत्मारामाश्च'-पदमें 'च'-कार लुप्त होकर केवल 'आत्मारामाः'-पद बाकी रहता है, उसके द्वारा उक्त छः प्रकारके आत्माराम ही सूचित होते हैं। यहाँपर

'आत्मारामाश्च'-पदमें जो 'च'-कार है, उसका समुच्चय-अर्थमें व्यवहार होनेपर 'आत्मारामाश्च मुनयश्च' अर्थात् पहले कहे गये छः प्रकारके आत्मारामगण और मुनिगण श्रीकृष्णभजन करते हैं—इस प्रकारसे अर्थ हुआ है। 'निर्ग्रन्थ अपि'से 'अपि' सम्भावना-अर्थमें होकर आत्मारामगण, मुनिगण और सम्भावना-अर्थमें निर्ग्रन्थगण अर्थात् अविद्याग्रन्थिहीन, शास्त्रविधिहीन, मूर्ख, नीच, म्लेच्छ, धन सञ्चय करनेवाले, निर्धन आदि (16, 17 संख्या) श्रीकृष्णभजन करते हैं—इस रूपमें 'इतरेतर'-योगसे प्रकाशित यह अर्थ और पहले कहे गये छः अर्थ (139-141 संख्या), कुल मिलाकर यहाँ तक सात अर्थोंकी व्याख्या हुई है॥ **142-147**॥

परमात्मनिष्ठ दो प्रकारके आत्माराम :—

अन्तर्यामि-उपासके 'आत्माराम' कय।
सेइ आत्माराम योगीर दुइ भेद हय॥ 148॥

(1) सगर्भ-योगी और (2) निगर्भ-योगी,
दोनों ही तीन प्रकारके :—

सगर्भ, निगर्भ,—एइ हय दुइ भेद।
एक एक तिन भेदे छय विभेद॥ 149॥

अनुवाद—अन्तर्यामी परमात्माके उपासकोंको भी 'आत्माराम' कहते हैं। उन आत्माराम योगियोंके भी दो भेद हैं—सगर्भ और निगर्भ। पुनः इन दोनोंके तीन-तीन भेद हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर उनके छः विभेद हैं॥ **148-149**॥

अनुभाष्य—'सगर्भ योगी'—जो योगी उपास्य अन्तर्यामीको साकार मानकर उनके रूपका ध्यानादि करते हैं। 'निगर्भ-योगी'—जो योगी निराकार या शून्यका ध्यानादि करते हैं। सगर्भ और निगर्भ योगियोंके छः विभाग हैं—1) सगर्भ-योगारुरुक्षु (योगारुरुक्षु अर्थात् जिन्होंने योगमें आरूढ़ होना प्रारम्भ किया है), 2) निगर्भ-योगारुरुक्षु, 3) सगर्भ-योगारूढ़, 4) निगर्भ-योगारूढ़, 5) सगर्भ-प्राप्तसिद्धि, 6) निगर्भ-प्राप्तसिद्धि॥ **149**॥

तृतीय पुरुष क्षीरोदशायीका ध्यान :—
श्रीमद्भागवत (2/2/8)में—

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे
प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं
धारणया स्मरन्ति॥ 150॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **150**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कोई-कोई योगी अपनी देहके भीतर स्थित हृदयमें अवस्थित प्रादेशमात्र (तर्जनी अङ्गुली और अङ्गूठेके विस्तार जितने परिमाणके) चतुर्भुज शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी पुरुषका धारणाके द्वारा स्मरण किया करते हैं,—यही 'सगर्भ' योगीका लक्षण है॥ **150**॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षितको स्थूल जगत्के विषय-भोगोंको निन्दनीय जानकर उनसे निवृत्त वैराज-धारणा-निष्ठ योगियोंकी बात बतलाकर उनसे श्रेष्ठ व्यष्टि-अन्तर्यामी चिद्घनरूप-ध्यानकारी योगियोंकी बात बतला रहे हैं,—

केचित् (विरलाः) स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे (स्वदेहस्य निजशरीरस्य अन्तः मध्ये यत् हृदयं तत्र यः अवकाशः तस्मिन्) वसन्तम् (अन्तर्यामितया कृतवासं) प्रादेशमात्रं (अङ्गुष्ठतर्जन्योर्विस्तारः सः एव मात्रा प्रमाणं यस्य तस्मिन् प्रादेशप्रमाणहृदये ध्येयत्वात्, तावन्मात्रप्रदेशेऽप्यचिन्त्यशक्त्या पञ्चदशवर्षीयपुरुषाकारप्रमाणं) चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्ग-शङ्खगदाधरं (पद्मचक्रशङ्खगदाधारिणं) पुरुषं (क्षीरोदशायिनं तृतीयं) धारणया स्मरन्ति।

श्लोक-भावानुवाद—कोई विरले [योगी] अपने शरीरके भीतर हृदयमें वास करनेवाले प्रादेशमात्र परिमाणके (अङ्गूठेसे तर्जनीके विस्तार जितने होनेपर भी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा पन्द्रह-वर्षीय पुरुषाकारमें) पद्म-चक्र-शङ्ख-गदाधारी चतुर्भुजरूप अन्तर्यामी पुरुषका (तृतीय पुरुष क्षीरोदशायीका) धारणासे स्मरण करते हैं॥ **150**॥

ध्यानयोगमिश्रा भक्तिमें सिद्धिकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (3/28/34)में—

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात्।
औत्कण्ठ्यवाष्पकलया मुहुरर्द्यमान-
स्तच्चापि चित्तबड़िशं शनकैर्वियुङ्क्ते॥ 151॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 151॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके प्रति भाव प्राप्त करके भक्तिके द्वारा हृदयके द्रवीभूत और आनन्दसे भर जानेके कारण पुलकादि उत्पन्न होते हैं, उत्कण्ठाके कारण आनन्द-अश्रुओंके द्वारा बार-बार वह आनन्दमें निमज्जित हुआ करता है; तब मछलीको पकड़नेवाले काँटेकी भाँति ध्यानयुक्त चित्तको (ध्येय वस्तुकी धारणासे) थोड़ा-थोड़ा करके बाहर कर देता है,—यही 'निगर्भ' योगीका उदाहरण है॥ 151॥

अनुभाष्य—शरणागत देवहूतिको भगवान् श्रीकपिलदेव निगर्भ योगीके लिये श्रीभगवान्की अप्राकृत श्रीमूर्तिके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गके ध्यानकी कर्त्तव्यताका उपदेश प्रदान करके ध्यानके फल मनके निग्रहकी बात बतला रहे हैं,—

एवं (ध्यानपथेन) भगवति हरौ प्रतिलब्धभावः (प्रतिलब्धः भावः प्रेमा येन सः) भक्त्या (श्रद्धया) द्रवद्धृदयः (द्रवत् आर्द्रीभवत् हृदयं यस्य सः) प्रमोदात् (हर्षप्रकर्षात्) उत्पुलकः (उद्गतानि पुलकानि यस्य सः रोमाञ्चितदेहः) औत्कण्ठ्यवाष्पकलया (औत्कण्ठ्येन प्रवृत्तया अश्रुकलया) मुहुः (पुनः पुनः) अर्द्यमानः (आनन्दसंप्लवे निमज्जमानः) च तत् अपि चित्तबड़िशं (दुर्ग्रहस्य भगवतः ग्रहणे बड़िशं मत्स्यवेधनम् इव उपायभूतं चित्तम् अपि) शनकैः (क्रमशः ध्येय-वस्तुनः) वियुङ्क्ते (तद्धारणे शिथिलप्रयत्नः भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 151॥

(क) आरुरुक्षु, (ख) आरूढ़ और (ग) प्राप्तसिद्धिके भेदसे तीन प्रकारके योगी :—

'योगारुरुक्षु', 'योगारूढ़', 'प्राप्तसिद्धि' आर।
एइ तिन भेदे हय छय प्रकार॥ 152॥

अनुवाद—योगारुरुक्षु, योगारूढ़ और प्राप्तसिद्धि—ये तीन सगर्भ और निगर्भके भेदसे कुल मिलाकर छः प्रकारके होते हैं॥ 152॥

श्रीमद्भगवद्गीता (6/3-4)में—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥ 153॥
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते॥ 154॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 153-154॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिसकी योगमें आरोहण करनेकी इच्छा है, वह 'आरुरुक्षु' है; उस आरुरुक्षु मुनिका यम, नियम, आसन और प्राणायामरूप कर्म ही 'कारण' (साधन) है। योगारूढ़ व्यक्तिका ध्यान-धारणा-प्रत्याहाररूप श्रम ही 'कारण' है। इन्द्रियोंके उद्देश्यसे कर्ममें जब आसक्ति नहीं रहती, तब सभी सङ्कल्प परित्याग करके योगी 'समाधि'-युक्त अथवा 'योगारूढ़' होते हैं॥ 153-154॥

अनुभाष्य—

योगं (ज्ञानयोगम्) आरुरुक्षोः (प्राप्तुमिच्छोः) मुनेः [तदारोहे] कर्म कारणं (साधनम्) उच्यते; योगोरूढ़स्य (ज्ञानयोगमारूढ़स्य तु) तस्य (ज्ञाननिष्ठस्य) एव शमः (ज्ञानपरिपाके समाधिश्चित्तविक्षेपकर्मोपरमः) कारणम् उच्यते। यदा हि इन्द्रियार्थेषु (इन्द्रियभोग्येषु शब्दादिषु तत् साधनेषु च) कर्मसु न अनुषज्जते (आसक्तिं न करोति), तदा सर्वसङ्कल्पसंन्यासी (सर्वान् भोगविषयान् कर्मविषयान् च आसक्तिमूलभूतान् सङ्कल्पान् संन्यसितुं शीलं यस्य सः) योगारूढ़ (मुक्तः) उच्यते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 153-154॥

छः प्रकारके योगियोंका साधुसङ्गमें योगमार्गका त्याग और श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति :—

एइ छय योगी साधुसङ्गादि-हेतु पाञा।
कृष्ण भजे कृष्णगुणे आकृष्ट हञा॥ 155॥
च-शब्दे 'अपि'र अर्थ इँहाओ कहय।
'मुनि', 'निर्ग्रन्थ'-शब्देर पूर्ववत् अर्थ हय॥ 156॥

यहाँ तक तेरह प्रकारके अर्थ :—

'उरुक्रमे' 'अहैतुकी' काँहा कोन अर्थ।
एइ तेर अर्थ कहिलुँ परम समर्थ॥ 157॥

अनुवाद—ये छः प्रकारके योगी साधुसङ्गके प्रभावसे श्रीकृष्णके गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर श्रीकृष्णका भजन करते हैं। यहाँ 'च'-शब्दसे 'अपि' अर्थ ही होता है और 'मुनि' और 'निर्ग्रन्थ' शब्दोंका अर्थ पहले जैसे होगा। 'अहैतुकी'-शब्द सदा 'उरुक्रम'के साथ ही प्रयोग होगा। इस प्रकार मैंने तुम्हें इस 'आत्मारामश्च' श्लोकके तेरह प्रकारके पृथक् पृथक् अर्थ बतलाये हैं॥ 155-157॥

एइ सब शान्त यबे भजे भगवान्।
'शान्त' भक्त करि' तबे कहि ताँर नाम॥ 158॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 158॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'एइ सब शान्त यबे भजे'*—ये सब योगी जब शान्तरसमें आरूढ़ होकर भजन करते हैं, [तब उन्हें 'शान्त' भक्त कहा जाता है।]॥ 158॥

अनुभाष्य—ये तेरह,—(1) साधक, (2) ब्रह्ममय, (3) प्राप्तब्रह्मलय, (4) मुमुक्षु, (5) जीवन्मुक्त, (6) प्राप्तस्वरूप,—ये छः आत्माराम, और (7) निर्ग्रन्थमुनि, (8) सगर्भ-योगारुरुक्षु, (9) निगर्भ-योगारुरुक्षु, (10) सगर्भ-योगारूढ़, (11) निगर्भ-योगारूढ़, (12) सगर्भ-प्राप्तसिद्धि, (13) निगर्भ-प्राप्तसिद्धि॥ 158॥

अमृतानुकणा—पहले आत्मा-शब्दसे 'ब्रह्म'-अर्थ लेनेपर ज्ञानमार्गके उपासकरूप आत्मारामगणोंके सम्बन्धमें सात प्रकारके अर्थोंकी व्याख्या हुई है। अब आत्मा-शब्दसे 'अन्तर्यामी'-अर्थ लक्षित होनेपर योगमार्गमें जो अन्तर्यामी-उपासक हैं, उन योगियोंको यहाँपर 'आत्माराम' कहा जा रहा है। वे छः प्रकारके हैं-सगर्भ-योगारुरुक्षु सगर्भ-योगारूढ़, सगर्भ-प्राप्तसिद्धि, निगर्भ-योगारुरुक्षु, निगर्भ-योगारूढ़ और निगर्भ-प्राप्तिसिद्धि। यहाँपर भी पहलेके जैसे अर्थात् पहले जो तीन प्रकारके ब्रह्मोपासक और तीन प्रकारके मुक्तिकामी, कुल छः प्रकारके आत्मारामोंकी बात कही गयी है और उस स्थानपर जैसे 'च'-शब्दसे 'अपि'-अर्थ, 'मुनि'-शब्दसे मननशील और 'निर्ग्रन्थ'-शब्दसे अविद्या-ग्रन्थिहीन और विधिहीन अर्थ हुआ है (139-141 संख्या), यहाँपर भी उसी प्रकारसे 'उरुक्रमे' और 'अहैतुकी'-दो शब्दमें जोड़कर ऊपर लिखे छः प्रकारके आत्माराम-योगिगणोंके किस क्षेत्रमें कौनसा अर्थ प्रकाशित होगा। जैसे, सगर्भ-योगारुरुक्षु-रूप आत्माराम भी 'निर्ग्रन्थ' होनेपर भी मुनि अर्थात् मननशील होकर उरुक्रम श्रीकृष्णकी भक्ति करते हैं—इस रूपमें छः प्रकारके योगियोंके सम्बन्धमें भी पृथक् पृथक् रूपसे अर्थ समझने होंगे। इसलिये पहले सात प्रकारके और अब छः प्रकारके—कुल तेरह अर्थ व्यक्त हुए हैं। वे सब "शमो मन्निष्ठताबुद्धेः" (भागवत 11/19/36) इस सूत्रमें श्रीकृष्णमें ममतायुक्त-बुद्धिसम्पन्न ना होकर केवल श्रीकृष्णनिष्ठा मात्र प्राप्त करके 'शान्त'-रसाश्रित 'शान्तभक्त' नामसे कहलाते हैं॥ 155-158॥

'आत्मारामाः'-पदके अन्तर्गत आत्मा-शब्दकी (3) 'मन' अर्थके द्वारा व्याख्या :—

'आत्मा' शब्दे 'मन' कह—मने येइ रमे।
साधुसङ्गे सेइ भजे श्रीकृष्णचरणे॥ 159॥

अनुवाद—'आत्मा' शब्दके अर्थ 'मन'को ग्रहण करनेपर आत्मारामका अर्थ होगा—जो मनमें रमण करता है। ऐसा व्यक्ति भी साधुसङ्गमें श्रीकृष्णके चरणोंका भजन करता है॥ 159॥

मनका निग्रह करनेवालेको परमपदकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (10/87/18)—

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥ 160॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 160॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(ऋषियोंके सम्प्रदाय मार्गमें) जो कर्मयोगमें उदर अर्थात् मणिपुरमें स्थित ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे 'शार्कराक्ष' ऋषि कहलाते हैं और वे कूर्पदृक् अर्थात् स्थूलदृष्टि हैं। और आरुणि ऋषिगण (उस सम्प्रदायके ऋषिगण) जहाँसे नाड़ियोंका विस्तार होता है उस हृदयाकाशमें (सूक्ष्म ब्रह्मकी) उपासना करते हैं। हे अनन्त, उससे उत्कृष्ट जो योगीगण शिरोगत (मूलाधार उदरसे आरम्भ करके हृदयके मध्यमेंसे होकर मस्तक और ब्रह्मरन्ध्र तक बढ़ते हुए) सहस्रदल-पद्मस्वरूप आपकी उपलब्धिके स्थान सुषुम्ना-नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्मय धाममें पहुँच जाते हैं, वे पुनः मृत्युके मुख अर्थात् संसारमें पतित नहीं होते॥ 160॥

अनुभाष्य—जनलोकमें ब्रह्मसत्र-यज्ञमें श्रवणके इच्छुक ऋषियोंको चतुःसनमेंसे एक ब्रह्मर्षि सनन्दनने जिन श्रुतियोंके द्वारा इस भगवत्-स्तवका कीर्तन किया था, उसीका ही बादमें आदिऋषि श्रीनारायण नारदसे वर्णन कर रहे हैं,—

ऋषिवर्त्मसु (ऋषीणां वर्त्मसु सम्प्रदायमार्गेषु) ये कूर्पदृशः (कूर्पं शर्करारजः विद्यते दृक्षु अक्षिषु येषां ते तथा रजःपिहितदृष्टयः शार्कराक्षाः स्थूलदृष्ट्यः) उदरम् (उदरावलम्बनं मणिपुरकस्थं ब्रह्म) उपासते (ध्यायन्ति); आरुणयः (आरुण्याख्याः ऋषयः) परिसरपद्धतिं (परितः सरन्ति प्रसर्पन्तीति परिसराः नाड्यः तासां पद्धतिं मार्गं प्रसरणस्थानं) हृदयं दहरम् (आकाशालम्बनं सूक्ष्ममेव ब्रह्म उपासते); हे अनन्त, ततः (हृदयात्) तव परमं (श्रेष्ठं ज्योतिर्मयं) धाम (उपलब्धिस्थानं सुषुम्नाख्यं) शिरः (मूर्द्धानं प्रति) उदगात् (उदसर्पत्, मूलाधारात् आरभ्य हृदयमध्यात् ब्रह्मरन्ध्रं प्रत्युद्गतमित्यर्थः),—यत् [तव धाम] समेत्य (प्राप्य) इह कृतान्तमुखे (कृतान्तस्य कालस्य मृत्योः मुखे संसारे) न पतन्ति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 160॥

निगृहीत-चित्त मुनियोंके द्वारा श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर शुद्धभक्ति :—

एहो कृष्णगुणाकृष्ट महामुनि हञा।
अहैतुकी भक्ति करे निर्ग्रन्थ हञा॥ 161॥

अनुवाद—मनमें रमण करनेवाला ऐसा योगी भी श्रीकृष्णके गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर महामुनि (श्रीकृष्ण मननमें आसक्त) हो जाता है और वह भी निर्ग्रन्थ होकर श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करता है॥ 161॥

'आत्मारामाः'-पदके अन्तर्गत आत्मा-शब्दके (4) 'यत्न' अर्थके द्वारा व्याख्या :—

'आत्मा'-शब्दे 'यत्न' कहे—यत्न करिया।
"मुनयोऽपि" कृष्ण भजे निर्ग्रन्थ हञा॥ 162॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दका अर्थ 'यत्न' भी है अर्थात् श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर मुनि भी निर्ग्रन्थ होकर श्रीकृष्णभजनके लिये दृढ़ प्रयास करते हैं॥ 162॥

नित्यसत्य वास्तव वस्तुके अनुसन्धानके लिये प्रयत्न करना कर्त्तव्य :—
श्रीमद्भागवत (1/5/18)में—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीर-रंहसा॥ 163॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 163॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो सत्यलोक अथवा ब्रह्मलोकादि ऊपरके लोकोंमें एवं सुतल और अतलादि निम्न लोकोंमें भ्रमण करनेपर भी प्राप्त नहीं होती, ऐसी दुर्लभ वस्तुके लिये सभी पण्डितलोग प्रयत्न करेंगे, क्योंकि चौदह भुवनोंके ऊपरी और निम्न लोकोंमें जो सुख हैं, वे सभी गम्भीर वेगसे युक्त कालके द्वारा दुःखकी भाँति अनायास ही प्राप्त होते हैं॥ 163॥

अनुभाष्य—जब श्रीव्यासदेव बहुत तपस्याका अनुष्ठान करके और समस्त शास्त्रोंका प्रणयन करनेपर भी आत्म-प्रसन्नताको प्राप्त करनेसे वञ्चित होकर सरस्वती नदीके तटपर मन-ही-मनमें अनेक प्रकारके कुतर्क और खेद कर रहे थे, तभी उनके अन्तर्यामी गुरुदेव श्रीनारद गोस्वामी उनके निकट आकर उपस्थित हुए।

श्रीव्यासदेवने जब उनसे आत्म-प्रसन्नता न होनेका कारण पूछा, तब श्रीनारदने हरिभक्ति और हरिकथाके माहात्म्यको बतलाकर नित्य-तत्त्व श्रीकृष्णभक्तिके लिये प्रयत्न करनेके लिये कहा,—

उपर्यधः (उपरि आब्रह्मलोकात् अधः स्थावरपर्यन्तं) भ्रमतां (विवक्षायां षष्ठी, भ्रमद्भिः जीवैः) यत् (सुखं) न लभ्यते (नैव प्राप्यते), कोविदः (विवेकशीलः) तस्यैव (तादृशस्य सुखस्य एव) हेतोः प्रयतेत (यत्नं कुर्यात्); गभीर-रंहसा (अनतिक्रम्यवेगेन) कालेन दुःखवत् (अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनां, तथैव) तं सुखं (विषयसुखं) अन्यतः (अन्यस्मात् प्राक्तनकर्मतः) सर्वत्र (सर्वयोनिषु) [प्रयत्नं बिनापि] लभ्यते (प्राप्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—ब्रह्मलोकसे स्थावर योनियों तक भ्रमण करते हुए जीवोंको जो सुख प्राप्त नहीं होता, विवेकी लोग वैसे सुखकी प्राप्तिके प्रयत्न करते हैं। जिसका अतिक्रम नहीं किया जा सकता, वह काल न चाहनेपर भी जैसे जीवोंको दुःख प्रदान करता है, वैसे ही विषयसुख पूर्व कर्मोंके फलस्वरूप सभी योनियोंमें बिना प्रयासके प्राप्त होते हैं॥ 163॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/103)में उद्धृत नारदीयवाक्य :—

सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः।
अचिरादेव सर्वार्थः सिद्धत्येषामभीप्सितः॥ 164॥

अनुवाद—सद्धर्मको उदित करानेके लिये जिनकी दृढ़ा मति है, उनकी शीघ्र ही अभिलषित सर्वार्थ-सिद्धि होती है॥ 164॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 20/106 संख्या देखें॥ 164॥

आग्रहपूर्वक यत्न अथवा उत्साह और
निश्चयसे ही भक्तिकी सिद्धि :—

च-शब्द अपि-अर्थे, 'अपि'—अवधारणे।
यत्नाग्रह बिना भक्ति ना जन्माय प्रेमे॥ 165॥

अनुवाद—अमृतानुकणा देखें॥ 165॥

अमृतानुकणा—यहाँपर 'च'-शब्दसे अपि-अर्थ होकर 'मुनयश्च'-मुनयोऽपि अर्थात् मुनिगण भी 'आत्मारामः'—(आत्मा-शब्दसे यत्न-अर्थके कारण) यत्नपरायण होकर 'निर्ग्रन्थ अपि'—(अपि-शब्दके निश्चय अर्थमें) अविद्याग्रन्थिहीन होकर उरुक्रम श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि भक्तिमें यत्न और आग्रहके बिना कभी भी सुदुर्लभ 'प्रेम' प्राप्त नहीं हो सकता॥ 165॥

आसङ्ग ही आग्रहपूर्वक प्रयत्न :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/1/35)—

साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सुचिरादपि।
हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात् सुदुर्लभा॥ 166॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 166॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्ति दो प्रकारसे सुदुर्लभा है,—(1) आसङ्ग-शून्य (श्रीकृष्णप्रीतिवाञ्छा-रहित) होनेपर सैकड़ों साधनोंके द्वारा भी शीघ्र प्राप्त नहीं होती और (2) श्रीकृष्ण भी सहसा भक्ति नहीं देते॥ 166॥

अनुभाष्य—

अनासङ्गैः (सङ्गरहितैः) साधनौघैः (साधनपुञ्जैः) सुचिरात् (बहुकालेन) अपि [भक्तिः] अलभ्या (लब्धुमशक्या) हरिणा (भगवता) आशु (शीघ्रम्) अदेया ("मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्" इति (भाः 5/6/18) वचनात् च—इति) सा सुदुर्लभा भक्तिः द्विधा स्यात् (प्रकारद्वयेनापि तस्याः दुर्ल्लभत्वमित्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—सङ्गरहित होकर बहुकाल तक अनेक साधन करनेपर भी भक्ति प्राप्त नहीं होती और भगवान् भी शीघ्र भक्ति नहीं देते ('भगवान् मुक्ति तो दे देते हैं, किन्तु भक्तियोग सहज ही नहीं देते'—(भाः 5/6/18) वचनके अनुसार) वह सुदुर्लभा भक्ति दो प्रकारकी है (दो प्रकारकी होनेपर भी वह दुर्लभ है—यह अर्थ है।)।॥ 166॥

निरन्तर योग ही आग्रहपूर्वक यत्न :—
श्रीमद्भगवद्गीता (10/10)में—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ 167॥

अनुवाद—नित्य भक्तियोगके द्वारा जो लोग प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं, मैं उनको शुद्धज्ञानजनित विमल-प्रेमयोग दान करता हूँ। वे लोग उस ज्ञानके द्वारा मेरे परमानन्द धामको प्राप्त करते हैं॥ 167॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/49 संख्या देखें॥ 167॥

"आत्मारामाः"-पदके अन्तर्गत आत्मा-शब्दके (5) 'धृति'—अर्थके द्वारा व्याख्या :—

'आत्मा'-शब्दे 'धृति' कहे—धैर्ये येइ रमे।
धैर्यवन्त तबे हञा करय भजने॥ 168॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दका अर्थ 'धृति' स्वीकार करनेपर आत्मारामका अर्थ होगा—जो धैर्यशील होकर रमण करते हैं। वे धैर्यशील होकर श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 168॥

मुनि और निर्ग्रन्थ—इन दोनों शब्दोंके अर्थ; विष्णु-वैष्णवकी कृपासे दोनोंको भक्तिकी प्राप्ति :—

'मुनि'-शब्दे—पक्षी, भृङ्ग; 'निर्ग्रन्थे'—मूर्खजन।
कृष्णकृपाय साधुकृपाय दोँहार भजन॥ 169॥

अनुवाद—'मुनि'-शब्दका अर्थ पक्षी और भ्रमर है। 'निर्ग्रन्थ'-शब्दका अर्थ मूर्ख-लोग है। ये दोनों अर्थात् पक्षी-भ्रमरादि और मूर्खजन भी श्रीकृष्णकी कृपा तथा साधुकी कृपासे श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ 169॥

व्रजके पक्षी भी श्रीकृष्णनिष्ठ मुनि :—
श्रीमद्भागवत (10/21/14)में—

प्रायो बताम्ब मुनयो विहगा वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः॥ 170॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 170॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे माते! इस वनमें जो सब पक्षी सुन्दर-सुन्दर पल्लवोंसे सुशोभित वृक्षोंकी शाखाओं आदिपर बैठकर नेत्र बन्द करके और कलरव करना बन्द करके श्रीकृष्णके मुखसे निकले कल-वेणुगीतको श्रवण करते हैं, वे भी प्रायः मुनिकी भाँति ही हैं॥ 170॥

अनुभाष्य—व्रजमें शरत्कालके आनेपर श्रीकृष्णने वन-वनमें वंशीध्वनि करके परिभ्रमण करना आरम्भ किया, उनकी उस वंशीध्वनिको सुनकर गोपियाँ श्रीकृष्णके सङ्गके लिये कामातुर होकर गान कर रही हैं,—

हे अम्ब, अस्मिन् वने ये विहगाः (पक्षिणः) ते प्रायः (प्रायेण) मुनयः एव, यतः ते (पक्षिणः) कृष्णेक्षितं (कृष्णदर्शनं पुष्पफलाद्यन्तरं बिना यथा भवति, तथा) रुचिरप्रवालान् (रुचिराः शोभनाः प्रवालाः येषां तान् विचित्रोपशाखायुक्तान्) द्रुमभुजान् (वृक्षाणां शाखाः) आरुह्य [केनापि सुखेन] मीलितदृशः (निमीलित-नयनाः) विगतान्यवाचः (त्यक्तान्यशब्दाः सन्तः) तदुदितं (तेनैव कृष्णेन प्रकटितं) कलवेणुगीतं (मधुरमुरलीनिनादं) शृण्वन्ति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 170॥

व्रजके भ्रमर भी श्रीकृष्णनिष्ठ मुनि :—
श्रीमद्भागवत (10/15/7)में—

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिल-लोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपथं भजन्ते।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढ़ं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम्॥ 171॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 171॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे अनघ (पापशून्य)! हे आदिपुरुष! ये सब भँवरे समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले आपके यशसमूहका गान करते-करते (आपके जानेके मार्गपर आपके पीछे जाकर) भजन कर रहे हैं; ये भँवरेका वेष धारण करनेवाले मुनिगण आत्मदेवतारूप आपको आपके गूढ़रूपमें होनेपर भी परित्याग नहीं कर रहे हैं॥ 171॥

अनुभाष्य—पौगण्ड-अवस्थामें पदार्पण करके भगवान् श्रीकृष्ण एक बार श्रीबलरामके साथ पुष्पोंसे भरे वनमें प्रवेश करके चारों ओरकी शोभा देखकर विहार

करनेके इच्छा करके बड़े भाई बलरामकी प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं,—

हे आदिपुरुष (सर्वेषां सत्त्वानां कारणभूत-सन्धिनी-शक्तिमद्विग्रह), एते अलिनः (भृङ्गाः) तव अखिललोकतीर्थं (सकललोकपावनं) यशः गायन्तः अनुपथं (पथि पथि) भजन्ते; हे अनघ (शुद्धसत्त्वाधीश विग्रह), अमी भवदीय मुख्याः (त्वदीयानां मुख्याः प्रधानाः) मुनिगणाः वने गूढ़म् (अज्ञातम्) अपि आत्मदैवं (सेश्वरं तां) प्रायः न जहति (न त्यजन्ति त्वयि मनुष्यवेषेण निगूढे सति मुनयोऽप्यलिवेषेण निगूढास्त्वां भजन्तीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

यहाँ पाठान्तरमें,—(भाः 10/15/7) यह श्लोक लक्षित होता है—

"नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा
हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन।
सूक्तैश्च कोकिलगणाः गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः॥"

इसका अर्थ है,—"हे स्तुत्यर्ह (पूजनीय), मयूरगण अपने घरमें आये आपको देखकर परमानन्दमें नृत्य कर रहे हैं, हिरणियाँ गोपियोंके समान दृष्टि निक्षेप करके और कोयलें मधुर शब्द करके प्रीति उत्पन्न कर रही हैं; वृन्दावनवासी ही धन्य हैं, क्योंकि इसी प्रकार ही अर्थात् अपनी-अपनी वस्तुको प्रदान करना ही साधुओंका स्वभाव है॥"171॥

व्रजके हंस-सारसादि पक्षी भी श्रीकृष्णनिष्ठ मुनि :—
श्रीमद्भागवत (10/35/11)में—

सरसि सारसहंसविहङ्गा-
श्चारुगीतहृतचेतस एत्य।
हरिमुपासत ते यतचित्ता
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः॥ 172॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 172॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जलाशयमें सारस, हंसादि पक्षीगण (श्रीकृष्णकी वंशीसे निकले) मधुर गीतसे आकृष्ट होकर आ जाते हैं और संयत चित्तसे नेत्र बन्द करके मौन धारण करते हुए हरिकी उपासना करते हैं॥ 172॥

अनुभाष्य—दिनके समय श्रीकृष्णके वनमें जानेपर विरह-सन्तप्त गोपियाँ परस्पर इस प्रकार गीतका गान करती थीं,—

[यर्हि अधरे कृष्णः सन्धितवेणुर्भवति तर्हीति पूर्वेणान्वयः] सरसि (सरोवरे) ये सारसहंसविहङ्गाः चारुगीतहृतचेतसः (चारुणा वेणुगीतेन हृतानि आकृष्टानि चेतांसि येषां ते) एत्य (आगत्य) हन्त (विषादे) यतचित्ताः (संयतमनाः) धृतमौनाः (निःशब्दाः) मीलितदृशः (मुदितनेत्राः सन्तः) हरिम् उपासत (अभजन्त, तत्समीपे उपविविशुर्वा)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 172॥

शुद्धभक्तकी कृपासे अशुद्ध जातिकी भी शुद्धि :—
श्रीमद्भागवत (2/4/18)—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशा
आभीरकङ्का यवनाः खशादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥ 173॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 173॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, (शुम्भ) कङ्क, यवन और खशादि तथा अन्य जो समस्त पापयोनि जातियाँ हैं, वे सब जातियाँ ही जिनके आश्रित-वैष्णवोंके आश्रयमें भली-भाँति शुद्ध हो जाती हैं, मैं ऐसे प्रभावसे युक्त विष्णुको नमस्कार करता हूँ॥ 173॥

अनुभाष्य—श्रीशुकके मुखसे हरिकथा सुनकर परीक्षितके द्वारा श्रीकृष्णमें ऐकान्तिक मतिसे युक्त होकर मायाधीश भगवान्की सृष्टि आदि लीलाके विषयमें जिज्ञासा करनेपर उसके उत्तरमें श्रीशुक सर्वप्रथम भगवान्को प्रणाम करके मङ्गलाचरण कर रहे हैं,—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशाः आभीर-कङ्काः यवनाः खशादयः (पापयोनयः) अन्ये ये पापाः (स्व-स्व-प्राक्तन-कर्मतः पापजातयः) यदुपाश्रयाश्रयाः (यस्य भगवतः उपाश्रयाः आश्रिताः भागवत-वैष्णवाः तदाश्रयाः भक्ताश्रिताः सन्तः) शुध्यन्ति (पवित्री भवन्ति) तस्मै प्रभविष्णवे (प्रभावशालिने भगवत विष्णवे) नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 173॥

'धृति'-शब्दका अन्य अर्थ :—

किंवा 'धृति'-शब्दे निजपूर्णतादि-ज्ञान कय।
दुःखाभावे उत्तमप्राप्त्ये महापूर्ण हय॥ 174॥

अनुवाद—अथवा 'धृति'-शब्दका अर्थ अपनी पूर्णता आदिका ज्ञान भी कहा गया है। उत्तम वस्तु अर्थात् भगवद्-प्रेम प्राप्त होनेपर पूर्णताका ज्ञान होता है और सांसारिक वस्तुओंमें आसक्ति दूर हो जाती है, इसलिये दुःखका अभाव होता है, तब व्यक्ति महापूर्ण हो जाता है॥ 174॥

धृतिकी संज्ञा :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/4/144)—

धृतिः स्यात् पूर्णता-ज्ञानं दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः।
अप्राप्तातीत-नष्टार्थानभिसंशोचनादिकृत्॥ 175॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 175॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उत्तम लाभके द्वारा दुःखका न होना और पूर्णता-ज्ञानमें ही 'धृति' होती है। जो प्राप्त नहीं हुआ और अतीतमें संग्रह किये धनके नष्ट होनेपर जो शोक होता है, उसे 'धृति' ही दूर करती है॥ 175॥

अनुभाष्य—

दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः (दुःखस्य अभावः तेन उत्तमस्य उद्गतं तमः यस्मात् सः प्रेमा, तस्य परमपुरुषार्थस्य प्रेम्णः आप्तिभिः च यत्) पूर्णता-ज्ञानम् (आत्मप्रसादानुभवः, तत् एव) धृतिः ; (सा)—अप्राप्तातीतनष्टार्थानभिशोचनादिकृत् (अप्राप्तस्य अतीतस्य नष्टस्य च अर्थस्य विषयस्य हेतोः अनभिशोचनं करोति या सा, अभिशोचनाभावः या सम्पाद्यते इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 175॥

श्लोकका अर्थ :—

कृष्णभक्त—दुःखहीन, वाञ्छान्तर-हीन।
कृष्णप्रेम-सेवा-पूर्णानन्द-प्रवीण॥ 176॥

अनुवाद—श्रीकृष्णभक्तकी श्रीकृष्णसेवाके अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा ही नहीं होती, इसलिये उसे अन्य कोई इच्छा पूर्ण नहीं होनेका दुःख अनुभव नहीं होता। श्रीकृष्णकी प्रेमपूर्वक की गयी सेवाके द्वारा उसका हृदय सदा पूर्णतमरूपमें आनन्दित रहता है॥ 176॥

श्रीकृष्णसेवामें ही भक्त सन्तुष्ट, असन्तोषजनक
अन्य कामनाओंका अभाव :—
श्रीमद्भागवत (9/4/67)में—

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम्॥ 177॥

अनुवाद—मेरी सेवासे ही परिपूर्ण-हृदयवाले शुद्धभक्त मेरी सेवाके द्वारा सालोक्यादि चार प्रकारकी मुक्तियाँ स्वयं आनेपर भी जब उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं, तब मायिक (स्वर्गादि) भोग और सायुज्य मुक्ति, जो कालके द्वारा अति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, उनकी इच्छा वे क्यों करेंगे? सायुज्यमुक्तिके द्वारा जीवकी सत्ता कालका ग्रास बन जाती है, इसलिये भुक्ति और सायुज्य-मुक्ति, ये स्थायी नहीं हैं॥ 177॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/208 संख्या देखें॥ 177॥

सभी इन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णके अनुशीलनमें
निष्ठ भक्त ही धीर और स्थिर :—
श्रीगोस्वामिपादोक्त-श्लोक—

हृषीकेशे हृषीकाणि यस्य स्थैर्यगतानि हि।
स एव धैर्यमाप्नोति संसारे जीवचञ्चले॥ 178॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 178॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस जीवचञ्चल (क्षण-भङ्गुर) संसारमें जिस व्यक्तिकी समस्त इन्द्रियाँ हृषीकेश-श्रीकृष्णमें स्थिर हुई हैं, उस व्यक्तिने ही धैर्य प्राप्त किया है॥ 178॥

अनुभाष्य—

यस्य हृषीकाणि (इन्द्रियाणि) हृषीकेशे (सर्वनियन्तरि भगवति) स्थैर्यगतानि (उपशमं लब्धानि) स एव जीवचञ्चले (क्षणभङ्गुरे) संसारे धैर्यम् आप्नोति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 178॥

'आत्मारामाः'—धैर्यवान, 'मुनयः'—पक्षिगण,
'निर्ग्रन्थाः'—मूर्खगण :—

'च'—अवधारणे, इहा 'अपि'—समुच्चये।
धृतिमन्त हञा भजे पक्षि-मूर्खचये॥ 179॥

अनुवाद—अमृतानुकणा देखें॥ 179॥

अमृतानुकणा—आत्मा-शब्दसे 'धृति'-अर्थ, 'च'-कारसे अवधारण-अर्थ (निश्चय-अर्थ) और 'अपि'-शब्दसे समुच्चय-अर्थ ग्रहण करके 'मुनयः' और 'निर्ग्रन्थ अपि' अर्थात् मुनिरूप पक्षीगण एवं मूर्खगण 'आत्मारामश्च'—निश्चय रूपमें धृतिमान (अर्थात् धैर्यशील अथवा भगवत्सम्बन्धज्ञान-हेतु दुःखशून्य और उत्तमवस्तु भगवत्प्रेम-प्राप्ति हेतु पूर्णानन्द) होकर उरुक्रम-श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं, इस प्रकारसे अर्थ होता है॥ 179॥

'आत्मारामाः'-पदके अन्तर्गत आत्मा-शब्दके
(6) 'बुद्धि'-अर्थकी व्याख्या :—

'आत्मा'-शब्दे 'बुद्धि' कहे बुद्धिविशेष।
सामान्यबुद्धियुक्त यत जीव अशेष॥ 180॥

पण्डित और मूर्खके भेदसे बुद्ध्याराम दो प्रकारके :—

बुद्ध्ये रमे आत्माराम—दुइ त' प्रकार।
'पण्डित' मुनिगण, निर्ग्रन्थ 'मूर्ख' आर॥ 181॥

साधु और श्रीकृष्णकी कृपासे सद्बुद्धिकी
प्राप्ति और श्रीकृष्णभजन :—

कृष्णकृपाय साधुसङ्गे रति-बुद्धि पाय।
सब छाड़ि' कृष्णभक्ति शुद्धबुद्ध्ये पाय॥ 182॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दका अर्थ 'बुद्धि' ग्रहण करनेसे विशेष बुद्धिको लक्ष्य किया जाता है। किन्तु कम हो या अधिक हो, सभी जीवोंमें बुद्धि होती है, इसलिये सामान्य बुद्धिसे युक्त असंख्य जीवोंको भी स्वीकार किया गया है। जो अपनी बुद्धिका सदुपयोग करते हैं, वे आत्माराम कहलाते हैं। ऐसे आत्माराम दो प्रकारके होते हैं, एक—'पण्डित' मुनिगण और दूसरे निर्ग्रन्थ (शास्त्र-ज्ञानरहित) 'मूर्ख'। ये दो प्रकारके आत्माराम श्रीकृष्णकी कृपासे और साधुसङ्गमें श्रीकृष्णमें रतिरूपा-बुद्धिको प्राप्त करते हैं। वे शुद्धबुद्धिसे युक्त होकर अन्य सबका त्याग करके श्रीकृष्णभक्ति करते हैं॥ 180-182॥

अनुभाष्य—पाठान्तरमें,—*"सब छाड़ि' शुद्धभक्ति करे कृष्ण-पाय। कृष्णकृपाय साधुसङ्गे विचार-बुद्धि पाय॥"* [अर्थात् सब कुछ त्याग करके वे श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी शुद्धभक्ति करते हैं और श्रीकृष्ण-कृपासे तथा साधुसङ्गमें विचार-बुद्धि प्राप्त करते हैं।]॥ 182॥

श्रीमद्भगवद्गीता (10/8)में—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ 183॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 183॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं सभीका प्रभव (उत्पत्ति)-स्थान हूँ और मुझसे ही सब कुछ प्रवर्तित हुआ है; ऐसा जानकर सब पण्डितगण भक्तियुक्त होकर मेरा भजन करते हैं॥ 183॥

अनुभाष्य—

अहं (कृष्णः) सर्वस्य (विधिरुद्राणां प्रपञ्चस्य च) प्रभवः (हेतुः जन्मकारणम्); मत्तः (सर्वकारणकारणभूतात्) सर्वं (वस्तु) प्रवर्त्तते (मदधीनप्रवृत्तिकम्)—इति मत्वा बुधाः (कृष्णरसविदः) भावसमन्विताः (प्रेमयुक्ताः सन्तः) मां भजन्ते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 183॥

भक्तकी कृपासे श्रौत-पथका अनुसरण करते हुए नीच
त्रिर्यक जातिकी भी मायासे मुक्ति :—
श्रीमद्भागवत (2/7/46)में—

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः।
यद्यद्भुतक्रमपरायण-शील-शिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये॥ 184॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 184॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्त्री, शूद्र, हूण, शबरादि पापयोनिवाले जीव और पक्षी आदि तिर्यक-जातियाँ भी जब अद्भुतक्रम (भगवान् श्रीउरुक्रम) परायणगणोंसे (अर्थात् शुद्धभक्तोंके आचरणके अनुसरणसे) शिक्षा प्राप्त (अर्थात् भगवद्भक्त) होकर (दुस्तर दैवी) मायासे उद्धार प्राप्त कर लेते हैं, तब श्रौतपन्थी व्यक्तियोंका तो कहना ही क्या? ॥ 184 ॥

अनुभाष्य—ब्रह्मा अपने शिष्य नारदसे भगवान् विष्णुके लीलावतार-समूहकी क्रिया, प्रयोजन और विभूतिसमूहका वर्णन करके उनकी दुस्तर मायासे मुक्त शरणागत उच्चकुलमें उत्पन्न भक्तोंके नामोंका वर्णन करके निम्नकुलमें उत्पन्न जनगणोंकी भी श्रौतपन्थामें मुक्ति-प्राप्तिकी योग्यताकी बात बतला रहे हैं,—

यदि स्त्रीशूद्रहूणशबरा पापजीवाः (पापयोनयः) तथा त्रिर्यक्जनाः अपि अद्भुतक्रमपरायणशील-शिक्षाः (अद्भुताः विस्मयोत्पादिकाः क्रमाः पादन्यासाः यस्य हरेः तस्य परायणाः हरिजनाः तेषां शीले स्वभावे शिक्षा येषां ते—ये शुद्धभक्त-शिष्याः सन्तः कृष्णभक्तसङ्गैः गठितचरित्राः भवन्ति, तर्हि एवम्भूताः) ते अपि देवमायां वै विदन्ति (जानन्ति) अतितरन्ति (अतिक्रामन्ति) च; [अतः] ये (भक्ताः) श्रुतधारणाः (श्रुतं भगवतः नामरूप-गुण-लीलादि-तत्त्वं धारयन्ति श्रौतमार्गेण ये, ते) किमु (पुनः तेषां किं वक्तव्यम्?—निश्चितमेव ते मायां विदन्ति अतितरन्तीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 184 ॥

सद्बुद्धि और नित्य-अनित्यका विचार करके श्रीकृष्ण-भजनसे ही श्रीकृष्ण-प्राप्ति :—

विचार करिया यबे भजे कृष्ण-पा'य।
सेइ बुद्धि देन ताँरे, याते कृष्ण पाय ॥ 185 ॥

अनुवाद—भक्ति ही एकमात्र कल्याणका साधन है, इस प्रकार विचार करके जब कोई श्रीकृष्णके चरणकमलोंका भजन करता है, तब श्रीकृष्ण उसे स्वयं ऐसी बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वह श्रीकृष्णको प्राप्त कर सके ॥ 185 ॥

श्रीमद्भगवद्गीता (10/10)में—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ 186 ॥

अनुवाद—नित्य भक्तियोगके द्वारा जो लोग प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं, मैं उनको शुद्धज्ञानजनित विमल-प्रेमयोग दान करता हूँ। वे लोग उस ज्ञानके द्वारा मेरे परमानन्द धामको प्राप्त करते हैं ॥ 186 ॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/49 संख्या देखें ॥ 186 ॥

सर्वश्रेष्ठ पाँच प्रकारके साधन :—

सत्सङ्ग, कृष्णसेवा, भागवत, नाम।
व्रजे वास,—एइ पञ्चसाधन प्रधान ॥ 187 ॥

पाँच प्रकारके साधनोंमेंसे किसी एकके सामान्य अनुशीलनसे ही श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति :—

एइ पञ्च-मध्ये एक 'स्वल्प' यदि हय।
सुबुद्धि जनेर हय कृष्णप्रेमोदय ॥ 188 ॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें ॥ 187 ॥

इन पाँच साधनोंमेंसे यदि कोई किसी एक अङ्गका भी 'स्वल्प' मात्रामें पालन करता है, तब ऐसे बुद्धिमान व्यक्तिमें श्रीकृष्णप्रेमका उदय होता है ॥ 188 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भागवत, नाम'*—श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्णनाम ॥ 187 ॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णभक्तसङ्ग, श्रीकृष्णसेवा, श्रीकृष्णकथा-विग्रह श्रीमद्भागवत, श्रीकृष्णनाम, श्रीकृष्णधाम श्रीव्रजमें वास—ये पाँच प्रधान साधन हैं ॥ 187 ॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/238)—

दुरुहाद्भुतवीर्येऽस्मिन् श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भावजन्मने ॥ 189 ॥

अनुवाद—सहसा दुर्बोध और अद्भुत शक्तिसम्पन्न अन्तिम पाँच अङ्गोंमें श्रद्धाकी बात तो दूर रहे, अति

अल्प सम्बन्ध उत्पन्न होनेपर भी वह निरापराधी व्यक्तिकी भावोत्पत्तिका कारण बन जाता है॥ 189॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/129 संख्या देखें॥ 189॥

अनर्थमय और सकाम होनेपर भी सुबुद्धिके कारण निरन्तर श्रीकृष्णभजनके फलसे कामनाओंको त्यागकर निष्काम-सेवा और सिद्धिकी प्राप्ति; वैसा होनेपर भी सकाम-भक्ति निष्काम-सेवाका 'कारण' नहीं :—

उदार महती याँर सर्वोत्तमा बुद्धि।
नाना कामे भजे, तबु पाय भक्तिसिद्धि॥ 190॥

अनुवाद—उदारचित्त और बुद्धिमान व्यक्ति अनेक प्रकारकी कामनाओंकी पूर्त्तिकी अभिलाषासे भजन आरम्भ करनेपर भी अन्तमें भक्तिकी सिद्धिकी प्राप्ति करते हैं॥ 190॥

श्रीमद्भागवत (2/3/10)में—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥ 191॥

अनुवाद—पहले कोई 'अकाम' अर्थात् सर्वकामनाओंसे रहित हो अथवा 'सर्वकाम' अर्थात् सब प्रकारकी कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्षकी कामना करनेवाला ही क्यों न हो, उदार-बुद्धि होने मात्रसे ही मनुष्य तीव्र शुद्धभक्तियोगसे परमपुरुष श्रीकृष्णका भजन करेंगे॥ 191॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/36 संख्या देखें॥ 191॥

निरन्तर सेवाके प्रभावसे काम अथवा अनर्थकी निवृत्ति और शुद्ध सेवाकी प्राप्ति :—

भक्ति-प्रभाव,—सेइ काम छाड़ाञा।
कृष्णपदे भक्ति कराय गुणे आकर्षिया॥ 192॥

अनुवाद—भक्तिके प्रभावसे उस व्यक्तिकी समस्त प्रकारकी भोग-वासनाएँ धीरे-धीरे दूर हो जाती हैं और श्रीकृष्णके गुणोंसे आकर्षित होकर वह श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी निरन्तर सेवामें नियुक्त हो जाता है॥ 192॥

श्रीमद्भागवत (5/19/26)में—

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥ 193॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण प्रार्थना किये जानेपर मनुष्योंकी प्रार्थनाको पूर्ण करते हैं, यह बात सत्य है। किन्तु जिस अर्थसे (भोगकी वस्तुसे) बार-बार भोगके लिये प्रार्थना उदित होती है, श्रीकृष्ण उस अर्थको नहीं देते। अन्यकामी होकर जो एकमात्र उनके पादपल्लवको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करनेपर भी उनका भजन करते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें स्वयं ही अन्य-कामनाओंको शान्त कर देनेवाले अपने चरणकमलोंको दिया करते हैं॥ 193॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/40 संख्या देखें॥ 193॥

"आत्मारामाः"-पदके अन्तर्गत आत्मा-शब्दके (7) 'स्वभाव'-अर्थकी व्याख्या :—

'आत्मा'-शब्दे 'स्वभाव' कहे, ताते येइ रमे।
आत्माराम जीव यत स्थावर-जङ्गमे॥ 194॥

अनावृत शुद्धजीवस्वरूप और आवृत जीवस्वरूपका धर्म; शुद्ध 'अहं' और अशुद्ध 'अहं'—

जीवेर स्वभाव—कृष्णे 'दास' अभिमान।
देहे आत्म-ज्ञाने आच्छादित सेइ 'ज्ञान'॥ 195॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दका एक अर्थ 'स्वभाव' भी होता है, जो अपने स्वभावमें आनन्द अनुभव करते हैं, वे आत्माराम कहलाते हैं। इसलिये जितने भी स्थावर अथवा जङ्गम प्राणी हैं, वे सभी आत्माराम कहलाते हैं। वास्तवमें उन जीवोंका स्वभाव श्रीकृष्णके 'दास' होनेका अभिमान करना है, किन्तु देहमें आत्मबुद्धि होनेके कारण उनका यह वास्तविक 'ज्ञान' आच्छादित रहता है॥ 194-195॥

च-शब्दे 'एव', 'अपि'-शब्द समुच्चये।
'आत्मारामा एव' हञा श्रीकृष्ण भजये॥ 196॥

शुद्धस्वभाव 'आत्माराम' जीवका और
'निर्ग्रन्थ' जीवका दृष्टान्त :—

एइ जीव—सनकादि सब मुनिजन।
'निर्ग्रन्थ'—मूर्ख, नीच, स्थावर-जङ्गम॥ 197॥

अनुवाद—अमृतानुकणा देखें॥ 196-197॥

अमृतानुकणा—आत्मा-शब्दसे 'स्वभाव' अर्थ, 'च'-शब्दसे 'एव' (निश्चय ही) अर्थ और 'अपि'-शब्दसे समुच्चय-अर्थ होनेपर, समस्त अर्थ यहाँपर इस प्रकार होते हैं,—

सनकादि मुनिगण एवं 'निर्ग्रन्थ' अर्थात् मूर्ख, नीच, स्थावर-जङ्गमादि 'आत्माराम एव' होकर अर्थात् श्रीकृष्णदासके स्वभावसे युक्त होकर उरुक्रम-श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं॥ 196-197॥

मुक्तजीव व्यास आदिकी श्रीकृष्णसेवा—प्रसिद्ध,
निर्ग्रन्थ अथवा निर्बोधके भजनका वर्णन :—

व्यास-शुक-सनकादिर प्रसिद्ध भजन।
'निर्ग्रन्थ' स्थावरादिर शुन विवरण॥ 198॥

अनुवाद—व्यास, शुक और सनकादिका भजन तो प्रसिद्ध है ही, अब तुम मुझसे 'निर्ग्रन्थ' स्थावरादिके विषयमें श्रवण करो॥ 198॥

श्रीकृष्णकी कृपासे सभीका श्रीकृष्णभजन :—

कृष्णकृपादि-हेतु हैते स्वभाव उदय।
कृष्णगुणाकृष्ट हञा ताँहारे भजय॥ 199॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-कृपासे सभी स्थावरादिका भी श्रीकृष्णदास होनेका स्वभाव उदित होता है और वे श्रीकृष्णके गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर उनका भजन करते हैं॥ 199॥

श्रीकृष्णके चरणके स्पर्शसे पृथ्वी धन्या, लक्ष्मीके भी
काम्य वक्षःस्पर्शसे गोपियाँ धन्या :—
श्रीमद्भागवत (10/15/8)में—

धन्येयमद्य धरणी तृण-वीरुधस्त्वत्-
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः॥ 200॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 200॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह भूमि (व्रजभूमि) आज धन्य हो गयी है; आपके चरणस्पर्शसे सभी तृण, गुल्मादि, आपकी अङ्गुलिके स्पर्शसे वृक्ष-लता, आपके दयापूर्ण अवलोकनसे (दृष्टिसे) नदी-पर्वत-पक्षी-पशु आदि सब धन्य हो गये हैं। और लक्ष्मीको भी जिसे प्राप्त करनेकी स्पृहा है, उस आपके वक्षःस्थलको प्राप्त करके सभी गोपियाँ धन्य हो गयी हैं॥ 200॥

अनुभाष्य—पौगण्ड-अवस्थामें पदार्पण करके श्रीकृष्ण एकबार श्रीबलदेवके साथ कुसुमाकर-वनमें प्रवेश करके व्रजकी शोभाको देखकर विहार करनेके इच्छुक होकर बड़े भाई श्रीबलदेवकी स्तुतिके छलसे स्वयं ही स्वयंकी स्तुति कर रहे हैं,—

अद्य [तव चरणस्पर्शात्] इयं धरणी धन्या, [तथा] त्वतपादस्पृशः (तव पादौ स्पृशन्तीति अतः) तृणविरुधः (तृणगुल्मादयः) करजाभिमृष्टाः (नखैः स्पृष्टाः) द्रुमलताः (वृक्षवल्लर्यः) सदयावलोकैः (सकारुण्यदृष्टिभिः) नद्यः अद्रयः (गिरयः) खगमृगाः (खगाः पक्षिणः मृगाः पशवः) च (धन्याः), श्रीः अपि यत्स्पृहा (लक्ष्मीरपि यस्मै स्पृहयति, तेन) भुजयोः अन्तरेण (वक्षसा) गोप्यः च धन्याः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 200॥

श्रीकृष्णकी वंशीकी ध्वनिसे जङ्गमका स्थावर-धर्म,
स्थावरमें जङ्गमके धर्मका उदय :—
श्रीमद्भागवत (10/21/19)में—

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥ 201॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 201 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सखियों! गायों और गोपोंके साथ वन-वनमें भ्रमण करनेवाले, गायोंको बाँधनेवाली रस्सीके पाशको धारण करने आदि जैसे चिह्नोंसे युक्त श्रीकृष्ण-बलदेवकी उदार वेणु-ध्वनि और गीतके द्वारा देही (प्राणियों)के मध्य चलनेवाले स्थावरकी भाँति स्तम्भित हो रहे हैं तथा स्थावर वृक्षादिमें पुलक हो रहा है,—यह सब बहुत विचित्र है॥ 201 ॥

अनुभाष्य—व्रजमें शरत्कालके आनेपर, श्रीकृष्णके द्वारा वन-वनमें वंशीध्वनि करते हुए गो-चारणके छलसे भ्रमण आरम्भ करनेपर, गोपियाँ वंशीध्वनिके श्रवणसे श्रीकृष्णके सङ्गके लिये कामातुरा होकर इधर-उधर भ्रमण करते-करते श्रीकृष्णकी गुणावलीका वर्णन कर रही हैं,—

हे सख्यः, गोपकैः (गोप-बालकैः सह) अनुवनं (प्रतिवनं) गाः नयतोः (सञ्चारयतोः) निर्योगपाशकृतलक्षणयोः (निर्युज्यन्ते गावः आभिः इति निर्योगाः दोहनकालीन-पादबन्धन-रज्जुः, अधृष्यगवां कर्षणार्थाः पाशाः च, तैः कृतं लक्षणं चिह्नं ययोस्तयोः शिरसि निर्योगवेष्टनेन स्कन्धस्थापने च गोपपरिवृढ़श्रिया विराजमानयोः रामकृष्णयोः) कलपदैः (मधुरशब्दैः) उदारवेणुस्वनैः (महावेणुनादैः) तनुभृत्सु (शरीरधारिषु देहिषु) गतिमतां (ये गतिमन्तः, तेषाम्) अस्पन्दनं (स्थावरधर्म्मः) तरुणां पुलकः (जङ्गमधर्मः—इति तु) विचित्रम् (अतिविचित्रम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 201 ॥

श्रीमद्भागवत (10/35/9)में—

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म॥ 202 ॥

अनुवाद—[श्रीकृष्णका वेणुनाद श्रवण करके] वनकी लताएँ और वृक्ष फूल और फलोंसे लद गये और उनके भारसे उनकी डालियाँ झुक गयीं। समस्त वनस्पति अपने भीतर श्रीकृष्णकी अभिव्यक्तिको सूचित करते हुए प्रेममें पुलकित होकर मधुधारा वर्षण करने लगीं॥ 202 ॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/275 संख्या देखें॥ 202 ॥

श्रीमद्भागवत (2/4/18)में—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशा
आभीरकङ्का यवनाः खशादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥ 203 ॥

अनुवाद—किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, (शुम्भ) कङ्क, यवन और खशादि तथा अन्य जो समस्त पापयोनि जातियाँ हैं, वे सब जातियाँ ही जिनके आश्रित-वैष्णवोंके आश्रयमें भली-भाँति शुद्ध हो जाती हैं, मैं ऐसे प्रभावसे युक्त विष्णुको नमस्कार करता हूँ॥ 203 ॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/173 संख्या देखें॥ 203 ॥

यहाँ तक उन्नीस प्रकारका अर्थ :—

आगे 'तेर' अर्थ करिलुँ, आर 'छय' एइ।
ऊनविंशति अर्थ हइल मिलि' एइ दुइ॥ 204 ॥

अनुवाद—मैंने पहले आत्माराम श्लोकके तेरह अर्थ बतलाये थे और अब ये छः अन्य अर्थ हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर उन्नीस अर्थ हुए॥ 204 ॥

अनुभाष्य—*'आगे तेर अर्थ'*—पहले तेरह अर्थोंके लिये मध्यलीला 24/157 श्लोकका अनुभाष्य देखें। अन्य छः यह हैं,—(1) 'मनो-रमणशील' (159 संख्या); (2) 'यत्ने रमणशील' (162 संख्या); (3) 'धैर्यशील' (168 संख्या); (4) 'बुद्धयाराम पण्डितमुनि' (181 संख्या); (5) 'बुद्धयाराम निर्ग्रन्थ मूर्ख' (181 संख्या); (6) 'श्रीकृष्णदास-स्वभावविशिष्ट' आत्माराम (195 संख्या)॥ 204 ॥

'आत्मारामाः'-पदके अन्तर्गत आत्मा-शब्दकी 'देह'-अर्थसे व्याख्या :—

एइ ऊनिश अर्थ करिलु, आगे शुन आर।
'आत्मा'-शब्दे 'देह' कहे,—चारि अर्थ तार॥ 205 ॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने तुम्हें उन्नीस अर्थ बतलाये हैं, अब तुम आगे सुनो। 'आत्मा'-शब्दका एक अर्थ 'देह' भी है, इस अर्थके द्वारा अन्य चार अर्थ प्रकाशित होंगे॥ **205**॥

अनुभाष्य—*'चारि अर्थ तार'*—(1) औपाधिक ब्रह्मदेह (206 संख्या); (2) कर्मनिष्ठ याज्ञिकोंकी कर्मदेह (208 संख्या); (3) तपोदेह (210 संख्या); (4) सर्वकाम-देह (212 संख्या)॥ **205**॥

साधुसङ्गके फलसे देहात्मबुद्धि अथवा विवर्त्तवादियोंको भी विवर्त्त बुद्धिके त्यागसे श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति :—

देहारामी देहे भजे 'देहोपाधि ब्रह्म'।
सत्सङ्गे सेह करे कृष्णेर भजन॥ 206॥

अनुवाद—जो देहको ही मैं माननेवाले 'देह-उपाधि ब्रह्म'का अर्थात् अपनी देहको ब्रह्म मानकर भजन करते हैं, यदि उन्हें भी सत्सङ्गकी प्राप्ति हो जाय, तो वे भी श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ **206**॥

अनुभाष्य—देहारामी देहको औपाधिक ब्रह्ममूर्ति समझकर अपनी देहकी सेवा करते-करते साधुसङ्गसे उस विवर्त्त-बुद्धिको छोड़कर श्रीकृष्णसेवा करते हैं॥ **206**॥

श्रीमद्भागवत (10/87/18)—

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥ 207॥

अनुवाद—(ऋषियोंके सम्प्रदाय मार्गमें) जो कर्मयोगमें उदर अर्थात् मणिपुरमें स्थित ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे 'शार्कराक्ष' ऋषि कहलाते हैं और वे कूर्पदृक् अर्थात् स्थूलदृष्टि हैं। और आरुणि ऋषिगण (उस सम्प्रदायके ऋषिगण) जहाँसे नाड़ियोंका विस्तार होता है उस हृदयाकाशमें (सूक्ष्म ब्रह्मकी) उपासना करते हैं। हे अनन्त, उससे उत्कृष्ट जो योगीगण शिरोगत (मूलाधार उदरसे आरम्भ करके हृदयके मध्यमेंसे होकर मस्तक और ब्रह्मरन्ध्र तक बढ़ते हुए) सहस्रदल-पद्मस्वरूप आपकी उपलब्धिके स्थान सुषुम्ना-नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्मय धाममें पहुँच जाते हैं, वे पुनः मृत्युके मुख अर्थात् संसारमें पतित नहीं होते॥ **207**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/160 संख्या देखें॥ **207**॥

साधुसङ्गके फलसे कर्मका त्याग करके देहारामी कर्मीको भी शुद्धभक्तिकी प्राप्ति :—

देहारामी—कर्मनिष्ठ याज्ञिकादि जन।
सत्सङ्गे 'कर्म' त्यजि' करये भजन॥ 208॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ **208**॥

अनुभाष्य—'देहारामी कर्मनिष्ठ'—यज्ञादि परायण; वे भी सुकृतिके फलसे भक्तोंके सङ्गसे कर्मनिष्ठारूपी यज्ञका त्याग करके श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥ **208**॥

शौनकादिके द्वारा कर्मकाण्डकी निन्दा और श्रीसूतकी हरिकथा-कीर्तनमें प्रवृत्तिकी प्रशंसा :—
श्रीमद्भागवत (1/18/12)में—

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान्।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु॥ 209॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **209**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(हे सूत!) हम आश्वास (अर्थात् निश्चय ही फल मिलेगा, इस आशासे) रहित इस कर्ममार्गमें धुएँसे धूमिल हो गये हैं, [ऐसी अवस्थामें] आप हमें श्रीगोविन्दके चरण-कमलोंके मधुमय [मादक] आसवका पान करा रहे हैं॥ **209**॥

अनुभाष्य—महाभागवत श्रीसूत-गोस्वामीके द्वारा शुश्रुषु शौनकादिको हरिकथारूपी भागवतका वर्णन आरम्भ करनेपर ऋषिगण अपने तुच्छ कर्मकाण्डके अनुष्ठानकी निन्दा कर रहे हैं,—

अस्मिन् अनाश्वासे (अविश्वसनीये) कर्मणि (सत्रे) धूमधूम्रात्मनां (धूमेन धूम्रौ विवर्णो आत्मानौ शरीर-चित्ते येषां तेषां तान् इत्यर्थः) भवान् मधु (मधुरं) गोविन्दपादपद्मासवं (श्रीकृष्ण-चरणाब्जयोः मकरन्दं श्रीहरिकथामृतमित्यर्थः) आपाययति (श्रावयति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 209॥

साधुसङ्गमें तपस्यारूपी भोगके त्यागसे देहारामी तपस्वी विषयीको भी शुद्धभक्तिकी प्राप्ति :—

'तपस्वी' प्रभृति यत देहारामी हय।
साधुसङ्गे तप छाड़ि' श्रीकृष्ण भजय॥ 210॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 210॥

अनुभाष्य—'तपस्वी' आदि जितने भी देहरामी होते हैं, वे श्रीकृष्णभक्तसङ्गसे तपस्याका त्याग करके श्रीकृष्णभजन करते हैं॥ 210॥

शास्त्र प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (4/21/31)में—

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-
मशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित्॥ 211॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 211॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णके चरणकमलके अँगूठेसे निकली गङ्गा-नदीकी भाँति श्रीकृष्णकी चरणसेवाकी रुचि प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त करके (विषयी) तपस्वियोंके समस्त जन्मोंमें एकत्रित बुद्धिके मलका शीघ्र ही नाश कर देती है॥ 211॥

अनुभाष्य—प्राचीनकालमें पृथ्वीके अधिपति पृथु महाराज एक महायज्ञका अनुष्ठान करके वहाँ एकत्रित देवताओं, ऋषियों और राजाओंके समक्ष खड़े होकर पूर्व-पूर्व महाजनोंके द्वारा लक्षित विष्णुसेवाकी अनिवार्य कर्त्तव्यता और प्रयोजनीयताका वर्णन कर रहे हैं,—

यत्पादसेवाभिरुचिः (यस्य हरेः पादयोः सेवायाम् अभिरुचिः), यथा [तस्य हरेः] पदाङ्गुष्ठविनिःसृता (पादपद्मोद्भवा) सरित् (नदी, गङ्गा इवेत्यर्थः) अन्वहम् (अहनि अहनि प्रतिदिनम्) एधती (वर्द्धमाना) सती (सात्त्विकी सती) तपस्विनां (याज्ञिकानां) अशेषजन्मोपचितं (पूर्व-पूर्व-जन्मभिः संवृद्धं) धियः (बुद्धेः) मलं (कामादि-वासना-लक्षणं) सद्यः क्षिणोति (क्षपयति, तं यूयं स्वकर्मभिः भजतेति तृतीयेणान्वयः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। इसका (भाः 4/21/33) श्लोकके साथ अन्वय करें॥ 211॥

श्रीकृष्णकी कृपासे सकाम देहारामीका भी कामका त्याग अथवा निष्काम होकर शुद्ध श्रीकृष्णभजन :—

देहारामी, सर्वकाम—सब आत्माराम।
कृष्णकृपाय कृष्ण भजे छाड़ि' सब काम॥ 212॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 212॥

अनुभाष्य—देहारामी सर्वकामी [आत्मारामगण] समस्त कामनारूपी अनर्थका परित्याग करके श्रीकृष्ण-अनुग्रहके बलसे श्रीकृष्णभजन करते हैं॥ 212॥

हरिभक्तिसुधोदयके ध्रुवचरित्र (7/28)में—

स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं
त्वां प्राप्तवान् देवमुनीन्द्रगुह्यम्।
काचं विचिन्वन्नपि दिव्यरत्नं स्वामिन्
कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे॥ 213॥

अनुवाद—ध्रुवको जब श्रीकृष्णने वर देनेकी इच्छा की, तब ध्रुवने कहा,—हे स्वामी, मैं (विश्वके स्वामी) पदकी अभिलाषासे आपकी तपस्यामें रत हुआ था, किन्तु अब देवताओं और मुनियोंके लिये भी दुर्लभ आपको प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो गया हूँ। सामान्य काँचको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे दिव्यरत्न मिल गया है। मैं कृतार्थ हो गया हूँ, अब किसी अन्य वरकी याचना नहीं करता हूँ॥ 213॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/42 संख्या देखें॥ 213॥

यहाँ तक तेईस प्रकारके अर्थ :—

एइ चारि अर्थ सह हइल 'तेइश' अर्थ।
आर तिन अर्थ शुन परम समर्थ॥ 214॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 214॥

अनुभाष्य—पहले कहे गये उन्नीस प्रकारके अर्थोंके साथ (204 संख्याका अनुभाष्य देखें) 'आत्माराम'-शब्दका अर्थ इन चार प्रकारके 'देहाराम'को (205 संख्याका

अनुभाष्य देखें) समझनेपर 'तेईस' प्रकारके अर्थ होते हैं।

और तीन अर्थ—(1) च-शब्दका 'अन्वाचय'-अर्थ, (2) च-शब्दका 'एव'-अर्थ और 'अपि'-शब्दका 'गर्हा' (निन्दा)-अर्थ एवं (3) निर्ग्रन्थ-शब्दका 'निर्धन'-अर्थ॥ 214॥

च-शब्दकी 'समुच्चय'के अर्थमें व्याख्या :—

च-शब्दे 'समुच्चये', आर अर्थ कय।
'आत्मारामाश्च मुनयश्च' **कृष्णेरे भजय॥ 215॥**

'निर्ग्रन्थाः' **हञा इँहा** 'अपि'**—निर्द्धारणे।**
'रामश्च कृष्णश्च' **यथा विहरये वने॥ 216॥**

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 215-216॥

अनुभाष्य—च-शब्दका समुच्चय अर्थ पहले ही (146 संख्यामें) कथित हुआ है; उसके द्वारा 'आत्माराम' और 'मुनि' श्रीकृष्णभजन करते हैं। *'आर अर्थ'*—'समुच्चय'-अर्थके अतिरिक्त अन्य अर्थ।

'अपि' निर्द्धारणके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है; 'निर्ग्रन्थाः' आत्माराम और मुनि, दोनोंका 'विशेषण' है। *'इँहा'*—इस स्थानपर; जैसे, 'राम और कृष्ण वनमें विहार करते हैं' कहनेपर दोनोंका ही वनविहार उद्दिष्ट होता है॥ 215-216॥

च-शब्दकी अन्वाचयार्थमें व्याख्या :—

च-शब्दे 'अन्वाचये' अर्थ कहे आर।
'वटो, भिक्षामट, गाञ्चानय' **यैछे प्रकार॥ 217॥**

इस अर्थसे मुनिका मुख्य भजन,
आत्मारामका गौण भजन :—

कृष्णमनने मुनि कृष्णे सर्वदा भजय।
'आत्मारामा अपि' **भजे,—गौण अर्थ कय॥ 218॥**

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 217-218॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वटो, भिक्षामट, गाञ्चानय'*—"हे वटु (ब्राह्मण), भिक्षामें चलो, गायको भी लाओ।" इस वाक्यमें च-शब्द जिस प्रकार 'अन्वाचय' अर्थ करता है, आत्माराम-श्लोकमें भी वैसा ही अर्थ करता है॥ 217॥

अनुभाष्य—च-शब्दसे अन्वाचय-अर्थ अर्थात् एककी प्रधानता और अन्य अप्रधान हैं। उदाहरणमें कहा जाता है,—'हे ब्राह्मण-बालक, भिक्षा करो और यदि मिले, तो गायको भी लाओ';—इस स्थानपर भिक्षाकी ही प्रधानता है और गायको लाना अप्रधान सूचित हुआ है; (उसी प्रकार) श्रीकृष्णमननशील मुनियोंकी ही सदा श्रीकृष्ण-भजनमें मुख्य रूपसे 'प्रधानता' है और आत्मारामगणोंकी श्रीकृष्णभजनमें गौणरूपसे 'अप्रधानता' है—यही अन्वाचयार्थका प्रयोग है॥ 217-218॥

च-शब्दकी 'एव'-अर्थमें और 'अपि'-शब्दकी
'निन्दा'-अर्थमें व्याख्या :—

'च' **एवार्थे** 'मुनयः एव' **कृष्णेरे भजय।**
'आत्मारामा अपि'**—'अपि' 'गर्हा' अर्थ कय॥ 219॥**

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 219॥

अनुभाष्य—च-शब्द 'एव-अर्थमें' और अपि-शब्द 'निन्दा-अर्थमें' प्रयुक्त होनेपर इस प्रकारका अर्थ होता है,—'आत्माराम होनेपर भी वैसी अवस्थाके गौरवको त्यागकर मुनिगण ही श्रीकृष्णका भजन करते हैं॥'219॥

इन दोनों स्थानोंपर ही 'निर्ग्रन्थ'-शब्द विशेषण है :—

'निर्ग्रन्थ हञा'**—एइ दुँहार 'विशेषण'।**
आर अर्थ शुन, यैछे साधुर सङ्गम॥ 220॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 220॥

अनुभाष्य—'निर्ग्रन्थ' आत्माराम और मुनि, इन दोनोंका ही 'विशेषण' है; अन्य तीसरा अर्थात् छब्बीसवाँ अर्थ,—श्रेष्ठ-साधु श्रीनारदके सङ्गका फल व्याधमें जिस प्रकारसे दिखलायी दिया था, उस प्रकार॥ 220॥

निर्ग्रन्थ-शब्दका अर्थ :—

निर्ग्रन्थ-शब्दे कहे तबे 'व्याध', 'निर्धन'।
साधुसङ्गे सेइ करे श्रीकृष्ण-भजन॥ 221॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 221॥

अनुभाष्य—निर्ग्रन्थ-शब्द निर्द्धारणके अर्थमें प्रयुक्त होनेपर, साधनरूपी धनसे विहीन अयोग्य व्याध भी श्रीनारद जैसे साधुके सङ्गके प्रभावसे श्रीकृष्णाराम होकर भजन करता है॥ 221॥

साधुसङ्गके फलसे शिकारीकी भी पापसे निवृत्ति और श्रीकृष्णमें चित्त निवेश होना अथवा महाभागवत होना :—

'कृष्णारामाश्च' एव कृष्ण-मनन।
व्याध हञा हय पूज्य भागवतोत्तम॥ 222॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 222॥

अनुभाष्य—'आत्मा'-शब्दका अर्थ—'श्रीकृष्ण'; श्रीकृष्णमें रमणशील होनेके कारण श्रीकृष्णाराम और वह श्रीकृष्णाराम ही श्रीकृष्णमननशील है। [व्याध होनेपर भी वह पूज्य भागवतोत्तम बन गया।]॥ 222॥

स्कन्द-पुराणमें कथित शिकारी-नारद-संवादका वर्णन :—

एक भक्त-व्याधेर कथा शुन सावधाने।
याहा हैते हय सत्सङ्ग-महिमार ज्ञाने॥ 223॥

अनुवाद—हे सनातन, एक भक्त-शिकारीकी कथा ध्यान देकर सुनो। इस कथासे सत्सङ्गकी महिमाको समझ सकते हैं॥ 223॥

एक दिन श्रीनारद देखि' नारायण।
त्रिवेणी-स्नाने प्रयाग करिला गमन॥ 224॥

अनुवाद—एक समय श्रीनारदने भगवान् श्रीनारायणका दर्शन करके त्रिवेणीमें स्नान करनेके लिये प्रयागकी ओर गमन किया॥ 224॥

वनपथे देखे मृग आछे भूमे पड़ि'।
बाण-बिद्ध भग्नपाद करे धड़्फड़ि॥ 225॥

अनुवाद—वनके पथपर चलते हुए श्रीनारदने देखा कि बाणसे बिँधा एक हिरण भूमिपर पड़ा था। उसकी टाँगे भी टूटी हुईं थी और वह छटपट कर रहा था॥ 225॥

आर कतदूरे एक देखेन शूकर।
तैछे विद्ध भग्नपाद करे धड़्फड़॥ 226॥

अनुवाद—थोड़ी दूरीपर श्रीनारदने एक सुअरको देखा, वह भी हिरणकी ही भाँति बाणसे बिँधा हुआ था। उसकी भी टाँगें टूटी हुईं थी और वह छटपट कर रहा था॥ 226॥

ऐछे एक शशक देखे आर कतदूरे।
जीवेर दुःख देखि' नारद व्याकुल-अन्तरे॥ 227॥

अनुवाद—थोड़ा आगे जानेपर श्रीनारदने एक खरगोशको देखा जो पीड़ासे तड़प रहा था। जीवोंके दुःखोंको देखकर श्रीनारदका हृदय व्याकुल हो गया॥ 227॥

कतदूरे देखे व्याध वृक्षे ओँत हञा।
मृग मारिवारे आछे बाण युड़िया॥ 228॥

अनुवाद—कुछ दूर जानेपर श्रीनारदने देखा कि एक शिकारी वृक्षकी ओटमें छिपकर खड़ा है और पशुओंको मारनेके लिये बाण लेकर खड़ा है॥ 228॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'ओँत'*—छिपकर, बीचमें होकर॥ 228॥

श्यामवर्ण, रक्तनेत्र, महाभयङ्कर।
धनुर्बाण हस्ते,—येन यम दण्डधर॥ 229॥

अनुवाद—वह शिकारी काले रङ्गका था, उसकी आँखें लाल रङ्गकी थीं और वह बहुत भयङ्कर लग रहा था। उसे देखकर ऐसा लग रहा था कि मानो वह हाथोंमें धनुष-बाण लिये साक्षात् यम हो॥ 229॥

पथ छाड़ि' नारद तार निकटे चलिल।
नारदे देखि' मृग सब पलाञा गेल॥ 230॥

अनुवाद—श्रीनारद उस वन-मार्गको छोड़कर उसकी ओर चल दिये। श्रीनारदको देखकर सब पशु भाग गये॥ 230॥

क्रुद्ध हञा व्याध ताँरे गालि दिते चाय।
नारद-प्रभावे मुखे गालि नाहि आय॥ 231॥

अनुवाद—पशुओंको वहाँसे भागते देखकर शिकारीको बहुत क्रोध आया और वह श्रीनारदको गाली देना चाहता था, किन्तु श्रीनारदके प्रभावसे उसके मुखसे कोई गाली निकली ही नहीं॥ 231॥

"गोसाञि, प्रयाण-पथ छाड़ि' केने आइला।
तोमा देखि' मोर लक्ष्य मृग पलाइला॥"232॥

अनुवाद—शिकारीने कहा,—"हे गोसाईं! आप वनमें चलनेवाले मार्गको छोड़कर मेरी ओर क्यों आये हैं? आपको देखकर मेरे शिकार भाग गये॥"232॥

अनुभाष्य—*'प्रयाण-पथ'*—पाठान्तरमें 'प्रमाण-पथ'; जिस निर्दिष्ट पथसे पथिक जाते हैं अर्थात् प्रचलित पथ॥ 232॥

नारद कहे,—"पथ भूलि' आइलाङ पूछिते।
मने एक संशय हय, ताहा खण्डाइते॥ 233॥
पथे ये शूकर-मृग, जानि तोमार हय।"
व्याध कहे,—"येइ कह, सेइ त' निश्चय॥"234॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"मैं अपने मार्गको छोड़कर तुमसे कुछ पूछनेके लिये ही आया हूँ। मेरे मनमें एक संशय है; मैं उसे दूर करना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि मार्गमें पड़े हुए सूअर और हिरणादि तुम्हारे हैं।" शिकारीने कहा,—"आप जो कह रहे हैं, वैसा ही है॥"233-234॥

नारद कहे,—"यदि जीवे मार' तुमि बाण।
अर्द्ध-मारा कर केने, ना लञो पराण?"235॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"यदि तुम किसी जीवको बाण मारते हो तो उसके प्राण ही क्यों नहीं ले लेते? उसे अधमरा क्यों करते हो?"235॥

व्याध कहे,—"शुन गोसाञि, 'मृगारि' मोर नाम।
पितार शिक्षाते आमि करि ऐछे काम॥ 236॥
अर्द्ध-मारा जीव यदि धड़फड़ करे।
तबे त' आनन्द मोर बाड़ये अन्तरे॥"237॥

अनुवाद—शिकारीने कहा,—"हे गोसाईं, सुनो! मेरा नाम 'मृगारि' है और मैं अपने पिताकी शिक्षाके अनुसार ही ऐसा कार्य करता हूँ। अधमरा जीव जब छटपटाता है, तब मुझे बहुत आनन्द होता है॥"236-237॥

नारद कहे,—"एकवस्तु मागि तोमार स्थाने।"
व्याध कहे,—"मृगादि लह, येइ तोमार मने॥ 238॥
मृगछाल चाह यदि, आइस मोर घरे।
येइ चाह, ताहा दिब मृगव्याघ्राम्बरे॥"239॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"मैं तुमसे एक वस्तु माँगना चाहता हूँ।" शिकारीने कहा,—"हिरणादि कोई भी पशु लेनेकी आपकी इच्छा हो, आप ले लो। यदि आप हिरणकी छाल चाहते हैं, तब फिर आप मेरे घर आइये। हिरणकी छाल, बाघकी छाल—जो कुछ भी आप चाहेंगे, मैं दे दूँगा॥"238-239॥

नारद कहे,—"इहा आमि किछु नाहि चाहि।
आर एक वस्तु आमि मागि तोमा-ठाञि॥ 240॥
कालि हैते तुमि येइ मृगादि मारिबा।
प्रथमे मारिबा, अर्द्ध-मारा ना करिबा॥"241॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"मुझे यह सब कुछ नहीं चाहिये। मैं तो तुमसे कुछ और माँगता हूँ। कलसे तुम जिस हिरणादिको मारोगे, उसे पहली बारमें ही पूरी तरहसे मार देना, उसे अधमरा मत करना॥"240-241॥

व्याध कहे,—"किवा दान मागिला आमारे।
अर्द्ध मारिले किवा हय, ताहा कह मोरे॥"242॥

अनुवाद—शिकारीने कहा,—"आपने मुझसे यह कैसा दान माँगा है? आधा मारनेसे क्या होता है, मुझे इस विषयमें बतलाइये॥"242॥

नारद कहे,—"अर्द्ध मारिले जीव पाय व्यथा।
जीवे दुःख दितेछ, तोमार हइबे ऐछे अवस्था॥243॥

व्याध तुमि, जीव मार—'अल्प' अपराध तोमार।
कदर्थना दिया मार'—ए पाप 'अपार'॥244॥

कदर्थिया तुमि यत मारिला जीवेरे।
तारा तैछे तोमा मारिबे जन्म-जन्मान्तरे॥"245॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"आधा मारनेसे जीवको तुम जानबूझकर दुःख दे रहे हो, इसलिये तुम्हारी भी वैसी ही अवस्था होगी। तुम शिकारी हो, जीवोंको मारना तुम्हारा धंधा है, इसलिये तुम्हारा बहुत कम अपराध होता है। किन्तु तुम उन्हें जानबूझकर तड़पा-तड़पाकर मारते हो, यह 'अपार' (घोर) पाप है। तुमने तड़पा-तड़पाकर जितने जीवोंको मारा है, वे भी तुम्हें जन्म-जन्मान्तरमें वैसे ही मारेंगे॥"243-245॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'कदर्थना दिया'*—कष्ट देकर॥244॥॥

नारद-सङ्गे व्याधेर मन परसन्न हइल।
ताँर वाक्य शुनि' मने भय उपजिल॥246॥

अनुवाद—श्रीनारदके सङ्गसे शिकारीका मन निर्मल हो गया था, इसलिये उसे अपने पापोंकी प्रतीति हो गयी। किन्तु पापोंका परिणाम बतानेवाले उनके वचन सुनकर उसके मनमें भय उत्पन्न हो गया॥246॥

व्याध कहे,—"बाल्य हैते एइ आमार कर्म।
केमने तरिब आमि पामर अधम?॥247॥

एइ पाप याय मोर, केमन उपाये?
निस्तार करह मोरे, पड़ोँ तोमार पाये॥"248॥

अनुवाद—शिकारीने कहा,—"बचपनसे ही मेरा यही कार्य है। मैं अधम, पापी इन पापोंसे कैसे पार होऊँगा? किस उपायसे मेरे द्वारा किये गये ये पाप दूर हो सकते हैं? आप मेरा उद्धार कीजिये, मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ॥"247-248॥

नारद कहे,—"यदि धर आमार वचन।
तबे से करिते पारि तोमार मोचन॥"249॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"यदि तुम मेरी बात मानो, तब मैं तुम्हारा उद्धार कर सकता हूँ॥"249॥

व्याध कहे,—"येइ कह, सेइ त' करिब।"
नारद कहे,—"धनुक भाङ्ग, तबे से कहिब॥"250॥

अनुवाद—शिकारीने कहा,—"आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा।" श्रीनारदने कहा,—"तुम अपना धनुष तोड़ दो, तब मैं कुछ कहूँगा॥"250॥

व्याध कहे,—"धनुक भाङ्गिले बाँचिब केमने?"
नारद कहे,—"आमि अन्न दिब प्रतिदिने॥"251॥

अनुवाद—शिकारीने कहा,—"यदि मैं धनुषको तोड़ दूँगा, तब मेरा पालन कैसे होगा?" श्रीनारदने कहा,—"मैं प्रतिदिन तुम्हें भोजन दूँगा॥"251॥

धनुक भाङ्गि व्याध ताँर चरणे पड़िल।
तारे उठाञा नारद उपदेश कैल॥252॥

"घरे गिया ब्राह्मणे देह' यत आछे धन।
एक एक वस्त्र परि' बाहिर हओ दुइजन॥253॥

नदी-तीरे एकखानि कुँड़िया करिया।
तार आगे एकपिण्डि तुलसी रोपिया॥254॥

तुलसी-परिक्रमा कर, तुलसी-सेवन।
निरन्तर कृष्णनाम करिह कीर्त्तन॥255॥

आमि तोमाय बहु अन्न पाठाइमु दिने।
सेइ अन्न लबे, यत खाओ दुइजने॥"256॥

अनुवाद—धनुषको तोड़कर शिकारी श्रीनारदके चरणोंमें गिर पड़ा। उसे उठाकर श्रीनारदने उसे उपदेश प्रदान किया,—"घर जाकर तुम्हारे पास जो भी धन है, वह सब ब्राह्मणोंको दे दो। तुम और तुम्हारी पत्नी केवल एक-एक वस्त्र पहनकर उस घरको छोड़ दो।

नदीके तटपर एक कुटिया बनाकर उसके आगे एक चबूतरा बनाकर उसपर तुलसीका पौधा लगाओ। तुम लोग तुलसीकी परिक्रमा, तुलसीकी सेवा और निरन्तर श्रीकृष्णनामका कीर्तन करना। मैं दिनके समय तुम्हारे पास बहुतसी भोजन सामग्री भेजूँगा। तुम उसमेंसे उतनी ही सामग्री लेना, जितना तुम दोनों खा सको॥"252-256॥

तबे सेइ मृगादि तिने नारद सुस्थ कैल।
सुस्थ हञा मृगादि तिने धाञा पलाइल॥257॥

अनुवाद—तब श्रीनारदने उन अधमरे मृगादि तीनों पशुओंको स्वस्थ किया और स्वस्थ होते ही मृगादि तीनों पशु दौड़कर चले गये॥257॥

देखिया व्याधेर मने हैल चमत्कार।
घरे गेल व्याध, गुरुके करि' नमस्कार॥258॥

अनुवाद—ऐसा देखकर शिकारीके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने गुरु श्रीनारदको प्रणाम करके शिकारी अपने घर लौट गया॥258॥

यथा-स्थाने नारद गेला, व्याध घरे आइल।
नारदेर उपदेशे सकल करिल॥259॥

अनुवाद—श्रीनारद अपने गन्तव्य स्थान प्रयागकी ओर चल दिये और शिकारी अपने घर आ गया। शिकारीने श्रीनारदके उपदेशानुसार सब कार्य किया॥259॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'नारदेर उपदेशे'*—श्रीनारदके उपदेशके अनुसार॥259॥

ग्रामे ध्वनि हैल,—"व्याध 'वैष्णव' हइल।'
ग्रामेर लोक सब अन्न आनिते लागिल॥260॥
एकदिन अन्न आने दश-बिश जने।
दिले तत लय, यत खाय दुइजने॥261॥

अनुवाद—पूरे ग्राममें यह बात फैल गयी,—"शिकारी 'वैष्णव' बन गया है।" ग्रामके सभी लोग उसके पास भोजनकी सामग्री लाने लगे। एक दिनमें दस-बीस लोग भोजनकी सामग्री लेकर आते, किन्तु शिकारी उतना ही लेता जितना वे दो लोग खा सकते थे॥260-261॥

एकदिन नारद कहे,—"शुनह, पर्वते।
आमार एक शिष्य आछे, चलह देखिते॥"262॥

अनुवाद—एक दिन श्रीनारदने श्रीपर्वत ऋषिसे कहा,—"हे पर्वत! सुनो, मेरा एक शिष्य है, चलो उसे देखनेके लिये चलें॥"262॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'शुनह, पर्वते'*—ओहे पर्वत मुनि, सुनो॥262॥

तबे दुइ ऋषि आइला सेइ व्याध-स्थाने।
दूर हैते व्याध पाइल गुरुर दरशने॥263॥

अनुवाद—तब दोनों ऋषि शिकारीके स्थानपर आये। शिकारीने दूरसे ही अपने गुरुदेवको आते देख लिया॥263॥

आस्ते-व्यस्ते धाञा आसे, पथ नाहि पाय।
पथेर पिपीलिका इति-उति धरे पाय॥264॥

अनुवाद—शिकारी तेजीसे दौड़कर गुरुदेवके पास जाने लगा, किन्तु उसे मार्ग नहीं मिल रहा था, क्योंकि मार्गमें चींटियाँ इधर-उधर आ-जा रहीं थी और कहीं पैर रखनेसे कोई चींटी मर न जाय, इसलिये वह आगे बढ़ नहीं पा रहा था॥264॥

दण्डवत्-स्थाने पिपीलिकारे देखिया।
वस्त्रे स्थान झाड़ि' पड़े दण्डवत् हञा॥265॥

अनुवाद—जब गुरुदेव निकट आ गये तब उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगा, तो उसने देखा कि गुरुदेवके चरणोंके पास भी चींटियाँ हैं। उसने उस स्थानको अपने वस्त्रसे झाड़कर चींटियोंको दूर किया और फिर गुरुदेवको दण्डवत् प्रणाम किया॥265॥

नारद कहे,—"व्याध, एइ ना हय आश्चर्य।
हरिभक्त्ये हिंसा-शून्य हय साधुवर्य॥"266॥

अनुवाद—श्रीनारदने कहा,—"हे शिकारी, तुम्हारा ऐसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। हरिभक्तिके प्रभावसे व्यक्ति हिंसारहित होकर सर्वश्रेष्ठ साधु बन जाता है॥"266॥

स्कान्दवचन :—

एते न ह्यद्भूता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः।
हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः परतापिनः॥267॥

अनुवाद—हे व्याध, तुममें जो अहिंसादि गुण उत्पन्न हुए हैं, वह अद्भुत नहीं है, क्योंकि, जो हरिभक्तिमें प्रवृत्त होता है, वह दूसरोंको कष्ट देनेवाला नहीं होता॥267॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/143 संख्या देखें॥267॥

तबे सेइ व्याध दोँहारे अङ्गने आनिल।
कुशासन आनि' दोँहारे भक्त्ये बसाइल॥268॥

अनुवाद—तब वह शिकारी उन दोनोंको अपने आँगनमें ले आया और उसने कुशासन लाकर उन दोनोंको भक्तिपूर्वक बैठाया॥268॥

जल आनि' भक्त्ये दोँहार पाद प्रक्षालिल।
सेइ जल स्त्री-पुरुषे पिया शिरे लइल॥269॥

अनुवाद—शिकारीने जल लाकर भक्तिपूर्वक उन दोनोंके चरणोंका अभिषेक किया। तब शिकारी और उसकी पत्नी, दोनोंने उस जलका पान किया और उसे अपने सिरपर भी छिड़का॥269॥

कम्प-पुलकाश्रु हैल कृष्णनाम गाञा।
ऊर्द्धबाहु नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा॥270॥

अनुवाद—जब शिकारी गुरुदेवके सामने श्रीकृष्णनामका कीर्तन करने लगा, तब उसके शरीरमें कम्प-पुलक-अश्रु आदि सात्त्विक विकार उत्पन्न हो गये। वह भावावेशमें गान करते हुए दोनों हाथोंको उठाकर और कपड़ेको हाथोंसे उड़ाते हुए नृत्य करने लगा॥270॥

देखिया व्याधेर प्रेम पर्वत-महामुनि।
नारदेरे कहे,—"तुमि हओ स्पर्शमणि॥"271॥

अनुवाद—शिकारीके प्रेमको देखकर महामुनि श्रीपर्वतने श्रीनारदसे कहा,—"आप स्पर्शमणि हैं॥"271॥

स्कान्दवचन :—

"अहो धन्योऽसि देवर्षे कृपया यस्य तत्क्षणात्।
नीचोऽप्युत्पुलको लेभे लुब्धको रतिमच्युते॥272॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥272॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे देवर्षे! आप धन्य हैं। आपकी कृपासे नीच लुब्धक अर्थात् शिकारीने भी पुलकित होकर श्रीकृष्णमें रति प्राप्त की है॥272॥

अनुभाष्य—

हे देवर्षे (नारद,) अहो, (विस्मये, त्वं) धन्यः असि, यस्य (तव) कृपया नीचः (नीचवृत्तिः) लुब्धकः (व्याधः) अपि उत्पुलकः (रोमाञ्चितदेहः सन्) अच्युते (भगवति विष्णौ) रतिं लेभे (प्राप)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥272॥

परम वैष्णवश्रेष्ठ श्रीनारदकी कृपासे भक्त-शिकारीके योग-क्षेमका समाधान :—

नारद कहे,—"वैष्णव, तोमार अन्न किछु आय?"
व्याध कहे,—"यारे पाठाओ, सेइ दिया याय॥273॥

एत अन्न ना पाठाओ, किछु कार्य नाइ।
सबे दुइजनार योग्य भक्ष्यमात्र चाइ॥"274॥

नारद कहे,—"ऐछे रह, तुमि भाग्यवान्।"
एत बलि' दुइजन हइला अन्तर्धान॥275॥

अनुवाद—श्रीनारदने शिकारीसे पूछा,—"हे वैष्णव, तुम्हारे पास कुछ भोजनकी सामग्री आती है तो?'

शिकारीने उत्तर दिया,—"आप जिन्हें भेजते हैं, वे दे जाते हैं। किन्तु आप इतनी अधिक भोजन सामग्री मत भेजा कीजिये, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमें तो केवल दो प्राणियोंके पेट भरने जितना ही भोजन चाहिये।" श्रीनारदने कहा,—"ऐसे ही रहते रहो, तुम बहुत सौभाग्यशाली हो।" इतना कहकर श्रीनारद ऋषि और श्रीपर्वत ऋषि—दोनों अन्तर्धान हो गये॥ 273-275॥

व्याधके उपाख्यानके श्रवणसे साधुसङ्गके माहात्म्यकी उपलब्धि :—

एइ त' कहिलुँ तोमार व्याधेर आख्यान।
या शुनिले हय साधुसङ्ग-प्रभाव-ज्ञान॥ 276॥

अनुवाद—हे सनातन, इस प्रकार मैंने तुम्हें शिकारीकी कथा सुनायी है, जिसे सुननेसे साधुसङ्गके प्रभावका ज्ञान होता है॥ 276॥

यहाँ तक छब्बीस प्रकारके अर्थ :—

एइ आर तिन अर्थ गणनाते पाइल।
एइ दुइ अर्थ मिलि' 'छाब्बिश' अर्थ हैल॥ 277॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 277॥

अनुभाष्य—*'एइ दुइ अर्थ मिलि'*—ये दो अर्थ मिलकर अर्थात् पहले कहे गये तेईस प्रकारके अर्थ (214 संख्याका अनुभाष्य देखें) और अब ये तीन प्रकारके अर्थ, कुल मिलाकर छब्बीस प्रकारके अर्थ हुए॥ 277॥

छब्बीस प्रकारके अर्थोंके अतिरिक्त स्थूलरूपसे दो प्रकारके अर्थोंमें सूक्ष्मतः बत्तीस प्रकारके अर्थ :—

आर अर्थ शुन, याहा—अर्थेर भाण्डार।
स्थूले 'दुइ' अर्थ, सूक्ष्मे 'बत्रिश' प्रकार॥ 278॥

अनुवाद—'आत्माराम' श्लोकका एक अन्य अर्थ सुनो, जो अर्थोंका भण्डार है। जिसमें साधारणरूपसे 'दो' अर्थ दिखलायी देते हैं, किन्तु सूक्ष्मरूपसे विचार करनेपर इसमें 'बत्तीस' प्रकारके अर्थ हैं॥ 278॥

अनुभाष्य—*'स्थूले दुइ'*—प्रायः साधारण रूपमें दो प्रकारके—(1) वैधभक्त और (2) रागभक्त। *'सूक्ष्मे 'बत्रिश' प्रकार'*—सूक्ष्मरूपसे भेदकी गणना करनेपर बत्तीस प्रकारके अर्थ होते हैं। वैधभक्त—सोलह प्रकारके, जैसे,—(1) पारिषद दास, (2) पारिषद सखा, (3) पारिषद पितादि-गुरु, (4) पारिषद कान्ता, (5) साधनसिद्ध दास, (6) साधनसिद्ध सखा, (7) साधनसिद्ध पितादि-गुरु, (8) साधनासिद्ध कान्ता, (9) जातरति साधक दास, (10) जातरति साधक सखा, (11) जातरति साधक पितादि-गुरु, (12) जातरति साधक कान्ता, (13) अजातरति साधक दास, (14) अजातरति साधक सखा, (15) अजातरति साधक पितादि-गुरु, (16) अजातरति साधक कान्ता। रागभक्त भी इस प्रकार सोलह प्रकारके हैं;—कुल बत्तीस प्रकारके आत्माराम भक्त हैं॥ 278॥

आत्मा-शब्दसे श्रीकृष्णके सभी अवतार :—

'आत्मा'-शब्दे कहे,—सर्वविध भगवान्।
एक 'स्वयं भगवान्', आर 'भगवान्'-आख्यान॥ 279॥

अनुवाद—'आत्मा'-शब्दका एक अर्थ सब प्रकारके भगवान् है। इसके अन्तर्गत 'स्वयं भगवान्' और 'भगवान्'के अन्यान्य स्वरूप परिगणित होते हैं॥ 279॥

अनुभाष्य—आत्म-शब्दके द्वारा सब प्रकारके भगवान्को समझा जाता है; 'सर्वविध'-अर्थसे—सब प्रकारके शुद्ध भक्तोंके आराध्य अर्थात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और अन्यान्य श्रीकृष्णस्वरूप भगवान्गणको समझना होगा। 'एक' अर्थात् सर्वविध प्रतीतिमय भगवान्के भी भगवान्—एकमात्र पूर्णतम स्वयं-भगवान् 'श्रीकृष्ण' हैं। ज्ञानियों और योगियोंकी प्राप्य वस्तुकी गणना भगवान्के समान किये जानेपर भी वह सच्चिदानन्द-विग्रह नहीं है, केवल भगवान्की प्रतीति मात्र ही है। यहाँपर एकमात्र स्वयंरूप व्रजेन्द्रनन्दन ही व्रजके रागभक्तिमार्गसे प्राप्त हो सकते हैं, श्रीकृष्णके

अन्यान्य स्वरूप, सभी भगवान्नामके द्वारा कहलाये जानेवाले और उनसे अभिन्न भगवद्-विग्रह होनेपर भी वैधीभक्तिके मार्गसे ही प्राप्य हैं॥ 279॥

स्थूलरूपमें दो प्रकारके भक्त—(1) विधिपूजक, (2) रागयुक्त भक्त :—

ताँते रमे येइ, सेइ सब—'आत्माराम'।
'विधिभक्त', 'रागभक्त',—दुइविध नाम॥ 280॥

अनुवाद—स्वयं-भगवान् अथवा उनके अन्य भगवद्-स्वरूपोंके सेवानन्दको जो अनुभव करते हैं, वे सब 'आत्माराम' हैं। ऐसे आत्माराम 'विधिभक्त' और 'रागभक्त'—इन दो प्रकारके होते हैं॥ 280॥

दोनोंमेंसे प्रत्येकके चार प्रकार—(1) नित्यसिद्ध, (2) साधनसिद्ध, (3) और (4) दो प्रकारके साधक :—

दुइविध भक्त हय चारि चारि प्रकार।
पारिषद, साधनसिद्ध, साधकगण आर॥ 281॥

कुल मिलाकर आठ प्रकारके :—

जात-अजात-रतिभेदे साधक दुइ भेद।
विधि-राग-मार्गे चारि चारि—अष्ट भेद॥ 282॥

अनुवाद—विधिभक्त और रागभक्त आत्माराम—ये दोनों चार-चार प्रकारके होते हैं। पार्षद, साधनसिद्ध, जातरति-साधक और अजातरति-साधक। चार प्रकारके विधिमार्गके भक्त और चार प्रकारके रागमार्गके भक्त—इस प्रकार कुल मिलाकर आठ प्रकारके भेद हैं॥ 281-282॥

वैधीभक्तिमें उक्त चार प्रकारके भक्तोंमेंसे प्रत्येकके चार प्रकारके भेद, कुल मिलाकर सोलह प्रकार :—

विधिभक्तये नित्यसिद्ध पारिषद—'दास'।
'सखा', 'गुरु', 'कान्तागण',—चारिविध प्रकाश॥ 283॥

साधनसिद्ध—दास, सखा, गुरु, कान्तागण।
जातरति साधकभक्त—चारिविध जन॥ 284॥

अजातरति साधकभक्त,—ए चारि प्रकार।
विधिमार्गे भक्ते षोड़श भेद प्रचार॥ 285॥

रागमयी-भक्ति भी वैधी-भक्तिकी भाँति सोलह प्रकारकी; इसलिये आत्माराम बत्तीस प्रकारके :—

रागमार्गे ऐछे भक्ते षोड़श विभेद।
दुइ मार्गे आत्मारामेर बत्रिश विभेद॥ 286॥

अनुवाद—'दास', 'सखा', 'गुरु' और 'कान्तागण'—ये चार प्रकारके विधिभक्तिके नित्यसिद्ध पार्षद हैं। विधिभक्तिके साधनसिद्ध भक्त भी दास, सखा, गुरु और कान्तागण—ये चार प्रकारके हैं। जो जातरति साधक भक्त हैं, वे भी दासादि चार प्रकारके हैं और उसी प्रकार अजातरति साधक भी दासादि चार प्रकारके हैं। इस प्रकार विधिमार्गके कुल सोलह प्रकारके भक्त हैं। इसी प्रकार रागमार्गके भी सोलह प्रकारके भक्त हैं। इन दोनों मार्गोंके कुल बत्तीस प्रकारके आत्माराम हैं॥ 283-286॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पार्षद अर्थात् नित्यसिद्ध, साधनसिद्ध, जातरतिसाधक और अजातरति-साधक—वैध और रागमार्गके भेदसे चार प्रकारके हैं। नित्यसिद्ध पार्षदगण—दास-सखा-गुरु-कान्ताके भेदसे पुनः चार प्रकारके हैं। साधनसिद्ध, जातरति साधक, अजातरति साधक, ये सब भी पुनः चार-चार प्रकारके हैं॥ 281-285॥

इनके साथ मुनि, निर्ग्रन्थ, च और अपिका लगना :—

'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च', 'अपि',—चारि शब्देर अर्थ।
याँहा येइ लागे, ताहा करिये समर्थ॥ 287॥

अनुवाद—'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च' और 'अपि'—इन चारों शब्दोंके जो सब अर्थ पहले बतलाये हैं, उनकी उपरोक्त विधि और रागमार्गके बत्तीस प्रकारके आत्मारामोंके साथ जहाँ सङ्गति होती है, वैसे ही मिलाकर अर्थ करने चाहिये॥ 287॥

यहाँ तक अट्ठावन प्रकारके अर्थ :—

बत्रिशे छाब्बिशे मिलि' अष्टपञ्चाश।
आर एक भेद शुन अर्थेर प्रकाश॥ 288॥

अनुवाद—पूर्वकथित छब्बीस अर्थोंके साथ इन

बत्तीस अर्थोंको मिलाकर कुल अट्ठावन अर्थ हो गये। अब एक ओर प्रकारका अर्थ श्रवण करो॥ 288॥

अनुभाष्य—भक्तोंकी श्रेणीमें बत्तीस प्रकार (278 संख्याका अनुभाष्य देखें) एवं ज्ञानियों और योगियोंकी श्रेणीमें छब्बीस प्रकार (276 संख्याका अनुभाष्य देखें)—कुल मिलाकर अट्ठावन प्रकारके हुए॥ 288॥

च-शब्दके द्वारा अर्थ :—

इतरेतर 'च' दिया समास करिये।
'आटान्न'वार आत्माराम नाम लइये॥ 289॥

'आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च' **आटान्नबार।**
शेषे सब लोप करि' राखि एकबार॥ 290॥

अनुवाद—अट्ठावन अर्थोंमें आत्माराम-शब्दके साथ 'च'-शब्दका समास करनेपर 'आत्मारामाश्च, आत्मारामाश्च' अट्ठावन बार कहे जायेंगे। (पहले जैसे पयार 143में कहा गया है) आखिरीको छोड़कर अन्य सब लोप हो जायेंगे और अन्तमें एक ही रहेगा जो अन्य सबका सूचक होगा॥ 289-290॥

विश्वप्रकाश, पाणिनि और सिद्धान्त-कौमुदी :—

स्वरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ
उक्तार्थानामप्रयोग इति॥ 291॥

अनुवाद—स्वरूपसे एक जैसे और एक विभक्तिमें जिनका अर्थ कहा जाता है, वहाँ एक स्वरूपको रखकर अन्य सब स्वरूपोंका प्रयोग नहीं होता है, जैसे,—'रामश्च, रामश्च, रामश्च',—इनके स्थानपर एक 'रामाः' शब्दका प्रयोग होता है॥ 291॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/145 संख्या देखें॥ 291॥

आटान्नबारे आत्माराम, सब लोप हय।
एक आत्माराम-शब्दे आटान्न अर्थ हय॥ 292॥

अनुवाद—अट्ठावन बारमें अन्य सब आत्माराम लोप हो जायेंगे, केवल एक आत्माराम शब्द ही रह जायेगा, उसके द्वारा ही सभी अट्ठावन प्रकारके आत्मारामोंका अर्थ प्रकाशित होगा॥ 292॥

"स्वरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ-
उक्तार्थानामप्रयोगः॥"293॥
अश्वत्थवृक्षाश्च वटवृक्षाश्च कपित्थवृक्षाश्च।
आम्रवृक्षाश्च वृक्षाः॥ 294॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 293-294॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वरूपसे एक जैसे और एक विभक्तिमें जिनका अर्थ कहा जाता है, वहाँ एक स्वरूपको रखकर अन्य सब स्वरूपोंका प्रयोग नहीं होता है, जैसे,—'रामश्च, रामश्च, रामश्च',—इनके स्थानपर एक 'रामाः' शब्दका प्रयोग होता है। 'वृक्षाः' (बहुवचन) शब्दसे पीपलका वृक्ष, बड़का वृक्ष, बेलका वृक्ष, आमका वृक्ष सभीको कहा गया है; इसलिये यहाँपर वृक्षोंके पृथक् पृथक् नामोंका प्रयोग नहीं किया गया है॥ 293-294॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/145 संख्या देखें॥ 291-293॥

"अस्मिन् वने वृक्षाः फलन्ति" **यैछे हय।**
तैछे सब आत्माराम कृष्णे भक्ति करय॥ 295॥

अनुवाद—"अस्मिन् वने वृक्षाः फलन्ति"—अर्थात् इस वनमें वृक्ष फलते हैं—इस वाक्यमें वृक्षसे सभी प्रकारके वृक्षोंका बोध होता है, उसी प्रकारसे सभी आत्माराम श्रीकृष्णकी भक्ति करते हैं॥ 295॥

'मुनयश्च'-पदको गिनकर उनसठ प्रकारके अर्थ :—

'आत्मारामाश्च' **समुच्चये कहिये च-कार।**
'मुनयश्च' **भक्ति करे,—एइ अर्थ तार॥ 296॥**
'निर्ग्रन्था एव' **हञा, 'अपि'—निर्द्धारणे।**
एइ 'ऊनषष्टि' प्रकार अर्थ करिलुँ व्याख्याने॥ 297॥

अनुवाद—अट्ठावन बार आत्माराम-शब्दका उच्चारण करनेपर च-कारको समुच्चयमें लेनेपर उसमें मुनय-

शब्दका योग करेंगे। इसका अर्थ होगा कि मुनिगण भी श्रीकृष्णका भजन करते हैं। इस प्रकार यह उनसठवाँ अर्थ है। तब निर्ग्रन्थ-शब्द लेकर 'अपि'-शब्दको निर्धारण रूपमें लेनेपर मैंने इन उनसठ प्रकारके अर्थोंकी व्याख्या की है॥ 296-297॥

अनुभाष्य—अट्ठावन प्रकारके आत्माराम और मुनिगण निर्ग्रन्थ होकर श्रीकृष्णकी भक्ति करते हैं,—यही उनसठवाँ अर्थ है॥ 296-297॥

और एक प्रकारका अर्थ :—

सर्वसमुच्चये आर एक अर्थ हय।
'आत्मारामाश्च मुनयश्च निर्ग्रन्थाश्च' **भजय॥ 298॥**
'अपि'-शब्द—अवधारणे, सेइ चारि बार।
चारिशब्द-सङ्गे 'एव' करिबे उच्चार॥ 299॥

अनुवाद—सभी शब्दोंको साथ लेनेपर एक और अर्थ होता है। आत्माराम हो अथवा मुनि हो अथवा निर्ग्रन्थ हो, सभी श्रीकृष्णका भजन करेंगे। 'अपि'-शब्द तब निश्चयके रूपमें प्रयोग होता है, और चार बार चारों शब्दोंके साथ 'एव'का उच्चारण हो सकता है॥ 298-299॥

अनुभाष्य—सर्व समुच्चय अर्थात् आत्माराम, मुनि और निर्ग्रन्थगण, सभी श्रीकृष्णभजन करते हैं। अपि-शब्दका अवधारण अर्थात् निश्चय-अर्थ ग्रहण करके साठ प्रकारके अर्थ हुए हैं॥ 299॥

महाप्रभुपादोक्त-व्याख्या :—

"उरुक्रमे एव भक्तिमेव
अहैतुकीमेव कुर्वन्त्येव॥"300॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 300॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'उरुक्रम', 'भक्ति', 'अहैतुकी' और 'कुर्वन्ति'—इन चार शब्दोंके साथ 'एव' योग करके और एक अर्थ करूँगा॥ 300॥

अमृतानुकणा—'च'-शब्दसे सर्वसमुच्चयमें एक और अर्थ होता है—'आत्मारामश्च मुनयश्च निर्ग्रन्थश्च' अर्थात् आत्मारामगण, मुनिगण और निर्ग्रन्थगण, सभी श्रीकृष्णका भजन करते हैं। उस स्थानपर जो अपि-शब्द है, वह 'एव'-रूपमें अवधारण-अर्थमें (निश्चयके अर्थमें) चार शब्दोंके साथ चार बार प्रयोग होगा, जैसे—(1) 'उरुक्रम एव'—उरुक्रम-श्रीकृष्णकी ही, ब्रह्म, परमात्मा अथवा अन्य भगवत्स्वरूपकी नहीं, (2) 'भक्तिम् एव'—केवल भक्ति ही, कर्म-ज्ञान-योगादि नहीं, (3) 'अहैतुकीम् एव'—अहैतुकी ही, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि स्वसुख- वासनादि किसी हेतु-निमित्त नहीं और (4) 'कुर्वन्ति एव'—परस्मैपदमें 'कुर्वन्ति' प्रयोगके कारण (25 संख्या देखें) श्रीकृष्णप्रीतिके उद्देश्य मात्रसे ही भक्ति करते हैं॥ 298-300॥

यहाँ तक साठ प्रकारके अर्थ :—

एइ त' कहिलुँ श्लोकेर 'षष्ठि' संख्यक अर्थ।
एक अर्थ शुन आर प्रमाणे समर्थ॥ 301॥

सबसे अन्तमें और एक प्रकारका अर्थ—
आत्मा-शब्दसे 'क्षेत्रज्ञा-शक्ति' :—

'आत्मा'-शब्दे कहे—'क्षेत्रज्ञ-जीव'-लक्षण।
ब्रह्मादि कीटपर्यन्त—ताँर शक्तिते गणन॥ 302॥

अनुवाद—अब तक मैंने श्लोकके 'साठ' अर्थ बतलाये हैं। अब एक और अर्थ सुनो जिसका बड़ा प्रबल प्रमाण है। 'आत्मा'-शब्दका एक अर्थ है—'क्षेत्रज्ञ जीव'। ब्रह्मासे लेकर क्षुद्र कीट तक जितने भी जीव हैं—उन सबकी गणना श्रीकृष्णकी जीव-शक्तिमें होती है॥ 301-302॥

विष्णुपुराण (6/7/61)में—

विष्णुशक्तिः पराः प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या-कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥ 303॥

अनुवाद—विष्णुशक्ति—परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या नामक, तीन प्रकारकी है। विष्णुकी पराशक्ति ही 'चित्-शक्ति' है, क्षेत्रज्ञा-शक्ति ही जीवशक्ति है (जिसको मायारूपा 'अविद्या' से 'अपरा' अर्थात् भिन्ना कहा गया

है) और कर्म नामक अविद्या-शक्तिका नाम 'माया' है॥ 303॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/119 संख्या देखें॥ 303॥

क्षेत्रज्ञका पर्यायवाची शब्द :—
अमरकोषके स्वर्गवर्ग (7)में—

"क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः
प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्॥"304॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 304॥

अमृतप्रवाह भाष्य—क्षेत्रज्ञ शब्दसे—आत्मा, पुरुष, प्रधान और प्रकृतिको समझना है॥ 304॥

साधुसङ्गके फलसे श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति :—

भ्रमिते भ्रमिते यदि साधुसङ्ग पाय।
सब त्यजि' तबे तिँहो कृष्णेरे भजय॥ 305॥

षाटि अर्थ कहिलुँ, सब—कृष्णेर भजने।
सेइ अर्थ हय, एइ सब उदाहरणे॥ 306॥

अनुवाद—सभी जीव संसारमें अनेक योनियोंमें और लोकोंमें भ्रमण कर रहे हैं, ऐसे भ्रमण करते-करते जब वे साधुसङ्ग प्राप्त करते हैं, तब वे सब कुछ त्याग करके श्रीकृष्णका भजन करते हैं। मैंने जो साठ अर्थ बतलाये हैं, वे सभी श्रीकृष्णभजनको लक्ष्य करते हैं। इन समस्त उदाहरणोंका यही अर्थ है॥ 305-306॥

कुल मिलाकर यहाँ तक इकसठ
प्रकारके अर्थोंकी व्याख्या :—

'एकषष्टि' अर्थ एबे स्फुरिल तोमा-सङ्गे।
तोमार भक्तिवशे उठे अर्थेर तरङ्गे॥"307॥

अनुवाद—मुझमें तुम्हारे सङ्गसे 'इकसठ' अर्थोंकी स्फूर्ति हुई है। तुम्हारी भक्तिके प्रभावसे इन अर्थोंकी तरङ्गें उठ रही हैं॥"307॥

अनुभाष्य—आत्मा शब्दका 'जीव' अर्थ करनेपर ब्रह्मासे आरम्भ करके कीट तक सभी जीवशक्ति हैं, वे क्षेत्रज्ञ जीवगण निर्ग्रन्थ मुनि होकर श्रीकृष्णभजन करते हैं—यही इकसठवाँ अर्थ है॥ 307॥

इकसठ प्रकारके अर्थोंके श्रवणसे श्रीसनातनका
विस्मय और महाप्रभुकी स्तुति :—

अर्थ शुनि' सनातन विस्मित हञा।
स्तुति करे महाप्रभुर चरणे धरिया॥ 308॥

पुरुषरूपमें महाप्रभुके निश्वास छोड़नेके
साथ ही वेदोंका प्रकाश :—

"साक्षात् ईश्वर तुमि व्रजेन्द्रनन्दन।
तोमार निश्वासे सर्ववेद-प्रवर्त्तन॥ 309॥

शेषादि विष्णुरूपमें महाप्रभुके द्वारा ही भागवतकी व्याख्या
और उसके विषयमें अभिज्ञता :—

तुमि वक्ता भागवतेर, तुमि जान अर्थ।
तोमा बिना अन्य जानिते नाहिक समर्थ॥"310॥

अनुवाद—महाप्रभुके श्रीमुखसे आत्माराम-श्लोकके इकसठ प्रकारके अर्थ सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी विस्मित हो गये और वे महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर उनकी स्तुति करने लगे,—"आप साक्षात् भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन हैं, आपके निश्वाससे ही सभी वेद प्रकाशित हुए हैं। आप ही भागवतके वक्ता हैं और आप ही उसके समस्त अर्थोंको जानते हैं। आपके अतिरिक्त भागवतके अर्थोंको जाननेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥"308-310॥

महाप्रभुके द्वारा भागवत-माहात्म्य कहना :—

प्रभु कहे,—"केने कर आमार स्तवन।
भागवतेर स्वरूप केने ना कर विचारण?॥ 311॥

कृष्ण-तुल्य भागवत—विभु, सर्वाश्रय।
प्रति-श्लोके प्रति-अक्षरे नाना अर्थ कय॥ 312॥

पूर्वकालमें श्रीपरीक्षित और श्रीशुकदेव और
उसके बाद शौनकादि और श्रीसूतके
प्रश्नोत्तरमें श्रीभागवत-प्रकाशित :—

प्रश्नोत्तरे भागवते करियाछे निर्द्धार।
याँहार श्रवणे लोके लागे चमत्कार॥ 313॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे सनातन! तुम मेरी स्तुति क्यों कर रहे हो? तुम भागवतके स्वरूपका विचार क्यों नहीं करते? भागवत श्रीकृष्णके ही समान विभु और सबका आश्रय है। भागवतके प्रति श्लोकमें और प्रति अक्षरमें अनेक अर्थ छिपे हैं। प्रश्नोत्तरके द्वारा भागवतमें समस्त सिद्धान्त स्थापित हुए हैं। इन प्रश्नोत्तरोंको सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं॥ 311–313॥

प्राचीनकृत श्लोकमें श्रीशिवके वचन :—

अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा।
भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया॥ 314॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 314॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महादेवने कहा,—मैं भागवत जानता हूँ, शुक भागवत जानते हैं, व्यास जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं। भक्तिके द्वारा ही भागवत ग्रहण की जा सकती है, बुद्धि अथवा टीकाके द्वारा कभी भी ग्रहण नहीं की जा सकती॥ 314॥

अनुभाष्य—

अहं (शिवः) [भागवतं शास्त्रं] वेद्मि (जानामि), शुकः (वैयासकिः) वेत्ति (जानाति), व्यासः वेत्ति वा न वेत्ति (इति सन्देहः); भागवतं (पारमहंसी-संहिताख्यं शास्त्रं) भक्त्या (विष्णोः कीर्त्तन-श्रवण-धारा-पारम्पर्येण, विष्णौ शरणागत्यात्मक-हरिसेवनेन एव) ग्राह्यं, बुद्ध्या न, टीकया न च (न तु तर्केणेत्यर्थः—"यस्य देवे परा भक्तिः" इति, "नायमात्मा प्रवचनेन" इति, "तद्विधि प्रणिपातेन" इत्यादि-श्रुतिस्मृतिवचनेभ्यश्च)।

श्लोक-भावानुवाद—मैं, शिव, भागवत शास्त्रको जानता हूँ, शुक इसे जानते हैं, व्यास जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं (इसमें सन्देह है)। पारमहंसी-संहिता शास्त्र भागवत विष्णुकी कीर्तन-श्रवण-धारा परम्परामें स्थित होकर विष्णुके शरणागत होकर उनकी सेवारूपी भक्तिके द्वारा ही ग्रहण की जा सकती है, बुद्धि अथवा टीकाके द्वारा कभी भी ग्रहण नहीं की जा सकती। (यह तर्कके द्वारा नहीं ग्रहण की जा सकती, किन्तु श्रुति-स्मृति वचनों *"यस्य देवे परा भक्तिः"*, *"नायमात्मा प्रवचनेन"*, *"तद्विधि प्रणिपातेन"* आदिके द्वारा ही ग्रहण की जा सकती है।)॥ 314॥

श्रीकृष्णके अप्रकट होनेपर भागवत ही ग्रन्थरूपी श्रीकृष्णका विग्रह :—

श्रीमद्भागवत (1/1/23)—

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः॥ 315॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 315॥

अमृतप्रवाह भाष्य—[हे सूत!] योगेश्वर ब्रह्मण्यदेव, धर्मकी रक्षाके लिये कवचस्वरूप श्रीकृष्णके अपने नित्यधामको प्राप्त करनेपर धर्म इस समय किसके शरणागत हुआ है, यह बतलाओ॥ 315॥

अनुभाष्य—नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने महाभागवत श्रीसूत गोस्वामीसे जिन छः प्रश्नोंके उत्तरकी जिज्ञासा की थी, उनमेंसे यही सबसे श्रेष्ठ छठा प्रश्न है और अगले श्लोकमें श्रीसूतने इसका ही उत्तर प्रदान किया है,—

[हे सूत,] योगेश्वरे (योगिनः एव योगाः तेषाम् ईश्वरे षड्ऐश्वर्यपूर्णे) ब्रह्मण्ये (ब्राह्मण-रक्षके) धर्मवर्मणि (सनातन-धर्मस्य वर्मणि कवचवद्-गोप्तरि) कृष्णे स्वां काष्ठां (दिशं स्वरूपं, निजनित्यधाम, अप्रकटलीलामित्यर्थः) उपेते (प्राप्ते सति), धर्मः (सनातनः) अधुना कं शरणम् (आश्रयं) गतः (प्राप्तः,—कमाश्रित्य सनातनो धर्मः तिष्ठति, तत्) ब्रूहि (कथय)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 315॥

श्रीमद्भागवत (1/3/43)में—

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।
कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः॥ 316॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 316॥

अमृतप्रवाह भाष्य—धर्म-ज्ञानादिके साथ श्रीकृष्णके स्वधाम जानेपर इस कलिकालमें अज्ञानके अन्धकारसे अन्धे हो रहे लोगोंके हितके लिये यही पुराणरूपी सूर्य अब उदित हुए हैं॥ 316॥

अनुभाष्य—

[यद् युष्माभिः पृष्टं—'धर्मः कं शरणं गतः?' इति, तदिदमेव बुध्यस्वेत्याह—] धर्मज्ञानादिभिः (षड्भिः ऐश्वर्यैः) सह कृष्णे स्वधाम उपगते (प्रकटलीलां समाप्य अप्रकट-लीलां प्राप्ते सति) अधुना (सम्प्रति) कलौ (कलियुगे) नष्टदृशां (सद्धर्म-विष्णुभक्तितत्त्वज्ञानरहितानां हिताय) एषः पुराणार्कः (सूर्य इव उद्धर्मशार्वरहरः श्रीमद्भागवत-ग्रन्थः) उदितः (आविर्भूतः, प्रकटितः इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 316॥

श्रीचैतन्यका अनुसरण करते हुए शुद्ध चिद्धर्मके स्फुरित होनेसे अप्राकृत श्रीकृष्ण-सेवोन्मत्तके लिये ही भागवतके अर्थको जाननेमें योग्यताका निर्देश :—

एइ मत कहिलुँ एक श्लोकेर व्याख्यान।
वातुलेर प्रलाप करि' के करे प्रमाण?॥ 317॥

आमा-हेन येबा केह 'वातुल' हय।
एइ दृष्टे भागवतेर अर्थ जानय॥"318॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने भागवतके केवल एक श्लोककी ही व्याख्या की है। किन्तु पागलका प्रलाप समझकर कौन इसे प्रमाण मानेगा? मेरे जैसा यदि कोई 'पागल' हो, तभी वह इस दृष्टिकोणसे भागवतके अर्थोंको जान सकता है॥"317-318॥

महाप्रभुसे श्रीसनातनके द्वारा 'वैष्णव-स्मृति'के सम्बन्धमें दीनतापूर्वक जिज्ञासा और श्रीमुखसे उपदेशको श्रवण करनेकी इच्छा :—

पुनः सनातन कहे युड़ि' दुइ करे।
"प्रभु, आज्ञा दिला 'वैष्णवस्मृति' करिबारे॥ 319॥

मुञि—नीच-जाति, किछु ना जानि विचार।
मो-हैते कैछे हय स्मृति-परचार॥ 320॥

अनुवाद—दोनों हाथ जोड़कर श्रीसनातन गोस्वामीने तब महाप्रभुसे कहा,—"हे प्रभो! मुझे आपने 'वैष्णवस्मृति'की रचना करनेके लिये आज्ञा दी थी। मैं नीच-जातिका हूँ और वैष्णवाचारके विषयमें कुछ भी नहीं जानता हूँ। तब मैं कैसे वैष्णवाचारके नियमोंके ग्रन्थको लिख सकता हूँ?॥ 319-320॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'नीचजाति'*—श्रीसनातनने कहा, 'मैं म्लेच्छोंके संसर्गसे पतित ब्राह्मणजाति हूँ॥'320॥

अनुभाष्य—*'वैष्णवस्मृति'*—वैष्णवोंके लौकिक आचार-विषयक व्यवहार-शास्त्र 'श्रीहरिभक्तिविलास'-ग्रन्थ। जाति तीन प्रकारकी हैं—शौक्र (जन्मके अनुसार), सावित्र (उपनयन संस्कारके अनुसार) और दैक्ष (दीक्षाके अनुसार)। यद्यपि श्रीसनातन पवित्र कर्णाट ब्राह्मणकुलमें आविर्भूत हुए थे, तथापि लौकिक दृष्टिसे म्लेच्छोंकी दास्यवृत्ति नीचजातिके होनेका सङ्केतमात्र है। वर्तमानकालमें केवल मातृ-गर्भसे जन्म ही 'जाति'का परिचय है, वास्तवमें यह अनभिज्ञताका ही परिचायक मात्र है॥ 319-320॥

सूत्र करि' दिशा यदि करह उपदेश।
आपने करह यदि हृदये प्रवेश॥ 321॥

तबे तार दिशा स्फुरे मो-नीचेर हृदये।
ईश्वर तुमि,—ये कराह, सेइ सिद्ध हये॥"322॥

अनुवाद—आप कृपा करके सूत्ररूपमें वैष्णवस्मृतिकी प्रणालीका उपदेश प्रदान करें। आप स्वयं मेरे हृदयमें प्रवेश करें। आपके हृदयमें आनेपर और निर्देश प्रदान करनेपर मुझ नीचके हृदयमें इस ग्रन्थकी स्फूर्ति हो सकती है। आप ईश्वर हैं, आप जैसा करायेंगे, वही होगा॥"321-322॥

अनुभाष्य—*'दिशा'*—प्रणाली॥ 322॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसनातनको वरदान :—

प्रभु कहे,—"ये करिते करिबा तुमि मन।
कृष्ण सेइ सेइ तोमा कराबे स्फुरण॥ 323॥

महाप्रभुके द्वारा वैष्णव-स्मृतिका सूत्र-वर्णन और 'हरिभक्तिविलास'की नींवकी संस्थापना :—

तथापि एइ सूत्रेर शुन दिग्दरशन।
सकारण लिखि आदौ गुरु-आश्रयण॥ 324॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"तुम जो कुछ भी करनेकी इच्छा करोगे, श्रीकृष्ण वही-वही तुम्हारे हृदयमें स्फुरित करा देंगे। तथापि वैष्णवस्मृतिके सूत्रोंका दिग्दर्शन सुनो। सर्वप्रथम तुम गुरुपदाश्रय करनेके महत्वको उसके कारणसहित लिखना॥ 323-324॥

अनुभाष्य—पाठान्तरमें, *'सर्वकारण'*,—सभीके कारणस्वरूप। *'गुरु-आश्रयण'*—आदिलीला 1/35-46 संख्या देखें।

श्रीहरिभक्तिविलासके प्रथम-विलासमें—

"आदौ सकारणं लेख्यं श्रीगुर्वाश्रयणं ततः।
गुरुशिष्यपरीक्षादिर्भगवान् मनवोऽस्य च॥
मन्त्राधिकारी सिद्ध्यादिशोधनं मन्त्रसंस्क्रिया।
दीक्षा नित्यं ब्राह्मकाले शुभोत्थानं पवित्रता॥
प्रातःस्मृत्यादि कृष्णस्य वाद्याद्यैश्च प्रबोधनम्।
निर्माल्योत्तारणाद्यादौ मङ्गलारात्रिकं ततः॥
मैत्रादिकृत्यं शौचाचमनं दन्तस्य धावनम्।
स्नानं तान्त्रिक-सन्ध्यादि देवसद्मादि-संस्क्रिया॥
तुलस्याद्याहृतिर्गेहस्नान-मुष्णोदकादिकम्।
वस्त्रं पीठं चौर्द्धपुण्ड्रं
चक्रादिमुद्रा माला च गृहसन्ध्यार्चनं गुरोः।
माहात्म्यञ्चाथ कृष्णस्य द्वारवेश्मान्तरार्चनम्॥
पूजार्थासनमर्घ्यादिस्थापनं विघ्नवारणम्।
श्रीगुर्वादिनतिर्भूतशुद्धिः प्राणविशोधनम्॥
न्यासा मुद्रापञ्चकञ्च कृष्णध्यानान्तरर्च्चने।
पूजापदानि श्रीमूर्त्तिशालग्रामशिलास्तथा॥
द्वारकोद्भवचक्राणि शुद्धयः पीठपूजनम्।
आवाहनादि तन्मुद्रा आसनादिसमर्पणम्॥
स्नपनं शङ्ख-घन्टादिवाद्यं नामसहस्रकम्।
पुराणपाठो वसनमुपवीतं विभूषणम्॥
गन्धः श्रीतुलसीकाष्ठचन्दनं कुसुमानि च।
पत्राणि तुलसी चाङ्गोपाङ्गावरणपूजनम्॥
धूपो दीपश्च नैवेद्यं पानं होमो बलिक्रिया।
अवगण्डुषाद्यास्यवासो दिव्यगन्धादिकं पुनः।
राजोपचारा गीतादि महानीराजनं तथा॥
शङ्खादिवादनं साम्बुशङ्खनीराजनं स्तुतिः।
नतिः प्रदक्षिणा कर्माद्यर्पणं जपयाचने।
आगःक्षमापणं नानागांसि निर्माल्यधारणम्॥
शङ्खाम्बुतीर्थं तुलसीपूजा तन्मृत्तिकादि च।
धात्री स्नान-निषेधस्य कालो वृत्तेरुपार्जनम्॥
मध्याह्ने वैश्व-देवादिश्राद्धं चानर्घ्यमुच्यते।
विनार्च्चामशने दोषास्तथानर्पितभोजने॥
नैवेद्यभक्षणं सन्तः सत्सङ्गोऽसदसङ्गतिः।
असद्गतिर्वैष्णवोपहास-निन्दादि-दुष्फलम्॥
सतां भक्तिर्विष्णुशास्त्रं श्रीमद्भागवतं तथा।
लीलाकथा च भगवद्धर्माः सायं निज-क्रियाः॥
कर्मपातपरीहारस्त्रिकालार्च्चा विशेषतः।
नक्तं कृत्यान्यथो पूजा-फलसिद्ध्यादि-दर्शनम्॥
विष्ण्वर्थदानं विविधोपचारा न्यूनपूरणम्।
शयनं महिमार्च्चायाः श्रीमन्नाम्नस्तथाद्भुतः।
नामापराधा भक्तिश्च प्रेमाथाश्रयणादयः।
पक्षेष्वेकादशी साङ्गा श्रीद्वादश्यष्टकं महत्।
कृत्यानि मार्गशीर्षादि-मासेषु द्वादशस्वपि।
पुरश्चरणकृत्यानि मन्त्रसिद्धस्य लक्षणम्॥
मूर्त्त्याविर्भावनं मूर्त्तिप्रतिष्ठा कृष्णमन्दिरम्।
जीर्णोद्धृतिः श्रीतुलसीविवाहोऽनन्यकर्म च॥"

[अर्थात् श्रीहरिभक्तिविलासमें वर्णित विषयसमूह—सर्वप्रथम कारण-सहित श्रीगुरुका आश्रय-ग्रहण, उसके बाद गुरुके लक्षण, शिष्यके लक्षण, गुरुशिष्य-परीक्षादि, भगवन्मन्त्र-माहात्म्य, मन्त्रके अधिकारी, सिद्धयादि-शोधन, मन्त्रका संस्कार, दीक्षा, नित्य ब्राह्ममुहूर्त्तमें शुभ उठना (अर्थात् कृष्ण-कीर्तनके साथ शय्यासे उठना), नित्य पवित्रता (अर्थात् हाथ-पैर धोना, दन्तधावन और आचमनादिके द्वारा पवित्र होना), श्रीकृष्ण विषयक प्रातः स्मरण-कीर्तन-विज्ञप्तिपाठ-प्रणामादि, वाद्यादिके साथ जगाना (भगवान्को जगाना), निर्माल्यको हटाना, उसके पश्चात् मङ्गलारात्रिक, उसके बाद मल-त्यागादि कार्य, शौच, आचमन, दन्तधावन, तान्त्रिक सन्ध्यादि, देवमन्दिरादिका संस्कार (सफाई), तुलसी आदिका चयन, अपने घरमें स्नान, गर्म जलादिसे स्नान, वस्त्र धारण करना, आसन, ऊर्ध्वपुण्ड्र

गृहसन्ध्या, गुरुपूजा और गुरु-माहात्म्य, उसके बाद श्रीकृष्णकी द्वार और घरमें पूजा, पूजाके लिये आसन, अर्घ्य-पात्र आदिका स्थापन, विघ्न-निराकरण, श्रीगुर्वादि

प्रणाम, भूतशुद्धि, प्राणायाम, न्यास, मुद्रापञ्चक, श्रीकृष्ण ध्यान, उसके बाद अन्तर्याग, पूजाका स्थान, श्रीमूर्ति और शालग्राम-शिलाका लक्षण, द्वारका-उद्भूत चक्रसमूह, श्रीमूर्ति-स्नानादि शुद्धिसमूह, पीठ-पूजा, आवाहन-संस्थापन-निकटमें रहनादि और वैसी-वैसी-मुद्रा, आसनादि समर्पण, स्नान, उस समय शङ्ख-घण्टादि वाद्य, सहस्रनाम, पुराणपाठ, वस्त्र, उपवीत, अलङ्कार, गन्ध, तुलसीकाष्ठ-चन्दन, पुष्प, विल्व-पत्रादि, तुलसी, अङ्ग-उपाङ्ग-आवरणपूजा, धूप, दीप, नैवेद्य, पान, होम, बलिक्रिया (विष्वक्सेनादि भक्तोंको भगवान्का उच्छिष्ट-अंश देना), कुल्लाके लिये जल, लौंग-पानादि मुखवास, पुनः दिव्यगन्ध द्रव्यादि, छत्र-चामरादि राजोपकरण, गीतादि, महा-अर्चन, शङ्खादि वाद्य, शङ्खमें जल भरके अर्चन, स्तुति, प्रणाम, प्रदक्षिणा, कर्मादि-अर्पण, जप, प्रार्थना, अपराधोंके लिये क्षमा याचना, निर्माल्य (प्रसादी माला)-धारण, भगवद्-अर्चनसे बचा शङ्खजल, तीर्थ (चरणामृत), तुलसीके काननमें भगवान् और तुलसीकी पूजा, तुलसी-मृत्तिका-काष्ठादि, आँवलेका माहात्म्य, स्नानका निषेधकाल, जीविका-उपार्जन, मध्याह्नमें वैश्य-देवतादि-श्राद्ध, भगवान्में जो सब द्रव्य अर्पण योग्य नहीं हैं, भगवान्की पूजाके अतिरिक्त भोजनमें और अनिवेदित वस्तुके भोजनमें दोषसमूह, नैवेद्य-भक्षण, भगवद्भक्तगण, साधुसङ्ग, असाधुसङ्ग-वर्जन, असत् व्यक्तियोंकी गति, उपासनादि निजकृत्य, वैष्णवोंके कर्मपातके दोष-निराकरण-सिद्धान्त, विशेषतः तीनों कालोंमें अर्चनका विशेष विधान, रात्रिकृत्य (अर्थात् गीत-वाद्यादि सहित भगवान्के शयनोपचारकी रचना), पूजाके फलकी सिद्धि आदि, पूजा अथवा श्रीमूर्ति-दर्शन, विष्णु प्रीतिके लिये दान, विविध पूजोपचार, द्रव्यके अभावमें पूजाका समाधान, अपने शयनकी विधि, श्रीभगवान्की पूजा और श्रीनामकी महिमा, नामापराधसमूह, भक्तिका माहात्म्य, प्रेम-सम्पत्ति लक्षण, आश्रयण (शरणागति), कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष, दोनोंमें अङ्गों सहित श्रीएकादशी-व्रतोपवास, अष्ट-महाद्वादशी, अग्रहायणादि बारह मासोंके कृत्य, पुरश्चरण-कृत्य, मन्त्रसिद्धिके लक्षण, श्रीभगवान्की मूर्तिका शिल्प आदिके द्वारा सम्पादन, श्रीमूर्ति प्रतिष्ठा, श्रीकृष्णमन्दिर, जीर्णमन्दिरादिका उद्धार, श्रीतुलसी विवाह और ऐकान्तिक भक्तोंके कृत्य।] ॥ 324 ॥

गुरुलक्षण, शिष्यलक्षण, दोँहार परीक्षण।
सेव्य—भगवान्, सर्वमन्त्र-विचारण ॥ 325 ॥

अनुवाद—उस ग्रन्थमें गुरु और शिष्य, दोनोंके लक्षणोंका वर्णन करना। साथ ही गुरु और शिष्यकी एक दूसरेकी परीक्षा लेनेकी आवश्यकता बतलाना। स्वयं-भगवान् सबके सेव्य हैं एवं श्रीकृष्ण और अन्य भगवद्-स्वरूपोंकी उपासनाके मन्त्रोंको उस ग्रन्थमें लिखना ॥ 325 ॥

अनुभाष्य— *'गुरु-लक्षण'*—(पद्मपुराणमें)—

"महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्।
सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः॥
महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः॥"

भाः 7/11/35 श्लोकमें उक्त लक्षणोंके अनुसार ही ब्राह्मणादि 'वर्ण' निर्दिष्ट होते हैं। इस श्लोककी श्रीधरस्वामिपादकी टीका,—

"शमादिभिरेव ब्राह्मणादि-व्यवहारो मुख्यः, न जाति-मात्रादित्याह—यस्येति। यद् यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्यते, तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षणनिमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत्, न तु जातिनिमित्तेनेत्यर्थः।"

महाभारतकी टीकामें नीलकण्ठ कहते हैं,—

"शूद्रोऽपि शमाद्युपेत्य ब्राह्मण एव। ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एव।"

[अर्थात् (*पद्मपुराणमें गुरुलक्षण*)—"महाभागवत श्रेष्ठ ब्राह्मण ही सभी मनुष्योंके गुरु हैं, वे सभी लोगोंमेंसे श्रीहरिके समान ही पूजनीय हैं। महाकुलमें उत्पन्न होनेपर भी, समस्त यज्ञोंमें दीक्षित होनेपर भी और सहस्र शाखाओंका अध्ययन करनेपर भी अवैष्णव होनेपर वे 'गुरु' नहीं कहे जा सकते।" (भाः 7/11/35 श्लोककी श्रीधरस्वामि-कृत टीका)—"शमादि गुणोंके

द्वारा ही ब्राह्मणादि वर्णका निर्णय मुख्य है—केवल जातिके द्वारा नहीं, यही 'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं' श्लोकमें कहा गया है। यदि अन्यत्र अर्थात् अन्य वर्णमें भी शमादि-गुण दिखलायी दें, तब उस अन्य वर्णवालेको उस वर्ण लक्षणके द्वारा ही मानना चाहिये, जाति निमित्तके द्वारा नहीं।" (महाभारतकी टीकामें श्रीनीलकण्ठ)—"शूद्रकुलमें उत्पन्न व्यक्ति शमादि-गुणोंसे भूषित होनेपर वह निश्चय ही 'ब्राह्मण' है और ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न व्यक्ति कामादिसे युक्त होनेपर अवश्य ही 'शूद्र' है।"]

ब्राह्मण कहकर अपना परिचय देनेपर ही अथवा अनभिज्ञ व्यक्तियोंके द्वारा वैसा परिचय दिये जानेपर ही कोई व्यक्ति गुरुपदके योग्य 'ब्राह्मण' कहकर माने जायेंगे, ऐसा नहीं है। श्रीठाकुर नरोत्तम, श्यामानन्द आदि सद्ब्राह्मणोंके गुरु थे और वास्तविक शुद्ध ब्राह्मण थे, इसलिये ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न श्रीगङ्गा-नारायण, रामकृष्णादिने उन्हें गुरुपदके योग्य विशुद्ध 'ब्राह्मण' कहकर निरूपण किया था।

"तापादि-पञ्चसंस्कारी नवेज्या-कर्मकारकः।
अर्थपञ्चकविद् विप्रो महाभागवतः स्मृतः॥"

अर्थात् "महाभागवत कहनेसे 'ताप, पुण्ड्र नाम, मन्त्र और उपासना-युक्त'—पञ्चसंस्कार सम्पन्न, अर्चन, मन्त्रपठन, योग, याग, वन्दन, नाम-सङ्कीर्तन, सेवा, चिह्नोंके द्वारा शरीरपर अङ्कन, वैष्णवाराधन सम्पन्न,—इन नौ इज्या (पूजा) कर्मकारक; और 'उपास्य भगवान्, उनका परमपद, उनके द्रव्य, उनका मन्त्र और जीवात्मा'—इन अर्थपञ्चकज्ञ अर्थात् पाँच-तत्त्वोंके तात्पर्यको जाननेवाले ब्राह्मणको ही समझना चाहिये।" इस प्रकारके महाभागवतोंमें श्रेष्ठता प्राप्त करके जो मनुष्योंमें हरिके समान पूजनीय होते हैं, वे 'गुरु'-पदप्राप्तिके योग्य हैं। दूसरी ओर महान् कुलमें जन्म लेनेवाले, सभी यज्ञोंमें दीक्षित व्यक्ति और वेदोंकी सहस्र-शाखाओंके अध्ययनमें पारङ्गत व्यक्ति भी 'अवैष्णव' होनेपर कभी भी 'गुरु' नहीं हो सकते। जहाँ वैष्णवतासे ब्राह्मणता—'भिन्न' है अर्थात् जहाँ ब्राह्मण वैष्णवोंका आनुगत्य नहीं करते हैं, वहाँ वैसे ब्राह्मणोंमें गुरुयोग्य ब्राह्मणता नहीं है। दूसरी ओर, जहाँ वैष्णवता है, वहाँ लौकिक-दृष्टिसे जन्मके अनुसार अन्य वर्ण दिखलायी देनेपर भी वास्तविक शुद्ध-ब्राह्मणताका अभाव नहीं है। यद्यपि आचार्यके कृत्य अध्यापनादि कार्योंमें ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य वर्णोंकी सम्भावना नहीं है, तथापि जो गुरुपदके योग्य है, उसमें ब्राह्मणता—स्वतःसिद्ध है। वैष्णव-मात्र ही जगत्के गुरु हैं, इसलिये उनका ब्राह्मण-आचार और उनकी ब्राह्मणता सदैव साथ-साथ विद्यमान है। बाहरसे अपना दैन्य दिखलाते हुए अनेक वैष्णवोंने लौकिक-दृष्टिसे ब्राह्मण-आचारको ग्रहण नहीं किया, परन्तु उससे वैष्णवोंमें ब्राह्मणताका कभी भी अभाव नहीं होता।

'शिष्यलक्षण'—(भाः 11/10/6)—

"अमान्यमत्सरदक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक्॥"

[अर्थात् "शिष्य अमानी, मात्सर्य-रहित, आलस्यरहित, स्त्री-पुत्रादिमें ममताहीन, गुरु-वैष्णवोंमें सौहार्दयुक्त, शास्त्र तत्त्वजिज्ञासु, असूया-रहित और वृथावाक्य-शून्य होंगे।"]

जो जागतिक अभिमानके वशीभूत नहीं है, जो काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्यका परित्याग करके अप्राकृत भगवद्-तत्त्वके विचारोंको ग्रहण करनेमें निपुण है, जो प्राकृत वस्तुओंमें 'मैं' और 'मेरे'की बुद्धिसे रहित है और अप्राकृत गुरुपादपद्ममें अविनाशी प्रणयसे युक्त है, जो धैर्यशीलताके द्वारा चञ्चलता-रहित और परमार्थ-जिज्ञासा परायण है, जो गुणोंमें दोष नहीं देखता है एवं अन्याभिलाष-कर्म-ज्ञानादि-सम्बन्धी वृथा बातोंमें प्रमत्त नहीं होकर हरिकथामें स्थिरबुद्धिवाला है, वही 'शिष्य' होनेके योग्य है।

'दोँहार परीक्षण'—जो अप्राकृत वस्तु शिष्यके लिये आवश्यक है, उसको पानेका इच्छुक होकर जब वह गुरुपादपद्मका आश्रय ग्रहण करनेके लिये जाता है, तब वह वस्तु किसी गुरु कहलानेवाले व्यक्तिमें है या नहीं और यदि है, तो किस परिमाणमें है, उसे शिष्यको एक

वर्ष तक देखना उचित है। शिष्यकी अप्राकृत उपलब्धिकी योग्यता कैसी है, उसे गुरु भी विशेषरूपसे देखेंगे, क्योंकि, विषयी शिष्यके सङ्गसे गुरुब्रुवका (जो गुरु अभी साधक है, उसका) गुरुत्व कम होना अवश्यम्भावी है। गुरुब्रुव यदि शिष्यको 'भोग्य' मानकर उससे धनादि प्राप्त करनेके लिये उसके साथ अनित्य लौकिक स्वार्थपरक सम्बन्ध स्थापित करता है, तो वह लौकिक स्मार्तोंकी भाँति परमार्थसे च्युत हो जायेगा। ऐसे गुरु कहलानेवाले व्यक्तिको 'वञ्चक' (ठग) और शिष्योंको 'वञ्चित' (ठगा गया) कहा जाता है। ऐसे गुरुब्रुव परमार्थ-धर्मसे वञ्चित हो जाते हैं। स्वयंको आचार्य, सम्प्रदाय-आश्रित गोस्वामी मतमें स्थित कहकर अभिमान करनेपर भी वे प्राकृत बाउल और सहजिया-दलकी ही एक शाखामें परिणत हो जाते हैं।

'सेव्य-भगवान्'—भगवान् विष्णु ही एकमात्र सेव्य हैं; विष्णुके अतिरिक्त अन्य किसी देवताकी उपासनाकी आवश्यकता नहीं है।

"वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते।
स्वमातरं परित्यज्य श्वपचीं वन्दते हि सः॥"

[अर्थात् "वासुदेवका परित्याग करके जो अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे मानो अपनी माताका त्याग करके चाण्डालिनीकी पूजा करते हैं।"]

"येऽपन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥"

[अर्थात् "हे कौन्तेय! जो सकाम भक्त स्वतन्त्रभावसे अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे अविधिपूर्वक मेरी ही उपासना करते हैं।"]

"यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्-ध्रुवम्॥"

[अर्थात् "जो ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओंके साथ श्रीनारायणको 'समान' रूपमें देखते हैं, वे निश्चय ही 'पाखण्डी' हैं।"]

विशुद्ध-सत्त्वगुणमें अधिष्ठित होनेपर निर्गुण जीव मुक्त होकर भी भगवान्‌की उपासना करता है। सत्त्वगुणमें रजोगुणके मिलनेपर जीव 'सूर्य'की, सत्त्वगुणमें तमोगुणके मिलनेपर 'गणपति'की, रजोगुणमें तमोगुणके मिलनेपर जीव 'मायाशक्ति'की, केवल तमोगुणमें उपासना करनेपर 'शिव'की और रजोगुणके प्रबल होनेपर जीव पाँच-उपास्योंमेंसे सभीका ही भजन करता है। वास्तवमें मायाके गुणोंसे मुक्त होनेपर भगवान् विष्णु ही एकमात्र नित्य सेव्य हैं, यह समझ सकते हैं।

'सर्वमन्त्रविचारण'—द्वादशाक्षर, अष्टदशाक्षर, नारसिंह, राम, गोपालादि मन्त्रोंकी शक्तिके तारतम्यका विचार (श्रीहरिभक्तिविलास प्रथम विलास 121-193 संख्या देखें)॥ 325॥

मन्त्र-अधिकारी, मन्त्र-सिद्ध्यादि-शोधन।
दीक्षा, प्रातःस्मृति-कृत्य, शौच, आचमन॥ 326॥

अनुवाद—मन्त्र ग्रहण करनेके अधिकारके विषयमें, मन्त्रकी सिद्धि, मन्त्रकी शुद्धि, दीक्षा, प्रातःस्मृति-कृत्य, शौच, आचमनादिकी विधिका भी वर्णन करना॥ 326॥

अनुभाष्य—मन्त्र-अधिकारी—

"तान्त्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि।
साधवीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनाञ्च सद्धियाम॥"

पाञ्चरात्रिकी मन्त्र-दीक्षामें साध्वी स्त्री और सद्बुद्धि युक्त पुरुषोंकी भाँति स्त्रियों और शूद्रोंका भी अधिकार है। वैदिकी-दीक्षामें स्वाध्यायमें रत ब्राह्मणका ही अधिकार है और अयोग्य शूद्र अथवा स्त्रियोंका वैदिकी-दीक्षामें अधिकार नहीं है। योग्यता-प्राप्त व्यक्तिका ही भागवत-वैदिक अधिकार है और योग्यता प्राप्त करनेके आकाङ्क्षी व्यक्तिका पाञ्चरात्रिक तान्त्रिक अधिकार है,—दोनों मार्गोंका फल 'एक' ही है।

'सिद्ध्यादि'—

"सिद्ध-साध्य-सुसिद्धारि क्रमाज्ज्ञेया विचक्षणैः।"

(क) सिद्ध, (ख) साध्य, (ग) सुसिद्ध, (घ) अरि—

(1) सिद्ध-सिद्ध, (2) सिद्ध-साध्य, (3) सिद्ध-सुसिद्ध, (4) सिद्ध अरि; (5) साध्य-सिद्ध, (6) साध्य-साध्य, (7) साध्य-सुसिद्ध, (8) साध्य-अरि; (9) सुसिद्ध-सिद्ध, (10) सुसिद्ध-साध्य, (11) सुसिद्ध-सुसिद्ध, (12) सुसिद्ध-अरि; (13) अरिसिद्ध, (14) अरि-साध्य, (15) अरि-सुसिद्ध, (16) अरि-अरि।

अष्टादशाक्षर मन्त्रमें सिद्धयादि प्राकृत-विचार नहीं है। (त्रैलोक्यसन्मोहनतन्त्रमें श्रीशिववाक्य)—

"न चात्र शात्रवा दोषा नर्णस्वादिविचारणा।
ऋक्षराशिविचारो वा न कर्त्तव्यो मनौ प्रिये॥

(वृहद्गौतमीय तन्त्र)—

नात्र चिन्त्योऽरिशुद्ध्यादिर्नारिमित्रादिलक्षणम्।
सिद्ध-साध्यसुसिद्धारिरूपा नात्र विचारणा॥"

[अर्थात् "प्रिये! अष्टादशाक्षर गोपाल-मन्त्रमें सिद्धादि-शोधन-वर्णित शत्रुजनित सब दोष नहीं हैं। ऋण-धन-विचारकी भी आवश्यकता नहीं है, नक्षत्र-राशिका भी विचार करना कर्त्तव्य नहीं है।"

"श्रीकृष्ण मन्त्रमें शत्रुशुद्धि आदिकी चिन्ता नहीं है, शत्रु-मित्रादि लक्षणोंको देखनेकी भी आवश्यकता नहीं है—इसमें सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और शत्रु-विचार आवश्यक नहीं है।"]

'शोधन'—

"जननं जीवनश्चेति ताड़नं रोधनं तथा।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः॥
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।
xx बलित्वात् कृष्णमन्त्राणां संस्कारापेक्षणं न हि।"

[अर्थात् "जनन, जीवन, ताड़न, रोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गोपन—ये दस प्रकारके मन्त्र संस्कार हैं। xx श्रीकृष्णमन्त्र समूह बलवान् होनेके कारण उक्त दस प्रकारके संस्कारोंकी अपेक्षा नहीं रखते।"]

'दीक्षा'—मध्यलीला 15/108 संख्या देखें। पाञ्चरात्रिकी दीक्षामें दीक्षित व्यक्ति 'ब्राह्मणता' प्राप्त करता है',—

"यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥"

'दीक्षाकाल'—(तत्त्वसागरमें)

"दुर्ल्लभे सद्गुरुणाञ्च सकृत्सङ्ग उपस्थिते।
तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान्॥
ग्रामे वा यदि वारण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि।
आगच्छति गुरुर्दैवाद् यथा दीक्षा तदाज्ञया॥
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः।
न तीर्थं न व्रतं होमो न स्नानं न जपक्रिया।
दीक्षायाः करणं किन्तु स्वेच्छाप्राप्ते तु सद्गुरौ॥"

[अर्थात् "एक विशेष विधिसे रसके द्वारा जैसे कांसा-धातु सोना बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षा-विधिके द्वारा मनुष्यमें द्विजत्व उत्पन्न होता है।"

"सद्गुरुका दुर्लभ सङ्ग एकबार मात्र उपस्थित होनेसे, जब भी उनकी आज्ञा प्राप्त होती है, वही दीक्षाका शुभ काल है। गाँवमें, वनमें, क्षेत्रमें, दिनमें अथवा रात्रिमें गुरुदेव जब दैवात् आगमन करें, तभी उनकी आज्ञासे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जब गुरुकी इच्छा होगी, तभी उनकी आज्ञानुसार दीक्षा हो सकती है। सद्गुरुके स्वयं इच्छा करनेपर ही, किन्तु तीर्थ, व्रत, होम, स्नान, जपक्रिया कुछ भी दीक्षाका कारण नहीं होते।"]

'प्रातःस्मृति'—

'ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्थाय कृष्ण कृष्णेति कीर्त्तयन्। xx स्तुत्वा च कीर्त्तयन् कृष्णं स्मरंश्चैतदुदीरयेत्॥' "जयति जननिवासः" इत्यादि (भाः 10/90/48)। 'स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥' "उद्गायतीनामरविन्दलोचनम्" इत्यादि (भाः 10/46/46)। "स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्। सर्वे विधि-निषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥"—(पाद्मे बृहत्सहस्रनामस्तोत्रे)।

[अर्थात् "ब्रह्ममुहूर्त्तमें 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम कीर्तन करते-करते शय्यासे उठना चाहिये। xx गुरुपादपद्मका ध्यान और स्तव करते हुए श्रीकृष्णकीर्तन और स्मरण करते हुए यह श्लोक पाठ करना—'जयति जननिवासः' (भाः 10/90/48) इत्यादि। 'जिन्हें स्मरण करनेसे सब प्रकारके कल्याणका पात्र बना जा सकता है, उन अजन्मा सनातन पुरुष श्रीहरिकी शरण ग्रहण करता

हूँ।' श्रीविष्णुको सदा ही स्मरण करना चाहिये—कभी भी उन्हें भूलना नहीं चाहिये, समस्त 'विधि' और 'निषेध' इन दोनों बातोंके अनुगत हैं।"]

'प्रातःकृत्य'—मैत्रादिकृत्य,—

"ततः कल्ये समुत्थाय कुर्यान्मैत्रं नरेश्वर। xx दुरादावसथान्मूत्रं पुरीषञ्च समुत्सृजेत्॥"

[अर्थात् "इसके बाद हे राजन्! ऊषाकालमें उठकर घरसे दूर जाकर मल-मूत्र परित्याग करना।"]

'शौच'—

"गुह्ये दद्यान्मृदं चैकां पायो पञ्चाम्बु सान्तराः। दश वामकरे चापि सप्तपाणिद्वये मृदः॥ एकैकां पदयोर्दद्यात् तिस्रः पाण्योर्मृदः स्मृताः। इत्थं शौचं गृही कुर्याद्-गन्ध-लेपक्षयावधि॥"

[अर्थात् "शिश्नमें एक बार, मलद्वारमें पाँच बार, बायें हाथमें दस बार, दोनों हाथोंमें सात बार, दोनों पैरोंमें एक बार और पुनः दोनों हाथोंमें तीन बार, इस प्रकार बीच-बीचमें जलके साथमें मिट्टी लगानी चाहिये। जब तक गन्ध सम्पूर्ण रूपमें दूर नहीं हो, तब तक गृहस्थ व्यक्ति इस प्रकार शौच करेंगे। (गृहस्थकी अपेक्षा ब्रह्मचारी दो गुणा, वानप्रस्थ तीन गुणा और भिक्षु (संन्यासी) चार गुणा शौचका आचरण करेंगे।"]

'आचमन'—

"अच्छेनागन्धफेनेन जलेनाबुद्बुदेन च। आचामेत मृदं भूयस्तथा दद्यात् समाहितः॥ निष्पादिताङ्घ्रिशौचस्तु पादावभ्युक्ष्य वै पुनः। त्रि पिबेत् सलिलं तेन तथा द्विः परिमार्ज्जयेत्॥"

[अर्थात् "स्वच्छ, गन्धरहित, फेनहीन, बुलबुलेसे रहित जलके द्वारा आचमन करना होगा। पुनः सावधानीसे चरणोंमें मिट्टी लगानी होगी। पाद-शौच समाप्त करके पुनः दोनों पैरोंका प्रक्षालन करके तीन बार जलपान (आचमन) करना होगा और इसी जलके द्वारा ही दो बार मुख धोना होगा।"]॥ 326॥

दन्तधावन, स्नान, सन्ध्यादि-वन्दन।
गुरुसेवा, ऊर्ध्वपुण्ड्र

अनुवाद—दन्तधावन, स्नान, सन्ध्यादि-वन्दन, गुरुसेवा, ऊर्ध्वपुण्ड्र 327॥

अनुभाष्य—

'दन्तधावन'—

"अथो मुखविशुध्यर्थं गृह्णीयात् दन्तधावनम्। आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम्॥ दन्तकाष्ठमखादित्वा यस्तु मामुपसर्पति। सर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति॥"

[अर्थात् "इसके बाद मुख शोधनके लिये दातुन करना, क्योंकि दातुन नहीं करनेपर आचमन करनेसे भी मनुष्य अशुद्ध ही रहता है। दातुनको नहीं चबाकर जो व्यक्ति मेरी आराधना करता है, वह इसी एक कर्मके द्वारा ही अपने द्वारा सब समय किये गये कर्मोंको ध्वंस कर लेता है।"]

'स्नान'—

"प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः। यतेस्त्रिसवनं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः॥ सर्वे चापि सकृत् कुर्युरशक्तौ चोदकं बिना॥"

[अर्थात् "वानप्रस्थ और गृहस्थके लिये प्रातःकाल और दोपहरमें स्नान, संन्यासीके लिये तीनों संन्ध्याओंमें और ब्रह्मचारीके लिये केवल एकबार मात्र स्नान करना कर्त्तव्य है। असमर्थ होनेपर सभीके लिये एकबार मात्र स्नान करना चाहिये और उसमें भी असमर्थ होनेपर जलके बिना मन्त्र-स्नान आदि करणीय है।"]

'सन्ध्यावन्दन'—सन्ध्या दो प्रकारकी है—वैदिकी और तान्त्रिकी। *'वैदिकी सन्ध्या'*—

"ध्यात्वार्कमण्डलगतां सावित्रीं तां जपेद्बुधः। प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत्॥ विहाय सन्ध्या-प्रणतिं स याति नरकायुतम्॥"

[अर्थात् "पण्डित व्यक्ति सूर्यमण्डलवर्त्तिनी गायत्रीका ध्यान करके उसका जप करेंगे। ब्राह्मण सदैव पूर्वमें मुख करके सन्ध्या उपासना करेंगे। सन्ध्या वन्दना नहीं करनेपर वे दस हजार नरकोंमें जायेंगे।"]

"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव

चक्षुराततम्" इत्याचमनम्। प्रोक्षणानन्तरं सन्धामुपासयेत्। गायत्रीं दशधा जप्त्वा आपोमार्ज्जनम्—"ॐ शन्न आपो धन्वन्याः शमनः सन्तु नूप्याः शन्नः समुद्रिया आपः शमनः सन्तु कूप्याः। ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुद्धन्तु मैनसः। ॐ आपो हिष्ठामयो भुवस्ता न उर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरङ्गामाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः। ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजयात। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तररीक्षमथो स्वः।"

'तान्त्रिकी सन्ध्या'—

"मूलमन्त्रमथोच्चार्य ध्यायन् कृष्णाङ्घ्रिपङ्कजे। श्रीकृष्णं तर्पयामीति त्रिः सम्यक् तर्पयेत् कृती॥ ध्यानोद्दिष्टस्वरूपाय सूर्यमण्डलवर्त्तिने। कृष्णाय कामगायत्र्या दद्यादर्घ्यमनन्तरम्॥"

[अर्थात् "इसके बाद सन्ध्या करनेवाले व्यक्ति मूलमन्त्रका उच्चारण करके श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करके 'श्रीकृष्णको अर्पित कर रहा हूँ'—यह कहकर तीन बार सम्पूर्णरूपसे तर्पण करेंगे। उसके बाद ध्यानमें जो स्वरूप उद्दिष्ट हुआ है, सूर्यमण्डलस्थ उन श्रीकृष्णको कामगायत्री उच्चारण करते हुए अर्घ्य प्रदान करेंगे।"]

'गुरुसेवा'—

"प्रथमन्तु गुरुं पूज्य ततश्चैव ममार्च्चनम्। कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्॥ गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यमग्रतः। स दुर्गतिमवाप्नोति पूजनं तस्य निष्फलम्॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च। तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा॥ गुरुशुश्रूषणं नाम सर्वधर्मोत्तमोत्तमम्। तस्माद्धर्मात् परो धर्मः पवित्रं नैव विद्यते॥"

[अर्थात् "सर्वप्रथम गुरुदेवकी पूजा करके उसके बाद मेरी पूजा करनेसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है, अन्यथा वह निष्फल होती है। श्रीगुरुदेव निकटमें रहनेपर जो व्यक्ति उनके आगे किसी अन्यकी पूजा करता है, उसकी दुर्गति होती है और उसकी पूजा भी निष्फल हो जाती है। सर्वभूतात्मा मैं गुरुसेवाके द्वारा जिस प्रकार सन्तुष्ट होता हूँ,—इज्या, प्रजाति, तपस्या और उपशमके द्वारा भी तथा गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य और संन्यास धर्मके द्वारा भी वैसा सन्तुष्ट नहीं होता। गुरुसेवा ही सबसे श्रेष्ठ उत्तम धर्म है, इस धर्मसे उत्तम अथवा पवित्र धर्म और कोई नहीं है।"]

'ऊर्ध्वपुण्ड्र

"मद्भक्तो धारयेन्नित्यमुर्ध्वपुण्ड्र
मनुष्याणामुर्ध्वपुण्ड्र
भवेत्॥ वैष्णवानां ब्राह्मणानां ऊर्ध्वपुण्ड्रं
नासादिकेशपर्यन्तमुर्ध्वपुण्ड्र
तद्विद्याद्धरिमन्दिरम्॥ मध्ये विष्णुं विजानीयात् तस्मान्मध्यं न लेपयेत्॥

[अर्थात् "मेरे भक्त भयका नाश करनेवाले ऊर्ध्वपुण्ड्र नित्य धारण करेंगे। मनुष्यकी जो देह ऊर्ध्वपुण्ड्र होती है, वह श्मशानके समान होनेके कारण देखनेके योग्य नहीं है। वैष्णवों और ब्राह्मणोंके लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना आवश्यक कर्त्तव्य है। नाकसे लेकर केश तक विस्तृत, अति सुन्दर और बीचमें रिक्त (खाली) ऊर्ध्वपुण्ड्र
श्रीहरि अधिष्ठित रहते हैं, इसलिये उसके बीचमें लेपन नहीं करना चाहिये।"]

मध्यलीला 20/202 संख्या देखें।

'चक्रादि (मुद्रा)-धारण'—

"चक्रञ्च दक्षिणे बाहौ शङ्खं वामेऽपि दक्षिणे। गदां वामे गदाधस्तात् पुनश्चक्रञ्च धारयेत्॥ शङ्खोपरि तथा पद्मं पुनः पद्मञ्च दक्षिणे। खड्गं वक्षसि चापञ्च सशरं शीर्ष्णि धारयेत्॥ इति पञ्चायुधान्यादौ धारयेद्वैष्णवो जनः। श्रीगोपीचन्दनेनैवं चक्रादीनि बुधोऽन्वहम्। धारयेच्छयनादौ तु तप्तानि किल तानि हि॥
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्र
राष्ट्र

[अर्थात् "दायें हाथमें चक्र, बायीं और दाहिनी दोनों भुजाओंमें शङ्ख, बायीं भुजामें गदा और गदाके नीचे पुनः चक्र धारण करेंगे। शङ्खके ऊपर दोनों भुजाओंमें

पद्म, वक्षःस्थलमें खड्ग और मस्तकपर बाण सहित धनुषको धारण करेंगे। इन पाँच प्रकारके आयुधोंको वैष्णवगण सर्वप्रथम धारण करेंगे। पण्डित व्यक्ति प्रतिदिन गोपीचन्दनके द्वारा चिह्न समूहकी रचना करेंगे और शयनद्वादशी और उत्थान द्वादशीमें इन सब मुद्राओंको तप्त करके धारण करेंगे। शङ्ख, चक्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र रहित अधम ब्राह्मणको राजा गधेके ऊपर बिठाकर राज्यसे निकाल देंगे।"] ॥ 327 ॥

गोपीचन्दन-माला-धृति, तुलसी-आहरण।
वस्त्र-पीठ-गृह-संस्कार, कृष्ण-प्रबोधन ॥ 328 ॥

अनुवाद—इसके बाद तुम गोपीचन्दन कैसे लगाया जाता है, माला-धारण, तुलसी-चयन, अपने वस्त्रोंकी, वेदीकी और अपने गृहकी सफाई, घण्टा बजाकर श्रीकृष्णका ध्यान आकर्षित करनेके विषयमें भी लिखना ॥ 328 ॥

अनुभाष्य—

'गोपीचन्दनधारण'—

"यस्यान्तकाले खग गोपीचन्दनं बाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके च। प्रयाति लोकं कमलालयं प्रभोर्गोवालघाती यदि ब्रह्महा भवेत्॥" "दूताः शृणुत यद्भालं गोपीचन्दनलाञ्छितम्। ज्वलादिन्धनवत् सोऽपि त्याज्यो दूरे प्रयत्नतः॥"

[अर्थात् "हे गरुड़! मरनेके समय जिसकी दोनों भुजाओंपर, ललाटपर, वक्षःस्थलपर और सिरपर गोपीचन्दन रहता है, वह गोघाती, शिशुघाती अथवा ब्रह्मघाती होनेपर भी लक्ष्मीके आलय श्रीविष्णुधाममें गमन करता है।"—(गरुड़पुराण)

"हे यमदूतों! मेरे वचन सुनो, जिसका ललाट गोपीचन्दनसे अङ्कित हो, जलते हुए अङ्गारेकी भाँति यत्नपूर्वक उसे दूर ही रहना।"]

'मालाधारण'—

"ततः कृष्णार्पिता माला धारयेत्तुलसीदलैः। पद्माक्षैस्तुलसीकाष्ठैः फलैर्धात्र्याश्च निर्मिताः। धारयेत्तुलसी-काष्ठ-भूषणानि च वैष्णवः॥"

पद्माक्ष-शब्दसे पद्म (कमल)के बीजोंकी माला कही गयी है। अक्ष-शब्दसे भ्रमवशतः कोई हड्डीकी माला अथवा 'रुद्राक्ष'को न समझे।

"धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः। नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः॥" "ये कण्ठलग्नतुलसी-नलिनाक्षमाला ये वा ललाट-पटले लसदूर्ध्वपुण्ड्र बाहुमूल-परिचिह्नित-शङ्खचक्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥"

[अर्थात् "उसके बाद तुलसीपत्र, पद्मबीज (कमलके बीज), तुलसीकी लकड़ी और आँवलेके फलके द्वारा निर्मित माला श्रीकृष्णको अर्पित करके धारण करेंगे। वैष्णवगण तुलसीकी लकड़ीके भूषण धारण करेंगे। जो सब हेतुवाद-परायण पापमति मनुष्य माला धारण नहीं करते, वे हरिकी कोपाग्निसे दग्ध होते हैं और नरकसे लौटकर नहीं आते। जिनके गलेमें तुलसीमाला अथवा पद्मबीज माला है, ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र भुजाओंपर शङ्ख-चक्रादि चिह्न हैं, वे वैष्णवगण शीघ्र ही जगत्को पवित्र किया करते हैं।"]

'तुलसी-आहरण' (तुलसी-चयन)—

"प्रणम्याथ महाविष्णुं प्रार्थ्यानुज्ञान्तु वैष्णवः। समाहरेत् श्रीतुलसीं पुष्पादिश्च तथोदितम्॥ अस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते नरः। सोऽपराधी भवेत् सत्यं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्॥" आहरण-मन्त्र—*"तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया। केशवार्थे विचिनोमि वरदा भव शोभने॥" "इत्युक्त्वा तुलसीं नत्वा छिन्दयात् दक्षिणपाणिना। (चयन-निषेधकाल) न छिन्द्यात् तुलसीं विप्रा द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित्॥"*

[अर्थात् "इसके बाद वैष्णवजन महाविष्णुको प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर श्रीतुलसी और प्रस्फुटित पुष्पादिका चयन करेंगे। जो मनुष्य स्नान नहीं करके तुलसी चयन करके पूजा करते हैं, वे अवश्य ही अपराधी होते हैं और उसका सब कुछ ही निष्फल होता है। *चयन-मन्त्र*—'हे सुन्दरी! हे तुलसी! अमृतसे आपका जन्म हुआ है, आप सदैव श्रीकेशवकी प्रिया हैं; श्रीकेशवकी पूजाके लिये मैं आपका चयन करता हूँ, आप वर प्रदान कीजिये।' इस प्रकार कहकर

तुलसीको प्रणाम करके दायें हाथसे चयन करना चाहिये। हे ब्राह्मण! वैष्णव कभी भी द्वादशीमें तुलसी नहीं तोड़ते।"]

'वस्त्र-संस्कार'—

"तान्तवं मलिनं पूर्वमद्भिः क्षारैश्च शोधयेत्। अंशुभिः शोषयित्वा वा वायुना वा समाहरेत्। ऊर्णपट्टांशुकक्षौमदुकूलाविकचर्मणाम्॥ अल्पाशौचे भवेच्छुद्धिः शोषणप्रोक्षणादिभिः॥ कुसुम्भकुङ्कुमारक्तास्तथा लाक्षारसेन च। प्रक्ष्यालनेन शुध्यन्ति चण्डालस्पर्शने तथा॥"

[अर्थात् "कपासके रेशेसे निर्मित वस्त्रादि जो मैले हो गये हैं, सर्वप्रथम क्षार और जलके द्वारा उन वस्त्रोंको शुद्ध करेंगे, बादमें सूर्यकी किरणों अथवा वायुके द्वारा सुखाकर पहनेंगे। रोमसे बने वस्त्र, पट्टवस्त्र, रेशमी वस्त्र, भेड़के रोमसे बने वस्त्र और चमड़ा—इन सब द्रव्योंकी सामान्य शुद्धि करनेसे अर्थात् थोड़ा अशुद्ध होनेपर सुखाकर अथवा जल छिड़कनेसे शुद्ध हो जाते हैं। कुसुम्भ, कुङ्कुम और लाक्षारसके द्वारा रंगे वस्त्र चण्डालादिके द्वारा छुए जानेपर जलमें धोकर शुद्ध होते हैं।"]

'पीठ-संस्कार'—

"पादपीठश्च कृष्णस्य बिल्वपत्रेण घर्षयेत्। उष्णाम्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥'

[अर्थात् "बेलके पत्तेके द्वारा श्रीकृष्णकी पादपीठका मार्जन करेंगे। गर्म जलके द्वारा धोनेपर सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हुआ जाता है।"]

'गृह-संस्कार'—

"मन्दिरं मार्जयेद्विष्णोर्विधायाचमनादिकम्। कृष्णं पश्यन् कीर्त्तयंश्च दास्येनात्मानमर्पयेत्॥ शुद्धं गोमयमादाय ततो मृत्स्नां जलं तथा। भक्त्या तत्परितो लिम्पेदभ्युक्षेच्च तदङ्गनम्॥" "स वै मनः कृष्ण-पदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने। करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥" "सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्त्तनैः गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया॥"

[अर्थात् "आचमनादि करके विष्णुके मन्दिरको साफ करना चाहिये। बादमें श्रीकृष्णके दर्शन और श्रीनाम कीर्तन करते-करते दास्य भावसे आत्मसमर्पण करेंगे। उसके बाद शुद्ध गोबर, मिट्टी और जल लेकर भक्तिपूर्वक मन्दिरके चारों ओर तथा उसके आँगनमें लेपन और अभ्युक्षण अर्थात् गोबरसे मिले जलके छींटे देंगे। (भाः 9/4/18)—राजर्षि अम्बरीषने श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें मनको, वैकुण्ठगुणोंके वर्णनमें वचनोंको, हरिमन्दिरके मार्जनमें दोनों हाथोंको, भगवान्‌की कथाके श्रवणमें कानोंको लगाया था। (भाः 11/11/39)—अच्छेसे सफाई करना, गोबरके द्वारा लेपन, जलका छिड़काव और सब प्रकारसे सजावटादिके द्वारा सेवककी भाँति निष्कपट होकर मेरे घरकी सेवा करना।"]

'कृष्णप्रबोधन' (श्रीकृष्णके ध्यानको आकर्षित करना)—

"ततो देवालये गत्वा घण्टाद्युद्घोषपूर्वकम्। प्रबोध्य स्तुतिभिः कृष्णं नीराज्य प्रार्थयेदिदम्॥"—"देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव। अवलोकनदानेन भूयो मां पालयाच्युत॥" इति

[अर्थात् "इसके बाद देवालयमें जाकर घण्टादि बजाकर जगानेके लिये उपयोगी स्तुतिके द्वारा श्रीकृष्णको जगाकर अर्चन करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करेंगे,—हे देव! शरणागतजनोंके दुःखोंका नाश करनेवाले! हे केशव! मेरे प्रति कृपा प्रकाशित कीजिये, हे अच्युत! पुनः दर्शनके द्वारा मुझे पवित्र कीजिये।"]॥ 328॥

पञ्च, षोड़श, पञ्चाशत उपचारे अर्चन।
पञ्चकाल पूजारति, कृष्णेर भोजन-शयन॥ 329॥

अनुवाद—ग्रन्थमें पाँच, सोलह और पचास उपचारोंसे अर्चनकी विधि, पाँच कालोंमें पूजा, आरती और अर्चनादि, श्रीकृष्णको भोजन-अर्पण तथा उनके शयनके विषयमें लिखना॥ 329॥

अनुभाष्य—पाठान्तरमें—

"पञ्च, दश, षोड़श, सपर्या चौघन। चौषट्टि षोड़श दश पञ्चोपचारे अर्चन॥"

'पञ्चोपचार'—1) गन्ध, 2) पुष्प, 3) धूप, 4) दीप और 5) नैवेद्य।

'षोड़शोपचार'—1) आसन, 2) स्वागत (कुशलप्रश्न), 3) अर्घ्य, 4) पाद्य, 5) आचमनीय, 6) मधुपर्क, 7) आचमन, 8) स्नान, 9) वस्त्र, 10) अलङ्कार 11) सुगन्ध, 12) सुपुष्प, 13) धूप, 14) दीप, 15) नैवेद्य और 16) वन्दना।

'पञ्चशोपचार'—हरिभक्तिविलासमें पचास उपचारकी बात नहीं है, तो भी चौंसठ उपचारोंमेंसे चौदह छोड़ देनेसे पचास उपचार हो सकते हैं। कौनसे चौदह छोड़ने होंगे, उसका निरूपण करनेका उपाय नहीं है।

'दशोपचार'—1) अर्घ्य, 2) पाद्य, 3) आचमन, 4) मधुपर्क 5) आचमन, 6) गन्ध, 7) पुष्प, 8) धूप, 9) दीप, 10) नैवेद्य।

'चतुःषष्टि उपचार'—'चौघन'का अर्थ चौंसठ होता है। (हः भः विः 11/127-140)— 1) वाद्य-स्तवके द्वारा जगाना, 2) जय-शब्दका उच्चारण, 3) नमस्कार, 4) मङ्गलारात्रिक, 5) आसन, 6) दन्तकाष्ठ, 7) पाद्य, 8) अर्घ्य, 9) आचमन, 10) मधुपर्क सहित आचमन, 11) पादुका-समर्पण, 12) अङ्गमार्जन, 13) तैलाभ्यञ्जन, 14) तैलाद्यपसारण, 15) सुगन्धि-पुष्पजलमें स्नान, 16) दुग्धस्नान, 17) दधिस्नान, 18) घृतस्नान, 19) मधुस्नान, 20) शर्करास्नान, 21) मन्त्रजलसे स्नान, 22) गमछा, 23) वस्त्र और ओढ़नी, 24) यज्ञसूत्र, 25) पुनराचमन, 26) अनुलेपन, 27) अलङ्कार, 28) पुष्प, 29) धूप, 30) दीप, 31) दुष्टदृष्टिनिवारण, 32) नैवेद्य, 33) मुखवास, 34) ताम्बूल, 35) उत्तम शय्या, 36) केश-प्रसाधन, 37) उत्तम वस्त्र, 38) उत्तम मुकुट, 39) उत्तम गन्धलेपन, 40) कौस्तुभादि भूषण, 41) विचित्रदिव्यपुष्प, 42) मङ्गलारात्रिक, 43) दर्पण, 44) उत्तमयानमें मण्डप-यात्रा, 45) सिंहासनपर बैठाना, 46) पुनः वाद्य, 47) पुनः नैवेद्य अर्पण, 48) महा-आरती, 49) चामरव्यजन-छत्र, 50) गीत, 51) वाद्य, 52) नृत्य, 53) प्रदक्षिण, 54) प्रणाम, 55) श्रीचरण-युगलमें स्तुति, 56) चरणमें मस्तक रखना, 57) सिरपर निर्माल्य-धारण, 58) उच्छिष्ट-भक्षण, 59) पाद सम्वाहन हेतु बैठाना, 60) पुष्प-शय्या, 61) हस्तप्रदान, 62) शय्यामें आगमन, 63) पदप्रक्षालन कराके शय्यापर बैठाना, 64) सबसे अन्तमें पलङ्गपर शयन और पाद-सम्वाहनादि।

'पञ्चकाल'—अरुणोदय, प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न, प्रदोष।

'पूजारति'—पूजा और आरती तथा अर्चनादि।

'कृष्णेर भोजन'—(हः भः विः 8म विः 50-51)—

मञ्जुलव्यवहारेण भोजयन्ति हरिं मुदा।" ×× "शालीभक्तं सुभक्तं शिशिर-करसितं पायसं पूपसूपम्। लेह्यं पेयं सुचूष्यं सितममृतफलं घारिकाद्यं सुखाद्यम्। आज्यं प्राज्यं समिज्यं नयनरुचिकरं वाजिकैलामरीचस्वादीयः शाकराजी परिकरममृताहारजोषं जुषस्व॥"

[अर्थात् "भगवद्भक्त सभ्य व्यवहारके द्वारा श्रीहरिको आनन्दपूर्वक भोजन कराते हैं,—हे भगवन्! शालि-धानका अन्न, चन्द्रके समान श्वेतवन अन्न, खीर, मालपूआ, रसेवाली सब्जी, दाल, लेह्य (चाटनेवाले), पेय (पीनेवाले), चूष्य (चूसनेवाले) और शुद्ध अमृतस्वरूप फल, घीमें बनी मिठाईयाँ आदि उत्कृष्ट खानेकी वस्तुएँ, घी, नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले घी-इलाइची-काली मिर्च आदिसे सजाये अति स्वादिष्ट घीसे बने व्यञ्जन और सागादि—इन सब अमृततुल्य वस्तुओंका आस्वादन करके सुख भोग कीजिये।"]

'कृष्णेर शयन'—(हः भः विः 11 विः)—

"वलीयसा पदा स्वामिन् पदवीमवधारय। आगच्छ शयनस्थानं प्रियाभिः सह केशव॥ एवं प्रार्थ्य समपर्यास्मै पादुके शयनालयम्। आनीय देवं तत्रत्यानुपचारान् प्रकल्पयेत्॥ विशेषतोऽर्पयेत्तत्र घनं दुग्धं सशर्करम्। ताम्बूलञ्च सकर्पूरं दिव्यमाल्यानुलेपनम्॥"

[अर्थात् "हे स्वामिन्! बलशाली चरणोंके द्वारा पादुका धारण कीजिये। हे केशव! सब प्रियाओंके साथ आप शयन स्थानपर आगमन कीजिये। इस प्रकार प्रार्थना करते हुए पादुका समर्पण करके श्रीकृष्णको शयन-स्थानपर लाकर शयनके उपयोगी उपचारोंकी रचना करनी होगी। विशेषतः शयनके स्थानपर मीठा

घना दूध, कर्पूरयुक्त ताम्बूल, दिव्यमाला और अनुलेपन अर्पण करना चाहिये।"] ॥ 329 ॥

श्रीमूर्त्तिलक्षण, आर शालग्रामलक्षण।
कृष्णक्षेत्र-यात्रा, कृष्णमूर्त्ति-दरशन ॥ 330 ॥

अनुवाद—श्रीमूर्तिलक्षण, शालग्रामलक्षण, श्रीकृष्णक्षेत्र-यात्रा, श्रीकृष्णमूर्ति-दर्शनका भी वर्णन करना ॥ 330 ॥

अनुभाष्य—*'श्रीमूर्त्तिलक्षण'*—मध्यलीला 20/224-238 संख्या देखें। *'शालग्रामलक्षण'*—ह:भ:वि: 5वाँ विभाग देखें ॥ 330 ॥

नाममहिमा, नामापराध दूरे वर्जन।
वैष्णवलक्षण, सेवापराध-खण्डन ॥ 331 ॥

शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि-लक्षण।
जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत्, वन्दन ॥ 332 ॥

पुरश्चरण-विधि, कृष्णप्रसाद-भोजन।
अनिवेदित-त्याग, वैष्णवनिन्दादि-वर्जन ॥ 333 ॥

अनुवाद—नामकी महिमा, नामापराधका दूरसे त्याग, वैष्णव-लक्षण, सेवापराध-खण्डन, शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि-लक्षण, जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत्, वन्दन, पुरश्चरण-विधि, कृष्णप्रसादका ही भोजन करना, अनिवेदित वस्तुओंका त्याग, वैष्णवनिन्दादिका वर्जन—इनके बारेमें लिखना ॥ 331-333 ॥

अनुभाष्य—*'नाम महिमा'*—ह:भ:वि: 11वाँ विभाग देखें। *'नामापराध'*—आदिलीला 8/24 संख्याका अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

'वैष्णव-लक्षण'—

"विष्णुरेव हि यस्यैष देवता वैष्णवः स्मृतः।"

[अर्थात् "विष्णु ही जिनके अभीष्ट देवता हैं, वे वैष्णव कहे जाते हैं।"] ह:भ:वि: 10वाँ वि: देखें।

'सेवापराध-खण्डन'—स्कन्दपुराणमें अवन्तीखण्डमें श्रीव्यासवाक्य—

"अहन्यहनि यो मर्त्यो गीताध्यायं पठेत्तु वै। द्वात्रिंशदपराधांस्तु क्षमते तस्य केशवः॥" द्वारकामाहात्म्ये,—"सहस्रनाममाहात्म्यं यः पठेत् शृणुयादपि। अपराधसहस्राणि न स लिप्येत् कदाचन॥ द्वादश्यां जागरे विष्णोर्यः पठेत्तुलसीस्तवम्। द्वात्रिंशदपराधान् हि क्षमते तस्य केशवः। तुलस्या कुरुते यस्तु शालग्राम-शिलार्चनम्। द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः॥

[अर्थात् "जो मनुष्य प्रतिदिन गीताके अध्यायोंका अध्ययन करता है, वह प्रतिदिन बत्तीस प्रकारके अपराधोंसे मुक्त हो जाता है। जो विष्णुसहस्र नामकी महिमाका पाठ करता है, अथवा श्रवण ही करता है, वह कभी भी सहस्र अपराधोंमें लिप्त नहीं होता। जो द्वादशीमें जागरण करके तुलसीके स्तवका पाठ करता है, श्रीकेशव उनके बत्तीस प्रकारके अपराधोंको दूर कर देते हैं। जो तुलसीके द्वारा शालग्राम-शिलाकी पूजा करते हैं, श्रीकेशव उनके बत्तीस प्रकारके अपराध क्षमा करते हैं।"]

बत्तीस सेवापराध—(1) यान अथवा पादुका पहनकर भगवान्‌के मन्दिरमें जाना, (2) भगवान्‌के सामने आकर भी उन्हें प्रणाम नहीं करना, (3) उच्छिष्ट अथवा अपवित्र अवस्थामें भगवान्‌की वन्दना, (4) एक हाथके द्वारा प्रणाम करना, (5) भगवान्‌के सामने अन्यदेवताकी परिक्रमा, (6) भगवान्‌के सामने पैर फैलाना, (7) दोनों जंघाओंको हाथके द्वारा घेरकर बैठना, (8) शयन करना, (9) भोजन करना, (10) मिथ्या-बोलना, (11) ऊँचा बोलना, (12) आपसमें बातें करना, (13) क्रन्दन, (14) दूसरे व्यक्तिपर कृपा, (15) कठोर वचनोंका प्रयोग, (16) कम्बल ओढ़ना, (17) दूसरोंकी निन्दा करना, (18) दूसरोंकी प्रशंसा करना, (19) अश्लील बातें करना, (20) अधोवायु छोड़ना, (21) सामर्थ्य रहनेपर भी उपचारके बिना पूजा करना, (22) अनिवेदित वस्तुको खाना, (23) मौसमके फलोंको अर्पण न करना, (24) अवशिष्ट (बचे हुए) अंशका

निवेदन, (25) देवताको पीठ दिखाकर बैठना, (26) दूसरेका अभिवादन, (27) गुरुके आनेपर उनका स्तव नहीं करके बैठे रहना, (28) आत्म-प्रशंसा, (29) देवनिन्दा, (30) अन्य व्यक्तिके प्रति निर्दयता, (31) उत्सव नहीं मनाना, (32) कलह करना।

'पुष्प-लक्षण'—ह:भ:वि: सातवाँ विभाग देखें। *'धूपादि लक्षण'*—ह:भ:वि: आठवाँ विभाग देखें। *'जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत् और वन्दना'*—ह:भ:वि: आठवाँ विभाग देखें।

'पुरश्चरण-विधि'—मध्यलीला 15/108 संख्याका अनुभाष्य देखें।

'कृष्णप्रसाद भोजन'—

"संभोज्य भोजनं कुर्यादन्यथा नरकं व्रजेत्। अपूज्य भोजनं कुर्वन् नरकाणि व्रजेन्नरः॥"

[अर्थात् "श्रीहरिको भोजन कराके स्वयं भोजन करना, अन्यथा नरकमें जाना पड़ेगा। श्रीहरिकी पूजा नहीं करके भोजन करनेसे मनुष्यको नरकोंकी प्राप्ति होती है।"]

'अनिवेदित-त्याग'—

"अनिवेद्य तु भुञ्जानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः। तस्मात् सर्वं निवेद्यैव विष्णोर्भुञ्जीत सर्वदा॥"

[अर्थात् "अनिवेदित द्रव्य उपभोग करनेसे मनुष्यको प्रायश्चित करना पड़ता है, इसलिये सदैव सभी द्रव्य श्रीविष्णुको निवेदन करके भोजन करना चाहिये।"] ह:भ:वि: 9म वि: 108 संख्या देखें। *'वैष्णवनिन्दा-वर्जन'*—मध्यलीला 15/261 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 331-333॥

साधुलक्षण, साधुसङ्ग, साधुसेवन।
असत्सङ्ग-त्याग, श्रीभागवत-श्रवण॥ 334॥

अनुवाद—अर्थ स्पष्ट है॥ 334॥

दिनकृत्य, पक्षकृत्य, एकादश्यादि-विवरण।
मासकृत्य, जन्माष्टम्यादि-विधि-विचारण॥ 335॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 335॥

अनुभाष्य—*'दिनकृत्य'*—दिवसके कालोचित कृत्यसमूह। *'पक्षकृत्य'*—तिथिमें, विशेषतः एकादशी आदिमें अनुष्ठान योग्य कृत्यसमूह। *'मासकृत्य'*— बारह महीनोंके कृत्यसमूह। *'एकादशी आदिका विवरण'*—ह:भ:वि: 12वाँ वि: देखें। *'जन्माष्टमी-आदि-विधि-विचारण'*—ह:भ:वि: 12वाँ वि: देखें॥ 335॥

एकादशी, जन्माष्टमी, वामनद्वादशी।
श्रीरामनवमी, आर नृसिंहचतुर्दशी॥ 336॥
एइ सबे बिद्धा-त्याग, अबिद्धा-करण।
अकरणे दोष, कैले भक्तिर लभन॥ 337॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 336-337॥

अनुभाष्य—एकादशीमें अरुणोदय-बिद्धा त्याग और अन्य (जन्माष्टमी, वामनद्वादशी, श्रीरामनवमी और नृसिंहचतुर्दशी) व्रतोंमें सूर्योदय-बिद्धा त्याग करके अबिद्ध (शुद्ध) व्रत ही पालनीय है। बिद्ध-व्रतका पालन करनेसे 'दोष' और अबिद्ध व्रत-पालनसे ही 'भक्ति' होती है। विशेष रूपसे जाननेके लिये ह:भ:वि: 12वाँ और 13वाँ वि: देखें॥ 337॥

महाप्रभुके द्वारा सात्वत पुराणको 'प्रमाण' कहकर स्वीकार करना :—

सर्वत्र प्रमाण दिबे पुराण-वचन।
श्रीमूर्त्ति-विष्णुमन्दिरकरण-लक्षण॥ 338॥

अनुवाद—सर्वत्र पुराणके वचनोंके द्वारा प्रमाण प्रस्तुत करना। श्रीमूर्ति और विष्णुमन्दिर बनानेके लक्षण बतलाना॥ 338॥

हरिभक्तिविलासमें सामान्य और वैष्णव सदाचारके वर्णनकी आज्ञा :—

'सामान्य' सदाचार, आर 'वैष्णव'-आचार।
कर्त्तव्याकर्त्तव्य 'स्मार्त्त' व्यवहार॥ 339॥

अनुवाद—उस ग्रन्थमें 'सामान्य' सदाचार और

'वैष्णव'-आचारके विषयमें बतलाना। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य आदि 'स्मार्त्त' व्यवहारके विषयमें भी लिखना॥ 339॥

श्रीसनातनको आशीर्वाद :—

एइ त' संक्षेपे कहिलुँ दिग्दरशन।
यबे तुमि लिखिबा, कृष्ण कराबे स्फुरण॥"340॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने संक्षेपमें वैष्णव-स्मृतिकी विषय-वस्तुका दिगदर्शन कराया है। जब तुम इसे लिखोगे, तब श्रीकृष्ण तुम्हें सब कुछ स्फुरित करायेंगे॥ "340॥

महाप्रभुके मुखसे श्रीसनातन-शिक्षा अथवा श्रीसनातनके प्रति महाप्रभुके कृपा-प्रसादके श्रवणसे अनर्थ-निवृत्ति और आत्म-प्रसादका उदय :—

एइ त' कहिलु प्रभुर सनातने प्रसाद।
याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद॥ 341॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार कह रहे हैं) इस प्रकार मैंने श्रीसनातन गोस्वामीके ऊपर महाप्रभुकी कृपाका वर्णन किया है। इसके श्रवणसे चित्तके समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं॥ 341॥

चैतन्यचन्द्रोदय-नाटकमें वर्णित :—

निज-ग्रन्थे कर्णपूर विस्तार करिया।
सनातने प्रभुर प्रसाद राखियाछे लिखिया॥ 342॥

अनुवाद—श्रीकविकर्णपूरने स्वरचित श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें श्रीसनातन गोस्वामीके ऊपर महाप्रभुकी कृपाके विषयमें विस्तारपूर्वक लिखा है॥ 342॥

उपमाके द्वारा श्रीसनातनकी महिमाका वर्णन :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (9/34-35)-श्लोकमें प्रतापरुद्रके प्रति वार्त्ताहारि-वाक्य—

गौड़ेन्द्रस्य सभा-विभूषणमणिस्त्यक्त्वा य ऋद्धां श्रियं
रूपस्याग्रज एष एव तरुणीं वैराग्यलक्ष्मीं दधे।
अन्तर्भक्तिरसेन पूर्णसरसो बाह्येऽवधूताकृतिः
शैवालैः पिहितं महा-सर इव प्रीतिप्रदस्तद्विदाम्॥ 343॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 343॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गौड़के राजा हुसेनशाह बादशाहकी सभामें विभूषणमणिस्वरूप श्रीरूप गोस्वामीके बड़े भाई इन श्रीसनातनने समृद्ध-राजश्रीका परित्याग करके नवीनवैराग्य-लक्ष्मीको धारण किया था। अन्तःकरणमें भक्तिरससे पूर्णरस, बाहरमें अवधूतका रूप, काईके द्वारा आच्छादित महासरोवरकी भाँति वे श्रीसनातन भक्तितत्त्वके पण्डितोंको प्रीति प्रदान करनेवाले थे॥ 343॥

अनुभाष्य—

गौड़ेन्द्रस्य (गौड़ेश्वरस्य) सभाविभूषणमणिः (सभायां विभूषणे अलङ्करणे मणिः इव) यः ऋद्धां (समृद्धां) श्रियं (राजसम्पदं) त्यक्त्वा (परित्यज्य) तरुणीं (नवीनां) वैराग्यलक्ष्मीं (वैराग्यसम्पत्तिं) दधे (आश्रितवान्); शैवालैः पिहितम् (आच्छादितं) महासरः (गभीर-सरोवरम्) इव अन्तः (हृदये) भक्तिरसेन (कृष्ण-प्रेमरसेन) पूर्णसरसः (रसितः) बाह्ये (बहिः) अवधूताकृतिः (अवधूतस्य परमहंसस्य इव आकृतिः यस्य सः) रूपस्य अग्रजः सः एषः (सनातनः) एव तद्विदां (भक्तितत्त्वाभिज्ञानां तत्त्वकोविदानां विदुषां देशिकानां) प्रीतिप्रदः (प्रेमभाक्) अभूत्।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 343॥

तं सनातनमुपागतमक्ष्णोर्दृष्टि-
मात्रमतिमात्रदयार्द्रः।
आलिलिङ्ग परिघायत-दोर्भ्यां
सानुकम्पमथ चम्पकगौरः॥ 344॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 344॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसनातनके आनेपर, उन्हें देखते-ही चम्पकवर्ण श्रीगौरसुन्दरने अत्यन्त दयासे आर्द्र होकर दोनों हाथ फैलाकर कृपा प्रकाश करते हुए उनका आलिङ्गन किया॥ 344॥

चौबीसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—

अतिमात्रदयार्द्रः (निरतिशयया दयया आर्द्रः) चम्पकगौरः (चम्पक-कुसुमवत् पीतवर्णः) अक्ष्णोः (नयनयोः) दृष्टिमात्रं (दर्शनमात्रेण) उपागतं (हीनवेशेन समायातं) तं सनातनं

परिघायतदोर्भ्यां (परिघाभ्याम् इव आयताभ्यां दीर्घाभ्यां दोर्भ्यां भुजाभ्यां) सानुकम्पम् (अनुकम्पा यथा स्यात्तथा कृपयेत्यर्थः) आलिलिङ्ग।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **344**॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (9/38)में-

कालेन वृन्दावनकेलि-वार्त्ता
लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।
कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्तत्रैव
रूपश्च सनातनश्च॥ 345॥

अनुवाद—कालके प्रभावसे वृन्दावनकी रसक्रीड़ाओंकी कथा लुप्त हो गयी थी, उन कथाओंका विशेषरूपसे विस्तार करनेके लिये श्रीगौराङ्गदेवने कृपारूपी अमृतके द्वारा वहाँपर श्रीरूप एवं श्रीसनातनको अभिषिक्त किया था॥ **345**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 19/119 संख्या देखें॥ **345**॥

चौबीसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रीसनातन-शिक्षाके अनुशीलनके फलस्वरूप अनर्थसे मुक्ति और सम्बन्ध-ज्ञान, अभिधेय एवं प्रयोजनकी प्राप्ति :—

एइ त' कहिलुँ सनातने प्रभुर प्रसाद।
याहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद॥ 346॥

कृष्णेर स्वरूपगणेर सकल हय 'ज्ञान'।
विधि-राग-मार्गे 'साधनभक्ति'र विधान॥ 347॥

'कृष्णप्रेम', 'भक्तिरस', 'भक्तिर सिद्धान्त'।
इहार श्रवणे भक्त जानेन सब अन्त॥ 348॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं)—इस प्रकार मैंने महाप्रभुके द्वारा श्रीसनातन गोस्वामीके ऊपर की गयी कृपाका वर्णन किया है, जिसके श्रवणसे चित्तके समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं। इसके श्रवणसे श्रीकृष्णके समस्त स्वरूपोंका ज्ञान होता है एवं वैधी और रागमार्गकी साधनभक्तिकी विधिका ज्ञान होता है। इसके श्रवणसे भक्त 'श्रीकृष्णप्रेम', 'भक्तिरस' और 'भक्तिके सिद्धान्तों' आदिको पूर्णरूपसे जान जाता है॥ **346-348**॥

श्रीनिताइ-गौर-अद्वैतके ऐकान्तिक भक्तोंमें ही श्रीकृष्णप्रेमधनको प्राप्त करनेकी योग्यता :—

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण।
याँर प्राणधन, सेइ—पाय सेइ धन॥ 349॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके श्रीचरण ही जिसके प्राणधन हैं, वही इस धनको (उपरोक्त वर्णित ज्ञानको) प्राप्त कर सकता है॥ **349**॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 350॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे आत्मारामाश्चेति-श्लोक-व्याख्यायां सनातनानुग्रहो नाम चतुर्विंशः परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ **350**॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें आत्मारामाश्चेति-श्लोककी व्याख्या और श्रीसनातनपर अनुग्रह नामक चौबीसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

पचीसवाँ अध्याय

कथासार—महाराष्ट्र

महाप्रभुका यश सुननेसे उन्हें आनन्द मिलता था। एक दिन उन्होंने संन्यासियों और महाप्रभुको निमन्त्रण देकर एकत्रित करके संन्यासियोंको महाप्रभुका कृपापात्र बनाया था, यह आदिलीलाके सातवें अध्यायमें लिखा है। उस दिनसे वाराणसीपुरमें महाप्रभुका माहात्म्य प्रचारित हुआ। वहाँके नगरवासी बहुतसे व्यक्ति महाप्रभुके अनुगत हुए। प्रकाशानन्द सरस्वतीका कोई शिष्य भी महाप्रभुका अनुगत था। जब उसने मायावादकी निन्दा और महाप्रभुके द्वारा उपदिष्ट शुद्धभक्तिवादके माहात्म्यका वर्णन किया, तब प्रकाशानन्द-स्वामीने अनेक युक्तियोंके द्वारा उसके पक्षका समर्थन किया। पञ्चनदीमें स्नान करनेके बाद महाप्रभुने जब भक्तोंके साथ बिन्दुमाधवके मन्दिरमें कीर्तन आरम्भ किया था, तब शिष्यों सहित प्रकाशानन्द भी वहाँ आ गये। प्रकाशानन्दने महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर उन्हें पकड़कर अपने पूर्व कार्योंको धिक्कारा और वेदान्त-सङ्गत भक्तितत्त्वके विषयमें जिज्ञासा की। महाप्रभुने उन्हें ब्रह्म-सम्प्रदायमें सिद्ध अपूर्व भक्तिवाद सिखलाकर श्रीमद्भागवत ही ब्रह्मसूत्रका भाष्य है, उसे दिखला दिया और चतुःश्लोकीकी व्याख्यामें सारे तत्त्व बतलाये। उस दिनसे वे मायावादी संन्यासी 'भक्त' बन गये। महाप्रभुने श्रीसनातनको उपदेश देकर और उन्हें वृन्दावन जानेकी आज्ञा देकर पुरुषोत्तमकी यात्रा की। उसके बाद श्रीकविराज-गोस्वामीने श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीसुबुद्धि-रायका इतिहास कुछ-कुछ वर्णन किया है। झारिखण्डसे होकर महाप्रभु बलभद्रके साथ यात्रा करके श्रीपुरुषोत्तममें पहुँचे। इस अध्यायके अन्तिम भागमें मध्यलीलाके प्रत्येक अध्यायके विषयोंको बतलाकर श्रीकविराज-गोस्वामीने सभी जीवोंको इस श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ करने (पढ़ने)का उपदेश दिया है।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीकृष्ण-विमुख मायावादियोंको श्रीकृष्णोन्मुख बनानेवाले श्रीगौरसुन्दर :—

वैष्णवीकृत्य संन्यासिमुखान् काशीनिवासिनः।
सनातनं सुसंस्कृत्य प्रभुर्नीलाद्रिमागमत्॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—संन्यासी आदि काशीवासियोंको 'वैष्णव' बनाकर और श्रीसनातनका उत्तमरूपसे संस्कार करके (सुवैष्णव-वेश देकर) महाप्रभुने नीलाद्रिमें आगमन किया॥ 1॥

अनुभाष्य—

प्रभुः (श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रः) काशीनिवासिनः (वाराणसी-वास्तव्यान्) संन्यासिमुखान् (तुर्याश्रमि-प्रमुखान् प्रकाशानन्दादीन्) वैष्णवीकृत्य (शुद्धभक्तिमार्गे समानीय) सनातनं सुसंस्कृत्य (सुवैष्णववेशं दत्वा च) नीलाद्रिं (श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रम्) आगमत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौरभक्तोंकी जय हो॥ 2॥

श्रीसनातनको काशीमें दो मास तक शिक्षा-प्रदान :—

एइ मत महाप्रभु दुइ मास पर्यन्त।
शिखाइला ताँरे भक्तिसिद्धान्तेर अन्त॥ 3॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको दो मास तक भक्तिके सिद्धान्तोंकी अन्तिम सीमा तक शिक्षा प्रदान की॥3॥

परमानन्द कीर्तनीयाके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

'परमानन्द कीर्त्तनीया'—शेखरेर सङ्गी।
प्रभुरे कीर्त्तन शुनाय, अति बड़ रङ्गी॥4॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखरके एक साथी 'परमानन्द कीर्तनीया' थे। वे महाप्रभुको बड़े अनुरागके साथ कीर्तन सुनाते थे॥4॥

भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये ही काशीके मायावादियोंका उद्धार-करना :—

संन्यासीर गण प्रभुरे यदि उपेक्षिल।
भक्त-दुःख खण्डाइते तारे कृपा कैल॥5॥

अनुवाद—यद्यपि मायावादी संन्यासियोंने महाप्रभुकी निन्दा की थी, तथापि महाप्रभुने भक्तोंके दुःखको दूर करनेके लिये उन मायावादी संन्यासियोंपर कृपा की॥5॥

पहले आदिलीलामें मायावादियोंका उद्धार वर्णित, पुनः संक्षेपमें वर्णन :—

संन्यासीरे कृपा पूर्वे लिखियाँछो विस्तारिया।
उद्देशे कहिये इँहा संक्षेप करिया॥6॥

अनुवाद—महाप्रभुकी मायावादी संन्यासियोंपर कृपाका मैं पहले ही विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुका हूँ, परन्तु पुनः उसका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पूर्वे लिखियाँछो विस्तारिया'* (पहले विस्तारसे लिखा है)—आदिलीला सातवाँ अध्याय देखें॥6॥

मायावादी संन्यासियोंके द्वारा महाप्रभुकी निन्दा; महाराष्ट्र ब्राह्मणके मनके दुःखसे उनके कल्याणकी चिन्ता :—

याँहा ताँहा प्रभुर निन्दा करे संन्यासीर गण।
शुनि' दुःखे महाराष्ट्र
'प्रभुर स्वभाव,—येबा देखे सन्निधाने।
'स्वरूप' अनुभवि' ताँरे 'ईश्वर' करि' माने॥8॥
कोनप्रकारे पारोँ यदि एकत्र करिते।
इहा देखि' संन्यासिगण हबे इँहार भक्ते॥9॥
वाराणसी-वास आमार हय सर्वकाले।
सर्वकाल दुःख पाब, इहा ना करिले॥'10॥

अनुवाद—जब काशीमें जहाँ-तहाँ मायावादी संन्यासी महाप्रभुकी निन्दा करते थे, उनके मुखसे महाप्रभुकी निन्दा सुनकर महाराष्ट्र
करने लगे,—'महाप्रभुके स्वभावको जो कोई भी निकटसे देखता है, वह महाप्रभुके 'स्वरूप'का अनुभव करके उन्हें 'ईश्वर' मानने लगता है। यदि किसी प्रकारसे मैं महाप्रभु और मायावादी संन्यासियोंको एक ही स्थानपर एकत्रित कर पाऊँ, तब मायावादी संन्यासी महाप्रभुके स्वरूपको देखकर अवश्य ही इनके भक्त बन जायेंगे। मुझे तो सब समय वाराणसीमें ही रहना है, इसलिये यदि मैं उनका मिलन नहीं करा पाया, तो मैं सब समय मायावादियोंके द्वारा महाप्रभुकी निन्दा सुनकर दुःख ही भोग करूँगा॥'7-10॥

मायावादी संन्यासियोंको अपने घरपर निमन्त्रण :—

एत चिन्ति' निमन्त्रिल संन्यासीर गणे।
तबे सेइ विप्र आइल महाप्रभुर स्थाने॥11॥

अनुवाद—ऐसा विचार बनाकर उन महाराष्ट्र ब्राह्मणने सभी मायावादी संन्यासियोंको निमन्त्रित किया। और तब फिर वे ब्राह्मण महाप्रभुके पास उनको निमन्त्रण देने आ गये॥11॥

श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपनमिश्रका भी एक साथ महाप्रभुसे एक ही निवेदन :—

हेनकाले निन्दा शुनि' शेखर, तपन।
दुःख पाञा प्रभु-पदे कैला निवेदन॥12॥

अनुवाद—मायावादियोंके मुखसे महाप्रभुकी निन्दा सुनकर श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपनमिश्र भी उसी समय महाप्रभुके निकट आकर उनके श्रीचरणोंमें दुःखित

होकर (मायावदियोंपर कृपा करनेका) निवेदन करने लगे॥ 12॥

भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये महाप्रभुकी कृपा-अभिलाषा :—

भक्त-दुःख देखि' प्रभु मनेते चिन्तिल।
संन्यासीर मन फिराइते मन हइल॥ 13॥

अनुवाद—भक्तोंके दुःखको देखकर महाप्रभुने मन-ही-मन मायावादी संन्यासियोंके मनको परिवर्तित करनेका निर्णय किया॥ 13॥

महाराष्ट्र

हेनकाले विप्र आसि' करिल निमन्त्रण।
अनेक दैन्यादि करि' धरिया चरण॥ 14॥

अनुवाद—उसी समय महाराष्ट्र महाप्रभुके श्रीचरण पकड़कर बड़ी दीनतापूर्वक उनको निमन्त्रण दिया॥ 14॥

महाप्रभुके द्वारा निमन्त्रण स्वीकार :—

तबे महाप्रभु ताँर निमन्त्रण मानिला।
आर दिन मध्याह्न करि' ताँर घरे गेला॥ 15॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उन ब्राह्मणके निमन्त्रणको स्वीकार कर लिया और अगले दिन दोपहरका स्नान और अन्यान्य नित्यकृत्यादि करके उन ब्राह्मणके घरपर गये॥ 15॥

मायावादी संन्यासियोंका उद्धार—पहले आदिलीलाके सातवें अध्यायमें वर्णित :—

ताँहा यैछे कैला प्रभु संन्यासी-निस्तार।
पञ्चतत्त्वाख्याने ताहा करियाछि विस्तार॥ 16॥

अनुवाद—वहाँपर जाकर महाप्रभुने जिस प्रकार उन संन्यासियोंका उद्धार किया, उसका मैंने पञ्चतत्त्वके प्रसङ्ग (आदिलीला सातवें अध्यायमें) पहले ही विस्तृत रूपसे वर्णन किया है॥ 16॥

अनुभाष्य—आदिलीला सातवें अध्यायमें पञ्चतत्त्वकी व्याख्याके प्रसङ्गमें यह लीला विस्तृत रूपसे वर्णित हुई है॥ 16॥

पुनरुक्ति भय :—

ग्रन्थ बाड़े, पुनरुक्ति हय त' कथन।
ताँहा ये ना लिखिलुँ, ताहा करिये लिखन॥ 17॥

अनुवाद—पुनः उसका वर्णन करनेसे ग्रन्थका कलेवर बढ़ जायेगा। वहाँपर मैंने जिस प्रसङ्गका वर्णन नहीं किया, अब केवल उसीके विषयमें ही लिखूँगा॥ 17॥

मायावदियोंकी कृपाप्राप्तिके दिनसे बहुतसे तार्किकोंका महाप्रभुके साथ तर्क करनेके लिये आना :—

ये-दिवस प्रभु संन्यासीरे कृपा कैल।
से-दिवस हैते ग्रामे कोलाहल हैल॥ 18॥

लोकेर संघट्ट आइसे प्रभुरे देखिते।
नाना शास्त्रे पण्डित आइसे शास्त्र विचारिते॥ 19॥

अनुवाद—जिस दिन महाप्रभुने मायावादी संन्यासियोंपर कृपा की, उसी दिनसे सम्पूर्ण वाराणसीमें सर्वत्र इसकी चर्चा होने लगी। महाप्रभुके दर्शनके लिये लोगोंकी भीड़ आने लगी। अनेकानेक शास्त्रोंको जाननेवाले पण्डित भी महाप्रभुसे शास्त्रोंपर विचार करनेके लिये आने लगे॥ 18-19॥

शुद्धभक्तिसिद्धान्तपूर्ण अकाट्य-युक्तिके बलसे महाप्रभुके द्वारा सभीके कुतर्कका खण्डन :—

सर्वशास्त्र खण्डि' प्रभु 'भक्ति' करे सार।
सयुक्तिक वाक्ये मन फिराय सबार॥ 20॥

अनुवाद—शास्त्रोंकी भुक्ति-मुक्ति आदिकी प्रधानता दिखानेवाले सभी विचारोंका खण्डन करके महाप्रभु 'भक्ति'को ही सभी शास्त्रोंके सारके रूपमें स्थापित करते। अत्यन्त सुन्दर युक्तियोंके द्वारा वे सभीके मनका परिवर्तन कर देते॥ 20॥

सभीको महाप्रभुकी शिक्षाकी प्राप्ति और हरि-सङ्कीर्तन :—

उपदेश लञा करे कृष्ण-सङ्कीर्त्तन।
सर्वलोक हासे, गाय, करये नर्त्तन॥ 21॥

अनुवाद—महाप्रभुसे श्रीकृष्णनामका उपदेश पाकर सभी श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन करने लगे। नामके प्रभावसे और महाप्रभुकी कृपासे सभी हँसने, गाने और नृत्य करने लगे॥ 21॥

संन्यासियोंके द्वारा मायावाद छोड़कर श्रीकृष्णकी कथाका अलाप करते हुए इष्टगोष्ठी :—

प्रभुरे प्रणत हैल संन्यासीर गण।
आत्ममध्ये गोष्ठी करे छाड़ि' अध्ययन॥ 22॥

अनुवाद—सभी मायावादी संन्यासी महाप्रभुके शरणागत हो गये। आगे अनुभाष्य देखें॥ 22॥

अनुभाष्य—संन्यासी अपने-अपने वेदान्त-पठनको परित्याग करके अपनी गोष्ठीमें मिलकर महाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित भक्तिपथके सम्बन्धमें आलाप करनेमें प्रवृत्त हुए॥ 22॥

प्रकाशानन्द सरस्वतीके किसी एक शिष्यके द्वारा सभामें चर्चा करते हुए महाप्रभुको 'नारायण' मानकर उनके द्वारा की गयी वेदान्तकी चिद्-विलास व्याख्याकी स्तुति और शङ्करके मायावादकी व्याख्याकी निन्दा :—

प्रकाशानन्देर शिष्य एक ताँहार समान।
सभामध्ये कहे प्रभुर करिया सम्मान॥ 23॥

"श्रीकृष्णचैतन्य हय 'साक्षात् नारायण'।
'व्याससूत्रेर' अर्थ करेन अति मनोरम॥ 24॥

उपनिषदेर करेन मुख्यार्थ व्याख्यान।
शुनिया पण्डित-लोकेर जुड़ाय मन-काण॥ 25॥

सूत्र-उपनिषदेर मुख्यार्थ छाड़िया।
आचार्य 'कल्पना' करे आग्रह करिया॥ 26॥

आचार्य-कल्पित अर्थ ये पण्डित शुने।
मुखे 'हय' 'हय' करे, हृदय ना माने॥ 27॥

अनुवाद—प्रकाशानन्द सरस्वतीके एक शिष्य जो ज्ञानमें उन्हींके ही समान थे, वे सभामें महाप्रभुका सम्मान करते हुए कहने लगे,—"श्रीकृष्णचैतन्य 'साक्षात् श्रीनारायण' हैं और वे 'व्याससूत्रका' (वेदान्त-सूत्रका) अत्यन्त सुन्दर और हृदयग्राही अर्थ करते हैं। वे उपनिषदोंके मुख्य अर्थकी व्याख्या करते हैं, जिसे सुनकर पण्डितोंके भी मन और कान तृप्त हो जाते हैं। व्याससूत्र और उपनिषदोंके मुख्य अर्थको छोड़कर श्रीशङ्कराचार्यका आग्रह उनके अपने कल्पित-मतकी स्थापनाके लिये ही था। श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा कल्पित अर्थोंको जो पण्डित श्रवण करते हैं, वे श्रीशङ्कराचार्यका सम्मान करनेके लिये मुखसे 'हाँ' 'हाँ' तो कहते हैं, किन्तु उनका हृदय उन्हें स्वीकार नहीं करता॥ 23-27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आचार्य'*—शङ्कराचार्य॥ 26॥

ज्ञानमार्गमें फल्गु-वैराग्यसे मायापर विजय असम्भव :—

श्रीकृष्णचैतन्य-वाक्य दृढ़ सत्य मानि।
कलिकाले संन्यासे 'संसार' नाहि जिनि॥ 28॥

महाप्रभुकी 'हरेर्नाम' श्लोकके अर्थकी व्याख्याकी प्रशंसा :—

हरेर्नाम-श्लोकेर येइ करिला व्याख्यान।
सेइ सत्य सुखदार्थ परम प्रमाण॥ 29॥

भक्ति ही मुक्तिदात्री और नामाभास ही मुक्तिप्रद :—

भक्ति बिना मुक्ति नहे, भागवते कय।
कलिकाले नामाभासे सुखे मुक्ति हय॥ 30॥

अनुवाद—मैं श्रीकृष्णचैतन्यके वचनोंको परम सत्य मानता हूँ। कलिकालमें केवल संन्यासके द्वारा संसारसे उद्धार प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने हरेर्नाम-श्लोककी जो व्याख्या की है, वही सत्य और परम प्रमाण है जिसे सुनकर सुख प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि भक्तिके बिना केवल ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। कलियुगमें तो नामाभाससे ही अनायास मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है॥ 28-30॥

श्रीमद्भागवत (10/14/4)में :—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥ 31॥

अनुवाद—हे विभो! आपमें भक्ति ही कल्याणका पथ है, उसे परित्याग करके जो सब व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्तिके लिये अर्थात् 'मैं ब्रह्म' हूँ, इसको ही स्थिर रूपमें जाननेके लिये अनेक प्रकारके कष्ट स्वीकार करते हैं, खाली भूसीको पीसनेवालोंको जिस प्रकार चावल नहीं मिलते, उसी प्रकार, उन्हें अन्तमें क्लेशमात्र ही प्राप्त होता है॥ 31॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/22 संख्या देखें॥ 31॥

श्रीमद्भागवत (10/2/32)में :—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय-
स्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रे
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ 32॥

अनुवाद—हे कमलनयन, जो 'मैं विमुक्त हो गया हूँ', ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होनेके कारण अशुद्ध बुद्धिवाले हैं। वे बहुत कष्ट करके मायासे अतीत परमपद ब्रह्म तक आरोहण करके भी भगवद्भक्तिके अनादरके कारण अधःपतित होते हैं॥ 32॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/30 संख्या देखें॥ 32॥

ब्रह्म-शब्दका वास्तविक अर्थ :—

'ब्रह्म'-शब्दे कहे 'षड़ैश्वर्यपूर्ण भगवान्'।
ताँरे 'निर्विशेष' स्थापि, 'पूर्णता' हय हान॥ 33॥

अनुवाद—'ब्रह्म'-शब्दका मुख्य अर्थ षड़ैश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान् होता है। उनको 'निर्विशेष' कहनेसे उनकी 'पूर्णता'में हानि होती है अर्थात् यह उनकी अपूर्ण व्याख्या है॥ 33॥

अनुभाष्य—भगवान्‌को 'निर्विशेष' कहकर स्थापित करनेसे उनके अप्राकृत सविशेषरूपके अभावसे उनकी पूर्णशक्तिमत्तामें हानि होती है। निर्विशेष होना—एक शक्तिका अपूर्ण परिचय मात्र है॥ 33॥

श्रुति और पुराणमें अवरोह-पथसे अप्राकृत-चिद्विलासका दर्शन, तर्कमूलक आरोहपथसे मायातीत चिद्विलासको मायिक जड़विलास समझना ही पाखण्ड या महापराध :—

श्रुति-पुराण कहे,—कृष्णेर चिच्छक्ति-विलास।
ताहा नाहि मानि' पण्डित करे उपहास॥ 34॥

चिदानन्द कृष्णविग्रहे 'मायिक' करि' मानि।
एइ बड़ 'पाप',—सत्य चैतन्येर वाणी॥ 35॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 34-35॥

अनुभाष्य—सभी वेदशास्त्र और पुराण श्रीकृष्णके चिद्शक्ति-विलासको परमनित्य कहकर स्थापित करते हैं। अपने भोगमय जड़ीय-पाण्डित्यके अभिमानवशतः पण्डिताभिमानी ज्ञानी लोग 'चिद्शक्तिके विलास नहीं हो सकते और वह मायाशक्तिमें-से ही एक है',—ऐसे असत् ज्ञानसे भ्रान्त होकर श्रीकृष्णका उपहास करते हैं। निर्विशेषवादी सच्चिदानन्द श्रीकृष्णविग्रहको माया-कल्पित और मायासे निर्मित ईश्वरविग्रह मानकर भगवान्‌के नित्य सविशेषत्वको नहीं समझ पाते। उनकी दाम्भिकता (घमण्ड) अथवा नास्तिकता ही बहुत बड़ा अपराध है। श्रीमन्महाप्रभुके वचनानुसार सविशेष सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण विग्रह—नित्य-सत्य-चिद्-विलासमय है, यही वास्तविक सत्य है॥ 34-35॥

निर्विशेष-रूपकी अपेक्षा चिद्विलासमय रूपका श्रेष्ठत्व :—
श्रीमद्भागवत (3/9/3)में—

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप—
मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि॥ 36॥

निर्विशेषवादियोंका 'मायाधीश' भगवद्-विग्रहको 'मायिक' समझनेके कारण उनकी नरकमें गति :—
श्रीमद्भागवत (3/9/4)में—

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं
योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः॥ 37॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 36-37॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे परम, आपके इस आनन्दमात्र, अद्वयज्ञान और मायातीत तेजःस्वरूप,—जिस स्वरूपको मैं अब देख रहा हूँ, इससे श्रेष्ठ स्वरूप और कोई नहीं है। हे आत्मन्, विश्वसृजनकारी होनेपर भी विश्वसे पृथक् भूतेन्द्रियोंके कारणस्वरूप आपका यह जो रूप देख रहा हूँ, मैं इसके ही शरणागत हो रहा हूँ। हे भुवनमङ्गल, हमारे मङ्गलके लिये हमारी उपासनाके योग्य आपका यह स्वरूप,—जिसे आपने ध्यानमें दिखलाया है, उसी भगवद्-स्वरूपको—हम नमस्कार करते हैं और उसीकी सेवा करते हैं। असत् प्रसङ्गसे दूषित नरकगामी व्यक्ति इस नित्यमूर्तिका आदर नहीं करते॥ 36-37॥

अनुभाष्य—गर्भोदकशायीकी नाभिसे ब्रह्माके उत्पन्न होनेपर भी उन पुरुषको नहीं जान पानेके कारण, वे जलमें प्रविष्ट होकर तपस्याके द्वारा भगवान्का स्तव करते-करते निम्नलिखित दो श्लोकोंमें उनके निर्विशेष रूपकी अपेक्षा सविशेष चिद्विलासमय सच्चिदानन्द विग्रहके श्रेष्ठ होनेका वर्णन कर रहे हैं,—

हे परम (परमेश), अविद्धवर्च्चः (अविद्धं प्रकृत्या अनाक्रान्तं वर्च्चः तेजः यस्य तत् मायातीत-स्वरूपत्वात् अनावृत-प्रकाशम् अतः) अविकल्पं (न विद्यते विचित्रः कल्पः सृष्टिः यत्र तम् अद्वयज्ञानम्) आनन्दमात्रम् (आनन्दं निर्विशेषचिद्रूपं ब्रह्म मात्रा अंशः यस्य तं) यत् भवतः (तव) स्वरूपं (पूर्णभगवद्रूपं) तत् अतः (रूपात्) परं (भिन्नं) न पश्यामि। हे आत्मन् (परमात्मन्), विश्वसृजं (विश्वसृष्टि-कर्त्तारम्) एकम् (अद्वितीयम्) अविश्वं (नश्वरात् विश्वस्मात् अन्यत् भिन्नम् अक्षयत्वात्) भूतेन्द्रियात्मकं (भूतानाम् इन्द्रियाणां च आत्मकं कारणम्) ते (तव) अदः (अप्राकृतं) रूपम् उपाश्रितः अस्मि (शरणं यामि)। हे भुवनमङ्गल (जीवैककल्याणनिलय,) तत् वै (तदेव इदं रूपम्) उपासकानां नः (अस्माकं) मङ्गलाय ध्याने ते (त्वया) दर्शितं स्म। असत्प्रसङ्गैः (श्रौतमार्ग विरोधि-निर्विशेष-ब्रह्म-विचारपर-कुतर्कनिष्ठैः अज्ञानकल्पितवाक्यैः) नरकभाग्भिः (नरकगामिभिः केश्चित् नास्तिकैः) यः (पुरुषः त्वं) न आदृतः (नैव स्वीकृतः), तस्मै भगवते तुभ्यं नमः अनुविधेम (वयम् अनुवृत्त्या नमस्करवाम)।

श्लोक-भावानुवाद—हे परमेश! देश, काल आदिके आवरणसे रहित आपका प्रकाशमय, अद्वयज्ञान, आनन्दमात्र निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप जो आपका अंश है, उसे मैं आपके पूर्ण भगवद्रूपसे भिन्न नहीं देख रहा हूँ। हे आत्मन्! इसलिये विश्वकी सृष्टि करनेवाले, अद्वितीय, अतः विश्वसे भिन्न एवं जीवों और उनकी इन्द्रियोंके कारणस्वरूप आपके इस अप्राकृत सविशेष रूपका ही मैं आश्रय लेता हूँ। हे भुवनमङ्गल! हम आपके इस रूपके उपासक हैं। आपने हमारे कल्याणके लिये ही ध्यानयोगमें उस रूपको दिखलाया है। श्रौतमार्ग-विरोधी निर्विशेष ब्रह्म-विचारपरक कुतार्किक व्यक्ति आपके इस स्वरूपको सच्चिदानन्दमय विग्रह न मानकर मायामय कहकर अनादर करते हैं और नरकमें पतित होते हैं। मैं षड्ऐश्वर्ययुक्त आपको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ॥ 37॥

अप्राकृत श्रीकृष्णकी नराकृतिको देखकर ही पाषण्डियोंकी प्राकृत मर्त्त्यबुद्धि :—
श्रीमद्भगवद्गीता (9/11)में—

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तः सर्वभूतमहेश्वरम्॥ 38॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 38॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं जब मनुष्यके आकारमें प्रकाशित होता हूँ, तब मूढ़लोग मेरी अवज्ञा करते हैं अर्थात् वे मेरी नित्य चिन्मयदेहको मायाश्रित मानकर

अवज्ञा करते हैं। क्योंकि, वे सभी प्राणियोंके महेश्वर-स्वरूप श्रीकृष्णमूर्तिके सर्वोत्तम चिन्मय स्वभावको नहीं जानते हैं॥ 38॥

अनुभाष्य—

सर्वभूतमहेश्वरं (सर्वप्राणिनामधीश्वरं मम) परं भावम् (अप्राकृत-रसविग्रह-तत्त्वम्) अजानन्तः मूढ़ाः (अक्षजज्ञानमुग्धाः) मानुषीं (भक्तेच्छावशात् भक्ताह्लादन-निमित्तात् मनुष्याकारां) तनुं (शुद्धसत्त्वमयीमपि) आश्रितं (धृतं) माम् (अवतीर्णम्) अवजानन्ति (अवमन्यन्ते)।

श्लोक-भावानुवाद—सब प्राणियोंके अधीश्वर मेरे परम भाव अर्थात् अप्राकृत रसविग्रह-तत्त्वको प्राकृत-इन्द्रियोंके ज्ञानसे मुग्ध मूढ़ लोग नहीं जानते हैं। भक्तोंकी इच्छाके वशीभूत होकर उनको आनन्द प्रदान करनेके लिये मनुष्यरूपमें (शुद्धसत्त्वमय) शरीर धारण करके अवतीर्ण होनेपर वे मेरी अवज्ञा करते हैं॥ 38॥

पाषण्डियोंकी गति :—
श्रीमद्भगवद्गीता (16/19)में—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ 39॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 39॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरी श्रीमूर्तिके विद्वेषी क्रूर नराधमोंको मैं इस संसारमें आसुरी आदि योनियोंमें बार-बार डालता हूँ॥ 39॥

अनुभाष्य—

[मां] द्विषतः (द्वेषपरायणान्) क्रूरान् (हिंस्रान्) अशुभान् (निषिद्धाचाररतान्) नराधमान् तान् (जनान्) एव संसारेषु (जन्ममृत्युमार्गेषु) आसुरीषु योनिषु (हिंसालोभसमन्वितासु तिर्यक्-पश्वादि-योनिषु) अजस्रं (पुनः पुनः) अहं क्षिपामि (तेषां भीषणापराधानां तादृशमेव फलं ददामीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—मुझसे द्वेष करनेवाले, क्रूर, निषिद्ध-आचारमें रत नराधमोंको मैं इस जन्म-मृत्युरूपी संसारमें हिंसा-लोभ स्वभाववाली पक्षी-पशु आदि योनियोंमें बार-बार गिराता हूँ (मैं उनके भीषण अपराधोंका उस प्रकार फल प्रदान करता हूँ—यह अर्थ है।)॥ 39॥

गुरुकी अवज्ञा अथवा गुरुसे विरोधके कारण तर्कपन्थामें श्रौतपन्थाके शक्ति-परिणामको अस्वीकार करनेके कारण विवर्त्तवाद :—

सूत्रेर परिणामवाद, ताहा ना मानिया।
'विवर्त्तवाद' स्थापे, 'व्यास भ्रान्त' बलिया॥ 40॥

विवर्त्तवादके आश्रयमें लक्षणा-वृत्तिसे वेदान्त-उपनिषद्के कल्पित अर्थके द्वारा असुर-पाखण्ड-मोहन :—

एइ त' कल्पित अर्थ मने नाहि भाय।
शास्त्र छाड़ि' कुकल्पना पाषण्डे बुझाय॥ 41॥

परमार्थ भगवत्-कृपाको छोड़कर बाँझ वितण्डेका आश्रय :—

परमार्थ-विचार गेल, करि मात्र 'वाद'।
काँहा मुक्ति पाब, काँहा कृष्णेर प्रसाद॥ 42॥

अनुवाद—वेदान्तसूत्रके शक्ति-परिणामवादको स्वीकार नहीं करके श्रीशङ्कराचार्यने व्यासदेवको भ्रान्त कहकर विवर्त्तवादकी स्थापना की। शास्त्रोंके सहज अर्थोंको छोड़कर उन्होंने अपने विचारोंके द्वारा शास्त्रोंके कल्पित अर्थ किये जो विचारशील व्यक्तियोंको आकर्षित नहीं करते। उन्होंने ऐसा केवल पाखण्डियोंको आकर्षित करनेके लिये किया। कैसे परमार्थ लाभ होगा, निरपेक्ष रूपसे इसका विचार नहीं करके केवल अपने सम्प्रदायके मतको स्थापित करनेके लिये उन्होंने वाद-विवाद करके दूसरोंके मतोंका ही खण्डन करनेकी चेष्टा की। मायावादी और पाखण्डी लोगोंको कैसे मुक्ति और श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त हो, इस बातपर उन्होंने विचार नहीं किया॥ 40-42॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/121-126 संख्या देखें॥ 40॥

शाङ्करभाष्य-मेघके द्वारा वेदान्तरूपी सूर्यको ढकना :—

व्याससूत्रेर अर्थ आचार्य करियाछे आच्छादन।
एइ हय सत्य श्रीकृष्णचैतन्य-वचन॥ 43॥

श्रीचैतन्य-मत ही 'सार'; अद्वैत-मत सम्पूर्णतः असार :—

चैतन्य-गोसाञि येइ कहे, सेइ मत सार।
आर यत मत, सेइ सब छारखार॥"44॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्यका वचन कि श्रीशङ्कराचार्यने व्यास-सूत्रोंके अर्थोंको आच्छादित किया है, सत्य ही है। श्रीचैतन्य गोसाईं जो कुछ कहते हैं, वही सभी मतोंका सार है। उसके अतिरिक्त अन्य जितने भी मत हैं, वे सब सारहीन हैं॥"43-44॥

श्रीगौरभक्त प्रकाशानन्दकी उक्ति; उद्धारके बाद उनके 'प्रबोधानन्द' नामकी प्राप्तिके प्रमाणका अभाव :—

एत कहि' सेइ करे कृष्णसङ्कीर्त्तन।
शुनि' प्रकाशानन्द किछु कहेन वचन॥45॥

अनुवाद—इतना कहकर प्रकाशानन्द सरस्वतीका वह शिष्य श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन करने लगा, जिसे सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती कहने लगे॥45॥

'केवलाद्वैतवाद'को स्थापित करनेके उद्देश्यसे शङ्करका सात्वत शास्त्रोंके खण्डन करनेकी चेष्टासे 'प्रच्छन्न-नास्तिकता' अथवा भगवद्-अविश्वास :—

"आचार्येर आग्रह—'अद्वैतवाद' स्थापिते।
ताते सूत्रेर व्याख्या करे अन्य रीते॥46॥
'भगवत्ता' मानिते 'अद्वैत' ना याय स्थापन।
अतएव सब शास्त्र करये खण्डन॥47॥

कुतर्कपर आधारित मतवादका फल :—

येइ ग्रन्थकर्त्ता चाहे स्व-मत स्थापिते।
शास्त्रेर सहज अर्थ नहे ताँहा हैते॥48॥

छः प्रकारके दार्शनिकोंके विभिन्न मतवाद और वैदिक मत :—

'मीमांसक' कहे,—'ईश्वर हय कर्मेर अङ्ग।'
'सांख्य' कहे,—'जगतेर प्रकृति कारण॥'49॥
'न्याय' कहे,—'परमाणु हैते विश्व हय।'
'मायावादी'—निर्विशेष-ब्रह्मे 'हेतु' कय॥50॥
'पातञ्जल' कहे,—'ईश्वर हय स्वरूप-आख्यान।'
वेदमते कहे ताँरे—'स्वयं भगवान्'॥51॥

श्रीव्यासके द्वारा ब्रह्मसूत्रमें सभी मतवादोंका खण्डन :—

छयेर छय मत व्यास कैला आवर्त्तन।
सेइ सब सूत्र लञा 'वेदान्त'-वर्णन॥52॥

'वेदान्त'के मतानुसार ब्रह्म—चिद्विलास सविशेष अथवा सच्चिदानन्दमय विग्रह :—

'वेदान्त'-मते,—ब्रह्म 'साकार' निरूपण।
'निर्गुण'—व्यतिरेके, तिँहो हय त' 'सगुण'॥53॥

दूसरोंके मतका खण्डन करके अपने-अपने मतवादको स्थापित करनेकी चेष्टा :—

परम कारण ईश्वरे केह नाहि माने।
स्व-स्व-मत स्थापे परमतेर खण्डने॥54॥

अनिश्चयतापर आधारित मनोधर्मी तर्कपन्थी षड्दर्शनको छोड़कर श्रौतपन्थी महाजन अथवा शुद्धभक्त ही आश्रय ग्रहण करने योग्य :—

ताते छय दर्शन हैते 'तत्त्व' नाहि जानि।
'महाजन' येइ कहे, सेइ 'सत्य' मानि॥55॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥46-55॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अन्य संन्यासियोंके भक्ति-सापेक्ष वचनोंको श्रवण करके प्रकाशानन्द सरस्वती कह रहे हैं,—"अद्वैतवाद-स्थापनमें अत्यन्त आग्रहके कारण श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा ब्रह्मसूत्रकी अन्य प्रकारकी व्याख्या की गयी है। भगवत्ता माननेपर 'अद्वैतवाद' नहीं रहता। इसलिये आचार्यने भगवद्-तत्त्वको प्रतिपादित करनेवाले अन्य सभी शास्त्रोंके खण्डनकी चेष्टा की है। अपने मतको स्थापित करनेके लिये शास्त्रोंके सहज अर्थका परित्याग करना ही 'मतवाद'का नियम है। देखो (1) **जैमिनी आदि मीमांसकों**ने वेदोंका मुख्य तात्पर्य जो भक्ति है, उसे त्याग करके **ईश्वरको 'कर्मका अङ्ग'** बना दिया है। (2) **कपिलादि निरीश्वर सांख्यकारों**ने वास्तविक वेदार्थका परित्याग करके **प्रकृतिको जगत्का** कारण कहकर निर्देश किया है। (3) **गौतम और**

कणादादिने न्याय और वैशेषिक-शास्त्रोंमें परमाणुको ही विश्वका कारण कहा है। (4) उसी प्रकार **अष्टावक्रादि मायावादियोंने निर्विशेष-ब्रह्मको ही जगत्का कारण** कहकर दिखलाया है। (5) **पतञ्जलि** आदि राजयोगियोंने अपने **योगशास्त्रमें कहे गये कल्पनामय ईश्वरको 'स्वरूप-तत्त्व'** कहकर स्थापित किया है। इन सभी मतवाद परायण आचार्योंने वेदसिद्ध स्वयं भगवान्को परित्याग करके उनके खण्डरूपमें (खण्ड-प्रतीतिमय) एक-एक 'मत'को स्थापित किया है। षड्दर्शनके छः मतोंकी उत्तमरूपसे आलोचना करके उनके मतोंका खण्डन करके श्रीव्यासदेवने **भगवत्-प्रतिपादक सभी वेदसूत्रोंका अवलम्बन करके वेदान्तसूत्र**की रचना की है। **वेदान्त-मतमें, ब्रह्म—सच्चिदानन्द-स्वरूप साकार** हैं। निर्विशेषवादी ब्रह्मको 'निर्गुण' और विशेष-स्थानपर भगवान्को 'सगुण' (त्रिगुणमय) कहकर प्रतिपादित करते हैं। वास्तवमें तत्त्ववस्तु केवल निर्गुण अथवा त्रिगुणातीत नहीं है, परन्तु वे—अनन्तचिद्गुणोंके आधार 'सगुण' विग्रह हैं। मतवादियोंके मतानुसार परम-कारण ईश्वरको (विष्णुको) प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् कोई भी सर्वेश्वरेश्वर सर्वकारण-कारण विष्णुको नहीं मानता, (अपितु सभीने दूसरे-दूसरे मतोंका खण्डन करके अपने-अपने मतको स्थापित करनेका प्रयास किया है)। इसलिये महाजन जो कहते हैं, उसे ही 'सत्य' कहकर जानना होगा॥ **46-55**॥

महाभारतके वनपर्व (313/117)में—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥ 56॥

अनुवाद—तर्क सहजरूपमें ही प्रतिष्ठा-शून्य होता है, सभी श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, जिसका मत भिन्न न हो, वह 'ऋषि' ही नहीं हो सकता; इसलिये धर्मतत्त्व गूढ़रूपसे ढका हुआ है अर्थात् शास्त्रादि पढ़कर धर्मतत्त्वको जानना कठिन है। इसलिये जिन्हें साधुओंने 'महाजन' कहकर निर्णय किया है, वे जिस मार्गको 'शास्त्र-मार्ग' कहते हैं, उसी मार्गपर ही अन्य सभी व्यक्तियोंका चलना उचित है॥ **56**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 17/186 संख्या देखें॥ **56**॥

चैतन्यसिद्धान्त-वाणी ही अनुसरणके योग्य :—

श्रीकृष्णचैतन्य-वाणी—अमृतेर धार।
तिँहो ये कहये वस्तु, सेइ 'तत्त्व'—सार॥"57॥

अनुवाद—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी वाणी अमृतकी धाराके समान है। उन्होंने जिसे परमतत्त्व कहकर स्थापित किया है, वही सभी तत्त्वोंका सार है॥"**57**॥

महाराष्ट्र
देनेके लिये जाना :—

ए सब वृत्तान्त शुनि' महाराष्ट्र
प्रभुरे कहिते सुखे करिला गमन॥ 58॥

अनुवाद—यह सब वृत्तान्त सुनकर महाराष्ट्र ब्राह्मण बड़े आनन्दित होकर महाप्रभुको यह शुभ-संवाद सुनानेके लिये गये॥ **58**॥

काशीमें दैनिक नियमके अनुसार पञ्चनदमें स्नानके बाद महाप्रभुका श्रीबिन्दुमाधवके दर्शनके लिये जाना :—

हेनकाले महाप्रभु पञ्चनदे स्नान करि'।
देखिते चलियाछेन 'बिन्दुमाधव हरि'॥ 59॥

अनुवाद—उसी समय महाप्रभु पञ्चनदमें स्नान करनेके बाद 'बिन्दुमाधव हरि'के दर्शन करनेके लिये जा रहे थे॥ **59**॥

महाराष्ट्र
सुनकर महाप्रभुकी प्रसन्नता :—

पथे सेइ विप्र सब वृत्तान्त कहिल।
शुनि' महाप्रभु सुखे ईषत् हासिल॥ 60॥

अनुवाद—मार्गमें ही उन ब्राह्मणकी महाप्रभुसे भेंट हुई और उन्होंने महाप्रभुको प्रकाशानन्द सरस्वतीकी सभामें हुईं सब बातें कह सुनायी। उसे सुनकर महाप्रभु प्रसन्न होकर मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे॥ 60॥

श्रीबिन्दुमाधवके दर्शनसे महाप्रभुका आवेश और नृत्य :—

माधव-सौन्दर्य देखि' आविष्ट हइला।
अङ्गनेते आसि' प्रेमे नाचिते लागिला॥ 61॥

चारों भक्तोंका सङ्कीर्तन :—

शेखर, परमानन्द, तपन, सनातन।
चारिजन मिलि' करे नाम-सङ्कीर्त्तन॥ 62॥

नाम सङ्कीर्तन :—

"हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥"63॥

चारों ओरसे असंख्य लोगोंके द्वारा हरिध्वनि :—

चौदिकेते लक्ष लोक बले 'हरि' 'हरि'।
उठिल मङ्गलध्वनि स्वर्ग-मर्त्त्य भरि'॥ 64॥

अनुवाद—महाप्रभु बिन्दुमाधवके सौन्दर्यको देखकर प्रेमाविष्ट हो गये और मन्दिरके आँगनमें आकर प्रेमावेशमें नृत्य करने लगे। श्रीचन्द्रशेखर, श्रीपरमानन्द कीर्तनीया, श्रीतपन मिश्र, और श्रीसनातन गोस्वामी—चारों मिलकर नाम-सङ्कीर्तन करने लगे,—"कृष्ण, यादव, माधव, गोपाल, गोविन्द, राम, मधुसूदनादि जिनके ये सब नाम हैं, उन हरिको मैं नमस्कार करता हूँ।" चारों ओरसे लाखों लोग 'हरि' 'हरि' बोलने लगे। उस मङ्गलध्वनिसे पूरा ब्रह्माण्ड भर गया॥ 61-64॥

शिष्योंके साथ प्रकाशानन्दका वहाँ आगमन :—

निकटे हरिध्वनि शुनि' प्रकाशानन्द।
देखिते कौतुके आइला लञा शिष्यवृन्द॥ 65॥

अनुवाद—निकटसे ही आ रही हरिध्वनिको सुनकर श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती भी अपने शिष्योंको साथ लेकर उस स्थानपर कौतूहलवशतः आ पहुँचे॥ 65॥

महाप्रभुके नृत्य और प्रेम-माधुर्यके दर्शनसे उनका भी कीर्तन :—

देखिया प्रभुर नृत्य, प्रेम, देहेर माधुरी।
शिष्यगण-सङ्गे सेइ बले 'हरि' 'हरि'॥ 66॥

अनुवाद—महाप्रभुके नृत्य, उनके प्रेम और उनकी देहकी माधुरीको देखकर श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती भी अपने शिष्यों सहित 'हरि' 'हरि' बोलकर कीर्तन करने लगे॥ 66॥

भाव-दर्शनसे काशीवासियोंको विस्मय :—

हर्ष, दैन्य, चापल्यादि 'सञ्चारी' विकार।
देखि' काशीवासी लोकेर हैल चमत्कार॥ 67॥

अनुवाद—महाप्रभुमें हर्ष, दैन्य, चापल्यादि 'सञ्चारी' विकारोंको देखकर काशीवासी लोग आश्चर्यचकित हो गये॥ 67॥

लोगोंकी भीड़ और संन्यासियोंके दर्शनसे महाप्रभुके द्वारा अपने भाव-नृत्यका सम्वरण :—

लोकसंघट्ट देखि' प्रभुर 'बाह्य' यबे हैल।
संन्यासीर गण देखि' नृत्य सम्वरिल॥ 68॥

अनुवाद—लोगोंकी भीड़को देखकर जब महाप्रभुमें 'बाह्य' आवेश आया, तब वहाँ उपस्थित संन्यासियोंको देखकर उन्होंने नृत्य करना बन्द कर दिया॥ 68॥

महाप्रभु और प्रकाशानन्द, दोनोंके द्वारा परस्परकी वन्दना :—

प्रकाशानन्देर प्रभु वन्दिला चरण।
प्रकाशानन्द आसि' ताँर धरिल चरण॥ 69॥

अनुवाद—दैन्यताकी मूर्ति महाप्रभुने श्रीप्रकाशानन्दके चरणोंकी वन्दना की। परन्तु श्रीप्रकाशानन्दने आकर उनके चरणोंको पकड़ लिया॥ 69॥

महाप्रभुके द्वारा दैन्य-ज्ञापन :—

प्रभु कहे,—"तुमि जगद्गुरु पूज्यतम।
आमि तोमार ना हइ 'शिष्येर शिष्य' सम॥ 70॥

श्रेष्ठ हञा केने कर हीनेर वन्दन।
आमार सर्वनाश हय, तुमि ब्रह्म-सम॥ 71॥

यद्यपि तोमार सब ब्रह्म-सम भासे।
लोकशिक्षा लागि' ऐछे करिते ना आइसे॥"72॥

अनुवाद—महाप्रभुने स्वयंको एक भक्तके रूपमें प्रदर्शित करते हुए श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीसे कहा,—"आप परम पूजनीय जगद्गुरु हैं और मैं आपके शिष्यके शिष्यके समान भी नहीं हूँ। आप श्रेष्ठ होकर क्यों मुझ जैसे अधमकी वन्दना कर रहे हैं? आपके द्वारा ऐसा करनेसे तो मेरी भक्तिकी हानि होनेसे मेरा सर्वनाश हो जायेगा, क्योंकि आप तो ब्रह्मके समान हैं। यद्यपि आपको सभी ब्रह्मके समान प्रतीत होते हैं, तथापि आप लोक-शिक्षाके लिये ही सही, ऐसा मत कीजिये॥"70-72॥

महाप्रभुके चरणस्पर्शसे प्रकाशानन्दके द्वारा अपराधसे मुक्त होनेके विषयमें बतलाना :—

तेँहो कहे,—"तोमार निन्दा पूर्वे ये करिल।
तोमार चरण-स्पर्शे, सब क्षय गेल॥ 73॥

अनुवाद—श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीने कहा,—"मैंने पहले आपकी जो निन्दा की थी, आपके चरणोंका स्पर्श करनेसे मेरा वह अपराध अब दूर हो गया है॥ 73॥

मुक्तगणोंकी भी भगवद्-अपराधके फलसे बन्धनदशा :—
वासना-भाष्यमें उद्धृत परिशिष्ट-वचन—

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति संसारवासनाम्।
यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥ 74॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 74॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जीवन्मुक्त लोग भी यदि अचिन्त्य महाशक्तिशाली भगवान्के प्रति अपराध करते हैं, तो वे पुनः संसार-वासनामें पतित हो जाते हैं॥ 74॥

अनुभाष्य—

अचिन्त्यमहाशक्तौ (अप्राकृत-चिच्छक्तिमति) भगवति (अधोक्षजे) यदि अपराधिनः भवन्तिः, तदा जीवन्मुक्ताः अपि पुनः संसारवासनां (भोगवासनामूलम् अनर्थं) यान्ति (लभन्ते)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 74॥

भगवान्के चरण-स्पर्शसे अपराध-मोचन :—
श्रीमद्भागवत (10/34/9)—

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम्॥"75॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उस साँपने श्रीकृष्णके चरणके स्पर्शसे अशुभ-रहित होकर सर्प-शरीर परित्याग करके विद्याधरोंके द्वारा अर्चित पूर्वरूपको प्राप्त किया॥"75॥

अनुभाष्य—व्रजमें एक बार देवयात्रा अनुष्ठान-क्रियामें गोपराज श्रीनन्दने बन्धु-बान्धवों सहित सरस्वती नदीके तटपर उपस्थित होकर व्रत धारण करके स्वयं वनमें शयन किया था, उसी समय अङ्गिरस-ऋषियोंके उपहासके फलसे उनके अभिशापसे सर्प-योनिको प्राप्त सुदर्शन-नामक गन्धर्वने श्रीनन्दपर आक्रमण किया, श्रीनन्दके कातर होकर पुकारनेसे श्रीकृष्णने आकर उस सर्पपर चरणके द्वारा प्रहार किया और इस प्रकार श्रीनन्दकी सर्पके द्वारा ग्रास बनाये जानेसे रक्षा की। श्रीकृष्णके चरणके स्पर्शके फलसे सर्पका जो अशुभ दूर हुआ था, उसका ही श्रीशुकदेव परीक्षितको वर्णन कर रहे हैं,—

सः (सर्पः) वै भगवतः (कृष्णस्य) श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः (श्रीमतः पादस्य स्पर्शेन हतम् अशुभम्—अङ्गिरसां विरूपदर्शनात् तान् उपहसनेन तेभ्यः शापरूपं यस्य तथाभूतः सन्) सर्पवपुः (सर्पयोनिमित्यर्थः) हित्वा (परित्यज्य) विद्याधरार्चितं (विद्याधरेषु अर्चितं पूजितं) रूपं भेजे (प्राप)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 75॥

स्वयं भगवान् होनेपर भी लोकशिक्षाके लिये महाप्रभुका जगद्गुरु आचार्यके रूपमें स्वयंको दीन जीव मानना :—

प्रभु कहे,—"'विष्णु' 'विष्णु', आमि क्षुद्र जीव हीन।
जीवे विष्णु मानि—एइ अपराध-चिह्न॥ 76॥

पाषण्डियोंका कार्य अथवा परिचय :—

जीवे 'विष्णु' बुद्धि करे—येइ ब्रह्म-रुद्र-सम।
नारायणे माने, तारे 'पाषण्डीते' गणन॥ 77॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"'विष्णु', 'विष्णु'! मैं तो एक छोटा-सा तुच्छ जीव हूँ। जीवको विष्णु मानना अपराधका लक्षण है। साधारण जीवको 'विष्णु' माननेकी बात तो छोड़ो, जो ब्रह्मा-रुद्रको भी श्रीनारायणके समान मानता है, वह 'पाखण्डी' कहलाता है॥ 76-77॥

शास्त्र-प्रमाण :—

वैष्णवतन्त्र-वाक्य और पाद्मोतर-खण्ड (23/12)में—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥"78॥

अनुवाद—जो ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओंके साथ श्रीनारायणको 'समान' रूपमें देखते हैं, वे निश्चय ही 'पाखण्डी' हैं॥"78॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 18/116 संख्या देखें॥ 78॥

महाप्रभुमें प्रकाशानन्दका दृढ़ विश्वास और श्रद्धा :—

प्रकाशानन्द कहे,—"तुमि साक्षात् भगवान्।
तबु यदि कर ताँर 'दास'-अभिमान॥ 79॥

तबु पूज्य हओ तुमि आमा सबा हैते।
सर्वनाश हय, एइ तोमार निन्दाते॥ 80॥

अनुवाद—श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीने कहा,—"आप साक्षात् भगवान् हैं, परन्तु आप स्वयंमें भगवान्का 'दास' होनेका अभिमान कर रहे हैं। वैसा होनेपर भी आप हम सबके पूजनीय हैं, इसलिये आपकी निन्दा करनेसे मेरी पारमार्थिक सम्पत्तिका सर्वनाश हुआ है॥ 79-80॥

श्रीमद्भागवत (6/14/5)में—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥ 81॥

अनुवाद—हे महामुने, करोड़ों-करोड़ों मुक्तों और सिद्धोंमेंसे नारायण-परायण प्रशान्तात्मा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है॥ 81॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 19/150 संख्या देखें॥ 81॥

महत् अथवा वैष्णवकी निन्दासे सर्वनाश :—

श्रीमद्भागवत (10/4/46)में—

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥ 82॥

अनुवाद—मनुष्यके द्वारा महान् व्यक्तिका अनादर करनेसे उसकी आयु, श्री (सम्पत्ति), यश, धर्म, लोक-परलोक और आशीर्वाद—ये सब श्रेष्ठ वस्तुएँ नाश हो जाती हैं॥ 82॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 15/270 संख्या देखें॥ 82॥

श्रीमद्भागवत (7/5/32)में—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥ 83॥

अनुवाद—जब तक मनुष्योंकी मति निष्किञ्चन भगवद्भक्तोंकी पदधूलिके द्वारा अभिषिक्त नहीं होती, तब तक वह अनर्थनाशक श्रीकृष्णचरणकमलोंका स्पर्श नहीं कर पाती॥ 83॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 22/53 संख्या देखें॥ 83॥

अहङ्कारका त्याग करके श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणामके फलसे शुद्ध भक्तिकी प्राप्ति :—

एबे तोमार पादाब्जे उपजिबे भक्ति।
तथि लागि' करि तोमार चरणे प्रणति॥"84॥

अनुवाद—अब आपके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति उदित हो, इसी कारण मैं आपके चरणोंमें प्रणाम कर रहा हूँ॥"84॥

सभीका वहाँपर बैठना और प्रकाशानन्दकी महाप्रभुके मुखसे शङ्करके मायावादकी समालोचना और ब्रह्मसूत्रके वास्तविक तात्पर्यके श्रवणकी इच्छा :—

एत बलि' प्रभुरे लञा तथा बसिल।
प्रभुरे प्रकाशानन्द पुछिते लागिल॥ 85॥

"मायावादे करिला यत दोषेर आख्यान।
सबे एइ जानि' आचार्येर कल्पित व्याख्यान॥ 86॥

सूत्रेर करिला तुमि मुख्यार्थ-विवरण।
ताहा शुनि' सबार हैल चमत्कार मन॥ 87॥

तुमि त' ईश्वर, तोमार आछे सर्वशक्ति।
संक्षेपरूपे कह तुमि, शुनिते हय मति॥"88॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती महाप्रभुको लेकर वहीं बिन्दुमाधव मन्दिरमें बैठ गये और वे महाप्रभुसे पूछने लगे,—"आपने मायावाद-भाष्यमें जो जो दोष दिखलाये हैं, उन्हें सुनकर हम सब यह समझ गये कि श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा की गयी व्याख्या उनकी मनोकल्पना है [उसे हम लोग मुखसे तो मानते थे, किन्तु हृदयसे स्वीकार नहीं कर पाते थे]। आपने सूत्रोंके मुख्य अर्थके द्वारा जो व्याख्या की है, वह अति आश्चर्यजनक है और हम उसे हृदयसे स्वीकार कर पा रहे हैं। आप तो ईश्वर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, इसलिये आप व्यास-सूत्रके वास्तविक अर्थ बतलानेमें समर्थ हैं। अब आप वेदान्तसूत्रोंका अर्थ संक्षेपमें बतलाइये, उसे सुननेकी हमारी अभिलाषा है॥"85-88॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'संक्षेपरूपे कह'*—प्रत्येक सूत्रका मुख्य-अर्थ, जो आपने कहा था, उसे मैंने सुना है। अब मैं वेदान्तके मुख्य तात्पर्यको संक्षेपमें सुननेकी इच्छा करता हूँ॥ 88॥

श्रौतपन्थी महाप्रभुका दैन्यवशतः स्वयंको शिष्यरूपी दीन जीव मानकर व्यास-गुरु-पूजा :—

प्रभु कहे,—"आमि 'जीव', अति तुच्छ-ज्ञान!
व्याससूत्रेर गम्भीर अर्थ, व्यास—भगवान्॥ 89॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं एक साधारण 'जीव' हूँ, इसलिये मुझमें ज्ञान भी बहुत कम है। किन्तु व्याससूत्रका अर्थ तो बहुत गम्भीर है, क्योंकि व्यासदेव तो भगवान् हैं॥ 89॥

जीवोंके हितके लिये व्यासदेव स्वयं सूत्रकार होनेपर भी भाष्यकार, उसीमें वास्तविक तात्पर्यके बोधको स्वीकार करना :—

ताँर सूत्रेर अर्थ कोन जीव नाहि जाने।
अतएव आपने सूत्रार्थ करियाछे व्याख्याने॥ 90॥

येइ सूत्रकर्त्ता, से यदि करये व्याख्यान।
तबे सूत्रेर मूल अर्थ लोकेर हय ज्ञान॥ 91॥

अनुवाद—श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित सूत्रोंका अर्थ कोई भी जीव नहीं जान सकता है, इसलिये उन्होंने स्वयं ही सूत्रोंके अर्थकी व्याख्या की है। यदि सूत्रकी रचना करनेवाला स्वयं ही अपने द्वारा रचित सूत्रकी व्याख्या करे, तभी सूत्रके मुख्य अर्थको लोग जान सकते हैं॥ 90-91॥

वेदरूपी वृक्षका बीज—प्रणव, माता (अङ्कुर)—गायत्री, फल—चतुःश्लोकी भागवत :—

प्रणवेर येइ अर्थ, गायत्रीते सेइ हय।
सेइ अर्थ चतुःश्लोकीते विवरिया कय॥ 92॥

ब्रह्म-सम्प्रदायमें आम्नाय-परम्परामें भागवत-कीर्तन-वर्णन :—

ब्रह्मारे ईश्वर चतुःश्लोकी ये कहिला।
ब्रह्मा नारदे सेइ उपदेश कैला॥ 93॥

नारद सेइ अर्थ व्यासेरे कहिला।
शुनि' वेदव्यास मने विचार करिला॥ 94॥

ब्रह्मसूत्रके भाष्यस्वरूप चतुःश्लोकीका विस्तार अथवा भागवतकी रचनाका सङ्कल्प :—

'एइ अर्थ—आमार सूत्रेर व्याख्यानुरूप।
'भागवत' करिब सूत्रेर भाष्यस्वरूप॥'95॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 92-95॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रणव ही सभी वेदोंका 'महावाक्य' है। उस प्रणवमें जो अर्थ है, वही गायत्रीमें है और वही अर्थ श्रीमद्भागवतमें चतुःश्लोकीके 'अहमेवासमेवाग्रे' इस श्लोकसे चौथे श्लोक तकमें विवृत हुआ है। भगवान्से ब्रह्मा, ब्रह्मासे नारद, नारदसे श्रीव्यास,—इस प्रकार सम्प्रदाय-परम्परासे सभी वेदोंका ज्ञान और उनका तात्पर्य श्रीमद्भागवतमें आया है। श्रीमद्भागवत ही 'ब्रह्म सूत्रका भाष्य'-स्वरूप है॥ 92-95॥

वेद और उपनिषदोंके सारका भली-भाँति उद्धार :—

चारिवेद-उपनिषदे यत किछु हय।
तार अर्थ लञा व्यास करिला सञ्चय॥ 96॥

अनुवाद—श्रीव्यासदेवने चारों वेदों और उपनिषदोंके समस्त तात्पर्यको संग्रह करके उसे सूत्ररूपमें वेदान्त-सूत्रमें दिया है॥ 96॥

सूत्रके मूल-स्वरूप श्रुति मन्त्रसमूह ही भागवतमें श्लोकोंके आकारमें निबद्ध :—

येइ सूत्रे येइ ऋक्—विषय-वचन।
भागवते सेइ ऋक् श्लोके निबन्धन॥ 97॥

अनुवाद—वेदान्तसूत्रमें वेदोंके मन्त्रोंका उद्देश्य वर्णित है। श्रीमद्भागवतमें वेदमन्त्रोंका वही उद्देश्य अठारह हजार श्लोकोंके रूपमें वर्णित हुआ है॥ 97॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'ऋक्'*—वेदमन्त्र; *'विषयवचन'*—उद्देश्य। श्रीमद्भागवतमें वे ही 'ऋक्' श्लोकके रूपमें निबद्ध हुए हैं॥ 97॥

उपनिषदोंके मन्त्रोंके अर्थ ही भागवतके श्लोकोंमें व्यक्त :—

अतएव ब्रह्मसूत्रेर भाष्य—श्रीभागवत।
भागवत-श्लोक, उपनिषत् कहे 'एक' मत॥ 98॥

अनुवाद—इसलिये ब्रह्मसूत्रके भाष्य श्रीमद्भागवतके श्लोकों और उपनिषदोंके मन्त्रोंका एक ही तात्पर्य है॥ 98॥

दृष्टान्त; सब कुछ ही विष्णुमय है, उसके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है, भोक्ताकी बुद्धिका त्यागकर युक्त-वैराग्यके साथ सभी विषय विष्णुसे सम्बन्धित अथवा विष्णुके भोगके रूपमें सेव्य :—
श्रीमद्भागवत (8/1/10)में—

आत्मावास्यामिदं विश्वं
यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा
गृधः कस्यचिद्धनम्॥ 99॥

अनुवाद—यह संसार और इसमें रहनेवाले सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी ईश्वरकी सत्ता और चेतनाके द्वारा व्याप्त हैं। इसलिये ईश्वरके द्वारा प्रदत्त समस्त विषयोंका उपभोग करो, किन्तु किसी अन्यके धनकी आकाङ्क्षा न करो॥ 99॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो कुछ भी इस जगत्में देख रहे हो, वह सब कुछ ही अर्थात् यह विश्व ही आत्माके द्वारा व्याप्त है। हे जीवों, वे आत्मा ही तुम्हारे नियन्ता और पालन करनेवाले हैं, जो कुछ द्रव्य तुम्हें प्राप्त हुए हैं, उन्हें उनके द्वारा कृपापूर्वक दिये गये द्रव्य समझकर जगत्के समस्त द्रव्योंका भोग करो, अन्योंका धन हरण मत करना। तात्पर्य यह है कि जिस ब्रह्मसूत्रका ईशोपनिषदके "ईशावास्यमिदं जगत्"-मन्त्र अर्थात् श्रुतिमन्त्र उद्देश्य है, श्रीमद्भागवतमें वही ऋक् (मन्त्र) "आत्मावास्यमिदं" कहकर श्लोकके रूपमें निबद्ध हुआ है। इस प्रकार समस्त सूत्रोंके ही समस्त ऋक्-वचन भागवतके श्लोकोंमें निबद्ध हैं॥ 99॥

अनुभाष्य—परीक्षितके द्वारा स्वायम्भुव-मनुकी वंशावलीका श्रवण करके अन्यान्य मनुओंके विषय और मन्वन्तरावतारोंके क्रिया-कलापकी जिज्ञासा करने पर, श्रीशुक सर्वप्रथम मनुकी उक्ति बतला रहे हैं,—

जगत्यां (लोके) यत् किञ्चित् जगत् (बद्धजीवभोग्यं मायाशक्ति-परिणतम् इन्द्रियसुखकरं, तत्) इदं विश्वं (सर्वम्) आत्मावास्यं (प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन अप्राकृतदर्शनेन आत्मना भगवता

आवास्यं सत्ता-चैतन्याभ्यां व्याप्यं) तेन (हेतुना) त्यक्तेन (सेवाकामाय भगवदर्पणेन, यद्वा,) तेन (ईश्वरेण) त्यक्तेन (किञ्चित् त्यक्तं दत्तं यद्धनं तेनैव भगवत्त्यक्तोच्छिष्टत्वेनेत्यर्थः) भुञ्जीथाः (गृहाण, स्वीकुर्वित्यर्थः); कस्यचित् (जड़भोक्तृबुद्ध्या आसक्तस्य जनस्य सम्बन्धे) धनं (भगवदितर-माया-दर्शनार्थ प्राकृत-विषयभोगादिकं) मा गृधः (नैवाकाङ्क्षीः;—तथा च श्रुतिः "ईशावास्यमिदम्" इति यथा श्लोकमेव)।

श्लोक-भावानुवाद—इस लोकमें बद्धजीवके भोगके लिये मायाशक्ति-परिणत इन्द्रियसुखकर वस्तुएँ (प्रेमाञ्जनसे युक्त भक्तिनेत्रोंके द्वारा जिनका अप्राकृत दर्शन होता है, उन) भगवान्‌की सत्ता और चैतन्यके द्वारा व्याप्त हैं, इसलिये वे भगवत्सेवा हेतु ही भगवान्‌के द्वारा प्रदान की गयी हैं, इस भावसे उन्हें स्वीकार करना चाहिये। जड़भोगबुद्धिसे अन्य किसीके प्राकृत विषयभोगोंकी आकाङ्क्षा मत करो (श्रुतिमें कहे गये मन्त्र "ईशावास्यमिदम्"के अनुरूप यह भागवतका श्लोक है)॥ 99॥

आदि चतुःश्लोकी-भागवतमें सम्बन्ध-
अभिधेय-प्रयोजन निरूपित :—

भागवतेर सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।
चतुःश्लोकीते प्रकट तार करियाछे लक्षण॥ 100॥

अनुवाद—श्रीमद्भागवतमें आलोचित सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन-तत्त्वके लक्षण चतुःश्लोकीमें ही व्यक्त किये गये हैं॥ 100॥

श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्माको चतुःश्लोकीमें वर्णित
तीन तत्त्वोंकी संक्षेपमें व्याख्या—
विषयबोधरूपी भगवत्-स्वरूप-निर्धारण ही केवल
चिन्मात्रमय 'ज्ञान', आश्रयकी चिद्-विलासानुभवरूपी
भगवद्स्फूर्ति ही 'विज्ञान', रहस्य अथवा प्रेम ही 'प्रयोजन',
तदङ्ग (उसका अङ्ग) साधनभक्ति ही 'अभिधेय' :—

'आमि—'सम्बन्ध'-तत्त्व, आमार ज्ञान-विज्ञान।
आमा पाइते साधन-भक्ति 'अभिधेय'-नाम॥ 101॥

साधनेर फल—'प्रेम' मूल-प्रयोजन।
सेइ प्रेमे पाय जीव आमार 'सेवन'॥ 102॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने कहा,—'मैं ही सभी सम्बन्धोंका मूल केन्द्र हूँ और मेरा ज्ञान-विज्ञान ही 'सम्बन्ध'-तत्त्व है। मुझे प्राप्त करनेके लिये जो साधन-भक्ति की जाती है, उसका नाम 'अभिधेय' है। साधनका फल 'प्रेम' है, वही मूल-प्रयोजन है और उसी प्रेमसे ही जीव मेरी 'सेवा'को प्राप्त करता है॥ 101-102॥

छय श्लोकोंमेंसे चतुःश्लोकीके अतिरिक्त इस
श्लोकमें सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनका वर्णन;
ज्ञान और विज्ञान ही 'सम्बन्ध', रहस्य ही
'प्रयोजन', उसका अङ्ग ही 'अभिधेय' :—
श्रीमद्भागवत (2/9/30)में—

ज्ञानं मे परमगुह्यं यद्विज्ञान-समन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥ 103॥

अनुवाद—श्रीभगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा,—"हे ब्रह्मन्! मेरे स्वरूपकी उपलब्धिरूप विज्ञान और रहस्यमयी प्रेमाभक्तिके साथ शब्द-शास्त्रोंका प्रतिपाद्य मेरा अत्यन्त गोपनीय ज्ञान तथा उस प्रेमाभक्तिके अङ्ग—साधनभक्तिको मैं बतला रहा हूँ, तुम इसे ग्रहण करो॥ 103॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/51 संख्या देखें॥ 103॥

अवरोह-पन्थामें भगवद्-कृपाके प्रभावसे तत्त्वकी स्फूर्त्ति :—

एइ 'तिन' तत्त्व आमि कहिनु तोमारे।
'जीव' तुमि एइ तिन नारिबे जानिबारे॥ 104॥

अनुवाद—सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन—इन तीन तत्त्वोंके विषयमें मैं तुम्हें बतलाऊँगा। हे ब्रह्मा, तुम 'जीव' हो, अपने प्रयाससे तुम इन्हें नहीं जान सकते॥ 104॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*"जीव' तुमि'*—हे ब्रह्मन्, तुम 'जीव' हो, मेरी कृपाके बिना तुम परम गुह्य ज्ञानको नहीं जान पाओगे॥ 104॥

अनुभाष्य—*'एइ तिन'*—सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन॥ 104॥

नामरूपगुणलीलामय भगवान् केवल 'निर्विशेष' नहीं :—

यैछे आमार 'स्वरूप', यैछे आमार 'स्थिति'।
यैछे आमार गुण, कर्म, षड़ैश्वर्य-शक्ति॥ 105॥

आमार कृपाय एइ सब स्फुरुक तोमारे।'
एत बलि' तिन तत्त्व कहिला ताँहारे॥ 106॥

अनुवाद—जैसा मेरा 'स्वरूप' है, जैसी मेरी स्थिति है, जैसे मेरे गुण, कर्म और षड़ैश्वर्यमयी शक्ति है, मेरी कृपासे ये सब तुम्हारे हृदयमें स्फुरित हों।' यह कहकर भगवान् ब्रह्माको तीनों तत्त्वोंकी शिक्षा प्रदान करने लगे॥ 105-106॥

छः श्लोकोंमें चतुःश्लोकीके अतिरिक्त इस श्लोकमें कृपारूपी आशीर्वाद-वर्षण :—
श्रीमद्भागवत (2/9/31)—

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥ 107॥

अनुवाद—मेरा स्वरूप, मेरा लक्षण, मेरा रूप, मेरे गुण और मेरी लीलाएँ जिस प्रकार हैं, उन सबका तत्त्वविज्ञान मेरी कृपासे तुम्हें प्राप्त हो॥ 107॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/52 संख्या देखें॥ 107॥

चतुःश्लोकीकी व्याख्या आरम्भ; उसमेंसे प्रथम श्लोकमें सम्बन्ध-तत्त्व अहं-शब्दसे कहे गये स्वरूपशक्तिमान् नित्य-सत्य-सनातन-विग्रह श्रीकृष्णके 'ज्ञान'का लक्षण :—

'सृष्टिर पूर्वे षड़ैश्वर्यपूर्ण आमि त' हइये।
'प्रपञ्च', 'प्रकृति', 'पुरुष' आमातेइ लये॥ 108॥

सृष्टि करि' तार मध्ये आमि त' बसिये।
प्रपञ्च ये देख सब, सेह आमि हइये॥ 109॥

प्रलये अवशिष्ट आमि 'पूर्ण' हइये।
प्राकृत प्रपञ्च पाय आमातेइ लये॥'110॥

अनुवाद—श्रीभगवान्ने ब्रह्मासे कहा,—'सृष्टिसे पहले षड़ैश्वर्यपूर्ण केवल मैं ही था, प्रपञ्च, प्रकृति और जीव मुझमें ही लय थे। सृष्टि करनेके बाद मैं उसमें प्रवेश कर जाता हूँ। प्रपञ्चमें तुम जो कुछ भी देखते हो, वह सब मेरी ही शक्तिका विस्तार है। प्रलय होनेपर भी अन्तमें मैं 'पूर्ण' ही रहता हूँ और सृष्ट प्राकृत प्रपञ्च मुझमें ही लय हो जाता है॥'108-110॥

चतुःश्लोकीका प्रथम श्लोक :—
श्रीमद्भागवत (2/9/32)में—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ 111॥

अनुवाद—इस जगत्की सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। सत्, असत् और अनिर्वचनीय निर्विशेष ब्रह्म तक कुछ भी मुझसे पृथक् रूपसे नहीं था। सृष्टि होनेके बाद इस सम्पूर्ण-स्वरूपमें मैं ही हूँ और सृष्टिकी प्रलय होनेके बाद भी एकमात्र मैं ही अवशिष्ट रहूँगा॥ 111॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/53 संख्या देखें॥ 111॥

श्लोकका तात्पर्य—श्रीकृष्णका सच्चिदानन्द विग्रह होना :—

"अहमेव"-श्लोके 'अहम्'—तिनबार।
पूर्णैश्वर्ये-विग्रहेर स्थितिर निर्द्धार॥ 112॥

अनुवाद—"अहमेव"-श्लोकमें 'अहम्' शब्द तीन बार आया है जो पूर्णैश्वर्य-विग्रहकी स्थितिको निर्धारित करता है॥ 112॥

अनुभाष्य—'अहमेव' श्लोकमें तीन बार 'अहम्' शब्द है। प्रथम चरणमें 'अहमेव'-पदमें, तृतीय-चरणमें 'पश्चादहं'-पदमें और चतुर्थ-चरणमें 'सोऽस्म्यहं'-पदमें 'अहं'-शब्द विद्यमान है; इसके द्वारा भगवान्का व्यक्तिगत विग्रह निर्धारित हुआ—वे केवल निर्विशेष नहीं हैं॥ 112॥

निराकारवादियोंका खण्डन :—

ये 'विग्रह' नाहि माने, 'निराकार' माने।
तारे तिरस्करिवारे करिला निर्द्धारणे॥ 113॥

अनुवाद—जो 'विग्रह'को नहीं मानता, निराकारको ही मानता है, उसके भ्रमको दूर करनेके लिये ही भगवान्ने तीन बार 'अहम्' शब्दका प्रयोग किया है॥ 113॥

अनुभाष्य—निर्विशेषवादी भगवान्‌के व्यक्तिगत सविशेष विग्रहको स्वीकार नहीं करते, इसलिये उनका विचार भ्रमपूर्ण और सब प्रकारसे त्याज्य है—इसी बातकी हृदयमें धारणा करानेके लिये तीन बार 'अहमेव' कहकर 'सम्बन्ध' स्थापित किया है॥ 113॥

चतुःश्लोकीके द्वितीय श्लोकमें 'अन्तरङ्ग-स्वरूप'के अतिरिक्त 'तटस्थ-जीव' और 'बहिरङ्गा गुण-माया'-शक्तिका लक्षण और उसकी प्रतीतिका विचार; जीवका भी गुण-मायातीत-स्वरूप, अथवा अन्तरङ्ग-दर्शनमें निरपेक्ष विशुद्ध स्वरूपानुभव अथवा—'विज्ञान'; जीव अथवा गुणमायाका दर्शन 'स्वरूप-दर्शन' नहीं :—

एइ सब शब्दे हय—'ज्ञान'-'विज्ञान'-विवेक।
माया-कार्य, माया हैते आमि—व्यतिरेक॥ 114॥

अनुवाद—[चतुःश्लोकीके प्रथम और द्वितीय श्लोकके] शब्दोंसे भगवतत्त्वके 'ज्ञान' और 'विज्ञान'का (भगवद्-स्वरूपकी अनुभूतिका) विवेक (यथार्थ ज्ञान) प्राप्त होता है। मायाका कार्य—जगत् और माया, दोनों भगवान्‌की शक्ति हैं, तो भी भगवान् इन दोनोंसे भिन्न हैं॥ 114॥

सूर्य, आभास और तमः—एक ही वस्तुकी विभिन्न प्रतीतियोंका दृष्टान्त :—

यैछे सूर्येर स्थाने भासये 'आभास'।
सूर्य बिना स्वतः तार ना हय प्रकाश॥ 115॥

'ज्ञान' और 'विज्ञान'को लेकर ही सम्बन्ध-तत्त्व निरूपित :—

मायातीत हैले हय आमार 'अनुभव'।
एइ 'सम्बन्ध'-तत्त्व कहिलुँ शुन आर सब॥ 116॥

अनुवाद—जैसे कभी सूर्यके स्थानपर उसका प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है, परन्तु उसका प्रकाश सूर्यसे स्वतन्त्र नहीं है। मायाके बन्धनसे मुक्त होनेपर ही मेरा अनुभव होता है, इसी सम्बन्ध-तत्त्वको मैंने प्रथम दो श्लोकोंमें कहा है। अब अन्य तत्त्वोंके (अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वोंके) विषयमें सुनो॥ 115-116॥

अनुभाष्य—*'ज्ञान'*—शास्त्रसे उत्पन्न, *'विज्ञान'*—अनुभव। गुरु अथवा शास्त्रके अतिरिक्त अन्य कहींसे आनेवाला 'विवेक' बहुत बार मनोधर्म अथवा निर्विशेष-परायण होता है। अपनी अनुभूतिसे विवेकके उदित होनेपर भगवद्-विग्रहकी उपलब्धि होती है। भगवान्‌का अपना-विग्रह—माया और मायिक कार्यसे भिन्न है। विज्ञानके उदित नहीं होने तक जीवको यह बोध नहीं होता। जिस प्रकार सूर्यसे किरणें प्रकाशित होती हैं, किन्तु किरणें—सूर्यसे भिन्न हैं, पुनः सूर्यके बिना किरणोंका स्वतन्त्र प्रकाश भी सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार भगवान् और माया—इन दोनोंकी (विजातीय) विभिन्न प्रतीतिको जीव मायासे अतीत नहीं होनेपर अनुभव नहीं करता अर्थात् मायाबद्ध-बुद्धिसे भगवद्-विग्रहको समझा नहीं जा सकता॥ 115-116॥

चतुःश्लोकीका द्वितीय श्लोक :—
श्रीमद्भागवत (2/9/33)में—

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥ 117॥

अनुवाद—पिछले श्लोकमें परमतत्त्वके स्वरूप-ज्ञानका निर्णय किया गया। किन्तु स्वरूपसे भिन्न तत्त्वका ज्ञान स्वरूपतत्त्वके ज्ञानको जब तक दृढ़ नहीं करता, तब तक वह विज्ञान नहीं होता। स्वरूपतत्त्वसे भिन्न तत्त्वका नाम 'माया' है। उसी मायातत्त्वका ज्ञान इस श्लोकमें वर्णन किया गया है। स्वरूपतत्त्व ही 'अर्थ' अर्थात् यथार्थ तत्त्व है। उस तत्त्वके बाहर जो प्रतीत होता है और उस स्वरूप-तत्त्वमें जिसकी प्रतीति नहीं है, उसीको ही आत्मतत्त्वके मायावैभव रूपमें जानना होगा। इस तत्त्वको समझना सहज नहीं है, इसलिये यहाँ दो प्रादेशिक उदाहरण दिये जा रहे हैं। स्वरूपतत्त्वको सूर्यके समान मानो। सूर्यसे भिन्न तत्त्व दो रूपोंमें प्रतीत होता है—एक रूप 'आभास' और दूसरा रूप 'तमः'। जब सूर्यकी प्रतिछवि जलसे किसी दूसरे स्थानमें पड़ती है, तब उसको 'आभास' कहा जाता है। सूर्यका प्रभाव

जिस स्थानमें दिखलायी नहीं देता, उसको 'तमः' अथवा 'अन्धकार' कहा जाता है। चित्-जगत् भगवत्स्वरूपकी किरणस्वरूप है। उसके समान ही दिखायी देनेवाला आभासरूप मायावैभव है; यही आभासका उदाहरण है। चित्-तत्त्वसे बहुत दूर अन्धकार जो मायावैभव है; वही दूसरा उदाहरण है। तात्पर्य यह है कि आत्मतत्त्व और मायातत्त्वका परस्पर दो प्रकारका सम्बन्ध है; पहला सम्बन्ध इस प्रकार है—आत्मस्वरूपके अतिरिक्त जो भी अन्य स्वरूप प्रकाशित होता है, वह 'माया' है और आत्मस्वरूपसे बहुत दूर अनात्म अज्ञान भी माया है॥ 117॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/54 संख्या देखें॥ 117॥

चौथे श्लोकमें श्रौतपन्थामें देश-काल-पात्र-दशाके निरपेक्ष अभिधेय साधन-भक्तिकी आवश्यकताका विचार :—

'अभिधेय' साधनभक्तिर शुनह विचार।
सर्व-जन-देश-काल-दशाते व्याप्ति यार॥ 118॥

अनुवाद—अब 'अभिधेय' जो साधनभक्ति है, उसके विषयमें सुनो। इस साधनभक्तिका अनुष्ठान सभी व्यक्तियोंके द्वारा, सभी स्थानोंपर, सब समयमें और सभी अवस्थाओंमें किया जा सकता है॥ 118॥

अनुभाष्य—अभिधेय 'साधनभक्ति' सभी पात्र, देश, काल और अवस्थामें व्याप्त रहती है॥ 118॥

साधनभक्तिका अभिधेय—चतुर्वर्गसे अतीत :—

'धर्मादि' विषये यैछे ए 'चारि' विचार।
साधन-भक्ति—एइ चारि विचारेर पार॥ 119॥

अनुवाद—धर्मादिके (धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके) विषयमें देश-काल-पात्र-अवस्था—इन चारोंका विचार होता है। साधनभक्तिके अनुष्ठानमें इनका कोई विचार नहीं होता अर्थात् साधनभक्ति इन सबसे अतीत है॥ 119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गुरुसे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये जिस प्रकार धर्मशास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार तत्त्वोंका विचार हुआ है, तत्त्वशास्त्रमें भी उसी प्रकार विचार करनेके लिये 'ज्ञान', 'विज्ञान', 'तदङ्ग' और 'तद्-रहस्य'का उपदेश किया गया है। किन्तु यहाँपर देखने योग्य यह है कि धर्मादि चार विषय सामान्य संसार-नीतिके अनुगत हैं, किन्तु इन तात्त्विक चारोंका (ज्ञान-विज्ञानादिका) विचार वैसा नहीं है। तात्त्विक चारोंमें प्राथमिक जो साधनभक्ति है, वह भी धर्मादि चार तत्त्वोंसे ऊपर अथवा श्रेष्ठ है॥ 119॥

सद्गुरुकी सेवा और परिप्रश्नके द्वारा दिव्य-ज्ञानकी प्राप्तिके साथ शुद्धभक्तिके तत्त्वको श्रवण करनेकी आवश्यकता :—

सर्व-देश-काल-दशाय जनेर कर्त्तव्य।
गुरु-पाशे सेइ भक्ति प्रष्टव्य, श्रोतव्य॥ 120॥

अनुवाद—सभी देशोंमें, सब समय और सभी अवस्थाओंमें सभी व्यक्तियोंका कर्त्तव्य है कि वे गुरुसे भक्तिके विषयमें ही जिज्ञासा करें तथा उसीके विषयमें सुनें॥ 120॥

चतुःश्लोकीका चतुर्थ श्लोक :—
श्रीमद्भागवत (2/9/35)में—

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ 121॥

अनुवाद—आत्मतत्त्वके जिज्ञासु व्यक्ति मेरे स्वरूपतत्त्वका अन्वय-व्यतिरेक क्रमसे अथवा विधि-निषेधके द्वारा विचार करके जो वस्तु सर्वत्र और सर्वदा नित्य है, उस विषयमें ही प्ररिप्रश्न करेंगे॥ 121॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/56 संख्या देखें॥ 121॥

तीसरे-श्लोकमें अभिधेयके अङ्गी 'रहस्य' अथवा प्रयोजनका वर्णन; भक्तके हृदयमें भक्तके प्रेमके वशीभूत भगवान् और भगवान्के हृदयमें भगवान्के प्रेमके वशीभूत भक्त—परस्पर—समाश्लिष्ट अथवा आलिङ्गन करता हुआ विग्रह; भक्त और भगवान्में अचिन्त्यभेदाभेद :—

आमाते ये 'प्रीति', सेइ 'प्रेम'—'प्रयोजन'।
कार्यद्वारे कहि तार स्वरूप-लक्षण॥ 122॥

पञ्चभूत यैछे भूतेर भितरे-बाहिरे।
भक्तगणे स्फुरि आमि बाहिरे-अन्तरे॥ 123॥

अनुवाद—मुझमें जो 'प्रीति' है, वही प्रेम है और वही जीवका चरम 'प्रयोजन' है। व्यवहारिक उदाहरणके द्वारा प्रेमके स्वरूप लक्षणका वर्णन करूँगा। पञ्चभूत (भूमि-जलादि) जैसे जीवोंके भीतर और बाहर व्याप्त हैं, उसी प्रकार मैं भी भक्तोंके हृदयमें तथा उनके सामने बाहर स्फुरित होता हूँ॥ 122-123॥

अनुभाष्य—जिस प्रकार प्राणियोंके भीतरमें और बाहरमें पञ्चभूत हैं, उसी प्रकार मैं भक्तोंके भीतरमें और बाहरमें स्फूर्त्तिके द्वारा प्राप्त होता हूँ। भक्त स्वयंको भगवान्‌की प्रीति-सेवाका उपकरण-विग्रह समझते हैं और भक्तिके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको भी भगवद्-प्रीतिसेवाका उपकरण मात्र ही समझते हैं॥ 123॥

चतुःश्लोकीका तृतीय श्लोक :—
श्रीमद्भागवत (2/9/34)में—

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ 124॥

अनुवाद—जिस प्रकार समस्त महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) बृहद् और क्षुद्र (ब्रह्मासे एक चींटीतक) सभी जीवोंके भीतर प्रविष्ट (संलग्न) होकर भी अप्रविष्ट रूपमें (बाहर) स्वतन्त्र विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार मैं भूतमय (भौतिक) जगत्‌में सभी जीवोंमें सत्त्वाश्रयरूप परमात्माके रूपमें प्रविष्ट होनेपर भी पृथक् भगवत् स्वरूपमें नित्य विराजमान होता हूँ और भक्तोंका एकमात्र प्रेमास्पद (प्रेमका विषय) हूँ। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये सभी महाभूत पाँच रूपोंमें होकर जैसे इस स्थूल-जगत्‌को प्रकाश करते हुए उसके उपकरण रूपमें उसके भीतर रहनेपर भी महाभूत अवस्थामें स्वतन्त्र हैं, इसी प्रकार चिन्मय परमेश्वर अपनी जड़शक्ति और जीवशक्तिके द्वारा जगत्‌की सृष्टि करके एकांशमें जगत्‌में सर्वव्यापी होकर रहनेपर भी युगपत् अर्थात् एक ही समयमें अपने चिद्धाममें पूर्ण चिन्मय-विग्रहरूपमें भी नित्य विराजमान रहते हैं। और चित्-विग्रहके किरण-परमाणुस्वरूप जीव शुद्ध-प्रेममार्गमें उनके विमल-प्रेमका आस्वादन करते हैं—यही रहस्य है॥ 124॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/55 संख्या देखें॥ 124॥

भगवान् भक्तके प्रेमपाशमें आबद्ध :—

भक्त आमा बान्धियाछे हृदय-कमले।
याँहा नेत्र पड़े ताँहा देखये आमारे॥ 125॥

अनुवाद—भक्तोंने मुझे अपने हृदय-कमलमें बाँधकर रखा हुआ है और उनके नेत्र जहाँ भी पड़ते हैं, वे वहींपर मुझे ही देखते हैं॥ 125॥

श्रीमद्भागवत (11/2/55)में—

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-
द्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरसनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥ 126॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 126॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उदासीन होकर भी पुकारे जानेपर सर्वपाप-विनाशक जिसके हृदयका परित्याग नहीं करते, प्रणयकी रस्सीके द्वारा उनके चरणकमल जिसके हृदयमें आबद्ध हैं, वही 'भागवत-प्रधान' है॥ 126॥

अनुभाष्य—विदेहराज निमिके द्वारा तीन प्रकारके भक्तों अथवा भागवतोंके लक्षण, आचरण और तारतम्यके विषयमें जिज्ञासा करनेपर, उसके उत्तरमें नवयोगेन्द्रोंमेंसे एक हवि-ऋषिने कहा,—

अवशाभिहितः (अवशेन कीर्त्तितः) अपि अघौघनाशः (अघौघम् अपराधपुञ्जं नाशयति यः सः) हरिः (एव) साक्षात् यस्य हृदयं न विसृजति (मुञ्चति), प्रणयरसनया (प्रेमरज्जुना) धृताङ्घ्रिपद्मः (धृतम् अन्तर्बद्धम् अङ्घ्रिपद्मं चरणकमलं येन सः) सः भागवतप्रधानः (इति) उक्तः भवति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 126॥

श्रीमद्भागवत (11/2/45)में—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ 127॥

अनुवाद—जो उत्तम भागवत होते हैं, वे सभी प्राणियोंमें आत्माके भी आत्मरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ही देखते हैं और आत्माके आत्मस्वरूप श्रीकृष्णमें समस्त जीवोंको देख पाते हैं॥ 127॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/274 संख्या देखें॥ 127॥

चिन्मय आश्रयको सर्वत्र श्रीकृष्ण सम्बन्धि-
चिन्मय-वस्तुका दर्शन :—
श्रीमद्भागवत (10/30/4)में—

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम्।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्॥ 128॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 128॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक साथ मिलकर गोपियाँ श्रीकृष्णके गुणोंका उच्च-स्वरसे गान करते-करते उन्मत्तकी भाँति श्रीकृष्णको एक वनसे अन्य वनमें ढूँढ़ने लगीं और आकाशकी भाँति बाहर और अन्तरमें स्थित उन परमपुरुष श्रीकृष्णके विषयमें वनस्पतियोंसे पूछने लगीं॥ 128॥

अनुभाष्य—रासस्थलीसे श्रीकृष्णके अचानक श्रीराधाके साथ अन्तर्धान होनेपर श्रीकृष्णमें समर्पित चित्तवाली कृष्णमयी गोपियाँ श्रीकृष्णकी विविध चेष्टाओंका अनुकरण करते हुए विरहमें सन्तप्त होकर इधर-उधर श्रीकृष्णको ढूँढ़ने लगीं, श्रीशुकदेव परीक्षितसे उसका वर्णन रहे हैं,—

संहताः (अन्योऽन्यं सम्मिलिताः सत्यः) उच्चैः गायन्त्यः वनाद् वनं (वनान्तरम्) अमुं (कृष्णम्) एव उन्मत्तकवत् विचिक्युः (अमृगयन्); आकाशवत् (महाभूतवत्) भूतेषु (प्राणिषु) बहिः अन्तरं (मध्ये) सन्तं (वर्त्तमानं) पुरुषं (प्रेमविवर्त्तवशात् सर्वत्र कृष्णस्फूर्त्तयः सत्यः) वनस्पतीन् (चेतन-मयान् दृष्ट्वा) पप्रच्छुः (जिज्ञासयामासुः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 128॥

भागवतमें सर्वत्र सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-तत्त्व वर्णित :—

अतएव भागवते एइ 'तिन' कय।
सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-मय॥ 129॥

अनुवाद—इसलिये भागवतमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन—इन तीन तत्त्वोंकी ही सर्वत्र आलोचना हुई है॥ 129॥

सम्बन्ध-द्योतक श्लोकका दृष्टान्त :—
श्रीमद्भागवत (1/2/11) में—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ 130॥

अनुवाद—तत्त्वको जाननेवाले विज्ञगण अद्वयज्ञानको तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञानकी प्रथम प्रतीति ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति परमात्मा और तृतीय प्रतीति भगवान् हैं॥ 130॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/11 संख्या देखें॥ 130॥

भागवतमें सर्वत्र अभिधेय 'कृष्णभक्ति' वर्णित :—

एइ—'सम्बन्ध', शुन 'अभिधेय'-भक्ति।
भागवते प्रति-श्लोके व्यापे यार स्थिति॥ 131॥

अनुवाद—यह जीवका भगवान्से 'सम्बन्ध' है, अब आप 'अभिधेय'-भक्तिके विषयमें सुनिये। भागवतका प्रत्येक श्लोक अभिधेय-भक्तिको ही बतलाता है॥ 131॥

अनुभाष्य—यहाँपर पाठान्तरमें और भी दो श्लोक उद्धत हुए हैं—(1) भाः (3/5/23)—

"भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः।
आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः॥"

अर्थात् "सृष्टिसे पहले यह विश्व भगवान्के साथ एक था; जीवोंके अर्थ-स्वरूप और वैकुण्ठादि अनेक

वैभवके उपलक्षणसे युक्त होकर उस समय सृष्टि आदिकी इच्छा उन्हींमें लीन थी और वही भगवान् ही अद्वयतत्त्वके रूपमें विराजित थे।" (2) भाः (1/3/28)—

"एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे॥"

अर्थात् "राम-नृसिंहादि, पुरुषावतारके अंश या कला (अंशके अंश) हैं, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। दैत्योंके द्वारा पीड़ित लोगोंकी प्रत्येक युगमें ये (अवतार) रक्षा करते हैं।" भागवतके प्रत्येक श्लोकमें ही अभिधेय साधन-भक्तिकी कथा है॥ 131॥

अभिधेय-द्योतक श्लोकका दृष्टान्त :—
श्रीमद्भागवत (11/14/21)में—

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥ 132॥

अनुवाद—साधुओंका प्रिय मैं, अनन्य श्रद्धासे उत्पन्न भक्तिके द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। भक्ति ही मुझमें निष्ठा रखनेवाले चण्डालका भी जन्मदोषसे उद्धार करती है॥ 132॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 20/138 संख्या देखें। यहाँ पाठान्तरमें और भी दो श्लोक अधिक उद्धृत हुए हैं, ऐसा देखा जाता है—(1) भाः 11/14/20—

"न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥"

अर्थात् "हे उद्धव! मेरे प्रति की गयी प्रबल भक्ति जिस प्रकार मुझे वशीभूत कर सकती है, अष्टाङ्ग-योग, अभेद-ब्रह्मवादरूप सांख्यज्ञान, ब्राह्मणोंका स्वशाखा-अध्ययनरूप स्वाध्याय, सब प्रकारकी तपस्या और त्यागरूप संन्यासादिके द्वारा मुझे वैसा वशीभूत नहीं किया जा सकता है।" (2) भाः 11/2/37—

"भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥"

अर्थात् "श्रीकृष्णसे इतर (अन्य) जो माया है, उसमें अभिनिविष्ट जीवमें 'भय' उपस्थित होता है और उन ईश्वरसे बहिर्मुख होनेके कारण मायाजनित विपरीत स्मृति होती है; इसी कारण पण्डित व्यक्ति गुरुको 'देवता' और 'आत्म'-स्वरूप मानकर अनन्य-भक्तिके साथ उन परमेश्वरका भजन करेंगे॥"132॥

प्रयोजन श्रीकृष्णप्रेमके 'बाह्य' लक्षण :—

एबे शुन, प्रेम, येइ—मूल 'प्रयोजन'।
पुलकाश्रु-नुत्य-गीत—याहार लक्षण॥ 133॥

अनुवाद—अब आप प्रेमके विषयमें सुनिये, जो मूल 'प्रयोजन' है। पुलक-अश्रु-नृत्य एवं गीत जिसके लक्षण हैं॥ 133॥

प्रयोजन श्रीकृष्णप्रेम-द्योतक श्लोकका दृष्टान्त :—
श्रीमद्भागवत (11/3/31)में—

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च
मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या संजातया भक्त्या
विभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥ 134॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 134॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिको परस्पर स्मरण करते-करते और स्मरण कराते-कराते उन्होंने साधनभक्तिसे भली-भाँति उत्पन्न प्रेम-भक्तिके द्वारा उत्पुलकित देह धारण की॥ 134॥

अनुभाष्य—श्रीवसुदेवसे श्रीनारद भागवतधर्मके विषयमें बतलाते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्रके संवादका वर्णन कर रहे हैं। 'देहात्मबुद्धिवाला अज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार सहज ही मायाको जय कर सकता है?'—निमिके इस प्रश्नके उत्तरमें नवयोगेन्द्रोंमेंसे एक प्रबुद्ध-ऋषि बद्धजीवोंके गुरुपादाश्रय करके निरपराध कीर्तनाख्य-भक्तिका साधन करते-करते अनर्थ-निवृत्तिके बाद साध्य भावभक्ति प्राप्त करनेकी अवस्थाका वर्णन कर रहे हैं,—

[एवं वर्त्तमानानां साधकानां] भक्त्या (साधन-भक्त्या) सञ्जातया (लब्ध्या प्रेमलक्षणया भक्त्या) अघौघहरं (पापपुञ्जं हरति विनाशयति यः तं) हरिं स्मरन्तः मिथः (परस्परं) स्मारयन्तः (सङ्कीर्त्तयन्तः) च [ते भक्ताः] उत्पुलकां (रोमाञ्चितं) तनुं विभ्रति (धरन्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 134॥

श्रीमद्भागवत (11/2/40)में—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति
गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥ 135॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसेवा-व्रतधारी पुरुष अवशचित्त होकर अर्थात् अब उसका चित्त उसके वशमें नहीं है, प्रियतम श्रीकृष्णके नामकीर्तनमें राग उत्पन्न होनेके कारण शिथिल-हृदय हो जाता है। वह लोक-व्यवहारकी अपेक्षासे रहित होकर उन्मत्तकी भाँति कभी हँसता, कभी रोता, कभी चीत्कार करता और कभी गान-नृत्य करता है॥ 135॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/94 संख्या देखें॥ 135॥

अतएव ब्रह्मसूत्र और ब्रह्मसूत्र-भाष्य भागवत—
एक ही अर्थके प्रतिपादक :—

अतएव भागवत—सूत्रेर 'अर्थ'रूप।
निज-कृत सूत्रेर निज-'भाष्य'-स्वरूप॥ 136॥

अनुवाद—इसलिये भागवत वेदान्त-सूत्रका 'अर्थ'-रूप है। श्रीव्यासदेवने वेदान्त-सूत्रकी रचना की और उसीके भाष्य-स्वरूप भागवतकी भी रचना की॥ 136॥

श्रीमद्भागवत—(1) ब्रह्मसूत्रका भाष्य, (2) महाभारतके अर्थका तात्पर्य, (3) गायत्रीभाष्य और (4) वेदके अर्थका विस्तार :—
गरुणपुराण-वाक्य—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥ 137॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 137॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह श्रीमद्भागवत—ब्रह्मसूत्रका अर्थ, महाभारतका तात्पर्य-निर्णय, गायत्रीका भाष्यरूप और समस्त वेदोंके तात्पर्यके द्वारा सम्वर्द्धित है। यह श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकोंवाला है॥ 137॥

अनुभाष्य—

अयं (भागवताभिधः ग्रन्थः) ब्रह्मसूत्राणां (उत्तर-मीमांसाख्य-वेदान्तसूत्राणाम्) अर्थः (भाष्यत्वेन अभिधेयरूपः) भारतार्थविनिर्णयः (महाभारतस्य अर्थानां निर्णयः यस्मिन् सः) असौ (महाग्रन्थः) गायत्रीभाष्यरूपः (वेदमातुः ब्रह्मगायत्र्याः तात्पर्यप्रकाशकः) वेदार्थ-परिबृंहितः (वेदार्थैः संवर्द्धितः) च अष्टादशसाहस्रः (अष्टादशसहस्रैः श्लोकैः परिनिर्मितः) श्रीमद्भागवताभिधः (श्रीमद्भागवत-नामा) ग्रन्थः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। पाठान्तरमें एक अधिक श्लोक उद्धृत हुआ है—

"पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भगवतोदितः।
द्वादशस्कन्धयुक्तोऽयं शतविच्छेदसंयुतः॥"

अर्थात् "श्रीमद्भागवत नामक यह ग्रन्थ साक्षात् भगवान्के द्वारा कहा गया है। यह ग्रन्थ पुराणोंके मध्य सामवेदके समान है। इस ग्रन्थमें बारह स्कन्ध हैं और तीन सौ पैंतीस अध्याय हैं॥"137॥

"भारतादि स्मृत्यैतिह्यार्थ-विनिर्णय" :—
श्रीमद्भागवत (1/3/42) में—

सर्व-वेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्॥ 138॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 138॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीवेदव्यासने समस्त वेदों और इतिहाससे सङ्कलित सारस्वरूप (श्रीमद्भागवतका अपने पुत्र श्रीशुकदेवको अध्ययन कराया)॥ 138॥

अनुभाष्य—

सर्ववेदेतिहासानां (सकल-निगमैतिह्यानां) समुद्धृतं (संगृहीतं, सङ्कलितः) सारं सारं (सर्वोत्कृष्टभागस्वरूपं, श्रीमद्भागवतं स्वसुतं ग्राहयामासेति पूर्वेणान्वयः)।

श्लोक-भावानुवाद—समस्त निगम-इतिहाससे उनके सार अर्थात् सर्वोत्कृष्ट भाग-स्वरूप श्रीमद्भागवतका अपने पुत्र श्रीशुकदेवको अध्ययन कराया था, इसका श्लोकके प्रथम चरणके साथ अन्वय करें॥ 138॥

"ब्रह्मसूत्रका अर्थ" :—

श्रीमद्भागवत (12/13/15) में—

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्॥ 139॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 139॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमद्भागवतको वेदान्तका सार कहा जाता है, भागवतके रसामृतसे तृप्त व्यक्तिकी अन्य किसी शास्त्रमें रति नहीं होती॥ 139॥

अनुभाष्य—महाभागवत श्रीसूत शौनकादि ऋषियोंसे श्रीमद्भागवतका वर्णन समाप्त करके अठारह महापुराणोंके श्लोकोंकी संख्याका निर्देश करके उपसंहारमें श्रीमद्भागवतकी महिमाका वर्णन कर रहे हैं,—

सर्ववेदान्तसारं (सकलोपनिषद्ब्रह्मसूत्राणाम् उत्कृष्टभागः) हि श्रीभागवतम् इष्यते (अभिधीयते) यतः तद्रसामृत-तृप्तस्य (तस्य भागवतस्य रस एव अमृतं तेन तृप्तस्य जनस्य) अन्यत्र (शास्त्रादौ भागवतेतर-जनादिषु वा) क्वचित् (कदाचिदपि) रतिः न स्यात् (न सम्भवेत्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 139॥

"गायत्री-भाष्यरूप" :—

गायत्रीर अर्थे एइ ग्रन्थ-आरम्भन।
"सत्यं परं"**—सम्बन्ध,** "धीमहि"**—साधने प्रयोजन॥ 140॥**

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 140॥

अनुभाष्य—इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थके प्रारम्भिक श्लोकमें ही गायत्रीका अर्थ है। परम सत्य ही 'सम्बन्ध', ध्यानचेष्टा अथवा साधनभक्तिका अनुष्ठान ही 'अभिधेय' और प्राप्त-फल ध्यान अथवा प्रेमभक्ति ही अभिधेयका प्राप्य 'प्रयोजन' फल है॥ 140॥

श्रीमद्भागवत (1/1/1-2)—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥ 141॥

अनुवाद—इस विश्वका जन्म, स्थिति और लय जिससे होता है, ऐसा कहनेसे जो तत्त्व निश्चित हुआ है, अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा विचार करनेपर जो समस्त अर्थ अथवा कार्यमें एकमात्र परम 'ज्ञ-तत्त्व' अर्थात् 'स्वरूपतत्त्व' कहलाकर स्थिर होते हैं; जो दृश्यमान जगत्में एकमात्र स्वराट् अर्थात् स्वतन्त्र राजा हैं; जिन्होंने आदिकवि ब्रह्माको अन्तर्यामीके रूपमें ब्रह्मतत्त्वकी शिक्षा दी है; जिनके विषयमें समस्त बुद्धिमान पण्डितोंमें बारम्बार मोह उत्पन्न होता है; जिनसे अग्नि, जल और मिट्टी आदि भूतोंका विनिमय अर्थात् पृथक् रूपमें सत्ता है; जिनसे तीन प्रकारकी सृष्टि अर्थात् चिद्-उदयरूप सृष्टि, जीव-प्रकाट्यरूप सृष्टि और मायिक-ब्रह्माण्डरूप सृष्टि—सत्यरूपमें वर्तमान है; स्वरूपशक्तिके द्वारा नित्य-कपट-शून्य परमसत्य-तत्त्वरूप उन श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं॥ 141॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/265 संख्या देखें॥ 141॥

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किम्वापरैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥ 142॥

अनुवाद—यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ सर्वप्रथम महामुनि श्रीनारायणके द्वारा चतुःश्लोकी (अर्थात् चार श्लोकों)के रूपमें निर्मित है। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सब जीवोंके प्रति दयालु व्यक्तियोंके लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक कैतवसे शून्य अर्थात् छलरहित परमधर्मकी व्याख्या हुई है। यह धर्म जीवके त्रितापका नाश करनेवाला, शिवद अर्थात् मङ्गल प्रदान करनेवाला और

वास्तव-वस्तुके तत्त्व-ज्ञानको प्रदान करनेवाला है। इसको श्रवण करनेके इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार ईश्वरको अपने हृदयमें अवरुद्ध करनेमें समर्थ होते हैं। इसलिये श्रीमद्भागवतके अतिरिक्त अन्य किसी शास्त्रकी क्या आवश्यकता है? ॥ 142 ॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/91 संख्या देखें ॥ 142 ॥

'कृष्णभक्ति-रसस्वरूप' श्रीभागवत।
ताते वेदशास्त्र हैते परम महत्त्व ॥ 143 ॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें ॥ 143 ॥

अनुभाष्य—श्रीभागवत—श्रीकृष्णभक्तिरस-स्वरूप है। भगवद्-वाणीमय वेदशास्त्र—वृक्षके समान हैं, श्रीमद्भागवत—उसी वृक्षका पूर्णरूपसे पका हुआ फल है, इसलिये तारतम्यके विचारसे वेदकी अपेक्षा परम-उन्नत है ॥ 143 ॥

"वेदार्थपरिबृंहित"—वेदका परिपक्व फल :—
श्रीमद्भागवत (1/1/3)में—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ 144 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 144 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह भागवत-शास्त्र वेदरूपी कल्पवृक्षका पूर्णरूपसे पका हुआ फल और श्रीशुकदेवके मुखके अमृतसे संयुक्त है, हे रसिकजनों, रसतत्त्वमें परमालय अर्थात् निमग्न-भाव जब तक न हो, तब तक इस जगत्में (अप्राकृत) भावुकरूपमें भागवतका आस्वादन करो, निमग्न होनेपर भी इस परम रसका पुनः पुनः नित्य ही पान करते रहना ॥ 144 ॥

अनुभाष्य—श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके प्रथम अध्यायके तृतीय श्लोकमें आशीर्वाद रूप मङ्गलाचरण—

अहो (हे) रसिकाः (भगवत्सेवारसविदः,) भावुकाः (रसविशेषभावनचतुराः,) शुकमुखात् (व्यासशिष्यप्रशिष्यादि-पारम्पर्यक्रमेण) भुवि (पृथिव्यां) गलितम् (अखण्डमेव अवतीर्णं, स्वेच्छया पतितं, न तु बलात् पातितं परिपक्वत्वात्) अमृत-द्रवसंयुतम् (अमृतं परमानन्दः स एव द्रवः रसः तेन संयुक्तं विशिष्टं) निगमकल्पतरोः (वेदरूपकल्पवृक्षस्य) रसं (त्वगष्ठ्यादि-कठिन-हेयांश-रहितं केवल रसरूपं) फलं भागवतं आ-लयं (मोक्षानन्दामभिव्याप्य) मुहुः पिबतः (परमादरेण सेवध्वम्)।

श्लोक-भावानुवाद—हे रसिकजनों (भगवत्-सेवारसको जाननेवालों), भावुकजनों (रसपानमें विशेष चतुर लोगों) व्यासशिष्यप्रशिष्यादि परम्पराके क्रमसे पृथ्वीपर पूर्ण पक जानेपर स्वतः ही अखण्डरूपमें अवतीर्ण परमानन्दरससे संयुक्त वेदरूपकल्पवृक्षका (छिलका, गुठली आदि कठिन हेयांशसे रहित केवल) रसरूप फल श्रीमद्भागवतका आ-लय (मोक्षानन्द तक) पुनः पुनः परम आदरसे सेवन करो ॥ 144 ॥

अमृतानुकणिका—वेद-उपनिषद् आदि जितनी भी श्रुतियाँ हैं, उन्हें निगम कहते हैं। श्रुतियाँ, स्मृतियाँ आदि ये सब निगम और आगम हैं। ये वृक्ष हैं, उपनिषद् आदि इनकी शाखाएँ हैं। गोपालतापनी आदि इनके पत्ते हैं। भागवतकी उपमा निगम-आगम आदि रूप वृक्षके फलसे दी गयी है और दशम स्कन्ध पका हुआ फल है, जिसमें गुठली नहीं है, रेशे भी नहीं हैं जो दाँतोंमें फँस जाते हैं और छिलका भी नहीं है। उसमें फेंकने योग्य कोई वस्तु नहीं है। गोलोक वृन्दावनमें श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी वृक्षकी शाखाओंपर प्रेमकी लता फैली है और वहाँसे यह वृक्षकी शाखाओंपर फल पकता है और नीचे इस माया-जगत्में गिरता है। इतनी दूर गिरनेपर भी फलके फटने और रसके बिखरनेकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि वह हमारी गुरु-परम्पराके माध्यमसे नीचे आ रहा है। जब गिरा तो सर्वप्रथम ब्रह्माजीने उसे अपने हाथोंमें ले लिया, उनके द्वारा छोड़नेपर वह फल क्रमशः नारदजी, व्यासजीके द्वारा गुरु-परम्पराके माध्यमसे हमारे गुरुजीके पास आया। यह फल कच्चा नहीं है, अपितु सूर्यकी किरणोंसे तपकर एकदम पीला हो गया है, परिपक्व हो गया है और सुगन्धसे भरपूर हो गया है। श्रीकृष्ण ही सूर्यके

समान हैं और उनकी विरहके तापसे ही यह पका हुआ यह मधुर सुगन्धित केवल रस ही रस है। *'पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः'*—साधारण लोगोंके लिये इसका अर्थ है कि 'हे रसिकों! हे भावुक लोगों! इस जगत्में आप आलय तक इसका पान करो। आलयका अर्थ देहावसान होता है अर्थात् इस जगत्में देहत्याग तक इसका निरन्तर पान करो।' परन्तु रसिक और भावुक लोगोंके लिये श्रीकृष्ण ही अखिल रसामृतसिन्धु हैं और व्रजमें गोपियाँ इस रसका सबसे अधिक पान करती हैं। उनके उच्छिष्टको यशोदा मैया, नन्दबाबा वात्सल्य रसमें पान करते हैं और उनके उच्छिष्टको श्रीदाम-सुबलादि सख्यरसमें पान करते हैं। उनसे जो बच जाता है, उसे रक्तक-पत्रक आदि सब लोग दास्यरसमें पान करते हैं। व्रजवासियोंके आनुगत्यमें भजन करते-करते अभी जो रागानुगा भक्त हैं, उनको यहाँ भावुक कहा गया है, क्योंकि वे भावावस्था तकके हो सकते हैं। और रसिक वे हैं जिनकी वस्तु सिद्धि हो गयी है और नारदादि वे लोग यदा-कदा ही इस संसारमें भ्रमण करते हैं। किन्तु यदि शुद्धभक्त लोग हरिकथाको कहते हैं, तो उसे श्रवण करनेके लिये हनुमानजी, शङ्करजी, ब्रह्माजी, नारदजी अथवा शुकदेव गोस्वामी आदिका वेश बदलकर आनेकी सम्भावना होती है। औरोंकी तो बात ही क्या है, जब शुद्धभक्तोंके द्वारा श्रीराधा-कृष्णकी कथाएँ होती है, तो स्वयं श्रीराधा और श्रीकृष्णचन्द्र भी आये बिना नहीं रह सकते।

बिल्वमङ्गल आदि जिनमें अभी भाव उत्पन्न हुआ वे भावुक भक्त हो सकते हैं। विमुक्तप्रग्रह वृत्तिसे यदि विचार किया जाय, तो रसिक और भावुक एक भी कहे जा सकते हैं, जो भगवान्के लीलारूपी रसका पान करने वाले दुर्लभ महात्मा हैं। ये लोग कब तक पान करेंगे? हरिकथा सुनते-सुनते आँखोंसे अश्रुओंके बरसनेपर भी सुनेंगे, गला रुद्ध हो जाने तक भी सुनेंगे, शरीरमें पुलक-रोमाञ्च हो जाने तक भी सुनेंगे, किन्तु 'आलयम्' अर्थात् मूर्च्छावस्था आनेपर तो गिर जायेंगे, तब ये सुन नहीं पायेंगे। इसलिये अद्वैतवादी लोग यह अर्थ करते हैं कि जब तक शरीरमें चेतना रहे, तब तक इस दिव्य भगवद्रसका निरन्तर बार-बार पान करते रहो। अर्थात् जब तक ब्रह्ममें लय नहीं हो जाते, तब तक इस ग्रन्थका पाठ करो। उसके बाद तो जैसे जलकी बूँद सागरमें समाकर सागर बन जाती है, वैसे ही जीव भी ब्रह्ममें समाकर ब्रह्म हो जायेगा। परन्तु, यह सब सत्य नहीं है। एक व्यक्ति रसिक है और वह रसका पान करके रसका आस्वादन करता है। यदि रसिक न रहे, केवल रस ही रहे, तो रसका आस्वादन कौन करेगा? इसलिये ब्रह्म और जीव एक हो जायेंगे, यह अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता। रसकी स्थिति सम्पूर्ण है—श्रीकृष्ण परम रसिक हैं और श्रीमती राधिका परम रसिका हैं तथा दोनोंका परस्पर प्रेम और उनकी प्रेममयी लीला ही वह रस है। भावुक और रसिक भक्त लोग उस रसका छक-छककर आलय तक पान करते हैं।—"श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज"॥ 144॥

भागवतमें जड़सुलभ तृप्ति नहीं :—
श्रीमद्भागवत (1/1/19)में—

वयन्तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे।
यच्छ्र

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हम उत्तमश्लोक श्रीकृष्णके विक्रमके विषयमें जितना सुन रहे हैं, उतनी ही हमारी तृष्णा वर्द्धित हो रही है, तृष्णाकी शान्तिरूपी तृप्ति नहीं हो रही हैं; क्योंकि, रसज्ञ श्रोताओंमें श्रीकृष्णकथामें पद-पदपर स्वाद उदित होता है॥ 145॥

अनुभाष्य—नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषि महाभागवत श्रील सूत गोस्वामीको आगे रखकर श्रीहरिकी लीलाओं और अवतारोंकी कथाओंका वर्णन करनेका अनुरोध करते हुए अपनी निरन्तर वर्द्धित होनेवाली श्रवणकी पिपासाका वर्णन कर रहे हैं,—

यत् (यद्विक्रमं) शृण्वतां (श्रवणकारिणां) रसज्ञानां (रसिकानां) पदे पदे (प्रतिक्षणं) स्वादु स्वादु (स्वादुतोऽपि स्वादु भवतीति शेषः, तस्मिन्) उत्तमःश्लोकविक्रमे (उत् उद्गच्छति तमः यस्मात् स उत्तमः, तथाभूतः श्लोकः यशः यस्मिन् तस्य कृष्णस्य विक्रमे गुणवीर्यकथादौ) वयं तु (अन्ये तु तृप्यन्तु नाम) न वितृप्यामः (विशेषेण न तृप्यामः—अलमिति न मन्यामहे इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

भागवतमें ही श्रुतिका तात्पर्य निहित :—

अतएव भागवत करह विचार।
इहा हैते पाबे सूत्र-श्रुतिर अर्थ-सार॥ 146॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 146॥

अनुभाष्य—भागवतका विचार करनेसे ब्रह्मसूत्र और उपनिषदोंका वास्तविक सार-अर्थ जान पाओगे। भागवतका विचार नहीं करके जो वेदान्त पढ़ना अथवा उपनिषद्का अर्थ जानना चाहता है, वह अवश्य ही असार-अर्थकी उपलब्धि करेगा॥ 146॥

निरन्तर कीर्तन करनेका आदेश, नामाभाससे मुक्ति :—

निरन्तर कर कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन।
हेलाय 'मुक्ति' पाबे, पाबे प्रेमधन॥ 147॥

अनुवाद—इसलिये आप लोग निरन्तर कृष्णनाम-सङ्कीर्तन कीजिये। इससे आपको अनायास ही 'मुक्ति'की प्राप्ति होगी और प्रेमधन पानेके अधिकारी भी बनोगे॥ 147॥

श्रीमद्भगवद्गीता (18/54)में—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ 148॥

अनुवाद—गीतामें कहा गया है,—अभेद ब्रह्मवादरूपी ज्ञानचर्चाके द्वारा स्वयं प्रसन्नात्माका शोक और कामनारहित होनेपर तथा सभी जीवोंमें समभावयुक्त ब्रह्मता प्राप्त करनेके बाद उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि पहले कर्ममिश्रा-भक्तिका उल्लेख हुआ था, उसकी अपेक्षा ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है॥ 148॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/65 संख्या देखें॥ 148॥

श्रीमद्भागवत (10/87/21) श्लोकमें श्रीधर-उद्धृत सर्वज्ञ भाष्यकारकी व्याख्या और नृसिंह तापनी (2/5/16)में—

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं
कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥ 149॥

अनुवाद—मुक्तगण भी लीलासे आकर्षित होकर विग्रह स्थापित करके भगवान्का भजन करते हैं॥ 149॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/107 संख्या देखें॥ 149॥

श्रीमद्भागवत (2/1/9)में—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥ 150॥

अनुवाद—हे राजर्षे! निर्गुण ब्रह्ममें प्रतिष्ठित होनेपर भी श्रीकृष्णलीलाके प्रति आकर्षित होकर मैंने श्रीमद्भागवतका पाठ किया था॥ 150॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 24/46 संख्या देखें॥ 150॥

श्रीमद्भागवत (3/15/43)में—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥ 151॥

अनुवाद—उन कमल-नेत्र-भगवान्के पदकमलकी पराग-मिश्रित तुलसीकी मधुरगन्धयुक्त वायुने सनकादि चार कुमारोंकी नासिकाके छिद्रके माध्यमसे अन्दर जाकर निर्विशेष-ब्रह्मपरायण उनके चित्त और देहमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया था॥ 151॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 17/142 संख्या देखें॥ 151॥

श्रीमद्भागवत (1/7/10)में—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥"152॥

अनुवाद—आत्मामें ही जिनकी रति है, ऐसे

वासना-ग्रन्थियोंसे शून्य सभी मुनि भी बृहत्कर्मा श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि जगत्के चित्तहारी श्रीहरिका ऐसा ही एक गुण है॥"152॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/186 संख्या देखें॥152॥

महाराष्ट्र
अर्थोंकी व्याख्याकी क्षमताकी प्रशंसा :—

हेनकाले सेइ महाराष्ट्र
सभाते कहिल सेइ श्लोक-विवरण॥153॥
"एइ श्लोकेर अर्थ प्रभु 'एकषष्टि' प्रकार।
करियाछेन, याहा शुनि' लोके चमत्कार॥"154॥

अनुवाद—उसी समय उन महाराष्ट्र सभामें 'आत्मारामः' श्लोकके विषयमें एक आश्चर्यजनक बातका उद्घाटन किया। उन्होंने कहा,—"महाप्रभुने इस श्लोकके 'इकसठ' प्रकारके अर्थ किये हैं।" यह सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये॥153-154॥

सभीके आग्रह करनेपर महाप्रभुके द्वारा
इकसठ प्रकारके अर्थोंकी व्याख्या :—

तबे सब लोक शुनि' आग्रह करिल।
'एकषष्टि' अर्थ प्रभु विवरि' कहिल॥155॥

महाप्रभुके पाण्डित्यसे सभीको विस्मय और उनको
परमेश्वर श्रीकृष्णरूपमें निर्धारण :—

शुनिया लोकेर बड़ चमत्कार हैल।
चैतन्यगोसाञि—"श्रीकृष्ण', निर्द्धारिल॥156॥

अनुवाद—सब लोग महाप्रभुसे उन इकसठ अर्थोंको सुनानेका आग्रह करने लगे। तब महाप्रभुने 'इकसठ' प्रकारके अर्थोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इसे सुनकर लोग बहुत आश्चर्यचकित हुए और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि श्रीचैतन्य-गोसाईं स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं॥155-156॥

महाप्रभुका घरमें लौटना :—

एत कहि' उठिया चलिला गौरहरि।
नमस्कार करे लोक हरिध्वनि करि'॥157॥

अनुवाद—इतना कहकर श्रीगौरहरि उठकर चल दिये। सभी लोगोंने हरिध्वनि करते हुए उन्हें प्रणाम किया॥157॥

काशीमें कीर्तनकी बाढ़ :—

सब काशीवासी करे नामसङ्कीर्त्तन।
प्रेमे हासे, काँदे, गाय, करये नर्त्तन॥158॥

महाप्रभुके द्वारा काशीका उद्धार :—

संन्यासी पण्डित करे भागवत विचार।
वाराणसीपुर प्रभु करिला निस्तार॥159॥

अनुवाद—तबसे समस्त काशीवासी प्रेमसे नाम-सङ्कीर्तन करने लगे। प्रेममें डूबकर कभी वे हँसते, कभी रोते, कभी गाते और कभी नृत्य करते। सभी मायावादी संन्यासी और पण्डितगण वेदान्तके स्थानपर भागवतपर विचार करने लगे। इस प्रकार महाप्रभुने वाराणसीका उद्धार कर दिया॥158-159॥

महाप्रभुके आगमनसे काशी
श्रीकृष्ण-कोलाहलसे मुखरित :—

निज-लोक लञा प्रभु आइला वासाघर।
वाराणसी हैल द्वितीय नदीया-नगर॥160॥

अनुवाद—अपने भक्तोंको लेकर महाप्रभु अपने वासस्थानपर लौट आये। सर्वत्र श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनके कारण वाराणसी दूसरी नदिया-नगरी बन गयी॥160॥

मायावादग्रस्त श्रीकृष्णनामप्रेमविमुख; भक्तोंके आग्रहसे
थोड़ीसी श्रद्धाके बलसे महाप्रभुके द्वारा ब्रह्माके लिये भी
दुर्लभ अक्षय नामप्रेम-भण्डारका काशीवासियोंके
अधिकारका विचार किये बिना वितरण :—

निजगण लञा प्रभु कहे हास्य करि'।
"काशीते आमि आइलाङ बेचिते भावकालि॥161॥
काशीते ग्राहक नाहि, वस्तु ना बिकाय।
पुनरपि देशे बहि' लओया नाहि याय॥162॥
आमि बोझा बहिमु, तोमा-सबार दुःख हैल।
तोमा-सबार इच्छाय बिनामूल्ये बिकाइल॥"163॥

अनुवाद—महाप्रभु अपने भक्तोंसे परिहास करते हुए कहने लगे,—"मैं काशीमें अपने भावकालिको (भावुक स्वभावको) बेचनेके लिये आया था। काशीमें कोई ग्राहक नहीं होनेके कारण मेरी वस्तु बिक नहीं रही थी। उसे ढोकर अपने देशमें वापिस ले जाना भी सम्भव नहीं था। यह सोचकर कि मैं पुनः बोझा ढोकर ले जाऊँगा, आप सबको बहुत दुःख हुआ, इसलिये मैंने आप सबकी इच्छासे उस वस्तुको बिना मूल्यके ही बाँट दिया॥"161-163॥

काशीको प्रेमकी बाढ़में डुबो देनेवाले महाप्रभुकी स्तुति :—

सबे कहे,—"लोक तारिते तोमार अवतार।
'पूर्व' 'दक्षिण' 'पश्चिम' करिला निस्तार॥164॥

'एक' वाराणसी छिल तोमाते विमुख।
ताहा निस्तारिया कैला आमा-सबार सुख॥"165॥

अनुवाद—सभी भक्त कहने लगे,—"पतित जीवोंका उद्धार करनेके लिये ही आपका अवतार हुआ है। आपने 'पूर्व', 'दक्षिण' और 'पश्चिम' भारतके सभी पतितोंका उद्धार कर दिया है। एकमात्र वाराणसीके लोग ही आपसे विमुख थे, उनका उद्धार करके आपने हम सबको बहुत सुख प्रदान किया है॥"164-165॥

प्रतिदिन असंख्य लोगोंका समागम :—

वाराणसी-ग्रामे यदि कोलाहल हैल।
शुनि' ग्रामी देशी लोक आसिते लागिल॥166॥

अनुवाद—महाप्रभुके द्वारा वाराणसीके संन्यासियोंके उद्धारकी बात चारों ओर फैल गयी। इस बातको सुनकर आस-पासके ग्रामवासी तथा नगरवासी, सभी लोग महाप्रभुके दर्शनोंके लिये आने लगे॥166॥

लक्ष कोटि लोक आइसे, नाहिक गणन।
सङ्कीर्णस्थाने प्रभुर ना पाय दरशन॥167॥

अनुवाद—लाखों-करोड़ों लोग महाप्रभुके दर्शनके लिये आने लगे। जितने लोग आये, उनकी गणना नहीं की जा सकती। किन्तु महाप्रभुका वासस्थान छोटासा था, इसलिये सभीको उनके दर्शन प्राप्त नहीं होते थे॥167॥

विश्वेश्वर दर्शनके लिये जाते समय असंख्य तृष्णार्त्त लोगोंको महाप्रभुके दर्शनकी प्राप्ति :—

प्रभु यबे स्नाने यान, विश्वेश्वर-दरशने।
दुइदिके लोक करे प्रभु-विलोकने॥168॥

सभीके द्वारा हरिबोलकी ध्वनि :—

बाहु तुलि' प्रभु कहे—बल 'कृष्ण' 'हरि'।
दण्डवत् करे लोके हरिध्वनि करि'॥169॥

अनुवाद—महाप्रभु जब गङ्गामें स्नान करने जाते और विश्वेश्वरके दर्शनके लिये जाते, तब लोग उनके दोनों ओर कतार बनाकर खड़े होकर उनके दर्शन करते। तब महाप्रभु अपनी भुजाओंको उठाकर सभीको 'कृष्ण' 'हरि' बोलनेके लिये कहते और लोग हरिध्वनि करते हुए उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते॥168-169॥

काशीमें पाँच दिन रहकर महाप्रभुकी पुरी यात्रा :—

एइमत दिन पञ्च लोक निस्तारिया।
आर दिन चलिला प्रभु उद्विग्न हञा॥170॥

अनुवाद—इस प्रकार पाँच दिनों तक लोगोंका उद्धार किया। तब अगले दिन महाप्रभु वहाँसे जानेके लिये उत्कण्ठित हो गये॥170॥

पाँच भक्तोंके द्वारा महाप्रभुका अनुसरण :—

रात्रे उठि' प्रभु यदि करिला गमन।
पाछे लाग् लइला तबे भक्त पञ्च जन॥171॥

पाँच भक्तोंके नाम :—

तपन मिश्र, रघुनाथ, महाराष्ट्र
चन्द्रशेखर, कीर्त्तनीया-परमानन्द,—पञ्च जन॥172॥

अनुवाद—रात्रिके समय उठकर जब महाप्रभु जाने लगे, तब श्रीतपन मिश्र, श्रीरघुनाथ भट्ट, महाराष्ट्र ब्राह्मण, श्रीचन्द्रशेखर वैद्य और कीर्तनीया परमानन्द—ये पाँच भक्त भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे॥ 171-172॥

सभीकी ही महाप्रभुके पीछे-पीछे पुरी जानेकी इच्छा होनेपर भी महाप्रभुके द्वारा उन्हें विदायी देना :—

सबे चाहे प्रभु-सङ्गे नीलाचल याइते।
सबारे विदाय दिला प्रभु यत्न-सहिते॥ 173॥

अकेले झारिखण्डके मार्गसे पुरी जानेकी इच्छा :—

"याँर इच्छा, पाछे आइस आमारे देखिते।
एबे आमि एका यामु झारिखण्ड-पथे॥"174॥

अनुवाद—सभी महाप्रभुके साथ नीलाचल जाना चाहते थे, किन्तु महाप्रभुने बड़े प्रेमसे उन्हें समझाकर विदायी देते हुए कहा,—"जिनकी इच्छा हो, वे बादमें मुझसे मिलनेके लिये पुरी आ जाँय। अभी तो मैं अकेला ही झारिखण्डके पथसे जाऊँगा॥"173-174॥

श्रीसनातनको वृन्दावनमें श्रीरूप-अनुपमके पास भेजना :—

सनातने कहिला,—"तुमि याह' वृन्दावन।
तोमार दुइ भाइ तथा करियाछे गमन॥ 175॥

करुणासे विगलित स्वरसे भक्तवत्सल भगवान्‌का अपने वृन्दावन-यात्री भक्तोंके सुख-विधानके लिये श्रीसनातनको आदेश :—

काँथा-करङ्गिया मोर काङ्गाल भक्तगण।
वृन्दावने आइले ताँदेर करिह पालन॥"176॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीसे कहा,—"तुम वृन्दावन जाओ। तुम्हारे दोनों भाई रूप और अनुपम भी वहीं गये हैं। वृन्दावन जानेवाले मेरे अधिकांश भक्त कंगाल (गरीब) होते हैं, उनके पास तो केवल काँथा (फटे-पुराने कपड़ोंसे बने कम्बल) और करोंया (जलके पात्र) होता है। वे जब वृन्दावन आयेंगे, तब तुम उन सबको रहनेका स्थान देना और उनका पालन करना॥"175-176॥

सभीको आलिङ्गन करके निरपेक्ष महाप्रभुकी यात्रा, भक्तोंका मूर्च्छित होना :—

एत बलि' चलिला प्रभु सबा आलिङ्गिया।
सबेइ पड़िला तथा मूर्च्छित हञा॥ 177॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु सबका आलिङ्गन करके वहाँसे चल पड़े। सभी भक्त मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़े॥ 177॥

इन पाँच भक्तोंका काशीमें आगमन, श्रीसनातनकी वृन्दावन यात्रा :—

कतक्षणे उठि' सबे दुःखे घरे आइला।
सनातन-गोसाञि वृन्दावनेरे चलिला॥ 178॥

अनुवाद—कुछ समयके बाद जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे सभी भक्त दुःखी होकर घर लौट आये। श्रीसनातन गोस्वामी वृन्दावनकी ओर चल दिये॥ 178॥

श्रीरूप-गोस्वामीके साथ श्रीसुबुद्धि रायका मिलन :—

एथा रूप-गोसाञि यबे मथुरा आइला।
ध्रुवघाटे ताँरे सुबुद्धिराय मिलिला॥ 179॥

अनुवाद—इधर जब श्रीरूप गोस्वामी मथुरा पहुँचे, तब वहाँ ध्रुवघाटपर उन्हें श्रीसुबुद्धिराय मिले॥ 179॥

पूर्वे यबे सुबुद्धि-राय छिला गौड़े 'अधिकारी'।
हुसेन-खाँ 'सैयद' करे ताहार चाकरी॥ 180॥

अनुवाद—पहले जब श्रीसुबुद्धिराय गौड़देशके अधिकारी थे, तब हुसेन-खाँ 'सैयद' उनका दास था॥ 180॥

दीघि खोदाइते तारे 'मुन्सीफ' कैला।
छिद्र पाञा राय तारे चाबुक मारिला॥ 181॥

अनुवाद—श्रीसुबुद्धिरायने हुसेन-खाँ सैयदको तालाब खुदवानेके कार्यका दायित्व सौंपा। उस कार्यमें कुछ त्रुटि देखनेपर श्रीसुबुद्धिरायने उसे चाबुकसे मारा॥ 181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'मुन्सीफ'*—'इन्साफ' शब्दसे 'मुन्सीफ' शब्दकी उत्पत्ति हुई है; जो जिस विषयको समझ लेता है, उसे 'मुन्सीफ' कहते हैं। *'छिद्र पात्रा'*—दोष देखकर॥ 181॥

पाछे यबे हुसेन-खाँ गौड़े 'राजा' हइल।
सुबुद्धि-रायेर तिँहो बहु बाड़ाइल॥ 182॥

अनुवाद—बादमें जब हुसेन-खाँ सैयद गौड़देशका 'राजा' बना, तब उसने श्रीसुबुद्धिरायके द्वारा पूर्व किये गये उपकारोंके लिये उनकी सम्पत्तिमें बहुत वृद्धि की॥ 182॥

तार स्त्री तार अङ्गे देखे मारणेर चिह्ने।
सुबुद्धि-रायरे मारिते कहे राजा-स्थाने॥ 183॥

अनुवाद—हुसेन-खाँकी पत्नीने जब उनके शरीरपर चाबुक मारनेके निशानको देखा, तो उसने हुसेन-खाँसे श्रीसुबुद्धिरायको जानसे मारनेके लिये कहा॥ 183॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'तार स्त्री'*—हुसेन-शाहकी बेगम; *'मारणेर चिह्न'*—श्रीसुबुद्धि-रायने जो चाबुक मारे थे, उसके चिह्न॥ 183॥

राजा कहे,—"आमार पोष्टा राय हय 'पिता'।
ताहारे मारिमु आमि,—भाल नहे कथा॥"184॥
स्त्री कहे,—जाति लह', यदि प्राणे ना मारिबे।
राजा कहे,—जाति निले इँहो नाहि जीवे॥ 185॥
स्त्री मरिते चाहे, राजा सङ्कटे पड़िल।
करोँयार पानि तार मुखे देओयाइल॥ 186॥

अनुवाद—राजा हुसेन-खाँने कहा,—"श्रीसुबुद्धिराय मेरा पालन-पोषण करनेवाले होनेके कारण मेरे पिताके समान है। मैं उन्हें मारूँ,—यह तो कोई अच्छी बात नहीं है।" अन्तमें बेगमने कहा,—'यदि तुम सुबुद्धिरायको प्राणोंसे नहीं मारना चाहते हो, तो फिर तुम उसे जातिसे भ्रष्ट कर दो।' राजाने कहा,—'यदि मैं उनको जातिसे भ्रष्ट कर दूँगा, तो वे जीवित नहीं रहेंगे।' बेगमने कहा कि यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं मर जाऊँगी। उसकी बात सुनकर राजा धर्म-सङ्कटमें फँस गया। अन्तमें उसने जलपात्रके जलको जिसे मुसलमानने स्पर्श किया था, श्रीसुबुद्धिरायके मुखमें बलपूर्वक डलवा दिया॥ 184-186॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'करोँयार पानि'*—जिस पात्रमें मुसलमानोंका जल रहता है, उसे 'करोँया' कहते हैं। उस 'करोँया'से मुसलमानके द्वारा स्पर्श किया गया जल श्रीसुबुद्धिरायके मुखमें दिया गया था॥ 186॥

श्रीसुबुद्धि-रायका अकेले काशीमें आगमन :—

तबे सुबुद्धि-राय सेइ 'छद्म' पात्रा।
वाराणसी आइला, सब विषय छाड़िया॥ 187॥

अनुवाद—तब श्रीसुबुद्धि-राय इस सुयोगको प्राप्त करके सब विषयोंको छोड़कर वाराणसी आ गये॥ 187॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'छद्म'*—छल। श्रीसुबुद्धिरायकी पहलेसे ही विषय-त्यागकी इच्छा थी; जातिनाशके छलसे उन्होंने परिवारादि सम्बन्धियोंका त्याग कर दिया॥ 187॥

स्मार्त्त पण्डितोंसे प्रायश्चितके विषयमें पूछनेपर अनेक लोगोंके द्वारा अनेक विधान :—

प्रायश्चित्त पुछिला तिँहो पण्डितेर गणे।
ताँरा कहे,—तप्त-घृत खाञा छाड़' प्राणे॥ 188॥

अनुवाद—श्रीसुबुद्धिरायने वाराणसीके पण्डितोंसे इसका प्रायश्चित पूछा। तब उन पण्डितोंने कहा,—गर्म घी पीकर तुम अपने प्राण त्याग दो॥ 188॥

श्रीसुबुद्धि-रायको प्रायश्चितकी व्यवस्थाओंके प्रति सन्देह :—

केह कहे,—एइ नहे, अल्प दोष हय।
शुनिया रहिला राय करिया संशय॥ 189॥

अनुवाद—किसी अन्य पण्डितने कहा,—ऐसा मत करो, प्राण देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह तो छोटा सा दोष है। श्रीसुबुद्धिरायको पण्डितोंके अलग-अलग विचारोंके कारण प्रायश्चितके विषयमें संशय हो गया, इसलिये उन्होंने कुछ भी नहीं किया॥ 189॥

महाप्रभुके काशी आनेपर, सम्पूर्ण वृत्तान्तका वर्णन करके प्रायश्चितकी व्यवस्थाकी जिज्ञासा :—

तबे यदि महाप्रभु वाराणसी आइला।
ताँरे मिलि' राय आपन-वृत्तान्त कहिला॥ 190॥

अनुवाद—फिर जब महाप्रभु वाराणसीमें आये, तब श्रीसुबुद्धिरायने उनसे मिलकर उन्हें अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया॥ 190॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु मथुरा जानेसे पूर्व जब वाराणसी आये थे, उस समय श्रीसुबुद्धिरायके साथ उनका मिलन हुआ था॥ 190॥

महाप्रभुके द्वारा सबसे उत्तम व्यवस्था और श्रीसुबुद्धि रायको शिक्षा :—

प्रभु कहे,—"इँहा हैते याह' वृन्दावन।
निरन्तर कर कृष्णनामसङ्कीर्त्तन॥ 191॥

नामाभास और शुद्धनामके फलका भेद :—

एक 'नामाभासे' तोमार पाप-दोष याबे।
आर 'नाम' लइते कृष्णचरण पाइबे॥ 192॥

आर कृष्णनाम लैते कृष्णस्थाने स्थिति।
महापातकेर हय एइ प्रायश्चित्ति॥"193॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसुबुद्धिरायसे कहा,—"तुम यहाँसे वृन्दावन चले जाओ और निरन्तर श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन करो। नाम करते हुए जब एक 'नामाभास' भी हो जायेगा, तब उसके प्रभावसे ही तुम्हारे पापका दोष चला जायेगा। और नाम करते हुए जब तुम्हारा शुद्धनाम होगा, तब तुम श्रीकृष्णके श्रीचरणोंको प्राप्त करोगे। श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें स्थान प्राप्त करनेपर फिर कोई पाप-अपराध नहीं होता और नित्य सिद्धदेहसे निरन्तर शुद्धनाम ही होता है। महापापी तकके लिये भी यही प्रायश्चित है॥"191-193॥

अमृतानुकणिका—विष्णुपुराण (2/6/36-40)में पापोंके प्रायश्चितके विषयमें कहा गया है—

"यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥ 36॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा।
तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥ 37॥
पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगुः स्वायम्भुवादयः॥ 38॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥ 39॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥"40॥

अर्थात् "जितने जीव स्वर्गमें हैं उतने ही नरकमें हैं, जो पापी पुरुष (अपने पापका) प्रायश्चित नहीं करते वे ही नरकमें जाते हैं। भिन्न-भिन्न पापोंके अनुरूप जो-जो प्रायश्चित हैं उन्हीं-उन्हींको महर्षियोंने वेदार्थका स्मरण करके बतलाया है। हे मैत्रेय! स्वायम्भुवमनु आदि स्मृतिकारोंने महान् पापोंके लिये महान् और अल्प पापोंके लिये अल्प प्रायश्चितोंकी व्यवस्था की है। किन्तु जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित हैं उन सबमें श्रीकृष्णस्मरण सर्वश्रेष्ठ है। जिस पुरुषके चित्तमें पाप-कर्मके बाद पश्चाताप होता है उसके लिये ही प्रायश्चितोंका विधान है, बिना पश्चातापके प्रायश्चितसे पापोंका क्षय नहीं होता। किन्तु यह हरिस्मरण तो एकमात्र स्वयं ही परम प्रायश्चित है॥"191-193॥

अयोध्याके मार्गसे श्रीरायका नैमिषारण्यमें जाना और कुछ दिन वहाँ वास :—

पाञा आज्ञा राय वृन्दावनेरे चलिला।
प्रयाग, अयोध्या दिया नैमिषारण्ये आइला॥ 194॥

अनुवाद—महाप्रभुकी आज्ञा प्राप्त करके श्रीसुबुद्धिराय वृन्दावनकी ओर चल दिये। वे प्रयाग और अयोध्यासे होते हुए नैमिषारण्य आ पहुँचे॥ 194॥

इसी बीच महाप्रभुका वृन्दावनसे लौटकर पुनः प्रयागमें आगमन :—

कतक दिवस राय नैमिषारण्ये रहिला।
प्रभु वृन्दावन हैते प्रयाग याइला॥ 195॥

अनुवाद—कुछ दिनों तक श्रीसुबुद्धिराय नैमिषारण्यमें ही रहे। इसी बीच महाप्रभु वृन्दावनमें कुछ समय रहकर वहाँसे प्रयाग चले गये॥ 195॥

मथुरामें महाप्रभुका दर्शन नहीं पाकर श्रीरायको दुःख :—

मथुरा आसिया राय प्रभुवार्त्ता पाइल।
प्रभुर लाग् ना पाञा मने बड़ दुःख हैल॥ 196॥

अनुवाद—मथुरामें आकर श्रीसुबुद्धिरायको महाप्रभुकी यात्राका संवाद मिला। मथुरामें महाप्रभुके दर्शन नहीं होनेसे उनको मनमें बहुत दुःख हुआ॥ 196॥

रायका वैराग्य और दैन्य-आचरण :—

शुष्ककाष्ठ आनि' राय बेचे मथुराते।
पाँच छय पयसा हय एक एक बोझाते॥ 197॥

आपने रहे एक पयसार चाना चाबाञा।
आर पयसा बाणिया-स्थाने राखेन धरिया॥ 198॥

दुःखी वैष्णव देखि' ताँरे करान भोजन।
गौड़ीया आइले दधि, भात, तैल-मर्द्दन॥ 199॥

अनुवाद—श्रीसुबुद्धिराय जङ्गलमें सूखी लकड़ियाँ एकत्रित करके लाकर मथुरामें बेचने लगे। एक गट्ठर लकड़ी बेचनेपर उन्हें पाँच-छः पैसे मिल जाते थे। श्रीसुबुद्धिराय स्वयं तो एक पैसेका चना खाकर जीवन यापन करते और बचे हुए पैसे वे बनियेके पास जमा कर देते। वे किसी दुःखी वैष्णवको देखकर उसे भोजन कराते थे। बङ्गालसे आये किसी भक्तको देखकर उसे दही, चावल तथा शरीरपर लगानेके लिये तेल ले देते॥ 197-199॥

उन्हें लेकर श्रीरूपका वृन्दावनमें द्वादश वनोंके दर्शन कराना :—

रूप-गोसाञि आसि' ताँरे बहु प्रीति कैला।
आपनसङ्गे लञा 'द्वादश वन' देखाइला॥ 200॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीके वृन्दावन आनेपर श्रीसुबुद्धिरायने उनसे बहुत प्रीति की और उन्हें अपने साथ ले जाकर द्वादश वनोंका दर्शन कराया॥ 200॥

श्रीरूपका श्रीसनातनको ढूँढ़नेके उद्देश्यसे वृन्दावनसे प्रयागमें आगमन :—

मासमात्र रूपगोसाञि रहिला वृन्दावने।
शीघ्र चलि' आइला सनातनानुसन्धाने॥ 201॥

गङ्गातीर-पथे प्रभु प्रयागेरे आइला।
ताहा शुनि' दुइभाइ से पथे चलिला॥ 202॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामी केवल एक मास तक मथुरा और वृन्दावनमें रहे। वहाँसे श्रीसनातन गोस्वामीको ढूँढ़नेके लिये चल पड़े। जब उन्होंने सुना कि महाप्रभु गङ्गाके तटवाले मार्गसे प्रयाग गये थे, तब श्रीरूप गोस्वामी और श्रीअनुपम—दोनों भाई भी उसी मार्गपर चल दिये॥ 201-202॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'ताहा शुनि'*—रूप गोस्वामीने मथुरामें सुना कि पहले महाप्रभु गङ्गाके तटके मार्गसे मथुरा आये थे, अब उस मार्गको देखनेके उत्साहसे वे अनुपमके साथ उस मार्गसे आये॥ 202॥

इसी बीच श्रीसनातनका प्रयागसे मथुरामें आगमन :—

एथा सनातन गोसाञि प्रयागे आसिया।
मथुरा आइला सनातन राजपथ दिया॥ 203॥

अनुवाद—इधर श्रीसनातन गोस्वामी वाराणसीसे चलकर प्रयाग आये। तब महाप्रभुके निर्देशानुसार वे प्रयागसे राजमार्गपर चलते हुए मथुरा आये॥ 203॥

मथुरामें रायके साथ मिलन और
रूप-अनुपमके वृत्तान्तका श्रवण :—

मथुराते सुबुद्धिराय ताहारे मिलिला।
रूप-अनुपम-कथा सकलि कहिला॥ 204॥

अनुवाद—मथुरामें जब श्रीसनातन गोस्वामीकी श्रीसुबुद्धिरायसे भेंट हुई, तब श्रीसुबुद्धिरायने उन्होंने श्रीरूप गोस्वामी तथा श्रीअनुपमके विषयमें बतलाया॥ 204॥

तीनों भाइयोंके नहीं मिलनेका कारण :—

गङ्गापथे दुइभाइ, राजपथे सनातन।
अतएव ताँहा सने ना हैल मिलन॥ 205॥

अनुवाद—(श्रीरूप गोस्वामी और श्रीअनुपम) ये दोनों भाई तो गङ्गाके तटवाले मार्गसे मथुरासे प्रयाग गये और श्रीसनातन गोस्वामी राजमार्गसे प्रयागसे मथुरा आये, इसलिये उनकी आपसमें भेंट नहीं हुई॥ 205॥

श्रीसनातनके प्रति रायका पूर्व-आश्रमोचित व्यवहार,
श्रीसनातनकी उसके प्रति अप्रीति अथवा उदासीनता :—

सुबुद्धि-राय बहु स्नेह करे सनातने।
व्यवहार-स्नेह सनातन नाहि माने॥ 206॥

अनुवाद—श्रीसुबुद्धि राय श्रीसनातन गोस्वामीसे बहुत स्नेह करते थे, किन्तु श्रीसनातन गोस्वामीको वैसा सांसारिक-स्नेह अच्छा नहीं लगा॥ 206॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'व्यवहार-स्नेह'*—संसार-सम्बन्धी स्नेह॥ 206॥

श्रीकृष्णको ढूँढ़नेवाले महावैरागी श्रीसनातन प्रभु :—

महा-विरक्त सनातन भ्रमेन वने वने।
प्रतिवृक्षे, प्रतिकुञ्जे रहे रात्रि-दिने॥ 207॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामी परम विरक्त थे। वे श्रीकृष्णको ढूँढ़ते हुए वन-वनमें भ्रमण करते थे। वे एक-एक वृक्ष और एक-एक कुञ्जमें एक रात और एक दिन रहते थे॥ 207॥

श्रीसनातनके द्वारा साम्प्रदायिक
आचार्य-कार्यका सम्पादन :—

मथुरा-माहात्म्य-शास्त्र संग्रह करिया।
लुप्ततीर्थ प्रकट कैला वनेते भ्रमिया॥ 208॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने मथुराके माहात्म्यका वर्णन करनेवाले ग्रन्थोंका संग्रह किया। उन ग्रन्थोंके आधारपर उन्होंने वन-वनमें भ्रमण करके लुप्ततीर्थोंका उद्धार किया॥ 208॥

श्रीसनातनका वृन्दावनमें और श्रीरूप और
श्रीअनुपमका काशीमें अवस्थान :—

एइमत सनातन वृन्दावनेते रहिला।
रूप-गोसाञि दुइभाइ काशीते आइला॥ 209॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीसनातन गोस्वामी वृन्दावनमें रह गये और श्रीरूप गोस्वामी और श्रीअनुपम—दोनों भाई काशीमें पहुँच गये॥ 209॥

काशीमें तीन भक्तोंके साथ उनका मिलन :—

महाराष्ट्र
तिनजन सह रूप करिला मिलन॥ 210॥

अनुवाद—वहाँ श्रीरूप गोस्वामीने महाराष्ट्र श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपनमिश्र—इन तीनोंसे भेंट की॥ 210॥

छोटे भाईके साथ श्रीरूपका भी श्रीशेखरके गृहमें
रहना और श्रीतपनमिश्रके घर भिक्षा :—

शेखरेर घरे वासा, मिश्र-घरे भिक्षा।
मिश्रमुखे शुने, सनातने प्रभुर 'शिक्षा'॥ 211॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामी श्रीअनुपमके साथ श्रीचन्द्रशेखरके घरपर रहे और वे भिक्षा (भोजन) श्रीतपनमिश्रके घरपर ग्रहण करते। इस प्रकार उन्होंने श्रीतपनमिश्रके मुखसे महाप्रभुके द्वारा श्रीसनातन गोस्वामीको दी गयी 'शिक्षा'को श्रवण किया॥ 211॥

काशीमें महाप्रभुके द्वारा दी गयी सनातन-शिक्षा
और मायावादी संन्यासियोंके उद्धारके
वृत्तान्तको सुनकर आनन्द :—

काशीते प्रभुर चरित्र शुनि' तिनेर मुखे।
संन्यासीरे कृपा शुनि' पाइला बड़ सुखे॥ 212॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीने महाराष्ट्र श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपनमिश्र—इन तीनोंके मुखसे काशीमें महाप्रभुके चरित्रको सुना। और जब उन्होंने मायावादी संन्यासियोंके प्रति महाप्रभुकी कृपाके विषयमें सुना, तो वे बहुत आनन्दित हुए॥ 212॥

महाप्रभुके प्रति लोगोंके आनुगत्य-भावोंको देखकर और
कीर्तनके श्रवणसे श्रीरूपको सुखकी प्राप्ति :—

महाप्रभुर उपर लोकेर प्रणति देखिया।
सुखी हैला लोकमुखे कीर्त्तन शुनिया॥ 213॥

अनुवाद—महाप्रभुके प्रति लोगोंकी शरणागति देखकर और उनके मुखसे महाप्रभुकी महिमाको सुनकर श्रीरूप गोस्वामी बहुत प्रसन्न हुए॥ 213॥

दस दिन काशीमें रहनेके बाद श्रीरूपादिकी गौड़-यात्रा :—

दिन दश रहि' रूप गौड़े यात्रा कैल।
सनातन-रूपेर एइ चरित्र कहिल॥ 214॥

अनुवाद—दस दिन तक वाराणसीमें रहनेके बाद श्रीरूप गोस्वामीने गौड़देशकी ओर यात्रा की। यहाँ तक मैंने श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामीके विषयमें बतलाया॥ 214॥

साथी बलभद्रके साथ महाप्रभुकी श्रीकृष्णको
ढूँढ़नेकी चेष्टा करते-करते पहलेकी भाँति
झारिखण्डके मार्गसे पुरीकी यात्रा :—

एथा महाप्रभु यदि नीलाद्रि चलिला।
निर्जन वनपथे याइते महासुख पाइला॥ 215॥
सुखे चलि' आइसे प्रभु बलभद्र-सङ्गे।
पूर्ववत् मृगादि-सङ्गे कैला नानारङ्गे॥ 216॥

अनुवाद—इधर जब महाप्रभु नीलाद्रिकी (जगन्नाथपुरीकी) ओर जा रहे थे, तब निर्जन वनके पथपर चलते हुए उन्हें बहुत सुख हुआ। आनन्दसे महाप्रभु श्रीबलभद्र भट्टाचार्यके साथ चलते जा रहे थे और झारिखण्डके वनमें पहलेकी भाँति उन्होंने पशुओंके साथ अनेक प्रकारकी लीलाएँ की॥ 215-216॥

आठारनालामें आकर बलभद्रके द्वारा
पुरीमें स्थित भक्तोंका आह्वान :—

आठारनालाते आसि' भट्टाचार्य ब्राह्मणे।
पाठाञा बोलाइला निज-भक्तगणे॥ 217॥

अनुवाद—आठारनाला पहुँचकर महाप्रभुने श्रीबलभद्र भट्टाचार्यको आगे भेजकर अपने भक्तोंको बुलवाया॥ 217॥

महाप्रभुके आगमनके विषयमें सुनकर भक्तोंको
मृत-सञ्जीवनी-मन्त्रकी प्राप्ति :—

शुनिया भक्तेर गण येन पुनरपि जीला।
देहे प्राण आइल, येन इन्द्रिय उठिला॥ 218॥

अनुवाद—महाप्रभुके आनेका संवाद सुनकर भक्त मानो पुनः जीवित हो गये हो, उनकी देहमें प्राणोंका सञ्चार हो गया और उनकी इन्द्रियोंमें शक्ति आ गयी॥ 218॥

नरेन्द्र-सरोवरके निकट आकर सभीके
द्वारा महाप्रभुका दर्शन :—

आनन्दे विह्वल भक्तगण धाञा आइला।
नरेन्द्रे आसिया सबे प्रभुरे मिलिला॥ 219॥

अनुवाद—आनन्दमें विह्वल होकर भक्त दौड़ते हुए आये और नरेन्द्र सरोवरपर आकर सभी महाप्रभुसे मिले॥ 219॥

भक्तों और महाप्रभुका परस्परके प्रति
यथायोग्य प्रणाम और आलिङ्गनादि :—

पुरी, भारतीर प्रभु वन्दिलेन चरण।
दोँहे महाप्रभुरे कैला प्रेम-आलिङ्गन॥ 220॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती उनके गुरुके गुरु-भ्राता थे, इसलिये महाप्रभुने उनके चरणकमलोंकी वन्दना की। उन दोनोंने महाप्रभुका प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया॥ 220॥

दामोदर-स्वरूप, पण्डित गदाधर।
जगदानन्द, काशीश्वर, गोविन्द, वक्रेश्वर॥ 221॥

काशी-मिश्र, प्रद्युम्न-मिश्र, पण्डित-दामोदर।
हरिदास ठाकुर, आर पण्डित-शङ्कर॥ 222॥

भक्त और भगवान्‌के मिलनसे
दोनोंमें ही प्रेमका आवेश :—

आर सब भक्त प्रभुर चरणे पड़िला।
सबा आलिङ्गिया प्रभु प्रेमाविष्ट हैला॥ 223॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामी, श्रीगदाधर-पण्डित, श्रीजगदानन्द-पण्डित, श्रीकाशीश्वर-पण्डित, श्रीगोविन्द, श्रीवक्रेश्वर-पण्डित, श्रीकाशी-मिश्र, श्रीप्रद्युम्न-मिश्र, श्रीदामोदर-पण्डित, श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीशङ्कर-पण्डित तथा अन्य सब भक्त महाप्रभुके श्रीचरणोंमें पड़ गये, उन सब भक्तोंको आलिङ्गन करके महाप्रभु प्रेममें आविष्ट हो गये॥ 221-223॥

सभीको साथ लेकर महाप्रभुके द्वारा श्रीजगन्नाथ-दर्शन :—

आनन्द-समुद्रे भासे सब भक्तगणे।
सबा लञा चले प्रभु जगन्नाथ-दरशने॥ 224॥

अनुवाद—सभी भक्त आनन्दके समुद्रमें डूब गये। महाप्रभु उन सब भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये चल पड़े॥ 224॥

महाप्रभुका प्रेमावेश और नृत्यगीत :—

जगन्नाथ देखि' प्रभु प्रेमाविष्ट हैला।
भक्तसङ्गे बहुक्षण नृत्य-गीत कैला॥ 225॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करके महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। बहुत देर तक वे भक्तोंके साथ नृत्य और कीर्तन करते रहे॥ 225॥

श्रीजगन्नाथकी प्रसादी-मालाकी प्राप्ति,
पड़िछाओंके द्वारा प्रणाम :—

जगन्नाथ-सेवक आनि' माला-प्रसाद दिला।
तुलसी पड़िछा आसि' चरण वन्दिला॥ 226॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके सेवकोंने आकर महाप्रभुको प्रसादी माला पहनायी। तुलसी-पड़िछाने आकर उनके श्रीचरणोंकी वन्दना की॥ 226॥

चारों ओर महाप्रभुके आगमनके संवादका विस्तार,
कटकसे श्रीराय और श्रीभट्टाचार्यके द्वारा
आकर महाप्रभुका दर्शन :—

'महाप्रभु आइला'—ग्रामे कोलाहल हैल।
सार्वभौम, रामानन्द, वाणीनाथ मिलिल॥ 227॥

अनुवाद—'महाप्रभु जगन्नाथपुरी लौट आये हैं'—सर्वत्र यह बात फैल गयी। कटकसे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीरामानन्द राय और श्रीद्विज-वाणीनाथने आकर महाप्रभुसे भेंट की॥ 227॥

महाप्रभुका काशीमिश्रके गृहमें वास
और सार्वभौमका निमन्त्रण :—

सबा सङ्गे लञा प्रभु मिश्र-वासा आइला।
सार्वभौम-पण्डित गोसाञिरे निमन्त्रण कैला॥ 228॥

भक्तोंके साथ प्रसादके सेवनकी इच्छाके लिये प्रसाद
लानेका आदेश :—

प्रभु कहे,—"महाप्रसाद आन' एइ स्थाने।
सबा-सङ्गे इँहा आजि करिमु भोजने॥"229॥

अनुवाद—महाप्रभु सभीको अपने साथ लेकर श्रीकाशीमिश्रके घरपर आ गये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और श्रीगदाधर पण्डितने महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने उनके निमन्त्रणको स्वीकार करके उन दोनोंसे कहा,—"महाप्रसाद यहाँपर ही ले आइये। आज मैं सबके साथ बैठकर यहींपर ही भोजन करूँगा॥"228-229॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुके द्वारा महाप्रसादका सम्मान :—

तबे दुँहे जगन्नाथप्रसाद आनिला।
सबा-सङ्गे महाप्रभु भोजन करिला॥ 230॥

अनुवाद—तब वे दोनों श्रीजगन्नाथके प्रसादको लेकर आये और महाप्रभुने सबके साथ बैठकर भोजन किया॥ 230॥

वृन्दावनसे पुरी-आगमनकी यात्रा वर्णित :—

एइ त' कहिलुँ,—प्रभु देखि' वृन्दावन।
पुनः करिलेन यैछे नीलाद्रि-गमन॥ 231॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने (कविराज गोस्वामीने) महाप्रभुके वृन्दावनके दर्शन और पुनः वृन्दावनसे पुरी आगमनके विषयमें बतलाया है॥ 231॥

श्रवण करनेवालोंको चिद्-वृत्तिकी स्फूर्त्ति और श्रीकृष्ण प्राप्ति :—

इहा येइ श्रद्धा करि' करये श्रवण।
अचिरात् पाय सेइ चैतन्य-चरण॥ 232॥

अनुवाद—जो कोई भी महाप्रभुकी लीलाओंको श्रद्धापूर्वक श्रवण करता है, उसे बहुत शीघ्र ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है॥ 232॥

मध्यलीलाका दिग्दर्शन और चौबीस वर्षोंमेंसे छः वर्ष भारतमें नामप्रेमके प्रचारके उद्देश्यसे भ्रमण :—

मध्यलीलार करिलुँ एइ दिग्दरशन।
छय वत्सर कैला यैछे गमनागमन॥ 233॥

अनुवाद—छः वर्षों तक महाप्रभुने जिस प्रकार नीलाचलसे भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें आना-जाना किया, मैंने मध्यलीलामें उसका केवल दिग्दर्शनमात्र कराया है॥ 233॥

बाकीके अठारह वर्ष पुरीमें भक्तोंके साथ कीर्तन-उल्लास :—

शेष अष्टादश वत्सर नीलाचले वास।
भक्तगण-सङ्गे करे कीर्त्तन-विलास॥ 234॥

अनुवाद—अन्तिम अठारह वर्षों तक महाप्रभुने नीलाचलमें ही वास किया। वहाँपर उन्होंने भक्तोंके साथ कीर्तन-विलास किया॥ 234॥

भागवतमें श्रीव्यासकी रीतिका अनुसरण करते हुए संक्षेपमें मध्यलीलाके अध्यायोंका वर्णन करते हुए पुनः चर्चा :—

मध्यलीलार क्रम एबे करि अनुवाद।
अनुवाद कैले हय कथार आस्वाद॥ 235॥

अनुवाद—अब मैं मध्यलीलाके अध्यायोंमें वर्णित विषयोंका क्रमसे पुनः वर्णन करूँगा। पुनः उल्लेख करनेसे उन विषयोंका आस्वादन होता है॥ 235॥

प्रथम परिच्छेदे—शेषलीलार सूत्रगण।
तथि-मध्ये कोन भागेर विस्तार वर्णन॥ 236॥

अनुवाद—पहले अध्यायमें शेषलीलाका सूत्ररूपमें वर्णन किया है और उसीमें ही किसी-किसी भागका विस्तारपूर्वक भी वर्णन किया है॥ 236॥

द्वितीय परिच्छेदे—प्रभुर प्रलाप-वर्णन।
तथि-मध्ये नाना-भावेर दिग्दरशन॥ 237॥

अनुवाद—दूसरे अध्यायमें महाप्रभुके प्रलापका वर्णन हुआ है। उसके बीचमें महाप्रभुमें प्रकाशित अनेक-भावोंका दिग्दर्शन भी कराया है॥ 237॥

तृतीय परिच्छेदे—प्रभुर कहिलुँ संन्यास।
आचार्येर घरे यैछे करिला विलास॥ 238॥

अनुवाद—तीसरे अध्यायमें महाप्रभुके संन्यासका वर्णन किया गया है और श्रीअद्वैताचार्यके घरपर महाप्रभुके विलासका वर्णन है॥ 238॥

चतुर्थे—माधवपुरीर चरित्र-आस्वादन।
गोपाल-स्थापन, क्षीरचुरिर वर्णन॥ 239॥

अनुवाद—चौथे अध्यायमें महाप्रभु और भक्तोंके द्वारा श्रीमाधवेन्द्रपुरीके चरित्रका आस्वादन, उनके द्वारा

श्रीगोपालके विग्रहकी स्थापना और श्रीगोपीनाथके खीर-चोरी करनेका प्रसङ्ग वर्णित हुआ है॥ 239॥

पञ्चमे—साक्षिगोपाल-चरित्र वर्णन।
नित्यानन्द कहे, प्रभु करेन आस्वादन॥ 240॥

अनुवाद—पाँचवें अध्यायमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा साक्षी गोपालके चरित्रका वर्णन और महाप्रभुके द्वारा उसके आस्वादनका वर्णन हुआ है॥ 240॥

षष्ठे—सार्वभौमेर करिला उद्धार।
सप्तमे—तीर्थयात्रा, वासुदेव-निस्तार॥ 241॥

अनुवाद—छठे अध्यायमें महाप्रभुके द्वारा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके उद्धारका वर्णन हुआ है। सातवें अध्यायमें महाप्रभुकी तीर्थयात्रा और उनके द्वारा श्रीवासुदेव-विप्रके उद्धारका वर्णन हुआ है॥ 241॥

अष्टमे—रामानन्द-संवाद विस्तार।
आपने शुनिला 'सर्व-सिद्धान्तेर सार'॥ 242॥

अनुवाद—आठवें अध्यायमें श्रीरामानन्द-संवादका वर्णन हुआ है। स्वयं महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायके मुखसे सभी सिद्धान्तोंके सारका श्रवण किया॥ 242॥

नवमे—कहिलुँ दक्षिण-तीर्थ-भ्रमण।
दशमे—कहिलुँ सर्व वैष्णव-मिलन॥ 243॥

अनुवाद—नौवें अध्यायमें मैंने महाप्रभुके द्वारा किये गये दक्षिण भारतके तीर्थोंके भ्रमणका वर्णन किया है। दसवें अध्यायमें महाप्रभुके साथ सभी वैष्णवोंके मिलनका वर्णन हुआ है॥ 243॥

एकादशे—श्रीमन्दिरे 'बेड़ा-सङ्कीर्त्तन'।
द्वादशे—गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-क्षालन॥ 244॥

अनुवाद—ग्यारहवें अध्यायमें श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें हुए 'बेड़ा-सङ्कीर्तन'का (परिक्रमा करते हुए कीर्तनका) वर्णन हुआ है। बारहवें अध्यायमें गुण्डिचा-मन्दिरकी सफाई-धुलाईका वर्णन हुआ है॥ 244॥

त्रयोदशे—रथ-आगे प्रभुर नर्त्तन।
चतुर्द्दशे—'हेरापञ्चमी'-यात्रा-दरशन॥ 245॥

तार मध्ये व्रजदेवीर भावेर श्रवण।
स्वरूप कहिला, प्रभु कैला आस्वादन॥ 246॥

अनुवाद—तेरहवें अध्यायमें रथके आगे महाप्रभुके द्वारा किये गये नृत्यका वर्णन हुआ है। चौदहवें अध्यायमें 'हेरा-पञ्चमी' यात्राके दर्शनका वर्णन हुआ है और महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरसे व्रजदेवियोंके भावोंको सुनकर उसका आस्वादन किया॥ 245-246॥

पञ्चदशे—भक्तेर गुण आपने कहिल।
सार्वभौम-घरे भिक्षा, अमोघ तारिल॥ 247॥

अनुवाद—पन्द्रहवें अध्यायमें महाप्रभुके द्वारा अपने भक्तोंके गुणोंका वर्णन, उनके द्वारा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घरपर भिक्षा करने और अमोघके उद्धारका भी वर्णन हुआ है॥ 247॥

षोड़शे—वृन्दावन-यात्रा गौड़देशे-पथे।
पुनः नीलाचले आइला, नाटशाला हैते॥ 248॥

अनुवाद—सोलहवें अध्यायमें महाप्रभुकी गौड़देश (बङ्गाल)से होते हुए वृन्दावनके लिये जानेका वर्णन है। किन्तु वे वृन्दावन न जाकर कानाइ-नाटशालासे ही नीलाचल लौट आये॥ 248॥

सप्तदशे—वनपथे मथुरा-गमन।
अष्टादशे—वृन्दावन-विहार-वर्णन॥ 249॥

अनुवाद—सतरहवें अध्यायमें महाप्रभुके झारिखण्डके वनके मार्गसे मथुरा जानेका और अठारहवें अध्यायमें महाप्रभुके वृन्दावन-विहारका वर्णन हुआ है॥ 249॥

ऊनविंशे—मथुरा हैते प्रयाग-गमन।
तार मध्ये श्रीरूपेरे शक्ति-सञ्चारण॥ 250॥

अनुवाद—उन्नीसवें अध्यायमें महाप्रभुके मथुरासे प्रयाग लौटनेका वर्णन हुआ है। उसी अध्यायमें महाप्रभुके द्वारा श्रीरूप गोस्वामीमें शक्ति-सञ्चार करनेका वर्णन भी है॥ 250॥

विंशति परिच्छेदे—सनातनेर मिलन।
तार मध्ये भगवानेर स्वरूप-वर्णन॥ 251॥

अनुवाद—बीसवें अध्यायमें महाप्रभुके साथ श्रीसनातन गोस्वामीके मिलनका वर्णन हुआ है। उसी अध्यायमें महाप्रभुके द्वारा भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन भी लिखा है॥ 251॥

एकविंशे—कृष्णैश्वर्य-माधुर्य-वर्णन।
द्वाविंशे—द्विविध साधनभक्तिर विवरण॥ 252॥

अनुवाद—इक्कीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णके ऐश्वर्य और माधुर्यका वर्णन और बाइसवें अध्यायमें दो प्रकारकी साधनभक्तिका विवरण दिया गया है॥ 252॥

त्रयोविंशे—प्रेमभक्तिरसेर कथन।
चतुर्विंशे—'आत्मारामा'-श्लोकार्थ-वर्णन॥ 253॥

अनुवाद—तेइसवें अध्यायमें प्रेमभक्तिरसका वर्णन और चौबीसवें अध्यायमें 'आत्मारामाः' श्लोकके अर्थोंका वर्णन हुआ है॥ 253॥

पञ्चविंशे—काशीवासीरे वैष्णवकरण।
काशी हैते पुनः नीलाचले आगमन॥ 254॥

अनुवाद—पचीसवें अध्यायमें महाप्रभुके द्वारा काशीवासियोंको वैष्णव बनाने और महाप्रभुके काशीसे पुनः नीलाचल आनेका वर्णन हुआ है॥ 254॥

पञ्चविंशति परिच्छेदे एइ कैलुँ अनुवाद।
याहार श्रवणे हय ग्रन्थार्थ-आस्वाद॥ 255॥

अनुवाद—पचीसवें अध्यायमें मैंने सम्पूर्ण मध्यलीलाका क्रमशः पुनः संक्षेपमें वर्णन किया है, जिसके श्रवणसे सम्पूर्ण ग्रन्थके तात्पर्यको जाना जा सकता है॥ 255॥

संक्षेपमें मध्यलीला वर्णित :—

संक्षेपे कहिलुँ एइ मध्यलीलार सार।
कोटिग्रन्थे वर्णन ना याय इहार विस्तार॥ 256॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने संक्षेपमें मध्यलीलाके सारका वर्णन किया है, विस्तारसे तो इसका करोड़ों ग्रन्थोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 256॥

जीवोंके उद्धारके लिये महाप्रभुका सम्पूर्ण भारत-भ्रमण और स्वयं आचरण करके प्रचार :—

जीव निस्तारिते प्रभु भ्रमिला देशे-देशे।
आपने आस्वादि' भक्ति करिला प्रकाशे॥ 257॥

अनुवाद—जीवोंका उद्धार करनेके लिये महाप्रभुने देश-देशमें भ्रमण किया। स्वयं भक्तिका आस्वादन करते हुए उन्होंने भक्तिका प्रचार किया॥ 257॥

महाप्रभुके द्वारा प्रचारित विषय-समूह :—

कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व आर।
भावतत्त्व, रसतत्त्व, लीलातत्त्व-सार॥ 258॥

श्रीभागवत-तत्त्वरस करिला प्रचारे।
कृष्णतुल्य भागवत, जानाइला संसारे॥ 259॥

कभी तो श्रोतारूपमें, और कभी वक्तारूपमें शुद्धभक्तिका प्रचार :—

भक्त लागि' विस्तारिला आपन-वदने।
काँहा भक्त-मुखे कहाइ शुनिला आपने॥ 260॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीकृष्ण-तत्त्व, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व, भावतत्त्व, रसतत्त्व, लीलातत्त्व-सार और श्रीभागवतके तत्त्व एवं रसका प्रचार किया। उन्होंने संसारमें इस बातको प्रकाशित किया कि श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं, श्रीभागवत श्रीकृष्णका वाङ्मय अवतार है। कभी तो महाप्रभुने भक्तोंके लिये स्वयं अपने मुखसे

भागवतके तत्त्वोंका वर्णन किया और कभी उन्होंने भक्तोंमें शक्ति सञ्चरित करके उनके मुखसे स्वयं उसका श्रवण किया॥ 258-260॥

अनुपम भक्तवत्सल, अद्वितीय और अहैतुकी कृपाके सागर :—

श्रीचैतन्यसम आर कृपालु, वदान्य।
भक्तवत्सल ना देखि त्रिजगते अन्य॥ 261॥

अनुवाद—तीनों लोकोंमें मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुके समान कोई कृपालु, वदान्य और भक्तवत्सलको नहीं देखता हूँ॥ 261॥

अन्धविश्वास छोड़कर वास्तव-वस्तुमें दृढ़-विश्वासके फलस्वरूप ही परतत्त्व श्रीचैतन्य-कृष्णकी प्राप्ति :—

श्रद्धा करि' एइ लीला शुन, भक्तगण।
इहार प्रसादे पाइबा चैतन्य-चरण॥ 262॥

इहार प्रसादे पाइबा कृष्णतत्त्वसार।
सर्वशास्त्र-सिद्धान्तेर इँहा पाइबा पार॥ 263॥

अनुवाद—हे भक्तों! श्रद्धापूर्वक इन लीलाओंका श्रवण करो, इनकी कृपासे आपको श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति होगी। इन लीलाओंको श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेसे आप श्रीकृष्णतत्त्व-सारको समझ सकोगे। श्रीकृष्णतत्त्व-सारको समझनेपर सभी शास्त्र-सिद्धान्तोंका स्वतः ही पूर्ण ज्ञान हो जाता है॥ 262-263॥

श्रीकृष्णलीला और श्रीचैतन्यलीला—अभिन्न अमृतकी नदी, वह केवलमात्र शुद्धचित्त भक्तके द्वारा ही आस्वाद्य :—

कृष्णलीला अमृत-सार, तार शत शत धार,
दशदिके बहे याहा हैते।
से चैतन्यलीला हय, सरोवर अक्षय,
मनोहंस चराह' ताहाते॥ 264॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-लीलाएँ अमृतका सार हैं। इनकी सैकड़ों धाराएँ दसों दिशाओंमें बहती हैं। श्रीकृष्ण-लीलाओंसे अभिन्न श्रीचैतन्य-लीलाएँ अक्षय सरोवर हैं, हे भक्तों! अपने मनरूपी हंसको उसमें विहार कराओ॥ 264॥

ग्रन्थकारकी दीनतापूर्वक प्रार्थना :—

भक्तगण, शुन मोर दैन्य-वचन।
तोमा-सबार पदधूलि, अङ्गे विभूषण करि',
किछु मुञि करोँ निवेदन॥ 265॥ ध्रु.॥

अनुवाद—हे भक्तों! आप मेरी विनती सुनो। आप सबके चरणकमलोंकी धूलिको अपने अङ्गोंका विभूषण बनाकर मैं कुछ निवेदन कर रहा हूँ॥ 265॥

भक्तिसिद्धान्तसमूह और श्रीकृष्णप्रेमरसके आस्वादनके लिये भक्तोंसे अनुरोध :—

कृष्णभक्तिसिद्धान्तगण, याते प्रफुल्ल पद्मवन,
तार मधु करि' आस्वादन।
प्रेमरस-कुमुदवने, प्रफुल्लित रात्रि-दिने,
ताते चराओ मनोभृङ्गगण॥ 266॥

अनुवाद—श्रीकृष्णभक्तिसिद्धान्त-समूह प्रफुल्लित कमलोंके वन सदृश्य है, कृपा करके आप उन कमलोंके मकरन्दका आस्वादन कीजिये। इस सरोवरमें प्रेमरसरूपी कुमुदवन रात-दिन प्रफुल्लित हो रहा है, हे भक्तों! उसमें अपने मनरूपी भ्रमरको विहार कराओ॥ 266॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णलीला ही 'अमृत-सार वस्तु' है; उसके अतिरिक्त,—सब कुछ ही 'असार' है। श्रीकृष्णलीलामृत सारकी सैकड़ों-सैकड़ों धाराएँ श्रीकृष्णलीलामृतसे दसों दिशाओंमें प्रवाहित होती हैं। श्रीकृष्णलीलामृत-सार ही श्रीचैतन्यलीला है। श्रीचैतन्यलीलाको श्रीकृष्णलीलासे पृथक् मानकर वर्तमान कालमें नयी-नयी कल्पनाओंके प्रभावसे उत्पन्न "नदीया और गौरनागरी लीला" आदि नये मतवादोंकी सृष्टि करनेकी चेष्टा चल रही है। थियसफिस्ट दलके कई लोग और अन्यान्य भक्ति-विरोधी प्राकृत बाउल और

सहजिया दलके कई व्यक्ति अपनी-अपनी उच्छृङ्खल प्राकृत-वृत्तिके साँचेमें ढालकर अर्थात् अपनी वृत्तिके अनुसार ही श्रीगौराङ्गको भी कोई राजनैतिक-नेता अथवा कोई शक्तिके उपासक अथवा कोई अवैध नागरीका लम्पट माननेकी धारणा रखते हैं। गोलोककी नित्यलीला ही प्रकटकालमें प्रपञ्चमें उदित होती है। महाप्रभुकी प्रकटलीलामें उस समय श्रीरूपादि श्रीगौरलीलाके पार्षदवर्गमेंसे किसीने भी उस लीलामें गौरनागर-लीलाको नहीं देखा अथवा समझा, इसलिये तथाकथित गौरनागर-लीला निश्चय ही चैतन्यलीला नहीं है। श्रीरूपानुग वैष्णव-गुरुके चरणचिह्नोंका अनुसरण करके श्रीगौरभक्ति करना ही कर्त्तव्य है। कल्पनाके सरोवरमें अवगाहन करके 'नवगोरार दल' बनाकर कोई भी फल नहीं मिलेगा।

'चैतन्यलीला'—अक्षय सरोवर है; श्रीकृष्णभक्ति-सिद्धान्त-समूह—उस सरोवरके कमलके वन हैं; प्रेमरस—कुमुदवन है; और भक्तोंका मन—भँवरोंका समूह है॥ 264-266॥

श्रीकृष्णलीलाका वैचित्र्य-समूह ही भक्तोंका जीवन :—

नाना-भावेर भक्तजन, हंस-चक्रवाकगण,
याते बसि' करेन विहार।
कृष्णकेलि-मृणाल, याहा पाइ सर्वकाल,
भक्त-हंस करये आहार॥ 267॥

अनुवाद—अनेक भावोंके हंस, चक्रवाकादि रूपी भक्तगण इस (श्रीचैतन्यलीलारूपी) अक्षय सरोवरमें सदैव विहार करते हैं। इस सरोवरमें श्रीकृष्णलीलारूपी मृणाल (कमलनाल) सदा उपलब्ध है और भक्तरूपी हंस सदैव उस कमलनालका आहार करते हैं॥ 267॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकेलिरूपी कमलनाल ही भक्त रूपी हंसका 'आहार' है। नित्यसम्भोगरस-विग्रह श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाएँ श्रीकृष्णसे अभिन्न-तनु नित्यविप्रलम्भरसविग्रह श्रीगौरसुन्दरके आश्रित नित्यसेवक भक्तोंकी आहार योग्य वस्तु है॥ 267॥

वैसे आस्वादनसे ही प्रेमोल्लासकी वृद्धि :—

सेइ सरोवरे गिया, हंस-चक्रवाक हञा,
सदा ताँहा करह विलास।
खण्डिबे सकल दुःख, पाइबा परम सुख,
अनायासे हबे प्रेमोल्लास॥ 268॥

अनुवाद—हे श्रीगौरभक्तों! आप भी हंस, चक्रवाक बनकर उस सरोवरमें जाकर सदैव वहीं विलास करो। इससे आपके समस्त दुःख दूर हो जायेंगे और आपको परम सुखकी प्राप्ति होगी और अनायास ही प्रेमोल्लास उत्पन्न होगा॥ 268॥

अनुभाष्य—हे श्रीगौरभक्तों, श्रीचैतन्यलीलाके सरोवरमें अवगाहन करके नित्यकाल श्रीगौरपदाश्रित हंस-चक्रवाक्के रूपमें श्रीकृष्णका भजन करते-करते श्रीगौर-उपासनारूपी सरोवरमें विलास करो। ऐसा करनेपर नदीया-नागरीकी भाँति श्रीगौराङ्गको कोई भोग्य-जड़वस्तुके रूपमें कल्पना करके श्रीकृष्णसे इतर सेवारूपी 'दुःख'से बच जाओगे और श्रीकृष्णसेवारूपी परमसुखको प्राप्त करके (तुम) श्रीकृष्णप्रेमके उल्लासमें मत्त हो जाओगे॥ 268॥

शुद्धभक्तोंके द्वारा विश्ववासियोंमें
श्रीगौरकृष्णलीलामृतका वितरण :—

एइ अमृत अनुक्षण, साधु-महान्त-मेघगण,
विश्वोद्याने करे वरिषण।
ताते फले अमृत-फल, भक्त खाय निरन्तर,
तार प्रेमे जीये जगजन॥ 269॥

अनुवाद—साधु-महान्त पुरुष ही मेघ बनकर विश्वरूपी उद्यानमें इस लीलारूपी अमृतका निरन्तर वर्षण करते हैं। उस वर्षणके फलस्वरूप प्रेमरूपी अमृत-फल फलता है। भक्तगण उसको निरन्तर खाते हैं और जगत्वासी उन भक्तोंके उच्छिष्टको खाकर सुखपूर्वक जीवित रहते हैं॥ 269॥

अनुभाष्य—श्रीगौरपदाश्रित साधु-महान्त ही मेघसमूह हैं। वे सदैव जगत्रूपी उद्यानमें श्रीकृष्णलीलामृतका

वर्षण करते हैं। इस जलधाराके सींचनेके प्रभावसे प्रेमामृत-फलके फलनेपर भक्तगण उसे निरन्तर खाते हैं और उनके प्रेमसे विश्ववासी जीवन धारण करते हैं॥ 269॥

श्रीगौरलीला—घने दूधका पूर (सागर), उसमें श्रीकृष्णलीला—सुकर्पूर, श्रौत-पन्थामें हरि-गुरु-वैष्णवकी कृपासे उसके आस्वादनकी सम्भावना :—

चैतन्यलीला—अमृतपूर, कृष्णलीला—सुकर्पूर,
दुहे मिलि' हय सुमाधुर्य।
साधु-गुरु-प्रसादे, ताहा येइ आस्वादे,
सेइ जाने माधुर्य-प्राचुर्य॥ 270॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यलीला उस प्रेमामृतके सागर सदृश है और श्रीकृष्णलीला-सुकर्पूरके समान है। दोनों लीलाएँ मिलनेपर अत्यधिक मधुर और आस्वादनीय हो जाती हैं। साधु-गुरुकी कृपासे ही जो कोई उसका आस्वादन करता है, वही माधुर्यकी चरमसीमाको जान पाता है॥ 270॥

अनुभाष्य—चैतन्यलीलामृत—उस प्रेमामृतके 'सागर'के समान है और श्रीकृष्णलीला—सुकर्पूर-तुल्य है; इन दोनों लीलामृतका एक साथ मिलना ही सुमाधुर्य है। श्रीकृष्णलीला-माधुर्य श्रीचैतन्यलीलामृतके सहयोगसे पुष्ट होकर सुमाधुर्यमय हो गया है। श्रीगौर-विरोधी असुरदल श्रीगौरलीला अथवा श्रीगौर-मन्त्रको स्वीकार नहीं करता, इसलिये उनके द्वारा श्रीकृष्णलीला-माधुर्यका आस्वादन करना सम्भव नहीं है। दूसरी ओर, श्रीकृष्णविरोधी दैत्यदल श्रीकृष्णलीलामृतसे उदासीन होकर नदीया-नागरीके अनुगत नागरी-अभिमानसे विप्रलम्भरसविग्रह श्रीराधाकृष्ण-अभिन्न-तनु श्रीगौरको श्रीकृष्णसे अलग करके अर्थात् सम्भोगरसविग्रह मानकर श्रीगौरलीलाके वैचित्र्यके माधुर्यका समूल विनाश करते हैं। श्रीरूपानुग-साधु-गुरु-कृपाके द्वारा अर्थात् श्रीरूपानुगत्यमें श्रीगौरलीलामृत और श्रीकृष्णलीलामृतको परस्पर 'अभिन्न' जाननेपर दोनों लीलाओंके एक साथ सम्मिलनसे ही केवल प्रचुर माधुर्यका आस्वादन होता है। श्रीरूपानुग व्यक्ति केवलमात्र इसीपर ही दृढ़भावसे विश्वास करते हैं॥ 270॥

ये दोनों लीलामृत ही भक्तोंका आहार, इसके अतिरिक्त अन्नग्रहण करनेपर भी भक्त-जीवनकी अपुष्टि :—

ये लीला-अमृत बिने, खाय यदि अन्नपाने,
तबे भक्तेर दुर्बल जीवन।
यार एकबिन्दु-पाने, उत्फुल्लित तनुमने,
हासे, गाय, करये नर्त्तन॥ 271॥

अनुवाद—इस लीलामृतके बिना भक्त अन्नादि खानेपर भी वास्तवमें दुर्बल रहता है। परन्तु इस लीलामृतकी एक बिन्दुका पान करनेसे ही वह तन-मनसे अत्यन्त प्रफुल्लित होकर हँसता, गाता और नृत्य करता है॥ 271॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मनुष्य अन्न खानेसे पुष्ट होता है। बहिर्मुख व्यक्तियोंकी भाँति अन्न खानेपर भी यदि भक्तगण श्रीकृष्णलीलासे युक्त श्रीचैतन्यलीलामृतका पान नहीं करते हैं, तो वे भी बहिर्मुख व्यक्तियोंकी भाँति (परमार्थ-पथके लिये) दुर्बल हो जाते हैं॥ 271॥

अनुभाष्य—पाठान्तरे—'खाय यदि अनुपाने।'॥ 271॥

तर्कपन्थासे यह अमृत दुर्लभ :—

ए अमृत कर पान, यार सम नाहि आन,
चित्ते करि' सुदृढ़ विश्वास।
ना पड़' कुतर्क-गर्त्ते, अमेध्य-कर्कश-आवर्त्ते,
याते पड़िले हय सर्वनाश॥ 272॥

अनुवाद—हे भक्तों! चित्तमें ऐसा सुदृढ़ विश्वास रखकर कि इसके समान अन्य कुछ भी नहीं है, इस अमृतका पान करो। साथ ही इस बातसे बहुत सावधान रहना कि कहीं कुतर्करूपी गड्ढे अथवा अपवित्र दुर्गन्धयुक्त कठोर बवण्डरमें मत उलझ जाओ, उसमें फँसनेसे सर्वनाश हो जाता है॥ 272॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णलीला और श्रीगौरलीलाको परस्पर भिन्न समझकर कुतर्कके आधारपर अपवित्र कर्कश घूमनेवाली वायुके द्वारा चलायमान होकर श्रीकृष्णभजन छोड़कर श्रीगौरभजन करने अथवा श्रीगौरसेवाको छोड़कर श्रीकृष्णसेवा करनेपर, मूढ़-जीवका सर्वनाश होता है॥ 272॥

पञ्चतत्त्वको और श्रोताओंको प्रणाम :—

श्रीचैतन्य, नित्यानन्द, श्रीअद्वैत, भक्तवृन्द,
आर यत श्रोता भक्तगण।
तोमा-सबार श्रीचरण, करि शिरे भूषण,
याहा हैते अभीष्ट-पूरण॥ 273॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, समस्त गौरभक्तवृन्द और जितने श्रोता भक्तवृन्द हैं, मैं आप सबके श्रीचरणकमलोंको अपने सिरका विभूषण बनाता हूँ, उसीसे ही मेरी अभीष्ट-पूर्त्ति होगी॥ 273॥

अभीष्ट आराध्यको प्रणाम :—

श्रीरूप-सनातन- रघुनाथ-जीव-चरण,
शिरे धरि,—यार करि आश।
कृष्णलीलामृतान्वित, चैतन्यचरितामृत,
कहे किछु दीन कृष्णदास॥ 274॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी और श्रीजीव गोस्वामीके श्रीचरणकमलोंको सिरपर धारण करके उनकी कृपाकी मैं सदैव आशा करता हूँ। मैं, कृष्णदास, श्रीकृष्णलीलासे युक्त श्रीचैतन्यचरितामृतका दीनतापूर्वक कुछ वर्णन करनेका प्रयास कर रहा हूँ॥ 274॥

श्रीमन्मदनगोपाल-गोविन्ददेव-तुष्टये।
चैतन्यार्पितमस्त्वेतच्चैतन्यचरितामृतम्॥ 275॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 275॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमदनगोपाल और श्रीगोविन्द-देवकी तुष्टिके लिये यह चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुको समर्पित हो॥ 275॥

अनुभाष्य—

श्रीमन्मदनगोपाल-गोविन्ददेव-तुष्टये (श्रीमन्मदनगोपालः गोविन्ददेवः च तयोः तुष्टये प्रीत्यै) एतत् चैतन्यचरितामृतं चैतन्यार्पितमस्तु (श्रीकृष्णचैतन्याय समर्पयामि)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 275॥

अभक्तोंकी निन्दा-प्रशंसाके प्रति निरपेक्ष ग्रन्थकारका भक्तोंके सुखसे ही स्वयंको कृतार्थ मानना :—

तदिदमतिरहस्यं गौरलीलामृतं यत्
खलु समुदय-लोकैर्नादृतं तैरलभ्यम्।
क्षतिरियमिह का मे स्वादितं यत् समन्तात्
सहृदय-सुमनोभिर्मोदमेषां तनोति॥ 276॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे काशीवासि-वैष्णवकरणं पुनर्नीलाचल-गमनश्च पञ्चविंशः परिच्छेदः।

इति मध्यलीला समाप्ता

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 276॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह अति रहस्यमय श्रीगौर-लीलामृत भक्तोंका प्राणधन होनेपर भी अनधिकारी लोग निश्चय ही इसका आदर नहीं करेंगे, इसमें मेरी कोई हानि नहीं है, परन्तु यह लीलामृत जिन सब सहृदय साधुओंके द्वारा सम्पूर्णरूपसे आस्वादित होगा, यह ग्रन्थ उन महात्माओंके आनन्दका विस्तार करे॥ 276॥

पचीसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें काशीवासियोंका वैष्णवकरण और पुनः नीलाचल-गमन नामक पचीसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

अनुभाष्य—

अतिरहस्यं (परमगोपनीयं) तत् गौरलीलामृतम् (इदं ग्रन्थरत्नं) खलु (निश्चितं) समुदयलौकैः (असद्भिरनधिकारिभिः सर्वैः) न

आदृतं, यतः [इदं] तैः (असद्भिः) अलभ्यं (लब्धुमशक्यम्); इह (अत्र) मे (मम) इयं का क्षतिः (हानिः)?—यत् (यत्र) सहृदयसुमनोभिः (निष्कपटैः सुधीभिः ऐकान्तिकचित्तैः) समन्तात् (सर्वतः) स्वादितं (सत्) एषां (सुमनसां) मोदं तनोति (विस्तारयति)।

श्लोक–भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 276॥

पचीसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

मध्यलीला समाप्त

श्लोक सूची

[वर्णक्रमानुसार प्रथम और तृतीय चरण]

अ

अक्रूरस्त्वभिवन्दने 22/132
अक्ष्णोः फलं त्वादृश 20/61
अगजगदोकसामखिल 15/180
अगत्येकगतिं नत्वा 21/1
अङ्गीकुर्वन् स्फुटां चक्रे 15/1
अचिरादेव सर्वार्थः 20/106, 24/164
अजनि च यन्मयं 19/143
अजातशत्रवः शान्ताः 22/78
अजानता महिमानं तवेदं 19/199
अटति यद्भवानह्नि काननं 21/124
अत आत्यन्तिकं क्षेमं 22/82
अतः श्रीकृष्णनामादि न 17/136
अतुल्यमधुरप्रेम-मण्डित 23/78
अथ पञ्चगुणा ये स्युरंशेन 23/74
अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्यन्ते 23/82
अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च 23/76
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः 23/101
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं 24/112
अनन्यममता विष्णौ ममता 23/8
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष 23/104
अनादिरादिर्गोविन्दः 20/154, 21/35
अनारुरुक्षवे शैलं स्वस्मै 18/25
अनिकेतः स्थिरमतिः 23/107
अन्तर्गतः स्वविवरेण 17/142, 24/45, 24/110, 25/151
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा 23/36
अन्तर्भक्तिरसेन पूर्णसरसो 24/343
अन्यथा विश्वमोहोऽपि 17/216
अन्ये च संस्कृतात्मानो 20/173
अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां 25/121
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य 20/262
अपरिकलितपूर्वः 20/182
अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो 19/143
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं 20/116
अपि सम्भावना-प्रश्न 24/64
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं 19/75
अप्राप्तातीत-नष्टार्था 24/175
अवजानन्ति मां मूढ़ा 25/38
अवतारावलीबीजं हतारि 23/77
अवतारा ह्यसंख्येया 20/249
अवरुह्य गिरेः कृष्णो 18/25
अविचिन्त्यमहाशक्तिः 23/76
अविद्या-कर्मसंज्ञान्या 20/112, 24/303
अभयं सर्वदा तस्मै 22/34
अमृतं शाश्वतं 21/51, 21/88
अयं नेता सुरम्याङ्गः 23/66
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य 20/182
अर्च्चायामेव हरये पूजां 22/71
अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां 25/137
अश्वत्थवृक्षाश्च वटवृक्षाश्च 24/294
असमानोर्ध्वरूपश्री 23/79
असर्वव्यञ्जकः पूर्णतरः 20/398
अस्पन्दनं गतिमतां पुलक 24/201
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं 15/269
अस्मिन् सुखघनमूर्त्तौ 24/123
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो 22/91
अहं वेद्मि शुको वेत्ति 24/314
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः 24/183
अहमिह नन्दं वन्दे 19/96
अहमेवासमेवाग्रे 24/72, 25/111
अहैतुक्यव्यवहिता या 19/172
अहो धन्योऽसि देवर्षे 24/272
अहो बकी यं स्तन- 22/95
अहो बत श्वपचोऽतो 19/72
अहो महात्मन् 24/120

आ

आकर्ण्य वेणुरणितं 17/36
आकृष्टिः कृतचेतसां 15/110
आततत्वाच्च 24/68, 74
आत्मनिक्षेप-कार्पण्ये 22/97
आत्मा देहमनोब्रह्म 24/12
आत्मानश्च तदालोकाद् 18/1
आत्मावास्यामिदं विश्वं 25/99
आत्मारामगणाकर्षीत्यमी 23/77
आत्मारामतया मे वृथा 24/123
आत्मारामाश्च 17/140, 24/5, 25/152
आत्मारामेति पद्यार्कस्य 24/1
आदौ श्रद्धा ततः साधु 23/14
आद्योऽवतारः पुरुषः 20/267
आधत्त वीर्यं साऽसूत 20/274
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः 22/97
आपामरं यो विततार 23/1
आपाययति गोविन्दपाद 24/209

आयुः श्रियं यशो धर्मं 25/82
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म 24/153
आरुह्य कृच्छ्रे 24/126, 136, 25/32
आरुह्य ये द्रुमभुजान् 24/170
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी 24/89
आलिलिङ्ग परिघायत 24/344
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नाम 23/18
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने 23/19
आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य 20/331

इ

इति मत्वा भजन्ते मां 24/183
इतीदृक्स्वलीलाभिरानन्द 19/229
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्द 23/80
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो 20/147
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभाव 23/19
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं 20/156
इष्टे स्वारसिकी रागः 22/146
इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो 22/57

ई

ईश्वरः परमः कृष्णः 20/154, 21/35
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु 22/70

उ

उक्तार्थानामप्रयोगः 24/293
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव 15/237
उत्सृज्यैतानथ यदुपते 22/16
उत्तुङ्गं यदुपुरसङ्गमाय 24/115
उदरमुपासते य 24/160, 207
उद्गीर्णाद्भुत–माधुरी– 20/181
उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष 23/33
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं 19/203
उवाह भगवान् कृष्णः 19/205
उरुक्रमे एव भक्तिमेव 24/300

ऋ

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत 25/117
ऋद्धा सिद्धिव्रज–विजयिता 19/165

ए

एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना 20/110
एकन्तुः महतः स्रष्ट्र
एतावदेव जिज्ञास्यं 25/121
एतावान् सर्ववेदार्थः 20/148
एतेऽलिनस्तव यशोऽखिल 24/171
एते चांशकलाः पुंसः कृष्ण 20/156
एते न ह्यद्भुता व्याध 22/143, 24/267
एतौ हि विश्वस्य 20/262
एवं गुणाश्चतुर्भेदाः 23/80
एवंव्रतः स्वप्रियनाम 23/37, 25/135
एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धं 19/208

क

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं 22/93
कदाहं यमुनातीरे नामानि 23/33
कम्प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति 19/98
करुणानिकुरम्बकोमले 21/45
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु 22/133
कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे 24/209
कर्माणि निर्दहति किन्तु 15/170
कलावप्यतिगूढ़ेयं भक्तिर्येन 22/1
कलिं सभाजयन्त्यार्या 20/345
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति 20/342
कलौ नष्टदृशामेषः 24/316
कस्यानुभावोऽस्य न देव 24/51
काचं विचिन्वन्नपि 22/42, 24/213
कामश्च दास्ये न तु 22/135
कामादीनां कति न 22/16
कालवृत्त्यात्ममायायां 20/275
कालेन वृन्दावनकेलि 19/119, 24/345
कालेन येर्वा विमिताः 21/11
का स्व्यङ्ग ते कलपदामृत 24/52
किं विधत्ते किमाचष्टे 20/147
किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशा 24/173
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्त 20/342
कीर्त्यमानं यशो यस्य 24/93
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च 21/124
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वर 22/19
कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा 23/61
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्ति 17/140, 24/5, 25/152
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते 19/197
कृतिसाध्या भवेत् साध्य 22/102
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं 20/343
कृपामृतेनाभिषिषेच 19/119, 24/345
कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य 22/156
कृष्णप्रियावलीमुख्या 23/86
कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं 20/340
कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानं 20/162
कृष्णस्य पूर्णतमता 20/399
कृष्णस्वरूपमाधुर्यैश्वर्य 20/97
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैः 23/93
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने 19/53
कृष्णे स्वधामोपगते 24/316
केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे 24/150
केशाग्रशतभागस्य 19/140
को वेत्ति भूमन् भगवन् 21/9
क्रमः शक्तौ परिपाट्यां 24/24
क्रीड़ाकन्दुकतां येन नीतो 18/38
क्व वा कथं वा कति 21/9
क्षतिरियमिह का मे 25/276

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं 23/18
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव 25/39
क्षीरं यथा दधि विकार 20/310
क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः 24/304
क्षेमं न विन्दन्ति बिना 22/20

ख

ख इव रजांसि वान्ति 21/15

ग

गच्छन् वृन्दावनं गौरो 17/1
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः 19/209
गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार 24/201
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ 25/137
गायन् गुणान् दशशतानन 21/13
गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता 25/128
गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् 21/11
गुणालिसम्पत् कविता च 17/212
गुर्वर्पितगुरुस्नेहा सखीप्रणयिता 23/86
गृहीतचेता राजर्षे 24/46, 25/150
गृहेषु द्वयष्टसाहस्रं स्त्रिय 20/170
गोकुलप्रेमवसतिर्जगच्छ्र
गोपति-तनयाकुञ्जे गोपवधूटी 19/98
गोपीकोलूखले दाम्ना बबन्ध 19/204
गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य 21/112
गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले 21/49
गौड़ेन्द्रस्य सभा-विभूषणमणिः 24/343
गौड़ोद्यानं गौरमेघः सिञ्चन् 16/1
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः 25/137
ग्रन्थो धनेऽथ सन्दर्भे 24/18

घ

घ्राणश्च तत्पादसरोजसौरभे 22/134

च

चतुर्विधा भजन्ते मां 24/89
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्ख 24/150
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा 22/27, 108
चत्वारो वासुदेवाद्या नारायण 20/242
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता 24/21
चान्वाचये समाहारेऽन्योऽन्यार्थे 24/63
चारु-सौभाग्यरेखाढ्या 23/83
चित्रं बतैतदेकेन वपुषा 20/170
चिराददत्तं निज-गुप्तवित्तं 23/1
चीराणि किं पथि न सन्ति 23/109
चेतः केलि-कुतूहलोत्तरलितं 20/181
चैतन्यार्पितमस्तु 25/275

ज

जगत्तमो जहाराव्यात् स 24/1
जगद्धिताय सोऽप्यत्र 20/162
जगृहे पौरुषं रूपं 20/266
जन्माद्यस्य यतः 20/357, 25/141
जय जय जह्यजामजित 15/180
जयति व्रजराजनन्दने न 21/45
जहौ युवैव मलवदुत्तमः 23/24
जानन्त एव जानन्तु 21/27, 83
जिह्वाफलं त्वादृश-कीर्त्तनं 20/61
जीवः सूक्ष्मस्वरूपोऽयं 19/140
जीवनीभूत-गोविन्दपादभक्ति 23/91
जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति 25/74
जीवभूतां महाबाहो ययेदं 20/116
जीवष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दु 23/73
ज्ञानं मे परमगुह्यं यद्विज्ञान 25/103
ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो 20/371
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा 24/82

त

त आवेशा निगद्यन्ते जीवा 20/371
तं मत्वात्मजमव्यक्तं 19/204
तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा 23/21
तं सनातनमुपागतमक्ष्णोर्दृष्टि 24/344
तज्जोषणादाश्वपवर्ग 22/83, 23/16
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांश 20/258
तत्तत्कथा-रतश्चासौ कुर्याद्वासं 22/156
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम 20/373
तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते 22/151
तत् किं करोमि विरलं 23/29
तत्पादाम्बुजसर्वस्वैः 23/95
तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते 22/98
तत उदगादनन्त तव 24/160, 207
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा 19/208
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् 23/14
ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता 19/207
तत्त्वं सनातनायेशः 20/97
तथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः 20/249
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि 24/57
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते 25/107
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो 22/100
तदिदमतिरहस्यं गौरलीला 25/276
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं 19/229
तद्वा इदं भुवनमङ्गल 25/37
तद्विद्यादात्मनो मायां 25/117
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तं 20/160
तद्भावलिप्सुना कार्या 22/154
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र 25/139
तनिष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां 19/211
तन्मयी या भवेद्भक्तिः 22/146
तन्माययातो बुध 20/119, 24/132
तपस्विनो दानपरा यशस्विनो 22/20
तव मधुरस्वरकण्ठी गायति 23/30
तवास्मीति वदन् वाचा तथैव 22/98
तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः 20/115
तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो 17/186, 25/56

तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं 24/163
तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् 22/107
तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो 22/142
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं 20/58
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् 24/67
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम 25/37
तस्य हरेः पदकमलं वन्दे 19/134
तस्याः पारे परव्योम 21/51, 88
तस्याः सुदुःखभय–शोक 19/201
तस्यारविन्दनयनस्य 17/142, 24/45, 24/110, 25/151
तस्यैव हेतोः प्रयतेत 24/163
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु 25/39
तावत् कर्माणि कुर्वीत 22/61
तावद्भक्तिसुखस्यात्र 19/176
तितिक्षवः कारुणिकाः 22/78
तितिक्षा दुःखसंमर्षो 19/212
तीव्रेण भक्तियोगेन 22/36, 24/85, 24/191
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः 20/57
तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं 22/55
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो 23/107
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि 20/251
तेजोवारिमृदां यथा 20/357, 25/141
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च 21/49
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा 25/99
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते 18/65
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुराया 19/72
ते वै विदन्त्यतितरन्ति 24/184
तेषां सततयुक्तानां 24/167, 186
तेषामसौ क्लेशल 22/22, 24/135, 25/31
तेष्वशान्तेषु मूढ़ेषु 22/86
तैस्तैरतुल्यातिशयैः 20/353
त्रय्या चोपनिषद्भिश्च 19/203
त्रिजगन्मानसाकर्षि–मुरली 23/79
त्रैलोक्यसौभगमिदञ्च निरीक्ष्य 24/52
त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च 20/299
त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतं 23/29
त्वत्साक्षात्करणाह्लाद 24/37
त्वयोपभुक्तस्रग्गन्ध 15/237

द

दक्षिणो विनयी ह्रीमान् 23/70
दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं 24/48
ददामि बुद्धियोगं तं 24/167, 186
दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय 20/151
दीपार्च्चिरेव हि दशान्तरं 20/316
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना 19/173
दुरूहाद्भुतवीर्येऽस्मिन् श्रद्धा 22/129
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं 21/112
देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय 19/197
देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां 22/137
देवी कृष्णमयी प्रोक्ता 23/64
देशकाल–सुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः 23/68
देहश्च विक्लवधियः सहसैव 19/201
दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां 20/274
दैवी ह्येषा गुणमयी 20/121, 22/23, 24/133
द्युपतय एव ते न 21/15
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि 20/267
द्वापरे परिचर्यायां कलौ 20/343
द्वापरे भगवान् श्यामः 20/335
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको 23/21

ध

धन्यस्यायं नवप्रेमा 23/36
धन्यः स्म मूढ़मतयोहपि 17/36
धन्येयमद्य धरणी तृण 24/200
धर्मः प्रोज्झित–कैतव 24/95, 25/142
धर्मस्य तत्त्वं निहितं 17/186, 25/56
धर्मो किशोर एवात्र नित्य 20/378
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद् 16/145
धृतिः स्यात् पूर्णता–ज्ञानं 24/175
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञै 20/344

न

न कर्हिचिन्मत्पराः 22/158
न च्छन्दसा नैव जलाग्नि 22/52
न ज्ञानं न च वैराग्यं 22/142
न तथास्य भवेन्मोहो 22/87
न तद्भक्तेषु चान्येषु स 22/71
नद्योऽद्रयः खगमृगाः 24/200
न निर्विण्णो नातिसक्तो 22/50
न पारयेऽहं चलितुं नय 19/207
न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि 23/27
न भजन्त्यवजानन्ति 22/28
नमस्ते वासुदेवाय नमः 20/336
न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः 19/50
नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम 19/53
न यत्र माया किमुतापरे 20/270
न शौरिचिन्ताविमुख 22/88
न साधयति मां योगो 20/137
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो 20/137
नातः परं परम यद्भवतः 25/36
नात्र शास्त्रं न युक्तिश्च 22/151
नान्तं विदाम्यहममी 21/13
नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य 17/133
नामसङ्कीर्त्तनं श्रीमन्मथुरामण्डले 22/128
नायं सुखापो भगवान् देहिनां 24/82
नायकानां शिरोरत्नं कृष्णस्तु 23/63
नारायण–कलाः शान्ता 24/118

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन 19/215
नारीगण–मनोहारी सर्वाराध्यः 23/71
निगमकल्पतरोर्गलितं 25/144
निजानुरूपे प्रभुरेकरूपे 19/121
नित्यसिद्धस्य भावस्य 22/102
नित्योत्सवं न ततृपुर्द्दृशिभिः 21/123
निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः 24/130
निर्निश्चये निष्क्रमार्थे 24/18
निर्ममो निरहङ्कारः 23/101
नीचोऽपि यत्प्रसादात् 20/1
नीचोऽप्युत्पुलको लेभे 24/272
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः 24/177
नैवोपयन्त्यपचितिं 22/48
नैषां मतिस्तावदुरुक्रम 22/53, 25/83
नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव–वर्जितं 22/19
नो दीक्षां न च सत्क्रियां 15/110

प

पतिश्च पतितं त्यजेत् 15/265
पतिपुत्रसुहृद्भ्रातृ 22/159
पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान 19/209
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं 25/128
परं भावमजानन्तः 25/38
परस्य ब्रह्मणः शक्तिः 20/110
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये 24/46, 25/150
परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव 23/73
पश्चादहं यदेतच्च 24/72, 25/111
पश्यामि विश्वसृजमेकम् 25/36
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे 2/135
पिबत भागवतं रसमालयं 25/144
पुराणाद्या ये वा सहज 22/6
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त 20/275
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तो 17/133
पूर्णता पूर्णतरता द्वारका 20/399
प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः 20/398
प्रणयरसनया धृताङ्घ्रि 25/126
प्रतापी कीर्त्तिमान् रक्त 23/71
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं 20/336
प्रधान–परमव्योम्नोरन्तरे 21/50
प्रवर्त्तते यत्र रजस्तम 20/270
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा 25/124
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां 22/63
प्रायो अमी मुनिगणा 24/171
प्रायो बताम्ब मुनयो विहगा 24/170
प्रियस्वरूपे दयितस्वरूपे 19/121
प्रेम–मैत्री–कृपोपेक्षा यः 22/70
प्रेमान्तरङ्गभूतानि 23/91
प्रेमालापैर्दृढ़तरपरिष्वङ्गरङ्गैः 19/120
प्रेमास्मिन् बत राधिकेव 18/12
प्रेमोन्मत्तान् सहोन्नृत्यान् 17/1
प्रौढ़ानन्दश्चमत्कार 23/93

ब

बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः 21/33
बालाग्रशतभागस्य शतधा 19/141
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च 24/67
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा 24/127, 25/148
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य 20/306
ब्रह्मा य एष जगदण्ड 20/304
ब्रह्मेति परमात्मेति 20/158, 24/70, 24/77, 25/130
ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे 24/315

भ

भक्ताः स्रवन्नेत्रजलाः 23/23
भक्तानां हृदि राजन्ती 23/92
भक्तिः पुनाति 20/138, 25/132
भक्तिनिर्धूत–दोषाणां 23/90
भक्तिरित्युच्यते भीष्म 23/8
भक्त्या भागवतं ग्राह्यं 24/314
भक्त्या संजातया भक्त्या 25/134
भक्त्याहमेकया 20/138, 25/132
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां 22/55
भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः 19/75
भवद्विधा भागवतास्तीर्थ 20/57
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ 20/113
भवापवर्गो भ्रमतो यदा 22/46, 81
भयं द्वितीयाभिनिवेशतः 20/119, 24/132
भयानकः स वीभत्स 19/186
भर्त्तुर्मिथः सुयशसः 24/83
भागो जीवः स विज्ञेय 19/141
भावः स एव सान्द्रात्मा 23/7
भास्वान् यथाश्मसकलेषु 20/304
भिक्षामटन्नरिपुरे श्वपाकमपि 23/26
भूतानि भगवत्यात्म 22/69, 25/127
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं 25/75

म

मत्कथाश्रवणादौ वा 22/61
मत्स्याश्व–कच्छप–नृसिंह 20/299
मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि 19/171
मधुगन्धि–मृदुस्मितमेतदहो 21/136, 23/32
मधुरं मधुरं वपुरस्य 21/136, 23/32
मधुरेयं नववयाः 23/82
मनसो वपुषो वाचो 21/27, 83
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा 19/171
मन्मना भव मद्भक्तो 22/58
मन्ये तदर्पित–मनः 20/59
मयार्पितमनोबुद्धिर्यो 23/102
मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्त 22/100
महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते 22/79
महता हि प्रयत्नेन 15/269

महान्तस्ते समचित्ताः 22/79
महीयसां पादरजो 22/53, 25/83
मां विधत्तेऽभिधत्ते मां 20/148
मा द्राक्षीः क्षीणपुण्यान् 22/89
मानं तनोति सह-गोगणयोः 18/34
मामेव ये प्रपद्यन्ते 20/121, 22/23, 24/133
मामेवैष्यसि सत्यं ते 22/58
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य 20/148
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने 22/134
मुक्ता अपि लीलया 24/107, 138, 25/149
मुक्तानामपि सिद्धानां 19/150, 25/81
मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं 24/130
मुखबाहूरुपादेभ्यः 22/27, 108
मुमुक्षवो घोररूपान हित्वा 24/118
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं 17/80
मैवं ममाधमस्यापि 22/44

य

य एषां पुरुषं साक्षात् 22/28
यः प्रागेव प्रियगुणगणैः 19/120
यः शम्भुतामपि तथा 20/310
यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृष 24/83
यच्छ्र
यज्ञैः सङ्कीर्त्तन-प्रायैर्यजन्ति 20/340
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द 17/80
यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं 18/65
यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना 24/211
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु 20/113
यत्नान्तरे तथा 24/63
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते 23/63
यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् 17/39
यत्र सङ्कीर्त्तनेनैव 20/345
यत्र स्वल्पोऽपि 22/129, 24/189
यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः 24/57
यथा तरोर्मूलनिषेचनेन 22/63
यथा महान्ति भूतानि 25/124
यथा राधा प्रिया विष्णो 18/8
यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं 20/373
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो 17/178
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ 20/344
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न 24/154
यदृच्छया मत्कथादौ जात 22/50
यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ 25/74
यद्यद्भुतक्रमपरायण-शील 24/184
यद्वाञ्छया श्रीर्ललना 24/51
यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनात् 16/186, 18/125
यन्मर्त्त्यलीलौपयिकं 21/100
यस्तादृगेव हि च 20/316
यस्तु नारायणं देवं 18/116
यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो 15/170
यस्मान्नोद्विजते लोको 23/103
यस्य प्रभा प्रभवतो 20/160
यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिल 20/306
यस्याननं मकरकुण्डल 21/123
यस्यावतारा ज्ञायन्ते 20/353
यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना 22/73
यस्यैक-निश्वसित 20/281, 21/41
यावत् प्रेम्णां मधुरिपु 19/165
यावानहं यथाभावो 25/107
येऽन्येऽरविन्दाक्ष 22/30, 24/126, 136, 25/32
ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं 23/108
ये ध्यायन्ति सदोद्युक्ताः 22/159
येनातिव्रज्य त्रिगुणं 19/174
येऽन्ये च पापाः 24/173, 203
येषामहं प्रिय आत्मा 22/158
योऽज्ञानमत्तं भुवनं 19/54
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं 22/48
योगारूढ़स्य तस्यैव शमः 24/153
यो दुस्त्यजान् दारसुतान् 23/24
यो न हृष्यति न द्वेष्टि 23/105
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो 22/87

र

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे 22/97
रतिरानन्दरूपैव नीयमाना 23/92
रहूगणैतत्तपसा न याति 22/52
रागात्मिकामनुसृता या सा 22/150
राधा-सङ्गे यदा भाति 17/216
रामश्च रामश्च रामश्च रामा 24/145
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् 23/66
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति 23/109
रूपं दृशां दृशिमतां 24/49
रोदनबिन्दुमकरन्दस्यन्दि 23/30

ल

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य 19/172
लज्जाशीला सुमर्यादा धैर्य 23/84
लीला-प्रेम्णा प्रियाधिक्यं 23/80
लेभे गतिं धात्र्युचितां 22/95

व

वंशीधारी जगन्नारी-चित्तहारी 17/214
वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं 20/158
वदान्यो धार्मिकः शूरः 23/69
वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्रीचैतन्य 20/1
वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यदेवं तं 22/1
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य 19/106
वयन्तु न वितृप्याम उत्तम 25/145

वयमिव सखि कच्चिद्गाढ़ 23/61
वयसो विविधत्वेऽपि 20/378
वरं हुतवहज्वाला- 22/88
वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्याः 23/72
वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा 23/23
वावदूकः सुपाण्डित्यो 23/67
वामस्तामरसाक्षस्य भुजदण्डः 18/38
विकर्म यच्चोत्पतितं 22/140
विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः 23/68
विनीता करुणापूर्णा 23/84
विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्द 20/59
विविधाद्भुतभाषावित् 23/67
विभूतिर्मायिकी सर्वा 21/56
विमोहिता विकत्थन्ते मम 22/32
विराजन्तीमभिव्यक्तां 22/150
विलज्जमानया यस्य 22/32
विश्वं पुरुषरूपेण 20/318, 21/37
विष्टभ्याहमिदं 20/163, 374
विष्णुर्महान् स 20/281, 21/41
विष्णुशक्तिः परा 20/112, 24/303
विष्णोर्नु वीर्यगणनां 24/21
विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि 20/251
विसृजति हृदयं न 25/126
विस्मापनं स्वस्य च 21/100
विहारी गोपनारीभिः 17/214
वीक्ष्यालकावृतमुखं तव 24/48
वृन्दावनीयां रसकेलिवार्त्तां 19/1
वृषभं भद्रसेनश्च प्रलम्बो 19/205
वेदाङ्गस्वेदजनितैस्तोयैः 21/50
वैकारिकस्तैजसश्च तामस 20/312
वैष्णवीकृत्य संन्यासिमुखान् 25/1
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्व 17/138
व्यामोहाय चराचरस्य जगतस्ते 20/145

श

शक्तयः सर्वभावानाम् 20/113
शठेन केनापि वयं हठेन 24/128
शमो दमो भगश्चेति 22/85
शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति 19/211
शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम 19/212
शिवः शक्तियुक्तः शश्वत् 20/312
शीतोष्णसुखदुःखेषु 23/106
शीलं सर्वजनानुरञ्जनम् 17/210
शुक्लो रक्तस्तथा पीत 20/331
शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निः 19/74
शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेम 23/5
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् 23/105
श्याममेव परं रूपं पुरी 19/106
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्ते 23/108
श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः 22/128
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम 20/151
श्रीचैतन्यं लिखाम्यस्य 21/1
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च 20/335
श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षित् 22/132
श्रीभागवतरक्तानां 23/90
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो 22/127
श्रीमद्भागवते महामुनि 24/95, 25/142
श्रीमन्मदनगोपाल-गोविन्द 25/275
श्रीराधिकायाः प्रियता स्वरूपता 17/212
श्रीराधेव हरेस्तदीय-सरसी 18/12
श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये 19/96
श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति 22/6
श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर 24/49
श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य 22/22, 24/135
25/31
श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैर्नाट्ये 20/397
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च 22/107
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो 19/74
श्वादोऽपि सद्यः 16/186, 18/125

स

स एव धैर्यमाप्नोति 24/178
स एव भक्तियोगाख्य 19/174
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यत्र 20/114
संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि 22/82
सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति 22/34
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं 19/199
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु 22/86
सङ्गीतप्रसराभिज्ञा रम्यवाक् 23/83
सञ्चार्य रूपे व्यतनोत् पुनः 19/1
सजातीयाशये स्निग्धे 22/127
सत्सङ्गमाख्येन सुखावहेन 24/120
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव 22/46, 81
सत्सङ्गान्मुक्त-दुःसङ्गो 24/93
सतां प्रसङ्गान्मम 22/83, 23/16
सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो 24/98, 193
सत्यं शौचं दया मौनं 22/85
सदा स्वरूपसंप्राप्तः सर्वज्ञो 23/74
सद्धर्मस्यावबोधाय 20/106, 24/164
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती 24/211
सनातनं सुसंस्कृत्य प्रभुः 25/1
सन्तुष्टः सततं योगी 23/102
स वै भगवतः श्रीमत्पाद 25/75
स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो 22/133
समः शत्रौ च मित्रे च 23/106
समः सर्वेषु भूतेषु 24/127, 25/148
समत्वेनैव वीक्षेत 18/116, 25/78
समुद्रा इव पञ्चाशत् 23/72
सम्भूतं षोड़शकलमादौ 20/266
सम्यक्मसृणितस्वान्तो 23/7
स यत्प्रमाणं कुरुते 17/178

सरसि सारसहंसविहङ्गाः 24/172
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण 25/103
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे 22/57
सर्वगोपीषु सैवैका 18/8
सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैः 23/95
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं 20/313
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं 22/91
सर्ववेदान्तसारं हि 25/139
सर्व–वेदेतिहासानां सारं 25/138
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन 20/115
सर्वभूतेषु यः पश्येत् 22/69, 25/127
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः 23/64
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी 24/154
सर्वात्मना यः शरणं 22/137
सर्वाद्भुतचमत्कार–लीला 23/78
सर्वान् ददाति सुहृदः 22/93
सर्वारम्भपरित्यागी यो 23/104
सर्वे विधिनिषेधाः 22/110
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं 19/170
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं 20/313
सहस्रपत्रं कमलं गोकुल 20/258
साधकानामयं प्रेम्णः 23/15
साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या 24/166
सार्वभौमगृहे भुञ्जन् 15/1
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्य 19/173
सिद्धान्ते पुनरेक एव 20/145
सुखानि गोष्पदायन्ते 24/37
सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः 23/70
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा 19/150, 25/81
सुविलासा महाभाव 23/85
सूक्ष्माणामप्यहं जीवः 19/142
सृजामि तन्नियुक्तोऽहं 20/318, 21/37
सेवा साधकरूपेण 22/154
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ 17/136
सौन्दर्यं ललनालिधैर्यदलनं 17/210
स्थानाभिलाषी तपसि 22/42, 24/213
स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो 23/69
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च 25/134
स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो 22/110
स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृत 16/145
स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य 22/140
स्वप्रेमसम्पत्सुधयाद्भुतेहं 19/54
स्ववशाखिलसिद्धिः स्यात् 23/75
स्वयं विधत्ते भजताम् 22/40, 24/98, 24/193
स्वरितञ्चितः कर्त्रभिप्राये 24/26
स्वरूपाणामेकशेष 24/145, 293
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि 19/215
स्वसुखनिभृतचेताः 17/138
स्वां काष्ठामधुनोपेते 24/315
स्वाविद्या–संवृतो जीवः 18/114

ह

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो 18/34
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि 15/270
हयग्रीवो वराहश्च ब्रह्मा 20/242
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा 22/73
हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः 20/397
हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा 24/166
हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये 22/143, 24/267
हरिमुपासत ते यतचित्ता 24/172
हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् 20/313
हरि हरये नमः कृष्ण 25/63
हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् 24/112
हरौ रतिं वहन्नेषो नरेन्द्राणां 23/26
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः 23/103
हसत्यथो रोदिति रौति 23/37, 25/135
हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः 19/186
हित्वा गोपीः कामयाना 19/206
हीनार्थाधिकसाधके त्वयि 23/27
हृदि यस्य प्रेरणया 19/134
हृषीकेण हृषीकेश–सेवनं 19/170
हृषीकेशे हृषीकाणि यस्य 24/178
ह्रियमाणः कालनद्या 22/44
ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः 18/114

प्रयोजनीय अंशकी पद्य-सूची

[वर्णक्रमानुसार प्रथम और द्वितीय चरण]

अ

अकरणे दोष, कैले भक्तिर 24/337
अकाम, मोक्षकाम, सर्वकाम 24/84
अकिञ्चन हञा लय 22/90
अचिरात् कृष्ण तोमाय 16/239
अचिरात् पाइबारे चैतन्य 19/5
अजागलस्तन-न्याय अन्य 24/88
अज्ञाने वा हय यदि 22/139
अतएव आकर्ष्य आत्मारामेर 17/139
अतएव आपने सूत्रार्थ 25/90
अतएव कृष्णेर 'नाम', 17/134
अतएव ब्रह्मसूत्रेर भाष्य 25/98
अतएव 'भक्ति'—कृष्णप्राप्त्येर 20/139
अतएव भागवत—सूत्रेर 25/136
अतएव भागवत करह 25/146
अतएव मधुर-रसेर हय 19/231
अतएव माया तारे देय 20/117
अतएव याँर मुखे एक 15/111
अतएव 'शान्त' कृष्णभक्त 19/213
अतएव शुद्धभक्तिर कहिये 19/166
अतएव सख्य-रसेर 19/223, 19/224
अतएव सब शास्त्र करये 25/47
अतएव हरि भजे बुद्धिमान् 24/88
अति क्षुद्र जीव मुञि 20/349
अति क्षुद्र, ताते तोमार 21/84
अद्यापिह ताँहार सेवा 17/168
अद्वयज्ञान-तत्त्व, व्रजे 20/152
अद्वितीय-ज्ञान, याँहा बिना 24/69
'अद्वैत-ब्रह्मवाद' सेइ करिल 18/187
अधम-काकेरे कैला गरुड़ 17/79
अधम यवनकुले केने 16/181
अधिरूढ़-महाभाव—दुइ 23/54
अनन्त अवतार कृष्णेर 20/248
अनन्त ऐश्वर्य कृष्णेर 15/175
अनन्त कृष्णेर गुण, चौषट्टि 23/65
अनन्त गुण श्रीराधिकार 23/81
अनन्त-वैकुण्ठ-परव्योम 21/7
अनन्तशक्ति-मध्ये कृष्णेर 20/252
अनन्त स्वरूप कृष्णेर 20/402
अनर्गल प्रेमभक्ति करिह 15/42
अनर्थनिवृत्ति हैले भक्ति 23/11
अनिकेत दुँहे, वने यत 19/127
अनिवेदित-त्याग, वैष्णव 24/333
अनिरुद्धेर विलास—हरि 20/206
अनिरुद्धेर मूर्त्ति—हृषीकेश 20/197
अनुपम मल्लिक, ताँर नाम 19/36
'अनुभाव'—स्मित, नृत्य 23/47
अनुषङ्ग-फले करे संसारेर 15/109
'अन्तःपुर'—गोलोक 21/43
अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये 16/239
अन्तरे सुख माने तैंहो 15/65
अन्न खाबे, पीठे बसिते 15/235
अन्न, पीठ,—समान 15/235
अन्यकामी यदि करे कृष्णेर 22/37
अन्य त्यजि' भजे, ताते 22/94
अन्यदेव, अन्यशास्त्र निन्दा ना 22/116
अन्य-देशे प्रेम उछले 17/228
अन्य-वाञ्छा, अन्य-पूजा 19/168
अन्यावतार शास्त्रद्वारा 20/350
अपराध नाहि तव, लओ 15/285
अपराध-हस्तीर यैछे ना हय 19/157
'अवज्ञा'ते नाम लय, शुनि' 17/127
अवतार नाहि कहे 20/352
अवतार हय कृष्णेर 20/245
अवैष्णव-सङ्ग-त्याग 22/115
अभिधेय-नाम—'भक्ति' 20/125
'अभिधेय बलि' तारे 20/139
अमृत छाड़ि' विष मागे 22/38
अम्बरीषादि भक्तेर 'बहु' 22/131
अरिष्टे राधाकुण्ड-वार्त्ता 18/4
अर्थाभिज्ञता, स्वरूपशक्त्ये 20/359
अलक्षिते रहि' तोमार 15/44
अलातचक्रप्राय सेइ लीला 20/391
अलात-चक्रेर प्राय लगुड़ 15/25
अलौकिक 'प्रकृति' तोमार 18/120
अलौकिक लीला करे 16/201
अलौकिक-लीला प्रभुर 18/225
अलौकिक शक्ति-गुणे 24/39
अलौकिक शक्ति तोमार 8/124
अल्प-स्वल्प मूल्य पाइले 17/145
अष्टप्रहर कृष्णभजन, चारि 19/130
असत्सङ्गत्याग,—एइ वैष्णव 22/84
'असत्ये सत्य भ्रम' 18/98
असमर्थ नहे, कृष्ण 15/168
अस्त्रधृति-भेद—नाम 20/221
अस्त्रभेदे नाम-भेद 20/191

अस्वास्थ्येर छद्म करि' 19/15
अहङ्कारेर अधिष्ठाता 20/256
"अहमेव"–श्लोके 'अहम्' 25/112
अहिंस–यम–नियमादि 22/141

आ

आकार–वर्ण–अस्त्रभेदे 20/172
आकाशादि गुण येन 19/232
आकाशेर 'शब्द'–गुण येन 19/216
आकृति, प्रकृति, स्वरूप 20/355
'आकृत्ये' तोमारे देखि' 18/118
आ–चण्डाल आदि कृष्णभक्ति 15/41
आचार्य 'कल्पना' करे 25/26
आचार्य–कल्पित अर्थ 25/27
आचार्य हइल सेइ, तारिल 18/122
आजि–कालि करि' उठाय 16/10
आज्ञा देह', याइ' करि 18/99
आत्मार 'आत्मा' हन 20/161
आत्मारामेर मन हरे तुलसीर 17/141
'आत्मा'–शब्दे कहे कृष्ण 24/73
'आत्मा'–शब्दे कहे 24/279
'आत्मा'–शब्दे कहे 24/302
'आत्मा'–शब्दे ब्रह्म 24/11
'आत्मा' शब्दे 'मन' 24/159
'आत्मा'–शब्दे 'बुद्धि' 24/180
आदि–चतुर्व्यूह—केह 20/189
'आद्य एव परो रसः'—कहे 19/104
आद्योपान्त चैतन्यलीला 18/226
आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे 22/13
आन कथा ना शुने काण 21/144
आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिये कृष्ण 19/168
आनेर वैभव–सत्ता 21/120
आपन–'प्रारब्धे' वसि वाराणसी 17/95
आपनार हिताहित किछुइ 20/100
आपनारे 'पालक' ज्ञान, कृष्णे 19/227
आपने ईश्वर तबे अंशे 20/305
आपने करिल प्रभुर पाद 19/85
आपने भट्ट करेन प्रभुर 19/90
आवेशे तार गाये प्रभुर 17/28
आमाते ये 'प्रीति', सेइ 25/122
आमा वइ जगते आर 21/65
आमार उद्धार–हेतु तोमार 20/64
आमार कृपाय एइ सब 25/106
आमार प्राण रक्षा कर 20/32
आमार शपथ, यदि आर 16/141
आमा सबार कृष्णभक्ति 15/116
आमा–हेन येबा केह 24/318
आमि त' बाउल, आन 21/146
'आमि—बड़ ज्ञानी'—एइ 18/203
आमि—विज्ञ, एइ मूर्खे 22/39
आमि बोझा बहिमु, तोमा 25/163
आमि—'सम्बन्ध'–तत्त्व 25/101
आर कृष्णनाम लैते कृष्ण 25/193
आर तिनयुगे ध्यानादिते 20/341
आर 'नाम' लइते कृष्ण 25/192
आर यत मत, सेइ 25/44
आर सब स्वरूप—'पूर्णतर' 20/400
आर्त्त, अर्थार्थी,—दुइ सकाम 24/90
आर्य, सरल तुमि—वृद्ध 17/165
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे 23/12

इ

इच्छा–ज्ञान–क्रिया बिना 20/254
'इच्छाशक्ति', 'क्रियाशक्ति' 20/252
इच्छाशक्ति–प्रधान कृष्ण 20/253
'इत्थम्भूत'–शब्देर अर्थ 24/36
इन्द्रगण आइला लक्ष 21/68
इष्टे 'गाढ़–तृष्णा'—रागेर 22/147
इष्टे 'आविष्टता'—तटस्थ 22/147
इँहा कर गोपीनाथ 16/132
इहाते दृष्टान्त—यैछे 20/127
इहा नाहि जानि—केमने 20/102
इँहा माली सेचे नित्य 19/155
इहार घरेर आय–व्यय 15/96
इहार प्रसादे पाइबा 25/263
इहार श्रवणे भक्त जानेन 24/348
इहा हैते पाबे सूत्र 25/146
इँहो ना स्पर्शिह, इँहो 19/69

ई

ईश्वरज्ञान, सम्भ्रम–गौरव 19/219
'ईश्वर–स्वभाव' तोमार 18/119
ईश्वरेर शक्त्ये सृष्टि 20/261

उ

उच्छृङ्खल–लोक–सङ्गे 17/121
'उत्तम–अधिकारी' सेइ 22/65
'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ' 22/64
'उत्तम हञा हीन करि' 16/264
उत्तर ना आइसे मुखे 18/188
'उत्तरे' खुदिले आछे 20/134
'उद्घूर्णा', 'चित्रजल्प' 23/55
उद्घूर्णा, विरह–चेष्टा 23/57
उदार महती याँर सर्वोत्तमा 24/190
उपजिया बाड़े लता ब्रह्माण्ड 19/153
उपदेश लञा करे कृष्ण 25/21
उपाड़े वा छिण्डे, तार 19/156
उपाध्याय, श्रेष्ठ मान' 19/101
'उरुक्रम'–शब्दे कहे, बड़ 24/19

ए

ए अन्य गोविन्द—नहे 20/196
एइ अमृत अनुक्षण 25/269

एइ आज्ञाबले भक्तेर 22/60
एइ 'ऋण' आमि नारिब 18/153
एइ कृष्ण—व्रजे 'पूर्णतम' 20/400
एइ घाटे अक्रूर वैकुण्ठ 18/136
एइ चारि बाटोयार धुतुरा 18/165
एइ चारि सुकृति हय 24/91
एइ चारिर सेवा हय 22/122
एइ चारि हैते चब्बिश 20/191
एइत परम–फल 'परम 19/164
एइ त' साधनभक्ति—दुइ 22/105
एइ तिन धामेर हय 21/54
एइ तिन लोके कृष्णेर 21/91
एइ तोमार वर हैते 23/118
एइ दुइ 'अधम' नहे 19/71
एइ दुइ गुण व्यापे सब 19/216
एइ दुइ नाम धरे व्रजेन्द्र 20/240
एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' 20/354
एइ दोषे माया तार 22/24
एइ नव प्रीत्यङ्कुर याँर 23/20
एइ पञ्च–मध्ये एक 24/188
एइ बड़ 'पाप',—सत्य 25/35
एइ वाक्ये बिकाइनु ताँर 15/100
एइ वेश दूर कर, याह 20/69
एइ भूञा केने मोरे 20/23
एइमत कर्णपूर लिखे स्थाने 19/122
एइमत दशदिन प्रयागे रहिया 19/135
एइमत ब्रह्माण्ड भरि' अनन्त 19/138
एइमत भक्तगण रहिला चारि 16/47
एइमत मधुरे सब भाव 19/233
एइत' महिमा—तोमार 18/126
एइ ये तोमार अनन्त 21/26
एइ रस आस्वाद नाहि 23/94
एइरूप रतन, भक्तगणेर 21/103
एइ 'शुद्धभक्ति'—इहा हैते 19/169
एइसब कृष्णभक्ति–रसे 19/180
एइ सब साधनेर अति 22/18
एइ सबे बिद्धा–त्याग 24/337
'एइ स्थाने आछे धन' 20/132
'एक' अङ्ग साधे, केह 22/130
'एक' अङ्गे सिद्धि पाइल 22/131
एकइ डुम्बुर–वृक्षे लागे 15/172
एक एक गुण शुनि' 23/65
एक एक गोप करे ये 21/20
एक एक वृक्षेर तले 19/127
एक कृष्णदेह हैते 21/23
एक कृष्णनामे करे सर्वपाप 15/107
एक 'कृष्णलोक' हय 20/214
एकदिन द्वारकाते कृष्ण 21/59
एकदिन पथे व्याघ्र करियाछे 17/28
एक–दुइ–तिन–चारि–क्रमे 19/232
एक 'नामाभासे' तोमार 25/192
एक—'नित्यमुक्त', एक— 22/10
'एकपाद विभूति', इहार 21/87
एक बन्दी छाड़े यदि 20/6
एक–वपु बहु रूप यैछे 20/167
'एक' वाराणसी छिल 25/165
एक 'वैधी भक्ति' 22/105
एक भुक्ति कहे, भोग 24/28
'एक शिला' आलिङ्गिया 18/16
'एकषष्टि' अर्थ एबे 24/307
एक संन्यासी आइला 17/106
एकादश स्कन्धे तार 22/68
एका याइब, किवा सङ्गे 16/273
एत बलि' झाँप दिला 18/137
एत बलि' तिन तत्त्व 25/106
एत बलि' फल फेले 15/84
एत सब छाड़ि' आर 22/90
ए तिने सब छाड़ाय 24/99
एबे यदि महाप्रभु शान्तिपुर 16/231

ऐ

ऐश्वर्य कहिते स्फुरिल 21/31
ऐश्वर्यज्ञान–प्राधान्ये 19/194
ऐश्वर्यज्ञाने दुँहार मने भय 19/196
ऐश्वर्य देखिले निजसम्बन्ध 19/202

ऐ

ऐछे पवित्र प्रेम–सेवा 15/84
ऐछे वेद–पुराण जीवे 20/129
ऐछे मोहन–विद्या—ये 17/118
ऐछे शास्त्र कहे,—कर्म 20/136

क

कदम्बेर एक वृक्षे फुटे 15/129
कदर्थिया तुमि यत मारिला 24/245
कभु कुञ्जे रहे, कभु 18/44
कभु भक्तिरसशास्त्र करये 19/131
कभु शस्य खाञा पुनः 15/78
कभु शून्य फल राखेन 15/75
कभु स्वर्गे उठाय, कभु 20/118
करनख—चान्देर ठाट 21/128
करौंया–मात्र हाते, काँथा 19/129
'कर्म', 'ज्ञान', 'योग' आगे 18/196
कर्म, तप, योग, ज्ञान 21/119
कलिकाले नामाभासे सुखे 25/30
कलिकाले संन्यासे 'संसार' 25/28
कलिते अवतार तैछे 20/350
कलियुगे कृष्णनामे सेइ 20/341
'कल्मष' घुचिले जीव 15/276
कह,—ताँहा कैछे रहे 19/125
काढ़िते ना पारि माथा 15/149

काणेर भितर वासा करे 21/144
काँथा–करङ्गिया मोर 25/176
कान्तभावे निजाङ्ग दिया 19/231
कान्तागणेर रति पाय 24/34
कान्धे चड़े, कान्धे चड़ाय 19/222
काम–क्रोधेर दास हञा 22/14
कामगायत्री–मन्त्ररूप, हय 21/125
काम छाड़ि 'दास' हैते 22/41
काम–त्यजि' कृष्ण भजे 22/136
कामधेनु–कोटि–पतिर 15/179
काम लागि' कृष्णे भजे 22/41
कामादि 'दुःसङ्ग' छाड़ि 24/92
कायव्यूह हैले नारदेर 20/169
कारो मन कोन गुणे 24/43
कार्यद्वारा ज्ञान,—एइ 20/355
कालवस्त्र परे सेइ 18/185
कालीयदहे मत्स्य मारे 18/104
कालीय–शिरे नृत्य करे 18/94
कालीयेर शरीरे कृष्ण 18/105
काशीते आमि आइलाङ 25/161
काशीते ग्राहक नाहि 25/162
काँहा मुक्ति पाब, काँहा 25/42
'काँहारे राव्णा' प्रभु कहे 15/34
काँहा हैते पाइले तुमि 17/165
कि काय संन्यासे मोर 15/51
किन्तु काहौं 'कृष्ण' 18/108
किन्तु यदि लतार सङ्गे 19/158
किवा युक्ति कैल दुँहे 15/38
किवा रघुनन्दन—पिता 15/114
किम्वा निज–प्राण यदि 15/262
कुण्डेर 'महिमा'—येन 18/11
कुण्डेर 'माधुरी'—येन 18/11
कुण्डेर मृत्तिका लञा 18/14
कुविषय–कूपे पड़ि' 20/99
'कुर्वन्ति'–पद—एइ 24/25
कुलीनग्रामीरे कहे सम्मान 15/98
कृपा करि' तेँहो मोर 17/167
कृपा करि' यदि मोरे 20/101
कृपा करि' सब तत्त्व 20/103
कृपार समुद्र कृष्ण गम्भीर 20/63
कृपालु, अकृतद्रोह, सत्यसार 22/75
कृष्ण अंशी, तेँहो अंश 20/315
कृष्ण आमि नाहि 20/64
कृष्णकथा, कृष्णनाम 19/129
'कृष्ण' कह, 'कृष्ण' कह 18/206
'कृष्ण' कह बलि' प्रभु 17/31
'कृष्ण' कहि' व्याघ्र–मृग 17/40
कृष्ण कहे,—"आमा भजे 22/38
कृष्ण कहे,—"एइ ब्रह्माण्ड 21/84
कृष्ण–कृपा तोमाते 20/104
कृष्णकृपा बिना कोन 17/75
कृष्णकृपाय अज्ञ पाय 19/235
कृष्णकृपा याँरे, ताँरे के 16/241
कृष्णकृपाय साधुसङ्गे रति 24/182
कृष्ण—कृपालु, आमाय 17/69
'कृष्ण' 'कृष्ण' कह, करि' 17/40
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' व्याघ्र 17/29
कृष्ण, कृष्णभक्ति, प्रेम 20/143
कृष्ण, कृष्णभक्ति बिना 24/94
कृष्ण केने दरशन 18/101
कृष्णगुणाकृष्ट हञा 24/108
कृष्णगुणाख्याने करे 23/31
'कृष्णचरण'–कल्पवृक्षे 19/154
कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व 25/258
कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व 19/115
कृष्ण ताँरे करे तत्काले 22/99
कृष्ण ताँरे शुद्ध करे 22/139
कृष्ण–तुल्य भागवत 24/312
कृष्णतुल्य भागवत 25/259
'कृष्ण, तोमार हङ' यदि 22/33
कृष्णदास कहे,—"मुञि 18/85
"कृष्ण देखि आइला?" 18/103
कृष्ण–'ध्यान' करे लोक 20/333
कृष्ण नव–जलधर 21/109
'कृष्णनाम', 'कृष्णगुण' 17/135
'कृष्णनाम', 'कृष्ण स्वरूप' 17/130
कृष्णनाम दिया कैल 17/46
कृष्णनाम निरन्तर याँहार 16/72
'कृष्णनाम–सङ्कीर्त्तन'—कलि 20/337
कृष्णनाम, सेइ पूज्य 15/106
'कृष्ण–नित्यदास'—जीव 22/24
कृष्णनिष्ठा, तृष्णा–त्याग 19/214
'कृष्णपदार्चन' हय द्वापरेर 20/334
'कृष्ण–पारिषद' नाम 22/11
'कृष्ण'—प्राप्य–सम्बन्ध 20/124
कृष्णप्रीत्ये भोगत्याग 22/113
कृष्णप्रेम जन्माय एइ 22/126
कृष्णप्रेम जन्मे, तेँहो 22/80
'कृष्णप्रेम', 'भक्तिरस' 24/348
कृष्णप्रेमा ताँहा, याँहा 17/173
कृष्ण—बड़ दयामय 20/62
'कृष्ण'–वर्णे कराय लोके 20/334
कृष्ण–बहिर्मुख–दोष 24/131
कृष्ण बिना अन्य–उपासना 15/142
कृष्ण बिना तृष्णा–त्याग 19/213
कृष्णभक्तगण करे रस 23/94
कृष्णभक्त—दुःखहीन 24/176
कृष्णभक्त—निष्काम, अतएव 19/149
'कृष्ण—भक्तवश' गुण 19/228

कृष्णभक्ति—अभिधेय 22/5
कृष्णभक्ति–जन्ममूल हय 22/80
कृष्णभक्ति दूरे रहु, संसार 22/51
कृष्णभक्ति धर तुमि, जान 20/105
कृष्णभक्ति पाय, तबे 22/15
कृष्णभक्ति–रसमध्ये ए 19/185
'कृष्णभक्ति–रसस्वरूप' 25/143
कृष्णभक्ति–रस हय अमृत 19/181
कृष्णभक्तिसिद्धान्तगण 25/266
कृष्णभक्ति हय अभिधेय 22/17
कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण 22/72
कृष्ण भुलि' सेइ जीव 20/117
कृष्णमन्त्रे कराइल दुइ 19/5
कृष्णमाधुर्य–सेवा–प्राप्त्येर 20/126
'कृष्ण मोर प्रभु, त्राता' 20/123
कृष्ण यदि कृपा करे 22/47
कृष्ण यदि रुक्मिणीरे 19/200
कृष्ण–योग्य नहे, फल 15/83
कृष्णलीला अमृत–सार 25/264
कृष्णलीला–कालेर सेइ 18/76
कृष्णलीला—नित्य 20/384
कृष्णसुखनिमित्त भजने 24/25
कृष्ण—सूर्यसम, माया हय 22/31
कृष्ण सेइ नारिकेल–जल 15/75
कृष्ण सेइ सत्य करे 15/166
कृष्ण सेइ सेइ तोमा 24/323
कृष्ण–सेवा बिना इँहार 15/131
कृष्णाङ्ग—लावण्यपूर, मधुर 21/138
कृष्णार्थे अखिलचेष्टा 22/123
कृष्णे भक्ति कैले 22/62
'कृष्णे मति रहु' बलि 19/93
कृष्णे रति गाढ़ हैले 23/4
कृष्णे सेवा करे, कृष्णरस 20/126
कृष्णे सेवे, कृष्णे कराय 19/222
कृष्णेर अचिन्त्यशक्ति 21/71
कृष्णेर आसन–पीठ 15/231
कृष्णेर एइ चारि प्राभव 20/190
कृष्णेर ऐश्वर्य—अपार 21/98
कृष्णेर करुणा किछु ना 19/49
कृष्णेर 'तटस्था–शक्ति' 20/108
कृष्णेर दर्शने, कारो 24/122
कृष्णेर बसिते एइ 15/274
कृष्णेर विभूति–स्वरूप 21/89
कृष्णेर विश्वरूप देखि' 19/198
कृष्णेर महिमा रहु—केबा 21/28
कृष्णेर यतेक खेला 21/101
कृष्णेर सकल शेष भृत्य 15/236
कृष्णेर सदृश तोमार 18/117
कृष्णेर स्वरूप—अनन्त 20/149
कृष्णेर स्वरूप–विचार 20/152
कृष्णेर स्वरूप–सम 17/135
कृष्णेर स्वाभाविक तिनशक्ति 20/111
कृष्णेरे देखिल लोक,—इहा 18/107
कृष्णोन्मुखी भक्ति हैते 24/131
कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति 22/21
के अन्न–व्यञ्जन खाइल 15/59
के आमि, केने आमाय 20/102
केने उपवास कर, केने 15/287
केवल ज्ञान 'मुक्ति' दिते 22/21
केवल ब्रह्मोपासक, मोक्ष 24/102
केवल ये रागमार्गे, भजे 21/119
केवल 'स्वरूप–ज्ञान' हय 19/218
केवला'र शुद्धप्रेम 'ऐश्वर्य' 19/202
के वैष्णव, कह ताँर 15/105
केमने छाड़िब रघुनाथेर 15/146
केमने जानिब कलिते 20/349
केशाग्र–शतेक–भाग पुनः 19/139
केशावतार, आर विरुद्ध 23/112
केह भूमे पड़े, केह 17/33
केह यदि ताँर मुखे 17/48
केह यदि देशे याय 19/124
कैछे अष्टप्रहर करेन 19/126
कैछे रहे, कैछे वैराग्य 19/125
कोटि, अर्बुद, शङ्ख 21/20
कोटि–कर्मनिष्ठ–मध्ये 19/147
कोन कल्पे यदि योग्य 20/305
कोटि जन्मेर पाप गेल 18/205
कोटिज्ञानि–मध्ये हय 19/148
कोटिमुक्त–मध्ये 'दुर्लभ' 19/148
कोटि ये ब्रह्माण्ड 15/172
कोटि–सेवा त्वत्पाद 16/132
कोन छले गोपाल 18/43
'कोन् ब्रह्मा?' पुछिले 21/65
कोन ब्रह्माण्डे कोन 20/393
कोन भाग्ये कारो 22/45
कोन भाग्ये कोन 23/9
क्रम करि' कहे प्रभु 16/75
'क्रम'–शब्दे कहे, एइ 24/19
क्रमे क्रमे तैंहो भक्त 22/67
क्रमे क्रमे पाय लोक 16/237
क्रियाशक्ति–प्रधान सङ्कर्षण 20/255
'क्षेत्र–संन्यास ना छाड़िह' 16/130
क्षेत्र–संन्यास मोर याउक 16/131

ग

गड़खाइते भासे येन राइ 15/176
गदाधर–पण्डित तबे 16/130
गवाक्षे उड़िया यैछे रेणु 20/279
गले माला देन, माथाय 15/9
गाढ़–भक्तियोगे तबे कृष्णेरे 22/35

गायत्रीर अर्थे एइ 25/140
गुणराज–खाँन कैल 15/99
गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल 24/106
गुण्डिचाय आसिबे सबाय 15/97
गुरु–अन्तर्यामि–रूपे 22/47
गुरु–कृष्ण–प्रसादे पाय 19/151
गुरुतुल्य स्त्रीगणेर वात्सल्ये 24/53
गुरुपादाश्रय, दीक्षा, गुरुर 22/112
गुरु–पाशे सेइ भक्ति 25/120
'गुरु' हञा 'शिष्ये' नमस्कार 17/170
गृहस्थ विषयी आमि, कि 15/103
'गृहस्थ' हयेन इँहो, चाहिये 15/95
गोकुले 'केवला' रति 19/193
गोपवेश, वेणुकर 21/101
गोपाल प्रकट करि' सेवा 17/168
गोपीभाव–दरपण, नव नव 21/118
गोवर्धन–उपरे आमि कभु 18/23
गोवर्धन–परिक्रमाय करिला 18/32
गोविन्दकुण्डादि'–तीर्थे प्रभु 18/35
गोविन्देर माधुरी देखि' 20/179
गोलोकाख्य गोकुल, मथुरा 21/91
गोसाञि कहे,—"ये खण्डिल 20/93
गौड़–देशे हय मोर 16/90
गौड़, बङ्ग, उत्कल, दक्षिण 17/52
'गौड़िया' ठक् एइ काँपे 18/172
ग्राम्य–व्यवहारे पण्डित, ताइ 20/100
ग्राहक नाहि, ना बिकाय 17/144

च

चक्रादि–धारण–भेदे नाम 20/195
चड़ि गोपी–मनोरथे 21/107
चण्डाल—पवित्र, याँर 16/184
चतुरालि छाड़ सनातन 20/364
चतुर्भुज हैले, नाम 20/176
चारिजनेर पुनः पृथक् 20/194
चारि पुरुषार्थ छाड़ाय, हरे 24/60
चारिवर्ण धरि' कृष्ण करेन 20/330
चारि वर्णाश्रमी यदि 22/26
चारिविध ताप तार करे 24/56
चिच्छक्तिविभूति–धाम 21/55
चिच्छक्ति, जीवशक्ति, आर 20/111
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीव 20/149
चिच्छक्ति–सम्पत्तिर 'षड़ैश्वर्य' 21/96
चित्त आकर्षिया कराय 15/109
चित्रजल्पेर दश अङ्ग 23/56
चिदानन्द कृष्णविग्रहे 'मायिक' 25/35
चिदानन्द–देह, सर्वाश्रय 20/153
चैतन्यकथा शुने, करे चैतन्य 19/131
चैतन्य–गोसाञि येइ कहे 25/44
चैतन्य–गोसाञिर निन्दा 15/261
चैतन्य–चरित्र एइ—'अमृतेर 18/228
'चैतन्य' 'चैतन्य' करि' 17/126
'चैतन्य'–नाम ताँर, भावुक 17/117
चैतन्यलीला—अमृतपूर 25/270
चैतन्येर कृपा याँहे, ताँहे 19/132
चौद्द एक दिने, मासे 20/321
चौराशी–लक्ष योनिते 19/138

छ

छयेर छय मत व्यास 25/52

ज

जङ्गमे तिर्यक्–जल 19/144
जगत् भासिल चैतन्यलीलार 17/233
जगत्मङ्गल ताँर 'कृष्णचैतन्य' 17/113
जगल्लक्ष्मी राखे, याँहा 21/53
जड़रूपा प्रकृति नहे 20/259
जड़ हैते सृष्टि नहे ईश्वर 20/260
'जननी' 'जाह्नवी',—एइ 16/90
जन्म–दिनादि–महोत्सव 22/123
जन्म हैते शुक–सनकादि 24/108
जले जलकेलि करे 18/9
जानि दार्ढ्य लागि' पुछे 20/105
जालियारे मूढ़–लोक 18/106
जिज्ञासु, ज्ञानी,—दुइ 24/90
जिनि' पञ्चशर–दर्प 21/107
जिह्वा–स्पर्शे आचण्डाले 15/108
जीव, ईश्वर–तत्त्व—कभु 18/113
जीवतत्त्व–हय, नहे कृष्णेर 20/308
'जीव' तुमि एइ तिन 25/104
'जीवन्मुक्त' अनेक सेइ 24/124
जीव–रूप 'बीज' ताते 20/273
जीवरूप 'ब्रह्मार' आवेश 20/367
जीवधमे 'कृष्ण'–ज्ञान कभु 18/111
जीवे दुःख दितेछ, तोमार 24/243
जीवे 'विष्णु' बुद्धि करे 25/77
जीवे विष्णु मानि—एइ 25/76
जीवेर दुःख देखि' मोर 15/162
जीवेर धर्म—नाम–देह 17/132
जीवेर पाप लञा मुञि 15/163
जीवेर स्वभाव—कृष्णे 24/195
जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 20/108
जीवेरे कृपाय कैला कृष्ण 20/122
ज्ञान–वैराग्यादि—भक्तिर 22/141
ज्ञानमार्गे उपासक—दुइत' 24/102
ज्ञानमार्गे—निर्विशेष–ब्रह्म 24/79
ज्ञान, योग, भक्ति,—तिन 20/157
ज्ञानशक्ति–प्रधान वासुदेव 20/253
ज्ञानी जीवन्मुक्तदशा 22/29
ज्योतिश्चक्रे सूर्य येन 20/385
ज्वलदग्निराशि यैछे 18/113

झ

'झारिखण्डे' स्थावर–जङ्गम 17/46

ड

डुबिया रहिला प्रभु जलेर 18/137

त

'तटस्थ'–लक्षणे उपजय 22/103
तत्तत्कामादि छाड़ि' हय 24/91
तथापि पुरी देखि' ताँर 17/180
तथापि वृक्ष नाहि जाने 15/173
तदेकात्मरूपे 'विलास' 20/184
'तदीय'—तुलसी, वैष्णव 22/122
'तपस्वी' प्रभृति यत 24/210
तबु वृन्दावन याह' लोक 16/281
तबे ताँरे कहे प्रभु चापड़ 18/100
तबे तुमि आमा–पाश 16/240
तबे महत्तत्त्व हैते त्रिविध 20/276
तबे मिश्र पुरातन एक 20/78
तबे मुक्ति पाइले अवश्य 24/134
तबे मूलशाखा बाड़ि' याय 19/161
तबे याय तदुपरि 'गोलोक 19/154
तबे रामानन्द, आर सत्यराज 15/102
तबे सूत्रेर मूल अर्थ 25/91
तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग' 23/9
ताँर इच्छाय गेल मोर 20/93
ताँर उपदेश–मन्त्रे पिशाची 22/15
ताँर कृपाय प्रश्न करिते 20/94
ताँर ज्ञाने आनुषङ्गे याय 20/144
ताँर नाभिपद्म हैते उठिल 20/287
ताँर प्रेम–वश आमि 15/49
ताँर प्रेमे आनि' आमाय 15/65
ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा 23/35
ताँर भक्त्ये हय जीवेर 18/193
ताँर मुखे आन शुने 17/48
ताँर लागि' गोपीनाथ 16/33
ताँर शास्त्रयुक्तये ताँरे 18/187
ताँर सङ्गे अन्योन्ये, ताँर 18/220
ताँर सूत्रेर अर्थ कोन 25/90
ताँर सेवा छाड़ि' आमि 15/48
ताँर सेवा बिना जीवेर 18/194
ताँरे 'निर्विशेष' स्थापि 25/33
ताँरे राधा–सम प्रेम कृष्ण 18/10
ताँहा एकवाक्य ताँर 15/99
ताहा छाड़ि' करियाछि 15/49
ताँहा बिना एइ प्रेमार 17/173
ताँहा बिना एइ राज्य 16/6
ताँहा विस्तारित हञा 19/155
ताँहा यमुना, गङ्गा 16/280
ताँहार चरणे प्रीति 18/194
ताँहार महिमा–प्रताप ना 17/106
ताँहारे जानिह तुमि 16/74
ताँहा स्तम्भ रोपण कर 16/115
ताँहा सेइ कल्पवृक्षेर 19/163
ताते कृष्ण भजे, करे 22/25
ताते छय दर्शन हैते 25/55
ताते बड़, ताँर सम 21/34
ताते भासे माया, लञा 15/176
ताते माली यत्न करि' 19/157
ताते लीला 'नित्य' कहे 20/393
तावत् रहिब आमि 15/289
तार एकदेशे वैकुण्ठज 21/29
तार एक फल पड़ि' 15/173
तार एक राइ–नाशे 15/177
तार तले पिँड़ि–बान्धा 18/76
तार मध्ये आवेशे प्रभु 17/26
तार मध्ये प्रवेशये 22/96
तार मध्ये मनुष्य–जाति 19/145
तार मध्ये म्लेच्छ, पुलिन्द 19/145
तारे मध्ये 'स्थावर' 19/144
तारा तैछे तोमा मारिबे 24/245
तारुण्यामृत—पारापार 21/113
तारे तिरस्करिवारे करिला 25/113
तारे वध कैले, हय 15/261
ताहा खण्डि 'सविशेष' 18/189
ताहा निस्तारिया कैला 25/165
ताहा विघ्न करि वनपथे 17/74
तेँहो दण्डवत् कैल, प्रभु 19/62
तेँहो दुइ बहिर्वास–कौपीन 20/78
तिँहो ये कहये वस्तु 25/57
तेँहो रहु—सर्वज्ञ–शिरोमणि 21/14
तिन आवास–स्थान कृष्णेर 21/42
तिनकाले सत्य तिँहो 24/71
तिनबारे 'कृष्णनाम' ना 17/127
तिन मुद्रार भोट गाय 20/92
तिन साधने भगवान् तिन 24/76
तिने आज्ञाकारी कृष्णेर 21/36
तिने 'भेद' नाहि,—तिन 17/131
तिनेर अधीश्वर कृष्ण—स्वयं 21/92
तिनेर तिनशक्ति मेलि' 20/254
तीर्थ 'लुप्त' जानि', प्रभु 18/5
'तुमि आमाय आनि' 18/153
तुमि—ईश्वर, नाहि तोमार 17/182
तुमि एक जिन्दापीर 20/5
तुमि केने एत दुःखी 20/128
तुमि जान, कृष्ण निज 16/144
तुमि त' ईश्वर, तोमार 25/88
तुमि देखा पाबे, आर 15/46
तुमि वक्ता भागवतेर 24/310

तुमि याँर हित वाञ्छ' 15/169
तुमि याँहा–याँहा रह 16/280
तुमिह करिह भक्तिशास्त्रेर 23/98
तेँतुल–तले बसि' 18/78
तेँतुलि–तलाते आसि' 18/75
तेँहो कहे,—"के वैष्णव 16/71
तेरछे नेत्रान्ते बाण, तार 21/105
तैछे एक ब्रह्माण्ड यदि 15/174
तैछे भक्ति–फले कृष्णे 20/141
तैछे राधाकुण्ड—प्रिय 18/7
तोमा देखि' जिह्वा मोर 18/203
तोमा देखि, तोमा स्पर्शि 20/60
तोमा देखि' सर्वलोक 18/110
तोमा बिना अन्य जानिते 24/310
तोमा–सङ्गे ना याइब 16/134
तोमार इच्छा–मात्रे हबे 15/171
तोमार कार्य—धर्म–धन 15/130
तोमार कि कथा, तोमार 15/101
तोमार घरे कीर्त्तने आमि 15/46
तोमार दुइ भाइ तथा 25/175
तोमार 'दोष' करिते करे 17/126
तोमार नाम शुनि' हय 18/124
तोमार निश्वासे सर्ववेद 24/309
तोमार पण्डित–सबार 18/197
तोमार शास्त्रे कहे शेषे 18/190
'तोमार सुखे आमार सुख' 17/9
तोमारे ना कहिल, अन्यत्र 20/128
तोमाय चाखाइते तार कहि 19/137
तोमा–सबार इच्छाय बिना 25/163
तोमा–सबार सङ्ग–बले 24/9
तोमा–सबार 'सुखे', पथे 17/7
'त्रिपाद विभूति'र केबा 21/87
'त्रि'–शब्दे कृष्णेर तिन 21/90
त्रेतार धर्म 'यज्ञ' कराय 20/333

द

दाक्षिणाधो हस्त हैते 20/222
दण्ड्यजने राजा येन 20/118
दधि येन खण्ड–मरिच 23/45
दरवेश हञा आमि 20/13
'दरशन'–'स्नाने' करे जीवेर 15/134
दर्शनेर कार्य आछुक, ये 18/123
दारिद्रय–नाश, भवक्षय 20/142
'दारु'–'जल'–रूपे कृष्ण 15/134
'दारुब्रह्म'–रूपे—साक्षात् 15/135
दास्य–भक्तेर रति हय 24/32
दास्यभाव–भक्त—सर्वत्र 19/189
दास्य–रति 'राग' पर्यन्त 23/50
दास्येर 'सम्भ्रम–गौरव' 19/221
दिव्य देह दिया कराय 24/105
दीक्षा–पुरश्चर्या–विधि 15/108
दुइ कर, शीघ्र पाबे 16/70
दुइ गण्ड सुचिक्कण 21/127
दुइदिके माता–पिता पुष्ट 18/60
दुइ धान्यक्षेत्रे अल्पजले 18/5
दुइभाइ विषय–त्यागेर 19/4
दुइ योग्य नहे, दुइ 15/262
दुँहार मुखे कृष्णनाम 19/71
'दुःसङ्ग' कहिये—'कैतव' 24/94
दुग्ध येन अम्लयोगे 20/309
दुग्धान्तर वस्तु नहे, दुग्ध 20/309
दुर्वार उद्भट प्रेम, नहे 19/82
दूर हैते ताहा देखि' 18/105
देखि' भट्टाचार्येर मने हय 17/33
देखिले ना माने ऐश्वर्य 19/194
देव–ऋषि–पितृदिगेर 22/136
'देवीधाम' नाम तार, जीव 21/53
देहकान्ति पीताम्बर कैल 18/118
देह–देहीर, नाम–नामीर 17/132
देहारामी—कर्मनिष्ठ 24/208
देहारामी देहे भजे 24/206
देहारामी, सर्वकाम—सब 24/212
देहे आत्म–ज्ञाने आच्छादित 24/195
द्वादश–मासेर देवता—एइ 20/198
द्वारका–मथुरा–पुरे नित्य 20/190
द्वारे एक 'वैष्णव' हय 20/47
"द्वारेते वैष्णव नाहि" 20/48
द्विविध 'विभाव',—आलम्बन 23/46
द्विभुज–स्वरूप कभु 20/175

ध

धन नाहि पाबे, खुदिते 20/134
धन पाइले यैछे सुख 20/140
धनेर झारि पड़िबेक तोमार 20/135
धर्म नहे, करि आमि 15/48
धर्म प्रवर्त्तन करे व्रजेन्द्र 20/339
धर्म–स्थापन–हेतु साधुर 17/185
धर्महानि हय, लोके करे 20/92
धर्माचारि–मध्ये बहुत 19/147
ध्वनि—बड़ उद्धत 21/142

न

नदीर प्रवाहे येन काष्ठ 22/43
'नन्दनन्दन कृष्ण—मोर 15/100
नवविधा भक्ति पूर्ण नाम 15/107
नव–योगीश्वर जन्म हैते 24/113
नाचे, कान्दे व्याघ्रगण 17/41
ना दिलेक लक्ष कोटि 21/133
नाना कामे भजे, तबु 24/190
ना पड़' कुतर्क–गर्त्ते 25/272
नाम–गाने सदा रुचि 23/28
नाम–प्रेम दिया कैल 17/54

'नाम', 'विग्रह', 'स्वरूप' 17/131
नाम-सङ्कीर्त्तन-प्रेमे सेह 19/130
ना मागिलेह कृष्ण तारे 22/37
नायक-नायिका,—दुइ 23/87
नायिकार शिरोमणि—राधा 23/62
नारायणे माने, तारे 25/77
'न्याय' कहे,—'परमाणु 25/50
निकटे यमुना बहे 18/77
निज-कृत सूत्रेर निज 25/136
निज-चिच्छक्त्ये कृष्ण 21/96
निज-भ्रमे मूर्ख लोक 18/101
निज-सम सखा-सङ्गे 21/108
निज-ज्ञाने सत्य छाड़ि' 18/98
निजाभीष्ट कृष्णप्रेष्ठ पाछे 22/155
निजांश-कलाय कृष्ण 20/307
नित्य दुइ फूल हय 15/129
'नित्यबद्ध'—कृष्ण हैते 22/12
'नित्यमुक्त'—नित्य कृष्णचरणे 22/11
नित्य याइ' देखि मुञि 15/53
'नित्यसंसार', भुञे नरकादि 22/12
नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम 'साध्य' 22/104
नित्यानन्द कहे,—"आमि 16/66
नित्यानन्दे आज्ञा दिल 15/42
निमाइर प्रिय मोर—एसब 15/56
निरन्तर कर कृष्णनाम 15/104, 25/191
निरन्तर गाय मुखे, ना 21/12
निरन्तर सेवा करे 22/155
'निर्गुण'—व्यतिरेके, तिँहो 25/53
'निर्ग्रन्थ'-शब्दे कहे 24/16
निर्वेद-हर्षादि—तेत्रिश 23/48
निषिद्ध पापाचारे तार 22/138
'निषिद्धाचार', 'कुटीनाटी' 19/159
'निष्ठा' हैते उपजय प्रेमेर 22/130
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 23/11
नीच जाति, नीच सङ्गी 20/99
नीवि खसाय पति-आगे 21/143
नीलाचले आछि मुञि 15/52
नौकाते कालीय-ज्ञान 18/106
'न्याय' कहे,—'परमाणु 25/50

प

पक्षी, मृग, वृक्ष, लता 24/54
पङ्गु नाचाइते यदि हय 23/117
पञ्चविध-भक्ते गौण सप्तरस 19/187
पञ्चम-पुरुषार्थ—एइ 23/96
पञ्चरस 'स्थायी', व्यापी' 19/188
पञ्चरात्रे, भागवते एइ 19/169
पञ्चलक्ष चारिसहस्र 20/322
पण्डित कहे,—"याँहा तुमि 16/131
पण्डितेर गौराङ्गप्रेम बुझन 16/137
'पतित' हइले भर्त्ता 15/264
'परंब्रह्म'-'परमात्मा'-ज्ञान 19/217
पर्वते ना चड़े दुइ 18/45
परव्योम-मध्ये बैसे 20/192
परव्योमे वासुदेवादि—निज 20/226
परम ईश्वर कृष्ण स्वयं 21/34
परम उदार इँहो, ये 15/94
परम कारण ईश्वरे केह 25/54
परम पवित्र स्थान अपवित्र 15/275
परम मधुर, गुप्त! व्रजेन्द्र 15/138
परमात्मा येँहो, तेँहो 20/161
परमार्थ-विचार गेल, करि 25/42
परम्पराय 'वैष्णव' हइल 17/49
परशुरामे 'दुष्टनाश 20/370
परित्याग कैलुँ तार नाम 15/263
'पश्चिमे' खुदिबे, ताहा 20/133
पाँच सहस्र मुद्रा दिब 20/8
'पाठान-वैष्णव' बलि हैल 18/211
'पातञ्जल' कहे,—'ईश्वर 25/51
पादपीठ-मुकुटाग्र-संघट्टे 21/72
पारापार-शून्य गभीर भक्तिरस 19/137
पालनार्थ स्वांश विष्णुरूपे 20/314
पालनार्थे विष्णु—कृष्णेर 20/317
पाले-पाले व्याघ्र, हस्ती 17/26
पिछल्दा पर्यन्त सब 16/159
पितृ-मातृ-स्नेह आदि 24/33
'पीत'-वर्ण धरि' तबे 20/338
पुण्य, अर्थ,—दुइ लाभ 20/8
पुनः कृष्णरति हय दुइत 19/192
पुनः सेइ निन्दकेर मुख 15/263
पुनरपि देशे बहि लओया 25/162
पुरी-गोसाञि तोमार घरे 17/177
पुरी-गोसाञिर ये आचरण 17/185
पुरीद्वये, परव्योमे—'पूर्णतर' 20/396
पुरीद्वये, वैकुण्ठाद्ये—ऐश्वर्य 19/193
पुरी मधुपुरी वरा—कहे 19/102
पुरीर आवरणरूपे पुरीर 20/241
पुरुषार्थ-शिरोमणि—प्रेम 20/125
पुरुषोत्तम, अच्युत 20/204
पूतना-वधादि यत लीला 20/379
पूर्णानन्द-प्राप्ति ताँर 18/195
'पूर्णैश्वर्यप्रभु-ज्ञान' अधिक 19/218
पूर्व आज्ञा,—वेद-धर्म 22/59
पूर्वदिके ताते माटी अल्प 20/135
पूर्वापर-विधि-मध्ये 'पर' 18/197
पूर्वे आमि इँहारे लोभाइल 15/138
प्रकृति क्षोभित करि' 20/272
प्रणवेर येइ अर्थ, गायत्रीते 25/92
"प्रतापरुद्र-संत्राता" नाम 16/108
'प्रतिज्ञा', 'श्रीकृष्णसेवा' 16/137

'प्रतिज्ञा' 'सेवा' छाड़िबे 16/139
प्रत्यब्द आसिबे यात्राय 15/98
प्रथमेइ उपशाखार करये 19/161
प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,—मुख्य 20/186
प्रद्युम्नेर विलास—नृसिंह 20/206
प्रद्युम्नेर मूर्त्ति—त्रिविक्रम 20/197
प्रपञ्च ये देख सब 25/109
प्रभु-आगे दुःखी हञा 17/123
प्रभु कहे,—"अन्यावतार 20/350
प्रभु कहे,—"अमोघ शिशु 15/287
प्रभु कहे,—"उठ, कृष्णनाम 18/205
प्रभु कहे,—"उपाध्याय, श्रेष्ठ 19/101
प्रभु कहे,—कह 'कृष्ण' 17/29
प्रभु कहे,—"काँहा पाइला 18/109
प्रभु कहे,—"कृष्ण-कृपा 20/104
प्रभु कहे,—"के तुमि 18/85
प्रभु कहे,—"क्षौर कराह 20/68
प्रभु कहे,—"तुमि 'गुरु' 17/170
प्रभु कहे,—"तोमा स्पर्शि 20/56
प्रभु कहे,—"तोमार शास्त्र 18/189
प्रभु कहे,—"धर्म नहे 15/188
प्रभु कहे,—"पूज्य एइ 15/234
प्रभु कहे,—"वैष्णव-सेवा 16/70
प्रभु कहे,—"मायावादी कृष्णे 17/129
प्रभु कहे,—"याँर मुखे 15/106
प्रभु कहे,—"ये करिते 24/323
प्रभु कहे,—"सेवा छाड़िबे 16/133
प्रभु कहेन,—"कृष्णसेवा' 15/104
प्रभु जले कृत्य करे 17/31
प्रभु ताँरे विदाय दिया 16/227
प्रभु देखि' वृन्दावनेर 17/202
प्रभुर उपदेशामृत शुने 23/121
प्रभुर गम्भीर-स्वरे येन 17/206
प्रभुर चरणे किछु कैल 15/102
प्रभुर चरणे पड़े प्रेमाविष्ट 16/224
प्रभुर दरशने शुद्ध हञाछे 17/123
प्रभुर प्रेमावेश, आर प्रभाव 19/76
प्रभुर सहित करे कीर्त्तन 16/47
प्रभुर स्वभाव,—येबा देखे 25/8
प्रभुरे मिलिया गेला आपन 19/3
प्रभु-सङ्गे रहे गृह-स्त्री 18/90
प्रलये अवशिष्ट आमि 25/110
'प्र'-शब्दे—मोक्षवाञ्छा 24/96
प्रश्नोत्तरे भागवते करियाछे 24/313
प्राकृत-क्षोभे ताँर क्षोभ 23/20
प्राकृत प्रपञ्च पाय 25/110
प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय 17/134
प्राणीमात्रे मनोवाक्ये उद्वेग 22/117
प्रातःकाले भव्य-लोक 18/103
प्राते कुमारहट्टे आइला 16/205
प्राते वृन्दावने कैला 18/75
प्राभवविलास—वासुदेव 20/186
प्राभव-वैभव-भेदे 20/185
'प्राभव'-'वैभव'रूपे 20/167
प्रीत्यङ्कुरे 'रति', 'भाव' 22/161
'प्रेमफल' पाकि' पड़े 19/162
प्रेम वृद्धिक्रमे नाम 19/178
'प्रेमवैचित्त्य' श्रीदशमे 23/60
प्रेमसुख-भोग—मुख्य 20/142
प्रेमा क्रमे बाड़ि' हय 23/38
प्रेमादिक स्थायिभाव 23/43
प्रेमे कृष्णास्वाद हैले 20/141
प्रेमे प्रभु करे राधाकुण्डेर 18/6
'प्रेमेर विवर्त्त' इहा शुने 16/149

फ

फूल-फल भरि' डाल 17/201

ब

बन्धु देखि' बन्धु येन 17/201
बहुग्रन्थ-कलाभ्यास 22/115
बहुत संन्यासी यदि 15/197
बहुधन दिया दुइ ब्राह्मणे 19/4
'बापेर धन आछे'—जाने 20/131
बालक-दोष ना लय पिता 15/291
बालगोपाल किवा खाइल 15/59
बाल्यकाल हैते तेँहो 16/222
बाल्य, पौगण्ड, कैशोरे 19/103
बाह्य, अन्तर,—इहार दुइ 22/152
बाह्य वैराग्य, वातुलता 16/243
बाह्ये राजवैद्य इँहो 15/120
'बाह्ये' साधकदेहे करे 22/152
बुद्धिमान्-अर्थे—यदि 24/86
बुद्धि, स्वभाव,—एइ 24/11
ब्रह्म—अङ्गकान्ति ताँर 20/159
ब्रह्म, आत्मा, भगवान् 20/157
'ब्रह्म' 'आत्मा' 'चैतन्य' 17/129
ब्रह्मज्ञानी आकर्षिया करे 17/137
'ब्रह्म'-शब्दे कहे 25/33
'ब्रह्म'-शब्देर अर्थ—तत्त्व 24/66
ब्रह्मा आइला,—द्वारपाल 21/59
ब्रह्माण्ड जीवेर तुमि 15/167
ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन 19/151
ब्रह्माण्डानुरूप ब्रह्मार 21/86
ब्रह्मादि कीटपर्यन्त—ताँर 24/302
ब्रह्मादि रहु—सहस्रवदने 21/12
ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द 17/139
ब्रह्मा, विष्णु, शिव 20/291, 20/301
ब्रह्मा, विष्णु, हर 21/36
ब्रह्माय 'सृष्टि'-शक्ति 20/369
ब्रह्मार एकदिने हय 20/320

ब्रह्मार वत्सरे पञ्चसहस्र 20/321
ब्रह्मा, शिव—आज्ञाकारी 20/317

भ

भक्त आमा बान्धियाछे 25/125
भक्त–इच्छा बिना प्रभु 16/11
भक्त कृपा–वशे भीष्मेर 16/144
भक्तगणे स्फुरि आमि 25/123
भक्तदेह पाइले हय गुणेर 24/106
भक्तवत्सल ना देखि 25/261
भक्तवत्सल, कृतज्ञ, समर्थ 22/92
भक्तवात्सल्य, आत्मा पर्यन्त 24/42
भक्तभेदे रति–भेद पञ्च 19/183
भक्त–सम्बन्धे याहा क्षमिल 15/300
भक्ति–प्रभाव,—सेइ काम 24/192
भक्तिफल 'प्रेम' हय 22/49
भक्ति–बले पार तुमि 20/56
भक्तिबले 'प्राप्तस्वरूप' 24/129
भक्ति बिना केवल ज्ञाने 24/104
भक्ति बिना कोन साधन 24/87
भक्ति बिना मुक्ति 24/134, 25/30
भक्तिमुख–निरीक्षक कर्म 22/17
भक्तिर स्वभाव,—ब्रह्म हैते 24/105
भक्त लागि' विस्तारिला 25/260
'भक्ति'–शब्देर अर्थ हय 24/30
भक्ति साधन करे येइ 24/104
भक्तेर महिमा कहिते हय 15/118
'भक्त्ये' कृष्ण वश हय 20/136
'भक्त्ये जीवन्मुक्त', 'ज्ञाने 24/124
'भक्त्ये जीवन्मुक्त' गुणाकृष्ट 24/125
'भक्त्ये' ओ भगवानेर 20/164
'भगवत्ता' मानिते 'अद्वैत' 25/47
भट्ट मिलिबारे याय, दुँहे 19/67
भट्टाचार्य–द्वारा मृत्तिका 18/14
भट्टाचार्य पण्डित बिश 19/17
भट्टेर सङ्कोचे प्रभु सम्वरण 19/63
भद्र कराञा ताँरे गङ्गास्नान 20/70
भद्र हओ, छाड़' एइ 20/42
'भागवत' करिब सूत्रेर 25/95
भागवत–विचार करेन 19/17
भागवतेर सम्बन्ध, अभिधेय 25/100
भागवते सेइ ऋक् श्लोके 25/97
भागीरथी हन साक्षात् 15/135
भाग्यवान् तुमि, तोमार 15/228
भावकालि बेचिते आमि 17/144
भावावेशाकृति–भेदे 20/183
भाविते भाविते कृष्ण 19/235
भारी बोझा लञा आइलाङ 17/145
भिक्षा करि' महाप्रभु करिला 17/90
'भीमरुल–वरुली' उठिबे 20/132
भुक्ति–मुक्ति आदि–वाञ्छा 9/175
भुक्ति–मुक्ति–वाञ्छा, यत 19/158
भुक्ति–मुक्ति–सिद्धि–सुख 24/39
भुक्ति–मुक्ति–सिद्धि–कामी 19/149
भुक्ति, सिद्धि, इन्द्रियार्थ ताँरे 23/22
भूषणेर भूषण अङ्ग, ताँहे 21/105
भृत्य–वाञ्छा–पूरण बिना 15/166
भोटकम्बल–पाने प्रभु 20/82
भ्रमिते भ्रमिते आइला 17/166
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु 22/14
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधुसङ्ग 24/305

म

'मकरे' पौँछिते प्रयागे 18/146
मणि–पीठे ठेकाठेकि 21/95
मथुराते केशवेर नित्य 20/215
मथुराय लुप्ततीर्थेर करिह 23/98
'मथुरा'–पद्मेर पश्चिमदले 18/18
मथुरावास, श्रीमूर्त्तिर श्रद्धाय 22/125
मद्यप यवनेर चित्त ऐछे 16/174
मधुर ऐश्वर्य–माधुर्य–कृपादि 21/44
मधुर–रसे—कृष्णनिष्ठा, सेवा 19/230
मधुर–रसे भक्तमुख्य—व्रजे 19/191
मधुर हैते सुमधुर, ताहा 21/138
'मध्यम–अधिकारी' सेइ 22/66
'मध्यम–आवास' कृष्णेर 21/47
मध्याह्न करि' आसि' करे 18/78
मध्ये मध्ये आमि तोमार 15/44
मध्ये मध्ये आसिमु, ताँर 15/52
मध्ये एक शिशु' हय 18/60
'मनुष्य नहे, इँहो—कृष्ण' 19/100
'मनें' निज–सिद्धदेह करिया 22/153
मन्वन्तरावतार एबे, शुन 20/319
'ममता' अधिक, कृष्णे 19/224
ममताधिक्ये ताड़न–भर्त्सन 19/226
मयूरेर कण्ठ देखि' प्रभुर 17/218
मर्कट–वैराग्य ना कर 16/238
मरित' अमोघ, तारे केने 15/290
महत्–कृपा बिना कोन 22/51
'महाजन' येइ कहे, सेइ 25/55
महापातकेर हय एइ 25/193
महाप्रभु देखि' 'सत्य' कृष्ण 18/98
महाप्रभुर यत बड़ बड़ 19/123
महाप्रेमावेशे नाचे प्रभु 17/56
महाविष्णु, पद्मनाभ 21/39
'महाभागवत'–लक्षण शुनि 17/110
महारौरव हैते तोमाय 20/63
महिषीगण, लक्ष्मीगण, असंख्य 19/191
महिषीगणेर 'रूढ़', 'अधिरूढ़' 23/53
महिषी–विवाहे हैल 20/168
महिषी–हरण आदि 23/113

माघ–मास लागिल, एबे 18/145
'मात्सर्य'–चण्डाल केने 15/275
माधवदास–गृहे तथा 16/208
माधवेन्द्र–पुरीर 'सम्बन्ध' 17/172
माधुर्य भगवत्ता–सार, व्रजे 21/110
माधुर्यशक्त्ये गोलोक, ऐश्वर्ये 24/22
माया–कार्य, माया हैते 25/114
मायाजाल छुटे, पाय 22/25
मायातीत परव्योमे सबार 20/264
मायातीत हैले हय आमार 25/116
माया–द्वारे सृजे तेँहो 20/259
'माया' निमित्तहेतु, 'प्रधान' 20/271
मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे 22/33
मायावादिगण याते महा 17/143
मायावादी कृष्णे अपराधी 17/129
'मायावादी'—निर्विशेष–ब्रह्मे 25/50
मायामुग्ध जीवेर नाहि 20/122
मायार 'आश्रय' हय, तबु 20/293
मायार ये दुइ वृत्ति 20/271
मायासङ्ग–विकारे रुद्र 20/308
मायिक विभूति—एकपाद 21/55
मार्गशीर्षे—केशव, पौषे 20/198
माली हञा करे सेइ 19/152
मिलने 'रसाला' हय अमृत 19/182
'मीमांसक' कहे,—'ईश्वर 25/49
मुकुन्द कहे,—"रघुनन्दन 15/115
मुक्ताहार—वकपाँति 21/109
मुक्ति–भुक्ति–सिद्धिकामी 22/35
'मुक्ति' लागि' भक्त्ये करे 24/117
मुखे मुख दिया करे 17/42
मुखे 'हय' 'हय' करे 25/27
मुख्य–गौण–वृत्ति, किंवा 20/146
मुञि ये शिखाइ तोरे 23/118
'मुनि'–शब्दे मननशील 24/15
मुनि सब जानि' करे 20/352
मुमुक्षा छाड़िया गुणे भजे 24/122
'मुमुक्षु' अनेक जगते 24/117
'मूर्ख'–लोक करिबेक 17/183
मूर्खेर वाक्ये 'मूर्ख' हैला 18/100
मृगमद वस्त्रे बान्धे, तबु 18/119
मृगी व्याधिते आमि 18/184
मोक्षाकाङ्क्षी ज्ञानी हय 24/116
मोक्षादि आनन्द यार नहे 18/195
मोर इच्छा हय,—हङ 18/86
मोर ध्याने अश्रुजले भरिल 15/57
मोर वाङ्मानसेर गम्य 21/26
मोर मन छुँइते नारे 23/116
मोर यदि बोल धरे 21/134
मोर सुख चाह यदि 16/141
मोरे खाओयाइते करे 15/64
मोरे तुमि भिक्षा देह 17/177
'मोरे ना छुँइह'—कहे 20/52
मोरे प्रसाद देह' भिन्न 15/231
मोरे शिष्य करि' मोर 17/167
मौषल–लीला, आर कृष्ण 23/112
म्लेच्छेर हृदये येन लागे 18/178

य

यत्नाग्रह बिना भक्ति ना 24/165
यथायोग्य विषय भुञ' 16/238
यदि वैष्णव–अपराध उठे 19/156
यद्यपि असृज्य नित्य 20/257
यद्यपि भट्टेर आगे प्रभुर 19/82
यद्यपि 'सनोड़िया' हय सेइत' 17/179
याँर आगे तृण–तुल्य 19/164
याँर यत शक्ति तत 17/233
याँहा कृष्ण, ताँहा नाहि 22/31
याँहा नदी देखे, ताँहा 17/56
याँहा विप्र नाहि, ताँहा 17/60
याँहार दर्शने मुखे आइसे 16/74
याँहा लञा याह तुमि, ताँहाइ 18/154
याँर सङ्गे हय एइ 16/266
याँहा हैते कृष्णभक्ति सेइ 15/117
यार एकबिन्दु–पाने 25/271
याहार कोमल श्रद्धा 22/67
युक्तवैराग्य स्थिति सब 23/100
येइ कुण्डे नित्य कृष्ण 18/9
येइ ग्रन्थकर्त्ता चाहे 25/48
येइ ग्रामे दिया यान 17/47
येइ तर्क करे इँहा 18/227
येइ ताँरे देखे, सेइ 17/118
येइ मूढ़ कहे,—जीव 18/115
येइ येइ कहिल, प्रभु 18/188
येइ सूत्रकर्त्ता, से यदि 25/91
येइ सूत्रे येइ ऋक् 25/97
ये कहे,—'कृष्णेर वैभव 21/25
ये–काले द्विभुज, नाम 20/176
ये–काले संन्यास कैलुँ 15/51
ये खण्डिल कुविषय–भोग 20/93
ये–दिवस प्रभु संन्यासीरे 25/18
ये देखिबे कृष्णानन, तार 21/134
ये 'विग्रह' नाहि माने 25/113
ये येइ दोष करे, देह' 19/26
ये रूपेर एक कण, डुबाय 21/102
ये लीला–अमृत बिने 25/271
यैछे आमार गुण, कर्म 25/105
यैछे आमार 'स्वरूप' 25/105
यैछे इक्षुरस–बीज—गुड़ 23/39
यैछे तैछे योहि कोहि 24/56
यैछे दधि, सिता, घृत 19/182

यैछे बीज, इक्षु-रस 19/179
यैछे सूर्येर स्थाने भासये 25/115
'योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु 15/11
योगमाया चिच्छक्ति 21/103
योगमाया—दासी, याँहा 21/44
योगमार्गे—अन्तर्यामि 24/79
'योगारुरुक्षु', 'योगारूढ़' 24/152

र

रघुनाथेर पाय मुञि 15/149
रति गाढ़ हैले तार 19/177
रति-प्रेम-तारतम्ये भक्त 22/68
रतिभेदे कृष्णभक्ति-रसे 19/184
रसगण-मध्ये तुमि श्रेष्ठ 19/104
राग, अनुराग, भाव 19/178, 23/38
रागभक्ति, विधिभक्ति हय 24/80
रागभक्त्ये व्रजे स्वयं 24/81
रागमयी भक्तिर हय 22/148
रागहीन जन भजे शास्त्रेर 22/106
रागात्मिका-भक्ति—'मुख्या' 22/145
राजमन्त्री सनातन—बुद्ध्ये 20/348
राजा मोरे प्रीति करे 19/13
रात्रि-दिने करे व्रजे 22/153
राधाकृष्णे लागाञाछ 15/228
'राधा-दामोदर' अन्य व्रजेन्द्र 20/201
राधिकाद्ये 'पूर्वराग' प्रसिद्ध 23/60
'रामदास' बलि' प्रभु ताँर 18/207
रुचि हैते भक्ति हय 23/12
'रूढ़', 'अधिरूढ़' भाव 23/53
'रूढ़ि-वृत्त्ये' निर्विशेष 24/78
रूप-गुण-श्रवणे रुक्मिण्यादिर 24/47
रूप-गोसाञिर छोटभाइ 19/36
रूप-गोसाञिरे शिक्षा करा'न 19/114
रूप देखि' आपनार, कृष्णेर 21/104
रूप-सनातन—सबार कृपा 19/123
रोग खण्डि' सद्वैद्य ना 20/91

ल

लता अवलम्बि' माली 19/162
लवमात्र साधुसङ्गे सर्वसिद्धि 22/54
ललाटे अष्टमी-इन्दु 21/127
'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठादि' 19/159
लोक कहे,—"रात्र्ये 18/104
लोक कहे,—"संन्यासी 18/109
लोक-भिड़-भये प्रभु 19/114
लोके कहे,—"कृष्ण 18/94
लोभे व्रजवासीर भावे 22/149

व

वंशी-गीते हरे कृष्ण 24/50
वंशीध्वनि—चक्रवात, नारीर 21/113
वंशीस्वरादि—उद्दीपन 23/46
वन देखि' भ्रम हय 17/55
वनपथे आनि' आमाय बड़ 17/69
'वयः कैशोरकं ध्येयं'—कहे 19/103
वर्णमात्र-भेद, सब—कृष्णेर 20/174
वर दिला—'एइ सब स्फुरुक 23/119
वर देह' मोर माथे धरिया 23/117
वसुदेव-देवकीर कृष्ण चरण 19/196
वस्तुतः बुद्धि 'शुद्ध' नहे 22/29
वाचस्पति! कर जलब्रह्मेर 15/136
वात्सल्य-भक्त—माता 19/190
वात्सल्यरति, मधुररति,—ए 19/184
वात्सल्ये शान्तेर गुण, दास्येर 19/225
वातुल बालकेर माता 15/50
'वातुल' ना हइओ, घरे 18/102
वादियार वाजि पाति' 16/272
वाराणसी हैल द्वितीय 25/160
वासुदेव-दत्तेर तुमि 15/93
वासुदेवेर क्षत्रिय-वेश 20/177
वासुदेवेर विलास दुइ 20/205
वासुदेवेर मूर्त्ति—केशव 20/195
विचार करिया यबे भजे 24/185
विजया-दशमी-दिने करिल 16/94
विजया-दशमी—लङ्का 15/32
विज्ञ-जनेर हय यदि 22/94
विधि-धर्म छाड़ि' भजे 22/138
विधिभक्त्ये पार्षददेहे 24/81
विधि मोरे हिन्दुकुले केने 16/181
बिना पाप-भोगे हबे 15/167
विप्र कहे,—"श्रीपाद माधवेन्द्र 17/166
विप्रगृहे गोपालेर निभृते 18/30
विप्रगृहे स्थूलभिक्षा, काँहा 19/128
'विप्रलम्भ' चतुर्विध—पूर्वराग 23/59
'विवर्त्तवाद' स्थापे, 'व्यास भ्रान्त' 25/40
विभाव, अनुभाव, सात्त्विक 23/44
विभुरूपे व्यापे, शक्त्ये 24/22
'विरजा', 'ब्रह्मलोक' भेदि' 19/153
विरहे कृष्णस्फूर्त्ति, आपनाके 23/57
विराट् व्यष्टि-जीवेर 20/295
विलास, स्वांशेर भेदे 20/184
विलासेर विलास-भेद 20/185
विशुद्ध-निर्मल-प्रेम 15/139
विश्रम्भ-प्रधान सख्य 19/223
विश्वसृष्ट्यादि कैल, वेद 20/359
'विश्वास' आसिया प्रभु 16/170
विश्वे अवतरि' धरे 20/264
विषयकूप हैते तोमा 19/49
विषय-रोग खण्डाइल 20/90
विष्णुवैष्णव-निन्दा 22/117
वृक्षलता—प्रफुल्लित, सेइ 17/45

वृद्धकाले रूप-गोसाञि ना 18/46
वृन्दावन देखि' यबे आसिब 16/240
वृन्दावन याइते पथे हैल 17/226
वृन्दावन याइवार एइ नहे 16/266
वृन्दावन याब काँहा 16/274
वृन्दावन-शोभा देखे यमुनार 18/77
वृन्दावन-स्थानेर देख आश्चर्य 21/28
वृन्दावने 'कृष्ण' आइला 18/107
वृन्दावने कृष्णसेवा 23/99
वृन्दावने हइला तुमि कृष्ण 18/110
वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म 19/146
वेदनिष्ठ-मध्ये अर्द्धेक वेद 19/146
वेदमते कहे ताँरे—'स्वयं 25/51
वेदशास्त्र कहे—'सम्बन्ध' 20/124
वेदशास्त्रे उपदेशे, कृष्ण 22/3
वेदशास्त्रे कहे सम्बन्ध 20/143
वेदादि सकल शास्त्रे कृष्ण 20/144
'वेदान्त'-मते,—ब्रह्म 'साकार' 25/53
वेदेर प्रतिज्ञा केवल कहये 20/146
वैकुण्ठ, ब्रह्माण्डगण 20/150
वैकुण्ठे 'शेष'—धरा 20/368
वैदिक, याज्ञिक तुमि 19/69
'वैधी-भक्ति' बलि' तारे 22/106
वैभवप्रकाश कृष्णेर 20/174
वैभवप्रकाश यैछे देवकी 20/175
वैभवप्रकाशे आर प्राभव 20/188
वैष्णवेर पाप कृष्ण दूर 15/169
व्यर्थ मोर एइ देह 16/182
व्याख्या शिखाइल यैछे 23/113
व्याघ्र-मृगी मिलि' चले 17/37
व्याध हञा हय पूज्य 24/222
व्यासकृपाय शुकदेवेर 24/111
'व्याससूत्रेर' अर्थ करेन 25/24
व्रजवासी लोक 'गोलोक' 18/136
व्रजे कृष्ण—सर्वैश्वर्यप्रकाशे 20/396
व्रजे गोपभाव रामेर, पुरे 20/187
व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण—नायक 23/62
व्रजेन्द्रनन्दने इहा अधिक 20/178
व्रजेन्द्र-व्रजेश्वरीर कैल चरण 18/62
व्रजे वास,—एइ पञ्चसाधन 24/187

श

शक्ति कम्पयुक्त परिपाट्ये 24/20
शक्त्यावेश दुइरूप—'मुख्य' 20/366
शची-माता मिलि' ताँर 16/210
शतेक वत्सर हय 'जीवन' 20/322
शर्करा, सिता-मिछरि 19/179
शरण लञा करे कृष्णे 22/99
शरणागतेर, अकिञ्चनेर 22/96
शान्त, दास्य, सख्य 19/185
शान्त-दास्य-रसे ऐश्वर्य 19/195
शान्तभक्त—नवयोगेन्द्र 19/189
शान्त-भक्तेर रति बाड़े 24/32
शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति 19/183
शान्तरसे शान्ति-रति 23/50
शान्तरसे—'स्वरूपबुद्धये 19/210
शान्तादि रसेर 'योग' 23/52
'शान्तिपुराचार्य'-गृहे ऐछे 16/210
शान्तेर गुण दास्ये आछे 19/220
शान्तेर गुण, दास्येर सेवन 19/221
'शास्त्र'-'गुरु'-'आत्म'-रूपे 20/123
शास्त्र छाड़ि' कुकल्पना 25/41
शास्त्र-युक्ति नाहि जाने 22/66
शास्त्रयुक्ति नाहि माने 22/149
शास्त्रयुक्त्ये सुनिपुण, दृढ़ 22/65
शास्त्रेर सहज अर्थ नहे 25/48
शास्त्रे लिखियाछे, केह 18/199
'शिव'—मायाशक्तिसङ्गी 20/311
शिवानन्द-सेनेर पुत्र 19/118
'शिष्य' करि' ताँर भिक्षा 17/180
शीघ्र याइ' मुञि सब 15/58
शुकदेवेर मन हरिल 24/44
शुक्ल-रक्त-कृष्ण-पीत 20/330
'शुद्धभक्ति' हैते हय 'प्रेमा' 19/166
शुनि' 'कृष्ण' 'कृष्ण' 15/278
शुनियाछि गौड़देशेर 17/116
शुनिलेओ भाग्यहीनेर ना 18/225
'शुष्कज्ञाने जीवन्मुक्त' 24/125
शुष्कवैराग्य-ज्ञान सब 23/100
शुष्क रुटी-चाना चिबाय 19/128
शेषे 'स्व-सेवन'-शक्ति 20/370
शैल देखि' मने हय 17/55
'श्याममेव परं रूपं'—कहे 19/101
'श्याम'-रूपेर वासस्थान 19/102
श्रद्धावान् जन हय भक्ति 22/64
'श्रद्धा'-शब्दे विश्वास कहे 22/62
श्रवण-कीर्त्तन-जले करये 19/152
श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण 22/118
श्रवणादि-क्रिया—तार 22/103
श्रवणादि-शुद्धचित्ते करये 22/104
श्रवणाद्येर फल 'प्रेमा' 24/58
श्रीअङ्ग-रूपे हरे 24/47
श्रीकृष्णचैतन्य-वाक्य दृढ़ 25/28
श्रीकृष्णचैतन्य-वाणी 25/57
श्रीकृष्णचैतन्य हय 'साक्षात् 25/24
श्रीचैतन्यसम आर कृपालु 25/261
श्रीमुखे करेन आज्ञा, निवेदि 15/103
श्रीरघुनाथ-चरण छाड़ान 15/150
श्रीरूप-सनातन रहे 19/3

श्रीरूप-हृदये प्रभु शक्ति 19/117
श्रीरूपे शिक्षा दिल शक्ति 19/135
श्री, लज्जा, दया, कीर्त्ति 21/121
षड्दर्शन-व्याख्या बिना 17/96
षड़ैश्वर्यपूर्ण कृष्ण हय 18/112
'षाठी राण्डी हउक'—इहा 15/252
षोलक्रोश वृन्दावन,—शास्त्रेर 21/29

स

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये 22/43
संहारार्थे माया-सङ्गे रुद्र 20/307
सकल जीवेर, प्रभु, घुचाह 15/163
सकलसाधन-श्रेष्ठ एइ 22/126
सकाम-भक्ते 'अज्ञ' जानि' 24/97
सकारण लिखि आदौ 24/324
सङ्कर्षणेर विलास—उपेन्द्र 20/205
सङ्कर्षणेर मूर्त्ति—गोविन्द 20/196
सखागणेर रति हय 'अनुराग' 24/33
सख्य-वात्सल्य-रति पाय 23/51
सख्य-भक्त—श्रीदामादि 19/190
सख्यभावे धार्ष्ट्य क्षमापय 19/198
सख्ये, वात्सल्ये, मधुर-रसे 19/195
सख्येर असङ्कोच, लालन 19/230
सख्येर गुण—'असङ्कोच' 19/226
सगर्भ, निगर्भ,—एइ हय 24/149
सङ्गे केने आनियाछ एइ 20/25
सच्चिदानन्द-देह, पूर्णब्रह्म 18/191
सञ्चय ना कैले कुटुम्ब 15/95
सत्सङ्ग, कृष्णसेवा, भागवत 24/187
सत्सङ्गे 'कर्म' त्यजि' 24/208
"सत्यं परं"—सम्बन्ध 25/140
'सत्यं' शब्दे कहे ताँर 20/358
सत्ययुगे ध्यान-कर्म कराय 20/332
'सनकादि', 'नारद', 'पृथु' 20/367
सनकादिर मन हरिल 24/44
सनकाद्ये 'ज्ञान'-शक्ति, नारदे 20/369
सनातन-मुखे कृष्ण आमा 17/74
सनातने कहिला,—"तुमि 25/175
सनातनेर वैराग्ये प्रभुर 20/82
सनोड़िया-घरे संन्यासी 17/179
संन्यासी—चित्कण जीव 18/112
'संन्यासी'—नाम-मात्र, 17/120
संन्यासीर सङ्ग-भये ना 17/103
सप्तग्रामे बारलक्ष मुद्रार 16/217
सप्त गौण 'आगन्तुक' 19/188
सवंशे सेइ जल मस्तके 19/86
सब कहा ना याय 22/74
सब खण्डि' स्थापे 'ईश्वर' 18/196
सब गोपी हैते राधा कृष्णेर 18/7
सब छाड़ि' कृष्णभक्ति 24/182
सब तत्त्व जान, तोमार 20/104
सब त्यजि' तबे तिँहो 24/305
सब फल देय भक्ति 24/87
सब ब्रह्माण्ड सह यदि 15/178
सब शिखाइल प्रभु भागवत 19/115
सब साधि' अवशेषे एइ 22/59
सबारे उपदेश करे 18/81
सबे 'एक'-मत नहे, भिन्न 17/184
सबे 'कृष्ण' कहे, सबार 18/206
सबे हैला चतुर्भुज वैकुण्ठेर 21/22
समस्त ब्रह्माण्डगणेर इँहो 20/282
समुत्कण्ठा हय सदा 23/28
'सम्भोग'-'विप्रलम्भ'-भेदे 23/58
सम्भोगे 'मादन', विरहे 23/54
सम्मान करिते नारि 15/197
सयुक्तिक वाक्ये मन 25/20
'सरखेल' हञा तुमि करिह 15/96
'सरस्वती' एइ वाक्ये 'सत्य' 18/97
सर्व अमङ्गल हरे, प्रेम 24/55
सर्व-आदि, सर्व-अंशी 20/153
सर्वकर्म त्याग करि' से 22/60
सर्व-जन-देश-काल 25/118
सर्वजीवेर पाप प्रभु देह' 15/162
'सर्वज्ञ' आसि' दुःख देखि' 20/127
सर्वज्ञ कहे तारे प्राप्तिर 20/131
सर्वज्ञ मुनिर वाक्य 20/351
सर्वज्ञेर वाक्ये करे 20/129
सर्वज्ञेर वाक्ये मूलधन 20/130
सर्वतत्त्व-निरूपिया 'प्रवीण' 19/117
सर्वतीर्थे हैल ताँर परम 18/212
सर्वत्र गाहिया बुले 18/211
सर्वत्र प्रमाण दिबे पुराण 24/338
सर्व-देश-काल-दशाय 25/120
सर्व महागुणगण वैष्णव 22/72
सर्व मुक्त करिते कृष्णेर 15/171
सर्वशास्त्र खण्डि' प्रभु 25/20
सर्वशास्त्र-सिद्धान्तेर इँहा 25/263
सर्वशास्त्रे उपदेशे, 'श्रीकृष्ण' 20/130
सर्वश्रेष्ठ, सर्वाराध्य, कारणेर 18/193
सर्वाकर्षक, सर्वाह्लादक 24/38
'सर्वात्मा', 'सर्वज्ञ', नित्य 18/191
सर्वेन्द्रिय-फल,—एइ 20/60
'सर्वैश्वर्यपूर्ण' तेँहो—श्याम 18/190
सर्वैश्वर्यपूर्ण याँर गोलोक 20/155
'सर्वोत्तम' आपनाके 'हीन' 23/25
सर्वोपरि कृष्णलोके 'कर्णिकार' 21/7
सहजे आमार किछु अर्थ 24/9
सहजे निर्मल एइ ब्राह्मण 15/274
सहाय हइल दैव, कैल 15/267

सहिते ना पारि आमि 18/148
सहिते ना पारिमु सेइ 17/183
'सांख्य' कहे,—'जगतेर 25/49
साक्षात्शक्त्ये 'अवतार' 20/366
सात दिन रहि' तथा लोक 16/209
साधक, ब्रह्ममय, आर 24/103
साधन करिले प्रेम उत्पन्न 19/175
साधनभक्ति हैते हय 19/177
साधनभक्त्ये हय 23/10
साधनेर फल—'प्रेम' मूल 25/102
साधु-गुरु-प्रसादे, ताहा 25/270
साधु-शास्त्र-कृपाय यदि 20/120
साधुसङ्ग-कृपा किम्वा 24/92
साधुसङ्ग, कृष्णकृपा, भक्तिर 24/99
साधुसङ्ग, नामकीर्त्तन 22/125
'साधुसङ्ग' 'साधुसङ्ग' 22/54
साधुसङ्ग हैते हय 23/10
साधुसङ्गे कृष्णभक्त्ये 22/49
साधुसङ्गे तप छाड़ि' 24/210
साधुसङ्गे तरे, कृष्णे रति 22/45
साधु, साधु, गुप्त! तोमार 15/153
'साध्य', 'साधन'-तत्त्व 20/103
'साध्य-साधन-वस्तु' 18/202
सार्वभौम! कर 'दारुब्रह्म' 15/136
सार्वभौम-गृहे दास-दासी 15/284
सार्वभौम-सङ्गे तोमार 15/276
सार्वभौम-सम्बन्धे तुमि 15/283
सिद्धान्त शिखाइला,—येइ 23/115
सिद्धि—अष्टादश, मुक्ति 24/28
सुखभोग हैते दुःख आपनि 20/140
सुखे प्रेमफल-रस करे 19/163
सुबलाद्येर 'भाव' पर्यन्त 23/51
सुबुद्धि जनेर हय 24/188
सूत्र-उपनिषदेर मुख्यार्थ 25/26
सूत्रेर परिणामवाद, ताहा 25/40
सूर्य बिना स्वतः तार 25/115
सूर्य येन चर्मचक्षे 20/159
सूर्यांशु-किरण, येन 20/109
सृष्टि करि' तार मध्ये 25/109
'सृष्टिर पूर्वे षड़ैश्वर्यपूर्ण 25/108
सृष्टि, स्थिति, प्रलय ताँहा 18/192
सृष्टि-हेतु येइ मूर्त्ति 20/263
से अक्षर 'चन्द्र' हय 21/125
सेइ अद्वयतत्त्व कृष्ण 24/71
सेइ अमोघ हैल प्रभुर 15/296
सेइ अर्थ चतुःश्लोकीते 25/92
सेइ कुण्डे येइ एकबार 18/10
सेइ 'कृष्ण' 'कृष्ण' करे 17/32
सेइ कृष्ण भज तुमि 15/142
सेइ गोवर्धनेर पुत्र—रघुनाथ 16/222
सेइ जलबिन्दु-कणा लागे 17/32
सेइ जीव निस्तारे, माया 20/120
सेइत 'पाषण्डी' हय, दण्डे 18/115
सेइ त' वैष्णव, करिह 15/111
सेइ त' माधुर्य-सार 21/117
सेइ दिने व्यय करे 15/94
सेइ प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द 23/13
सेइ प्रेमे पाय जीव 25/102
सेइ वपु भिन्नाभासे किछु 20/183
सेइ वपु, सेइ आकृति 20/171
सेइ बिजली-खाँन हैल 18/212
सेइ विभिन्नांश जीव—दुइ 22/10
सेइ बुद्धि देन ताँरे 24/185
सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज 16/72
सेइ 'ब्रह्म'-शब्दे कहे 24/69
सेइ भिते हात दिया 15/83
सेइ माया अवलोकिते 20/265
सेह मोर प्रिय, अन्य 15/284
सेइ 'रति' गाढ़ हैले 23/13
सेइ सब गुण हय 22/74
सेइ सब सूत्र लञा 25/52
सेइ सबेर साधुसङ्गे गुण 24/119
सेइ सेइ सेवनेर इँहा 19/225
सेइ स्वाराज्यलक्ष्मी करे 21/97
सेकजल पाञा उपशाखा 19/160
से केने राखिबे तोमार 20/91
से चैतन्यलीला हय 25/264
से-छल सेकाले कृष्ण 16/241
से जानुक,—कायमने मुञि 21/25
'सेवा' करि' कृष्णे सुख 19/219
सेवा-नामापराधादि दूरे 22/114
से विघ्न करिबे,—धने हात 20/133
से माधुरी आस्वादिते 20/179
से सिद्ध हइल—छाड़ि' 16/139
सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य 20/178
सौभर्यादि-प्राय सेइ 20/169
स्तब्ध हञा मूलशाखा 19/160
स्त्री-बाल-वृद्ध, आर 18/121
'स्त्री-सङ्गी'—एक असाधु 22/84
स्थाणु-पुरुषे यैछे विपरीत 18/108
स्थावर-जङ्गम मिलि' 17/206
स्थायिभाव 'रस' हय एइ 23/44
स्थायिभावे मिले यदि विभाव 19/180
स्थिर हञा घरे याओ 16/237
स्थूल-सूक्ष्म-जगतेर तेँहो 18/192
स्नान-भिक्षादि-निर्वाह करेन 17/229
स्फूर्त्ति-ज्ञाने तेँहो ताहा 15/53
स्वकर्म करिते से रौरवे 22/26
स्व-चरण दिया करे 24/97

स्वचरणामृत दिया 'विषय' 22/39
'स्वतन्त्र ईश्वर' तुमि—स्वयं 17/79
'स्वयं–भगवत्ता', 'प्रकाश' 24/80
'स्वयं भगवान्', आर 20/240
स्वयं भगवान् कृष्ण 20/155
स्वयंरूप, तदेकात्मरूप 20/165
'स्वयंरूप' 'स्वयंप्रकाश' 20/166
स्वयंरूपेर गोपवेश, गोप 20/177
'स्वरूप' अनुभवि' ताँरे 25/8
स्वरूप—ऐश्वर्यपूर्ण, कृष्ण 20/315
'स्वरूप'–लक्षण, आर 20/354
'स्वरूप'–लक्षणे तुमि 18/126
स्वरूपशक्ति शक्ति–कार्येर 20/150
स्वर्ग, मोक्ष कृष्णभक्त 19/214
'स्वसौभाग्य' याँर नाम 21/104
स्व–स्व–मत स्थापे 25/54
स्वाङ्ग–विशेषाभासरूपे 20/273
स्वाभाविक कृष्णेर तिन 20/109

ह

हरिभक्त्ये हिंसा–शून्य 24/266
'हरिः'–शब्दे नानार्थ, दुइ 24/55
हस्तिगण–मध्ये येन 21/69
हस्ती–व्याघ्र पथ छाड़े 17/25
हास्य, अद्भुत, वीर, करुण 19/187
'हिन्दु' हैले पाइताम 16/182
हिरण्यगर्भ–अन्तर्यामी 20/292
'हिरण्य', 'गोवर्धन',—दुइ 16/217
'हेतु'–शब्दे कहे—भुक्ति 24/27
हेनकाले 'अमोघ' 15/245
हेनकाले व्याघ्र तथा आइल 17/37
हेन कृष्ण छाड़ि' पण्डित 22/92
हेन–तोमार एइ जीव 16/184
हेलाय 'मुक्ति' पाबे, पाबे 25/147

शब्दकोश

अ

अक्षजज्ञान—इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त ज्ञान
अघटन-घटन-पटीयसी—असम्भवको भी सम्भव तथा इसके विपरीत करनेवाली
अचिद्वस्तु—जो वस्तु चित् नहीं हो
अच्छेद्य—अविभाज्य, जिसका छेदन ना हो सके
अच्युत—जो च्युत नहीं हो
अज—अजन्मा
अजागलस्तन—बकरीके गलेमें लटकनेवाली स्तनके जैसी चीज
अज्ञ—ज्ञानरहित
अणिमा—योगकी आठ सिद्धियोंमेंसे एक, जिसमें योगी अणुके समान सूक्ष्म हो जाता है
अतिक्रम—मर्यादा, कर्त्तव्य, अधिकार आदिका उल्लङ्घन
अतिक्रान्त—अतीत, क्रमका उल्लङ्घन किया हुआ
अतिशय—अत्यधिक
अतिशयोक्ति—किसी बातका बढ़ा-चढ़ाकर कहना
अत्याज्य—नहीं त्यागने योग्य
अत्युत्तम—अति उत्तम
अदृष्ट—न देखा हुआ, अज्ञात
अधिदैव—आराध्य देवता
अधिरूढ़—बढ़ा हुआ
अधिष्ठान—आधार, आश्रय
अनभिज्ञ—न जाननेवाला
अनवरत—निरन्तर
अनायास—बिना कष्टके
अनिर्वचनीय—वचनसे ना वर्णन करने योग्य
अनुक्षण—निरन्तर
अनुगत—अनुगामी, अधीन
अनुवर्त्तन—अनुसरण, अनुगमन
अनुष्ठान—आरम्भ करना, कोई धार्मिक कृत्य
अनुसन्धान—खोज, प्रयत्न
अन्तर्भुक्त—किसीके अन्तर्गत होना
अन्तर्भूत—अन्तर्गत
अन्त्य—अन्तका, आखिरी
अन्यतम—बहुतोंमें से एक, सर्वश्रेष्ठ
अन्वय—वाक्यमें शब्दोंका परस्पर सम्बन्ध, मेल
अन्वेषण—खोज, ढूँढना
अपकार—अहित
अपटुता—अकुशलता
अपरा—जो श्रेष्ठ ना हो
अपरिमित—अगणित, अनगिनत
अपवर्ग—मोक्ष, निर्वाण
अपूर्व—जो पहले ना हुआ हो, अनूठा
अप्राकट्य—अप्रकट होना
अप्राकृत—अलौकिक
अप्रारब्ध—वैसा फल जो वर्तमान शरीरमें न भोगा जा रहा हो
अप्रासङ्गिक—प्रस्तुत विषयसे असम्बद्ध, प्रसङ्गके विरुद्ध
अबाध—बाधारहित
अभयत्व—अभयता
अभिज्ञ—जाननेवाला
अभिधा—नाम, वाच्यार्थ प्रकट करनेवाली शब्द शक्ति
अभिधान—शब्दकोष
अभिधेय—अर्थ या उपाय, कथनीय, विषय

अभिप्राय—मूल अर्थ, तात्पर्य
अभिप्रेत—उद्दिष्ट, अभिलाषित, स्वीकृत
अभिवृद्धि—अभ्युदय, बढ़ना
अभिव्यक्ति—प्रकट करना
अभिसन्धि—जोड़, समझौता
अभिसार—आगे बढ़ना, प्रियसे मिलने जाना
अभिहित—कहा हुआ
अभीष्ट—प्रिय, रुचिकर
अभ्यस्त—बार बार अभ्यास किया गया
अभ्युदय—उदय
अमित—अत्यधिक
अरण्य—वन
अवगत—जाना हुआ
अर्वाचीन—नया, बादमें उत्पन्न हुआ
अवतारणा—नीचे लाना, इन्द्रियगोचर करना
अवतीर्ण—अवतारके रूपमें प्रकट
अवधारण—शब्दके अर्थकी सीमा बाँधना, निश्चय करना
अवयव—अङ्ग, अंश
अवरुद्ध—रुका हुआ
अवलम्बन—आश्रय लेना, सहारा लेना
अवलोकन—देखना
अवशिष्ट—बचा हुआ, शेष
अवस्थान—रहना, अवस्थिति
अविचिन्त्य—अचिन्त्य
अविच्छिन्न—अविभक्त, लगातार अविच्छिन्न तैलधारावत्–तेलकी धाराके समान अटूट
अव्यय—अविकारी
अव्याकृत—अव्यक्त
अशेष—सम्पूर्ण
अष्टसिद्धि—आठ प्रकारकी सिद्धियाँ
असङ्ग—आसक्तिहीन
असङ्गत—प्रसङ्गविरुद्ध, अनुचित
असङ्गति—मेलका ना होना
असंस्कृत—संस्कारहीन
असमोर्द्ध—जिससे बड़ा और जिसके बराबर कोई नहीं हो
असार—सारहीन
असूया—ईर्ष्या, दूसरेके गुणमें दोष निकालना

आ

आख्यायिका—कहानी
आच्छन्न—ढका हुआ
आत्मविषयणी—आत्म–सम्बन्धी
आत्मसात्—अपने अधिकारमें
आत्यन्तिक—असीम
आदित्य—सूर्य
आधान—स्थापन, कोई वस्तु रखनेका स्थान रखना
आधिदैविक—देवताओंके द्वारा कृत
आधिभौतिक—अन्य प्राणियों द्वारा प्रदत्त
आध्यात्मिक—मानसिक, आत्म–सम्बन्धी
आपाततः—अचानक, अन्तमें
आप्त—पूर्ण, कुशल
आम्नाय—वेद, श्रुत, परम्पराप्राप्त उपदेश
आयुध—अस्त्र
आरूढ़—आसीन
आरोहण—चढ़ना, ऊपरकी ओर जाना
आर्त्ति—क्लेश, पीड़ा
आर्ष—ऋषियोंका
आलोचना—गुण–दोष निरूपण
आलोच्य—आलोचना योग्य
आह्लादित—आनन्दित

इ

इति—इस प्रकार, समाप्ति
इहलोक—यह लोक

ई

ईक्षण—दृष्टिपात
ईशिता—ईश्वरत्व

उ

उच्छिष्ट—खाकर छोड़ा हुआ, परित्यक्त
उत्कृष्ट—उन्नत, श्रेष्ठ
उद्बुद्ध—जगा या जगाया हुआ, विकसित
उद्भासित—व्यक्त, चमकता हुआ
उद्यत—तैयार
उद्रेक—प्रचुरता, बढ़ती
उद्वेग—क्षोभ, चित्तकी अस्थिरता
उपक्रम—योजना, आरम्भ, प्रयास
उपशम—विराग, विरक्ति
उपलक्षित—इशारेसे बताया हुआ
उपाङ्ग—छोटा या सहायक अंग
उपार्जित—कमाया हुआ
उपादान—साधन-सामग्री
उपादेय—ग्रहण करने योग्य, उपयोगी
उपेयत्व—उपाय-योग्य होनेका भाव
उरु—विस्तृत, महान
उरुक्रम—विष्णु
उरुगाय—उत्तम व्यक्तियोंके द्वारा जिसका स्तुतिगान किया गया हो

ए

एकरस—जो सदा एक रूपमें रहे,
एकीभूत—जो मिलकर एक हो गया हो

ऐ

ऐहिक—सांसारिक

औ

औत्सुक्य—उत्सुकता
औद्धत्य—उद्धतता, अक्खड़पन
औपाधिक—उपाधियुक्त

क

कर्तृत्व—कर्ताका धर्म, कार्य
कलुषित—गंदा, कलुषयुक्त
कल्प—वेदका एक अङ्ग, ब्रह्माका एक दिन
कल्पवृक्ष—इच्छा पूरी करनेवाला वृक्ष
काम्यकर्म—फलकी कामनासे किया जानेवाला कर्म
कैतव—छल, धोखा
केवला भक्ति—शुद्धा भक्ति
कैङ्कर्य—दासत्व
कैवल्य मुक्ति—निर्वाण मुक्ति
कौतूहलवश—उत्सुकतावश
क्रोड़ीभूत—अन्तर्भूत
क्लान्त—थका हुआ, क्षीण

क्ष

क्षिति—पृथ्वी
क्षेत्र—शरीर
क्षेत्रज्ञ—शरीरका ज्ञाता, आत्मा तथा परमात्मा
क्षोभ—असन्तोष, व्याकुलता

ग

ग्रथित—गूँथा हुआ
ग्रन्थि—गाँठ
ग्रास—आहार
ग्रीवा—गर्दन

घ

घ्राण—गन्ध, सूँघनेकी शक्ति

च

चित्तगुहा—हृदयरूपी कन्दरा
चित्-शक्ति-भगवानकी एक प्रकारकी शक्ति
चिदालोचना—चित्-वस्तुकी आलोचना
चिन्तामल—चिन्तारूपी मल
चिन्मयत्व—चिन्मयता
चैतन्यत्व—चेतनता
चैतन्यनिष्ठ—चित्-वस्तुमें जिसकी निष्ठा है
चैतन्यहीन—चेतनारहित

छ

छन्दविद्या—अठारह विद्याओंमें एक

ज

जर्जरित—जो जर्जर हो गया हो

त

तत्त्वज्ञान—तत्त्ववस्तुका ज्ञान
तत्त्वतः—यथार्थतः
तत्त्वविद्—तत्त्वको जाननेवाला
तदीय—भगवत्-सम्बन्धी
तनय—पुत्र
तन्मय—तल्लीन
तादात्मय—दो वस्तुओंके परस्पर अभिन्न होनेका स्वभाव
तारतम्य—दो वस्तुओंके घट-बढ़कर होनेका भाव
तिर्यग्—पशु-पक्षी
तैलधारावत्—तैलकी भाँति धारावाला
त्रिगुणातीत—तीनों गुणोंसे अतीत
त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम

द

दिक्पाल—दश दिशाओंके रक्षक देवता
दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—कठिनाईसे जानने योग्य
दुर्निगृहीत—कठिनाईसे वशमें लाया हुआ
दुर्वारित—कठिनाईसे निवारण किया हुआ
दुरूह—कठिन
दुस्त्याज्य—नहीं त्यागने योग्य
देदीप्यमान—चकमता-दमकता हुआ
देहाध्यास—देहमें मिथ्या अभिमान
द्रव्यमययज्ञ—द्रव्य द्वारा किया गया यज्ञ
द्विजवर—ब्राह्मणश्रेष्ठ
द्वैतभाव—दो होनेका भाव

ध

धूसरित—धूलसे भरा हुआ
ध्वनित होना—पता चलना

न

नराकृति—मनुष्यके समान आकृति
नामाभास—नामका आभास
निःशक्तिक—शक्तिरहित
निःश्वास—प्राणवायु या साँसका बाहर निकलना
निःसृत—निकला हुआ
निकृष्ट—तुच्छ
निकेतन—घर
निक्षेप करना—फेंकना
निगृहीत—निग्रह किया हुआ
निग्रह—संयम
निन्तान्त—अत्यन्त, एकदम
निमज्जित—डूबा हुआ, स्नात
नियमाग्रह—नियम-पालनमें आलस्य
निरञ्जन—निर्दोष, अज्ञानसे रहित
निरपेक्ष—किसी औरकी अपेक्षा नहीं
निर्गत—बाहर निकला हुआ
निर्गुण—सत्त्व, रज और तमोगुणसे अतीत
निर्दिष्ट—निर्देशित
निर्वाण—मोक्ष
निर्विकल्प—विकल्पसे रहित
निर्विवाद—बिना विवादका
निरुद्ध—विशेषरूपसे रोका हुआ
निरूपक—निरूपण करनेवाला
निरूपण—किसी विषयको ठीक-ठीक समझा देना
निशा—रात्रि
निष्काम कर्म—कामनासे रहित कर्म
निष्पन्न—जिसकी उत्पत्ति हुई है
निसर्गवाद—प्रकृतिवाद (प्रकृति ही जगत्की सृष्टि करनेवाली है, ऐसा मतवाद)
निस्तारक—निस्तार करनेवाला
निस्त्रैगुण्य—तीनों गुणोंसे अतीत
निहत—मारा हुआ
नीलमणि—नीलम
नैतिक—नीति-सम्बन्धी

नैमित्तिक—निमित्तसे उत्पन्न
नैरन्तर्य—निरन्तर होनेका भाव
नैर्घृण्य—निर्ममता, क्रूरता

प

पक्षान्तर—दूसरी ओर
पन्था—पथ
परिज्ञात—अच्छे प्रकारसे ज्ञात
परनिष्ठित—दूसरेमें निष्ठावाला
परदार—दूसरेकी स्त्री
परवर्ती—बादमें
पराक्रान्त—शक्तिशाली
परिग्रह—ग्रहण
पराभक्ति—श्रेष्ठा, शुद्धा भक्ति
पराभूत—पराजित
परिचर्या—सेवा
परिचालक—चलानेवाला
परिदृष्ट—दृष्ट
परिनिष्ठित—पूर्णतया निपुण
परिमित—सीमित
परिलक्षित—अच्छी तरह देखाभाला हुआ
परिव्राजक—संन्यासी
परिवेष्टित—घिरा हुआ
पर्यन्त—तक
पर्यवसित—समाप्त
पाण्डित्य—विद्वता
पारत्रिक—परलोक-सम्बन्धी
पारलौकिक—परलोक-सम्बन्धी
पार्षद—परिकर
पाषण्डी—पाखण्डी
पूर्वपक्ष—संशयके सम्बन्धमें उठाया गया प्रश्न
पूर्वराग—मिलनसे पहलेका राग
प्रकरण—निर्माण, प्रसङ्ग
प्रकृत—यथार्थ
प्रकृष्ट—उत्तम
प्रक्षिप्त—बादमें जोड़ा या घुसाया हुआ
प्रच्छन्न—ढका हुआ
प्रजल्प—इधर-उधरकी बात
प्रज्ञा—बुद्धि
प्रणयन—रचना, निर्माण
प्रणत—शरणागत
प्रणतपाल—शरणागतकी रक्षा करनेवाले
प्रणति—प्रणाम, शरणागति
प्रताड़ित—सताया गया
प्रतिपादित—प्रमाणित
प्रतिपाद्य—जिसे प्रमाणित किया जाय
प्रतिभात—प्रभायुक्त, ज्ञात
प्रतीयमान—जान पड़ता हुआ, जिसकी प्रतीति हो रही हो
प्रत्यगात्मा—जीवात्मा
प्रत्यवाय—दोष
प्रत्याहार—निरोध, रोकना
प्रत्युपकार—भलाईके बदलेमें की हुई भलाई
प्रदत्त—दिया हुआ
प्रधान—मायाकी एक वृत्ति
प्रधानतः—मुख्यरूपसे
प्रपत्ति—शरणागति
प्रभूत—अत्यधिक
प्रभृति—जैसा
प्रयोजनीयता—आवश्यकता
प्रयोजक—प्रयुक्त करनेवाला
प्रयोजकत्व—प्रयोजक होनेका भाव
प्रवर—श्रेष्ठ
प्रवर्त्तक—किसी काममें लगानेवाला, आरम्भ करनेवाला
प्रवृत्ति—मनका किसी विषयकी ओर झुकाव, प्रभाव
प्रशस्त—प्रशंसाके योग्य
प्रशान्तात्मा—शुद्ध या शान्त आत्मा
प्रशामक—शान्त करनेवाला
प्राकृत—प्रकृति-सम्बन्धी

प्राक्तन—प्राचीन
प्रादुर्भूत—आविर्भूत, अवतरित
प्रादेशिक वाक्य—प्रसङ्गगत, स्थानीय वाक्य
प्रापक—प्राप्त करने या करानेवाला
प्रापञ्चिक—जगत् या प्रपञ्च-सम्बन्धी
प्राप्य—प्राप्त होने योग्य
प्रार्थित—प्रार्थना किया हुआ
प्रेमास्पद—प्रेमका स्थल
प्रेमोत्कर्ष—प्रेमका उत्कर्ष

ब

बाहुल्य—अधिकता
बाह्य अङ्ग—बाहरी अङ्ग
बिद्ध—छेदा हुआ, आहत
बृहत्—बड़ा
बोधगम्य—समझमें आने योग्य
ब्रह्मलय—ब्रह्ममें लय होना
ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मको जाननेवाला
ब्रह्मानन्द—ब्रह्मका आनन्द
ब्रह्मानुभूति—ब्रह्मकी अनुभूति

भ

भक्तानन्दायिनी—भक्तोंको आनन्द देनेवाली
भोक्तृत्वभाव—भोक्ता होनेका भाव

म

मत्सम्बन्धी—मेरे सम्बन्धी
मत्सरता—डाह, जलन, द्वेष
मथन—मथनेका भाव
मधुरिमा—माधुर्य
मन्वन्तर—ब्रह्माजीके दिनका चौदहवाँ भाग
मन्तव्य—विचार, मत
मर्मार्थ—सार
महत्—बड़ा
मायाच्छन्न—मायाके द्वारा आच्छन्न
मुकुलित—आधा विकसित
मुमुक्षु—मुक्तिकी इच्छा करनेवाला
मेधायुक्त—मेधावी
मोहान्ध—मोहसे अन्धा
म्लेच्छ—चारो वर्णोंसे भी नीच

य

यतिगण—संन्यासी लोग
याग—यज्ञ
यादृच्छिक—स्वतन्त्र, ऐच्छिक
युक्तियुक्त—उचित, युक्तिपूर्ण
युगपत्—एक ही समयमें, साथ-साथ
युगावतार—प्रत्येक युगमें लेनेवाले अवतार
योगमाया—भगवान्‌की परा शक्ति
योगस्थैर्य—योगकी स्थिरता

र

रक्तिम—लालिमायुक्त
रञ्जित—रंगा हुआ
रुक्ष—रूखा, नीरस

ल

लिङ्गशरीर—सूक्ष्म शरीर
लिप्सा—किसी वस्तुको पानेकी इच्छा
लुब्ध—ललचाया हुआ, लोभित
लोकपाल—लोकका पालन करनेवाला
लोकप्रवर्त्तन—लोगोंके कल्याणके लिये

व

वञ्चक—वञ्चना करनेवाला
वयस—उम्र
वर्चस्व—अधिकार
वर्णविशिष्ट—वर्णवाला
वर्णसङ्कर—भिन्न जातियोंके स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न
वाक्—वाणी, बोलनेकी इन्द्रिय
वाचाल—अधिक बोलनेवाला
वागिन्द्रिय—जिह्वा
विक्षिप्त—पागल, उद्विग्न

विगुण—गुणहीन
विच्युति—भूल, पतन, वियोग
विजितात्मा—जिसने मनको जीत लिया है
विज्ञ—पण्डित, जाननेवाला
विदित—मालूम
विधर्म—धर्मविरूद्ध
विधिवादिगण—नैतिक लोग
विधेय—करने योग्य
विधेयात्मा—जिसकी आत्मा संयत हो
विन्यास—व्यवस्थित करना
विपर्यय—प्रतिकूलता, विपरीतता
विभूति—ऐश्वर्य
विरहकातर—विरहसे कातर
विरोधाभास—विचारमें विरोध प्रतीत होना
विलास—क्रीड़ा
विवक्षित—इच्छित, कथित
विवृत—स्पष्ट, व्यक्त
विशारद—निपुण
विशिष्ट—विशेषतायुक्त
विशिष्टता—विशेषता
विशुद्धचित्त—जिसका चित्त शुद्ध है
विशेषत्व—विशेषता
विषयणी—विषयसे सम्बन्धित
विहित—आदेश किया हुआ
वृष्टि—वर्षा
वेदज्ञ—वेदोंके जाननेवाला
वैषम्य—विषमता
व्यङ्गोक्ति—गूढ़भाषा, वह भाषा जिसमें व्यङ्ग हो
व्यतिक्रम—उल्लङ्घन
व्यतिरेक—असङ्गति, निषेध
व्यवहृत—व्यवहार किया हुआ
व्योम—आकाश

श

शोच्य—शोचनीय
शैव—शिवके उपासक
श्रुत—सुना हुआ
श्रोतव्य—सुनने योग्य
श्लेषोक्ति—छिपे अर्थवाली बात

ष

षडैश्वर्यपूर्ण—छः ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण

स

सङ्कीर्णता—उदार ना होनेका भाव
संवरण—छिपाना
संवेदन—अनुभूति
संस्पर्श—अच्छी तरहसे होनेवाला स्पर्श
संहर्त्ता—संहार करनेवाला
सङ्गति—मेल
सञ्चित—जमा किया हुआ
सदातन—विष्णु
सद्विवेकी—सद् विवेकवाला
समत्वभाव—समताका भाव
सन्निविष्ट—उत्तम रूपसे एकाग्र
समाहर—समुच्य, समूह
समाहित—संयमित, व्यवस्थित
सम्बन्धविशिष्ट—सम्बन्धवाला
सम्मत—सहमत, एक मत
समन्वित—संयुक्त, स्वाभाविक रूपसे क्रमबद्ध
सम्यक्—भलीभाँति, अच्छी तरह
सर्वतन्त्र—समस्त सिद्धान्त
सर्वतोभावेन—सम्पूर्ण रूपसे
सर्वभूतात्मा—सभी जीवोंके आत्मा अर्थात् परमात्मा
सर्वभुक्—सब कुछ खा जानेवाला
सर्वात्मकत्व—सर्वात्मकता
सहस्र—हजार
साम—सामवेद
सामर्थ्यविशिष्ट—सामर्थ्यवान्
साम्यलक्षण—समानताका लक्षण
सारगर्भित—तत्त्वपूर्ण

सालोक्य मुक्ति—जीवका भगवान्‌के साथ एक ही लोकमें वास करना
साष्टाङ्ग प्रणाम—आठ अङ्गोंसे प्रणाम (सिर, हाथ, पैर, आँख, जंघा, हृदय, वचन और मन)
सुखान्वेषी—सुखकी खोज करनेवाला
सुदुराचारी—अति दुराचारी
सुधा—अमृत
सुरस—रसयुक्त
सुष्ठु—भली भाँति, अच्छी तरह
सुस्पष्ट—विशेषरूपसे स्पष्ट
सौम्य—सुन्दर, कोमल
स्खलित—गिरा हुआ
स्निग्ध—स्नेहयुक्त, प्रियता
स्नेहाधिक्य—स्नेहकी अधिकता
स्फूर्ति—स्फुरण, व्यक्त होना
स्पृहा—इच्छा, आकाङ्क्षा
स्फुरण—व्यक्त होना
स्फुलिङ्ग—चिङ्गारी
स्मार्त्त—स्मृत्ति शास्त्रका अनुयायी
स्थायित्व—स्थिरता
स्रुवा—घीमें आहुति डालनेकी करछी
स्वच्छन्द—स्वतन्त्र
स्वधर्मस्थ—अपने धर्ममें स्थित
स्वयंभू—स्वयं उत्पन्न
स्वानन्दपूर्ण—अपने आनन्दमें पूर्ण

ह

हत—मरा हुआ
हतभागा—भाग्यहीन
हन्त—मारना
हिरण्यगर्भ—ब्रह्मा
हेयता—तुच्छता
हृदगत—हृदय-सम्बन्धी